श्रीवनारसीदेवी चूड़ीवाल धर्म-प्रनथमाला, मणि १

श्रीविष्णुपुराण

मूल और हिन्दी अनुवादसहित

(सचित्र)



गीतात्रेसं, गोरखपुर







श्रीबनारसीदेवीँ चूड़ीवाल धर्म-प्रन्थमाला, मणि १

WINITED WITH

मूल श्लोक और हिन्दी-अनुवादसहित

(सचित्र)

अनुवादक

श्रीमुनिलाल गुप्त

सं० १९९०

गीतात्रेस, गोरखपुर

मूल्य-साधारण जिल्द २॥) बढ़िया जिल्द २॥) धुद्रैक तथा प्रकाशके घनक्यामदास गीताप्रेस, गोरखपुर

> प्रथम संस्करण ३२५०

_{श्रीहरिः} विषय-सूची

अध्या		पृष्ठ	अध्याय विषय पृष्ठ
	प्रथम अंश		२१-कश्यपजीकी अन्य स्त्रियोंके वंश एवं मरुद्रणकी
9_	ग्रन्थका उपोद्घात	3	उत्पत्तिका वर्णन " ११४
	-चौवीस तस्वींके विचारके साथ जगत्के उत्पत्ति-		२२-विष्णुभगवान्की विभूति और जगत्की
	क्रमका वर्णन और विष्णुकी महिमा	Ę	व्यवस्थाका वर्णन ११८
	न्द्रद्वादिकी आयु और कालका स्वरूप	१२	द्वितीय अंश
8-	-ब्रह्माजीकी जुत्पत्ति, वराह भगवान्द्वारा पृथिवी-		
	का उद्धार और ब्रह्माजीकी लोक-रचना "	88	१-प्रियव्रतके वंशका वर्णन "१२७
4-	अविद्यादि विविध सर्गोंका वर्णन	29	२-भूगोलका विवरण " १३०
	-चातुर्वर्ण्यं-च्यवस्था,पृथिवी-विभाग और अन्नादि-		३-भारतादि नौ खण्डोंका विभाग " १३५
	की उत्पत्तिका वर्णन	२५	४-प्रश्न तथा शाल्मल आदि द्वीपोंका विशेष वर्णन १३७
			५-सात पाताललोकोंका वर्णन " १४४
9-	-मरीचि आदि प्रजापतिगण, तामसिक सर्ग,		६-मिन्न-मिन्न नरकोंका तथा भगवन्नामके
	स्वायम्भुव मनु और शतरूपा तथा उनकी	-	माहात्म्यका वर्णन " १४७
	सन्तानका वर्णन	28	७-भूर्भुवः आदि सात ऊर्घ्वलोक्तीका वृत्तान्त · १५१
6-	रौद्र-सृष्टि और भगवान् तथा लक्ष्मीजीकी सर्व-		८-सूर्य, नक्षत्र एवं राशियोंकी व्यवस्था तथा
	व्यापकताका वर्णन	३२	कालचक्र, लोकपाल और गंगाविर्मावका वर्णन १५४
9-	दुर्वासाजीके शापसे इन्द्रका पराजय, ब्रह्माजीकी		९-ज्योतिश्रक और शिशुमारचक १६५
- 1	स्तुतिसे प्रसन्न हुए भगवान्का प्रकट होकर		१०-द्वादश स्योंके नाम एवं अधिकारियोंका वर्णन १६७
	देवताओंको समुद्र-मन्थनका उपदेश करना		११-स्यँशक्ति एवं वैष्णवी शक्तिका वर्णन १६९
	तथा देवता और दैत्योंका समुद्र-मन्थन	34	१२-नवग्रहोंका वर्णन तथा लोकान्तर-सम्बन्धी
	भृगु, अग्नि और अग्निष्वात्तादि पितरींकी		्व्याख्यानका उपसंहार " १७२
	सन्तानका वर्णन	80	१३–भरत-चरित्र " १७६
	भुवका वन-गमन और मरीचि आदि ऋषियों-	170-17	१४-जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद " १८५
•	से मेंट	88	१५-ऋभुका निदाधको अद्वैतज्ञानोपदेश "१८८
१२-	श्रुवकी तपस्यासे प्रसन्न हुए भगवान्का		१६—ऋभुकी आज्ञासे निदाघका अपने घरको छौटना १९२
	आविर्माव और उसे ध्रुव-पद-दान	48	१६-ऋभुका आश्रास निदायका अपने वरका छाटना १६९
	राजा वेन और पृथुका चरित्र	६३	रतीय अंश
28-	प्राचीनवर्हिका जन्म और प्रचेताओंका भगव-		१-पहले सात मन्वन्तरोंके मनु, इन्द्र, देवता, सप्तर्षि
	दाराघन	90	और मतु-पुत्रोंका वर्णन १९७
	प्रचेताओंका मारिषा नामक कन्याके साथ		२-सावर्णिमनुकी उत्पत्ति तथा आगामी सात
	विवाह, दक्षप्रजापतिकी उत्पत्ति एवं दक्षकी		मन्वन्तरींके मनु, मनुपुत्र, देवता, इन्द्र और
	आठ कन्याओंके वंशका वर्णन	७५	
	नृसिंहावतारविषयक प्रश्न	66	
	हिरण्यकशिपुका दिग्विजय और प्रह्राद-चरित	90	३—चतुर्युगानुसार मिन्न-मिन्न व्यासीके नाम तथा
26-	-प्रह्लादको मारनेके लिये विष, शस्त्र और अग्नि		ब्रह्मज्ञानके माहात्म्यका वर्णन " २०५
¥-0	आदिका प्रयोग एवं प्रहादकृत भगवत्-स्तुति	99	%-ऋग्वेदकी शालाओंका विस्तार " २०८
29-	-प्रह्लादकृत भगवत्-गुण-वर्णन् और प्रह्लादकी		५-ग्रुक्र्यजुर्वेद तथा तैत्तिरीय यजुःशाखाओंका
	रक्षाके लिये भगवान्का सुदर्शन चक्रको भेजना	१०३	वर्णन २१०
₹0-	-प्रह्लादकृत भगवत्-स्तुति और भगवान्का		६-सामवेदकी शाला, अठारह पुराण और चौदह
	आविर्मावं	१११	विद्याओं के विभागका वर्णन २१२
1		tri Colle	ection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अध्याय विषय	वृष्ठ	अध्याय विषय	पृष्ठ
	224	१७-दृह्यु-वंश	338
७-यम-गाता		१८-अनुवंश	339
	285		386
घमका वणन	223	२०-कुक्के वंशका वर्णन	३४५
र-ब्रह्मचय आदि जालगाना नगर		२१-भविष्यमें होनेवाले राजाओंका वर्णन	386
१०-जातकर्म, नामकरण और विवाह-संस्कारकी	226	२२-भविष्यमें होनेवाले इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं	का
विधि	444	वर्णन	\$86
१८-विहित्तियान्त्रा त्या नारमा गर्ग	२२८		३५०
5 6-5 64 Chard Od alvai 2 2 2	२३९	२४-कल्युगी राजाओं और कलि-धर्मोंका व	
१३-आम्युद्यिक श्राद्ध, प्रेतकर्म तया श्राद्धादिका		२४-काल्युमा राजाआ आर मार्क-पमामा प	३५०
विचार	485	तथा राजवंश-वर्णनका उपसंहार	110
१४-श्राद्ध-प्रशंसा, श्राद्धमें योग्य कालका विचार "	२४६	पश्चम अंश	
१५-श्राद-विधि	२४९	१-वसुदेव-देवकीका विवाह, भारपीडिता पृथिर्व	ोका
१६-श्राद्ध-कर्ममें विहित और अविहित वस्तुओंका		१-वसुद्व-द्वकाका विवाद, नारनावरा हान	थीर
विचार	248	देवताओंके सहित श्रीरसमुद्रपर जाना	71\ Tr
१७-नग्नविषयक प्रश्न; देवताओंका पराजय, उनका		भगवान्का प्रकट होकर उसे घेर्य वँधा	३६३
भगवान्की शरणमें जाना और भगवान्का		Stadiant or an	
मायामोहको प्रकट करना	244	२-भगवान्का गर्भ-प्रवेश तथा देवगणह	
		व्यक्ताका व्यक्त	₹७०
१८-मायामोह और असुरोका संवाद तथा राजा	२६०	३-भगवान्का आविभीय तथा योगमायाः	द्वारा
	140	कंसकी वञ्चना	३७२
चतुर्थ अंश		४-वसुदेव-देवकीका कारागारसे मोक्ष	… ३७५
१-वैवस्वतमनुके वंशका विवरण ·	. 508	५–पूतना-वघ	३७६
२-इक्षाकुके वंशका वर्णन तथा सौमरिचरित्र "	200		वोंका
३-मान्धाताकी सन्तति, त्रिशङ्कका स्वर्गारोहण	П	गोकुलसे वृन्दावनमें जाना और वर्षा-वर्णन	30€
	. 366	७-कालिय-दमन	३८२
		८–धेनुकासुर-वघ	369
४-सगर, सौदास, खट्याङ्ग और भगवान् रामव	. 588	८–धेनुकासुर-वघ ९–प्रलम्ब-वघ	350
			368
५—ानाम-चारत्र आर निमियशका वर्णन	422	्र ०-शरद्वर्णन तथा गोवर्धनकी पूजा ११-इन्द्रका कोप और श्रीकृष्णका गोवर्धन-धारण	the state of the s
६-सोमयंशका वर्णनः; चन्द्रमा, बुध और पुरूरवाक	1	११-इन्द्रका काप आर आकृष्णका नाववन वारण	*** 709
चरित्र '''	• ३०२	१२-वाक्र-कृष्ण-संवाद, कृष्ण-स्तुति	
७-जहुका गङ्गापान तथा जमदिग्न और विश्व	F	१३—गोपींद्वारा भगवान्का प्रभाववर्णन तथा भग का गोपियोंके साथ रासक्रीडा करना	वान्-
मित्रकी उत्पत्ति "	. ५०८	का गोपियोंके साथ रासक्रीडा करना	Aoś
८-काश्यवंशका वर्णन	. ई६०	१४-वृषमासुर-वष	805
९-महाराज रिज और उनके पुत्रींका चरित्र '	385	१ १५-कंसका श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अव	हूरको
१०-ययातिका चरित्र	388	भेजना	808
११-यदुवंशका वर्णन और सहस्रार्जुनका चरित्र	388	१६-केशि-वध "	888
१२_गरपत्र कोपदा गंडा	** 390	९ १७-अक्टरजीकी गोकलयात्रा	ASR
१३-सत्वतकी सन्ततिका वर्णन और स्थमन्त	क-	१८-भगवान्का मथुराको प्रस्थान, गोपियोंकी क्या और अक्रूरजीका मोह १९-भगवान्का मथुरा-प्रवेश, रजक-वध	विरह-
मणिकी कथा	370	कथा और अकरजीका मोह	880
१४-अन्मित्र और अस्त्रकके बंगका वर्णन	** 33:	२ १९-भगवातका मथरा-प्रवेशः रजक-वध	तथा
१५-शिशुपालके पूर्व-जन्मान्तरीका तथा वसुदेवः	al -	मालीपर कृपा	४२२
की सल्तिका वर्णन	10, 334	Collection, कुल्लाप्रा, हमानुसंह वृत्तु भेज an कुत्तलयापीड	A CONTRACTOR OF THE PARTY OF TH
१६-दर्यसके वंशका वर्णन	33	र जाणरादि मह्लीका नाश तथा कंस-वघ	४२४

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
२१-उग्रसेनका	राज्याभिषेक तथा भगर	बान्का .	३६-द्विविद-वघ	• •••	800
विद्याध्यय		855	३७-ऋषियोंका शाप, य	हुवंशविनाश तथा भगवा	
२२-जरासन्धर्क	पराजय	838	स्वधाम सिधारना		808
२३-द्वारका-दुर	की रचना, कालयवनका	भस्म		येष्टि-संस्कार, परीक्षि	
	मुचुकुन्दकृत भगवत्स्तुति	830	राज्याभिषंक तथा	पाण्डवींका स्वर्गारोहण	824
२४-मुचुकुन्दक	ा तपस्याके लिये प्रस्थान	और		षष्ठ अंश	
वलरामजीव	क्री व्रजयात्रा	885	2.00		899
२५-वलमद्रजी	का व्रज-विहार तथा यमुनाकर्ष	व ४४ई	१-कलिधर्मेनिरूपण		
२६-हिमणी-	इरण	884	२-श्रीव्यासजीद्वारा क	लियुग, शूद्र और स्त्रि	યાવા
२७-प्रद्युम्न-इरप	ग तथा शम्बर-वघ	४४६	महत्त्व-वर्णन	200	५०२
२८-इक्मीका	वघ	886		न तथा नैमित्तिक प्रव	त्रथका
२९-नरकासुरव	ना वध	848	वर्णन		५०५
३०-पारिजात-	हरण	848	४-प्राकृत प्रलयका व	र्णन '''	409
३१-भगवान्क	ा द्वारकापुरीमें लौटना और	सोलइ	५-आध्यात्मिकादि	विघ तापींका वर्णन, म	गवान्
	त सौ कन्याओंसे विवाह करना			की व्याख्या और भग	
३२-उषा-चरि	a to be be the same	885	पारमार्थिक खरूप		483
	और वाणासुरका युद्धः	884.	६-केशिष्वज और ख		430
	ध तथा काशीदहन "	··· 800	७-ब्रह्मयोगका निर्णय		५२५
३५-साम्बका		&@\$	८-शिष्यपरम्परा, मा	हातम्य और उपसंहार	५३३

नाम				åa
१-श्रीविष्णुभगवान्			(बहुरंगा)	प्रारम्भमें
२-ध्रुव-नारायण	•••	A 4	1 10 10	88
३-भगवान् श्रीनृसिंहदेवकी गोदमें भक्त प्रहाद	•••	7. 77. 19	. 33	90
४-जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद	•••	30 9 30	77	१२७
५-यमराज और वूतका संवाद	•••	Carlotte R	>>	१९७
६-भगवान् श्रीरामचन्द्र	•••))	२७१
७–व्रज-नव-युवराज	•••		,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,	. ३६३
८-श्रीव्यासजी एवं ऋषियोंका संवाद		•••	"	880



STERRITA	विषय	र्वेड	अध्याय विषय रू	
अध्याय		२१५	१७-द्रुत्यु-वंश २३९	
७-यम-गीता		तुर्वर्ण्य-	१८-अनुवंश " ३३९	
८-विष्णुभगवान्की	•••	२१९	१९-पुरुवंश ३४१	
धर्मका वर्णन ९-ब्रह्मचर्य आदि अ		२२३	२०-कुरुके वंशका वर्णन	
१०-जातकर्म, नामक	रण और विवाह-संर	कारकी	२१-भविष्यमें होनेवाले राजाओंका वर्णन " ३४८	
विधि	•••	२२६		
११-गृहस्थसम्बन्धी सद	ाचारका वर्णन	226	वर्णन " ३४९	
१२-गृहस्यसम्बन्धी सद	तचारका वर्णन	538	२३-मगधवंशका वर्णन " ३५०	
१३-आम्युद्यिक श्राड	. प्रेतकर्म तथा आव	द्रादिका	२४-कल्रियुगी राजाओं और कल्रि-धर्मोंका वर्णन	
विचार	÷••	583	तथा राजवंश-वर्णनका उपसंहार *** ३५०	
१४-श्राद्ध-प्रशंसा, श्राड	में योग्य कालका विचा	र २४६	पश्चम अंश	
१५-श्राद्ध-विधि		586		
१६-आद-कर्ममें विहित	त और अविहित वर	तुओं का	१-वसुदेव-देवकीका विवाह, भारपीडिता पृथिवीका देवताओंके सहित क्षीरसमुद्रपर जाना और	
विचार		548	भगवान्का प्रकट होकर उसे धैर्य वँघाना,	
१७-नग्नविषयक प्रदन	; देवताओंका पराजय,	उनका	क्षणावतारका उपक्रम " ३६३	
भगवान्की शरण	में जाना और भग	वान्का	कृष्णावतारका उपक्रम ३६३ २–भगवान्का गर्भ-प्रवेश तथा देवगणद्वारा	
मायामोहको प्रकट	करना	२५५	देवकीकी स्तुति " २५० ३७०	
१८-मायामोह और	असुरोंका संवाद तथ	। राजा	३-भगवान्का आविभीव तथा योगमायाद्वारा	
शतघनुकी कथा		••• २६०		
	चतुर्थ अंश			
१-वैवस्वतमनुके वंश	का विवरण	••• २७१	1 2001 33	
	वर्णन तथा सौभरिचरि		200 200 200 200 200 200 200 200 200 200	
	ति, त्रिशङ्कुका ख			
तथा सगरकी उत		*** 766		
	बट्वाङ्क और भगवान		८-वर्षुकाष्ट्रर-वर्ष	
चरित्रका वर्णन				
५-निमि-चरित्र और	the second secon		११-इन्द्रका कोप और श्रीकृष्णका गोवर्धन-धारण · ३९४	
	; चन्द्रमा, बुघ और पु •••			
चरित्र	THE PURE THE PERSON NAMED IN			
The State of the S	तथा जमदिग्न और			3
मित्रकी उत्पत्ति		\$0	० १४-वर्षमासर-वन्न ४००	
८-कारयवंशका वर्ण		38		
	ार उनक पुत्राका चा	५त्र *** 	२ १५-कंसका श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरको ४०	ę
१०-ययातिका चरित्र				
११-यदुवंशका वर्णन				
१२-यदुपुत्र क्रोष्ट्रका				
१२-सत्वतका सन्ता मणिकी कथा	तेका वर्णन और	स्यमन्तक-	१८-मगवान्का मथुराको प्रस्थान, गोपियोंकी विरह- कथा और अकरजीका मोह	(9
		17	• कया और अक्रूरजीका मोह " ४१ २ १९-भगवान्का मथुरा-प्रवेद्या, रजक-वघ तथा	-
				2
रप—ाशशुपालक पूव- की सन्ततिका व	जन्मान्तरीका तथा व			-
		tvo Vranchas	१५ २०-कुब्जापर कृपा, घनुभैन्न, कुवलयापीड और	V
ाप-प्रपद्मक पराका र	4014 .CC-0. FIOI. Sa	aya viat Sila	i Collection, चाण्यिकिं महस्रीका नादा तथा कंस-वघ "Yर	. •

अध्याय विषय	पृष्ठ	ष्ट्याय विषय पृष्ठ
२१-उग्रसेनका राज्याभिषेक तथा भ	गवान्का	३६-द्विविद-वघ ४७७
विद्याध्ययन	8\$\$	३७-ऋषियोंका शाप, यदुवंशविनाश तथा भगवान्का
२२-जरासन्धकी पराजय	४३६	स्वघाम सिघारना *** ४७९
२३-द्वारका-दुर्गकी रचना, कालयवनका		३८-यादवींका अन्त्येष्टि-संस्कार, परीक्षितका
होना तथा मुचुकुन्दकृत भगवत्स्तुति	Aźa	राज्यामिषेक तथा पाण्डवींका स्वर्गारोहण " ४८५
२४-मुचुकुन्दका तपस्याके लिये प्रस्थान		षष्ट अंश
वलरामजीकी व्रजयात्रा	885	्र कविका रीनकप्रण
२५-वलमद्रजीका व्रज-विहार तथा यमुनाक		र-काळव्याच्याच
२६ चिमणी-इरण	884	२-श्रीव्यासनीद्वारा कलियुग, श्रूद्र और स्नियोंका महत्त्व-वर्णन ५०२
२७-प्रद्युम्न-इरण तथा शम्बर-वघ	४४६	३-निमेषादि काल-मान तथा नैमित्तिक प्रलयका
२८-इक्मीका वघ	886	वर्णन ५०५
२९-नरकासुरका वघ	848	४-प्राकृत प्रलयका वर्णन ५०९
३०-पारजात-हरण	४५४	५-आध्यात्मिकादि त्रिविघ तापोका वर्णन, भगवान्
३१-भगवान्का द्वारकापुरीमें लौटना औ		तथा वासुदेव शब्दोंकी ब्याख्या और भगवान्के
हजार एक सौ कन्याओंसे विवाह कर	ना ४६२	पारमार्थिक स्वरूपका वर्णन ५१३
३२-उषा-चरित्र	864	६-केशिध्वज और खाण्डिक्यकी कया " ५२०
३३-श्रीकृष्ण और वाणासुरका युद्धः	800	७-ब्रह्मयोगका निर्णय ५२५
३४-पोण्ड्रक-वघ तथा काशीदहन ''' ३५-साम्बका विवाह	80£	८-शिष्यपरम्परा, माहात्म्य और उपसंहार " ५३३
२७-वाभ्यका ।पपार		

--•≽क्क्र्स्श-चित्र-सूची

नाम				áa.
१-श्रीविष्णुभगवान्			(बहुरंगा)	प्रारम्भर्मे
२-ध्रुव-नारायण		6	,,	88
३-भगवान् श्रीवृतिंहदेवकी गोदमें मक्त प्रहाद	•••		. 11	90
४-जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद			"	१२७
५-यमराज और दूतका संवाद			"	१९७
६-भगवान् श्रीरामचन्द्र	•••	•••	"	२७१
७–व्रज-नव-युवराज		•••	, m	363
८-श्रीव्यासजी एवं ऋषियोंका संवाद	- Ter	200	31	890



निवेदन

अष्टादश महापुराणों में श्रीविष्णुपुराणका स्थान बहुत ऊँचा है। इसके रचियता श्रीपराशरजी हैं। इसमें अन्य विषयोंके साथ मूगोछ, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, राजवंश और श्रीकृष्ण-चरित्र आदि कई प्रसंगोंका बड़ा ही अनूठा और विशद वर्णन किया गया है। मिक्त और ज्ञानकी प्रशान्त धारा तो इसमें सर्वत्र ही प्रच्छन्नरूपसे बह रही है। यद्यपि यह पुराण विष्णुपरक है तो भी मगवान् शंकरके छिये इसमें कहीं भी अनुदार भाव प्रकट नहीं किया गया। सम्पूर्ण प्रन्थमें शिवजीका प्रसंग सम्भवतः श्रीकृष्ण-वाणासुर-संप्राममें ही आता है, सो वहाँ स्वयं मगवान् कृष्ण महादेवजीके साथ अपनी अभिनता प्रकट करते हुए श्रीमुखसे कहते हैं—

त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमिखलं मया। मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हेसि राङ्कर ॥ ४७ ॥ योऽहं स त्वं जगच्वेदं सदेवासुरमानुषम् । मत्तो नान्यदरोषं यत्तत्त्वं ज्ञातुमिहार्हेसि ॥ ४८ ॥ अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः । वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर ॥ ४९ ॥ (अंश ५ अध्याय ३३)

हाँ, तृतीय अंशमें मायामोहके प्रसंगमें बौद्ध और जैनियोंके प्रति कुछ कटाक्ष अवश्य किये गये हैं। परन्तु इसका उत्तरदायित्व भी प्रन्थकारकी अपेक्षा उस प्रसंगको ही अधिक है। वहाँ कर्मकाण्डका प्रसंग है और उक्त दोनों सम्प्रदाय वैदिक कर्मके विरोधी हैं, इसिछिये उनके प्रति कुछ व्यंग-वृत्ति हो जाना स्वामाविक ही है। अस्तु!

आज सर्वान्तर्यामी सर्वेक्वरकी असीम कृपासे मैं इस प्रन्यरत्नका हिन्दी-अनुवाद पाठकोंके सम्मुख रखनेमें सफल हो सका हूँ इससे मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। अमीतक हिन्दीमें इसका कोई मी अविकल अनुवाद प्रकाशित नहीं हुआ था। गीताप्रेसने इसे प्रकाशित करनेका उद्योग करके हिन्दी-साहित्यका बड़ा उपकार किया है। संस्कृतमें इसके ऊपर विष्णुचिति और श्रीधरी दो टीकाएँ हैं, जो वेंकटेक्वर स्टीमप्रेस बम्बईसे प्रकाशित हुई हैं। प्रस्तुत अनुवाद भी उन्हींके आधारपर किया गया है; तथा इसमें पूज्यपाद महामहोपाध्याय पं० श्रीपञ्चाननजी तर्करत्नद्वारा सम्पादित बंगला-अनुवादसे भी अच्छी सहायता ली गयी है। इसके लिये मैं श्रीपण्डितजीका अत्यन्त आमारी हूँ।

अनुवादमें यथासम्भव मूळका हो भावार्थ दिया गया है। जहाँ स्पष्ट करनेके छिये कोई बात जगरसे छिखी गयी है वहाँ [] ऐसा तथा जहाँ किसी शब्दका भाव व्यक्त करनेके छिये कुछ छिखा गया है वहाँ () ऐसा कोष्ठ दिया गया है। जो श्लोक स्मरण रखनेयोग्य समझे गये हैं उन्हें रेखाङ्कित कर दिया गया है; इससे पाठकोंके छिये प्रन्थकी उपादेयता बहुत बढ़ जायगी।

अन्तमें, जिन चराचरिनयन्ता श्रीहरिकी प्रेरणासे मैंने, योग्यता न होते हुए भी, इस ओर बढ़नेका दु:साहस किया है उनसे क्षमा माँगता हुआ उन छीछामयकी यह छीछा उन्हींके चरणकमछोंमें समर्पित

मार्गे शुरु है है है है के प्रेड के प्

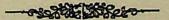


a a

विष्णुवन्दनम्

-1>4044

विश्वातीतं विश्वविधानं विबुधेशं विश्वान्तं विश्वम्भरमाद्यं विसुमीड्यम्। विद्याऽविद्यावेद्यविहीनं हृदि वेद्यं वन्दे विष्णुं विश्ववितासं विधिवन्द्यम् ॥ सत्यं सत्यातीतमसत्यं सदसन्तं शुद्धं बुद्धं मुक्तमनुक्तं विधिमुक्तम्। सर्वं सर्वासर्वसुदूरं सुखसान्द्रं वन्दे विष्णुं सर्वसहायं सुरसेव्यम्॥ मानं मानातीतममेयं मनसाप्यं मन्त्रमन्तारं मुनिमान्यं महिमाट्यम्। मायाकीडं मायिनमाद्यं गतमायं वन्दे विष्णुं मोहमहारिं महनीयम्॥ पारावाराधारमधार्यं पारापारमपारं परपारं ह्यविकार्यम्। पारं पूर्णीकारं पूर्णिविहारं परिपूर्णं वन्दे विष्णुं परमाराध्यं परमार्थम्॥ कालातीतं कालकरालं करुणाईँ कालाकाल्यं केलिकलाढ्यं कमनीयम्। कामाधारं कामकुठारं कमलाक्षं वन्दे विष्णुं कामविलासं कमलेशम्॥ नित्यानन्दं नित्यविहारं निरपायं नीराघारं नीरदकान्ति निरवधम्। नानाऽनानाकारमनाकारमुदारं वन्दे विष्णुं नीरजनाभं निलनाचम्॥



A STATE OF THE STATE OF THE

विस्तात क्यों इस मानक विस्तात है।



श्रीविष्णुपुराण

प्रथम अंश



विश्वातीतं विश्वविधानं विबुधेशं विश्वान्तं विश्वम्भरमाद्यं विमुमीड्यम् । विद्याऽविद्यावेद्यविद्यीनं हृदि वेद्यं वन्दे विष्णुं विश्वविलासं विधिवन्द्यम् ॥



श्रीसन्नारायणाय नमः

प्रथम अंग

--13×60×51--

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

पहला अध्याय

ग्रन्थका उपोद्घात।

श्रीसृत उवाच

ॐ पराशरं मुनिवरं कृतपौर्वाह्निकित्रयम् । मैत्रेयः परिपप्रच्छ प्रणिपत्याभिवाद्य च ॥ १ ॥ त्वत्तो हि वेदाध्ययनमधीतमुखिलं गुरो। धर्मशास्त्राणि सर्वाणि तथाङ्गानि यथाक्रमम् ॥ २ ॥ त्वत्प्रसादान्य्रनिश्रेष्ठ मामन्ये नाकृतश्रमम्। वक्ष्यन्ति सर्वशास्त्रेषु प्रायशो येऽपि विद्विषः ॥ ३ ॥ सोऽहमिच्छामि धर्मज्ञ श्रोतुं त्वत्तो यथा जगत्। बभूव भूयश्र यथा महाभाग भविष्यति।। ४।। जगद्वसन्यतश्रेतचराचरम् । लीनमासीद्यथा यत्र लयमेष्यति यत्र च ॥ ५ ॥ यत्त्रमाणानि भृतानि देवादीनां च सम्भवम्। समुद्रपर्वतानां च संस्थानं च यथा भ्रवः ॥ ६॥ सूर्यादीनां च संस्थानं प्रमाणं मुनिसत्तम । देवादीनां तथा वंशान्मनून्मन्वन्तराणि च।। ७।। कल्पान् कल्पविभागांश्र चातुर्युगविकल्पितान्।

श्रीसृतजी बोले-मैत्रेयजीने नित्यकर्मोंसे निवत्त द्वए मुनिवर पराशरजीको प्रणाम कर एवं उनके चरण छुकर पूछा-॥ १॥ "हे गुरुदेव! मैंने आपहीसे सम्पूर्ण वेद, वेदाङ्ग और सकल धर्मशास्त्रोंका क्रमशः अध्ययन किया है ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आपकी कृपासे मेरे विपक्षी भी मेरे लिये यह नहीं कह सकेंगे कि 'मैंने सम्पूर्ण शास्त्रोंके अम्यासमें परिश्रम नहीं किया' ॥ ३ ॥ हे धर्मज ! हे महाभाग ! अब मैं आपके मुखारविन्दसे यह सुनना चाहता हूँ कि यह जगत किस प्रकार उत्पन्न हुआ और आगे मी (दूसरे कल्पके आरम्भमें) कैसे होगा? ॥ ४ ॥ तथा हे ब्रह्मन् ! इस संसारका उपादान-कारण क्या है ? यह सम्पूर्ण चराचर किससे उत्पन्न हुआ है ? यह पहले किसमें लीन था और आगे किसमें लीन हो जायगा ? ॥ ५ ॥ इसके अतिरिक्त, [आकाश आदि] भूतोंका परिमाण, समुद्र, पर्वत तथा देवता आदिकी उत्पत्ति, पृथिवीका अधिष्ठान और सूर्य आदिका परिमाण तथा उनका आधार, देवता आदिके वंश. मनु, मन्वन्तर, [बार-बार आनेवाले] चारों युगोंमें विमक्त कल्पान्तस्य स्वरूपं च युग्धमां कृत्स्वतः ॥ ८॥ कल्प और कल्पोंके विभाग, प्रलयका स्वरूप, युगोंके देवर्षिपार्थिवानां च चरितं यन्महामुने । वेदशाखाप्रणयनं यथावद्वचासकर्तृकम् ॥ ९ ॥ धर्माश्च ब्राह्मणादीनां तथा चाश्रमवासिनाम् । श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वं त्वत्तो वासिष्ठनन्दन ॥१०॥ ब्रह्मन्त्रसादप्रवणं कुरुष्व मयि मानसम् । येनाहमेतज्ञानीयां त्वत्प्रसादान्महामुने ॥११॥

श्रीपराशर उवाच

साधु मैत्रेय धर्मज्ञ सारितोऽसि पुरातनम् । पितः पिता मे भगवान् वसिष्ठो यदुवाच ह ॥१२॥ विश्वामित्रप्रयुक्तेन रक्षसा भक्षितः पुरा । श्रुतस्तातस्ततः क्रोधो मैत्रेयाभून्ममातुलः ॥१३॥ ततोऽहं रक्ष्सां सत्रं विनाशाय समारमम्। मसीभृताश्र शतशस्त्रसिन्सत्रे निशाचराः ॥१४॥ ततः सङ्क्षीयमाणेषु तेषु रक्षस्त्वशेषतः। मासुवाच महाभागो वसिष्ठो मित्पतामहः ॥१५॥ अलमत्यन्तकोपेन तात मन्युमिमं जिहि। राक्षसा नापराध्यन्ति पितुस्ते विहितं हि तत् ।।१६।। मूढानामेव भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः। इन्यते तात कः केन यतः स्वकृत अक्पुमान्।।१७।। सञ्चितस्यापि महता वत्स क्रेशेन मानवैः। यशसस्तपसञ्जैव क्रोधो नाशकरः परः॥१८॥ प्रमर्पय: । स्वरापिवर्गञ्यासेधकारणं वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव।।१९।। निशाचरैर्दग्धैदीनैरनपकारिभिः। सत्रं ते विरमत्वेतत्क्षमासारा हि साधवः।।२०।। एवं तातेन तेनाहमनुनीतो महात्मना।

उपसंहतवान्सत्रं

पृथक्-पृथक् सम्पूर्ण धर्म, देवर्षि और राजर्षियोंके चित्रित्र, श्रीव्यासजीकृत वैदिक शाखाओंकी यथावत् रचना तथा ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंके धर्म—ये सब, हे महामुनि शक्तिनन्दन ! मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥६–१०॥ हे ब्रह्मन् ! आप मेरे प्रति अपना चित्त प्रसादोन्मुख कीजिये जिससे हे महामुने ! मैं आपकी कृपासे यह सब जान सकूँ" ॥ ११॥

श्रीपराशरजी बोले-"हे धर्मज्ञ मैत्रेय! मेरे पिताजी-के पिता श्रीवसिष्ठजीने जिसका वर्णन किया था, उस पूर्व प्रसङ्गका तुमने मुझे अच्छा स्मरण कराया-[इसके लिये तुम धन्यवादके पात्र हो] ॥ १२ ॥ हे मैत्रेय ! जब मैंने सुना कि पिताजीको विश्वामित्रकी प्रेरणासे राक्षसने खा लिया है, तो मुझको बडा भारी क्रोध हुआ ॥ १३ ॥ तव राक्षसोंका ध्वंस करनेके छिये मैंने यज्ञ करना आरम्भ किया। उस यज्ञमें सैकड़ों राक्षस जलकर भस्म हो गये ॥ १४॥ इस प्रकार उन राक्षसोंको सर्वथा नष्ट होते देख मेरे महाभाग पितामह वसिष्टजी मुझसे बोळे—॥ १५॥ "हे वत्स ! अत्यन्त क्रोघ करना ठीक नहीं, अब इसे शान्त करो। राक्षसोंका कुछ भी अपराध नहीं है, तुम्हारे पिताके, लिये तो ऐसा ही होना था ॥ १६ ॥ क्रोध तो मुर्खींको ही हुआ करता है, विचारवानोंको मला कैसे हो संकता है ? मैया ! मला कौन किसीको मारता है ? पुरुष स्वयं ही अपने कियेका फल भोगता है ॥ १७॥ हे प्रियवर ! यह क्रोध तो मनुष्यके अत्यन्त कष्टसे सिद्धांत यंश और तपका भी प्रबल नाशंक हैं।। १८।। है तात ! इस छोक और परछोक दोनोंको विगाडनेवाछे इस क्रोधका महर्षिगण सर्वदा त्याग करते. हैं, इसलिये त् इसके वशीभूत मत हो ॥ १९॥ अब इन बेचारे निरपराध राक्षसोंको दग्ध करनेसे कोई लाभ नहीं; अपने इस यज्ञको समाप्त करो । साधुओंका धन तो सदा क्षमा ही है" ॥ २०॥

हमनुनीतो महात्मना। महात्मा दादाजीके इस प्रकार समझानेपर उनकी वातोंके गौरवका विचार करके मैंने वह यज्ञ समाप्त स्थलाहाक्याहिकार वातोंके गौरवका विचार करके मैंने वह यज्ञ समाप्त स्थलाहाक्याहिकार विचार करके मैंने वह यज्ञ समाप्त

ततः प्रीतः स भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः । सम्प्राप्तश्च तदा तत्र पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः ॥२२॥ पितामहेन दत्तार्घ्यः कृतासनपरिग्रहः । माम्रवाच महाभागो मैत्रेय पुलहाग्रजः ॥२३॥ पुलस्य उवाच

वैरे महति यद्वाक्याद्गुरोरद्याश्रिता क्षमा । त्वया तस्मात्समस्तानि भवाञ्च्छास्त्राणि वेत्स्यति २४ सन्ततेर्न ममोच्छेदः क्रुद्धेनापि यतः कृतः । त्वया तस्मान्महाभाग ददाम्यन्यं महावरम् ॥२५॥ पुराणसंहिताकर्ता भवान्वत्स भविष्यति । देवतापारमार्थ्यं च यथावद्वेत्स्यते भवान् ॥२६॥ प्रवृत्ते च निवृत्ते च कर्मण्यस्तमला मतिः। यत्प्रसादादसन्दिग्धा तव वत्स भविष्यति ॥२७॥ ततश्र प्राह भगवान्वसिष्ठों में पितामहः। पुलस्त्येन यदुक्तं ते सर्वमेतद्भविष्यति ॥२८॥ इति पूर्वं वसिष्ठेन पुलस्त्येन च धीमता। यदुक्तं तत्स्मृतिं याति त्वत्प्रश्लाद्खिलं मम ॥२९॥ सोऽहं वदाम्यशेषं ते मैत्रेय परिष्टच्छते। पुराणसंहितां सम्यक् तां निवोध यथातथम् ॥३०॥ विष्णोः सकाशादुद्भ्तं जगत्तत्रैव च स्थितम्। स्थितिसंयमकर्ताऽसौ जगतोऽस्य जगच सः ॥३१॥

वहुत प्रसन्न हुए। उसी समय ब्रह्माजीके पुत्र पुरुस्त्यजी वहाँ आये॥ २२॥ हे मैत्रेय! पितामह [वसिष्ठजी] ने उन्हें अर्घ्य दिया, तब वे महर्षि पुरुहके ज्येष्ठ आता महाभाग पुरुस्त्यजी आसन प्रहण करके मुझसे वोले॥ २३॥

पुलस्त्यजी बोले-तुमने, चित्तमें वड़ा वैरमाव रहनेपर भी अपने वड़े-वृढ़े विसष्टजीके कहनेसे क्षमा स्वीकार की है, इसल्यि तुम सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता होगे ॥ २४ ॥ हे महाभाग ! अत्यन्त क्रोधित होनेपर भी तुमने मेरी सन्तानका सर्वथा मृलोच्छेद नहीं किया; अतः मैं तुम्हें एक और उत्तम वर देता हूँ ॥ २५ ॥ हे वत्स! तुम पुराणसंहिताके वक्ता होगे और देवताओंके यथार्थ स्वरूपको जानोगे ॥ २६ ॥ तथा मेरे प्रसादसे तुम्हारी निर्मल बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति (भोग और मोक्ष) के उत्पन्न करनेवाले कर्मों में निःसन्देह हो जायगी ॥ २७ ॥ [पुलस्त्यजीके इस तरह कहनेके अनन्तर] फिर मेरे पितामह भगवान् वसिष्टजी बोले "पुलस्त्यजीने जो कुल कहा है, वह सभी सत्य होगा"॥ २८ ॥

हे मैत्रेय! इस प्रकार पूर्वकालमें बुद्धिमान् विसष्टजी और पुल्रस्यजीने जो कुल कहा था, वह सब तुम्हारे प्रश्नसे मुझे स्मरण हो आया है ॥ २९॥ अतः हे मैत्रेय! तुम्हारे पूल्लेसे मैं उस सम्पूर्ण पुराण-संहिताको तुम्हें सुनाता हूँ; तुम उसे मली प्रकार घ्यान देकर सुनो॥ ३०॥ यह जगत् विष्णुसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और ल्यके कर्ता हैं तथा यह जगत् भी वे ही हैं ॥ ३१॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमें ऽशे प्रथमोऽध्यायः ॥ १॥



दूसरा अध्याय

चौबीस तत्त्वोंके विचारके साथ जगत्के उत्पत्ति-क्रमका वर्णन और विष्णुकी महिमा।

श्रीपराशर उवाच

अविकाराय ग्रुद्धाय नित्याय परमात्मने । सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे॥१॥ नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च। वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥ २ ॥ एकानेकखरूपाय स्थूलस्क्ष्मात्मने नमः। अन्यक्तन्यक्तरूपाय विष्णवे मुक्तिहेतवे॥३॥ सर्गिस्थितिविनाशानां जगतो यो जगन्मयः। मुलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥ ४॥ आघारभृतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् । प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥ ५ ॥ ज्ञानस्वरूपमत्यन्तनिर्मलं परमार्थतः । तमेवार्थस्वरूपेण आन्तिदर्शनतः स्थितम् ॥ ६ ॥ विष्णुं प्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितौ सर्गे तथा प्रश्रम्। जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥ ७॥ कथयामि यथापूर्व दक्षाद्येप्रीनिसत्तमैः। पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः ॥ ८॥ तैश्रोक्तं पुरुकुत्साय भूभुजे नर्मदातटे। सारखताय तेनापि महां सारस्वतेन च ॥ ९ ॥ परः पराणां परमः परमात्मात्मसंस्थितः । रूपवर्णादिनिर्देशविशेषणविवर्जितः 112011 अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्धिजन्मभिः । वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति क्रेवलम्।।११।। सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।

श्रीपराशरजी बोळे-जो ब्रह्मा, विष्णु और शंकर-रूपसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं तथा अपने भक्तोंको संसार-सागरसे तारनेवाले हैं, उन विकार-रहित, गुद्ध, अविनाशी, परमात्मा, सर्वदा एकरस, सर्वविजयी भगवान् वासुदेव विष्णुको नमस्कार है ॥ १-२ ॥ जो एक होकर भी नाना रूपवाछे हैं स्थूल-सूक्ष्ममय हैं, अन्यक्त (कारण) एवं न्यक्त (कार्य) रूप हैं तथा [अपने अनन्य भक्तोंकी] मुक्तिके कारण हैं, [उन श्रीविष्णुभगवान्को नमस्कार है] ॥३॥ जो विश्वरूप प्रमु विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके मूल-कारण हैं, उन परमात्मा विष्णुभगवान्को नमस्कार है ॥ ४ ॥ जो विख्वके अधिष्ठान हैं, अतिसूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, सर्व प्राणियोंमें स्थित पुरुषोत्तम और अविनाशी हैं, जो परमार्थतः (वास्तवमें) अति निर्मल ज्ञान-स्वरूप हैं, किन्तु अज्ञानवश नाना पदार्थेरूपसे प्रतीत होते हैं, तथा जो [काल-स्वरूपसे] जगत्की उत्पत्ति, और स्थितिमें समर्थ एवं उसका संहार करनेवाले हैं, उन जगदीश्वर, अजन्मा, अक्षय और अन्यय मगवान् विष्णुको प्रणाम करके तुम्हें वह सारा प्रसंग क्रमशः सुनाता हूँ जो दक्ष आदि मुनिश्रेष्ठोंके पूछनेपर पितामह भगवान् ब्रह्माजीने उनसे कहा या ॥ ५-८॥

तदब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयमन्ययम्। एकखरूपं तु सदा हेयाभावाच निर्मलम् ॥१३॥ तदेव सर्वमेवैतद्वचक्ताव्यक्तस्वरूपवत् । तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥१४॥ परस्य ब्रह्मणो रूपं पुरुषः प्रथमं द्विज । व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथा परम् ॥१५॥ प्रधानपुरुषव्यक्तकालानां परमं हि यत्। पश्यन्ति स्रयः शुद्धं तद्विष्णोः परमं पद्म् ॥१६॥ प्रविभागशः । प्रधानपुरुषच्यक्तकालास्तु रूपाणि स्थितिसर्गान्तव्यक्तिसद्भावहेतवः ॥१७॥ व्यक्तं विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च। क्रीडतो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय।।१८॥ अव्यक्तं कारणं यत्तत्प्रधानमृषिसत्तमैः। प्रोच्यते प्रकृतिः सक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम्॥१९॥ अक्षय्यं नान्यदाधारममेयमजरं भ्रुवम् । शब्दस्पर्शविहीनं तद्रूपादिभिरसंहितम्।।२०।। त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम् । तेनाग्रे सर्वमेवासीद्वचाप्तं वे प्रलयाद्नु ॥२१॥ वेदवादविदो विद्वनियता ब्रह्मवादिनः। पठन्ति चैतमेवार्थं प्रधानप्रतिपादकम् ॥२२॥ नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमि-र्नासीत्तमोज्योतिरभूच नान्यत्। श्रोत्रादिबुद्धचानुपरुभ्यमेकं

नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय, एकरस और हेय गुणोंके अभावके कारण निर्मेट परव्रह्म है ॥ १०—१३ ॥ वहीं इन सब व्यक्त (कार्य) और अव्यक्त (कारण) जगत्के रूपसे, तथा इसके साक्षी पुरुष और महा-कारण काटके रूपसे स्थित है ॥ १४ ॥ हे द्विज ! परव्रह्मका प्रथम रूप पुरुष है, अव्यक्त (प्रकृति) और व्यक्त (महदादि) उसके अन्य रूप हैं तथा [सबको क्षोमित करनेवाटा होनेसे] काट उसका परमरूप है ॥ १५ ॥

इस प्रकार जो प्रधान, पुरुष, न्यक्त और काल— इन चारोंसे परे है तथा जिसे पण्डितजन ही देख पाते हैं वहीं भगवान् विष्णुका परमपद है ॥ १६॥ प्रधान, पुरुष, न्यक्त और काल—ये [भगवान् विष्णुके] रूप पृथक्-पृथक् संसारकी उत्पत्ति, पालन और संहारके प्रकाश तथा उत्पादनमें कारण हैं॥ १७॥ भगवान् विष्णु जो न्यक्त, अन्यक्त, पुरुष और काल-रूपसे स्थित होते हैं, इसे उनकी वालवत् क्रीड़ा ही समझो॥ १८॥

उनमेंसे अन्यक्त कारणको, जो सदसद्रूप (कारण-शक्तिविशिष्ट) और नित्य (सदा एकरस) है, श्रेष्ट मुनिजन प्रधान तथा सूक्ष्म प्रकृति कहते हैं ॥ १९ ॥ वह क्षय-रहित है, उसका कोई अन्य आधार मी नहीं है तया अप्रमेय, अजर, निश्चल शब्द-स्पर्शादिश्-्य और रूपादिरहित है ॥ २०॥ वह त्रिगुणमय जगत्का कारण है तथा खयं अनादि एवं उत्पत्ति और लयसे रहित है। यह सम्पूर्ण प्रपञ्च प्रलयकालसे लेकर सृष्टिके आदितक उसीसे न्याप्त था॥ २१ ॥ हे विद्वन्! श्रुतिके मर्मको जाननेवाछे, श्रुतिपरायण ब्रह्मवेत्ता महात्मागण इसी अर्थको छस्य करके प्रधानके प्रति-पादक इस (निम्निलिखित) श्लोकको कहा करते हैं-॥ २२ ॥ 'उस समय (प्रलयकालमें) न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पृषिवी थी, न अन्धकार था, न प्रकाश था और न इनके अतिरिक्त कुछ और ही था। बस, श्रोत्रादि इन्द्रियों और बुद्धि आदिका अविषय एक प्रधान ब्रह्म और पुरुप ही था'।। २३॥ प्राधानिकं त्रक्ष पुमांस्तदासीत् ॥२३॥ । अविषय एक प्रधान त्रहा आर CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

विष्णोः स्वरूपात्परतो हि ते द्वे रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र। तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते रूपान्तरं तद्द्विज कालसंज्ञम् ॥२४॥ प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलये तु यत्। तस्मात्प्राकृतसंज्ञोऽयग्रुच्यते प्रतिसञ्चरः ॥२५॥ अनादिर्भगवान्कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते। अञ्युञ्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्तसंयमाः।।२६।। गुणसाम्ये ततस्तसिन्पृथक्पुंसि व्यवस्थिते। कालखरूपं तद्विष्णोमैंत्रेय पुरिवर्त्तते ॥२७॥ ततस्तु तत्परं ब्रह्म परमात्मा जगन्मयः । सर्वगः सर्वभृतेशः सर्वात्मा परमेश्वरः ॥२८॥ प्रधानपुरुषौ चापि प्रविक्यात्मेच्छया हरिः। क्षोमयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ ॥२९॥ यथा सनिधिमात्रेण गन्धः क्षोभाय जायते । मनसो नोपकर्तत्वात्तथाऽसौ परमेश्वरः ॥३०॥ स एव क्षोमको ब्रह्मन् क्षोम्यश्च पुरुषोत्तमः। स सङ्कोचविकासाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः।३१। विकासाणुखरूपैश्र ब्रह्मरूपादिभिस्तथा। व्यक्तखरूपश्च तथा विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ॥३२॥ गुणसाम्यात्ततस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्स्रने । गुणव्यञ्जनसम्भृतिः सर्गकाले द्विजोत्तम ॥३३॥ प्रधानतत्त्वसुद्भूतं महान्तं तत्समावृणोत्। सान्त्रिको राजसश्रेव तामसश्र त्रिया महान् ॥३४॥

हे विप्र ! विष्णुके परम (उपाधिरहित) स्वरूपसे प्रधान और पुरुष—ये दो रूप हुए; उसी (विष्णु) के जिस अन्यरूपके द्वारा वे दोनों [सृष्टि और प्रख्यकाल-में] संयुक्त और वियुक्त होते हैं, उस रूपान्तरका ही नाम 'काल' है ॥ २४ ॥ बीते हुए प्रख्यकालमें यह व्यक्त प्रपन्न प्रकृतिमें लीन था, इसल्ये प्रपन्नके इस प्रख्यको प्राकृत प्रख्य कहते हैं ॥ २५ ॥ हे द्विज ! कालरूप भगवान अनादि हैं, इनका अन्त नहीं है इसिल्ये संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रख्य भी कभी नहीं रुकते [वे प्रवाहरूपसे निरन्तर होते रहते हैं] ॥ २६ ॥

हे मैत्रेय! प्रलयकालमें प्रधान (प्रकृति) के साम्यावस्थामें स्थित हो जानेपर और पुरुषके प्रकृतिसे पृथक स्थित हो जानेपर विष्णुभगवान्का काल्रूप [इन दोनोंको धारण करनेके छिये] प्रवृत्त होता है ॥ २७ ॥ तदनन्तर [सर्गकाल उपस्थित होनेपर] उन परब्रह्म परमात्मा विश्वरूप सर्वेन्यापी सर्वभूतेस्वर सर्वात्मा परमेश्वरने अपनी इच्छासे विकारी प्रधान और अविकारी पुरुषमें प्रविष्ट होकर उनको क्षोमित किया ॥ २८-२९ ॥ जिस प्रकार क्रियाशील न होने-पर भी गन्ध अपनी सिन्निधिमात्रसे ही मनको क्षिमित कर देता है उसी प्रकार परमेश्वर अपनी सन्निधिमात्रसे ही प्रधान और पुरुषको प्रेरित करते हैं ॥ ३०॥ हे ब्रह्मन् ! वह पुरुषोत्तम ही इनको क्षोमित करनेवाले हैं और वे ही क्षुब्ध होते हैं तथा संकोच (साम्य) और विकास (क्षोभ) युक्त प्रधानरूपसे भी वे ही स्थित हैं ॥ ३१ ॥ ब्रह्मादि समस्त ईश्वरोंके ईस्वर वे विष्ण ही समष्टि-व्यष्टिरूप, ब्रह्मादि जीवरूप तथा महत्तत्त्वरूपसे स्थित हैं ॥ ३२॥

भूतादिश्रेव तामसः।।३५॥ वैकारिकस्तैजसश्च त्रिविधोऽयमहङ्<u>का</u>रो महत्तत्त्वादजायत । भतेन्द्रियाणां हेत्स्स त्रिगुणत्वान्महामुने । यथा प्रधानेन महान्महता स तथावृतः ॥३६॥ भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः । ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ॥३७॥ शब्दमात्रं तथाकाशं भृतादिः स समावृणोत् । आकाशस्त विकर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ॥३८॥ वलवानभवद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः। आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समाष्ट्रणोत् ॥३९॥ ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह। ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणग्रुच्यते ॥४०॥ स्पर्शमात्रं तु वै वायु रूपमात्रं समावृणोत् । ज्योतिश्वापि विक्रवीणं रसमात्रं ससर्ज ह ॥४१॥ सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि च। रसमात्राणि चाम्भांसि रूपमात्रं समावृणोत्।।४२।। विक्ववाणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससार्जिरे। सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः॥४३॥ ्रतिसिस्तिस्मिस्त तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्पृता।४४। तन्मात्राण्यविशेषाणि अविशेषास्ततो हि ते ॥४५॥ न शान्ता नापि घोरास्ते न मृढाश्राविशेषिणः । भृततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्काराचु तामसात् ॥४६॥ तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ।

महत्तत्त्व प्रधान-तत्त्वसे सव ओर व्याप्त है। फिर त्रिविध महत्तत्त्वसे ही वैकारिक (सात्त्विक) तैजस (राजस) और तामस भूतादि तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ । हे महामुने ! वह त्रिगुणात्मक होनेसे मृत और इन्द्रिय आदिका कारण है और प्रधानसे जैसे महत्तत्त्व ज्यास है, वैसे ही महत्तत्त्वसे वह (अहंकार) व्याप्त है ॥ ३४-३६॥ भूतादि नामक तामस अहंकारने विकृत होकर शब्द-तन्मात्रा और उससे शब्द गुणवाले आकाशकी रचना की ॥३७॥ उस भतादि तामस अहंकारने शुब्द-तन्मात्रारूप आकाशको व्याप्त किया । फिर [शब्द-तन्मात्रारूप] आकाशने विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्राको रचा ॥३८॥ उस (स्पर्श-तन्मात्रा) से बल्वान् वायु हुआ उसका गुण स्पर्श माना गया है । शब्द-तन्मात्रारूप आकाशने स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुको आवृत किया है ॥ ३९ ॥ फिर [स्पर्श-तन्मात्रारूप] वायुने विकृत होकर रूप-तन्मात्राकी सृष्टि की । (रूपतन्मात्रायुक्त) वायुसे तेज उत्पन्न हुआ है, उसका गुण रूप कहा जाता है ॥ ४० ॥ स्पर्श-तन्मात्रारूप वायुने रूप-तन्मात्रावाले तेजको आवृत किया । फिर [रूप-तन्मात्रामय] तेजने मी विकृत होकर रस-तन्मात्राकी रचना की ॥ ४१ ॥ उस (रस-तन्मात्रा) से रस-गुणवाळा जळ हुआ। रस-तन्मात्रावाले जलको रूप-तन्मात्रामय तेजने आवृत किया ॥ ४२ ॥ [रस-तन्मात्रारूप] जल्ने विकारको प्राप्त होकर गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि की, उससे पृथिवी उत्पन्न हुई है जिसका गुण गन्ध माना जाता है ॥ ४३ ॥ उन-उन आकाशादि मूर्तोमें तन्मात्रा है [अर्थात् केवल उनके गुण राब्दादि ही हैं] इसिछिये वे तन्मात्रा (गुणरूप) ही कहे गये हैं ॥ ४४॥ तन्मात्राओंमें विशेष माव नहीं है इसल्यि उनकी अविरोष संज्ञा है ॥ ४५ ॥ वे अविरोष तन्मात्राएँ शान्त, घोर अथवा मृद नहीं हैं [अर्थात् उनका सुख-दुःख या मोहरूपसे अनुभव नहीं हो सकता] इस प्रकार तामस अहंकारसे यह भूत-तन्मात्रा-रूप सर्ग हुआ है ॥ ४६॥

तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश । दश इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकारसे और उनके अधिष्ठाता देवंता वैकारिक अर्थात् साखिक अहंकार-एकादशं मनश्रात्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ॥४७॥ से उत्पन्न हुएकहे जाते हैं। इस प्रकार इन्द्रियों के अधिष्ठाता त्वक् चक्षुनीसिका जिह्वा श्रोत्रमत्र च पश्चमम् ।

शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वै द्विज ॥४८॥

पायुपस्थो करौ पादौ वाक् च मैत्रेय पश्चमी ।

विसर्गशिल्पगत्युक्ति कर्म तेषां च कथ्यते ॥४९॥

आकाशवायुतेजांसि सिललं पृथिवी तथा।

शब्दादिमिर्गुणैर्विद्यन्संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः ॥५०॥

शान्ता घोराश्च मृदाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः॥५१॥

नानावीर्याः पृथग्भृतास्ततस्ते संहतिं विना । नाशक्तुवन्त्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्रशः ॥५२॥ समेत्यान्योन्यसंयोगं परस्परसमाश्रयाः । एकसङ्घातलक्ष्याश्च सम्प्राप्येक्यमशेषतः ॥५३॥ पुरुषाधिष्ठितत्वाच प्रधानानुप्रहेण च। महदाद्या विशेषान्ता झण्डमुत्पादयन्ति ते ॥५४॥ तत्क्रमेण विद्यद्धं सजलबुद्बुद्वत्समम्। भूतेम्योऽण्डं महाबुद्धे महत्तदुद्केशयम्। प्राकृतं त्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥५५॥ तत्राव्यक्तसह्योऽसौ व्यक्तरूपो जगत्यतिः। विष्णुर्बह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थितः ॥५६॥ मेरूल्वमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः। गर्मोदकं समुद्राश्च तस्यासन्सुमहात्मनः ॥५७॥ साद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः। तसिन्नण्डेऽभवद्विप्र सदेवासुरमानुषः ॥५८॥ वारिवह्वयनिलाकाशैसतो भूतादिना वहिः।

दश देवता और ग्यारहवाँ मन वैकारिक (साचिक) हैं ॥ ४७ ॥ हे द्विज ! त्वक्, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र—ये पाँचों बुद्धिकी सहायतासे शब्दादि विषयोंको प्रहण करनेवाली पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं ॥ ४८ ॥ हे मैत्रेय ! पायु (गुदा), उपस्थ (लिङ्ग), हस्त, पाद और वाक् ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं । इनके कर्म [मल्ल-मृत्रका] त्याग, शिल्प, गित और वचन वतलाये जाते हैं ॥ ४९ ॥ आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये पाँचों सूत उत्तरोत्तर (क्रमशः) शब्द-स्पर्श आदि पाँच गुणोंसे युक्त हैं ॥ ५० ॥ ये पाँचों सूत शान्त घोर और मृद हैं [अर्थात् सुख, दुःख और मोहयुक्त हैं] अतः ये विशेष कहलाते हैं ॥ ५१ ॥

इन भूतोंमें पृथक्-पृथक् नाना शक्तियाँ हैं। अतः वे परस्पर पूर्णतया मिले विना संसारकी रचना नहीं कर सके ॥ ५२ ॥ इसिछिये एक दूसरेके आश्रय रहनेवाछे और एक ही संघातकी उत्पत्तिके छक्ष्यवाछे महत्तत्त्वसे छेकर विशेषपर्यन्त प्रकृतिके इन सभी विकारोंने पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण परस्पर मिलकर सर्वथा एक होकर प्रधान-तत्त्वके अनुप्रहसे अण्डकी उत्पत्ति की॥ ५३-५४॥ हे महाबुद्धे ! जलके बुळबुळेके समान क्रमशः भूतोंसे बढ़ा हुआ वह गोळाकार और जळपर स्थित महान् अण्ड ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) रूप विष्णुका अति उत्तम प्राकृत आधार हुआ || ५५ || उसमें वे अव्यक्त-खरूप जगत्पति विष्णु व्यक्त हिरण्यगर्भरूपसे खयं ही विराजमान हुए ॥५६॥ उन महात्मा हिरण्यगर्भका सुमेरु उल्ब (गर्भको ढँकने-वाली झिल्ली), अन्य पर्वत जरायु (गर्मीशय) तथा समुद्र गर्माशयस्थ रस था ॥ ५७ ॥ हे विप्र ! उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीपादिके सहित समुद्र, प्रह-गणके सहित सम्पूर्ण छोक तथा देव, असुर और मनुष्य आदि विविध प्राणिवर्ग प्रकट हुए ॥ ५८॥ वह अण्ड पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा दश-दश-गुण अधिक जल, अग्नि, वायु, आकाश और भूतादि अर्थात् तामस-

क्ष परस्पर मिळनेसे सभी भूत शान्त, घोर और मृद्धाप्तित होते। हैं प्रमुक्त हो प्रथिवी और जल शान्त हैं, तेन और वायु घोर हैं तथी आकाश मृद्ध है।

वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा ॥५९॥ अव्यक्तेनावृतो ब्रह्मंसैः सर्वैः सहितो महान । प्राकतेर्वतम् । एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः वाह्यदलैरिव ॥६०॥ नारिकेलफलस्यान्तर्वीजं जुषन् रजो गुणं तत्र खयं विश्वेश्वरो हरिः। ब्रह्मा भृत्वास्य जगतो विसृष्टी सम्प्रवर्त्तते ॥६१॥ सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना । सत्त्वभृद्धगवान्विष्णुरप्रमेयपराक्रमः गहरा। तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः। मैत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिदारुणः ॥६३॥ मक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते । नागपर्यङ्कशयने शेते च परमेश्वरः ॥६४॥ प्रबुद्ध्य पुनः सृष्टिं करोति ब्रह्मरूपपृक् ॥६५॥ सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्। स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥६६॥ स्रष्टा सुजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च । उपसंहियते चान्ते संहर्ता च ख्यं प्रभुः ॥६७॥ पृथिच्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च । सर्वेन्द्रियान्तःकरणं पुरुषाख्यं हि यज्जगत् ॥६८॥ स एव सर्वभूतात्मा विश्वरूपो यतोऽन्ययः । सर्गादिकं तु तस्यैव भूतस्यमुपकारकम् ॥६९॥ स एव सृज्यः स च सर्गकर्ता स एव पात्यत्ति च पाल्यते च । ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेषमूर्ति-

अहंकारसे आवृत है तथा भूतादि महत्तत्त्वसे घिरा हुआ है ॥ ५९ ॥ और इन सबके सहित वह महत्तत्त्व भी अन्यक्त प्रधानसे आवृत है। इस प्रकार जैसे नारियळ-के फलका भीतरी बीज बाहरसे कितने ही छिलकोंसे ढँका रहता है वैसे ही यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणोंसे घिरा हुआ है ॥ ६० ॥

उसमें स्थित हुए खयम् विश्वेश्वर् भगवान् विष्णु ब्रह्मा होकर रजोगुणका आश्रय छेकर इस संसारकी रचना-में प्रवृत्त होते हैं ॥ ६१ ॥ तथा रचना हो जानेपर सत्त्वगुण-विशिष्ट अतुल पराक्रमी भगवान् विष्णु उसका कल्पान्तपर्यन्त युग-युगमें पालन करते हैं ॥ ६२ ॥ हे मैत्रेय ! फिर कल्पका अन्त होनेपर अति दारुण तमः-प्रधान रुद्र-रूप धारण कर वे जनार्दन विष्णु ही समस्त भूतोंका भक्षण कर छेते हैं ॥ ६३ ॥ इस प्रकार समस्त भूतोंका भक्षण कर संसारको जलमय करके वे परमेश्वर शेष-शय्यापर शयन करते हैं ॥ ६४ ॥ जगनेपर ब्रह्मा-रूप होकर वे फिर जगत्की रचना करते हैं ॥ ६५॥ वह एक ही भगवान् जनार्दन जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन संज्ञाओंको धारण करते हैं ॥ ६६ ॥ वे प्रमु विष्णु स्रष्टा (ब्रह्मा) होकर अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक विष्णु होकर पाल्यरूप अपना ही पाछन करते हैं और अन्तमें खयं ही संहारक (शिव) तया खयं ही उपसंहत (छीन) होते हैं ॥६७॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा समस्त इन्द्रियाँ और अन्तः करण आदि जितना जगत् है सत्र पुरुष-रूप है, और क्योंिक वह अन्यय विष्णु ही विश्वरूप और सत्र भूतोंके अन्तरात्मा हैं, इसलिये ब्रह्मादि प्रागियों में श्वित सर्गादिक भी उन्हीं-के उपकारक हैं। [अर्थात् जिस प्रकार ऋत्विजोंद्वारा किया हुआ हवन यजमानका उपकारक होता है, उसी तरह परमात्माके रचे हुए समल प्राणियोंद्वारा होने-वाली सृष्टि भी उन्होंकी उपकारक है] ॥ ६८-६९॥ वे सर्वखरूप, श्रेष्ठ, वरदायक और वरेण्य (प्रार्थना-के योग्य) भगवान् विष्णु ही ब्रह्मा आदि अवस्थाओं-द्वारा रचनेवाले हैं, वे ही रचे जाते हैं, वे ही पालते हैं, वे ही पालित होते हैं तथा वे ही संहार विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ॥७०॥ करते हैं [और खर्य हो संहत होते हैं]॥७०॥

तीसरा अध्याय

ब्रह्मादिकी आयु और कालका स्वरूप।

श्रीमैत्रेय उवाच

निर्गुणस्याप्रमेयस ग्रुद्धसाप्यमलात्मनः । क्यं सर्गादिकर्तृत्वं ब्रह्मणोऽम्युपगम्यते ॥ १ ॥

श्रीपराशर उवाच

शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः । यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्त सर्गाद्या भावशक्तयः। भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता ॥२॥ तिन्नवोध यथा सर्गे भगवान्सम्प्रवर्त्तते। नारायणाख्यो भगवान्त्रह्या लोकपितामहः॥ ३॥ उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वन्नित्यमेवोपचारतः ॥ ४॥ निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम्। तत्पराख्यं तद्रक्षं च परार्द्धमभिधीयते ॥ ५ ॥ कालखरूपं विष्णोश्च यन्मयोक्तं तवानघ । तेन तस्य निवोध त्वं परिमाणोपपादनम् ॥ ६ ॥ अन्येषां चैव जन्तूनां चराणामचराश्च ये। भूभृभृत्सागरादीनामशेषाणां च सत्तम ॥ ७॥ 🗶 काष्टा पश्चद्शाख्याता निमेषा ग्रुनिसंत्तम । काष्ट्रात्रिंशत्कला त्रिंशत्कला मौहूर्त्तिको विधिः।।८।। तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्त्तेर्मानुपं स्मृतम् । अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षंद्वयात्मकः ॥ ९ ॥ तैः पड्भिरयनं वर्षे द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे । अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानाम्रुत्तरं दिनम् ॥१०॥ दिव्यैर्वर्षसहस्रेस्त कृतत्रेतादिसंज्ञितम्। चतुर्युगं द्वादशिभत्तद्विभागं निवोध मे ॥११॥ चत्वारि त्रीणि दें चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्। दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्याहुः पुराविदः।।१२।। ना १२।। प्रत्येक युगेके पूर्व उत्तने ही सौ वर्षकी सन्ध्या

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे भगवन् ! जो ब्रह्म निर्गुण, अप्रमेय, शुद्ध और निर्मलात्मा है उसका सर्गादिका कर्ता होना कैसे सिद्ध हो सकता है ।। १॥

श्रीपराशरजी बोले-हे तपिखयोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय! समस्त भाव पदार्थींकी शक्तियाँ अचिन्त्य-ज्ञानकी विषय होती हैं; [उनमें कोई युक्ति काम नहीं देती] अतः अग्रिको शक्ति उष्णताके समान ब्रह्मकी भी सर्गादि-रचनारूप शक्तियाँ खाभाविक हैं॥ २॥ अब जिस प्रकार नारायण नामक लोक-पितामह भगवान ब्रह्मा-जी सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त होते हैं सो सुनो। हे विद्रन् ! वे सदा उपचारसे ही 'उत्पन्न हुए' कहळाते हैं॥ ३-४ || उनके अपने परिमाणसे उनकी आयु सौ वर्षकी कही जाती है। उस (सौ वर्ष) का नाम पर है, उसका आधा परार्द्ध कहलाता है ॥ ५॥

हे अनघ ! मैंने जो तुमसे विष्णुभगवान्का कालसरूप कहा था उसीके द्वारा उस ब्रह्माकी तथा और भी जो पृथिवी, पर्वत, समुद्र आदि चराचर जीव हैं उनकी आयुका परिमाण किया जाता है ॥ ६-७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! पन्द्रह निमेषको काष्टा कहते हैं, तीस काष्टाकी एक कछा तथा तीस कछाका एक मुहूर्त होता है ॥ ८॥ तीस मुहूर्तका मनुष्यका एक दिन-रात कहा जाता है और उतने ही दिन-रातका दो पक्षयुक्त एक मास होता है ॥ ९ ॥ छः महीनोंका एक अयन और दक्षिणायन तथा उत्तरायण दो अयन मिलकर एक वर्ष होता है। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण दिन ॥ १०॥ देवताओं के बारह हजार वर्षींके सतयुग, त्रेता, द्वापर और किंग्रुग नामक चार युग होते हैं । उनका अलग-अलग परिमाण मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ११ ॥ पुरातत्त्वके जाननेवाले सतयुग आदिका परिमाण क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिन्य वर्ष बतलाते हैं तत्त्रमाणैः शतैः सन्ध्या पूर्वा तत्राभिधीयते । सन्ध्यांशश्चैव तत्तुल्यो युगस्थानन्तरो हि सः॥१३॥ सन्ध्यासन्ध्यांशयोरन्तर्यः कालो ग्रुनिसत्तम । युगाख्यः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञितः ॥१४॥

कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेव चतुर्युगम्। प्रोच्यते तत्सहस्रं च ब्रह्मणो दिवसं मने । १५॥ त्रक्षणो दिवसे ब्रह्मन्मनवस्त चतर्दश। भवन्ति परिमाणं च तेषां कालकृतं शृणु ॥१६॥ सप्तर्पयः सुराः शको मनुस्तत्सनवो नृपाः । एककाले हि सुज्यन्ते संहियन्ते च पूर्ववत ।।१७॥ चतुर्युगाणां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः । मन्वन्तरं मनोः कालः सुरादीनां च सत्तम ॥१८॥ अष्टो शत सहस्राणि दिन्यया संख्यया स्मृतम् । द्विपश्चाशत्त्रथान्यानि सहस्राण्यधिकानि त ।।१९।। त्रिंशत्कोटचस्त सम्पूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विज। सप्तपष्टिस्तथान्यानि नियुतानि महामुने ॥२०॥ विंशतिस्त सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना । नामे मन्वन्तरस्य सङ्ख्येयं माजुषैर्वत्सरैद्विज ॥२१॥ चतुर्वश्राणो होष कालो ब्राह्ममहः स्मृतम् । ब्राह्मा नैमित्तिको नाम तस्यान्ते प्रतिसश्चरः॥२२॥ तदा हि दह्यते सर्व त्रैलोक्यं भूर्श्ववादिकम्। जनं प्रयान्ति तापाती महलोंकनिवासिनः ॥२३॥ एकार्णवे तु त्रैलोक्ये ब्रह्मा नारायणात्मकः । भोगिशय्यां गतः शेते त्रैलोक्यग्रासबृहितः ॥२४॥ जनस्थैयोंगिभिर्देवश्चिन्त्यमानोऽब्जसम्भवः।

वतायी जाती है और युगके पीछे उतने ही परिमाण-वाले सन्ध्यांश होते हैं [अर्थात् सतयुग आदिके पूर्व क्रमशः चार, तीन, दो और एक सौ दिन्य वर्षकी सन्ध्याएँ और इतने ही वर्षके सन्ध्यांश होते हैं]॥ १३॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इन सन्ध्या और सन्ध्यांशों-के वीचका जितना काल होता है, उसे ही सतयुग आदि नामवाले युग जानना चाहिये॥ १४॥

हे मुने ! सतयुग, त्रेता, द्वापर और किल ये मिल-कर चतुर्युग कहलाते हैं; ऐसे हजार चतुर्युगका ब्रह्मा-का एक दिन होता है ॥ १५॥ हे ब्रह्मन ! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। उनका कालकृत परिमाण सनो ॥ १६ ॥ सप्तर्षि, देवगण, इन्द्र, मन् और मनुके पुत्र राजालोग [पूर्व-कल्पानुसार] एक ही कालमें रचे जाते हैं और एक ही कालमें उनका संहार किया जाता है ॥ १७ ॥ हे सत्तम ! इकहत्तर चतुर्यगसे कुछ अधिक * कालका एक मन्वन्तर होता है। यही मन और देवता आदिका काल है ॥१८॥ इस प्रकार दिव्य वर्ष-गणनासे एक मन्वन्तरमें आठ लाख वावन हजार वर्ष वताये जाते हैं ॥ १९ ॥ तथा हे महामुने ! मानवी वर्ष-गणनाके अनुसार मन्वन्तर-का परिमाण परे तीस करोड़ सरसठ लाख वीस हजार वर्ष है, इससे अधिक नहीं ॥२०-२१॥ इस कालका चौदह गुना ब्रह्माका दिन होता है, उसके अनन्तर नैमित्तिक नामवाला त्राह्म-प्रलय होता है ॥ २२ ॥

उस समय भूळोंक, मुवळोंक और खळोंक तीनों जलने लगते हैं और महलोंकमें रहनेवाले सिद्धगण अति सन्तम होकर जनलोकको चले जाते हैं ॥ २३ ॥ इस प्रकार त्रिलोक्षीके जलमय हो जानेपर जनलोकवासी योगियोंद्वारा ध्यान किये जाते हुए नारायणरूप कमल्योनि ब्रह्माजी त्रिलोक्षीके प्राससे तृप्त होकर दिनके वरावर ही परिमाणवाली उस रात्रिमें शेषशप्या-

क्ष इकहत्तर चतुर्युगके हिसाबसे चौदह मन्वन्तरों है १ ४ चतुर्युग होते हैं। और ब्रह्माके एक दिनमें एक हजार चतुर्युग होते हैं, ब्रतः छः चतुर्युग और बचे । छः चतुर्युगका चौदहवाँ भाग कुछ कम पाँच हजार एक सौ तीन दिन्य वर्ष होता है, इस प्रकार एक मन्वन्तरमें इकहत्तरचतुर्युगके अतिरिक्त हतने दिन्य वर्ष और अधिक होते हैं। तीन दिन्य वर्ष होता है, इस प्रकार एक प्रवाद Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

तत्प्रमाणां हि तां रात्रिं तदन्ते सृजते पुनः ॥२५॥
एवं तु ब्रह्मणो वर्षमेवं वर्षशतं च यत् ।
शतं हि तस्य वर्षाणां परमायुर्महात्मनः ॥२६॥
एकमस्य व्यतीतं तु परार्द्धं ब्रह्मणोऽनघ ।
तस्यान्तेभून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिविश्वतः ॥२७॥
दितीयस्य परार्द्धस्य वर्तमानस्य वै द्विज ।
वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकीर्तितः ॥२८॥

पर शयन करते हैं और उसके बीत जानेपर पुनः संसारकी सृष्टि करते हैं ॥ २४-२५ ॥ इसी प्रकार (पक्ष, मास आदि) गणनासे ब्रह्माका एक वर्ष और फिर सौ वर्ष होते हैं । ब्रह्माके सौ वर्ष ही उस महात्मा (ब्रह्मा) की परमायु हैं ॥ २६ ॥ हे अनघ ! उन ब्रह्माजीका एक परार्द्ध बीत चुका है । उसके अन्तमें पाद्म नामसे विख्यात महाकल्प हुआ था ॥ २० ॥ हे द्विज ! इस समय वर्तमान उनके दूसरे परार्द्धका यह वाराह नामक पहला कल्प कहा गया है ॥ २८ ॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमें ऽशे तृतीय्रोऽध्यायः ॥ ३ ॥

-·>水®水(··-

चौथा अध्याय

ब्रह्माजीको उत्पत्ति वराह भगवान्द्रारा पृथिवीका उद्घार और ब्रह्माजीको लोक-रचना।

श्रीमैत्रेय उवाच ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ कल्पादौ भगवान्यथा । ससर्ज सर्वभूतानि तदाचक्ष्व महामुने ॥ १॥ श्रीपराशर उवाच

प्रजाः संसर्ज भगवान्त्रक्का नारायणात्मकः ।
प्रजापतिपतिर्देवो यथा तन्मे निशामय ॥ २ ॥
अतीतकल्पावसाने निशासुप्तोत्थितः प्रभुः ।
सस्त्रोद्रिक्तस्तथा ब्रह्मा शून्यं छोकमवैश्वत ॥ ३ ॥
वारायणः परोऽचिन्त्यः परेषामिष स प्रभुः ।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्वसम्भवः ॥ ४ ॥
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥ ५ ॥
अपनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६ ॥
अपनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६ ॥
अपनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६ ॥
अपनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६ ॥
अपनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६ ॥
अपनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६ ॥
अपनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६ ॥
अपनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६ ॥
अपनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे महामुने ! कल्पके आदि-में नारायणाख्य भगवान् ब्रह्माजीने जिस प्रकार समस्त भूतोंकी रचना की वह आप वर्णन कीजिये ॥ १॥

श्रीपराशरजी बोळे—प्रजापितयों के खामी नारायणखरूप भगवान् ब्रह्माजीने जिस प्रकार प्रजाकी सृष्टि
की थी वह मुझसे सुनो ॥ २ ॥ पिछले कल्पका अन्त
होनेपर रात्रिमें सोकर उठनेपर सद्वगुणके उद्रेकसे
युक्त भगवान् ब्रह्माजीने सम्पूर्ण लोकोंको शून्यमय देखा
॥ ३ ॥ वे भगवान् नारायण पर हैं, अचिन्त्य हैं,
ब्रह्मा, शिव आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, ब्रह्मखरूप
हैं, अनादि हैं और सबकी उत्पत्तिके स्थान हैं ॥ ४ ॥
[मनु आदि स्मृतिकार] उन ब्रह्मखरूप श्रीनारायणदेवके विषयमें जो इस जगव्की उत्पत्ति और लयके
स्थान हैं, यह श्लोक कहते हैं ॥ ५ ॥ नर [अर्थात्
पुरुष—भगवान् पुरुषोत्तम] से उत्पन्न होनेके कारण
जलको 'नार' कहते हैं; वह नार (जल) ही उनका
प्रथम अयन (निवास-स्थान) है । इसल्पिये भगवान्को

तोयान्तः स्थां महीं ज्ञात्वा जगत्येकार्णवीकृते । अनुमानात्तदुद्वारं कर्तकामः प्रजापतिः॥ ७॥ अकरोत्स्वतनुमन्यां कल्पादिषु यथा पुरा । मत्स्यकूर्मादिकां तद्वद्वाराहं वपुरास्थितः ॥ ८॥ वेदयज्ञमयं रूपमशेपजगतः स्थितौ। स्थितः स्थिरात्मा सर्वोत्मा परमात्मा प्रजापतिः॥९॥ जनलोकगतैस्सिद्धैस्सनकाद्यैरभिष्टुतः प्रविवेश तदा तोयमात्माधारो धराधरः ॥१०॥ निरीक्ष्य तं तदा देवी पातालतलमागतम् । तुष्टाव प्रणता भूत्वा भक्तिनम्रा वसुन्धरा ॥११॥

पृथिन्युवाच

शङ्खचक्रगदाधर। पुण्डरीकाक्ष नमस्ते माम्रुद्धरास्माद्य त्वं त्वत्तोऽहं पूर्वम्रुत्थिता ॥१२॥ त्वयाहमुद्धता पूर्वं त्वन्मयाहं जनार्दन। तथान्यानि च भूतानि गगनादीन्यशेषतः ॥१३॥ नमस्ते परमात्मात्मन्प्ररुपात्मन्नमोस्तु ते। प्रधानव्यक्तभूताय कालभूताय ते नमः ॥१४॥ त्वं कर्ता सर्वभूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत । सर्गादिषु प्रभो ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मरूपधृक् ॥१५॥ सम्भक्षयित्वा सकलं जगत्येकार्णवीकृते। शेषे त्वमेव गोविन्द चिन्त्यमानो मनीषिभिः॥१६॥ भवतो यत्परं तत्त्वं तन्न जानाति कश्चन । अवतारेषु यद्रुपं तद्रचिन्ति दिवौकसः ॥१७॥ त्वामाराध्य परं ब्रह्म याता मुक्ति मुमुक्षवः । वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं समवाप्स्यति ॥१८॥ भला वासुदेवकी आराधना

सम्पर्ण जगत जलमय हो रहा था। इसलिये प्रजापति ब्रह्माजीने अनुमानसे पृथिवीको जलके भीतर जान उसे बाहर निकालनेकी इच्छासे एक दसरा शरीर धारण किया । उन्होंने पूर्व-कल्पोंके आदिमें जैसे मत्स्य, कूर्म आदि रूप धारण किये थे वैसे ही इस वाराह कल्पके आरम्भमें वेदयज्ञमय वाराह शरीर प्रहण किया और सम्पूर्ण जगतुकी स्थितिमें तत्पर हो सबके अन्तरात्मा और अविचल रूप वे परमात्मा प्रजापति ब्रह्माजी, जो पृथिवीको धारण करनेवाले और अपने ही आश्रयसे स्थित हैं, जन-छोकस्थित सनकादि सिद्धेश्वरों-से स्तृति किये जाते हुए जलमें प्रविष्ट हुए ॥७-१०॥ तव उन्हें पाताल-लोकमें आये देख देवी वसुन्धरा अति भक्तिविनम्र हो उनकी स्तुति करने लगी ॥ ११ ॥

पृथिची बोली-हे शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले कमलनयन भगवन् ! आपको नमस्कार है । आज आप इस पातालतलसे मेरा उद्घार कीजिये। पूर्व-कालमें आपहींसे मैं उत्पन्न हुई थी ॥ १२ ॥ हे जनार्दन ! पहले भी आपहींने मेरा उद्धार किया था। और हे प्रमो ! मेरे तथा आकाशादि अन्य सत्र भूतोंके भी आप ही उपादान-कारण हैं॥ १३ ॥ हे परमात्मखरूप ! आपको नमस्कार है । हे पुरुषात्मन् ! आपको नमस्कार है। हे प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) रूप! आपको नमस्कार है। हे काळलरूप ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे प्रमो ! जगत्की सृष्टि आदिके लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप घारण करनेवाले आप ही सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति, पालन और नाश करनेवाछे हैं॥ १५॥और जगत्के एकार्णव-रूप (जलमय) हो जानेपर, हे गोविन्द ! सबको भक्षणकर अन्तमें आप ही मनीषिजनोंद्वारा चिन्तित होते हुए जलमें शयन करते हैं ॥ १६ ॥ हे प्रमो ! आपका जो परतत्त्व है उसे तो कोई भी नहीं जानता; अतः आपका जो रूप अवतारोंमें प्रकट होता है उसी-की देवगण पूजा करते हैं ॥ १७ ॥ आप परब्रह्मकी ही आराधना करके मुमुक्षुजन मुक्त होते हैं। आराधना किये विना कौन वासुदेवकी

विकिश्चिन्मनसा ग्राह्यं यद्ग्राह्यं चक्षुरादिभिः। बुद्ध्या च यत्परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव ॥१९॥ त्वन्मयाहं त्वदाधारा त्वत्सृष्टा त्वत्समाश्रया । माधवीमिति लोकोऽयमभिधत्ते ततो हि माम्।।२०।। जयाखिलज्ञानमय जय स्थूलमयाच्यय । जयाईनन्त जयाव्यक्त जय व्यक्तमय प्रभो ॥२१॥ यज्ञपतेऽनघ । परापरात्मन्विश्वात्मञ्जय त्वं यज्ञस्त्वं वषद्कारस्त्वमोङ्कारस्त्वमग्नयः ॥२२॥ त्वं वेदास्त्वं तदङ्गानि त्वं यज्ञपुरुषो हरे। सूर्याद्यो ग्रहास्तारा नक्षत्राण्यखिलं जगत्।।२३।। मूर्तामूर्तमदृश्यं च दृश्यं च पुरुषोत्तम । यचोक्तं यच नैवोक्तं मयात्र परमेश्वर । तत्सर्वे त्वं नमस्तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः ॥२४॥

श्रीपराशर उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु पृथिव्या धरणीधरः। सामस्वरध्वनिः श्रीमाञ्जगर्ज परिघर्षरम् ॥२५॥ ततः सम्रुत्क्षिप्य धरां खदंष्ट्रया स्फ्रटपद्मलोचनः। महावराह: रसातलादुत्पलपत्रसन्निभः सम्रत्थितो नील इवाचलो महान् ॥२६॥ उत्तिष्ठता तेन मुखानिलाहतं तत्सम्भवाम्भो जनलोकसंश्रयान । प्रक्षालयामास हि तान्महाद्यतीन सनन्दनादीनपकल्मषान् मुनीन् ॥२७॥ प्रयान्ति तोयानि खुराप्रविश्वत-रसातलेऽधः कृतशब्दसन्तति । श्वासानिलास्ताः परितः प्रयान्ति

मोक्ष प्राप्त कर सकता है ? ॥ १८ ॥ मनसे जो कुछ प्रहण (संकल्प) किया जाता है, चक्षु आदि इन्द्रियों-से जो कुछ प्रहण (विषय) करनेयोग्य है, बुद्धि-द्वारा जो कुछ विचारणीय है वह सब आपहीका रूप है ॥ १९ ॥ हे प्रमो ! मैं आपहीका रूप हूँ, आपहीके आश्रित हूँ और आपहीके द्वारा रची गयी हूँ तथा आपहीकी शरणमें हूँ । इसीलिये लोकमें मुझे 'माधवी' भी कहते हैं ॥ २०॥ हे सम्पूर्ण ज्ञानमय ! हे स्थलमय ! हे अन्यय ! आपकी जय हो । हे अनन्त ! हे अब्यक्त ! हे ब्यक्तमय प्रभो ! आपकी जय हो ॥ २१ ॥ हे परापर-खरूप ! हे विश्वात्मन् ! हे यज्ञपते ! हे अनघ ! आपकी जय हो । हे प्रभो ! आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषटकार हैं, आप ही ओंकार हैं और आप ही (आहवनीयादि) अग्नियाँ हैं ॥ २२ ॥ हे हरे ! आप ही वेद, वेदांग और यज्ञपुरुष हैं तथा सूर्य आदि ग्रह, तारे, नक्षत्र और सम्पूर्ण जगत् भी आप ही हैं ॥ २३ ॥ हे पुरुषोत्तम ! हे परमेश्वर ! मूर्त-अमूर्त, दश्य-अदश्य, तथा जो कुछ मैंने कहा है और . जो नहीं कहा, वह सब आप ही हैं। अतः आपको नमस्कार है, बारम्बार नमस्कार है ॥ २४ ॥

श्रीपराशरजी बोळे—पृथिवीद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर सामखर ही जिनकी ध्वनि है उन भगवान् धरणीधरने घर्घरं शब्दसे गर्जना की ॥ २५॥ फिर विकसित कमलके समान नेत्रोंवाले उन महावराहने अपनी डाढ़ोंसे पृथिवीको उठा लिया और वे कमल-दलके समान स्याम तथा नीलाचलके सदश विशालकाय मगवान् रसातळसे बाहर निकले ॥ २६॥ निकलते समय उनके मुखके स्वाससे उछलते हुए जलने जन-छोकमें रहनेवाछे महातेजस्त्री और निष्पाप सनन्दनादि मुनीक्वरोंको मिगो दिया ॥२७॥ जल बड़ा शब्द करता हुआ उनके खुरोंसे विदीर्ण हुए रसातलमें नीचेकी ओर जाने लगा और जन-लोकमें रहनेवाले सिद्धगण उनके **क्वास-वायुसे विक्षिप्त होकर इधर-उधर भागने** छगे सिद्धा जने ये नियताः वसन्तिः।।२०००।विविद्धाः। जिन्नकीः क्षिक्षिः ज्ञान्त्रीः सीगी हुई है वे . महा-

जलाईक्रथे-उत्तिष्ठतस्तस्य महीं विगृह्य। र्महावराहस्य वेदमयं शरीरं विधन्वतो रोमान्तरस्था मुनयः स्तुवन्ति ॥२९॥ तुष्ट्रवुस्तोपपरीतचेतसो लोके जने ये निवसन्ति योगिनः। सनन्दनाद्या ह्यतिनम्रकन्थरा धीरतरोद्धतेक्षणम् ॥३०॥ जयेश्वराणां परमेश केशव प्रभो गदाशङ्खधरासिचक्रधृक्। प्रसृतिनाशस्थितिहेतुरीश्वर-स्त्वमेव नान्यत्परमं च यत्पदम् ॥३१॥ पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र दन्तेषु यज्ञाश्चितयश्च वक्त्रे। हुताशजिह्वोऽसि तन्र्रहाणि दुर्भाः प्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव ॥३२॥ विलोचने राज्यहनी महात्म-न्सर्वाश्रयं ब्रह्म परं शिरस्ते । स्कान्यशेषाणि सटाकलापो घ्राणं समस्तानि हवींपि देव ॥३३॥ स्रक्तुण्ड सामखरधीरनाद प्राग्वंशका**याखिलस**त्रसन्धे पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि 113811 सनातनात्मन्भगवन्त्रसीद पदक्रमाक्रान्तभ्रवं भवन्त-मादिस्थितं चाक्षर विश्वमृते । विश्वस्य विद्यः परमेश्वरोऽसि प्रसीद नाथोऽसि परावरस्य ॥३५॥ दंष्ट्राग्रविन्यस्तमशेषमेत-द्भूमण्डलं नाथ विभाव्यते ते। विगाहतः पद्मवनं विलग्नं

वराह जिस समय अपने वेदमय शरीरको कँपाते हुए पृथिवीको लेकर वाहर निकले उस समय उनकी रोमा-वलीमें स्थित मनिजन स्तृति करने लगे ॥ २९ ॥ उन निकांक और उन्नत दृष्टिवाले घराघर भगवान्की जन-लोकमें रहनेवाले सनन्दनादि योगीस्वरोंने प्रसन्नचित्तसे अति नम्रतापूर्वक शिर झुकाकर इस स्तति की॥३०॥

'हे ब्रह्मादि ईस्वरोंके भी परम ईस्वर ! हे केशव ! हे शंख-गदाधर ! हे खड्ग-चक्रधारी प्रमो ! आपकी जय हो। आप ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश-के कारण हैं, तथा आप ही ईस्वर हैं और जिसे परम पद कहते हैं वह भी आपसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ ३१ ॥ हे यूपरूपी डाढ़ोंबाले प्रमो ! आप ही यज्ञपुरुष हैं। आपके चरणोंमें चारों वेद हैं, दाँतोंमें यज्ञ हैं, मुखमें [इयेन चित आदि] चितियाँ हैं । हुताशन (यज्ञाग्नि) आपकी जिह्ना है तथा कुशाएँ रोमाविल हैं ॥ ३२ ॥ हे महात्मन् ! रात और दिन आपके नेत्र हैं तथा सबका आधारभूत परव्रह्म आपका शिर है। हे देव! वैष्णव आदि समस्त सूक्त आपके सटाकछाप (स्कन्धके रोम-गुच्छ) हैं और समग्र हवि आपके प्राण हैं ॥३३॥ हे प्रमो ! सूक् आपका तुण्ड (थ्र्थनी) है, सामखर धीर-गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमानगृह) शरीर है तथा सत्र शरीर-की सन्धियाँ हैं। हे देव ! इष्ट (श्रोत) और पूर्त (स्मार्त) धर्म आपके कान हैं। हे नित्यखरूप भगवन् ! प्रसन्न होइये ॥ ३४ ॥ हे अक्षर् ! हे विश्वमूर्ते ! अपने पाद-प्रहारसे भूमण्डलको व्याप्त करनेवाले आपको हम विस्वके आदिकारण समझते हैं। आप सम्पूर्ण चराचर जगत्के परमेक्वर और नाथ हैं; अतः प्रसन होइये ॥ ३५॥ हे नाथ ! आपकी डाढ़ों-पर रखा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल ऐसा प्रतीत होता है मानो कमल्यनको रौंदते हुए गजराजके दाँतोंसे कोई कीचड़में सना हुआ कमलका पत्ता लगा हो ।।३६॥ ॥ ३६॥ हे अनुपम प्रभावशाली प्रभो ! पृथिवी और सरोजिनीपत्रमिवोदपङ्कम् ॥३६॥।॥ २५॥ ६ अग्रुपप अधारिका सरोजिनीपत्रमिवोदपङ्कम् ।॥३६॥।॥ २५॥ ६ अग्रुपप अधारिका सरोजिनीपत्रमिवोदपङ्कम् ।॥३६॥।॥ ३५॥ ६ अग्रुपप अधारिका सरोजिनीपत्रमिवोद्दर्भ

द्यावापृथिव्योरतुलप्रभाव तवैव । यदन्तरं तद्रपुषा व्याप्तं जगद्वयाप्तिसमर्थदीप्ते हिताय विश्वस्य विभो भव त्वम् ॥३७॥ परमार्थस्त्वमेवैको नान्योऽस्ति जगतः पते । तवैष महिमा येन व्याप्तमेतचराचरम् ॥३८॥ यदेतद् दृश्यते मूर्त्तमेतज्ज्ञानात्मनस्तव । भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगद्रूपमयोगिनः ॥३९॥ ज्ञानखरूपमिखलं जगदेतदबुद्धयः। अर्थस्ररूपं पश्यन्तो आम्यन्ते मोहसम्छवे ॥४०॥ ये तु ज्ञानविदः शुद्धचेतसस्ते अखिलं जगत्। ज्ञानात्मकं प्रपञ्चन्ति त्वद्रूपं परमेश्वर ॥४१॥ प्रसीद सर्व सर्वात्मन्वासाय जगतामिमाम् । उद्धरोवींममेयात्मञ्छन्नो देखब्जलोचन ॥४२॥ सच्चोद्रिक्तोऽसि भगवन् गोविन्द पृथिवीमिमाम्। सम्रद्धर भवायेश शको देखन्जलोचन ॥४३॥ सर्गेप्रवृत्तिर्भवतो जगताम्रपकारिणी। भवत्वेषा नमस्तेऽस्तु शन्नो देखव्जलोचन ॥४४॥ श्रीपराशर उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु परमात्मा महीधरः।
उज्जहार क्षिति क्षिप्रं न्यस्तवांश्च महाम्भासे ॥४५॥
तस्योपिर जलौघस्य महती नौरिव स्थिता।
विततत्वाचु देहस्य न मही याति सम्प्रवम् ॥४६॥
ततः क्षिति समां कृत्वा पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन्।
यथाविभागं भगवाननादिः परमेश्चरः॥४७॥
प्राक्सर्गद्ग्धानिस्लान्पर्वतान्पृथिवीतले ।
अमोषेन प्रभावेण ससर्जामोघवाञ्छितः॥४८॥
भूविभागं ततः कृत्वा समद्भीपान्यथात्थम् ।

СС-0. Prof. Satya Vrat Shastri Colle

आकाशके बीचमें जितना अन्तर है वह आपके शरीरसे ही व्याप्त है। हे विश्वको व्याप्त करनेमें समर्थ तेजयुक्त प्रमो ! आप विस्वका कल्याण कींजिये ॥ ३७ ॥ हे जगत्पते ! परमार्थ (सत्य वस्तु) तो एकमात्र आप ही हैं, आपके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। यह आपकी ही महिमा (माया) है जिससे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है ॥ ३८॥ यह जो कुछ भी मूर्तिमान् जगत् दिखायी देता है ज्ञानस्वरूप आपहींका रूप है। अजितेन्द्रिय छोग भ्रमसे इसे जगत्-रूप देखते हैं ॥ ३९॥ इस सम्पूर्ण ज्ञान-खरूप जगत्को बुद्धिहीन छोग अर्थरूप देखते हैं अतः वे निरन्तर मोहमय संसार-सागरमें भटका करते हैं ॥ १०॥ हे परमेखर ! जो लोग शुद्धचित्त और विज्ञानवेत्ता हैं वे इस सम्पूर्ण संसारको आपका ज्ञानात्मक खरूप ही देखते हैं ॥४१॥ हे सर्व ! हे सर्वात्मन् ! प्रसन्न होइये । हे अप्रमेयात्मन् ! हे कमलनयन ! संसारके निवासके लिये पृथिवीका उद्धार करके हमको शान्ति प्रदान कीजिये ॥ ४२ ॥ हे भगवन् ! हे गोविन्द ! इस समय आप सत्त्वप्रधान हैं; अतः हे ईश ! जगत्के उद्भवके लिये आप इस पृथिवीका उद्धार कीजिये और हे कमळनयन ! हमको शान्ति प्रदान कीजिये ॥ ४३॥ आपके द्वारा यह सर्गकी प्रवृत्ति संसारका उपकार करनेवाळी हो । हे कमळनयन ! आपको नमस्कार है, आप हमको शान्तिप्रदान कीजिये ॥ ४४ ॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार स्तुति किये जाने-पर पृथिवीको धारण करनेवाले परमात्मा वराहजीने उसे शीघ्र ही उठाकर अपार जलके ऊपर स्थापित कर दिया ॥ ४५ ॥ उस जलसमृहके ऊपर वह एक वहुत बड़ी नोकाके समान स्थित है और वहुत विस्तृत आकार होनेके कारण उसमें डूबती नहीं है ॥४६॥ फिर उन अनादि परमेश्वरने पृथिवीको समतल कर उसपर जहाँ-तहाँ पर्वतोंको विभाग करके स्थापित कर दिया ॥ ४७ ॥ सत्यसंकल्प भगवान्ने अपने अमोघ प्रभावसे पूर्वकल्पके अन्तमें दग्च हुए समस्त पर्वतोंको पृथिवी-तलपर यथास्थान रच दिया ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उन्होंने समद्दीपादि-क्रमसे पृथिवीका यथायोग्य विभाग

भूराद्यांश्रतुरो लोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् ॥४९॥ ब्रह्मरूपधरो देवस्ततोऽसौ रजसा वृतः। चकार सृष्टिं भगवांश्रतुर्वक्त्रधरो हरिः ॥५०॥ निमित्तमात्रमेवाऽसौ सृज्यानां सर्गकर्मणि । प्रधानकारणीभूता यतो वै सृज्यशक्तयः ॥५१॥ निमित्तमात्रं मुक्त्वैवं नान्यत्किञ्चिद्पेक्षते । नीयते तपतां श्रेष्ट खशक्त्या वस्तु वस्तुताम् ॥५२॥

कर भूलोंकादि चारों लोकोंकी पूर्ववत् कल्पना कर दी ॥ ४९॥ फिर उन भगवान् हरिने रजोगुणसे युक्त हो चतुर्मुखधारी ब्रह्मारूप धारण कर सृष्टिकी रचना की ।। ५० ।। सृष्टिकी रचनामें भगवान् तो केवल निमित्तमात्र ही हैं, क्योंकि उसकी प्रधान कारण तो सुज्य पदार्थोंकी शक्तियाँ ही हैं ।। ५१ ।। हे तपस्वियोंमें श्रेष्ट मैत्रेय ! वस्तुओंकी रचनामें निमित्तमात्रको छोडकर और किसी बातकी आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि वस्तु तो अपनी ही [परिणाम] शक्तिसे वस्तुता (स्थूलरूपता) को प्राप्त हो जाती है॥ ५२॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे चतुर्थोऽघ्यायः ॥ १ ॥



पाँचवाँ अध्याय

अविद्यादि विविध सर्गोंका वर्णन।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

श्रीमैत्रेय उवाच

यथा ससर्ज देवोऽसौ देवर्षिपितृदानवान् । मनुष्यतिर्यग्वृक्षादीन्भुव्योमसिललौकसः ॥१॥ यद्गुणं यत्स्वभावं च यद्र्पं च जगद्द्रिज । सर्गादौ सृष्टवान्ब्रह्मा तन्ममाचक्ष्व कृत्स्रशः॥२॥

श्रीपराशर उवाच

मैत्रेय कथयाम्येतच्छुणुष्व सुसमाहितः। यथा ससर्ज देवोऽसौ देवादीनखिलान्विभुः॥ ३॥ सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा। अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भृतस्तमोमयः ॥ ४॥ तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्थसंज्ञितः। अविद्या पञ्चपर्वेषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ ५ ॥ पश्चघाऽवस्थितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिवोधवान् ।

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे द्विजराज! सर्गके आदिमें मगवान् ब्रह्माजीने पृथिवी, आकाश और जल आदिमें रहनेवाले देव, ऋषि, पितृगण, दानव, मनुष्य, तिर्यक् और बृक्षादिको जिस प्रकार रचा तथा जैसे गुण, स्वमाव और रूपवाले जगत्की रचना की वह सव आप मुझसे किहिये ॥ १-२ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! भगवान विसने जिस प्रकार इस सर्गकी रचना की वह मैं तुमसे कहता हूँ; सावधान होकर सुनो ॥ ३॥ सर्गके आदिमें ब्रह्माजीके पूर्ववत् सृष्टिका चिन्तन करनेपर पहले अबुद्धिपूर्वक [अर्थात् पहले-पहल असावधानी हो जानेसे] तमोगुणी सृष्टिका आविर्माव हुआ॥ १॥ उस महात्मासे प्रथम तम (अज्ञान), मोह, महा-मोह (मोगेच्छा), तामिस्र (क्रोध) और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश) नामक पञ्चपर्वा (पाँच प्रकारकी) अविद्या उत्पन्न हुई ॥ ५॥ उसके ध्यान करनेपर ज्ञानशून्य, वाहर-भीतरसे तमोमय और जड नगादि (बृक्ष-गुल्म-छता-वीरुत्-तृण) रूप पाँच प्रकारका बहिरन्तोऽप्रकाश्रश्र संवृतात्मा नगात्मकः ॥ ६ ॥ सर्ग हुआ ॥ ६ ॥ विराहजी द्वारा सर्वप्रथम स्थापित मुख्या नगा यतः प्रोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम्।।७।।

तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्यद्यरं पुनः ॥ ८॥
तस्यामिध्यायतः सर्गस्तिर्यक्स्रोताम्यवर्तत ।
यसात्तिर्यक्ष्रवृत्तिस्स तिर्यक्स्रोतास्ततः स्मृतः ॥९॥
पश्चाद्यस्ते विख्यातास्तमः प्राया द्यवेदिनः ।
उत्पथप्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥१०॥
अहङ्कृता अहम्माना अष्टाविश्वद्वधात्मकाः ।
अन्तः प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च परस्परम् ॥११॥
तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ।
ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु सात्त्विक्षोध्वमवर्त्तत ॥१२॥
ते सुखप्रीतिबहुला वहिरन्तस्त्वनावृताः ।

होनेके कारण] नगादिको मुख्य कहा गया है, इसिल्ये यह सर्ग मी मुख्य सर्ग कहलाता है ॥७॥

उस सृष्टिको पुरुषार्थकी असाधिका देखकर उन्होंने फिर अन्य सर्गके लिये ध्यान किया तो तिर्यक्-स्रोत-सृष्टि उत्पन्न हुई। यह सर्ग [वायुके समान] तिरछा चळनेवाळा है इसलिये तिर्यक्-स्रोत कहळाता है ॥८-९॥ ये पशु, पक्षी आदि नामसे प्रसिद्ध हैं—और प्रायः तमोमय (अज्ञानी), विवेकरहित अनुचित मार्गका अवलम्बन करनेवाळे और विपरीत ज्ञानको ही यथार्थ ज्ञान माननेवाळे होते हैं। ये सब अहंकारी, अभिमानी, अट्टाईस वघोंसे युक्त*, आन्तरिक सुख आदिको ही पूर्णतया समझनेवाळे और परस्पर एक दूसरेकी प्रवृत्ति-को न जाननेवाळे होते हैं॥ १०-११॥

उस सर्गको भी पुरुषार्थका असाधक समझ पुनः चिन्तन करनेपर एक और सर्ग हुआ। वह ऊर्घ्व-स्रोतनामक तीसरा साचिक सर्ग ऊपरके छोकोंमें रहने छगा॥ १२॥ वे ऊर्घ्व-स्रोत सृष्टिमें उत्पन्न हुए प्राणी विषय-सुखके प्रेमी, वाह्य और

सांख्य-कारिकामें अट्टाईस वधोंका वर्णन इस प्रकार किया है—
 पकादशेन्द्रियवधाः सह वृद्धिवधैरशिक्तिहिष्टा । सप्तदश वधा वृद्धिविपर्ययानुष्टिसिद्धीनाम् ॥
 आध्यात्मिक्यश्चतसः प्रकृत्युपादानकारुमाग्याख्याः । बाह्या विषयोपरमात् पश्च च नव तृष्टयोऽभिमताः ॥
 उदः शब्दोऽध्ययनं दुःखविधातास्त्रयः सुद्धःप्राप्तिः । दानश्च सिद्धयोऽष्टी सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशिक्षिविधा ॥
 (४९-५१

ग्यारह इन्द्रियवध श्रीर तुष्टि तथा सिद्धिके विपर्ययसे सम्नद्द बुद्धि-वध—ये कुल श्रद्वाईस वध श्रशक्ति कहलाते हैं। प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य नामक चार आध्यास्मिक श्रीर पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके वाह्य विपर्योंके निष्टृत्त हो जानेसे पाँच वाह्य—इस प्रकार कुल नो तुष्टियाँ हैं। तथा ऊहा, शब्द, अध्ययन, [आध्यास्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] तीन दु:खविधात, सुहस्प्राप्ति श्रीर दान—ये आठ सिद्धियाँ हैं। ये [इन्द्रियाशक्ति, तुष्टि, सिद्धिरूप] तीनों वध मुक्तिसे पूर्व विश्वरूप हैं।

अन्धाव-विधरत्वादिसे छेकर पागलपनतक मनसिंद्व ग्यारह इन्द्रियोंकी विपरीत अवस्थाएँ ग्यारह इन्द्रियवध हैं। आठ प्रकारकी प्रकृतिमेंसे किसीमें चित्तका छय हो जानेसे अपनेको मुक्त मान छेना 'प्रकृति' नामवाजी तृष्टि हैं। संन्याससे ही अपनेको कृतार्थ मान छेना 'उपादान' नामकी तृष्टि हैं। समय आनेपर स्वयं ही सिद्धि जाम हो जायगी, ध्यानादि छुंशकी क्या आवश्यकता है—ऐसा विचार करना 'काल' नामकी तृष्टि हैं और माग्योदयसे सिद्धि हो जायगी—ऐसा विचार 'भाग्य' नामकी तृष्टि हैं। ये चारोंका आत्मासे सम्बन्ध हैं; अतः ये आध्यारिमक तृष्टियाँ हैं। पदार्थोंके उपार्जन, रक्षण और ब्यय आदिमें दोष देखकर उनसे उपराम हो जाना वाह्य तृष्टियाँ हैं। शब्दादि बाह्य विषय पाँच हैं, इसल्ये वाह्य तृष्टियाँ भी पाँच ही हैं। इस प्रकार कुल नौ तृष्टियाँ हैं।

उपदेशकी अपेक्षा न करके स्वयं ही प्रसार्थका निश्चय कर छेना 'ऊहा' सिद्धि है। प्रसंगवश कहीं कुछ सुनकर उसीसे ज्ञानसिद्धि मान छेना 'शब्द' सिद्धि है। गुरुसे पड़कर ही वस्तु प्राप्त हो गयी—ऐसा मान खेना 'अध्ययन' सिद्धि है। आध्यात्मकादि त्रिविध दुःखोंका नाश हो जाना तीन प्रकारकी 'दुःखविधात' सिद्धि है। श्रभीष्ट पदार्थकी प्राप्ति हो जाना 'सुहत्प्राप्ति' सिद्धि है। तथा विद्वान् या तपस्त्रियोंका संग प्राप्त हो जाना 'दान' नामिका सिद्धि है। इस प्रकार से आठ दिखिदा है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रकाशा वहिरन्तश्र ऊर्ध्वस्रोतोद्भवाः स्मृताः ॥१३॥ आन्तरिक दृष्टिसम्पन्न, तथा वाद्य और आन्तरिक तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गस्तु स स्मृतः। तस्मिन्सर्गेऽभवत्त्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ॥१४॥ ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गम्रत्तमम् । असाधकांस्तु ताञ्ज्ञात्वा मुख्यसर्गादिसम्भवान् १५ तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः । प्रादुर्वभृव चान्यक्तादर्वाक्स्रोतास्तु साधकः ॥१६॥ यसादर्वाग्व्यवर्तन्त ततोऽर्वाक्स्रोतसस्त ते । ते च प्रकाशवहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ॥१७॥ तसात्ते दुःखबहुला भृयोभूयश्च कारिणः। प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकास्तु ते ।।१८॥ इत्येते कथिताः सर्गाः पडत्र म्रुनिसत्तम । प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ॥१९॥ तन्मात्राणां द्वितीयश्च भृतसर्गो हि स स्मृतः । वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥२०॥ इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भृतो बुद्धिपूर्वकः । मुख्यसर्गश्रतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥२१॥ तिर्यक्स्रोतास्तु यः प्रोक्तस्तुर्यग्योन्यः स उच्यते । तदृर्घ्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु संस्मृतः ॥२२॥ ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥२३॥ अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सान्विकस्तामसश्च सः। पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्पृताः॥२४॥ प्राकृतो वैकृतश्रेव कौमारो नवमः स्मृतः। इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः ॥२५॥ प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः। सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छिसि ॥२६॥। क्या सुनना चाहत हा : ॥ र

ज्ञानयुक्त थे ॥ १३ ॥ यह तीसरा देवसर्ग कहलाता है। इस सर्गके प्रादुर्भूत होनेसे सन्तुष्ट-चित्त ब्रह्माजी-को अति प्रसन्तता हुई ॥ १४॥

फिर, इन मुख्य सर्ग आदि तीनों प्रकारकी सृष्टियोंमें उत्पन्न हुए प्राणियोंको पुरुषार्थका असाधक जान उन्होंने एक और उत्तम साधक सर्गके छिये चिन्तन किया ॥ १५॥ उन सत्यसंकल्प ब्रह्माजीके इस प्रकार चिन्तन करनेपर अञ्यक्त (प्रकृति) से पुरुपार्थका साधक अर्वाक्स्रोतनामक सर्ग प्रकट हुआ ॥१६॥ इस सर्गके प्राणी नीचे (पृथिवीपर) रहते हैं इसिटिये वे 'अर्वाक-स्रोत' कहलाते हैं । उनमें सत्त्व, रज और तम तीनों-हींकी अधिकता होती है ॥ १७॥ इसल्यि वे दुःख-वहुल, अत्यन्त क्रियाशील, एवं वाद्य आभ्यन्तर ज्ञानसे युक्त और साधक हैं । इस सर्गके प्राणी मनुष्य हैं॥१८॥

हे मुनिश्रेष्ट ! इस प्रकार अवतक तुमसे छः सर्ग कहे । उनमें महत्तत्त्वको ब्रह्माका पहला सर्ग जानना चाहिये ॥ १९ ॥ दूसरा सर्ग तन्मात्राओंका है, जिसे भूतसर्ग भी कहते हैं और तीसरा वैकारिक सर्ग है जो ऐन्द्रियक (इन्द्रिय-सम्बन्धी) कह-छाता है ॥ २०॥ इस प्रकार बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ यह प्राकृत सर्ग हुआ । चौथा मुख्यसर्ग है । पर्वत-बृक्षादि स्थावर ही मुख्य सर्गने अन्तर्गत हैं ॥२१॥ पाँचवाँ जो तिर्यक्स्रोत वतलाया उसे तिर्यक् (कीट-पतंगादि) योनि भी कहते हैं। फिर छठा सर्ग ऊर्घ्य-स्रोताओंका है जो 'देवसर्ग' कहलाता है । उसके पश्चात् सातवाँ सर्ग अर्वाक्-स्रोताओंका है वह मनुष्य-सर्ग है ॥ २२-२३॥ आठवाँ अनुग्रह-सर्ग है । वह सार्चिक और तामसिक है। ये पाँच वैकृत (विकारी) सर्ग हैं और पहले तीन 'प्राकृत सर्ग' कहलाते हैं || २४ || नवाँ कोमार-सर्ग है जो प्राकृत और वैकृत भी है । इस प्रकार सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त हुए जगदीश्वर प्रजापतिके प्राकृत और वैकृतनामक ये जगत्के मूलमूत नौ सर्ग तुम्हें सुनाये। अत्र और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २५-२६॥

श्रीमैत्रेय उवाच

सङ्गेयात्कथितः सर्गो देवादीनां ग्रुने त्वया । विस्तराच्ट्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ग्रुनिवरोत्तम ॥२७॥

श्रीपराशर उवाच

कर्मिर्भाविताः पूर्वैः कुशलाकुशलैस्तु ताः । ख्यात्या तया ह्यनिर्धुक्ताः संहारे ह्युपसंहताः ॥२८॥ स्थावरान्ताःसुराद्यास्तु प्रजा त्रह्मश्रुतुर्विधाः । ब्रह्मणः क्रवेतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसास्तु ताः ॥२९॥ ततो देवासुरपितृन्मजुष्यांश्व चतुष्टयम् । सिसृश्चरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयुयुजत् ॥३०॥ युक्तात्मनस्तमोमात्रा ह्यद्भिक्ताऽभूत्प्रजापतेः । सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः ।।३१॥ उत्ससर्ज ततस्तां तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् । सा तु त्यक्ता तनुस्तेन मैत्रेयाभूद्विभावरी ।।३२॥ सिसृक्षरन्यदेहस्थः प्रीतिमाप ततः सुराः । सत्त्वोद्रिक्ताः समुद्भता मुखतो ब्रह्मणो द्विज ॥३३॥ त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूदिनम् । ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा ॥३४॥ सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्। पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जिन्नरे ॥३५॥ उत्ससर्ज ततस्तां तु पितृन्सृष्ट्वापि स प्रश्नः। सा चोत्सृष्टाभवत्सन्ध्या दिननक्तान्तरिश्वता।३६। रजोमात्रात्मिकामन्यां जगृहे स ततं ततः । रजोमात्रोत्कटा जाता मनुष्या द्विजसत्तम ॥३७॥ तामप्याशु स तत्याज तनुं सद्यः प्रजापतिः । ज्योत्स्वा समभवत्सापि त्राक्सन्ध्या या इभिधीयते ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले-हे मुने ! आपने इन देवादिकोंके सर्गोंका संक्षेपसे वर्णन किया । अव, हे मुनिश्रेष्ट ! मैं इन्हें आपके मुखारविन्दसे विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ २७॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! सम्पूर्ण प्रजा अपने पूर्व-श्रुमाश्रुम कर्मों से युक्त है; अतः प्रलय-कालमें सबका लय होनेपर भी वह उनके संस्कारों से मुक्त नहीं होती ॥ २८॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माजीके सृष्टि-कर्ममें प्रवृत्त होनेपर देवताओं से लेकर स्थावरपर्यन्त चार प्रकारकी सृष्टि हुई । वह केवल मनोमयी थी ॥ २९॥

फिर देवता,असुर, पितृगण और मनुष्य इन चारों-की तथा जलकी सृष्टि करनेकी इच्छासे उन्होंने अपने शरीरका उपयोग किया ॥ ३०॥ सृष्टि-रचना-की कामनासे प्रजापतिके युक्तचित्त होनेपर तमोगुण-की वृद्धि हुई । अतः सबसे पहले उनकी जंघासे असुर उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ तब, हे मैत्रेय ! उन्होंने उस तमोमय शरीरको छोड़ दिया, वह छोड़ा हुआ तमोमय शरीर ही रात्रि हुआ ॥ ३२ ॥ फिर अन्य देहमें स्थित होनेपर सृष्टिकी कामनावाले उन प्रजापति-को अति प्रसन्नता हुई, और हे द्विज! उनके मुखसे सत्त्वप्रधान देवगण उत्पन्न हुए ॥ ३३॥ तदनन्तर उस शरीरको भी उन्होंने त्याग दिया । वह त्यागा हुआ शरीर ही सत्त्वस्वरूप दिन हुआ। इसीलिये रात्रिमें असर बळवान होते हैं और दिनमें देवगणोंका बल विशेष होता है ॥ ३४ ॥ फिर उन्होंने आंशिक सत्त्वमय अन्य शरीर ग्रहण किया और अपनेको पितृवत् मानते द्वए [अपने पार्च-भागसे] पितृगणकी रचना की ॥ ३५ ॥ पितृगणकी रचना कर उन्होंने उस शरीरको भी छोड़ दिया। वह त्यागा हुआ शरीर ही दिन और रात्रिके बीचमें स्थित सन्ध्या हुई ॥ ३६ ॥ तत्पश्चात् उन्होंने आंशिक रजोमय अन्य शरीर धारण किया; हे द्विजश्रेष्ठ ! उससे रजः-प्रधान मनुष्य उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ फिर शोघ ही प्रजापतिने उस शारीरको भी त्याग दिया, वहीं ज्योत्स्ना हुआ, जिसे पूर्व-सन्ध्या अर्थात् प्रातःकाल

ज्योत्स्नागमे त बलिनो मनुष्याः पितरस्तथा । मैत्रेय सन्ध्यासमये तसादेते भवन्ति वै ॥३९॥ ज्योत्स्ना राज्यहनी सन्ध्या चत्वार्येतानि वै प्रभोः। ब्रह्मणस्तु श्ररीराणि त्रिगुणोपाश्रयाणि तु ॥४०॥ रजोमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे ततुम्। ततः श्रुद् ब्रह्मणो जाता जज्ञे कामस्तया ततः॥४१॥ क्षुत्क्षामानन्धकारेऽथ सोऽसृजद्भगवांस्ततः। विरूपाः रमश्रुला जातास्तेऽभ्यथावंस्ततः प्रभुम् ४२ मैवं भो रक्ष्यतामेष यैरुक्तं राक्षसास्त ते। ऊचुः खादाम इत्यन्ये ये ते यक्षास्तु जक्षणात्।४३।

अप्रियेण तु तान्दृष्वा केशाः शीर्यन्त वेधसः । हीनाश्र शिरसो भूयः समारोहन्त तच्छिरः ॥४४॥ सर्पणात्तेऽभवन् सर्पा हीनत्वाद्हयः स्पृताः । ततः क्रुद्धो जगत्स्रष्टा क्रोधात्मनो विनिर्ममे। वर्णेन कपिशेनोग्रभूतास्ते पिशिताशनाः ॥४५॥ गायतोऽङ्गात्समुत्पन्ना गन्धर्वास्तस्य तत्क्षणात् । पिवन्तो जिहरे वाचं गन्धर्वास्तेन ते द्विज ॥४६॥

एतानि सृष्वा भगवान्त्रक्षा तच्छक्तिचोदितः । ततः खच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वयसोऽसृजत् ४७ अवयो वक्षसश्रके मुखतोऽजाः स सृष्टवान् । सृष्टवानुद्राङ्गश्च पार्श्वाभ्यां च प्रजापतिः ॥४८॥ पद्भ्यां चाश्चान्समातङ्गात्रासभान्गवयान्मृगान् । उष्ट्रानश्वतरांश्चेव न्यङ्कुनन्याश्च जातयः ॥४९॥ ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जिन्नरे । त्रेतायुगप्रुखे त्रक्षा कल्पस्यादौ द्विजोत्तम । व्रह्माजान पशु आर आयाव व्र CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

कहते हैं ॥ ३८ ॥ इसीलिये, हे मैत्रेय ! प्रातःकाल होनेपर मनुष्य और सायंकालके समय पितर बल्बान् होते हैं ॥ ३९॥ इस प्रकार रात्रि, दिन, प्रातःकाल और सायंकाल ये चारों प्रमु ब्रह्माजीके ही शरीर हैं और तीनों गुणोंके आश्रय हैं ॥ ४०॥

फिर ब्रह्माजीने एक और रजोमात्रात्मक शरीर धारण किया । उसके द्वारा ब्रह्माजीसे क्ष्या उत्पन्न हुई और क्षुघासे कामकी उत्पत्ति हुई ॥ ४१ ॥ तव भगवान् प्रजापतिने अन्यकारमें स्थित होकर क्षुयाप्रस्त सृष्टिकी रचना की । उसमें वड़े कुरूप और दाढ़ी-मूँछवाछे व्यक्ति उत्पन्न हुए। वे खयं ब्रह्माजीकी ओर ही [उन्हें भक्षण करनेके लिये] दौड़े ॥४२॥ उनमेंसे जिन्होंने यह कहा कि 'ऐसा मत करो, इनकी रक्षा करों' वे 'राक्षस' कहलाये और जिन्होंने कहा 'हम खार्येगे' वे खानेकी वासनावाले होनेसे 'यक्ष' कहे गये ॥ ४३ ॥

उनकी इस अनिष्ट प्रवृत्तिको देखकर ब्रह्माजीके केश सिरसे गिर गये और फिर पुनः उनके मस्तकपर आरूढ़ हुए । इस प्रकार ऊपर चढ़नेके कारण वे 'सर्प' कहलाये और नीचे गिरनेके कारण 'अहि' कहे गये। तदनन्तर जगत्-रचयिता ब्रह्माजीने क्रोधित होकर क्रोधयुक्त प्राणियोंकी रचना की; वे कपिश (काळा-पन लिये हुए पीले) वर्णके, अति उग्र खमाववाले तथा मांसाहारी हुए॥ ४४-४५॥ फिर गान करते समय उनके शरीरसे तुरन्त ही गन्धर्व उत्पन्न हुए। हे द्विज ! वे वाणीका उचारण करते अर्थात् वोछते हुए उत्पन्न हुए थे, इसिछिये 'गन्धर्व' कहलाये ॥४६॥

इन सवकी रचना करके भगवान् ब्रह्माजीने पश्चियों-को, उनके पूर्व-कर्नोंसे प्रेरित होकर स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी आयुसे रचा ॥ ४७ ॥ तदनन्तर अपने वक्ष:-स्थलसे मेड, मुखसे वकरी, उदर और पार्श्व-भागसे गौ, पैरोंसे घोड़े, हाथी, गघे, वनगाय, मृग, ऊँट, खचर और न्यङ्क आदि पशुओंकी रचना की ॥ ४८-४९ ॥ उनके रोमोंसे फल मूलक्रप ओषघियाँ उत्पन्न हुई । हे द्विजोत्तम ! कल्पके आरम्भमें ही ब्रह्माजीने पशु और ओपिं आदिकी रचना करके

सृष्ट्वा पश्चोषघीः सम्यग्युयोज स तदाघ्वरे ॥५०॥ गौरजः पुरुषो मेषश्राश्वाश्वतरगर्दभाः। एतान्त्राम्यान्पश्चनाहुरारण्यांश्च निबोध मे ॥५१॥ श्वापदा द्विखरा हस्ती वानराः पक्षिपश्चमाः । औद्काः पश्चाः पष्टाः सप्तमास्तु सरीसृपाः॥५२॥ गायत्रं च ऋचश्रेव त्रिवृत्सोमं रथन्तरम् । अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्युखात् ॥५३॥ यजंषि त्रेष्ट्रभं छन्दः स्तोमं पश्चदशं तथा । बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजनमुखात्।।५४॥ सामानि जगतीछन्दः स्तोमं सप्तदशं तथा । वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात्।।५५॥ एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव अनुष्ट्रमं च वैराजमुत्तरादसृजनमुखात् ॥५६॥ उचावचानि भृतानि गात्रेभ्यस्तस्य जित्ररे। देवासुरपितृन् सृष्ट्वा मनुष्यांश्च प्रजापतिः ॥५७॥ ततः पुनः ससर्जादौ सङ्कल्पस्य पितामहः । यक्षान् पिशाचान्गन्धर्वान् तथैवाप्सरसां गणान्।। नरिकन्नररक्षांसि वयःपशुपृगोरगान्। अव्ययं च व्ययं चैव यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ॥५९॥ तत्ससर्ज तदा ब्रह्मा भगवानादिकृत्प्रभुः। तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्टचां प्रतिपेदिरे। तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनःपुनः ॥६०॥ हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते। तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥६१॥ इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः। नानात्वं विनियोगं च धातैवं व्यसुजत्ख्यम् ॥६२॥ नाम रूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपश्चनम् । वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥६३॥ ऋषीनां नामधेयानि यथा वेदश्रुतानि वै।

फिर त्रेतायुगके आरम्भमें उन्हें यज्ञादि कर्मों में सम्मिलित किया ॥ ५० ॥ गौ, वकरी, पुरुष, भेड़, घोड़े, खचर, और गधे ये सब गाँवोंमें रहनेवाले पशु हैं। जंगली पशु ये हैं — स्वापद (ब्याघ्र आदि), दो ख़ुरवाले (वनगाय आदि), हाथी, वन्दर और पाँचवें पक्षी, छठे जलके जीव तथा सातवें सरीसृप आदि ॥ ५१-५२ ॥ फिर अपने-प्रथम (पूर्व) मुखसे ब्रह्माजीने गायत्री, ऋक, त्रिवृत्सोम रथन्तर और अग्निष्टोम यज्ञोंको निर्मित किया ॥ ५३॥ दक्षिण-मुखसे यज्, त्रैष्ट्रप्छन्द, पञ्चदशस्तोम, बृहत्साम तथा उक्थकी रचना की ।। ५४ ।। पश्चिम-मुखसे साम. जगतीछन्द, सप्तदशस्तोम, वैरूप और अतिरात्रको उत्पन्न किया ॥ ५५ ॥ तथा उत्तर-मुखसे उन्होंने एकविंशतिस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्यामाण, अनुष्टुप्छन्द और वैराजकी सृष्टि की ॥ ५६॥

इस प्रकार उनके शरीरसे समल ऊँच-नीच प्राणी उत्पन्न हुए । उन आदिकर्ता प्रजापति भगवान् ब्रह्माजीने देव, असुर, पितृगण और मनुष्योंकी सृष्टि कर तदनन्तर कल्पका आरम्भ होनेपर फिर यक्ष. पिशाच, गन्धर्व, अप्सरागग, मनुष्य, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग और सर्प आदि सम्पूर्ण नित्य एवं अनित्य स्थावर-जंगम जगत्की रचना की । उनमेंसे जिनके जैसे-जैसे कर्म पूर्वकल्पोंमें थे पुन:-पुन: सृष्टि होनेपर उनकी उन्होंमें फिर प्रवृत्ति हो जाती है ॥ ५७-६० ॥ उस समय हिंसा-अहिंसा, मृद्ता-कठोरता, धर्म-अधर्म, सत्य-मिध्या ये सब अपनी पूर्व-भावनाके अनुसार उन्हें प्राप्त हो जाते हैं, इसीसे ये उन्हें अच्छे लगने लगते हैं ॥ ६१ ॥

. इस प्रकार प्रमु विधाताने ही खर्य इन्द्रियोंके विषय भूत और शरीर आदिमें विभिन्नता और व्यवहारको उत्पन्न किया है ॥ ६२ ॥ उन्होंने कल्पके आरम्भमें देवता आदि प्राणियोंके वेदानुसार नाम और रूप तथा कार्य-विभागको निश्चित किया है ॥ ६३ ॥ ऋषियों तथा अन्य प्राणियोंके भी वेदानुकूछ नाम और यथायोग्य कर्मोंको उन्होंने निर्दिष्ट किया है ॥ ६४ ॥ जिस प्रकार तथा नियोगयोग्यानि ह्यन्येषामपि सोऽकरोत् १६४। मिन्न-भिन्न ऋतुओंके पुनः-पुनः आनेपर उनके चिह्न

यथर्त्रब्हुत्तिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु।।६५।। करोत्येवंविधां सृष्टिं कल्पादौ स पुनः पुनः। सिसुक्षाशक्तियुक्तोऽसौ सुज्यशक्तिप्रचोदितः।६६। सृष्टिकी रचना किया करते हैं ॥६६॥

और नाम-रूप आदि पूर्ववत् रहते हैं उसी प्रकार युगादिमें भी उनके पूर्व-भाव ही देखे जाते हैं ॥६५॥ सिसृक्षा-राक्ति (सृष्टि-रचनाकी इच्छारूप राक्ति) से युक्त वे ब्रह्माजी सृज्य-शक्ति (सृष्टिके प्रारम्थ) की प्रेरणासे कल्पोंके आरम्भमें वारम्बार इसी प्रकार

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमें ऽशे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५॥



छठा अध्याय

चातुर्वण्यं-व्यवस्था, पृथिवी-विभाग और अन्नादिकी उत्पत्तिका वर्णन।

श्रीमैत्रेय उवाच

अविक्स्रोतास्तु कथितो भवता यस्तु मानुषः। ब्रह्मन्विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा तमसृजद्यथा ॥ १॥ यथा च वर्णानसृजद्यद्गुणांश्च प्रजापतिः। यच तेषां स्मृतं कर्म विप्रादीनां तदुच्यताम्।। २।।

श्रीपराशर उवाच

सत्याभिध्यायिनः पूर्वं सिसुक्षोत्रिह्मणो जगत्। अजायन्त द्विजश्रेष्ठ सन्त्वोद्रिक्ता ग्रुखात्प्रजाः॥३॥ वश्वसो रजसोद्रिक्तास्तथा वै ब्रह्मणोऽभवन् । रजसा तमसा चैव समुद्रिक्तास्तथोरुतः॥ ४॥ पद्भ्यामन्याः प्रजा ब्रह्मा संसर्ज द्विजसत्तम । तमःप्रधानास्ताः सर्वाश्चातुर्वर्ण्यमिदं ततः ॥ ५ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम । पादोरुवक्षःस्थलतो मुखतश्च समुद्रताः ॥ ६॥

यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् : ब्रह्मा चकार वै । चातुर्वर्ण्यं महांभाग यज्ञसाधनमुत्तमम् ॥ ७॥ युज्ञैराप्यायिता देवा वृष्ट्यत्सर्गेण वै प्रजाः। आप्याययन्ते धर्मज्ञ यज्ञाः कल्याणहेतवः ॥ ८॥ निष्पाद्यन्ते नरैस्तैस्तु ख्रधम्भिरतैस्सद्दा ।

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे मगवन् ! आपने जो अर्वाक्-स्रोता मनुष्योंके विषयमें कहा उनकी सृष्टि ब्रह्माजीने किस प्रकार की-यह विस्तारपूर्वक किहरे॥ १॥ श्रीयुजापतिने त्राह्मणादि वर्णको जिन-जिन गुणोंसे युक्त और जिस प्रकार रचा, तथा उनके जो-जो कर्तव्य कर्म निर्घारित किये वह सब वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विजश्रेष्ठ ! जगत्-रचना-की इच्छासे युक्त सत्यसंकल्प श्रीब्रह्माजीके मुखसे पहले सत्त्वप्रधान प्रजा उत्पन्न हुई ॥ ३॥ तदनन्तर उनके वक्षःस्थल्से रजःप्रधान तथा जंघाओंसे रज और तमविशिष्ट सृष्टि हुई ॥ ४॥ हे द्विजोत्तम! चरणोंसे ब्रह्माजीने एक और प्रकारकी प्रजा उत्पन की, वह तमःप्रधान थी। ये ही सब चारों वर्ण हुए॥ ५॥ इस प्रकार, हे द्विजसत्तम ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों क्रमशः ब्रह्माजीके मुख, वक्षःस्यल, जानु और चरणोंसे उत्पन हुए ॥ ६ ॥

हे महाभाग ! ब्रह्माजीने यज्ञानुष्ठानके लिये ही यज्ञके उत्तम साधनरूप इस सम्पूर्ण चातुर्वर्ण्यकी रचना की थी॥ ७॥ हे धर्मज्ञ ! यज्ञसे तृप्त होकर देवगण जल बरसाकर प्रजाको तृप्त करते हैं; अतः यञ्च सर्वथा क़ल्याणका हेतु है ॥ ८॥ जो मनुष्य सदा खुधर्मपुरायण, सदाचारी, सज्जन और सुमार्गगामी होते on, New Delhi. Digitized by eGangotri विश्वद्धाचरणोपेतैः सद्भिः सन्मार्गगामिभिः॥ ९ ॥ स्वर्गापवर्गी मानुष्यात्प्राप्नुवन्ति नरा मुने । यचाभिरुचितं स्थानं तद्यान्ति मनुजा द्विज ॥१०॥

प्रजास्ता त्रक्षणा सृष्टाश्चातुर्वण्येन्यवस्थिताः ।
सम्यक्ष्रद्धासमाचारप्रवणा स्निसत्तम ॥११॥
यथेच्छावासनिरताः सर्ववाधाविवर्जिताः ।
यद्येच्छावासनिरताः सर्ववाधाविवर्जिताः ।
यद्येच्छावासनिरताः सर्ववाधाविवर्जिताः ।
यद्येच्छावासनिरताः सर्ववाधाविवर्जिताः ।
यद्येच्छावासनिरताः यद्याः कर्मानुष्टानिर्मलाः॥१२॥
यद्येच तासां मनसि युद्धेऽन्तःसंस्थिते हरौ ।
यद्यवानं प्रपत्रयन्ति विष्ण्वाख्यं येन तत्पदम् ॥१३॥
ततः कालात्मको योऽसौ स चांशः कथितो हरेः ।
स पातयत्ययं घोरमल्पमल्पाल्पसारवत् ॥१४॥
अधर्मवीजस्रद्भतं तमोलोभसस्रद्भवम् ।
प्रजास् तासु मैत्रेय रागादिकमसाधकम् ॥१५॥
ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते ।
रसोष्टासादयश्चान्याः सिद्धयोऽष्टी भवन्ति याः।१६॥

हैं उन्हींसे यज्ञका यथावत् अनुष्ठान हो सकता है ॥ ९॥ हे मुने ! [यज्ञके द्वारा] मनुष्य इस मनुष्य- शरीरसे ही खर्ग और अपवर्ग प्राप्त कर सकते हैं; तथा और भी जिस स्थानकी उन्हें इच्छा हो उसीको जा सकते हैं ॥ १०॥

हे मुनिसत्तम ! ब्रह्माजीद्वारा रची हुई वह चातुर्वण्य-विभागमें स्थित प्रजा अति श्रद्धायुक्त आचरणवाली, स्वेच्छानुसार रहनेवाली, सम्पूर्ण वाधाओंसे रहित, शुद्ध अन्तःकरणवाली, सत्कुलोत्पन्न और पुण्य कर्मीके अनुष्ठानसे परम पवित्र थी ॥ ११-१२ ॥ उसका चित्त गुद्ध होनेके कारण उसमें निरन्तर गुद्धखरूप श्रीहरिके विराजमान रहनेसे उन्हें शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता था जिससे वे भगवान्के उस 'विष्णु' नामक परम. पदको देख पाते थे ॥ १३॥ फिर त्रेतायुगके आरम्भमें , हमने तुमसे भगवान्के जिस काल नामक अंशका पहले वर्णन किया है, वह अति अल्प सारवाले (सुखवाले) तुच्छ और घोर (दुःखमय) पापोंको प्रजामें प्रवृत्त कर देता है ॥ १४ ॥ हे मैत्रेय ! उससे प्रजामें पुरुषार्थका विघातक तथा अज्ञान और लोमको उत्पन्न करनेवाला रागादिरूप अधर्मका बीज उत्पन्न हो जाता है ॥ १५ ॥ तमीसे उसे वह विष्णु-पद-प्राप्ति-रूप खामाविक सिद्धि और रसोञ्जास आदि अन्य अष्ट सिद्धियाँ * नहीं मिलतीं ॥ १६॥

🕸 रसोझासादि अष्ट-सिद्धियोंका वर्णन स्कन्दपुराणमें इस प्रकार किया है-

रसस्य स्तत प्वान्तरुद्धासः स्यात्कृते युगे । रसोद्धासाहियका सिद्धिस्तया इन्ति क्षुषं नरः ॥ स्व्यादीनां नैरपेश्वयण सदा तृप्ता प्रजास्तया । द्वितीया सिद्धिरुद्धिः सा तृप्तिर्मुनिसत्तमैः ॥ धर्मोत्तमश्च योऽस्त्यासां सा तृतीयाऽभिषीयते । चतुर्थी तुरुयता तासामायुषः सुस्वरूपयोः ॥ पेकान्त्यवरुवाहुरुयं विशोका नाम पश्चमी । परमात्मपरत्वेन तपोध्यानादिनिष्ठिता ॥ वष्ठी च कामचारित्वं सप्तमी सिद्धिरुच्यते । अष्टमी च तथा प्रोक्ता सन्नक्चनशायिता ॥

अर्थ-सत्ययुगमें रसका स्वयं ही उन्नास होता था। यही रसोझास नामकी सिद्धि है, उसके प्रभावसे मनुष्य भूतको नष्ट कर देता है। उस समय प्रजाको आदि मोगोंकी अपेनाके विना हो सदा तृप्त रहती थी; इसीको मुनिश्रेष्टोंने 'तृप्ति' नामक दूसरी सिद्धि कहा है। उनका जो उत्तम धर्म था वही उनकी तीसरी सिद्धि कही जाती है। उस समय सम्पूर्ण प्रजाके रूप और आयु एक-से थे, यही उनकी चौथी सिद्धि थी। बळकी ऐकान्तिकी अधिकता—यह 'विश्लोका' नामकी पाँचवीं सिद्धि है। परमारमपरायण रहते हुए तप-ध्यानादिमें तरपर रहना छुठी सिद्धि है। स्वेच्छानुसार विचरना सातवीं सिद्धि कही जाती है तथा जहाँ-तहाँ मनकी मौज पहें रहना आठवीं सिद्धि कही गयी है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

तासु श्रीणाखशेपास वर्द्धमाने च पातके। द्बन्द्वामिभवदःखातीस्ता भवन्ति ततः प्रजाः॥१७॥ ततो दुर्गाणि ताश्रक्वर्धान्वं पार्वतमौद्कम्। कृत्रिमं च तथा दुर्ग पुरखर्वटकादिकम् ॥१८॥ गृहाणि च यथान्यायं तेषु चक्रः पुरादिषु । शीतातपादिवाधानां प्रश्नमाय महामते ॥१९॥ प्रतीकारमिमं कृत्वा शीतादेस्ताः प्रजाः प्रनः। वार्तोपायं ततश्रक्षर्हस्तसिद्धं च कर्मजाम् ॥२०॥ व्रीहयश्च यवाश्चेव गोधूमाश्चाणवस्तिलाः। त्रियङ्गवो ह्यदाराश्च कोरदूपाः सतीनकाः ॥२१॥ माषा सद्भा मसराश्च निष्पावाः सक्कलत्थकाः । आढक्यश्रणकाश्रेव शणाः सप्तदश स्पृताः ॥२२॥ इत्येता ओपधीनां तु ग्राम्यानां जातयो मुने । एगं ओपच्यो यज्ञियाश्रेव ग्राम्यारण्याश्रतुर्दश ॥२३॥ त्रीहयस्सयवा माषा गोधूमाश्राणवस्तिलाः। त्रियङ्गसप्तमा ह्येते अष्टमास्तुः कुलत्थकाः ॥२४॥ इयामाकास्त्वथ नीवारा जर्तिलाः सगवेधुकाः। तथा वेणुयवाः प्रोक्तास्तथा मर्कटका ग्रुने ॥२५॥ ग्राम्यारण्याः स्मृता होता ओषध्यस्तु चतुर्दश । यज्ञनिष्पत्तये यज्ञस्तथासां हेतुरुत्तमः ॥२६॥ एताश्रं सह यज्ञेन प्रजानां कारणं परम्। पुरावरविदः प्राज्ञास्ततो यज्ञान्वितन्वते ॥२७॥ अहन्यहन्यनुष्ठानं यज्ञानां ग्रुनिसत्तम । उपकारकरं पुंसां क्रियमाणाघशान्तिद्म् ॥२८॥ येषां तु कालसृष्टोऽसौ पापविन्दुर्महासुने। चेतः सु वृष्ट्ये चक्रस्ते न यज्ञेषु मानसम् ॥२९॥ वेदवादांस्तथा वेदान्यज्ञकर्मादिकं च यत्। तत्सर्वे निन्द्यामासुर्यज्ञव्यासेघकारिणः ॥३०॥ प्रवृत्तिमार्गव्युच्छित्तिकारिणो वेदनिन्दकाः। दुरात्मानो दुराचारा बभूवुः क्वटिलाशयाः ॥३१॥

उन समस्त सिद्धियोंके क्षीण हो जाने और पापके बढ जानेसे फिर सम्पूर्ण प्रजा द्वन्द्व, ह्वास और दुःखसे आतुर हो गयी ॥१ ७॥ तब उसने मरुमूमि, पर्वत और जल आदिके खाभाविक तथा कृत्रिम दुर्ग और पुर तथा खर्वट* आदि स्थापित किये ॥ १८ ॥ हे महामते ! उन पुर आदिकोंमें शीत और घाम आदि वाधाओंसे वचनेके लिये उसने यथायोग्य घर बनाये ॥ १९॥

इस प्रकार शीतोष्गादिसे वचनेका उपाय करके उस प्रजाने जीविकाके साधनरूप कृषि तथा कला-कोशल आदिकी रचना की ॥ २०॥ हे मुने ! धान, जी, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, काँगनी, ज्वार, कोदो, छोटी मटर, उड़द, मूँग, मसूर, बड़ी मटर, कुलथी, राई, चना और सन-ये सत्रह प्राम्य ओपधियोंकी जातियाँ हैं। ग्राम्य और वन्य दोनों प्रकारकी मिलाकर कुल चौदह ओपियाँ याज्ञिक हैं। उनके नाम ये हैं-धान, जौ, उड़द, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, काँगनी और कुलथी-ये आठ तथा झ्यामाक (समाँ), नीवार, वनतिल, गवेधु, वेणुयव और मर्कट (मका) ॥ २१-२५ ॥ ये चौदह ग्राम्य और वन्य ओषियाँ यज्ञानुष्ठानकी सामग्री हैं और यज्ञ इनकी उत्पत्तिका प्रधान हेतु है ॥ २६ ॥ यज्ञोंके सहित ये ओषियाँ प्रजाकी वृद्धिका परम कारण हैं इसलिये इहलोक-प्रलोकके ज्ञाता पुरुष यज्ञोंका अनुष्ठान किया करते हैं ॥ २७॥ हें मुनिश्रेष्ठ ! नित्यप्रति किया जानेवाला यज्ञानुष्ठान मनुष्योंका परम उपकारक और उनके किये हुए पापोंको शान्त करनेवाछा है ॥ २८॥

हे महामुने ! जिनके चित्तमें कालकी गतिसे पाप-का बीज बढ़ता है उन्हों छोगोंका चित्त यज्ञमें प्रवृत्त नहीं होता ॥ २९॥ उन यज्ञके विरोधियोंने वैदिक मत, वेद और यज्ञादि कर्म-समीकी निन्दा की है ॥ ३०॥ वे छोग दुरात्मा, दुराचारी, कुटिलमति, वेद-विनिन्दक और प्रवृत्तिमार्गका उच्छेद करनेवाले ही थे॥ ३१॥

संसिद्धायां तु वार्तायां प्रजाः सृष्ट्वा प्रजापतिः। मर्यादां स्थापयामास यथास्थानं यथागुणम् ।।३२।। वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्धर्मभूतां वर । लोकांश्र सर्ववर्णानां सम्यग्धर्मानुपालिनाम् ॥३३॥ प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्। स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ॥३४॥ वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तिनाम् । गान्धर्व ग्रुद्रजातीनां परिचर्यातुवर्तिनाम् ॥३५॥ अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । स्मृतं तेषां तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥३६॥ सप्तर्पाणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद्दै वनौकसाम् । प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मसंज्ञितम् ॥३७॥ योगिनाममृतं स्थानं स्वात्मसन्तोषकारिणाम् ॥३८॥ एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनश्र ये। तेषां तु परमं स्थानं यत्तत्पश्यन्ति सूरयः ॥३९॥ गत्वा गत्वा निवर्त्तन्ते चन्द्रसूर्याद्यो ग्रहाः । अद्यापि न निवर्त्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥४०॥ तामिस्रमन्धतामिस्रं महारारवरीरवी । असिपत्रवनं घोरं कालस्त्रमवीचिकम् ॥४१॥ विनिन्दकानां वेदस्य यज्ञव्याघातकारिणाम् । स्थानमेतत्समाख्यातं स्वधर्मत्यागिनश्च ये ॥४२॥

हे धर्मवानोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय ! इस प्रकार कृषि आदि जीविकाके साधनोंके निश्चित हो जानेपर प्रजापति ब्रह्माजीने प्रजाकी रचना कर उनके स्थान और गुणोंके अनुसार मर्यादा, वर्ण और आश्रमोंके धर्म तथा अपने धर्मका भलीप्रकार पालन करनेवाले समस्त वर्णोंके छोक आदिकी स्थापना की ॥ ३२-३३॥ कर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंका स्थान पितृछोक है, युद्ध-क्षेत्रसे कमी न हटनेवाले क्षित्रियोंका इन्द्रलोक है ॥ ३४॥ तथा अपने धर्मका पाछन करनेवाछे वैश्योंका वायु-छोक और सेवाधर्मपरायण शृद्धोंका गन्धर्वछोक है ॥ ३५॥ अट्टासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनि हैं; उनका जो स्थान वताया गया है वहीं गुरुकुळवासी ब्रह्मचारियों-का स्थान है ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार वनवासी वानप्रस्थों-का स्थान सप्तर्षिलोक, गृहस्थोंका पितृलोक और संन्यासियोंका ब्रह्मलोक है तथा आत्मानुभवसे तृप्त योगियोंका स्थान अमरपद (मोक्ष) है ॥ ३७-३८॥ जो निरन्तर एकान्तसेवी और ब्रह्मचिन्तनमें मग्न रहनेवाले योगिजन हैं उनका जो परमस्थान है उसे पण्डितजन ही देख पाते हैं।। ३९॥ चन्द्र और सूर्य आदि ग्रह मी अपने-अपने छोकोंमें जाकर फिर छोट आते हैं, किन्तु द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमों भगवते वासुदेवाय) का चिन्तन करनेवाले अभीतक मोक्षपदसे नहीं छोटे ॥ ४०॥ तामिम्न, अन्धतामिम्न, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, घोर, काळसूत्र और अवीचिक आदि जो नरक हैं, वे वेदोंकी निन्दा और यज्ञीका उच्छेद करनेवाले तथा खधर्म-विमुख पुरुषोंके स्थान कहे गये हैं॥ ४१-४२॥

OXONO PROPERTY

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६॥



सातवाँ अध्याय

मरीचि आदि प्रजापतिगण, तामसिक सर्ग, स्वायम्भुवमनु और शतरूपा तथा उनकी सन्तानका वर्णन ।

श्रीपराशर उवाच

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जित्ररे मानसाः प्रजाः । तच्छरीरसम्रत्पनेः कार्यस्तैः करणैः सह । क्षेत्रज्ञाः समवर्त्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः ॥ १ ॥ ते सर्वे समवर्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः। देवाद्याः स्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यविषये स्थिताः ॥ २ ॥ एवंभुतानि संष्टानि चराणि स्थावराणि च ॥ ३ ॥ यदास्य ताः प्रजाः सर्वा न व्यवर्धन्त धीमतः। अथान्यान्मानंसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत्।।४।। भृगुं पुलस्त्यं पुलहं ऋतुमङ्गिरसं तथा। मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसान् ॥ ५॥ नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥ ६ ॥ ख्यातिं भूतिं च सम्भूतिं क्षमां प्रीतिं तथैव च । सन्नतिं च तथैवोर्जामनसूयां तथैव च॥७॥ प्रस्तिं च ततः सृष्टा ददौ तेषां महात्मनाम् । पत्न्यो भवध्वमित्युक्त्वा तेषामेव तु दत्तवान् ॥८॥ सनन्दनादयो ये च पूर्वसृष्टास्तु वेधसा । न ते लोकेष्वसञ्जन्त निरपेक्षाः प्रजासु ते ॥ ९ ॥ सर्वे तेऽभ्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः। तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टीं महात्मनः ॥१०॥ ब्रह्मणोऽभून्महान् क्रोधस्नैलोक्यदहनक्षमः। तस्य क्रोधात्समुद्भूतज्वालामालातिदीपितम्। ब्रह्मणोऽभूत्तदा सर्वं त्रैलोक्यमखिलं मुने ॥११॥ भ्रकुटीकुटिलात्तस्य ललाटात्क्रोधदीपितात्। सम्रत्पन्नस्तदा रुद्रो मध्याह्वार्कसमप्रभः ॥१२॥ अर्घनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान्।

श्रीपराशरजी बोले-फिर उन प्रजापतिके ध्यान करनेपर उनके देहस्वरूप भूतोंसे उत्पन्न हुए शरीर और इन्द्रियोंके सहित मानस प्रजा उत्पन्न हुई । उस समय मतिमान् ब्रह्माजीके जड शरीरसे ही चेतन जीवोंका प्रादुर्भाव हुआ ॥१॥ मैंने पहले जिनका वर्णन किया है, देवताओंसे लेकर स्थावरपर्यन्त वे सभी त्रिगुणात्मक चर और अचर जीव इसी प्रकार उत्पन्न हर ॥ २-३॥ जन महाबुद्धिमान् प्रजापतिकी वह प्रजा पत्र-पौत्रादि-क्रमसे और न वढी तब उन्होंने भूग, पुछस्य, पुछह, ऋतु, अंगिरा. मरीचि. दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ—इन अपने ही सदश अन्य मानस-पुत्रोंकी सृष्टि की । पुराणोंमें ये नौ ब्रह्मा माने गये हैं ॥ ४-६॥ फिर ख्याति, भूति, सम्भूति, क्षमा, प्रीति, सन्नति, ऊर्ज्जा, अनसूया तथा प्रसृति इन नौ कन्याओंको उत्पन्न कर, इन्हें उन महात्माओंको 'तुम इनकी पत्नी हो' ऐसा कहकर सौंप दिया ॥ ७-८॥

ब्रह्माजीने पहले जिन सनन्दनादिको उत्पन्न किया था वे निरपेश्व होनेके कारण सन्तान और संसार आदिमें प्रवृत्त नहीं हुए ॥ ९ ॥ वे समी ज्ञानसम्पन्न, विरक्त और मत्सरादि दोषोंसे रहित थे। उन महात्माओंको संसार-रचनासे उदासीन देख ब्रह्मा-जीको त्रिलोकोको मस्म कर देनेवाला महान् क्रोध उत्पन्न हुआ। हे मुने! उन ब्रह्माजीके क्रोधके कारण सम्पूर्ण त्रिलोकी ज्वाला-मालाओंसे अत्यन्त देदीप्यमान हो गयी ॥ १०-११ ॥

अकुटीकुटिलात्तस्य ललाटात्क्रोधदीपितात्।

सम्रुत्पन्नस्तदा रुद्रो मध्याह्वाकसमप्रभः ॥१२॥

अर्घनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिश्वरीरवान्।

अर्घनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिश्वरीरवान्।

विभुजात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्द्वभे ततः ॥१३॥ 'अपने शरीरका विमाग कर' ऐसा कहकर अन्तर्धान

तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाऽकरोत्। विमेदपुरुषत्वं च दशधा चैकघा पुनः ॥१४॥ सौम्यासौम्येस्तदा शान्ताऽशान्तैः स्त्रीत्वं च स प्रभः विभेद बहुधा देवः खरूपैरसितैः सितैः॥१५॥

ततो ब्रह्माऽऽत्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः । आत्मानमेव कृतवान्त्रजापाल्ये मनुं द्विज ॥१६॥ शतरूपां च तां नारीं तपोनिर्धृतकलमपाम् । स्वायम्भ्रवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे प्रभुः ॥१७॥ तसात्तु पुरुषादेवी शतरूपा व्यजायत। प्रियवतोत्तानपादौ प्रस्तत्याकृतिसंज्ञितम् ॥१८॥ कन्याद्वयं च धर्मज्ञ रूपौदार्यगुणान्वितम्। ददौ प्रस्ति दक्षाय आकृति रुचये पुरा ॥१९॥

प्रजापतिः स जग्राह तयोर्जज्ञे सदक्षिणः। पुत्रो यज्ञो महाभाग दम्पत्योर्मिथुनं ततः ॥२०॥ यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जिज्ञरे। यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवे मनौ॥२१॥ प्रस्त्यां च तथा दक्षश्रतस्रो विंशतिस्तथा। ससर्ज कन्यास्तासां च सम्यङ् नामानि मे शृणु ।२२। श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिर्मेघा पुष्टिस्तथा किया । बुद्धिर्लञ्जा वपुः शान्तिः सिद्धिःकीर्तिस्त्रयोदंशी।२३। पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रश्चः । ताभ्यः शिष्टाःयवीयस्य एकादशः सुलोचनाः ॥२४॥ ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः त्रीतिः क्षमा तथा सन्ततिश्रानस्या च ऊर्जी खाहा खघा तथा ।।२५॥ भृगुर्भवो मरीचिश्र तथा चैवाङ्गिरा मुनिः। पुलस्त्यः पुलह्रश्रेव ऋतुश्रर्षिवरस्तथा।।२६॥ अत्रिवीसिष्ठो विद्वश्च पितरश्च यथाक्रमम्। ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या ग्रुनयो ग्रुनिसत्तम्।।२७॥ अद्धा कामं चला दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् ।

हो गये ॥ १३ ॥ ऐसा कहे जानेपर उस रुद्रने अपने शरीरस्थ स्त्री और पुरुष दोनों भागोंको अलग-अलग कर दिया और फिर पुरुष-भागको ग्यारह भागोंमें विभक्त किया ॥ १४ ॥ तथा स्त्री-भागको भी सौम्य, करू, शान्त-अशान्त और स्याम-गौर आदि कई रूपोंमें विभक्त कर दिया ॥ १५॥

तदनन्तर, हे द्विज ! अपनेसे उत्पन्न अपने ही खरूप खायम्भुवको ब्रह्माजीने प्रजा-पालनके लिये प्रथम मन् बनाया ॥ १६ ॥ उन स्नायम्भुव मनुने [अपने ही साथ उत्पन्न हुई] तपके कारण निष्पाप शतरूपा नामकी स्त्रीको अपनी पत्नीरूपसे प्रहण किया॥१७॥ हे धर्मज्ञ ! उन स्वायम्भुव मनुसे शतरूपा देवीने ब्रियव्रत और उत्तानपादनामक दो पुत्र तथा उदार, रूप और गुणोंसे सम्पन प्रसूति और आकृति नामकी दो कन्याएँ उत्पन्न कीं । उनमेंसे प्रसूतिको दक्षके साथ तथा आकूतिको रुचि प्रजापतिके साथ विवाह दिया ॥ १८-१९॥

हे महाभाग! रुचि प्रजापतिने उसे प्रहण कर लिया। तब उन दम्पतीके यज्ञ और दक्षिणा—ये युगल (जुड़वाँ) सन्तान उत्पन्न हुईं ॥ २०॥ यज्ञके दक्षिणासे बारह पुत्र हुए, जो खायम्भुव मन्वन्तरमें याम नामके देवता कहळाये ॥ २१॥ तथा दक्षने प्रसूतिसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं । मुझसे उनके ग्रुम नाम सुनो ॥२२॥ श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि, छजा, वृपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कोर्ति-इन दक्ष-कन्याओंको धर्मने प्रतीरूपसे प्रहण किया। इनसे छोटी शेष ग्यारह कन्याएँ ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्तति, अनस्या, ऊर्जा, खाहा और खधा थीं ॥ २३-२५॥ हे मुनिसत्तम! इन ख्याति आदि कन्याओंको क्रमशः मृगु, शिव, मरीचि, अंगिरा, पुळस्त्य, पुळह, ऋतुं, अत्रि, वशिष्ट— इन मुनियों तथा अग्नि और पितरोंने प्रहण किया ॥ २६-२७॥ त्रमं श्रुतिरात्मजम् । अद्धासे काम, चला (लक्ष्मी) से दर्प, धृतिसे नियम,

सन्तोपं च तथा तृष्टिर्होभं पृष्टिरस्थयत ॥२८॥ मेधा श्रुतं किया दण्डं नयं विनयमेव च ॥२९॥ वोधं बुद्धिस्तथा लजा विनयं वपुरात्मजम्। व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरस्यत ॥३०॥ सखं सिद्धिर्यशः कीत्तिरित्येते धर्मस्नवः। कामाद्रतिः सतं हर्षं धर्मपौत्रमस्यत ॥३१॥ हिंसा भार्या त्वधर्मस्य ततो जज्ञे तथानृतम् । क्रन्या च निकृतिस्तास्यां भयं नरकमेव च ॥३२॥ माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः। तयोजीक्वेडथ वै माया मृत्यं भृतापहारिणम् ॥३३॥ वेदना खसुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात्। मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाऋोधाश्च जित्तरे ॥३४॥ दुः खोत्तराः स्पृता होते सर्वे चाधर्मलक्षणाः । नैयां पुत्रोऽस्ति वै भार्या ते सर्वे ह्यूर्ध्वरेतसः ॥३५॥ रौद्राण्येतानि रूपाणि विष्णोर्भ्वनिवरात्मज । नित्यप्रलयहेतुत्वं जगतोऽस्य प्रयान्ति वै।।३६॥ दक्षो मरीचिरत्रिश्र भुग्वाद्याश्र प्रजेश्वराः । जगत्यत्र महाभाग नित्यसर्गस्य हेतवः ॥३७॥ मनवो मनुपुत्राश्च भूपा वीर्यधराश्च ये। सन्मार्गनिरताः शूरास्ते सर्वे स्थितिकारिणः ॥३८॥ श्रीमैत्रेय उवाच येयं नित्या स्थितिर्ब्रह्मित्यसर्गस्तथेरितः। नित्याभावश्र तेषां वै खरूपं मम कथ्यताम् ॥३९॥ श्रीपराशर उवाच

सर्गस्थितिविनाशांश्य भगवान्मधुद्धदनः । तैस्तै रूपैरचिन्त्यात्मा करोत्यव्याहतो विभ्रः॥४०॥ नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको द्विज।

तृष्टिसे सन्तोष और पृष्टिसे लोमकी उत्पत्ति हुई ॥२८॥ तथा मेधासे श्रत, क्रियासे दण्ड, नय और विनय, बुद्धिसे बोध, लजासे विनय, वपुसे उसका पुत्र व्यवसाय, शान्तिसे क्षेम, सिद्धिसे सुख और कीर्तिसे यराका जन्म हुआ; ये ही धर्मके पुत्र हैं। रतिने कामसे धर्मके पौत्र हर्षको उत्पन्न किया ॥२९-३१॥

अधर्मकी स्त्री हिंसा थी, उससे अनृतनामक पुत्र और निकृति नामकी कन्या उत्पन्न हुई । उन दोनोंसे भय और नरक नामके पत्र तथा उनकी पहियाँ माया कन्याएँ हुई । उनमेंसे और वेदना नामकी मायाने समस्त प्राणियोंका संहारकर्ता मृत्यनामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३२-३३॥ वेदनाने भी रौरव (नरक) के द्वारा अपने पत्र दुःखको जन्म दिया, और मृत्यसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोधकी उत्पत्ति हुई ॥ ३४ ॥ ये सत्र अधर्मरूप हैं और 'दुःखोत्तर' नामसे प्रसिद्ध हैं, [क्योंकि इनसे परिणाममें दुःख ही प्राप्त होता है] इनके न कोई स्त्री है और न सन्तान । ये सब ऊर्ध्वरेता हैं ॥ ३५॥ हे मुनिकुमार ! ये भगवान् विष्णुके वड़े भयद्भर रूप हैं और ये ही संसारके नित्य-प्रलयके कारण होते हैं ।। ३६ ।। हे महाभाग ! दक्ष, मरीचि, अत्रि और भृग आदि प्रजापतिगण इस जगत्के नित्य-सर्गके कारण हैं ॥ ३७ ॥ तथा मनु और मनुके पराक्रमी, सन्मार्गपरायण और शूर-बीर पुत्र राजागण इस संसारकी नित्य-स्थितिके कारण हैं ॥ ३८॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे ब्रह्मन् ! आपने जो नित्य-स्थिति, नित्य-सर्ग और नित्य-प्रलयका उल्लेख किया सो कृपा करके मुझसे इनका खरूप वर्णन कीजिये॥३९॥

श्रीपराशरजी बोले-जिनकी गति कहीं नहीं रुकती वे अचिन्त्यात्मा सर्वव्यापक भगवान् मधुसुदन निरन्तर इन मन आदि रूपोंसे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश करते रहते हैं ॥ ४०॥ हे द्विज ! समस्त भूतोंका चार प्रकारका प्रचय है-नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्य ॥ ४१ ॥ उनमेंसे नित्यश्च सर्वभूतानां प्रख्योऽसंत जात्विश्वः॥।। १॥ १॥ व्याप्तिमित्तिक प्राष्ट्रय हो। व्याप्त न्याप्ति

ब्राह्मो नैमित्तिकस्तत्र शेतेऽयं जगतीपतिः। प्रयाति प्राकृते चैव ब्रह्माण्डं प्रकृतौ लयम् ॥४२॥ ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि । नित्यः सदैव भूतानां यो विनाशो दिवानिश्रम् ४३ प्रस्तिः प्रकृतेर्या तु सा सृष्टिः प्राकृता स्मृता । दैनन्दिनी तथा प्रोक्ता यान्तरप्रलयाद् ।।।।।।।। भूतान्यनुदिनं यत्र जायन्ते मुनिसत्तम । नित्यसर्गो हि स प्रोक्तः पुराणार्थविचक्षणैः ॥४५॥ एवं सर्वशरीरेषु भगवान्भूतभावनः। संस्थितः कुरुते विष्णुरुत्पत्तिस्थितिसंयमान् ॥४६॥ सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तयः सर्वदेहिषु । वैष्णव्यः परिवर्त्तन्ते मैत्रेयाहर्निशं समाः ॥४७॥ गुणत्रयमयं होतद्वहान् शक्तित्रयं महत्। योऽतियाति स यात्येव परं नावर्तते पुनः ॥४८॥

ब्रह्माजी कल्पान्तमें शयन करते हैं; तथा प्राकृतिक प्रलयमें ब्रह्माण्ड प्रकृतिमें लीन हो जाता है ॥ ४२ ॥ ज्ञानके द्वारा योगीका परमात्मामें छीन हो जाना आत्यन्तिक प्रलय है और रात-दिन जो भूतोंका क्षय होतां है वहीं नित्य-प्रलय है ॥ ४३॥ प्रकृतिसे महत्तत्त्वादि-क्रमसे जो सृष्टि होती है वह प्राकृतिक सृष्टि कहलाती है और अवान्तर-प्रलयके अनन्तर जो [ब्रह्माके द्वारा] चराचर जगत्की उत्पत्ति होती है वह दैनन्दिनी सृष्टि कही जाती है। १४।। और हे मुनिश्रेष्ठ ! जिसमें प्रतिदिन प्राणियोंकी उत्पत्ति होती रहती है उसे पुराणार्थमें कुशल महानुमावोंने नित्य-सृष्टि कहा है ॥ ४५॥

इस प्रकार समस्त शरीरमें स्थित भूतभावन भगवान् विष्णु जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रख्य करते रहते हैं ॥ ४६ ॥ हे मैत्रेय ! सृष्टि, स्थिति और विनाशकी इन वैष्णवी शक्तियोंका समस्त शरीरोंमें समान भावसे अहर्निश सञ्चार होता रहता है ॥ ४७ ॥ हे ब्रह्मन् ! ये तीनों महती शक्तियाँ त्रिगुणमयी हैं; अतः जो उन तीनों गुंणोंका अतिक्रमण कर जाता है वह परमपदको ही प्राप्त कर छेता है, फिर जन्म-मरणादिके चक्रमें नहीं पड़ता ॥ ४८॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

रौद्र-सृष्टि और भगवान् तथा लक्ष्मीजीकी सर्वव्यापकताका वर्णन ।

श्रीपराशर उवाच

कथितस्तामसः सर्गो ब्रह्मणस्ते महामुने । रुद्रसर्गं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृषु ॥ १॥ कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतस्ततः । शादुरासीत्प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः॥२॥ रुरोद सुखरं सोऽथ प्राद्रवद्द्रिजसत्तम । कि त्वं रोदिषि तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच हु ॥ ३ ॥ रोता है ?"॥ ३ ॥ उसने कहा—"मेरा नाम रखो।" CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

श्रीपराशरजी बोलें-हें महामुने ! मैंने तुमसे ब्रह्माजीके तामस-सर्गका वर्णन किया, अब मैं रुद्र-सर्गका वर्णन करता हूँ, सो सुनो ॥ १॥ कल्पके आदिमें अपने समान पुत्र उत्पन्न होने-के लिये चिन्तन करते हुए ब्रह्माजीकी गोदमें नीछ्छोहित वर्णके एक कुमारका प्रादुर्माव हुआ ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तम ! जन्मके अनन्तर ही वह जोर-जोरसे रोने और इधर-उधर दौड़ने छगा। उसे रोता देख ब्रह्माजीने उससे पूछा-"तू क्यों

नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्यवाच प्रजापतिः। रुद्रस्त्वं देव नाम्नासि मा रोदीधैर्यमावह । एवम्रक्तः प्रनः सोऽथ सप्तकृत्वो रुरोद वै॥ ४॥ ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभः। स्थानानि चैपामष्टानां पत्नीः प्रतांश्र स प्रश्रः ॥५॥ भव शर्वमथेशानं तथा पश्चपति द्विज। भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ॥ ६॥ चक्रे नामान्यथैतानि स्थानान्येषां चकार सः। √स्र्यो जलं मही वायुर्विह्नराकाशमेव च। दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात्।।७।। सुवर्चला तथैवोपा विकेशी चापरा शिवा। खाहा दिशस्तथा दीक्षा रोहिणी च यथाक्रमम्।।८।। स्यादीनां द्विजश्रेष्ठ रुद्राद्यैनीमभिः सह । पत्न्यः स्मृता महाभाग तदपत्यानि मे शृणु ॥९॥ एवां स्तिप्रस्तिभ्यामिदमापूरितं जगत्।।१०।। श्नेश्वरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः। स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्रानुऋमात्सुताः।११। एवंप्रकारो रुद्रोऽसौ सतीं भार्यामनिन्दिताम् । उपयेमे दुहितरं दक्षस्यैव प्रजापतेः ॥१२॥ दक्षकोपाच तत्याज सा सती स्वकलेवरम्। हिमवद्दुहिता साऽभून्मेनायां द्विजसत्तम ॥१३॥ पुनश्रोमामनन्यां भगवान्हरः॥१४॥ देवौ धात्विधातारौ भृगोः ख्यातिरस्यत । श्रियं च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या ॥१५॥

श्रीमैत्रेय उवाच

श्वीराब्धौ श्रीः सम्रत्पन्ना श्रूयतेऽमृतमन्थने । भृगोः ख्यात्यां सम्रत्यनेत्येतदाह कथं भवान्।।१६।।

श्रीपराशर उवाच

नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी ।

पथा सर्वगतो विष्णुस्त्थैवेयं द्विजोत्तम ॥१७॥ व्यापक हैं वैसे ही ये भी हैं॥ १

तव ब्रह्माजी बोले-"हे देव ! तेरा नाम रुद्र है, अब त मत रो. धेर्य धारण कर ।" ऐसा कहनेपर भी वह सात बार और रोया॥ ४॥ तब भगवान् ब्रह्माजीने उसके सात नाम और रखे; तथा उन आठोंके स्थान, स्त्री और पुत्र भी निश्चित किये ॥५॥ हे द्विज ! प्रजापति-ने उसे भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उप्र और महादेव कहकर सम्बोधन किया ॥ ६ ॥ यही उसके नाम रखे और इनके स्थान भी निश्चित किये। सूर्य, जल, पृथिवी, वायु, अग्नि, आकाश, [यज्ञमें] दीक्षित त्राह्मण और चन्द्रमा—ये क्रमशः उनकी मृतियाँ हैं ॥ ७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! रुद्र आदि नामों-के साथ उन सर्य आदि मृतियोंकी क्रमशः सुवर्चला, ऊषा, विकेशी, अपरा, शिवा, खाहा, दिशा, दीक्षा और रोहिणी नामकी पितयाँ हैं । हे महाभाग ! अव उनके पुत्रोंके नाम सुनो; उन्होंके पुत्र-पौत्रादिकोंसे यह सम्पूर्ण जगत परिपूर्ण है ॥ ८—१०॥ शनैश्वर, शुक्र, छोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध ये क्रमशः उनके पुत्र हैं ॥ ११ ॥ ऐसे भगवान् रुद्रने प्रजापति दक्षकी अनिन्दिता पुत्री सतीको अपनी भार्यारूपसे प्रहण किया ॥ १२ ॥ हे द्विजसत्तम ! उस सतीने दक्षपर कुपित होनेके कारण अपना शरीर त्याग दिया था। फिर वह मेनाके गर्भसे हिमाचलकी पुत्री (उमा) हुई । भगवान् शंकरने उस अनन्यपरायणा उमासे फिर भी विवाह किया ॥ १३-१४॥ मृगुके द्वारा ख्यातिने धाता और विधातानामक दो देवताओंको तथा छक्ष्मीजीको जन्म दिया जो भगवान् विष्णुकी पत्नी हुई ॥१५॥

श्रीमैत्रेयजी बोळे—भगवन् ! सुना जाता है कि लक्ष्मीजी तो अमृत-मन्यनके समय क्षीर-सागरसे उत्पन्न हुई थीं, फिर आप ऐसा कैसे कहते हैं कि वे भृगुके द्वारा ख्यातिसे उत्पन्न हुई ! ॥१६॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विजोत्तम! भगवान्का कभी संग न छोड़नेवाली जगज्जननी लक्ष्मीजी तो नित्य ही हैं और जिस प्रकार श्रीविष्णुभगवान् सर्व-व्यापक हैं वैसे ही ये भी हैं॥ १७॥ विष्णु अर्थ हैं

अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः। बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मीऽसौ सत्क्रिया त्वियम् १८ स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टिः श्रीभूमिर्भूधरो हरिः । सन्तोषो मगवाँ छक्ष्मीस्तु ष्टिमेत्रेय शाश्वती ।।१९॥ इच्छा श्रीर्भगवान्कामो यज्ञोऽसौ दक्षिणा त्वियम्। आज्याहुतिरसौ देवी पुरोडाशो जनाईनः ॥२०॥ पत्नीशाला मुने लक्ष्मीः प्राग्वंशो मधुसद्नः । चितिर्रुक्ष्मीर्हरिर्युप इध्मा श्रीर्भगवान्कुशः ॥२१॥ सामखरूपी भगवानुद्गीतिः कमलालया। खाहा लक्ष्मीर्जगन्नाथो वासुदेवो हुताशनः ॥२२॥ शक्करो भगवाञ्छोरिगौरी लक्ष्मीद्विजोत्तम । मैत्रेय केञ्चः सूर्यस्तत्प्रभा कमलालया।।२३।। विष्णुः पितृगणः पद्मा खधा शाश्वतपुष्टिदा । द्यौः श्रीः सर्वात्मको विष्णुरवकाशोऽतिविस्तरः।२४। शशाङ्कः श्रीधरः कान्तिः श्रीस्तथैवानपायिनी । धृतिर्रुक्ष्मीर्जगचेष्टा वायुः सर्वत्रगो हरिः ॥२५॥ जलिधिद्विज गोविन्दस्तद्वेला श्रीर्महामुने। **लक्ष्मीखरूपमिन्द्राणी** देवेन्द्रो मधुस्रदनः ॥२६॥ यमश्रक्षयः साक्षाद्भोर्णा कमलालया। ऋद्भिः श्रीः श्रीधरो देवः खयमेव घनेश्वरः ॥२७॥ गौरी रुक्ष्मीर्महामागा केशवो वरुणः खयम् । श्रीर्देवसेना विप्रेन्द्र देवसेनापतिईरिः ॥२८॥ अवष्टम्भो गदापाणिः शक्तिर्लक्ष्मीर्द्विजोत्तम । काष्ट्रा लक्ष्मीनिमेषोऽसौ मुहूर्त्तोऽसौ कला त्वियम्२९ ज्योत्स्वा लक्ष्मीः प्रदीपोऽसौ सर्वः सर्वेश्वरो हरिः ।

और ये वाणी हैं, हिर नियम हैं और ये नीति हैं, भगवान् विष्णु वोध हैं और ये बुद्धि हैं, तथा वे धर्म हैं और ये सिकाया हैं ॥ १८ ॥ हे मैत्रेय ! भगवान् जगतके स्रष्टा हैं और लक्ष्मीजी सृष्टि हैं, श्रीहरि भूधर (पर्वत अथवा राजा) हैं और लक्ष्मीजी भूमि हैं तथा भगवान सन्तोष हैं और छक्ष्मीजी नित्य-तुष्टि हैं ॥१९॥ भगवान् काम हैं और लक्ष्मीजी इच्छा हैं, वे यज्ञ हैं और ये दक्षिणा हैं, श्रीजनार्दन पुरोडाश हैं और देवी लक्ष्मीजी आज्याह्नति (घृतकी आह्नति) हैं ॥२०॥ हे मुने ! मधुसूदन यजमानगृह हैं और छक्ष्मीजी पत्नी-शाला हैं, श्रीहरि यूप हैं और लक्ष्मीजी चिति हैं तथा भगवान् कुशा हैं और लक्ष्मीजी इध्मा हैं ॥२१॥ भगवान् सामखरूप हैं और श्रीकमलादेवी उद्गीति हैं, जगत्पति भगवान् वासुदेव हुताशन हैं और लक्ष्मीजी खाहा हैं ॥ २२ ॥ हे द्विजोत्तम ! भगवान् विष्णु शंकर हैं और श्रीलक्ष्मीजी गौरी हैं, मैत्रेय ! श्रीकेशव सूर्य हैं और कमळवासिनी श्रीलक्ष्मीजी उनकी प्रभा हैं ॥ २३ ॥ श्रीविष्णु पितृगण हैं और श्रीकमला नित्य पृष्टिदायिनी खधा हैं, विष्णु अति विस्तीर्ण सर्वात्मक अवकाश हैं और छक्ष्मीजी खर्गछोक हैं ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीधर चन्द्रमा हैं और श्रीलक्ष्मीजी उनकी अक्षय कान्ति हैं, हिर सर्वगामी वायु हैं और लक्ष्मीजी जगच्चेष्टा (जगत्की गति) और धृति (आधार) हैं ॥ २५॥ हे महामुने ! श्रीगोविन्द समुद्र हैं और हे द्विज ! छक्ष्मीजी उसकी तरङ्ग हैं, मगवान् मधुसूदन देवराज इन्द्र हैं और छक्ष्मीजी इन्द्राणी हैं ॥ २६ ॥ चक्रपाणि भगवान् यम हैं और श्रीक्रमला यमपत्नी घूमोणी हैं, देवाधिदेव श्रीविष्णु कुबेर हैं और श्रीलक्मी-जी साक्षात् ऋद्धि हैं ॥ २७॥ श्रीकेशव खयं वरुण हैं और महाभागा लक्ष्मीजी गौरी हैं, हे द्विजराज ! श्रीहरि देवसेनापति खामिकार्तिकेय हैं और श्रीलक्ष्मोजी देवसेना हैं ॥२८॥ हे द्विजोत्तमं ! भगवान् गदाधर आश्रय हैं और लक्ष्मीजी शक्ति हैं, भगवान् निमेष हैं और लक्ष्मीजी काष्टा हैं, वे मुहूर्त हैं और ये कला हैं ॥२९॥ सर्वेश्वर सर्वरूप श्रीहरि दीपक हैं और

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

लताभूता जगन्माता श्रीविष्णुर्दुमसंज्ञितः ॥३०॥ विभावरी श्रीदिवसो देवश्रक्रगदाधरः । वरप्रदो वरो विष्णुर्वधः पद्मवनालया ॥३१॥ नदस्वरूपी भगवाञ्च्रीर्नदीरूपसंस्थिता । ध्वजश्र पुण्डरीकाक्षः पताका कमलालया ॥३२॥ तृष्णा लक्ष्मीर्जगन्नाथो लोमो नारायणः परः । रती रागश्र मैत्रेय लक्ष्मीर्गोविन्द एव च ॥३३॥ किं चातिवहुनोक्तेन सङ्घेपेणेदमुच्यते ॥३४॥ देवतिर्यङ्मजुष्यादौ पुन्नामा भगवान्हरिः । स्त्रीनाम्नी श्रीश्र विज्ञेया नानयोविंद्यते परम् ॥३५॥

श्रीलक्ष्मीजी ज्योति हैं, श्रीविष्णु वृक्षरूप हैं और जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी लता हैं ॥३०॥ चक्रगदाघरदेव श्रीविष्णु दिन हैं और लक्ष्मीजी रात्रि हैं, वरदायक श्रीहरि वर हैं और पद्मिवासिनी श्रीलक्ष्मीजी वधू हैं ॥३१॥ भगवान् नद हैं और श्रीजी नदी हैं, कमलनयन भगवान् ध्वजा हें और कमलल्या लक्ष्मीजी पताका हैं ॥३२॥ जगदीश्वर परमात्मा नारायण लोम हैं और लक्ष्मीजी तृष्णा हैं तथा हे मैत्रेय ! रित और राग भी साक्षात् श्रीलक्ष्मी और गोविन्दरूप ही हैं ॥३३॥ अधिक क्या कहा जाय ? संक्षेपमें, यह कहना चाहिये कि देव, तिर्यक् और मनुष्य आदिमें पुरुषवाची भगवान् हिर हैं और स्नोवाची श्रीलक्ष्मीजी, इनके परे और कोई नहीं है ॥ ३४-३५॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८॥ -•।>>⊀ॐभ≤••--

नवाँ अध्याय

दुर्वासाजीके शापसे इन्द्रका पराजय, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न हुए भगवान्का प्रकट होकर देवताओंको समुद्र-मन्थनका उपदेश करना तथा देवता और दैत्योंका समुद्र-मन्थन।

श्रीपराशर उवाच

इदं च शृणु मैत्रेय यत्पृष्टोऽहमिह त्वया।
श्रीसम्बन्धं मयाप्येतच्छ्रुतमासीन्मरीचितः ॥ १॥
दुर्वासाः शङ्करस्यांशश्रचार पृथिवीमिमाम्।
स ददर्श स्रजं दिच्यामृषिविद्याधरीकरे॥ २॥
सन्तानकानामित्रलं यसा गन्धेन वासितम्।
अतिसेच्यमभूद्रसन् तद्दनं वनचारिणाम्॥ ३॥
उन्मत्तव्रधिग्वप्रसां दृष्टा शोभनां स्रजम्।
तां ययाचे वरारोहां विद्याधरवध्रं ततः॥ ४॥
याचिता तेन तन्वङ्गी मालां विद्याधराङ्गना।
ददौ तसै विशालाक्षी सादरं प्रणिपत्य तम्॥ ५॥
तामादायात्मनो मूर्धि स्रजस्नुन्मत्तरूपधृक्।
कत्वा स विशो मैत्रेय परिवाधान सेदिनीस् ॥ ६॥।

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! तुमने इस समय मुझसे जिसके विषयमें पूछा है वह श्रीसम्बन्ध (लक्ष्मीजीका इतिहास) मैंने भी मरीचि ऋषिसे सुना था, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ, [सावधान होकर] सुनो ॥ १ ॥ एक वार शंकरके अंशावतार श्रीदुर्वासाजी पृथिवीतलमें विचर रहे थे । त्रूमते-त्रूमते उन्होंने एक विद्याधरीके हाथोंमें सन्तानक पृष्पोंकी एक दिव्य माला देखी । हे ब्रह्मन् ! उसकी गन्धसे सुवासित होकर वह वन वनवासियोंके लिये अति सेवनीय हो रहा था ॥ २-३ ॥ तब उन उन्मत्तवृत्तिवाले विप्रवरने वह सुन्दर माला देखकर उसे उस विद्याधर-सुन्दरीसे माँगा ॥ ४ ॥ उनके माँगनेपर उस वड़े-वड़े नेत्रोंवाली कृशांगी विद्याधरीने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम कर वह माला दे दी ॥ ५ ॥

तामादायात्मनो मुर्झि स्नजग्रुन्मत्तरूपधृक्। हे मैत्रेय ! उन उन्मत्तवेषधारी विप्रवरने उसे छेकर कृत्वा स विप्रो मैत्रेय परित्रभामः मेदिनीय् ॥ ६॥ अपने मन्तकपर डाल लिया और पृथिवीपर विचरने

स दद्शी तमायान्तग्रुन्मत्तरावते स्थितम् । त्रैलोक्याधिपतिं देवं सह देवैः शचीपतिम् ॥ ७॥ तामात्मनः स शिरसः स्रजम्रन्मत्तपद्पदाम्। आदायामरराजाय चिश्वेपोन्मत्तवन्ध्रुनिः ॥ ८॥ गृहीत्वाऽमरराजेन स्रगैरावतमूर्द्धनि । न्यस्ता रराज कैलासशिखरे जाह्नवी यथा ॥ ९॥ मदान्धकारिताक्षोऽसौ गन्धाकृष्टेन वारणः । करेणाघाय चिक्षेप तां सर्जं धरणीतले ॥१०॥ ततञ्जुक्रोध भगवान्दुर्वासा ग्रुनिसत्तमः। मैत्रेय देवराजं तं क्रुद्धश्चेतदुवाच ह ॥११॥ दुर्वासा उवाच

ऐश्वर्यमदुर्ष्टात्मन्नतिस्तब्धोऽसि वासव । श्रियो धाम स्नजं यस्त्वं महत्तां नाभिनन्दसि ॥१२॥ प्रसाद इति नोक्तं ते प्रणिपातपुरःसरम् । हर्षोत्फ्रल्लकपोलेन न चापि शिरसा धृता ॥१३॥ मया दत्तामिमां मालां यसान्न वहु मन्यसे। त्रैलोक्यश्रीरतो मृढ विनाश्रमुपयास्यति ॥१४॥ मां मन्यसे त्वं सद्दशं नूनं शक्रेतरद्विजैः। अतोऽवमानमसासु मानिना भवता कृतम् ॥१५॥ महत्ता भवता यसात्रिक्षप्ता माला महीतले । तसात्त्रणप्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति ॥१६॥ यस सञ्जातकोपस भयमेति चराचरम् । तं त्वं मामतिगर्वेण देवराजावमन्यसे ॥१७॥

श्रीपराशर उवाच

महेन्द्रो वारणस्कन्धादवतीर्य त्वरान्वितः। प्रसादयामास मुनि दुर्वाससमकलमपम् ॥१८॥ श्रसाद्यमानः स तदा त्रणिपातपुरःसरम् । इत्युवाच सहस्राक्षं दुर्वासाः मुनिसत्तमः ।।१९॥ दुर्वासाजी अससे इस प्रकार कहने लगे ॥ १९॥

छगे ॥ ६ ॥ इसी समय उन्होंने उन्मत्त ऐरावतपर चढ़-कर देवताओंके साथ आते हुए त्रैलोक्याधिपति शचीपति इन्द्रको देखा ॥ ७ ॥ उन्हें देखकर मुनिवर दुर्वासाने उन्मत्तके समान वह मतवाले भौरोंसे गुन्नायमान माला अप ने शिरपरसे उतारकर देवराज इन्द्रके ऊपर फेंक दी ॥ ८॥ देवराजने उसे छेकर ऐरावतके मस्तकपर डाल दी; उस समय वह ऐसी सुशोभित हुई मानो कैळारा पर्वतके शिखरपर श्रीगंगाजी विराजमान हों ॥ ९॥ उस मदोन्मत्त हाथीने भी उसकी गन्धसे आकर्षित हो उसे सूँडसे सूँघकर पृथिवीपर फेंक दिया ॥ १० ॥ हे मैत्रेय ! यह देखकर मुनिश्रेष्ठ भगवान् दुर्वासाजी अति क्रोधित हुए और देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोले ॥ ११॥

दुर्वासाजीने कहा-अरे ऐश्वर्यके मदसे दृषितचित्त इन्द्र ! तू बड़ा ढीठ है, तूने मेरी दी हुई सम्पूर्ण शोभाकी धाम मालाका कुछ भी आदर नहीं किया ! ॥१२॥ अरे ! त्ने न तो प्रणाम करके 'वड़ी कृपा की' ऐसा ही कहा और न हर्षसे प्रसन्नवदन होकर उसे अपने शिरपर ही रक्खा ॥ १३॥ रे मूढ़ ! त्ने मेरी दी हुई माळाका कुछ भी मूल्य नहीं किया, इसलिये तेरा त्रिलोकीका वैभव नष्ट हो जायगा ॥ १४ ॥ इन्द्र ! निश्चय ही त् मुझे और ब्राह्मणोंके समान ही समझता है, इसीलिये तुझ अति मानीने हमारा इस प्रकार अपमान किया है।।१५॥ अच्छा, त्ने मेरी दी हुई मालाको पृथिवीपर फेंका है इसिंख्ये तेरा यह त्रिमुबन भी शीघ्र ही श्रीहीन, हो जायगा ॥ १६ ॥ रे देवराज ! जिसके क्रुद्ध होनेपर सम्पूर्ण चराचर जगत् भयभीत हो जाता है उस मेरा ही तूने अति गर्वसे इस प्रकार अपमान किया ! ॥१०॥

श्रीपराशरजी बोले-तब तो इन्द्रने तुरन्त ही ऐरावत हाथीसे उतरकर निष्पाप मुनिवर दुर्वासाजी-को [अनुनय-विनय करके] प्रसन्न किया ॥ १८॥ तब उसके प्रणामादि करनेसे प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ

दुर्वासा उवाच

नाहं कृपालुहृद्यों न च मां भजते क्षमा ।
अन्ये ते मुनयः शक्र दुर्शाससमयेहि माम् ॥२०॥
गौतमादिभिरन्येस्त्वं गर्वमारोपितो मुघा ।
अक्षान्तिसारसर्वस्वं दुर्शाससमयेहि माम् ॥२१॥
विस्तृष्टार्यद्यासारेस्स्तोत्रं कुर्वद्भिरुचकैः ।
गर्वं गतोऽसि येनैवं मामप्यद्यावमन्यसे ॥२२॥
ज्वलज्जटाकलापस्य भृकुटीकुटिलं मुस्तम् ।
निरीक्ष्य किस्त्रिभुवने मम यो न गतो भयम् ॥२३॥
नाहं क्षमिष्ये वहुना किम्रुक्तेन शतक्रतो ।
विद्यम्बनामिमां भूयः करोष्यनुनयात्मिकाम्॥२४॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्त्वा प्रययो विप्रो देवराजोऽपि तं पुनः ।

आरु हैरावतं ब्रह्मन् प्रययावमरावतीम् ॥२५॥

ततः प्रभृति निःश्रीकं सक्षकं भ्रवनत्रयम् ।

मैत्रेयासीदपध्वस्तं सङ्गीणौषिषवीरुषम् ॥२६॥

न यज्ञाः समवर्तन्त न तपस्यन्ति तापसाः ।

न च दानादिधर्मेषु मनश्रके तदा जनः ॥२७॥

निःसच्चाः सकला लोका लोभाद्यपहतेन्द्रियाः ।

खल्पेऽपि हि वभूवुस्ते साभिलाषा द्विजोत्तम॥२८॥

यतः सच्चं ततो लक्ष्मीः सच्चं भूत्यनुसारि च ।

निःश्रीकाणां कुतः सच्चं विना तेन गुणाः कुतः।२९।

वलशौर्याद्यभावश्र पुरुषाणां गुणैर्विना ।

लङ्घनीयः समस्तस्य बलशौर्यविवर्षितः ॥३०॥

भवत्यपध्वस्तमतिलिङ्घितः प्रथितः पुमान् ॥३१॥

एवमत्यन्तिनःश्रीके त्रैलोक्ये सच्चवर्षिते ।

दुर्वासाजी बोळे—इन्द्र! मैं कृपालु-चित्त नहीं हूँ, मेरे अन्तःकरणमें क्षमाको स्थान नहीं है। वे मुनिजन तो और ही हैं; तुम समझो, मैं तो दुर्वासा हूँ न ? ॥ २० ॥ गौतमादि अन्य मुनिजनोंने व्यर्थ ही तुझे इतना मुँह लगा लिया है; पर याद रख, मुझ दुर्वासाका सर्वस्व तो क्षमा न करना ही है ॥ २१ ॥ दयाम् ति वसिष्ठ आदिके वढ़-वढ़कर स्तुति करनेसे त् इतना गर्वीला हो गया कि आज मेरा अपमान करने चला है ॥ २२ ॥ अरे ! आज त्रिलोक्तीमें ऐसा कौन है जो मेरे प्रज्वलित जटाकलाप और टेढ़ी मृकुटिको देखकर भयमीत न हो जाय ? ॥२३॥ रे शतक्रतो ! त् वारम्वार अनुनय-विनय करनेका होंग क्यों करता है ? तेरे इस कहने-सुननेसे क्या होगा ? मैं क्षमा नहीं कर सकता ॥ २४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे ब्रह्मन्! इस प्रकार कह वे विप्रवर वहाँसे चल दिये और इन्द्र भी ऐरावतपर चढ़कर अमरावतीको चले गये ॥ २५ ॥ हे मैत्रेय ! तमीसे इन्द्रके सहित तीनों छोक वृक्ष-छता आदिके क्षीण हो जानेसे श्रीहीन और नष्ट-श्रष्ट होने छगे॥ २६॥ तबसे यज्ञोंका होना बन्द हो गया, तपस्वियोंने तप करना छोड़ दिया तथा छोगोंका दान आदि धर्मोंमें चित्त नहीं रहा ॥ २०॥ हे द्विजोत्तम! सम्पूर्ण छोक लोभादिके वशीभूत हो जानेसे सत्त्वशून्य (सामर्ध्यहीन) हो गये और तुच्छ वस्तुओंके लिये भी लालायित रहने लगे ॥ २८ ॥ जहाँ सत्त्व होता है वहीं लक्ष्मी रहती है और सत्त्व भी छक्ष्मीका ही साथी है। श्रीहीनोंमें मला सत्त्व कहाँ ? और विना सत्त्वके गुण कैसे ठहर सकते हैं ? ॥ २९ ॥ विना गुर्णोके पुरुपमें वल, शौर्य आदि समीका अमाव हो जाता है और निर्वेछ तथा अशक्त पुरुष समीसे अपमानित होता है ॥ ३०॥ अपमानित होनेपर प्रतिष्ठित पुरुषकी बुद्धि विगइ जाती है ॥ ३१॥

एवमत्यन्तिनिःश्रीके त्रैलोक्ये सत्त्ववर्जिते । इस प्रकार त्रिलोक्तीके श्रीहीन और सत्त्वरहित हो जानेपर दैत्य और दानवोंने देवताओंपर चढ़ाई कर दी देवान् प्रति वलोद्योगं त्वलद्भिते यदानवाः ॥३२॥ ॥३२॥ सत्त्व और वैभवसे शन्य होनेपर भी दैत्योंने लोभ-

लोभाभिभृता निःश्रीका दैत्याः सत्त्वविवर्जिताः ।
श्रिया विहीनैनिःसत्त्वेदेवैश्रक्रस्ततो रणम् ॥३३॥
विजितास्त्रिदशा दैत्यैरिन्द्राद्याः श्ररणं ययुः ।
पितामहं महाभागं हुताशनपुरोगमाः ॥३४॥
यथावत्कथितो देवैर्नद्वा प्राह ततः सुरान् ।
परावरेशं शरणं व्रजध्वमसुरार्दनम् ॥३५॥
उत्पत्तिस्थितिनाशानामहेतुं हेतुमीश्वरम् ।
प्रजापतिपति विष्णुमनन्तमपराजितम् ॥३६॥
प्रधानपुंसोरजयोः कारणं कार्यभृतयोः ।
प्रणतार्त्तिहरं विष्णुं स वः श्रेयो विधास्यति ॥३७॥

श्रीपराशर उवाच

एवम्रुक्त्वा सुरान्सर्वान् ब्रह्मा लोकपितामहः। श्रीरोदस्योत्तरं तीरं तैरेव सहितो ययौ ॥३८॥ स गत्वा त्रिद्दौः सर्वैः समवेतः पितामहः। तुष्टाव वाग्मिरिष्टाभिः परावरपतिं हरिम् ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

नमामि सर्वं सर्वेशमनन्तमजमन्ययम् ।
लोकधाम धराधारमप्रकाशमभेदिनम् ॥४०॥
नारायणमणीयांसमशेषाणामणीयसाम् ।
समस्तानां गरिष्ठं च भूरादीनां गरीयसाम् ॥४१॥
यत्र सर्वं यतः सर्वध्रुत्पन्नं मत्पुरःसरम् ।
सर्वभृतश्र यो देवः पराणामि यः परः ॥४२॥
परः परस्मात्पुरुपात्परमात्मखरूपधृक् ।
योगिमिश्चिन्त्यते योऽसौ मुक्तिहेतोर्म्रभ्रक्षभिः॥४३॥
सन्तादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः ।
स ग्रद्धः सर्वश्रद्धेम्यः पुमानाद्यः प्रसीदत् ॥४४॥
कलाकाष्ठाम्रहूर्त्तादिकालस्त्रस्य गोचरे ।
यस्य शक्तिनं ग्रुद्धस्य स नो विष्णुः प्रसीदत् ॥४५॥।

वश निःसत्त्व और श्रीहीन देवताओं से घोर युद्ध ठाना ॥३३॥ अन्तमें दैत्योंद्वारा देवतालोग परास्त हुए । तब इन्द्रादि समस्त देवगण अग्निदेवको आगे कर महाभाग पितामह श्रीब्रह्माजोकी शरण गये ॥ ३४ ॥ देवताओं से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर श्रीब्रह्माजीने उनसे कहा, "हे देवगण ! तुम दैत्य-दल्लन परावरेत्वर भगवान् विष्णुकी शरण जाओ, जो [आरोपसे] संसारकी उत्पत्ति, श्रिति और संहारके कारण हैं किन्तु [वास्तवमें] कारण भी नहीं हैं और जो चराचरके ईत्वर, प्रजापतियों के स्वामी, सर्वव्यापक, अनन्त और अजेय हैं, तथा जो अजन्मा किन्तु कार्यरूपमें परिणत हुए प्रधान (मृल्प्रकृति) और पुरुषके कारण हैं एवं शरणागतवत्सल हैं । [शरण जानेपर] वे अवश्य तुम्हारा मंगल करेंगे" ॥३५–३७॥

श्रीपराशरजी घोळे—हे मैत्रेय ! सम्पूर्ण देव-गणोंसे इस प्रकार कह लोकपितामह श्रीत्रह्माजी भी उनके साथ क्षीरसागरके उत्तरी तटपर गये ॥ ३८ ॥ वहाँ पहुँचकर पितामह ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ परावरनाथ श्रीविष्णुभगवान्की अति मङ्गलमय वाक्योंसे स्तुति की ॥ ३९ ॥

ब्रह्माजी कहने लगे—जो समस्त अणुओंसे भी अणु और पृथिवी आदि समस्त गुरुओं (भारी पदार्थी) से भी गुरु (भारी) हैं उन निखिळळोकविश्राम, पृथिवीके आधारखरूप, अप्रकाश्य, अमेद्य, सर्वेरूप, सर्वेश्वर, अनन्त, अज और अन्यय नारायणको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४०-४१॥ मेरेसहित सम्पूर्ण जगत् जिसमें स्थित है, जिससे उत्पन्न हुआ है और जो देव सर्वभूतमय है तथा जो पर (प्रधानादि) से भी पर है; जो पर पुरुषसे भी पर है, मुक्ति-लाभके लिये मोक्षकामी मुनिजन जिसका ध्यान धरते हैं तथा जिस ईझ्वरमें सत्त्वादि प्राकृतिक गुणोंका सर्वथा अभाव है वह समस्त शुद्ध पदार्थीसे भी परम शुद्ध परमात्मस्वरूप आदि-पुरुष हमपर प्रसन्न हों ॥४२-४४॥ जिस शुद्धस्वरूप भगवान्की शक्ति (विभूति) कला-काष्टा और मुहूर्त आदि काल-क्रमका विषय नहीं है, वे भगवान विष्ण हमप्र प्रसन् हों ॥ १५॥ जो गुद्धस्वरूप होकर भी

प्रोच्यते परमेशो हि यः शुद्धोऽप्युपचारतः । प्रसीदतु स नो विष्णुरात्मा यः सर्वदेहिनाम् ।।४६।। यः कारणं च कार्यं च कारणस्यापि कारणस् । कार्यस्थापि च यः कार्यं प्रसीदतु स नो हरिः ॥४७॥ कार्यकार्यस्य यत्कार्यं तत्कार्यस्यापि यः स्वयम् । तत्कार्यकार्यभूतो यस्ततश्च प्रणताः सा तम् ॥४८॥ कारणं कारणस्थापि तस्य कारणकारणम्। तत्कारणानां हेतुं तं प्रणताः स परेक्वरम् ॥४९॥ भोक्तारं भोग्यभृतं च स्रष्टारं सृज्यमेव च। कार्यकर्तस्वरूपं तं प्रणताः सा परं पदम् ॥५०॥ विशुद्धवोधविन्तत्यमजमक्षयमन्ययम् अन्यक्तमविकारं यत्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५१॥ न स्थूलं न च सक्ष्मं यन्न विशेषणगोचरम् । तत्पदं परमं विष्णोः प्रणमामः सदाऽमलम् ॥५२॥ यस्यायुतायुतांशांशे विश्वशक्तिरियं स्थिता । परब्रह्मखरूपं यत्प्रणमामस्तमव्ययम् ॥५३॥ यद्योगिनः सदोद्युक्ताः पुण्यपापक्षयेऽक्षयम् । पश्यन्ति प्रणवे चिन्त्यं तद्विष्णोः परमं पदम्।।५४।। यन देवा न मुनयो न चाहं न च शङ्करः। जानन्ति परमेशस्य तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५५॥ शक्तयो यस देवस ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाः भवन्त्यभूतपूर्वस्य तद्विष्णोः परमं पद्म् ॥५६॥ सर्वभूतात्मन्सर्व सर्वाश्रयाच्युत । सर्वेश

उपचारसे परमेश्वर (परमा=महालक्ष्मी+ईश्वर=पति) अर्थात् लक्ष्मीपति कहलाते हैं और जो समस्त देह-धारियोंके आत्मा हैं वे श्रीविष्णभगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ४६ ॥ जो कारण और कार्यरूप हैं तथा कारण-के भी कारण और कार्यके भी कार्य हैं वे श्रीहरि हम-पर प्रसन्न हों ॥ ४७॥ जो कार्य (महत्तस्व) के कार्य (अहंकार) का भी कार्य (तन्मात्रापञ्चक) है उसके कार्य (भूतपञ्चक) का भी (ब्रह्माण्ड) जो स्वयं है और जो उसके कार्य (ब्रह्मा-दक्षादि) का भी कार्यभूत (प्रजापतियोंके पत्र-पौत्रादि) है उसे हम प्रणाम करते हैं ॥ ४८॥ तथा जो जगतके कारण (ब्रह्मादि) का कारण (ब्रह्माण्ड) और उसके कारण (भूतपञ्चक) के कारण (पञ्च-तन्मात्रा) के कारणों (अहंकार-महत्तत्त्वादि) का भी हेत् (मूलप्रकृति) है उस परमेश्वरको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४९॥ जो भोक्ता और भोग्य, स्रष्टा और सुज्य तथा कत्ती और कार्यरूप स्वयं ही है उस परमपदको हम प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥ जो विशुद्ध बोधस्वरूप, नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय, अव्यक्त और अविकारी है वही विष्णका परमपद (परस्वरूप) है ॥ ५१ ॥ जो न स्थूल है न सूक्ष्म और न किसी अन्य विशेषणका विषय है वहीं भगवान् विष्णुका नित्य-निर्मल परमपद है, हम उसको प्रणाम करते हैं॥ ५२॥ जिसके अयुतांश (दश हजारवें अंश) के अयुतांशमें यह विस्वरचनाकी शक्ति स्थित है तथा जो परब्रह्मस्वरूप है उस अव्ययको हम प्रणाम करते हैं ॥ ५३ ॥ नित्य-यक्त योगिगण अपने पुण्य-पापादिका क्षय हो जानेपर ॐकारद्वारा चिन्तनीय जिस अविनाशी पदका साक्षात्कार करते हैं वहां भगवान् विष्णुका परमपद है ॥ ५४ ॥ जिसको देवगण, मुनिगण, शंकर और मैं-कोई भी नहीं जान सकते वही परमेश्वर श्रीविष्णु-का परमपद है ॥ ५५ ॥ जिस अभूतपूर्व देवकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप शक्तियाँ हैं वहीं भगवान् विष्णुका परमपद है ॥ ५६ ॥ हे सर्वेक्वर ! हे सर्वभूतात्मन् ! हे सर्वरूप ! हे सर्वाधार ! हे अन्युत ! हे विष्णो ! हम प्रसीद विष्णो भक्तानां व्रज नो दृष्टिगोचरम् ॥५७॥ भक्तोंपर प्रसन्न होकर हमें दर्शन दीजिये ॥ ५७॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मणस्त्रिदशास्ततः । प्रणम्योचुः प्रसीदेति व्रज नो दृष्टिगोचरम्।।५८।। यनायं भगवान् ब्रह्मा जानाति परमं पदम् । तन्नताः स जगद्धाम तव सर्वगताच्युत ॥५९॥ इत्यन्ते वचसस्तेषां देवानां ब्रह्मणस्तथा। बृहस्पतिपुरोगमाः ॥६०॥ ऊचर्देवर्षयस्सर्वे आद्यो यज्ञपुमानीड्यः पूर्वेषां यश्र पूर्वजः । तत्रताः स जगत्स्रष्टुः स्रष्टारमविशेषणम् ॥६१॥ यज्ञमूर्त्तिधराव्यय । भगवन्भृतभव्येश प्रसीद प्रणतानां त्वं सर्वेषां देहि दर्शनम् ॥६२॥ एप ब्रह्मा सहासाभिः सहरुद्रैस्त्रिलोचनः। सर्वादित्यैः समं पूषा पावकोऽयं सहाग्रिभिः।।६३॥ अश्विनौ वसवश्रेमे सर्वे चैते मरुद्रणाः। साध्या विश्वे तथा देवा देवेन्द्रश्रायमीश्वरः ॥६४॥ प्रणामप्रवणा नाथ दैत्यसैन्यैः पराजिताः । शरणं त्वामनुप्राप्ताः समस्ता देवतागणाः ॥६५॥

श्रीपराशर उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु भगवाञ्छङ्खचऋधृक्। जगाम दुर्शनं तेषां मैत्रेय परमेश्वरः ।।६६॥ तं दृष्टा ते तदा देवाः शृङ्खचक्रगदाधरम् । अपूर्वरूपसंस्थानं तेजसां राशिमूर्जितम्।।६७।। प्रणम्य प्रणताः सर्वे संक्षोभस्तिमितेक्षणाः । तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं पितामहपुरोगमाः ॥६८॥

देवा ऊनुः

नमो नमोऽविशेषस्त्वं त्वं ब्रह्मा त्वं पिनाकधृक्। इन्द्रस्त्वमग्निः पवनो वरुणः सविता यमः ॥६९॥ वसवो मरुतः साध्या विश्वेदेवगणाः भवान् ।

श्रीपराशरजी बोले न्त्रहाजीके इन उद्गारोंको सुनकर देवगण भी प्रणाम करके बोले-- "प्रभो! हमपर प्रसन्न होकर हमें दर्शन दीजिये॥ ५८॥ हे जगद्धाम सर्वगत अच्युत ! जिसे ये भगवान ब्रह्माजी भी नहीं जानते, आपके उस परमपदको हम प्रणाम करते हैं" ॥ ५९॥

तदनन्तर ब्रह्मा और देवगणोंके बोछ चुकनेपर बृहस्पति आदि समस्त देवर्षिगण कहने छगे—॥ ६०॥ "जो परम स्तवनीय आद्य यज्ञ-पुरुष हैं और पूर्वजोंके भी पूर्वपुरुष हैं उन जगत्के रचयिता निर्विशेष परमात्माको हम नमस्कार करते हैं ॥ ६१ ॥ हे भूत-भव्येश यज्ञमूर्तिघर भगवन् ! हे अव्यय ! हम सब शरणागतोंपर आप प्रसन्न होइये और दर्शन दीजिये ॥ ६२ ॥ हे नाथ ! हमारे सहित ये ब्रह्माजी, रुद्रोंके सहित भगवान् शंकर, बारहों आदित्योंके अग्नियोंके सहित पावक सहित भगवान् पूषा, और ये दोनों अश्विनीकुमार, आठों वसु, समस्त मरुद्रण, साध्यगण, विश्वेदेव तथा देवराज इन्द्र ये सभी देवगण दैत्य-सेनासे पराजित होकर अति प्रणत हो आपकी शरणमें आये हैं" ॥ ६३-६५॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! इस प्रकार स्तुति किये जानेपर शंख-चक्रधारी भगवान् परमेश्वर उनके सम्मुख प्रकट हुए || ६६ || तब उस शंख-चक्रगदाधारी उत्कृष्ट तेजोराशिमय अपूर्व दिव्य मूर्तिको देखकर पितामह आदि समस्त देवगण अति विनय-पूर्वक प्रणामकर क्षोभवश चिकत-नयन हो उन कमल-नयन भगवान्की स्तुति करने छगे ॥ ६७-६८॥

देवगण बोले-हे प्रभो ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप निर्विशेष हैं तथापि आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही शंकर हैं तथा आप ही इन्द्र, अग्नि, पवन, वरुण, सूर्य और यमराज हैं ॥ ६९ ॥ हे देव ! वसुगण, मरुद्रण, साध्यगण और विस्वेदेवगण भी आप ही हैं, तथा आपके सम्मुख जो यह देव-योऽयं तवाग्रतो देव समीपं Pragagivi Silastri Collectiga है। हे हो हो हो हो हो हो हो हो अप ही हैं

स त्वमेव जगत्स्रष्टा यतः सर्वगतो भवान ॥७०॥ त्वं यज्ञस्त्वं वषद्कारस्त्वमोङ्कारः प्रजापतिः। विद्या वेद्यं च सर्वात्मंस्त्वन्मयं चाखिलं जगत्॥७१॥ त्वामार्ताः शरणं विष्णो प्रयाता दैत्यनिर्जिताः । वयं प्रसीद सर्वात्मंस्तेजसाप्याययस्य नः ॥७२॥ तावदार्त्तिस्तथा वाञ्छा तावन्मोहस्तथाऽसुखम्। यावन याति शरणं त्वामशेषाघनाशनम् ॥७३॥ त्वं प्रसादं प्रसन्नात्मन् प्रपन्नानां कुरुष्व नः । तेजसां नाथ सर्वेषां खशक्त्याप्यायनं कुरु ॥७४॥

श्रीपराशर उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु प्रणतैरमरेईरिः । प्रसन्नदृष्टिर्भगवानिद्माह स विश्वकृत्।।७५॥ तेजसो भवतां देवाः करिष्याम्युपबृंहणम् । वदाम्यहं यत्क्रियतां भवद्भिस्तदिदं सुराः ॥७६॥ आनीय सहिता दैत्यैः श्वीराब्धौ सकलौपधीः। प्रक्षिप्यात्रामृतार्थं ताः सकला दैत्यदानवैः । मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुिकम्।।७७॥ मथ्यताममृतं देवाः सहाये मय्यवस्थिते।।७८।। सामपूर्वं च दैतेयास्तत्र साहाय्यकर्मणि । सामान्यफलभोक्तारो यूयं वाच्या भविष्यथ ॥७९॥ मथ्यमाने च तत्राब्धौ यत्समुत्पत्सतेऽमृतम्। तत्पानाद्धलिनो युयममराश्च भविष्यथ ॥८०॥ तथा चाहं करिष्यामि ते यथा त्रिदशद्विपः । न प्राप्सन्त्यमृतं देवाः केवलं क्केशभागिनः ॥८१॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्ता देवदेवेन सर्व एव तदा सुराः। सन्धानमसुरैः कृत्वा यत्नवन्तोऽमृतेऽभवन् ॥८२॥ नानौषधीः समानीय देवदैतेयदानवाः।

क्योंकि आप सर्वत्र परिपूर्ण हैं ॥ ७० ॥ आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषटकार हैं, तथा आप ही ओंकार और प्रजापति हैं । हे सर्वात्मन् ! विद्या, वेद्य और सम्पूर्ण जगत् आपहींका खरूप तो है॥ ७१॥ हे विष्णों ! दैत्यों-से परास्त हुए हम आतुर होकर आपकी शरणमें आये हैं; हे सर्वस्वरूप! आप हमपर प्रसन्न होड्ये और अपने तेजसे हमें सशक्त कीजिये ॥ ७२ ॥ हे प्रभो ! जन्न-तक जीव सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाछे आपकी शरणमें नहीं जाता तभीतक उसमें दीनता, इच्छा, मोह और दुःख आदि रहते हैं ॥ ७३॥ हे प्रसनात्मन् ! हम शरणागतोंपर आप प्रसन्न होइये और हे नाय ! अपनी शक्तिसे हम सब देवताओं के [खोये हुए] तेजको फिर बढ़ाइये ॥ ७४ ॥

श्रीपराशरजी बोले-विनीत देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर विश्वकर्ता भगवान हरि प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले-॥ ७५॥ हे देवगण ! मैं तुम्हारे तेजको फिर बढ़ाऊँगा; तुम इस समय मैं जो कुछ कहता हूँ वह करो ॥७६॥ तुम दैत्योंके साथ सम्पूर्ण ओषघियाँ छाकर अमृतके छिये क्षीर-सागर-में डालो और मन्दराचलको मथानी तथा वासुकि नागको नेती वनाकर उसे दैत्य और दानवोंके सहित मेरी सहायतासे मथकर अमृत निकालो ॥ ७७-७८॥ तुमलोग सामनीतिका अवलम्बन कर दैत्योंसे कहो कि 'इस काममें सहायता करनेसे आपछोग भी इसके फलमें समान भाग पार्येगे' ॥ ७९ ॥ समुद्रके मथनेपर उससे जो अमृत निकलेगा उसका पान करनेसे तम सबल और अमर हो जाओगे ॥ ८० ॥ हे देवगण ! तुम्हारे छिये मैं ऐसी युक्ति करूँगा जिससे तुम्हारे द्वेपी दैत्योंको अमृत न मिछ सकेगा और उनके हिस्सेमें केवल समुद्र-मन्थनका क्रेश ही आयेगा ॥ ८१ ॥

श्रीपराशरजी बोले-तब देवदेव भगवान् विष्णु-के ऐसा कहनेपर सभी देवगण दैत्योंसे सन्धि करके अमृत-प्राप्तिके लिये यत्न करने लगे ॥ ८२ ॥ हे मैत्रेय ! देव. दानव और दैत्योंने नाना प्रकारकी ओषियाँ लाकर श्विप्त्वा श्वीराञ्चिपयसि अरद्भामलित्विषि ॥८३॥ उन्हें शरद्-ऋतुके आकाशकी-सी निर्मल कान्तिवाले

मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम्। ततो मथितुमारब्धा मैत्रेय तरसाऽमृतम्।।८४।। विबधाः सहिताः सर्वे यतः पुच्छं ततः कृताः । कृष्णेन वासुकेर्दैत्याः पूर्वकाये निवेशिताः ॥८५॥ ते तस्य ग्रस्तनिश्वासविद्वतापहतत्विषः। निस्तेजसोऽसुराः सर्वे बभूवुरमितौजसः।।८६॥ म्रखनिश्वासवायनास्तबलाहकैः। तेनैव पुच्छप्रदेशे वर्षद्भिस्तदा चाप्यायिताः सुराः ॥८७॥ क्षीरोदमध्ये भगवान्कुर्मरूपी खयं हरिः। मन्थनाद्रेरिषष्टानं अमतोऽभून्महासुने ।।८८।। रूपेणान्येन देवानां मध्ये चक्रगदाधरः। चकर्ष नागराजानं दैत्यमध्येऽपरेण च ॥८९॥ उपर्याक्रान्तवाञ्च्छैलं बृहदूपेण केशवः। तथापरेण मैत्रेय यन दृष्टं सुरासुरैः ॥९०॥ तेजसा नागराजानं तथाप्यायितवान्हरिः। अन्येन तेजसा देवाजुपवृंहितवान्त्रभुः ॥९१॥ मथ्यमाने ततस्तसिन्श्वीराज्धौ देवदानवैः। हविर्घामाऽभवत्पूर्वे सुरभिः सुरपूजिता।।९२॥ जग्मुर्मुदं ततो देवा दानवाश्च महामुने। व्याक्षिप्तचेतसश्चैव वभूदुः स्तिमितेक्षणाः ॥९३॥ किमेतदिति सिद्धानां दिवि चिन्तयतां ततः। बभूव वारुणी देवी मदाघृणितलोचना।।९४।। कृतावर्तात्ततस्मात्श्वीरोदाद्वासय**ञ्जगत्** गन्धेन पारिजातोऽभूदेवस्त्रीनन्दनस्तरुः ॥९५॥ रूपौदार्यगुणोपेतस्तथा चाप्सरसां गणः। क्षीरोदघेः सम्रत्यको मैत्रेय परमाद्भुतः ॥९६॥ ततः शीतांश्चरभवज्जगृहे तं महेश्वरः। जगृहुश्र विषं नागाः श्रीरोदाञ्चिसम्रत्थितम् ॥९७॥ इसी प्रकारं श्रीर-सागरसे उत्पन्न हर विषको नागोंने

क्षीर-सागरके जलमें डाला और मन्दराचलको मथानी तथा वासुकि नागको नेती बनाकर वड़े वेगसे अमृत मथना आरम्भ किया ॥ ८३-८४ ॥ भगवानने जिस ओर वासुकिकी पूँछ थी उस ओर देवताओंको तथा जिस ओर मुख था उधर दैत्योंको नियुक्त किया ॥ ८५ ॥ महातेजस्वी वासुकिके मुखसे निकलते हुए निःश्वासामिसे झुलसकर सभी दैत्यगण निस्तेज हो गये ॥ ८६ ॥ और उसी श्वास-वायुसे विश्वित हुए मेघों-के पूँछकी ओर वरसते रहनेसे देवताओंकी शक्ति वढती गयी ॥ ८७॥

हे महामुने ! भगवान् खयं कूर्मरूप धारण कर क्षीर-सागरमें घूमते हुए मन्दराचलके आधार हुए ॥ ८८ ॥ और वे ही चक्र-गदाधर भगवान् अपने एक अन्य रूपसे देवताओंमें और एक रूपसे दैत्योंमें मिळकर नागराजको खींचने छगे थे ॥ ८९ ॥ तथा हे मैत्रेय ! एक अन्य विशाल रूपसे जो देवता और दैत्योंको दिखायी नहीं देता था, श्रीकेशवने जपरसे पर्वतको दबा रखा था॥ ९०॥ भगवान् श्रीहरि अपने तेजसे नागराज वासकिमें वल-का सन्चार करते थे और अपने अन्य तेजसे वे देवताओंका बल बढ़ा रहे थे ॥ ९१॥

इस प्रकार, देवता और दानवोंद्वारा क्षीर-समुद्रके मथे जानेपर पहले हिव (यज्ञ-सामग्री) की आश्रयरूपा सुरपृजिता कामधेनु उत्पन्न हुई ॥ ९२ ॥ हे महामुने ! उस समय देव और दानवगण अति आनन्दित द्वए और उसकी ओर चित्त खिंच जानेसे उनकी टकटकी बँध गयी॥ ९३॥ फिर खर्गछोकमें 'यह क्या है ? यह क्या है ?' इस प्रकार चिन्ता करते हुए सिद्धोंके समक्ष मदसे घूमते हुए नेत्रोंवाली वारुणीदेवी प्रकट हुई ॥९४॥ और पुनः मन्थन करनेपर उस क्षीर-सागरसे, अपनी गन्धसे त्रिलोकोको सुगन्धित करनेवाला तथा सुर-सुन्दरियोंका आनन्दवर्धक कल्प-वृक्ष उत्पन्न हुआ ॥ ९५॥ हे मैत्रेय ! तत्पश्चात क्षीर-सागरसे रूप और उदारता आदि गुणोंसे युक्त अति अद्भुत अप्सराएँ प्रकट हुई ॥९६॥ फिर चन्द्रमा प्रकट हुआ जिसे महादेवजीने प्रहण कर लिया।

ततो धन्त्रन्तरिर्देवः श्वेताम्त्ररधरस्ख्यम्। विश्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतस्य सम्रुत्थितः ॥९८॥ ततः खस्थमनस्कास्ते सर्वे दैतेयदानवाः। वभुचुर्मुद्दिताः सर्वे मैत्रेय मुनिभिः सह।।९९।। ततः स्फ्ररत्कान्तिमती विकासिकमले स्थिता। श्रीर्देवी पयसस्तसादुद्भता धृतपङ्कजा ॥१००॥ तां तुष्टुबुर्धुदा युक्ताः श्रीसक्तेन महर्पयः ॥१०१॥ विश्वावसुमुखास्तस्या गन्धर्वाः प्रतो ज्गः। घृताचीप्रमुखास्तत्र ननृतुश्राप्सरोगणाः ॥१०२॥ गङ्गाद्याः सरितस्तोयैः स्नानार्थम्रपतस्थिरे । दिग्गजा हेमपात्रस्थमादाय विमलं जलम् । स्नापयाश्विकरे देवीं सर्वलोकमहेश्वरीम् ॥१०३॥ क्षीरोदो रूपधृक्तसै मालामम्लानपङ्कजाम्। ददौ विभूषणान्यङ्गे विश्वकर्मा चकार ह ॥१०४॥ दिव्यमाल्याम्बरधरा स्नाता भूषणभूषिता । पञ्यतां सर्वदेवानां ययौ वश्चश्थलं हरेः ॥१०५॥ तया विलोकिता देवा हरिवक्षः स्थलस्थया। लक्ष्म्या मैत्रेय सहसा परां निर्देतिमागताः ॥१०६॥ उद्देगं परमं जग्मुर्दैत्या विष्णुपराङ्मुखाः। त्यक्ता लक्ष्म्या महाभाग विप्रचित्तिपुरोगमाः १०७ ततस्ते जगृहुदैत्या धन्वन्तरिकरस्थितम्। कमण्डलुं महावीर्या यत्रास्तेऽमृतग्रुत्तमम् ॥१०८॥ मायया मोहयित्वा तान्विष्णुः स्त्रीरूपसंश्वितः। दानवेभ्यस्तदादाय देवेभ्यः प्रददौ प्रभः ॥१०९॥ ततः पपुः सुरगणाः शक्राद्यास्तत्तद्याऽमृतम् ।

प्रहण किया ॥ ९७ ॥ फिर इनेतवस्त्रधारी साक्षात् भगवान् धन्वन्तरिजी अमृतसे भरा कमण्डलु लिये प्रकट हुए ॥ ९८ ॥ हे मैत्रेय ! उस समय मुनिगणके सहित समस्त दैत्य और दानव-गण स्वस्थ-चित्त होकर अति प्रसन्न हुए ॥९९॥

उसके पश्चात् विकसित कमल्पर विराजमान स्फुटकान्तिमयी श्रीलक्मीदेवी हाथोंमें कमल-पुष्प धारण किये क्षीर-समुद्रसे प्रकट हुई ॥ १००॥ उस समय महर्षिगण अति प्रसन्नतापूर्वक श्रीसूक्तद्वारा उनकी स्तुति करने छगे तथा विश्वावसु आदि गन्धर्व-गण उनके सम्मुख गान और घृताची आदि अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ १०१-१०२ ॥ उन्हें अपने जलसे स्नान करानेके लिये गंगा आदि नदियाँ स्वयं उपस्थित हुई और दिग्गजोंने सुवर्ण-कल्शोंमें मरे हुए उनके निर्मल जलसे सर्वलोकमहेश्वरी श्रीलक्ष्मीदेवीको स्नान कराया ॥ १०३ ॥ क्षीर-सागरने मूर्तिमान् होकर उन्हें विकसित कमल-पुष्पोंकी माला दी तथा विश्वकर्माने उनके अंग-प्रत्यंगमें विविध आभूषण पहनाये ॥१०४॥ इस प्रकार दिन्य माला और वस्त्र धारण कर, दिन्य जलसे स्नान कर, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो श्रीलक्ष्मीजी सम्पूर्ण देवताओंके देखते-देखते श्रीविष्ण-भगवानके वक्षः स्थलमें विराजमान हुई ॥ १०५॥

हे मैत्रेय! श्रीहरिके वक्षः खलमें विराजमान श्रीलक्ष्मी-जीका दर्शन कर देवताओंको अकस्मात् अत्यन्त प्रसन्ता प्राप्त हुई ॥ १०६ ॥ और हे महामाग! लक्ष्मीजीसे परित्यक्त होनेके कारण मगवान् विष्णुके विरोधी विप्रचित्ति आदि दैत्यगण परम उद्विप्त (व्याकुल) हुए ॥ १०७ ॥ तत्र उन महा-वल्वान् दैत्योंने श्रीधन्वन्तरिजीके हाथसे वह कमण्डलु छीन लिया जिसमें अति उत्तम अमृत भरा हुआ था ॥ १०८ ॥ अतः स्त्री (मोहिनी) रूपधारी मगवान् विष्णुने अपनी मायासे दानवोंको मोहित कर उनसे वह कमण्डलु लेकर देवताओंको दे दिया ॥१०९॥

ततः पपुः सुरगणाः शक्राद्यास्तत्त्वाऽमृतम् । तव इन्द्र आदि देवगण उस अमृतको पी गये; उद्यतायुधनिस्त्रिशा दैत्यास्तांश्र समम्ययुः ॥११०॥ इससे दैत्यछोग अति तीखे खङ्ग आदि शक्कोंसे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पीतेऽमृते च बिलिभिर्देवैदैंत्यचम्स्तदा।
वध्यमाना दिशो भेजे पातालं च विवेश वै।।१११॥
ततो देवा मुदा युक्ताः शङ्खचक्रगदाभृतम्।
प्रणिपत्य यथापूर्वमाशासत्तत्त्रिविष्टपम्।।११२॥

ततः प्रसन्नभाः सर्यः प्रययौ स्वेन वर्त्मना ।
ज्योतींपि च यथामार्ग प्रययुर्म्धनिसत्तम ॥११३॥
जज्वाल भगवांश्रोचैश्रारुदीप्तिर्विभावसुः ।
धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत ॥११४॥
त्रैलोक्यं च श्रिया जुष्टं बभूव द्विजसत्तम ।
शक्तश्र त्रिदशश्रेष्ठः पुनः श्रीमानजायत ॥११५॥
सिंहासनगतः शक्तस्सम्प्राप्य त्रिदिवं पुनः ।
देवराज्ये स्थितो देवीं तुष्टावाञ्जकरां ततः ॥११६॥

इन्द्र उवाच

नमस्ये सर्वलोकानां जननीमञ्जसम्भवाम्।
श्रियग्रु निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थिताम्।।११७।।
पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिमेक्षणाम्।
वन्दे पद्मग्रुक्षीं देवीं पद्मनाभित्रयामहम्।।११८।।
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनी ।
सन्ध्या रात्रिः प्रभा भूतिमेधा श्रद्धा सरस्वती।११९।
यज्ञविद्या महाविद्या गुद्धविद्या च शोभने ।
आत्मविद्या च देवि त्वं विग्रुक्तिफलदायिनी।१२०।
आन्वीक्षिकी त्रयीवार्त्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च ।
सौम्यासौम्येर्जगद्र्पस्त्वयेत्तद्देवि पूरितम्।।१२१।।
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः।

सुसिजित हो उनके ऊपर ट्रट पड़े ॥११०॥ किन्तु अमृत-पानके कारण बळवान् हुए देवताओं- हारा मारी-काटी जाकर दैत्योंकी सम्पूर्ण सेना दिशा-विदिशाओंमें भाग गयी और कुछ पाताळ्ळोकमें भी चळी गयी॥१११॥ फिर देवगण प्रसन्नतापूर्वक शङ्ख-चक्र-गदा-धारी भगवान्को प्रणाम कर पहळेहीके समान खर्गका शासन करने छगे॥११२॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समयसे प्रखर तेजोयुक्त भगवान् सूर्य अपने मार्गसे तथा अन्य तारागण भी अपने-अपने मार्गसे चलने लगे ॥ ११३ ॥ सुन्दर दीप्तिशाली भगवान् अग्निदेव अत्यन्त प्रज्वलित हो उठे और उसी समयसे समस्त प्राणियांकी धर्ममें प्रवृत्ति हो गयी ॥ ११४ ॥ हे द्विजोत्तम ! त्रिलोकी श्रोसम्पन्न हो गयी और देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्र भी पुनः श्रीमान् हो गये ॥११५॥ तदनन्तर इन्द्रने खर्गलोकमें जाकर फिरसे देवराज्यपर अधिकार पाया और राजसिंहासनपर आरूढ़ हो पद्महस्ता श्रीलक्ष्मीजीकी इस प्रकार स्तुति की॥११६॥

इन्द्र बोले-सम्पूर्ण लोकोंकी जननी, विकसित कमलके सददा नेत्रोंवाली, भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान कमलोद्भवा श्रीलक्ष्मीदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ११७ ॥ कमल ही जिनका निवासस्थान है, कमल ही जिनके कर-कमलोंमें सुशोमित है, तथा कमल-दलके समान ही जिनके नेत्र हैं उन कमलमुखी कमलनाम-प्रिया श्रीकमलादेवीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ११८ ॥ हे देवि ! तुम सिद्धि हो, खधा हो, खाहा हो, सुधा हो और त्रिलोकोको पवित्र करनेवाली हो तथा तुम ही सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, विभूति, मेधा, श्रद्धा और सरखती हो ॥ ११९ ॥ हे शोमने ! यज्ञ-विद्या (कर्म-काण्ड), महाविद्या (उपासना) और गुह्मविद्या (इन्द्रजाल) तुम्हीं हो तथा हे देवि ! तुम्हीं मुक्ति-फल्ल-दायिनी आत्मविद्या हो ॥ १२०॥ हे देवि ! आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या), वेदत्रयी, वार्ता (शिल्प-वाणिज्यादि) और दण्डनीति (राजनीति) भी तुम्हीं हो। तुम्हींने अपने शान्त और उप्र रूपोंसे यह समस्त संसार व्याप्त किया हुआ है ॥ १२१ ॥ हे देवि ! तुम्हारे बिना और ऐसी कौन स्त्री है जो देवदेव

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः॥१२२॥ त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भ्रवनत्रयम् । विनष्टप्रायसभवस्वयेदानीं समेधितम् ॥१२३॥ दाराः पुत्रास्तथागारसहद्भान्यधनादिकम् । भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्त्रणाम्। १२४। शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सत्तम् । देवि त्वद्दष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम्।।१२५॥ त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता। त्वथैतद्विष्णुना चाम्य जगद्व्याप्तं चराचरम् ।१२६। मा नः कोशं तथा गोष्टं मा गृहं मा परिच्छदम् । मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि ॥१२७॥ मा पुत्रान्मा सुदृद्धर्गं मा पशून्मा विभूषणम् । त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्यलालये ॥१२८॥ सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः। त्यज्यन्ते ते नराः सद्यःसन्त्यक्ता ये त्वयामले १२९ त्वया विलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरिकलेर्गुणैः । कुलैश्वर्येश्व युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥१३०॥ स स्राघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् । स शूरः स च विकान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः १३१ सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः । पराङ्ग्रुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवछुमे।।१३२।। न ते वर्णयितं शक्ता गुणाञ्जिह्वापि वेघसः। प्रसीद देवि पद्माक्षि मास्मांस्त्याक्षीः कदाचन ।। छोड़ो ॥ १३३॥ . CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

भगवान् गदाधरके योगिजनचिन्तित सर्वयज्ञमय शरीर-का आश्रय पा सके ॥ १२२ ॥ हे देवि ! तुम्हारे छोड़ देनेपर सम्पूर्ण त्रिलोकी नष्टप्राय हो गयी थी: अव तुम्हींने उसे पुनः जीवन-दान दिया है ॥१२३॥ हे महाभागे ! स्त्री, पुत्र, गृह, धन, धान्य तथा सुहृद् ये सब सदा आपहीं के दृष्टिपातसे मनप्योंको मिलते हैं ॥ १२४ ॥ हे देवि ! तम्हारी कृपा-दृष्टिके पात्र पुरुषोंके लिये शारीरिक आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रु-पक्षका नाश और सुख आदि कुछ मी दुर्छम नहीं हैं ॥ १२५ ॥ तम सम्पूर्ण लोकोंकी माता हो और देव-देव भगवान् हरि पिता हैं । हे मातः ! तुमसे और श्रीविष्णुभगवान्से यह सकल चराचर जगत् व्याप्त है ॥ १२६ ॥ हे सर्वपावनि मातेश्वरि ! हमारे कोश (खजाना), गोष्ठ (पशु-शाला), गृह, भोगसामग्री, शरीर और स्त्री आदिको आप कभी न त्यागें अर्थात इनमें भरपूर रहें ॥ १२७॥ अयि विष्णुवक्षःस्थल-निवासिनि ! हमारे पुत्र, सुहृद, पशु और भूषण आदिको आप कमी न छोड़ें ॥ १२८ ॥ हे अमछे ! जिन मनुष्योंको तुम छोड़ देती हो उन्हें सत्त्व. (मानसिक वल) सत्य, शौच और शील आदि गुण भी शीघ्र ही त्याग देते हैं ॥ १२९ ॥ और तुम्हारी कृपा-दृष्टि होनेपर तो गुणहीन पुरुष भी शीव ही शोल आदि सम्पूर्ण गुण और कुलीनता तथा ऐश्वर्य आदिसे सम्पन हो जाते हैं ॥ १३० ॥ हे देवि ! जिसपर तुम्हारी कृपादृष्टि है वही प्रशंसनीय है, वड़ी गुणी है, वही धन्यभाग्य है, वहीं कुलीन और बुद्धिमान् है तथा वही शूरवीर और पराक्रमी है ॥ १३१॥ हे विष्णुप्रिये ! हे जगजनिन ! तुम जिससे विमुख हो उसके तो शील आदि सभी गुण तरन्त अवगुणरूप हो जाते हैं ॥ १३२ ॥ हे देवि ! तुम्हारे गुणोंका वर्णन करनेमें तो श्रीब्रह्माजीकी रसना भी समर्थ नहीं. है। [फिर मैं क्या कर संकता हूँ ?] अतः हे कमछ-नयने ! अत्र मुझपर प्रसन्न हो और मुझे कमी न

श्रीपराशर उवाच

एवं श्रीः संस्तुता सम्यक् प्राह देवी शतऋतुम् । शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वभूतस्थिता द्विज ॥१३४॥

श्रीरुवाच

परितृष्टासि देवेश स्तोत्रेणानेन ते हरे। वरं वृणीष्व यस्त्विष्टो वरदाई तवागता।।१३५॥ इन्द्र उवाच

वरदा यदि मे देवि वराहों यदि वाप्यहम् । त्रैलोक्यं न त्वया त्याज्यमेष मेऽस्तु वरः परः।१३६। स्तोत्रेण यस्तथैतेन त्वां स्तोष्यत्यव्धिसम्भवे । स त्वया न परित्याज्यो द्वितीयोऽस्तु वरो मम १३७ श्रीरुवाच

त्रैलोक्यं त्रिदशश्रेष्ठ न सन्त्यक्ष्यामि वासव।
दत्तो वरो मया यस्ते स्तोत्राराधनतुष्ट्या।।१३८।।
यश्र सायं तथा प्रातः स्तोत्रेणानेन मानवः।
मां स्तोष्यति न तस्याहं भविष्यामि पराङ्गुस्ती १३९

श्रीपराशर उवाच

एवं ददी वरं देवी देवराजाय वै पुरा ।

मैत्रेय श्रीमीहाभागा स्तोत्राराधनतोषिता ॥१४०॥

मृगोः ख्यात्यां सम्रत्पन्ना श्रीः पूर्वमुद्धेः पुनः ।

देवदानवयन्ने प्रस्ताञ्मृतमन्थने ॥१४१॥

एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः ।

अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी ॥१४२॥

पुनश्च पद्मादुत्पन्ना आदित्योभूद्यदा हरिः ।

यदा तु मार्गवो रामस्तदाभूद्धरणी त्वियम् ॥१४३॥

राधवत्वेञ्भवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि ।

अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी ॥१४४॥

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विज! इस प्रकार सम्यक् स्तुति किये जानेपर सर्वभूतिस्थिता श्रीलक्ष्मीजी सव देवताओंके सुनते हुए इन्द्रसे इस प्रकार बोलीं ॥ १२४॥

श्रीलक्ष्मीजी बोलीं-हे देवेश्वर इन्द्र! मैं तेरे इस स्तोत्रसे अति प्रसन्न हूँ; तुझको जो अमीष्ट हो वही वर माँग ले। मैं तुझे वर देनेके लिये ही यहाँ आयी हूँ ॥ १३५॥

इन्द्र बोळे-हे देवि ! यदि आप वर देना चाहती हैं और मैं भी यदि वर पानेयोग्य हूँ तो मुझको पहला वर तो यही दीजिये कि आप इस त्रिलोकीका कभी त्याग न करें ॥ १३६॥ और हे समुद्रसम्भवे ! दूसरा वर मुझे यह दीजिये कि जो कोई आपकी इस स्तोत्रसे स्तुति करे उसे आप कभी न त्यागें ॥१३७॥

श्रीलक्ष्मीजी बोलीं—हे देवश्रेष्ठ इन्द्र ! मैं अब इस त्रिलोकीको कभी न छोड़ूँगी। तेरे स्तोत्रसे प्रसन्न होकर मैं तुझे यह वर देती हूँ ॥ १३८॥ तथा जो कोई मनुष्य प्रातःकाल और सायंकालके समय इस स्तोत्रसे मेरी स्तुति करेगा उससे भी मैं कभी विमुख न होजँगी॥ १३९॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय! इस प्रकार पूर्व-कालमें महामागा श्रीलक्ष्मीजीने देवराजकी स्तोत्ररूप आराधनासे सन्तुष्ट होकर उन्हें ये वर दिये ॥१४०॥ लक्ष्मीजी पहले मृगुजीके द्वारा ख्याति नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुई थीं, फिर अमृत-मन्थनके समय देव और दानवोंके प्रयत्नसे वे समुद्रसे प्रकट हुई ॥१४१॥ इस प्रकार संसारके खामी देवाधिदेव श्रीविष्णुमगवान् जव-जव अवतार धारण करते हैं तमी लक्ष्मीजी उनके साथ रहती हैं ॥१४२॥ जब श्रीहरि आदित्यरूप हुए तो वे पद्मसे फिर उत्पन्न हुई [और पद्मा कहलायीं]। तथा जब वे परशुराम हुए तो ये पृथिवी हुई ॥१४२॥ श्रीहरिके राम होनेपर ये सीताजी हुई और कृष्णावतार-में श्रीरुक्मिणीजी हुई । इसी प्रकार अन्य अवतारोंमें भी ये भगवान्से कभी पृथक् नहीं होतीं॥१४४॥ + अर्था समात रजीत्व दूछ भामति ने वि प्रशासारेणा

विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ॥ १४५॥ श्रियो न विच्युतिस्तस्य गृहे यावत्कुलत्रयम्।।१४६।। अलक्ष्मीः कलहाधारी न तेष्वास्ते कढाचन ॥१४७॥

इति सकलविश्रत्यवाप्तिहेतः स्तुतिरियमिन्द्रमुखोद्गता हि लक्ष्म्याः । अनुदिनमिह पठचते नृभिय-

क्षीराज्यौ श्रीर्यथा जाता पूर्व भूगुसुता सती।।१४८।।

देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।

यश्रेतच्छृणुयाजनम लक्ष्म्या यश्र पठेन्नरः ।

पठचते येषु चैवेयं गृहेषु श्रीस्तुतिर्धुने ।

एतत्ते कथितं ब्रह्मन्यन्मां त्वं परिपृच्छिस ।

र्वसित न तेषु कदाचिद्प्यलक्ष्मीः ॥१४९॥

भगवान्के देवरूप होनेपर ये दिव्य शरीर धारण करती हैं और मनुष्य होनेपर मानवीरूपसे प्रकट होती हैं। विष्णुभगवान्के शरीरके अनुरूप ही ये अपना शरीर भी बना छेती हैं ॥ १४५॥ जो मनुष्य लक्ष्मीजीके जन्मकी इस कथाको सुनेगा अथवा पढ़ेगा उसके घरमें (वर्तमान आगामी और भूत) तीनों कुलोंके रहते हुए कभी लक्सीका नाश न होगा ॥ १४६ ॥ हे मुने ! जिन घरोंमें छक्ष्मीजीके इस स्तोत्रका पाठ होता है उनमें कलहकी आधारमता दरिद्रता कभी नहीं ठहर सकती ॥ १४७ ॥ हे ब्रह्मन ! तुमने जो मुझसे पृछा था कि पहले भृगुजीकी पुत्रो होकर फिर छक्ष्मीजी क्षीर-समुद्रसे कैसे उत्पन्न हुई सो मैंने तुमसे यह सब वृत्तान्त कह दिया ॥ १४८॥ इस प्रकार इन्द्रके मुखसे प्रकट हुई यह लक्ष्मीजीकी स्तुति सकल विभूतियोंकी प्राप्तिका कारण है, जो लोग इसका नित्यप्रति पाठ करेंगे उनके घरमें निर्घनता कभी नहीं रह सकेगी ॥ १४९॥

० अखानमी दि रि स्में कलाहरा इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमें ऽशे नवमोऽध्यायः॥ ९॥ of oth 1

दशवाँ अध्याय

भृगु, अग्नि और अग्निष्वात्तादि पितरोंकी सन्तानका वर्णन।

-0-C1-0=C=0-136--

श्रीमैत्रेय उवाच

कथितं मे त्वया सर्वे यत्पृष्टोऽसि मया मुने । भृगुसर्गात्त्रभृत्येष सर्गों में कथ्यतां पुनः ॥ १॥

श्रीपराशर उवाच

भूगोः ख्यात्यां सम्रत्पन्ना लक्ष्मीर्विष्णुपरिग्रहः । तथा धातृविधातारी ख्यात्यां जाती सुतौ भृगोः २ आयतिर्नियतिश्वेव मेरोः कन्ये महात्मनः। भार्ये घातृविधात्रोस्ते तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥ ३॥ प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः। ततो वेदिशरा जज्ञे प्राणस्यापि सुतं शृणु ॥ ४॥ अब प्राणकी सन्तानका वर्णन सुनो ॥ ३-४॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे मुने ! मैंने आपसे जो कुछ पूछा था वह सत्र आपने वर्णन किया: अब भूगुजीकी सन्तानसे छेकर सम्पूर्ण सृष्टिका आप मुझसे फिर वर्णन कीजिये ॥१॥

श्रीपराशरजी बोले-भृगुजीके द्वारा ख्यातिसे विष्णुपती रुक्षीजी और धाता, विधाता नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ।।२।। महात्मा मेरुकी आयति और नियति-नाम्नी कन्याएँ धाता और विधाताकी स्नियाँ थीं; उनसे उनके प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र हुए । मृकण्डु-से मार्कण्डेय और उनसे वेदशिराका जन्म हुआ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

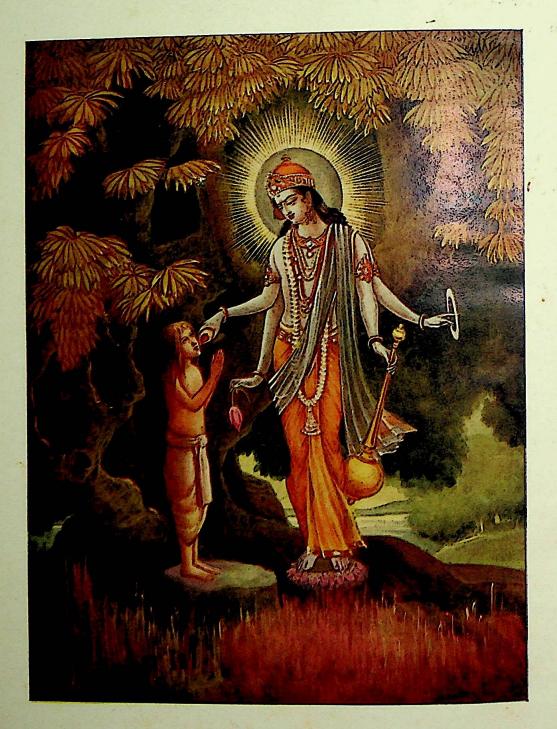
प्राणस्य द्यतिमान्पुत्रो राजवांश्व ततोऽभवत् । ततो वंशो महाभाग विस्तरं भागवो गतः ॥ ५॥

पत्नी मरीचेः सम्भूतिः पौर्णमासमस्यत । विरजाः पर्वतश्रेव तस्य पुत्रो महात्मनः ॥ ६ ॥ वंशसंकीर्तने प्रत्रान्वदिष्येऽहं ततो द्विज । स्मृतिश्राङ्गिरसः पत्नी प्रस्ता कन्यकास्तथा। सिनीवाली कुहुश्रेव राका चानुमतिस्तथा ॥ ७॥ अनस्या तथैवात्रेर्जज्ञे निष्कल्मषान्स्रतान् । सोमं दुर्वाससं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् ॥ ८॥ प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत् । पूर्वजन्मनि योऽगस्त्यः स्पृतः खायम्भुवेऽन्तरे ॥९॥ कर्दमञ्जोर्वरीयांश्र सहिष्णुश्र सुतास्त्रयः। क्षमा तु सुचुवे भार्या पुलहस्य प्रजापतेः ॥१०॥ ऋतोश्च सन्ततिर्भार्या वालखिल्यानस्रयत । मुनीनामुर्ध्वरेतसाम्। षष्टिपुत्रसहस्राणि अङ्ग्रष्टपर्वमात्राणां ज्वलद्भास्करतेजसाम् ॥११॥ ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः ।।१२।। रजो गोत्रोर्द्धवबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा। सुतपाः ग्रुक इत्येते सर्वे सप्तर्षयोऽमलाः ॥१३॥ योऽसावग्न्यभिमानी स्यात् ब्रह्मणस्तनयोऽप्रजः। तसात्साहा सुताँ छेमे त्रीनुदारौजसों द्विज ॥१४॥ पावकं पवमानं तु शुचिं चापि जलाशिनम् ।।१५।। तेषां तु सन्ततावन्ये चत्वारिंश्च पश्च च । कथ्यन्ते वह्नयश्रेते पितापुत्रत्रयं च यत् ॥१६॥ एवमेकोनपञ्चाशद्वह्नयः परिकीर्तिताः ॥१७॥ पितरो त्रसणा सृष्टा च्याख्याता ये मया द्विज । अप्रिष्वात्ता वर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये ।।१८॥ तेम्यः खघा सुते जज्ञे मेनां वै घारिणीं तथा ।

प्राणका पुत्र बुतिमान् और उसका पुत्र राजवान् हुआ। हे महाभाग ! उस राजवान्से फिर भृगुवंशका वड़ा विस्तार हुआ ॥ ५ ॥

मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको उत्पन्न किया । उस महात्माके विरजा और पर्वत दो पुत्र थे ॥ ६ ॥ हे द्विज ! उनके वंशका वर्णन करते समय मैं उन दोनोंकी सन्तानका वर्णन करूँगा । अंगिराकी पत्नी स्मृति थी उसके सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामकी कन्याएँ हुई ॥ ७ ॥ अत्रिकी मार्या अनसूयाने चन्द्रमा, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय-इन निष्पाप पुत्रोंको जन्म दिया ॥ ८ ॥ पुलस्त्यकी स्त्री प्रीतिसे दत्तोलिका जन्म हुआ जो अपने पूर्व जन्ममें खायम्भुव मन्वन्तरमें अगस्त्य कहा जाता था ॥ ९ ॥ प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमासे कर्दम, उर्वरीयान् और सहिष्णु ये तीन पुत्र हुए ॥१०॥ ऋतुंकी सन्तित नामक भायींने अँगूठेके पोरुओंके समान रारीरवाछे तथा प्रखर सूर्यके समान तेजस्वी वाछ-खिल्यादि साठ हजार ऊर्घरेता मुनियोंको जन्म दिया ॥११॥ वसिष्ठकी ऊर्जा नाम स्त्रीसे रज, गोत्र, ऊर्घ्यवाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। ये निर्मल खभाववाले समस्त मुनिगण [तीसरे मन्वन्तरमें] सप्तर्षि द्वए ॥१२-१३॥

हे द्विज ! अग्निका अभिमानी देव, जो ब्रह्माजीका ज्येष्ठ पुत्र है, उसके द्वारा खाहा नामक पत्नीसे अति तेजखी पावक, पवमान और जलको भक्षण करनेवाला ग्रुचि—ये तीन पुत्र हुए ॥ १४-१५ ॥ इन तीनोंके [प्रत्येकके पन्द्रह-पन्द्रह पुत्रके कमसे] पैंतालीस सन्तान हुईं । पिता अग्नि और उसके तीन पुत्रोंको मिलाकर ये सब अग्नि ही कहलाते हैं । इस प्रकार कुल उनचास (४९) अग्नि कहे गये हैं ॥ १६-१७ ॥ हे द्विज ! ब्रह्माजीद्वारा रचे गये जिन अनिग्नेक अग्निष्वात्ता और साग्निक बर्हिषद् आदि पितरोंके विषयमें तुमसे कहा था उनके द्वारा खधाने मेना और धारिणी नामक दो कन्याएँ उत्पन्न कीं ।



ध्रुव-नारायण

ते उमे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यावप्युमे द्विज ॥१९॥ उत्तमज्ञानसम्पन्ने सर्वैः समुदितैर्गुणैः ॥२०॥ इत्येषा दक्षकन्यानां कथितापत्यसन्ततिः। श्रद्धावान्संसरनेतामनपत्यो न जायते ॥२१॥

वे दोनों ही उत्तम ज्ञानसे सम्पन और सभी गुणोंसे युक्त ब्रह्मवादिनी तथा योगिनी थीं ॥१८-२०॥ इस प्रकार यह दक्षकन्याओंकी वंशपरम्पराका वर्णन किया। जो कोई श्रद्धापूर्वक इसका स्मरण करता है वह निःसन्तान नहीं रहता ॥२ १॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

ध्रवका वनगमन और मरीचि आदि ऋपियोंसे भेंट।

श्रीपराशर खवाच

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः खायंश्ववस्य तु । द्रौ पुत्रौ तु महावीयीं धर्मज्ञौ कथितौ तव ॥ १ ॥ तयोरुत्तानपादस्य सुरुच्यासत्तमः सुतः। अभीष्टायामभृद्रह्मान्पतुरत्यन्तवस्रभः सुनीतिर्नाम या राज्ञस्तस्यासीन्महिषी द्विज । स नातिप्रीतिमांस्तस्यामभूद्यस्या ध्रवः सुतः ॥ ३ ॥ राजासनस्थितस्याङ्कं पितुर्भातरमाश्रितम्। दृष्ट्रोत्तमं ध्रवश्रके तमारोढुं मनोरथम् ॥ ४॥ प्रत्यक्षं भूपतिस्तस्याः सुरुच्या नाभ्यनन्दत । प्रणयेनागतं पुत्रमुत्सङ्गारोहणोत्सुकम् ॥ ५ ॥ सपनीतनयं दृष्टा तमङ्कारोहणोत्सुकम्। खपुत्रं च तथारूढं सुरुचिर्वाक्यमत्रवीत् ॥ ६ ॥ क्रियते कि वृथा वत्स महानेप मनोरथः। अन्यस्रीगर्भजातेन ह्यसम्भूय ममोदरे ॥ ७॥ उत्तमोत्तममप्राप्यमविवेको हि वाञ्छसि। सत्यं सुतस्त्वमप्यस्य किन्तु न त्वं मया धृतः ॥ ८ ॥ एतद्राजासनं सर्वभृभृत्संश्रयकेतनम् । योग्यं ममेव पुत्रस्य किमात्मा क्रिइयते त्वया ॥ ९॥ चित्तको सन्ताप देता है !॥९॥ मेरे पुत्रके समान

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! मैंने तुम्हें खायम्भुवमनुके प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो महावल्यान् और धर्मज्ञ पुत्र वतलाये थे ॥ १॥ हे ब्रह्मन् ! उनमेंसे उत्तानपादकी प्रेयसी पत्नी सुरुचिसे पिताका अत्यन्त लाडला उत्तम नामक पुत्र हुआ || २ || हे द्विज ! उस राजाकी जो सनीति नामक राजमहियी थी उसमें उसका विशेष प्रेम न था। उसका पुत्र ध्रुव हुआ ॥३॥

एक दिन राजसिंहासनपर वैठे हुए पिताकी गोढ-में अपने भाई उत्तमको बैठा देख ध्रुवकी इच्छा मी गोदमें बैठनेकी हुई ॥४॥ किन्तु राजाने अपनी प्रेयसी सुरुचिके सामने, गोदमें चढ़नेके लिये उत्कण्ठित होकर प्रेमवश आये हुए उस पुत्रका आदर नहीं किया ॥५॥ अपनी सौतके पुत्रको गोदमें चढ़नेके छिये उत्सुक और अपने पुत्रको गोदमें वैठा देख सुरुचि इस प्रकार कहने लगी-॥६॥ "अरे लक्षा ! विना मेरे पेटसे उत्पन्न हुए किसी अन्य स्त्रीका पुत्र होकर भी त व्यर्थ क्यों ऐसा वड़ा मनोरथ करता है ? ।।।। त् अविवेकी है, इसीलिये ऐसी अलम्य उत्तमोत्तम वस्तुकी इच्छा करता है। यह ठीक है कि तू भी इन्हीं राजाका पुत्र है, तथापि मैंने तो तुझे अपने गर्भमें धारण नहीं किया ! ॥८॥ समस्त चक्रवंती राजाओंका आश्रयरूप यह राज-सिंहासन तो मेरे ही पुत्रके योग्य है; त व्यर्थ क्यों अपने

उचैर्मनोरथस्तेऽयं मत्पुत्रस्येव किं वृथा। सुनीत्यामात्मनो जन्म किं त्वया नावगम्यते ॥१०॥ श्रीपराशर उवाच

उत्सृज्य पितरं वालस्तच्छ्रत्वा मातृभाषितम् । जगाम कुपितो मातुर्निजाया द्विज मन्दिरम् ॥११॥ तं दृष्ट्वा कुपितं पुत्रमीषत्प्रस्फुरिताधरम्। मैत्रेयेदमभाषत ॥१२॥ सुनीतिरङ्कमारोप्य वत्स कः कोपहेतुस्ते कश्च त्वां नाभिनन्द्ति । कोऽत्रजानाति पितरं वत्स यस्तेऽपराध्यति ॥१३॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तः सकलं मात्रे कथयामास तद्यथा। सुरुचिः प्राह भूपालप्रत्यक्षमितगर्विता ॥१४॥ विनिःश्वस्येति कथिते तसिन्युत्रेण दुर्मनाः । श्वासक्षामेक्षणा दीना सुनीतिर्वाक्यमत्रवीत् ॥१५॥ सुनीतिरुवाच

सुरुचिः सत्यमाहेदं मन्दभाग्योऽसि पुत्रक । न हि पुण्यवतां वत्स सपत्तेरेवग्रुच्यते ॥१६॥ नोद्देगस्तातं कर्त्तव्यः कृतं यद्भवता पुरा । तत्कोऽपहर्त्तुं शक्नोति दातुं कश्चाकृतं त्वया ॥१७॥ तत्त्रया नात्र कर्त्तव्यं दुःखं तद्वाक्यसम्भवम् ॥१८॥ राजासनं राजच्छत्रं वराश्ववरवारणाः । यस पुण्यानि तस्येते मत्वैतच्छाम्य पुत्रक ॥१९॥ अन्यजन्मकृतैः पुण्यैः सुरुच्यां सुरुचिर्नृपः । भार्येति प्रोच्यते चान्या मद्दिधा पुण्यवर्जिता ॥२०॥ पुण्योपचयसम्पन्नस्तस्याः पुत्रस्तथोत्तमः। मम पुत्रस्तथा जातः खल्पपुण्यो ध्रुवो भवान् ॥२१॥ तथापि दुःखं न भवान् कर्जुमईति पुत्रक ।

तुझे वृथा ही यह ऊँचा मनोरथ क्यों होता है ? क्या त नहीं जानता कि तेरा जन्म सुनीतिसे हुआ है ?"।।१०॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज ! विमाताका ऐसा कथन सुन वह बालक कुपित हो पिताको छोड़कर अपनी माताके महलको चल दिया ॥११॥ हे मैत्रेय ! जिसके ओष्ठ कुछ-कुछ काँप रहे थे ऐसे अपने पुत्रको क्रोधयुक्त देख सुनीतिने उसे गोदमें विठा कर पूछा ॥१२॥ "बेटा ! तेरे क्रोधका क्या कारण है ? तेरा किसने आदर नहीं किया ? तेरा अपराय करके कौन तेरे पिताजीका अपमान करने चला है ?" ॥१३॥

श्रीपराशरजी बोले-ऐसा पूछनेपर ध्रुवने अपनी मातासे वे सब बातें कह दीं जो अति गर्वीछी सुरुचिने उससे पिताके सामने कही थीं ॥१४॥ अपने पुत्रके सिसक-सिसककर ऐसा कहनेपर दुःखिनी सुनीतिने खिल-चित्त और दीर्घ निःश्वासके कारण मिलनियना होकर कहा ॥१५॥

सुनीति बोली-वेटा ! सुरुचिने ठीक ही कहा है, अवस्य ही तू मन्दभाग्य है। हे वत्स ! पुण्य-वानोंसे उनके विपक्षी ऐसा नहीं कह सकते ॥१६॥ बचा ! तू व्याकुल मत हो, क्योंकि तूने पूर्व-जन्मोंमें जो कुछ किया है उसे दूर कौन कर संकता है ? और जो नहीं किया वह तुझे दे भी कौन सकता है ? इसिछिये तुझे उसके वाक्योंसे खेद नहीं करना चाहिये ॥१७-१८॥ हे वत्स ! जिसका पुण्य होता है उसीको राजासन, राजच्छत्र, तथा उत्तम-उत्तम घोड़े और हाथीं आदि मिछते हैं-ऐसा जानकर द शान्त हो जा ।।१९॥ अन्य जन्मोंमें किये हुए पुण्य-कर्मोंके कारण ही सुरुचिमें राजाकी सुरुचि (प्रीति) है और पुण्यहीना होनेसे ही मुझ-जैसी स्त्री केवल भार्या (भरण करने योग्य) ही कही जाती है॥२०॥ उसी प्रकार उसका पुत्र उत्तम भी बड़ा पुण्य-पुञ्जसम्पन है और मेरा पुत्र तू ध्रुव मेरे समान ही अल्प पुण्यवान् है ॥२१॥ तथापि वेटा ! तुझे दुःखी नहीं होना चाहिये, क्योंकि जिस मनुष्यको जितना मिलता है यस यावत्स तेनेव स्वेन तुष्यति मानवः ॥२२॥ वह अपनी उतनी ही पूँजीमें मग्न रहता है ॥२२॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri यदि ते दुःखमत्यर्थं सुरुच्या वचसाभवत् । तत्पुण्योपचये यतं करु सर्वफलप्रदे ॥२३॥ सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणिहिते रतः । निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति सम्पदः॥२४॥

ध्रव उवाच

अम्ब यत्त्वसिदं प्रात्थ प्रश्नमाय वची सम । नैतद्वीचसा भिन्ने हृदये मम तिष्ठति ॥२५॥ सोऽहं तथा यतिष्यामि यथा सर्वोत्तमोत्तमम् । स्थानं प्राप्साम्यशेषाणां जगतामभिपूजितम्।।२६।। सुरुचिर्दियिता राज्ञस्तस्या जातोऽसि नोदरात । प्रभावं पश्य मेऽम्य त्वं बृद्धस्थापि तवोदरे ॥२७॥ उत्तमः स मम भ्राता यो गर्भेण धृतस्तया । स राजासनमामोतु पित्रा दत्तं तथास्तु तत् ।।२८।। नान्यदत्तमभीप्सामि स्थानमम्ब खकर्मणा । इच्छामि तदहं स्थानं यन प्राप पिता मम ॥२९॥

श्रीपराशर उवाच निर्जगाम गृहान्मातुरित्युक्त्वा मातरं ध्रवः । पुराच निर्गम्य ततस्तद्वाद्योपवनं ययौ ॥३०॥ ददर्श मुनींस्तत्र सप्त पूर्वागतान्ध्रवः । कृष्णाजिनोत्तरीयेषु विष्टरेषु समास्थितान् ॥३१॥ स राजपुत्रस्तान्सर्वान्त्रणिपत्याभ्यभाषत । सम्यगभिवादनपूर्वकम् ॥३२॥ प्रश्रयावनतः

भ्रव उवाच उत्तानपादतनयं मां निबोधत सत्तमाः। जातं सुनीत्यां निर्वेदाद्युष्माकं प्राप्तमन्तिकम्।।३३॥ ग्लानिके कारण आपके निकट आया

और यदि सुरुचिके वाक्योंसे तुझे अत्यन्त दःख ही इआ है तो सर्वफल्दायक पुण्यके संग्रह करनेका प्रयत कर ॥२३॥ तू सुशील, पुण्यात्मा, प्रेमी और समस्त प्राणियोंका हितैपी वन, क्योंकि जैसे नीची भूमिकी ओर ढलकता हुआ जल अपने-आप ही पात्रमें आ जाता है वैसे ही सत्पात्र मनुष्यके पास खतः ही समस्त सम्पत्तियाँ आ जाती हैं ।।२ १।।

भ्रव बोळा-माताजी ! तमने मेरे चित्तको शान्त करनेके लिये जो वचन कहे हैं वे दुर्वाक्योंसे विधे हुए मेरे हृदयमें तनिक भी नहीं ठहरते ॥२५॥ इसिलेये मैं तो अन वहीं प्रयत करूँ गा जिससे सम्पूर्ण लोकोंसे आदरणीय सर्वश्रेष्ट पदको प्राप्त कर सकूँ ॥२६॥ राजाकी प्रेयसी तो अवस्य सुरुचि ही है और मैंने उसके उदरसे जन्म भी नहीं लिया है, तथापि हे माता ! अपने गर्भमें बढ़े हुए मेरा प्रभाव भी तुम देखना ॥२७॥ उत्तम, जिसको उसने अपने गर्भमें धारण किया है, मेरा भाई ही है। पिताका दिया हुआ राजासन वही प्राप्त करे। [भगवान करें] ऐसा ही हो ॥२८॥ माताजी ! मैं किसी दूसरेके दिये हुए पदका इच्छुक नहीं हूँ; मैं तो अपने पुरुषार्थसे ही उस पद-की इच्छा करता हूँ जिसको पिताजीने भी नहीं प्राप्त किया है ॥२९॥

श्रीपराशरजी बोले-मातासे इस प्रकार कह ध्रव उसके महल्से निकल पड़ा और फिर नगरसे वाहर आकर बाहरी उपवनमें पहुँचा ॥३०॥

वहाँ ध्रवने पहलेसे ही आये हुए सात मुनीस्वरोंको कृष्ण मृग-चर्मके विछीनोंसे युक्त आसनोंपर वेंठे देखा ॥३१॥ उस राजकुमारने उन सवको प्रणाम कर अति नम्रता और समुचित अभिवादनादिपूर्वक उनसे कहा ॥३२॥

भ्रवने कहा — हे महात्माओ ! मुझे आप सुनीतिसे उत्पन्न हुआ राजा उत्तानपादका पुत्र जाने । मैं आत्म-ग्लानिके कारण आपके निकट आया हूँ ॥३३॥

ऋषय ऊचुः

चतुःपञ्चाब्दसम्भूतो बालस्त्वं नृपनन्दन। निर्वेदकारणं किश्चित्तव नाद्यापि वर्तते ॥३४॥ न चिन्त्यं भवतः किञ्चिद्ध्रियते भूपतिः पिता । न चैवेष्टवियोगादि तव पश्याम बालक ॥३५॥ श्रीरे न च ते व्याधिरस्माभिरुपलक्ष्यते। निर्वेदः किनिमित्तत्ते कथ्यतां यदि विद्यते ॥३६॥ श्रीपराशर उवाच

ततः स कथयामास सुरुच्या यदुदाहृतम्। तिश्वाम्य ततः प्रोचुर्ग्धनयस्ते परस्परम् ॥३७॥ अहो क्षात्रं परं तेजो वालस्यापि यदक्षमा । सपत्न्या मातुरुक्तं यद्धृदयान्नापसपिति ॥३८॥ मो भो क्षत्रियदायाद निर्वेदाद्यन्त्रयाधुना । कर्तुं व्यवसितं तनः कथ्यतां यदि रोचते ॥३९॥ यच कार्यं तवासाभिः साहाय्यममितद्यते । विवक्षुस्त्वमस्माभिरुपलक्ष्यसे ॥४०॥ तदुच्यतां घ्रुव उवाच

नाहमर्थमभीप्सामि न राज्यं द्विजसत्तमाः। तत्स्थानमेकमिच्छामि भ्रुक्तं नान्येन यत्पुरा ॥४१॥ एतन्मे क्रियतां सम्यक्षथ्यतां प्राप्यते यथा। स्थानमग्रयं समस्तेभ्यः स्थानेभ्यो ग्रुनिसत्तमाः।४२। मरीचिरुवाच

अनाराधितगोविन्दैर्नरैः स्थानं नृपात्मज । न हि सम्प्राप्यते श्रेष्टं तसादाराधयाच्युतम् ॥४३॥

अत्रिरुवाच

परः पराणां पुरुषो यस्य तुष्टो जनार्दनः । स प्रामोत्यक्षयं स्थानमेतत्सत्यं मयोदितम् ॥४४॥

अङ्गिरा उवाच

यसान्तः सर्वमेवेदमच्युतस्थाच्ययात्मनः।

ऋषि बोले-राजकुमार ! अभी तो त चार-पाँच वर्षका ही बालक है। अभी तेरे निर्वेदका कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता ॥३४॥ तुझे कोई चिन्ता-का विषय भी नहीं है, क्योंकि अभी तेरा पिता राजा जीवित है और हे बालक ! तेरी कोई इष्ट वस्तु खो गयी हो ऐसा भी हमें दिखायी नहीं देता ॥३५॥ तथा हमें तेरे शरीरमें भी कोई व्याधि नहीं दीख पड़ती फिर वता, तेरी ग्ळानिका क्या कारण है ? ॥३६॥

श्रीपराशरजी बोले-तब सुरुचिने उससे जो कुछ कहा था वह सब उसने कह सुनाया। उसे सुन-कर वे ऋषिगण आपसमें इस प्रकार कहने छगे ॥३७॥ 'अहो ! क्षात्रतेज कैसा प्रवल है, जिससे वालकमें भी इतनी अक्षमा है कि अपनी विमाताका कथन उसके हृदयसे नहीं टळता' ॥३८॥ हे क्षत्रियकुमार ! इस निर्वेदके कारण त्ने जो कुछ करनेका निश्चय किया है, यदि तुझे रुचे तो, वह हमलोगोंसे कह दे ॥३९॥ और हे अतुलिततेजस्वी ! यह भी बता कि हम तेरी क्या सहायता करें, क्योंकि हमें ऐसा प्रतीत होता है कि तू कुछ कहना चाहता है ॥४०॥

भ्रवने कहा-हे द्विजश्रेष्ठ ! मुझे न तो धनकी इच्छा है और न राज्यकी; मैं तो केवल एक उसी स्थानको चाहता हूँ जिसको पहले कभी किसीने न भोगा हो ॥ १॥ हे मुनिश्रेष्ट ! आपकी यही सहायता होगी कि आप मुझे भछी प्रकार यह बता दें कि क्या करनेसे वह सबसे अप्रगण्य स्थान प्राप्त हो सकता है ॥४२॥

मरीचि बोले—हे राजपुत्र ! बिना गोविन्दकी आराधना किये मनुष्यको वह श्रेष्ठ स्थान नहीं मिल सकता; अतः त् श्रीअच्युतकी आराधना कर ॥४३॥

अत्रिबोले-जो परा प्रकृति आदिसे भी परे हैं वे परमपुरुष जनार्दन जिससे सन्तुष्ट होते हैं उसी-को वह अक्षयपद मिलता है यह मैं सत्य-सत्य कहता इ ॥४४॥

अंगिरा बोले-यदि त् अप्रयस्थानका इच्छक है तो जिन अन्ययात्मा अन्युतमें यह सम्पूर्ण जगत् तुमाराघ्य गोविन्दं स्थानमग्रयं यदीच्छिसि।।४५।। ओतप्रोत है उन गोविन्दकी ही आराधना कर ॥४५॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म तथा परम्। तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्लभाम् ॥४६॥

पुलह उवाच

ऐन्द्रमिन्द्रः परं स्थानं यमाराध्य जगत्पतिम् । प्राप यज्ञपति विष्णं तमाराधय स्रवत ॥४७॥

कत्रवाच

यो यज्ञपुरुषो यज्ञो योगेशः परमः पुमान् । तिसस्तप्टे यदप्राप्यं कि तदस्ति जनार्दने ॥४८॥

वसिष्ठ उवाच

ग्रामोष्याराधिते विष्णौ मनसा यद्यदिच्छसि । त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं किम्र वत्सोत्तमोत्तमम् ॥४९॥

ध्रव उवाच

आराध्यः कथितो देवो भवद्भिः प्रणतस्य मे । मया तत्परितोपाय यज्ञप्तव्यं तदुच्यताम् ॥५०॥ यथा चाराधनं तस्य मया कार्यं महात्मनः । प्रसादसुमुखास्तन्मे कथयन्तु महर्पयः ॥५१॥

ऋषय उत्

विष्णोराराधनपरैनरैः। राजपुत्र यथा कार्यमाराधनं तन्नो यथावच्छ्रोतुमईसि ॥५२॥ बाह्यार्थोदिखलाचित्तं त्याजयेत्प्रथमं नरः। तसिनेव जगद्धाम्नि तृतः कुर्वीत निश्रलम् ॥५३॥ एवमेकाप्रचित्तेन तन्मयेन धृतात्मना। जप्तव्यं यत्रिवोधैतत्तन्नः पार्थिवनन्दन ॥५४॥ हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्ररूपिणे ॥५५॥ एतज्जजाप भगवान् जप्यं खायम्भवो मतुः। पितामहस्तव पुरा तस्य तुष्टो जनार्दनः ॥५६॥ स्वायम्भुवमनुने जपा था । तव CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पुलस्त्य बोले-जो परब्रह्म परमधाम और पर-खरूप हैं उन हरिकी आराधना करनेसे मनुष्य अति दुर्छम मोक्षपदको भी प्राप्त कर छेता है ॥४६॥

पलह बोले-हे सुन्नत ! जिन जगत्पतिकी आराधनासे इन्द्रने अत्युत्तम इन्द्रपद प्राप्त किया है त् उन यज्ञपति भगवान् विष्णुकी आराधना कर ॥४७॥

कत बोले-जो परमपुरुष यज्ञपुरुष, यज्ञ और योगेश्वर हैं उन जनार्दनके सन्तुष्ट होनेपर कौन-सी वस्त दर्जम रह सकती है ? ॥४८॥

वसिष्ठ बोले-हे वत्स ! विष्णभगवान्की आराधना करनेपर त् अपने मनसे जो कुछ चाहेगा वही प्राप्त कर छेगा, फिर त्रिछोकीके उत्तमोत्तम स्थान-की तो वात ही क्या है ? ॥४९॥

भ्रवने कहा - हे महर्षिगण! मझ विनीतको आपने आराध्यदेव तो वता दिया। अव उसको प्रसन्न करनेके छिये मुझे क्या जपना चाहिये--यह बता-इये । उस महापुरुषकी मुझे जिस प्रकार आराधना करनी चाहिये, वह आपछोग मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहिये ॥ ५०-५१ ॥

ऋषिगण बोले—हे राजकुमार ! विष्णुमगवान्-की आराधनामें तत्पर पुरुषोंको जिस प्रकार उनकी उपासना करनी चाहिये वह त् हमसे यथावत् अवण कर ॥५२॥ मनुष्यको चाहिये कि पहले सम्पूर्ण बाह्य विषयोंसे चित्तको हटावे और उसे एकमात्र उन जगदाधारमें ही स्थिर कर दे ॥५३॥ हे राजकुमार ! इस प्रकार एकाप्रचित्त होकर तन्मय-भावसे जो कुछ जपना चाहिये, वह सुन-॥५४॥ 'ॐ हिरण्यगर्भ, पुरुष, प्रधान और अन्यक्तरूप शुद्धज्ञानस्ररूप वासुदेवको नमस्कार हैं' ॥ ५५ ॥ इस (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रको पूर्वकालमें तेरे पितामह भगवान् स्वायम्भुवमनुने जपा था । तव उनसे सन्तुष्ट होकर

ददौ यथाभिलिवतां सिद्धिं त्रैलोक्यदुर्लमाम् । तथा त्वमपि गोविन्दं तोषयैतत्सदा जपन् ॥५७॥

श्रीजनार्दनने उन्हें त्रिलोकीमें दुर्लभ मनोवाञ्छित सिद्धि दी थी। उसी प्रकार त् भी इसका निरन्तर जप करता हुआ श्रीगोंविन्दको प्रसन्न कर ॥५६-५७॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

-·13460/HE1·-

बारहवाँ अध्याय

ध्रुवकी तपस्यासे प्रसन्न हुए भगवान्का आविर्भाव और उसे ध्रुवपद-दान।

श्रीपराशर उवाच

निशम्येतदशेषेण मैत्रेय नृपतेः सुतः। निर्जगाम वनात्तरमात्प्रणिपत्य स तानृषीन् ॥ १ ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानस्ततो द्विज । मधुसंज्ञं महापुण्यं जगाम यमुनातटम् ॥ २॥ _{फालाक्रो}पुनश्च मधुसंज्ञेन दैत्येनाधिष्ठितं यतः। ततो मधुवनं नाम्ना ख्यातमत्र महीतले ॥ ३॥ हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम् । श्रुत्रमो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै ॥ ४ ॥ यत्र वै देवदेवस्य सानिध्यं हरिमेधसः। सर्वपापहरे तिसासपसीर्थे चकार सः ॥ ५॥ मरीचिमुख्यैर्मुनिभिर्यथोदिष्टमभूत्तथा आत्मन्यशेषदेवेशं स्थितं विष्णुममन्यत ॥ ६ ॥ अनन्यचेतसस्तस्य ध्यायतो भगवान्हरिः। सर्वभूतगतो वित्र सर्वभावगतोऽभवत्।। ७।। मनस्यवस्थिते तस्मिन्विष्णौ मैत्रेय योगिनः। न शशाक घरा भारमुद्रोढुं भृतघारिणी।। ८।। वामपाद्स्थिते तसिन्ननामार्द्धेन मेदिनी। द्वितीयं च ननामार्डं क्षितेर्दक्षिणतः स्थिते ॥ ९॥ पादाङ्ग्रष्टेन सम्पीडच यदा स वसुधां स्थितः । तदा समस्ता वसुवा चचाल सह पर्वतैः ॥१०॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! यह सब सुनकर राजपुत्र ध्रुव उन ऋषियोंको प्रणामकर उस वनसे चल दिया ॥१॥ और हे द्विज! अपनेको कृतकृत्य-सा मानकर वह यमुनातटवर्ती अति पवित्र मधु नामक वनमें आया । आगे चलकर उस वनमें मधु नामक दैत्य रहने लगा था, इसलिये वह इस पृथ्वीतलमें मधुवन नामसे विख्यात हुआ ॥२-३॥ वहीं मधुके पुत्र छवण नामक महा-बली राक्षसको मारकर शत्रुष्तने मधुरा (मथुरा) नामकी पुरी बसायी ॥ ।। जिस (मधुवन) में निरन्तर देवदेव श्रीहरिकी सनिधि रहती है उसी सर्वपापापहारी तीर्थ-में घ्रुवने तपस्या की ।।५॥ मरीचि आदि मुनीश्वरोंने उसे जिसप्रकार उपदेश किया था उसने उसी प्रकार अपने हृदयमें विराजमान निखिलदेवेश्वर श्रीविष्णुभगवान्का घ्यान करना आरम्भ किया ॥ ६॥ इस प्रकार हे विप्र ! अनन्य-चित्त होकर ध्यान करते रहनेसे उसके हृदयमें सर्वभूतान्तर्यामी भगवान् हरि सर्वतोभावसे प्रकट हुए ॥ ७ ॥

हे मैत्रेय ! योगी ध्रुवके चित्तमें मगवान् विष्णुके सुद्रोढुं भूतधारिणी ॥ ८॥ स्थित हो जानेपर सर्व भूतोंको धारण करनेवाळी पृथिवी उसका मार न सँमाल सकी ॥८॥ उसके बार्ये चरणपर खड़े होनेसे दायाँ माग झुक गया और फिर दाँयें चरणपर खड़े होनेसे दायाँ माग झुक गया ॥९॥ और जिस समय वह पैरके अँग्ठेसे पृथिवीको (बीचसे) दबाकर खड़ा हुआ तो पर्वतोंके सृद्धित समस्त भूमण्डल विचलित हो गया॥ १०॥ १०॥ СС-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

नद्यो नदाः समुद्राश्च सङ्क्षोभं परमं ययुः । तत्क्षोभादमराः क्षोभं परं जग्मुर्महामुने ॥११॥ यामा नाम तदा देवा मैत्रेय परमाकुलाः । इन्द्रेण सह सम्मन्त्र्य ध्यानभङ्गं प्रचक्रमुः ॥१२॥ कृष्माण्डा विविधे रूपैर्महेन्द्रेण महामुने । समाधिभङ्गमत्यन्तमारव्धाः कर्ज्ञमातुराः ॥१३॥

सुनीतिर्नाम तन्माता सास्रा तत्पुरतः स्थिता। प्रत्रेति करुणां वाचमाह मायामयी तदा ।।१४॥ पुत्रकासानिवर्त्तस्व शरीरात्ययदारुणात । निर्बन्धतो मया लब्धो बहुभिस्त्वं मनोरथैः॥१५॥ दीनामेकां परित्यक्तमनाथां न त्वमहिसि । सपत्नीवचनाद्वत्स अगतेस्त्वं गतिर्मम्।।१६॥ क च त्वं पञ्चवर्षीयः क चैतद्दारुणं तपः। निवर्ततां मनः कष्टात्रिवन्धात्फलवर्जितात् ॥१७॥ कालः क्रीडनकानान्ते तदन्तेऽध्ययनस्य ते । ततः समस्तभोगानां तदन्ते चेष्यते तपः ॥१८॥ कालः क्रीडनकानां यस्तव बालस्य पुत्रक । तस्मिस्त्वमिच्छिस तपः किं नाशायात्मनो रतः।१९। मत्त्रीतिः परमो धर्मो वयोऽवस्थाकियाक्रमम् । अनुवर्त्तस्व मा मोहानिवर्त्तासादधर्मतः।।२०।। परित्यजति वत्साद्य यद्येतन्त्र भवांस्तपः। त्यक्ष्याम्यहमिह प्राणांस्ततो वै पश्यतस्तव ॥२१॥

श्रीपराशर उवाच तां प्रलापवतीमेवं वाष्पाकुलविलोचनाम् । समाहितमना विष्णौ पञ्चन्नपि न दृष्टवान् ॥२२॥

हे महामुने! उस समय नदी, नद और समुद्र आदि समी अत्यन्त क्षुट्य हो गये और उनके क्षोभसे देवताओं में भी बड़ी हलचल मची ॥ ११ ॥ हे मैत्रेय! तव याम नामक देवताओं ने अत्यन्त व्याकुल हो इन्द्रके साथ परामर्श कर उसके ध्यानको भङ्ग करनेका आयोजन किया ॥१२॥ हे महामुने! इन्द्रके साथ अति आतुर कूष्माण्ड नामक उपदेवताओं ने नानारूप धारणकर उसकी समाधि भङ्ग करना आरम्भ किया ॥१३॥

उस समय मायाहीसे रची हुई उसकी माता सनीति नेत्रोंमें आँसू भरे उसके सामने प्रकट हुई और 'हे पत्र ! हे पुत्र !' ऐसा कहकर करुणायुक्त वचन बोछने छगी [उसने कहा]-वेटा ! त शरीरको घुळानेवाळे इस भयक्रर तपका आग्रह छोड़ दे । मैंने वडी-वड़ी कामनाओं-द्वारा तुझे प्राप्त किया है ॥१४-१५॥ अरे ! मझ अकेली. अनाथा, दुखियाको सौतके कट वाक्योंसे छोड देना तुझे उचित नहीं है। वेटा ! मझ आश्रयहीनाका तो एकमात्र त् ही सहारा है ॥१६॥ कहाँ तो पाँच वर्षका त और कहाँ तेरा यह अति उप्र तप ? अरे ! इस निष्फल क्लेशकारी आग्रहसे अपना मन मोड ले ॥१७॥ अभी तो तेरे खेलने-कूदनेका समय है, फिर अध्ययनका समय आयेगा, तदनन्तर समस्त भोगोंके भोगनेका और फिर अन्तमें तपस्या करना भी ठीक होगा ॥१८॥ वेटा ! तुझ सुकुमार वालकका जो खेल-कृदका समय है उसीमें तू तपस्या करना चाहता है। तू इस प्रकार क्यों अपने सर्वनाशमें तत्पर हुआ है ? ॥१९॥ तेरा परम धर्म तो मुझको प्रसन्न रखना ही है, अतः तू अपनी आयु और अवस्थाके अनुकूछ कर्मों में ही छग, मोहका अनुवर्तन न कर और इस तपरूपी अधर्मसे निवृत्त हो ॥२०॥ वेटा ! यदि आज तू इस . तपस्याको न छोड़ेगा तो देख तेरे सामने ही मैं अपने प्राण छोड़ दूँगी ॥२१॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! भगवान् विष्णुमें चित्त स्थिर रहनेके कारण ध्रुवने उसे आँखोंमें आँसू भरकर इस प्रकार विलाप करती देखकर भी नहीं देखा ॥२२॥

वत्स वत्स सुघोराणि रक्षांस्येतानि भीषणे । वनेऽम्युद्यतशस्त्राणि समायान्त्यपगम्यताम् ॥२३॥ इत्युक्तवा प्रययौ साथ रक्षांस्याविर्वभ्रस्ततः । अस्युद्यतोग्रशस्त्राणि ज्वालामालाकुलैर्ग्रुखैः ॥२४॥ ततो नादानतीवोग्रात्राजपुत्रस्य ते पुरः। मुमुचुर्दीप्तशस्त्राणि भ्रामयन्तो निशाचराः ॥२५॥ शिवाश्र शतशो नेदुः सज्वालाकवलैर्धुखैः। त्रासाय तस्य वालस्य योगयुक्तस्य सर्वदा ॥२६॥ हन्यतां हन्यतामेष छिद्यतां छिद्यतामयम् । भक्ष्यतां भक्ष्यतां चायमित्यू चुस्ते निशाचराः ।२७। ततो नानाविधानादान् सिंहोष्ट्रमकराननाः। त्रासाय राजपुत्रस्य नेदुस्ते रजनीचराः ॥२८॥ रक्षांसि तानि ते नादाः शिवास्तान्यायुधानि च । गोविन्दासक्तचित्तस्य ययुर्नेन्द्रियगोचरम् ॥२९॥ एकाग्रचेताः सततं विष्णुमेवात्मसंश्रयम् । दृष्टवान्पृथिवीनाथपुत्रो नान्यं कथश्चन ॥३०॥ ततः सर्वासु मायासु विलीनासु पुनः सुराः । सङ्घोमं परमं जग्मुस्तत्पराभवशङ्किताः ॥३१॥ ते समेत्य जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम्। श्वरण्यं शरणं यातास्तपसा तस्य तापिताः ॥३२॥

देवा उत्तुः

देवदेव जगन्नाथ परेश पुरुषोत्तम। ध्रुवस्य तपसा तप्तास्त्वां वयं शरणं गताः ॥३३॥ दिने दिने कलालेशैः शशाङ्कः पूर्यते यथा। तथायं तपसा देव प्रयात्यृद्धिमहर्निशम् ॥३४॥ औत्तानपादितपसा वयमित्थं जनार्दन।

तब, 'अरे बेटा ! यहाँसे भाग-भाग ! देख, इस महाभयंकर वनमें ये कैसे घोर राक्षस अख-शख उठाये आ रहे हैं'—ऐसा कहती हुई वह चली गयी और वहाँ जिनके मुखसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं ऐसे अनेकों राक्षसगण अस्त-रास्त सँभाले प्रकट हो गये ॥ २३-२४ ॥ उन राक्षसों-ने अपने अति चमकीले शस्त्रोंको घुमाते हुए उस राजपुत्रके सामने वड़ा भयङ्कर कोलाहल किया॥ २५॥ उस नित्य-योग्युक्त वालकको भयभीत करनेके लिये अपने मुखसे अग्निकी छपटें निकालती हुई सैकड़ों स्यारियाँ घोर नाद करने छगीं ॥२६॥ वे राक्षसगण भी 'इसको मारो-मारो, काटो-काटो, खाओ-खाओ' इस प्रकार चिञ्चाने छगे ॥२०॥ फिर सिंह, ऊँट और मकर आदिके-से मुखवाछे वे राक्षस राजपुत्रको त्रास देनेके लिये नाना प्रकारसे गरजने लगे ॥ २८॥

किन्तु उस भगवदासक्तचित्त वालकको वे राक्षस, उनके शब्द, स्यारियाँ और अस्त-शस्त्रादि कुछ भी दिखायी नहीं दिये ॥ २९ ॥ वह राजपुत्र एकाग्र-चित्तसे निरन्तर अपने आश्रयभूत विष्णुभगवान्को ही देखता रहा और उसने किसीकी ओर किसी भी प्रकार दृष्टिपात नहीं किया ॥ ३०॥

तव सम्पूर्ण मायाके छीन हो जानेपर उससे हार जानेकी आशंकासे देवताओंको वड़ा भय हुआ॥ ३१॥ अतः उसके तपसे सन्तप्त हो वे सन्न आपसमें मिलकर जगत्के आदि-कारण, शरणागतवत्सल, अनादि और अनन्त श्रीहरिकी शरणमें गये॥ ३२॥

देवता बोले—हे देवाधिदेव, जगनाथ, परमेश्वर, पुरुषोत्तम ! हम सब ध्रुवकी तपस्यासे सन्तप्त होकर आपकी शरणमें आये हैं॥ ३३॥ हे देव! जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी कलाओंसे प्रतिदिन बढ़ता है उसी प्रकार यह भी तपस्याके कारण रात-दिन उन्नत हो रहा है ॥ ३४ ॥ हे जनार्दन ! इस उत्तान-पादके पुत्रकी तपस्यासे भयभीत होकर हम आपकी भीतास्त्वां शरणं यातास्तपसस्तं निवर्तय ॥३५॥ शरणमें आये हैं, आप उसे तपसे निवृत्त कीजिये ॥३५॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri न विद्यः किं स शक्रत्वं स्र्यत्वं किमभीप्सित । वित्तपाम्बुपसोमानां सामिलायः पदेषु किम् ॥३६॥ तदस्माकं प्रसीदेश हृदयाच्छल्यमुद्धर । उत्तानपादतनयं तपसः सन्निवर्त्तयं॥३७॥

श्रीभगवानुवाच श्रम्जुवी अस्तवः नेन्द्रत्वं न च स्र्यत्वं नैवाम्<u>युप्</u>धनेशताम् । प्रार्थयत्येप यं कामं तं करोम्यखिलं सुराः ॥३८॥ यात देवा यथाकामं खस्थानं विगतज्वराः । निवर्त्तयाम्यहं वालं तपस्यासक्तमानसम् ॥३९॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्ता देवदेवेन प्रणम्य त्रिदशास्ततः । प्रययुः स्वानि घिष्ण्यानि शतक्रतुपुरोगमाः ॥४०॥ भगवानपि सर्वात्मा तन्मयत्वेन तोषितः । गत्वा ध्रुवम्रुवाचेदं चतुर्भ्रजवपुर्हरिः ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

औत्तानपादे भद्रं ते तपसा परितोपितः। वरदोऽहमजुप्राप्तो वरं वरय सुव्रत ॥४२॥ बाह्यार्थनिरपेक्षं ते मयि चित्तं यदाहितम्। तुष्टोऽहं भवतस्तेन तद्वृणीष्व वरं परम्॥४३॥

श्रीपराशर उवाच

श्रुत्वेत्थं गदितं तस्य देवदेवस्य वालकः । उन्मीलिताक्षो दद्दशे ध्यानदृष्टं हरिं पुरः ॥४४॥ शङ्खचक्रगदाशार्ज्ज्वरासिधरमच्युतम् । किरीटिनं समालोक्य जगाम शिरसा महीम् ॥४५॥ रोमाश्चिताङ्गः सहसा साध्वसं परमं गतः । स्तवाय देवदेवस्य स चक्रे मानसं ध्रुवः ॥४६॥ किं वदामि स्तुतावस्य केनोक्तेनास्य संस्तुतिः । हम नहीं जानते, वह इन्द्रत्व चाहता है या सूर्यत्व अथवा उसे कुवेर, वरुण या चन्द्रमाके पदकी अभिलाषा है ॥ ३६ ॥ अतः हे ईश ! आप हमपर प्रसन्न होइये और इस उत्तानपादके पुत्रको तपसे निवृत्त करके हमारे हृदयका काँटा निकालिये ॥ ३० ॥

श्रीभगवान् बोले-हे सुरगण ! उसे इन्द्र, सूर्य, वरुण अथवा कुवेर आदि किसीके पदकी अभिलाषा नहीं है, उसकी जो कुछ इच्छा है वह मैं सव पूर्ण करूँगा ॥ ३८॥ हे देवगण ! तुम निश्चिन्त होकर इच्छानुसार अपने-अपने स्थानोंको जाओ । मैं तपस्यामें लगे हुए उस बालकको निवृत्त करता हूँ ॥ ३९॥

श्रीपराशरजी बोले-देवाधिदेव भगवान्के ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि समस्त देवगण उन्हें प्रणामकर अपने-अपने स्थानोंको गये ॥ ४०॥ सर्वात्मा भगवान् हरिने भी ध्रुवकी तन्मयतासे प्रसन्न हो उसके निकट चतुर्भुजरूपसे जाकर इस प्रकार कहा ॥ ४१॥

श्रीभगवान् बोले-हे उत्तानपादके पुत्र ध्रुव! तेरा कल्याण हो। मैं तेरी तपस्यासे प्रसन्न होकर तुझे वर देनेके लिये प्रकट हुआ हूँ, हे सुन्नत! त् वर माँग॥ ४२॥ त्ने सम्पूर्ण वाह्य विषयोंसे उपरत होकर अपने चित्तको मुझमें ही लगा दिया है। अतः मैं तुझसे अति सन्तुष्ट हूँ। अव त् अपनी इच्छानुसार श्रेष्ट वर माँग॥ ४३॥

श्रीपराशरजी बोले-देवाधिदेव भगवान्के ऐसे वचन सुनकर वालक ध्रुवने आँखें खोलों और अपनी ध्यानावस्थामें देखे हुए भगवान् हरिको साक्षात् अपने सम्मुख खड़े देखा ॥ ४४ ॥ श्रीअच्युतकों किरीट तथा शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुप और खड्ग धारण किये देख उसने पृथिवीपर शिर रखकर प्रणाम किया ॥ ४५ ॥ और सहसा रोमाश्चित तथा परम भयभीत होकर उसने देवदेवकी स्तुति करनेको इच्छा की ॥ ४६ ॥ किन्तु 'इनकी स्तुतिके लिये मैं क्या कहूँ ? क्या कहनेसे इनका स्तवन हो सकता है ?'

इत्याकुलमतिर्देवं तमेव शरणं ययौ ॥४७॥

ध्रव उवाच

भगवन्यदि मे तोषं तपसा परमं गतः ।
स्तोतुं तदहमिच्छामि वरमेनं प्रयच्छ मे ॥४८॥
[ब्रह्माद्यैर्यस्य वेदज्ञैर्ज्ञायते यस्य नो गतिः ।
तं त्वां कथमहं देव स्तोतुं शक्रोमि बालकः ॥
त्वद्भक्तिप्रवणं ह्येतत्परमेश्वर मे मनः ।
स्तोतुं प्रवृत्तं त्वत्पादौ तत्र प्रज्ञां प्रयच्छ मे ॥]

श्रीपराशर उवाच

शङ्खप्रान्तेन गोविन्दस्तं पस्पर्श कृताञ्जलिम् । उत्तानपादतनयं द्विजवर्य जगत्पतिः ॥४९॥ अथ प्रसन्नवदनः स क्षणान्नृपनन्दनः । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा भूतधातारमच्युतम् ॥५०॥

ध्रुव उवाच

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
भूतादिरादिप्रकृतिर्यस्य रूपं नतोऽस्मि तम्।।५१॥
शुद्धः सक्ष्मोऽखिलच्यापी प्रधानात्परतः पुमान् ।
यस्य रूपं नमस्तस्मै पुरुषाय गुणाशिने ॥५२॥
भूरादीनां समस्तानां गन्धादीनां च शाश्वतः ।
बुध्यादीनां प्रधानस्य पुरुषस्य च यः परः ॥५३॥
तं ब्रह्मभूतमात्मानमशेपजगतः पतिम् ।
प्रपद्ये शरणं शुद्धं त्वद्भृपं परमेश्वर ॥५४॥
बृहत्त्वाद्वृहंणत्वाच यद्भृपं ब्रह्मसंज्ञितम् ।
तस्मै नमस्ते सर्वात्मन्योगि चिन्त्याविकारिणे ।५५॥
सहस्रशीर्पा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात ।
सर्वच्यापी भ्रवः स्पर्शादत्यतिष्ठदृशाङ्कलम् ॥५६॥

यह न जाननेके कारण वह चित्तमें व्याकुछ हो गया और अन्तमें उसने उन देवदेवकी ही शरण छी ।।४७॥

भ्रुवने कहा-भगवन् ! आप यदि मेरी तपस्यासे सन्तुष्ट हैं तो मैं आपकी स्तुति करना चाहता हूँ आप मुझे यही वर दीजिये [जिससे मैं स्तुति कर सक्] ॥ ४८॥ [हे देव ! जिनकी गित ब्रह्मा आदि वेदज्ञजन भी नहीं जानते; उन्हीं आपका मैं बालक कैसे स्तवन कर सकता हूँ । िकन्तु हे प्रम प्रमो ! आपकी मिक्से द्वीभूत हुआ मेरा चित्त आपके चरणोंकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हो रहा है। अतः आप इसे उसके लिये बुद्धि प्रदान की जिये]।

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विजवर्य ! तब जगत्पति श्रीगोविन्दने अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए उस उत्तानपादके पुत्रको अपने (वेदमय) शङ्कके अन्त (वेदान्तमय) मागसे छू दिया ॥ ४९॥ तब तो एक क्षणमें ही वह राजकुमार प्रसन्न-मुखसे अति विनीत हो सर्वभूताधिष्ठान श्रीअच्युतकी स्तुति करने छगा॥ ५०॥

ध्रव बोले-पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार और मूल-प्रकृति-ये सब जिनके रूप हैं उन भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५१ ॥ जो अति शुद्ध, सूक्स, सर्वव्यापक और प्रधानसे भी परे हैं, वह पुरुष जिनका रूप है उन गुण-भोक्ता परमपुरुषको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५२ ॥ हे परमेश्वर ! पृथिवी आदि समस्त भूत, गन्धादि उनके गुण, बुद्धि आदि अन्तःकरणचतुष्टय तथा प्रधान और पुरुष (जीव) से भी परे जो सनातन पुरुष हैं, उन आप निख्लब्रह्माण्ड-नायक्के ब्रह्मभूत शुद्धखरूप आत्माकी मैं शर्ण हूँ ॥५३-५४॥ हे सर्वात्मन् ! हे योगियोंके चिन्तनीय! व्यापक और वर्धनशील होनेके कारण आपका जो ब्रह्मनामक खरूप है, उस विकाररहित रूपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५५ ॥ हे प्रमो ! आप हजारों मस्तकोंवाले, हजारों नेत्रोंवाले और हजारों चरणोंवाले परमपुरुप हैं, आप सर्वत्र न्याप्त हैं और [पृथिवी आदि आवरणोंके सहित] सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको व्याप्त कर दश गुण महाप्रमाणसे स्थित हैं ॥५६॥

यद्भृतं यच वै भव्यं प्रुरुपोत्तम तद्भवान्। त्वत्तो विराद् खराद् सम्राद् त्वत्तश्चाप्यधिपूरुषः ५७ अत्यरिच्यत सोऽधश्र तिर्यगूर्ध्वं च वै भुवः । त्वत्तो विश्वमिदं जातं त्वत्तो भूतभविष्यती ॥५८॥ त्वद्रूपधारिणश्चान्तर्भृतं सर्वमिदं जगत्। त्वत्तो यज्ञः सर्वहृतः पृपदाज्यं पशुद्धिधा ॥५९॥ ्रत्वत्तः ऋचोऽथ सामानि त्वत्तक्क्रन्दांसि जिन्हरे । त्वत्तो यज्रंष्यजायन्त त्वत्तोऽश्वाश्वेकतो दतः॥६०॥ गावस्त्वत्तः समुद्भतास्त्वत्तोऽजा अवयो मृगाः। त्वन्मुखाद्बाह्मणास्त्वत्तो वाहोः क्षत्रमजायत ।६१। वैश्यास्तवोरुजाः श्रुद्रास्तव पद्भर्यां सम्रद्भताः । अक्ष्णोः सूर्योऽनिलः प्राणाचन्द्रमा मनसस्तव ।६२। प्राणोऽन्तःसुपिराञ्जातो सुखाद्गिरजायत । नाभितो गगनं द्यौश्र शिरसः समवर्तत ॥६३॥ दिशः श्रोत्रात्थितिः पद्भयां त्वत्तः सर्वमभृदिदम्॥ न्यग्रोधः सुमहानल्पे यथा बीजे व्यवस्थितः । संयमे विश्वमखिलं बीजभूते तथा त्वयि।।६५॥ बीजादङ्करसम्भूतो न्यग्रोधस्तु सम्रुत्थितः । विस्तारं च यथा याति त्वत्तः सृष्टौ तथा जगत्।।६६।। यथा हि कदली नान्या त्वक्पत्राद्पि दृश्यते । एवं विश्वस्य नान्यस्त्वं त्वत्स्थायीश्वर दृश्यते ।।६७॥ ह्रादिनी सन्धिनी संविच्वय्येका सर्वसंस्थितौ ।

हे पुरुपोत्तम ! भत और भविष्यत जो कुछ पदार्थ हैं वे सव आप ही हैं तथा विराट, खराट, सम्राट् और अधिपुरुप (ब्रह्मा) आदि भी सब आपहीसे उत्पन्न हुए हैं ॥५७॥ वे ही आप इस पृथिवीके नीचे-ऊपर और इधर-उधर सब ओर बढ़े हुए हैं। यह सम्पर्ण जगत आपहींसे उत्पन्न हुआ है तथा आपहींसे भूत और भविष्यत हुए हैं ॥५८॥ यह सम्पूर्ण जगत् आपके खरूपभूत ब्रह्माण्डके अन्तर्गत है किर आपके अन्तर्गत होनेकी तो बात ही क्या है 1 जिसमें सभी पुरोडाशोंका हवन होता है वह यज्ञ, प्रपदाज्य (दिध और घृत) तथा [प्राम्य और वन्य] दो प्रकारके पश आपहीसे उत्पन्न हुए हैं ॥५९॥ आपहीसे ऋक , साम और गायत्री आदि छन्द प्रकट हुए हैं, आपहींसे यजुर्वेद-का प्रादुर्भाव हुआ है और आपहीसे अस्य तथा एक ओर दाँतवाले महिष आदि जीव उत्पन्न हुए हैं ॥६०॥ आपहीसे गोओं, वकरियों, भेड़ों और मृगोंकी उत्पत्ति हुई है; आपहीके मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य और चरणोंसे शृद्ध प्रकट हुए हैं तथा आप-हीं नेत्रोंसे सूर्य, प्राणसे वायु, मनसे चन्द्रमा, भीतरी छिद्र (नासारन्ध्र) से प्राण, मुखसे अग्नि, नामिसे आकाश, शिरसे स्वर्ग, श्रोत्रसे दिशाएँ और चरणोंसे प्रथिवी आदि उत्पन्न हुए हैं; इस प्रकार हे प्रभो ! यह सम्पूर्ण जगत् आपहींसे प्रकट हुआ है ॥६१-६४॥ जिस प्रकार नन्हेंसे बीजमें बड़ा भारी वट-वृक्ष रहता है उसी प्रकार प्रख्य-कालमें यह सम्पूर्ण जगत् वीज-खरूप आपहीमें लीन रहता है ॥६५॥ जिस प्रकार वीजसे अङ्कररूपमें प्रकट हुआ वट-वृक्ष वढ़कर अत्यन्त विस्तारवाला हो जाता है उसी प्रकार सृष्टिकालमें यह जगत् आपहींसे प्रकट होकर फैल जाता है ॥६६॥ हे ईश्वर ! जिस प्रकार केलेका पौधा छिलके और पत्तोंसे अलग दिखायी नहीं देता उसी प्रकार जगत्से आप पृथक नहीं हैं, वह आपहींमें स्थित देखा जाता है ॥६७॥ सबके आधारभूत आपमें ह्वादिनी (निरन्तर आह्नादित करनेवाली) और सन्धिनी (विच्छेदरहित) संवित (विद्याशक्ति) अभिन्नरूपसे रहती हैं। आपमें (विषयजन्य) आह्वाद या ताप देनेवाली (सात्त्विकी या तामसी) अथवा उभयमिश्रा (राजसी) कोई हादतापकरी मिश्रा त्विय नो गुणवर्जिते ॥६८॥ भी संवित् नहीं है, क्योंकि आप निर्गुण हैं ॥६८॥

CC-0. Prof. Satva Vrat Shastri Collection Nam Della Bird.

+ वरी तु मुना।

भूतभूताय पृथग्भूतैकभूताय प्रभूतभूतभूताय तुभ्यं भूतात्मने नमः ॥६९॥ व्यक्तं प्रधानपुरुषौ विराद् सम्राद् खराद् तथा । विमान्यतेऽन्तःकरणे पुरुषेष्वक्षयो भवान् ॥७०॥ सर्वसिन्सर्वभूतस्त्वं सर्वः सर्वस्वरूपधृक्। सर्व त्वत्तस्ततश्च त्वं नमः सर्वात्मनेऽस्तु ते ।।७१।। सर्वात्मकोऽसि सर्वेश सर्वभूतस्थितो यतः। कथयामि ततः किं ते सर्वे वेत्सि हृदि स्थितम् ॥७२॥ सर्वसत्त्वसमुद्भव । सर्वात्मन्सर्वभूतेश सर्वभूतो भवान्वेत्ति सर्वसत्त्वमनोरथम् ॥७३॥ यो मे मनोरथो नाथ सफलः स त्वया कृतः । तपश्च तप्तं सफलं यद्दष्टोऽसि जगत्पते ॥७४॥

श्रीभगवानुवाच

तपसस्तत्फलं प्राप्तं यद्दष्टोऽहं त्वया ध्रुव । मद्दर्शनं हि विफलं राजपुत्र न जायते।।७५॥ वरं वरय तसान्वं यथाभिमतमात्मनः। सर्वे सम्पद्यते पुंसां मयि दृष्टिपथं गते ॥७६॥ ध्रुव उवाच

भगवन्भूतभव्येश सर्वस्थास्ते भवान् हृदि । किमज्ञातं तव ब्रह्मन्मनसा यन्मयेक्षितम्।।७७॥ तथापि तुम्यं देवेश कथयिष्यामि यन्मया। प्रार्थ्यते दुर्विनीतेन हृद्येनातिदुर्रुभम्।।७८।। किं वा सर्वजगत्स्रष्टः प्रसन्ने त्विय दुर्रुभम् । स्वत्प्रसाद्फलं शुक्ते बैलोक्सं सञ्चवानि ।।७९।। ही त्रिलोक्सेको भोगता है ॥७९॥

आप [कार्यदृष्टिसे] पृथक्रूप और [कारणदृष्टिसे] एक-रूप हैं। आप ही भूतसूक्ष्म हैं और आप ही नाना जीवरूप हैं । हे भूतान्तरात्मन् ! ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६९ ॥ [योगियोंके द्वारा] अन्तः करणमें आप ही महत्तत्व, प्रधान, पुरुष, विराट् सम्राट् और खराट् आदि रूपोंसे भावना किये जाते हैं, और [क्षयशील] पुरुषोंमें आप नित्य अक्षय हैं ॥७०॥ आकाशादि सर्वभूतोंमें सार अर्थात् उनके गुण-रूप आप ही हैं; समस्त रूपोंको धारण करनेवाले होनेसे सब कुछ आप ही हैं; सब कुछ आपहींसे हुआ है; अतएव सबके द्वारा आप ही हो रहे हैं इसलिये आप सर्वात्माको नमस्कार है ॥७१॥ हे सर्वेश्वर ! आप सर्वात्मक हैं; क्योंकि सम्पूर्ण भूतोंमें व्याप्त हैं; अतः मैं आपसे क्या कहूँ शआप खयं ही सब हृदयस्थित वातोंको जानते हैं ॥७२॥ हे सर्वात्मन् ! हे सर्वभूतेश्वर ! हे सब भूतोंके आदि-स्थान ! आप सर्वभूतरूपसे सभी प्राणियोंके मनोरथींको जानते हैं ॥७३॥ हे नाथ ! मेरा जो कुछ मनोरथ था वह तो आपने सफल कर दिया और हे जगत्पते ! मेरी तपस्या भी सफल हो गयी क्योंकि मुझे आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ ॥७४॥

श्रीसगवान् बोले—हे ध्रव ! तुमको मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ, इससे अवस्य ही तेरी तपस्या तो सफल हो गयी; परन्तु हे राजकुमार ! मेरा दर्शन भी तो कभी निष्फल नहीं होता ॥७५॥ इसलिये तुझको जिस वरकी इच्छा हो वह माँग छै । मेरा दर्शन हो जानेपर पुरुषको सभी कुछ प्राप्त हो सकता है ॥७६॥

भ्रव बोले-हे भूतभव्येश्वर भगवन् ! आप सभीके अन्तःकरणोंमें विराजमान हैं। हे ब्रह्मन्! मेरे मनकी जो कुछ अभिलाषा है वह क्या आपसे छिपी हुई है शा७०॥ तो भी, हे देवेश्वर ! मैं दुर्विनीत जिस अति दुर्लभ वस्तुकी हृदयसे इच्छा करता हूँ उसे आपकी आज्ञानुसार आपके प्रति निवेदन करूँगा ॥७८॥ हे समस्त संसारको रचनेवाले परमेश्वर! आपके प्रसन्न होनेपर (संसारमें) क्या दुर्छम है ? इन्द्र भी आपके कृपाकटाक्षके फल्रूपसे नैतद्राजासनं योग्यमजातस्य ममोदरात्। इतिगर्वादवोचन्मां सपत्नी मातुरुचकैः।।८०॥ आधारभूतं जगतः सर्वेषाम्रत्तमोत्तमम्। प्रार्थयामि प्रभो स्थानं त्वत्प्रसादादतोऽव्ययम्।८१।

श्रीभगवानुवाच

यन्वया प्रार्थ्यते स्थानमेतत्प्राप्स्यति वै भवान । त्वया इं तोषितः पूर्वमन्यजन्मनि वालक ॥८२॥ त्वमासीब्रीह्मणः पूर्वं मय्येकाग्रमतिः सदा । शुश्रुषुर्निजधर्मानुपालकः ॥८३॥ मातापित्रोश्च कालेन गच्छता मित्रं राजपुत्रस्तवाभवत । यौवनेऽखिलभोगाढ्यो दर्शनीयोज्ज्वलाकृतिः।८४। तत्सङ्गात्तस्य तामृद्धिमवलोक्यातिदुर्लभाम् । भवेयं राजपुत्रोऽहमिति वाञ्छा त्वया कृता ।।८५॥ ततो यथाभिलिषता प्राप्ता ते राजपुत्रता। उत्तानपादस्य गृहे जातोऽसि ध्रुव दुर्लमे ॥८६॥ अन्येषां दुर्लभं स्थानं कुले खायम्भ्रवस्य यत् ॥८७॥ तस्यैतदपरं बाल येनाहं परितोषितः। मामाराध्य नरो मुक्तिमवामोत्यविलम्बिताम्।।८८।। मय्यपितमना बाल किम्र खर्गादिकं पदम् ॥८९॥ त्रैलोक्यादंधिके स्थाने सर्वताराग्रहाश्रयः। भविष्यति न सन्देहो मत्त्रसादाद्भवान्ध्रव ॥९०॥ सूर्यात्सोमात्तथा भौमात्सोमपुत्राद्बृहस्पतेः। सितार्कतनयादीनां सर्वर्क्षाणां तथा ध्रुव ॥९१॥ सप्तर्पाणामशेषाणां ये च वैमानिकाः सुराः। सर्वेषाम्रुपरि स्थानं तव दत्तं मया भ्रुव।।९२॥ केचिचतुर्युगं यावत्केचिन्मन्वन्तरं सुराः। तिष्ठन्ति भवतो दत्ता मुगा वै कल्पसंस्थितिः ॥९३॥ किन्तु तुझे मैं एक कल्पतककी स्थिति देता हूँ ॥९३॥

प्रभो ! मेरी सौतेली माताने गर्वसे अति बढ-बढकर मुझसे यह कहा था कि 'जो मेरे उदरसे उत्पन्न नहों है उसके योग्य यह राजासन नहीं है' ॥८०॥ अतः हे प्रभो ! आपके प्रसादसे मैं उस सर्वोत्तम एवं अव्यय स्थानको प्राप्त करना चाहता हुँ जो सम्पूर्ण विश्वका आधारभत हो ॥८१॥

श्रीभगवान् बोले-अरे वालक ! तुने अपने पूर्व-जन्ममें भी मुझे सन्तुष्ट किया था इसिटिये त जिस स्थानकी इच्छा करता है उसे अवस्य प्राप्त करेगा ॥८२॥ पूर्व-जन्ममें तु एक ब्राह्मण था और मुझमें निरन्तर एकाप्र-चित्त रहनेवाला, माता-पिताका सेवक तथा स्वधर्मका पालन करनेवाला था ॥८३॥ कालान्तरमें एक राजपत्र तेरा मित्र हो गया । वह अपनी युवावस्थामें सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न और अति दर्शनीय रूपलावण्ययुक्त था ॥८४॥ उसके सङ्गसे उसके दुर्छम वैभवको देखकर तेरी ऐसी इच्छा हुई कि 'मैं भी राजपुत्र होऊँ'।।८५॥ अतः हे ध्रव! तुझको अपनी मनोवाञ्चित राजपुत्रता प्राप्त हुई और जिन खायम्भवमनुके कुछमें और किसीको स्थान मिछना अति दुर्लभ है, उन्होंके घरमें तूने उत्तानपादके यहाँ जन्म लिया ॥८६-८७॥ अरे वालक ! ि औरोंके लिये यह स्थान कितना ही दुर्छम हो परन्तु] जिसने मुझे सन्तुष्ट किया है उसके छिये तो यह अत्यन्त तुच्छ है। मेरी. आराधना करनेसे तो मोक्षपद भी तत्काल प्राप्त हो सकता है, फिर जिसका चित्त निरन्तर मुझमें ही लगा हुआ है उसके लिये खर्गादि लोकोंका तो कहना ही क्या है ? ॥८८-८९॥ हे ध्रव ! मेरी कृपासे तू निस्सन्देह उस स्थानमें, जो त्रिलोकीमें सबसे उत्कृष्ट है, सम्पूर्ण ग्रह और तारामण्डलका आश्रय वनेगा ॥९०॥ हे ध्रव ! मैं तुझे वह ध्रव (निश्चल) स्थान देता हूँ जो सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि प्रहों, सभी नक्षत्रों. सप्तर्षियों और सम्पूर्ण विमानचारी देवगणोंसे ऊपर है ॥९१-९२॥ देवताओं मेंसे कोई तो केवल चार युगतक और कोई एक मन्वन्तरतक ही रहते हैं; सुनीतिरिप ते माता त्वदासन्नातिनिर्मला । विमाने तारका भूत्वा तावत्कालं निवत्स्यति॥९४॥ ये च त्वां मानवाः प्रातः सायं च सुसमाहिताः । कीर्त्तियिष्यन्ति तेषां च महत्पुण्यं भविष्यति॥९५॥

श्रीपराशर उवाच

एवं पूर्व जगन्नाथाद्देवदेवाञ्जनार्दनात् । वरं प्राप्य ध्रुवः स्थानमध्यास्ते स महामते ॥९६॥ स्वयं ग्रुश्रृषणाद्धम्यान्मातापित्रोश्च वै तथा । द्वादशाक्षरमाहात्म्यात्तपसश्च प्रभावतः ॥९७॥ तस्याभिमानमृद्धं च महिमानं निरीक्ष्य हि । देवासुराणामाचार्यः स्रोकमत्रोशना जगौ ॥९८॥

अहोऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य तपसः फलम् । यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥९९॥ ध्रुवस्य जननी चेयं सुनीतिनीम सनुता । अस्याश्र महिमानं कः शक्तो वर्णयितुं सुवि ॥१००॥ त्रैलोक्याश्रयतां प्राप्तं परं स्थानं स्थिरायति । स्थानं प्राप्ता परं धृत्वा या कुक्षिविवरे ध्रुवम् ॥१०१॥

यश्रैतत्कीर्त्तयेकित्यं ध्रुवस्थारोहणं दिवि । सर्वपापविनिर्धक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥१०२॥ स्थानभ्रंशं न चामोति दिवि वा यदि वा भ्रुवि । सर्वकल्याणसंयुक्तो दीर्घकालं स जीवति ॥१०३॥

तेरी माता सुनीति भी अति खच्छ तारारूपसे उतने ही समयतक तेरे पास एक विमानपर निवास करेगी ॥९४॥ और जो छोग समाहित-चित्तसे सायङ्काछ और प्रातःकाछके समय तेरा गुण-कार्तन करेंगे उनको महान् पुण्य होगा ॥ ९५॥

श्रीपराशरजी बोले—हे महामते ! इस प्रकार पूर्वकालमें जगत्पति देवाधिदेव भगवान् जनार्दनसे वर पाकर ध्रुव उस अत्युत्तम स्थानमें स्थित हुए ॥९६॥ हे मुने ! अपने माता-पिताकी धर्मपूर्वक सेवा करनेसे तथा द्वादशाक्षर-मन्त्रके माहात्म्य और तपके प्रभावसे उनके मान, वैभद एवं प्रभावकी वृद्धि देखकर देव और असुरोंके आचार्य शुक्रदेवने ये श्लोक कहे हैं—॥९७-९८॥

'अहो ! इस ध्रुवके तपका कैसा प्रभाव है ? अहो ! इसकी तपस्याका कैसा अद्भुत फल है जो इस ध्रुवको ही आगे रखकर सप्तर्षिगण स्थित हो रहे हैं ॥९९॥ इसकी यह सुनीति नामवाली माता भी अवस्य ही सत्य और हितकर वचन बोल्जेनवाली है * । संसारमें ऐसा कौन है जो इसकी महिमाका वर्णन कर सके ? जिसने अपनी कोखमें उस ध्रुवको धारण करके त्रिलोकीका आश्रयभूत अति उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया, जो मविष्यमें भी स्थिर रहनेवाला है' ॥१००-१०१॥

जो न्यक्ति ध्रुवके इस दिन्यलोक-प्राप्तिके प्रसङ्गका कीर्तन करता है वह सब पापोंसे मुक्त होकर खर्ग-लोकमें पूजित होता है।।१०२।। वह खर्गमें रहे अथवा पृथिवीमें कभी अपने स्थानसे च्युत नहीं होता तथा समस्त मङ्गलोंसे भरपूर रहकर बहुत कालतक जीवित रहता है।।१०३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥



[#] सुनीतिने भुवको प्रकाशानिक करनेका उपदेश दिया था, जिसके आचरणसे उन्हें उत्तम छोक प्राप्त हुआ। अतप्त 'सुनीति' स्नृता कही गायी है। अतप्त 'सुनीति' स्नृता कही गायी है।

तेरहवाँ अध्याय

राजा वेन और पृथुका चरित्र।

श्रीपराशर उवाच

ध्रवाच्छिष्टिं च भव्यं च भव्याच्छम् अर्वजायत । शिष्टेराधत्त सुच्छाया पश्चपुत्रानकल्मपान् ॥ १॥ रिएं रिपुझयं विम्नं वृकलं वृकतेजसम्। रिपोराधत्त बृहती चाक्षुपं सर्वतेजसम्।। २।। अजीजनत्पुष्करिण्यां वारुण्यां चाक्षुषो मनुम् । प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः ॥ ३॥ मनोरजायन्त दश नद्दलायां महौजसः। , कन्यायां तपतां श्रेष्ठ वैराजस्य प्रजापतेः ॥ ४ ॥ कुरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाञ्छचिः । अग्निष्टोमोऽतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव। अभिमन्युश्र दशमो नड्वलायां महौजसः ॥ ५॥ कुरोरजनयत्पुत्रान् पडाग्नेयी महाप्रभान्। अङ्गं सुमनसं ख्यातिं ऋतुमङ्गिरसं शिविम् ॥ ६॥ अङ्गात्स्रनीथापत्यं वै वेनमेकमजायत। प्रजार्थमृषयस्तस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम्।। ७।। वेनस्य पाणौ मथिते सम्बभूव महामुने। बैन्यो नाम महीपालो यः पृथुः परिकीर्त्तितः।। ८ ।। येन दुग्धा मही पूर्व प्रजानां हितकारणात् ॥ ९ ॥

श्रीमैत्रेय उवाच

किमर्थं मथितः पाणिर्वेनस्य परमर्पिभिः। यत्र जज्ञे महावीर्यः स पृथुर्म्गुनिसत्तम॥१०॥ श्रीपराशर जवाच

सुनीथा नाम या कन्या मृत्योः प्रथमतोऽभवत्। अङ्गस्य भार्या सा दत्ता तस्यां वेनो व्यजायत ॥११॥ स मातामहदोषेण तेन मृत्योः सुतात्मजः। निसर्गादेष मैत्रेय दृष्ट एव व्यजायत॥१२॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! ध्रुवसे [उसकी पत्नी-ने] शिष्टि और भन्यको उत्पन्न किया और भन्यसे शम्भ-का जन्म हुआ तथा शिष्टिके द्वारा उसकी पत्नी सुच्छायाने रिपु, रिपुञ्जय, विप्र, वृकल और वृक्ततेजा-नामक पाँच निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये । उनमेंसे रिपुके द्वारा ब्रहतीके गर्मसे महातेजस्वी चाक्षुपका जन्म हुआ ॥१-२॥ चाक्षुषने अपनी मार्या पुष्करणीसे जो वरुण-कुलमें उत्पन्न और महात्मा वीरण प्रजापतिकी पुत्री थी, मनुको उत्पन्न किया [जो छठे मन्वन्तर्के अधिपति हुए] ॥३॥ तपिखयोंमें श्रेष्ट मनसे वैराज प्रजापतिकी पुत्री नडवलाके गर्भमें दश महातेजस्वी पत्र उत्पन हुए ॥४॥ नड्वलासे कुरु, पुरु, शतबुम्न, तपसी, सत्यवान्, शुचि, अग्निष्टोम, अतिरात्र तथा नवाँ सुद्यम और दशवाँ अभिमन्यु इन महातेजस्वी पुत्रोंका जन्म दुआ ॥५॥ कुरुके द्वारा उसको पत्नी आग्नेयीने अङ्ग, समना. ख्याति, ऋत, अङ्गरा और शिवि इन छ: परम तेजस्वी पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥६॥ अङ्गसे सुनीयाके वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । ऋषियोंने उस (वेन) के दाहिने हाथका सन्तानके छिये किया था ॥७॥ हे महामुने ! वेनके हाथका मन्यन करनेपर उससे वैन्य नामक महीपाल उत्पन्न हुए जो पृथु नामसे विख्यात हैं और जिन्होंने प्रजाके हितके लिये पूर्वकालमें पृथिवीको दुहा था ॥८-९॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे मुनिश्रेष्ठ! परमर्पियोंने वेनके हायको क्यों मथा जिससे महापराक्रमी पृथुका जन्म हुआ ? ॥ १०॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मुने ! मृत्युकी सुनीथा नामवाली जो प्रथम पुत्री थी वह अङ्गको पत्नीरूपसे दी (व्याही) गयी थी । उसीसे वेनका जन्म हुआ ॥११॥ हे मैत्रेय ! वह मृत्युकी कन्याका पुत्र अपने मातामह (नाना) के दोपसे स्वभावसे ही दुष्ट-प्रकृति हुआ ॥१२॥ उस वेनका जिस समय महर्षियों-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अभिषिक्तो यदा राज्ये स वेनः परमिषिभः । घोषयामास स तदा पृथिव्यां पृथिवीपतिः ॥१३॥ न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं कथञ्चन । भोक्ता यज्ञस्य कस्त्वन्यो ह्याहं यज्ञपतिः प्रभुः॥१४॥ ततस्तपृषयः पूर्वं सम्पूज्य पृथिवीपतिम् । ऊचुः सामकलं वाक्यं मैत्रेय सम्रुपस्थिताः ॥१५॥

ऋषय जचुः

मो मो राजन् शृणुष्व त्वं यद्वदाम महीपते ।
राज्यदेहोपकाराय प्रजानां च हितं परम् ॥१६॥
दीर्घसत्रेण देवेशं सर्वयद्गेश्वरं हिरम् ।
पूजियप्याम भद्रं ते तस्यांश्वरते भविष्यति ॥१७॥
यद्गेन यज्ञपुरुषो विष्णुः सम्प्रीणितो नृप ।
अस्माभिर्भवतः कामान्सर्वानेव प्रदास्यति ॥१८॥
यद्गैर्यद्गेश्वरो येषां राष्ट्रे सम्पूज्यते हिरः ।
तेषां सर्वेप्सितावाप्तिं ददाति नृप भूसृताम्॥१९॥

वेन उवाच

मत्तः कोऽभ्यधिकोऽन्योऽस्ति कश्चाराच्यो ममापरः।
कोऽयं हरिरिति ख्यातो यो वो यज्ञेश्वरो मतः ।२०।
ब्रह्मा जनार्दनः शम्श्वरिन्द्रो वायुर्यमो रविः।
हुतशुग्वरुणो धाता पूषा भूमिर्निशाकरः ॥२१॥
एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः ।
नृपस्थेते शरीरस्थाः सर्वदेवमयो नृपः ॥२२॥
एवं ज्ञात्वा मयाज्ञमं यद्यथा कियतां तथा ।
न दातव्यं न यष्टव्यं न होतव्यं च मो द्विजाः॥२३॥
मर्वशुश्रूषणं धर्मो यथा स्त्रीणां परो मतः ।
ममाज्ञापालनं धर्मो मवतां च तथा द्विजाः ॥२४॥

द्वारा राजपदपर अभिषेक हुआ उसी समय उस पृथिवीपतिने संसारमरमें यह घोषणा कर दी कि 'भगवान्, यज्ञपुरुष मैं ही हूँ, मुझसे अतिरिक्त यज्ञका मोक्ता और स्वामी हो ही कौन सकता है ? इसल्पि कभी कोई यज्ञ, दान और हवन आदि न करे' ॥१३-१४॥ हे मैत्रेय ! तब ऋषियोंने उस पृथिवी-पतिके पास उपस्थित हो पहले उसकी खूब प्रशंसा कर सान्त्वनायुक्त मधुर वाणीसे कहा ॥१५॥

ऋषिगण बोळे—हे राजन्! हे पृथिवीपते! तुम्हारे राज्य और देहके उपकार तथा प्रजाके हितके लिये हम जो बात कहते हैं, सुनो ॥ १६ ॥ तुम्हारा कल्याण हो; देखो, हम बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा जो सर्व-यज्ञेश्वर देवाधिपति मगवान् हरिका पूजन करेंगे उसके फल्मेंसे तुमको भी [छठा] भाग मिलेगा ॥१७॥ हे नृप! इस प्रकार यज्ञोंके द्वारा यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर हमलोगोंके साथ तुम्हारी भी सकल कामनाएँ पूर्ण करेंगे॥ १८॥ हे राजन्! जिन राजाओंके राज्यमें यज्ञेश्वर भगवान् हरिका यज्ञोंद्वारा पूजन किया जाता है, वे उनकी सभी कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं॥ १९॥

चेन चोला—मुझसे भी बढ़कर ऐसा और कौन है जो मेरा भी पूजनीय है ? जिसे तुम यन्नेश्वर मानते हो वह 'हरि' कहलानेवाला कौन है ? ॥ २० ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, धाता, पूषा, पृथिवी और चन्द्रमा तथा इनके अतिरिक्त और भी जितने देवता शाप और कृपा करनेमें समर्थ हैं वे सभी राजाके शरीरमें निवास करते हैं, इस प्रकार राजा सर्वदेवमय है ॥ २१-२२ ॥ हे ब्राह्मणो ! ऐसा जानकर मैंने जैसी जो कुछ आज्ञान्त्री है वैसा ही करो । देखो, कोई भी दान, यज्ञ और हवन आदि न करे ॥ २३ ॥ हे द्विजगण ! स्नी-का परमधर्म जैसे अपने पतिकी सेवा करना ही माना गया है वैसे ही आपलोगोंका धर्म भी मेरी आज्ञाका पालन करना ही है ॥ २४ ॥

देखनुज्ञां महाराज मा धर्मी यातु सङ्खयम्। हविपां परिणामोऽयं यदेतद्खिलं जगत्।।२५॥

श्रीपराशर उवाच

इति विज्ञाप्यमानोऽपि स वेनः परमपिभिः । यदा ददाति नानुज्ञां प्रोक्तः प्रोक्तः पुनः पुनः।२६। ततस्ते म्रनयः सर्वे कोपामर्पसमन्विताः। हन्यतां हन्यतां पाप इत्युचुस्ते परस्परम्।।२७॥ यो यज्ञपुरुषं विष्णुमनादिनिधनं प्रभुम्। विनिन्दत्यधमाचारो न स योग्यो भ्रवः पतिः।२८। इत्युक्तवा मन्त्रपूतैस्तैः कुशैर्म्धनिगणा नृपम् । निजध्तुर्निहतं पूर्वं भगवित्रन्दनादिना ॥२९॥ ततश्र ग्रुनयो रेणुं दद्युः सर्वतो द्विज । किमेतदिति चासन्नान्पप्रच्छुस्ते जनांस्तदा ॥३०॥ आख्यातं च जनैस्तेषां चोरीभृतैरराजके। राष्ट्रे तु लोकैरारब्धं परस्वादानमातुरैः ॥३१॥ तेषाग्रदीर्णवेगानां चोराणां ग्रुनिसत्तमाः । सुमहान् दृश्यते रेणुः परवित्तापहारिणाम् ॥३२॥

ततः सम्मन्त्र्य ते सर्वे ग्रुनयस्तस्य भूभृतः । पुत्रार्थमनपत्यस्य यत्नतः ॥३३॥ ममन्थुरूरं मध्यमानात्सम्रुत्तस्थौ तस्योरोः पुरुषः किल । दग्धस्थुणाप्रतीकाशः खर्वाटास्योऽतिहस्रकः।३४। किं करोमीति तान्सर्वान्स विप्रानाह चातुरः। निषीदेति तमृजुस्ते निषादस्तेन सोऽभवत् ।।३५।। ततस्तत्सम्भवा जाता विनध्यशैलनिवासिनः। निषादा मुनिशार्द्रल पापकर्मोपलक्षणाः ॥३६॥ तेन द्वारेण तत्पापं निष्कान्तं तस्य भूपतेः ।

ऋषिगण बोले—महाराज ! आप ऐसी आज्ञा दीजिये, जिससे धर्मका क्षय न हो । देखिये, यह सारा जगत् हिव (यज्ञमें हवन की हुई सामग्री) का ही परिणाम है ॥ २५॥

श्रीपराशरजी बोले—महर्षियोंके इस प्रकार वारम्वार समझाने और कहने-सुननेपर भी जब वेनने ऐसी आज्ञा नहीं दी तो वे अत्यन्त कृद्ध और अमर्षयुक्त होकर आपसमें कहने छगे—'इस पापीको मारो, मारो! ॥ २६-२७॥ जो अनादि और अनन्त यज्ञपुरुष प्रभु विष्णुकी निन्दा करता है वह अनाचारी किसी प्रकार पृथिवीपति होनेके योग्य नहीं है' ॥ २८ ॥ ऐसा कह मुनिगणोंने, भगवान्की निन्दा आदि करनेके कारण पहले ही मरे हुए उस राजाको मन्त्रसे पवित्र किये हुए क्रशाओंसे मार डाला ॥२९॥

हे द्विज ! तदनन्तर उन मुनीस्वरोंने सव ओर वड़ी धूछि उठती देखी, उसे देखकर उन्होंने अपने निकटवर्ती छोगोंसे पूछा—"यह क्या है ?" ॥ ३०॥ उन पुरुषोंने कहा-"राष्ट्रके राजाहीन हो जानेसे दीन-दुखिया छोगोंने चोर वनकर दूसरोंका धन छटना आरम्भ कर दिया है॥ ३१॥ हे मुनिवरो ! उन तीत्र वेगवाले परधनहारी चोरोंके उत्पातसे ही यह बड़ी भारी धूळि उड़ती दीख रही है" ॥ ३२॥

तव उन सब मुनी स्वरोंने आपसमें सलाह कर उस पुत्रहीन राजाकी जंघाका पुत्रके छिये यत्नपूर्वक मन्यन किया ॥३३॥ उसकी जंघाके मथनेपर उससे एक पुरुष उत्पन्न हुआ जो जले ठूँठके समान काला, अत्यन्त नाटा और छोटे मुखवाछा था ॥३४॥ उसने अति आतुर होकर उन सव ब्राह्मणोंसे कहा-"मैं क्या कहाँ ?" उन्होंने कहा-"निषीद (बैठ)" अतः वह 'निषाट' कहलाया ॥ ३५ ॥ इसलिये हे मुनिशार्द्छ ! उससे उत्पन्न हुए छोग विन्ध्याचछनिवासी पाप-परायण निषादगण हुए ॥ ३६ ॥ उस निषादरूप द्वारसे राजा वेनका सम्पूर्ण पाप निकल गया । अतः निषादगण निपादास्ते ततो जाता वेनकल्मपनाशनाः ॥३०॥ वेनके पापींका नाश करनेवाले हुए॥ ३०॥

तस्यैव दक्षिणं हस्तं ममन्थुस्ते ततो द्विजाः ॥३८॥ मध्यमाने च तत्राभूतपृथुर्वेन्यः प्रतापवान् । दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥३९॥ आद्यमाजगर्वं नाम खात्पपात ततो धनुः। शराश्र दिच्या नभसः कवर्च च पपात ह ॥४०॥ तसिन् जाते तु भ्तानि सम्प्रहृष्टानि सर्वशः ॥४१॥ सत्पुत्रेणैव जातेन वेनोऽपि त्रिदिवं ययौ । पुत्राम्नो नरकात् त्रातः सुतेन सुमहात्मना ॥४२॥ तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वशः। तोयानि चाभिषेकार्थं संवीण्येवोपतस्थिरे ॥४३॥ पितामहश्र भगवान्देवैराङ्गिरसैः सह। स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्वशः। समागम्य तदा वैन्यमम्यसिश्चन्नराधिपम् ॥४४॥ हस्ते तु दक्षिणे चक्रं दृष्वा तस्य पितामहः। विष्णोरंशं पृथुं मत्वा परितोषं परं ययौ ॥४५॥ विष्णुचकं करे चिह्नं सर्वेषां चक्रवर्तिनाम्। भवत्यव्याहतो यस प्रभावस्त्रिदशैरपि ॥४६॥ महता राजराज्येन पृथुवैन्यः प्रतापवान्। सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदैः ॥४७॥ पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः । अनुरागात्ततात्तस्य नाम राजेत्यजायत ॥४८॥ आपस्तस्तिमिरे चास्य समुद्रमियाखतः। पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥४९॥ अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्धचन्त्यन्नानि चिन्तया । सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु॥५०॥ तस्य वै जातमात्रस्य यज्ञे पैतामहे शुभे। स्तः स्त्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः॥५१॥ तसिनेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः।

फिर उन ब्राह्मणोंने उसके दायें हाथका मन्यन किया। उसका मन्थन करनेसे परमप्रतापी वेनसुवन पृथु प्रकट हुए, जो अपने रारीरसे प्रज्विल्त अग्नि-के समान देदीप्यमान थे॥ ३८-३९॥ इसी समय आजगव नामक आद्य (सर्वप्रथम) शिव-धनुष और दिन्य वाण तथा कवच आकाशसे गिरे॥ ४०॥ उनके उत्पन्न होनेसे सभी जीवोंको अति आनन्द हुआ और केवल सत्पुत्रके ही जन्म लेनेसे वेन भी खर्गलोकको चला गया। इस प्रकार महात्मा पुत्रके कारण ही उसकी पुम् अर्थात् नरकसे रक्षा हुई॥ ४१-४२॥

महाराज पृथुके अभिषेकके लिये सभी समुद्र और निद्याँ सब प्रकारके रत और जल लेकर उपस्थित हुए ॥ ४३ ॥ उस समय आंगिरस देवगगोंके सहित पितामह ब्रह्माजीने और समस्त स्थावर-जंगम प्राणियोंने वहाँ आकर महाराज वैन्य (वेनपुत्र) का राज्याभिषेक किया ॥ ४४ ॥ उनके दाहिने हाथमें चक्रका चिह्न देखकर उन्हें विष्णुका अंश जान पितामह ब्रह्माजीको परम आनन्द हुआ ॥ ४५ ॥ यह श्रीविष्णुभगवान्के चक्रका चिह्न सभी चक्रवर्ती राजाओंके हाथमें हुआ करता है । उनका प्रभाव कभी देवताओंसे भी कुण्ठित नहीं होता ॥ ४६ ॥

इस प्रकार महातेजस्वी और परम प्रतापी वेनपुत्र, धर्मकुशल महानुमार्वोद्वारा विधिपूर्वक अति महान् राजराजेक्वरपदपर अभिषिक्त हुए॥ ४०॥ जिस प्रजाको पिताने अपरक्त (अप्रसन्न) किया था उसीको उन्होंने अनुरक्षित (प्रसन्न) किया, इसल्यि अनुरक्षन करने-से उनका नाम 'राजा' हुआ॥ ४८॥ जब वे समुद्रमें चलते थे, तो जल बहनेसे रुक जाता था, पर्वत उन्हें मार्ग देते थे और उनकी ध्वजा कभी भंग नहीं हुई॥ ४९॥ पृथिवी बिना जोते-बोये धान्य पकानेवाली थी; केवल चिन्तनमात्रसे ही अन सिद्ध हो जाता था, गौएँ काम-धेनुरूप थीं और पत्ते-पत्तेमें मधु भरा रहता था॥ ५०॥

राजा पृथुने उत्पन्न होते ही पैतामह यज्ञ किया; उससे सोमामिषवके दिन सूति (सोमामिषवभूमि) से महामित सूतकी उत्पत्ति हुई ॥५१॥ उसी महायज्ञमें बुद्धिमान् मागधका भी जन्म हुआ। तब मुनिवरोंने उन दोनों

प्रोक्तौ तदा मुनिवरैस्तानुभौ स्तमागधौ ॥५२॥ स्तूयतामेष नृपतिः पृथुर्वेन्यः प्रतापवान् । कमैतदनुरूपं वां पात्रं स्तोत्रस चापरम् ॥५३॥ ततस्तावृचतुर्विप्रान्सर्वानेव कताञ्चली। अद्य जातस्य नो कर्म ज्ञायतेऽस्य महीपतेः ॥५४॥ गुणा न चास्य ज्ञायन्ते न चास्य प्रथितं यशः। स्तोत्रं किमाश्रयं त्वस्य कार्यमसाभिरुच्यताम् ॥५५॥

करिष्यत्येष यत्कर्म चक्रवर्ती महावलः। गुणा भविष्या ये चास्य तैरयं स्तूयतां नृपः ॥५६॥

श्रीपराशर उवाच

ततः स नृपतिस्तोषं तच्छ्रत्वा परमं ययौ । सङ्गुणैः श्लाघ्यतामेति तसास्त्रभ्या गुणा मम ॥५७॥ तसाद्यद्य स्तोत्रेण गुणनिर्वर्णनं त्विमौ । करिष्येते करिष्यामि तदेवाहं समाहितः ॥५८॥ यदिमौ वर्जनीयं च किञ्चिदत्र वदिष्यतः। तदहं वर्जियष्यामीत्येवं चक्रे मिंत नृपः ॥५९॥ अथ तौ चऋतुः स्तोत्रं पृथोर्वेन्यस्य धीमतः। भविष्यैः कर्मभिः सम्यक्सुखरौ स्रतमागधौ॥६०॥ सत्यवाग्दानशीलोऽयं सत्यसन्धो नरेश्वरः। हीमान्मैत्रः क्षमाशीलो विकानतो दुष्टशासनः ।६१। धर्मज्ञश्र कृतज्ञश्र द्यावान् प्रियभाषकः। मान्यान्मानयिता यज्वा ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः ६२ समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारस्थितौ नृपः ॥६३॥ स्तेनोक्तान् गुणानित्थं स तदा मागधेन च। चकार हृदि ताद्यक् च कर्मणा कृतवानसौ ।।६४॥ ततस्तु पृथिवीपालः पालयन्पृथिवीमिमाम् । इयाज

सूत और मागर्घोंसे कहा—॥ ५२॥ 'तुम इन प्रतापवान् वेनपुत्र महाराज पृथुकी स्तुति करो। तुम्हारे योग्य यही कार्य है और राजा भी स्तुतिके ही योग्य हैं ॥ ५३ ॥ तव उन्होंने हाथ जोड़कर सव ब्राह्मणोंसे कहा-"'ये महाराज तो आज ही उत्पन्न हुए हैं, हम इनके कोई कर्म तो जानते ही नहीं हैं ॥५४॥ अभी इनके न तो कोई गुण प्रकट हुए हैं और न यश ही विख्यात हुआ है; फिर कहिये, हम किस आधारपर इनकी स्तुति करें" ॥ ५५ ॥

ऋपिगण बोले-ये महावली चक्रवर्ती महाराज भविष्यमें जो-जो कर्म करेंगे और इनके जो-जो मावी गुण होंगे उन्हींसे तुम इनका स्तवन करो ॥५६॥

श्रीपराशरजी बोले-यह सुनकर राजाको भी परम सन्तोष हुआ; उन्होंने सोचा 'मनुष्य सद्गुणोंके कारण ही प्रशंसाका पात्र होता है; अतः मुझको भी गुण उपार्जन करने चाहिये॥५७॥ इसल्यि अव स्तुतिके द्वारा ये जिन गुणोंका वर्णन करेंगे मैं भी सावधानता-पूर्वक वैसा ही करूँगा ॥५८॥ यदि यहाँपर ये कुछ त्याज्य अवगुणोंको भी कहेंगे तो मैं उन्हें त्यागूँगा।' इस प्रकार राजाने अपने चित्तमें निश्चय किया ॥५९॥ तदनन्तर उन (सूत और मागध) दोनोंने परम बुद्धिमान् वेननन्दन महाराज पृथुका, उनके मावी कर्मोंके आश्रयसे खरसहित मलीप्रकार स्तवन किया ॥६०॥ [उन्होंने कहा—]'ये महाराज सत्यवादी, दानशील, सत्यमयीदावाछे, ळज्जाशील, सुहृद्, क्षमाशील, परा-क्रमी और दुष्टोंका दमन करनेवाले हैं ॥६१॥ ये धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयावान्, प्रियभाषी, माननीयोंको मान देनेवाले, यज्ञपरायण, ब्रह्मण्य, साधुसमाजमें सम्मानित और रात्रु तथा मित्रके साथ समान व्यवहार करने-वाछे हैं ।।६२-६३॥ इस प्रकार सूत और मागधके कहें हुए गुणोंको उन्होंने अपने चित्तमें धारण किया और उसी प्रकारके कार्य किये । ६४॥ तब उन पृथिवीपतिने पृथिवीका पालन करते हुए बड़ी-बड़ी विविधैर्यज्ञैर्महद्भिर्भृरिदक्षिणैः ॥६५॥ दक्षिणाओंवाले अनेकों महान् यज्ञ किये ॥ ६५ ॥

तं प्रजाः पृथिवीनाथम्रुपतस्थुः क्षुधार्दिताः ।

अन्यान् ओषघीषु प्रणष्टासु तस्मिन्काले ह्यराजके ।

उति ने तम्चस्ते नताः पृष्टास्तत्रागमनकारणम् ॥६६॥

प्रजा जचुः

अराजके नृपश्रेष्ठ घरित्र्या सकलौषधीः । ग्रस्तास्ततः क्षयं यान्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वर ॥६७॥ त्वनो वृत्तिप्रदो धात्रा प्रजापालो निरूपितः । देहि नः श्चुत्परीतानां प्रजानां जीवनौषधीः ॥६८॥ श्रीपराश्चर जवान

ततस्तु नृपतिर्दिं च्यमादायाजगवं धनुः ।

शरांश्र दिव्यान्कुपितः सोन्वधावद्वसुन्धराम् ॥६९॥

ततो ननाश त्वरिता गौर्भूत्वा च वसुन्धरा ।

सा लोकान्त्रह्मलोकादीन्सन्त्रासादगमन्मही॥७०॥

यत्र यत्र ययौ देवी सा तदा भृतधारिणी ।

तत्र तत्र तु सा वैन्यं दहशेऽभ्युद्यतायुधम् ॥७१॥

तत्ततं प्राह वसुधा पृथुं पृथुपराक्रमम् ।

प्रवेपमाना तद्भाणपरित्राणपरायणा ॥७२॥

स्त्रीवधे त्वं महापापं किं नरेन्द्र न पश्यसि । येन मां हन्तुमत्यर्थं प्रकरोपि नृपोद्यमम् ॥७३॥

पृथिन्युवाच

पृथुरुवाच

एकस्मिन् यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि । बहूनां भवति क्षेमं तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥७४॥ पृथिव्युवाच

प्रजानाम्चपकाराय यदि मां त्वं हनिष्यसि । आधारः कः प्रजानां ते नृपश्रेष्ठ भविष्यति ॥७५॥ पृथुरुवाच

त्वां हत्वा वसुधे वाणैर्मच्छासनपराङ्ग्रुखीम्। आत्मयोगवलेनेमा घारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥७६॥

अराजकताके समय ओपिधयोंके नष्ट हो जानेसे भूखसे व्याकुळ हुई प्रजा पृथिवीनाथ पृथुके पास आयो और उनके पूछनेपर प्रणाम करके उनसे अपने आनेका कारण निवेदन किया ॥६६॥

प्रजाने कहा—हे प्रजापित नृपश्रेष्ट ! अराजकता-के समय पृथिवीने समस्त ओषियाँ अपनेमें छीन कर छी हैं, अतः आपकी सम्पूर्ण प्रजा क्षीण हो रही हैं॥६७॥ विधाताने आपको हमारा जीवनदायक प्रजापित बनाया है; अतः क्षुधारूप महारोगसे पीड़ित हम प्रजाजनोंको आप जीवनरूप ओषि दीजिये ॥६८॥

श्रीपराशरजी बोले—यह सुनकर महाराज पृथु अपना आजगव नामक दिन्य धनुष और दिन्य वाण लेकर अत्यन्त कोधपूर्वक पृथिवीके पीछे दौड़े ॥६९॥ तब भयसे अत्यन्त न्याकुल हुई पृथिवी गौका रूप धारणकर भागी और ब्रह्मलोक आदि सभी लोकोंमें गयी॥००॥ समस्त भूतोंको धारण करनेवाली पृथिवी जहाँ-जहाँ भी गयी वहीं-वहीं उसने वेनपुत्र पृथुको शक्त-सन्धान किये अपने पीछे आते देखा॥ ०१॥ तब उन प्रबल पराक्रमी महाराज पृथुसे, उनके वाणप्रहारसे बचनेकी कामनासे काँपती हुई पृथिवी इस प्रकार बोली॥०२॥

पृथिवीने कहा—हे राजेन्द्र ! क्या आपको स्ती-वधका महापाप नहीं दीख पड़ता, जो मुझे मारनेपर आप ऐसे उतारू हो रहे हैं ! ॥७३॥

पृथु बोळे—जहाँ एक अनर्थकारीको मार देनेसे बहुतोंको सुख प्राप्त हो उसे मार देना ही पुण्यप्रद है ॥७४॥

पृथिवी बोली—हे नृपश्रेष्ठ ! यदि आप प्रजाके हितके लिये ही मुझे मारना चाहते हैं तो [मेरे मर जाने-पर] आपकी प्रजाका आधार क्या होगा ! ॥७५॥

पृथुने कहा—अरी वसुधे ! अपनी आज्ञाका उल्लब्धन करनेवाली तुझे मारकर मैं अपने योगबलसे ही इस प्रजाको धारण कहाँगा ॥७६॥

श्रीपराशर उवाच

ततः प्रणम्य वसुधा तं भूयः प्राह पार्थिवम् । प्रवेपिताङ्गी परमं साध्वसं सम्रुपागता ॥७७॥ पृथिन्युवाच

उपायतः समारव्धाः सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः।
तस्माद्धदाम्युपायं ते तं कुरुष्व यदीच्छिसि ॥७८॥
समस्ता या मया जीर्णा नरनाथ महौपधीः।
यदीच्छिसि प्रदास्यामि ताः श्लीरपरिणामिनीः।७९।
तस्मात्प्रजाहितार्थाय मम धर्मभृतां वर।
तं तु वत्सं कुरुष्व त्वं श्लरेयं येन वत्सला॥८०॥
समां च कुरु सर्वत्र येन श्लीरं समन्ततः।
वरौपधीवीजभूतं बीजं सर्वत्र भावये॥८१॥

श्रीपराशर उवाच

तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रशः। **धनुष्को**ट्यातदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः ॥८२॥ न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले। प्रविभागः पुराणां वा प्रामाणां वा पुराऽभवत् ॥८३॥ न सस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्षथः । वैन्यात्त्रभृति मैत्रेय सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥८४॥ यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीदृद्धिजोत्तम । तत्र तत्र प्रजाः सर्वा निवासं समरोचयन् ॥८५॥ आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा। कुच्छ्रेण महता सोऽपि प्रणष्टाखोषधीषु वै ॥८६॥ स कल्पयित्वा वत्सं तु मनुं खायम्भुवं प्रभुम्। स्वपाणौ पृथिवीनाथो दुदोह पृथिवीं पृथुः। सखजातानि सर्वाणि प्रजानां हितकाम्यया।।८७॥ तेनाभेन प्रजास्तात वर्तन्तेद्यापि नित्यशः ॥८८॥ पृथुर्यसमाद्भमरभूतिपता । प्राणप्रदाता स

श्रीपराशरजी बोले तव अत्यन्त भयभीत एवं काँपती हुई पृथिवीने उन पृथिवीपतिको पुनः प्रणाम करके कहा ॥७७॥

पृथिवी बोळी—हे राजन्! यत्नपूर्वक आरम्भ किये हुए समी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। अतः मैं भी आप-को एक उपाय बताती हूँ; यदि आपकी इच्छा हो तो वैसा ही करें॥ ७८॥ हे नरनाथ! मैंने जिन समस्त ओषियोंको पचा लिया है उन्हें यदि आपकी इच्छा हो तो दुग्धरूपसे मैं दे सकती हूँ॥ ७९॥ अतः हे धर्मात्माओंमें श्रेष्ट महाराज! आप प्रजाके हित-के लिये कोई ऐसा वत्स (वछड़ा) वनाइये जिससे वात्सल्यवश में उन्हें दुग्धरूपसे निकाल सक् ॥८०॥ और मुझको आप सर्वत्र समतल कर दीजिये जिससे मैं उत्तमोत्तम ओषियोंके वीजरूप दुग्धको सर्वत्र उत्पन्न कर सक् ॥८१॥

श्रीपराशरजी बोले—तव महाराज पृथुने अपने धनुषकी कोटिसे सैकड़ों-हजारों पर्वतोंको उखाड़ा और उन्हें एक स्थानपर इकट्टा कर दिया ॥ ८२ ॥ इससे पूर्व पृथिवीके समतल न होनेसे पुर और प्राम आदिका कोई नियमित विभाग नहीं था ॥८३॥ हे मैत्रेय ! उस समय अन्न, गोरक्षा, कृषि और व्यापारका भी कोई क्रम न था । यह सव तो वेनपुत्र पृथुके समयसे ही आरम्भ हुआ है ॥ ८४ ॥ हे द्विजोत्तम ! जहाँ-जहाँ भूमि समतल थी वहीं-वहींपर प्रजाने निवास करना पसन्द किया ॥ ८५ ॥ उस समयतक प्रजाका आहार केवल फल म्लादि ही था; वह भी ओषधियोंके नष्ट हो जानेसे बड़ा दुर्लभ हो गया था ॥ ८६ ॥

तव पृथिनीपित पृथुने स्नायम्भुवमनुको वछड़ा बनाकर अपने हाथमें ही पृथिवीसे प्रजाके हितके लिये समस्त धान्योंको दुहा । हे तात ! उसी अनके आधारसे अब भी सदा प्रजा जीवित रहती है ॥ ८७-८८ ॥ महाराज पृथु प्राणदान करनेके कारण भूमिके पिता हुए, * इसलिये उस सर्वभूत-

ॐ जन्म देनेवाला, यज्ञोपवीत करानेवाला, अज्ञदाता, भयसे रक्षा करनेवाला तथा जो विद्यादान करें — ये पाँचाँ पिता माने गये हैं; जैसे कहा है—

जनकश्चोपनेता च यश्च विद्याः प्रयच्छित । अन्नदाता मयत्राता प्रव्चेते पितरः स्मृताः ॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri



ततस्तु पृथिवीसंज्ञामवापासिलधारिणी।।८९।।
तत्रश्च देवैर्धिनिभिर्दैत्यै रक्षोमिरद्रिभिः।
गन्धर्वैरुरगैर्यक्षैः पितृभिस्तरुमिस्तथा।।९०।।
तत्तत्पात्रग्चपादाय तत्तद्दुग्धं ग्रुने पयः।
वत्सदोग्धृविशेषाश्च तेषां तद्योनयोऽभवन्।।९१।।
सैपा धात्री विधात्री च धारिणी पोषणी तथा।
सर्वस्य ततः पृथ्वी विष्णुपादतलोद्भवा ।।९२।।
एवंप्रभावस्स पृथुः पुत्रो वेनस्य वीर्यवान्।
जन्ने महीपतिः पूर्वो राजाभुज्ञनरज्जनात्।।९३।।
य इदं जन्म वैन्यस्य पृथोः संकीर्त्तयेन्नरः।
न तस्य दुष्कृतं किश्चित्फलदायि प्रजायते।।९४।।
दुस्समोपशमं नृणां शृण्वतामेतदुत्तमम्।
पृथोर्जन्म प्रभावश्च करोति सत्ततं नृणाम।।९५।।

धारिणीको 'पृथिवी' नाम मिला ॥ ८९॥

हे मुने ! फिर देवता, मुनि, दैत्य, राक्षस, पर्वत, गन्धर्व, सर्प, यक्ष और पितृगण आदिने अपने-अपने पात्रोंमें अपना अभिमत दूध दुहा, तथा दुहनेवालोंके अनुसार उनके सजातीय ही दोग्धा और वत्स आदि हुए ॥ ९०-९१ ॥ इसीलिये विष्णुमगवान्के चरणोंसे प्रकट हुई यह पृथिवी ही सबको जन्म देनेवाली, बनानेवाली तथा धारण और पोषण करनेवाली है ॥ ९२ ॥ इस प्रकार पूर्वकालमें वेनके पुत्र महाराज पृथु ऐसे प्रभावशाली और वीर्यवान् हुए । प्रजाका रखन करनेके कारण वे 'राजा' कहलाये ॥ ९३ ॥

य इदं जन्म वैन्यस्य पृथोः संकीत्तंयेत्ररः ।
न तस्य दुष्कृतं किश्चित्फलदायि प्रजायते ॥९४॥
दुस्त्रमोपश्चमं नृणां शृण्वतामेतदुत्तमम् ।
पृथोर्जन्म प्रभावश्च करोति सततं नृणाम् ॥९५॥
दुःस्वप्नोंको सर्वदा शान्त कर देता है ॥ ९५॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे त्रयोदशोऽच्यायः ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

प्राचीनवर्हिका जन्म और प्रचेताओंका भगवदाराधन।

श्रीपराशर उवाच

पृथोः पुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञाते अन्तर्दिवादिनौ ।

शिखण्डिनी हविधानमन्तर्धानाद्वचजायत ॥ १ ॥
हविधानात् षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत्सुतान् ।
प्राचीनवर्दिषं शुक्रं गयं कृष्णं वृजाजिनौ ॥ २ ॥
प्राचीनवर्दिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः ।
हविधानान्महामाग येन संवर्धिताः प्रजाः ॥ ३ ॥
प्राचीनवर्दिरभवत्त्व्यातो सुवि महाबलः ॥ ।।।

श्रीपराशरजी बोले हे मैत्रेय ! पृथुके अन्तर्द्धान और वादी-नामक दो धर्मज्ञ पुत्र हुए; उनमेंसे अन्तर्द्धानसे उसकी पत्नी शिखण्डिनीने हविधानको उत्पत्न किया ॥१॥ हविधानसे अग्निकुलीना धिषणाने प्राचीन-वर्हि, शुक्र, गय, कृष्ण, वृज और अजिन—ये छः पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ हे महामाग ! हविधानसे उत्पन्न हुए भगवान् प्राचीनवर्हि एक महान् प्रजापित थे, जिन्होंने यज्ञके द्वारा अपनी प्रजाको बहुत वृद्धि की ॥ ३ ॥ हे मुने ! उनके समयमें [यज्ञानुष्ठानकी अधिकताके कारण] प्राचीनाप्र कुश समस्त पृथिवीमें फैले हुए थे, इसिल्ये वे महाबली 'प्राचीनवर्हि' नामसे विख्यात हुए ॥ ४ ॥

सम्रद्रतनयायां तु कृतदारो महीपतिः।
महतस्तपसः पारे सवर्णायां महामते॥५॥
सवर्णाधत्त साम्रद्री दश प्राचीनवहिंषः।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः॥६॥
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः।
दशवर्षसहस्राणि सम्रद्रसिल्लेशयाः॥७॥

श्रीमैत्रेय उवाच

यद्र्थं ते महात्मानस्तपस्तेपुर्महाम्रुने । प्रचेतसः समुद्राम्भस्येतदाख्यातुमहिसि ॥ ८॥ श्रीपरागर जवाच

पित्रा प्रचेतसः प्रोक्ताः प्रजार्थमितात्मना ।
प्रजापतिनियुक्तेन बहुमानपुरस्सरम् ॥ ९ ॥
प्राचीनवहिंरुवाच

त्रक्षणा देवदेवेन समादिष्टोऽस्म्यहं सुताः । प्रजाः संवर्द्धनीयास्ते मया चोक्तं तथेति तत् ॥१०॥ तन्मम प्रीतये पुत्राः प्रजावृद्धिमतन्द्रिताः । कुरुध्वं माननीया वः सम्यगाज्ञा प्रजापतेः ॥११॥

श्रीपराशर उवाच

ततस्ते तित्पतुः श्वत्वा वचनं नृपनन्दनाः । तथेत्युक्त्वा च तं भूयः पप्रच्छुः पितरं मुने ॥१२॥ प्रचेतस जनुः

येन तात प्रजादृद्धौ समर्थाः कर्मणा वयम् । भवेम तत् समस्तं नः कर्म व्याख्यातुमर्हिस ॥१३॥

पितोवाच

आराध्य वरदं विष्णुमिष्टमाप्तिमसंश्वयम् । समेति नान्यथा मर्त्यः किमन्यत्कथयामि वः॥१४॥ तसात्प्रजाविष्टद्धचर्थं सर्वभूतप्रश्चं हरिम् । आराध्यत गोविन्दं यदि सिद्धिमभीप्सथ ॥१५॥ धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं चान्विच्छतां सदा । हे महामते ! उन महीपतिने महान् तपस्याके अनन्तर समुद्रकी पुत्री सवर्णासे विवाह किया ॥ ५॥ उस समुद्र-कन्या सवर्णाके प्राचीनवर्हिसे दश पुत्र हुए । वे प्रचेता-नामक सभी पुत्र धनुर्विद्याके पारगामी थे ॥ ६॥ उन्होंने समुद्रके जलमें रहकर दश हजार वर्षतक समान धर्मका आचरण करते हुए घोर तपस्या की ॥ ७॥

श्रीमेंत्रेयजी बोले-हे महामुने ! उन महात्मा प्रचेताओंने जिसलिये समुद्रके जलमें तपस्या की थी सो आप किहये ॥ ८॥

श्रीपराशरजी कहने छगे-हे मैत्रेय ! एक वार् प्रजापतिकी प्रेरणासे प्रचेताओंके महात्मा पिता प्राचीनवर्हिने उनसे अति सम्मानपूर्वक सन्तानोत्पत्ति-के छिये इस प्रकार कहा ॥ ९॥

प्राचीनबहि बोले-हे पुत्रो! देवाधिदेव ब्रह्माजीने मुझे आज्ञा दी है कि 'तुम प्रजाकी वृद्धि करो' और मैंने भी उनसे 'बहुत अच्छा' कह दिया है ॥ १०॥ अतः हे पुत्रगण! तुम भी मेरी प्रसन्नताके लिये सावधानतापूर्वक प्रजाकी वृद्धि करो, क्योंकि प्रजापतिकी आज्ञा तुमको भी सर्वथा माननीय है ॥ ११॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मुने ! उन राजकुमारोंने पिताके ये वचन सुनकर उनसे 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर फिर पूछा ॥ १२॥

प्रचेता बोले-हे तात ! जिस कर्मसे हम प्रजा-वृद्धिमें समर्थ हो सकें उसकी आप हमसे मली प्रकार व्याख्या कीजिये ॥ १३॥

पिताने कहा-चरदायक भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे ही मनुष्यको निःसन्देह इष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है और किसी उपायसे नहीं । इसके सिवा और मैं तुमसे क्या कहूँ ॥ १४ ॥ इसिछ्ये यदि तुम सफलता चाहते हो तो प्रजा-वृद्धिके लिये सर्वभूतोंके स्वामी श्रीहरि गोविन्दकी उपासना करो॥१५॥धर्म, अर्थ, काम या मोक्षकी इच्छावालोंको सदा अनादि पुरुषोत्तम आराधनीयो भगवाननादिपुरुषोत्तमः ॥१६॥
यसिन्नाराधिते सर्गं चकारादौ प्रजापतिः ।
तमाराध्याच्युतं वृद्धिः प्रजानां वो भविष्यति ॥१७॥
श्रीपराशर उवाच

इत्येवमुक्तास्ते पित्रा पुत्राः प्रचेतसो दश ।

मग्नाः पयोधिसिलिले तपस्तेपुः समाहिताः ॥१८॥

दशवर्षसहस्राणि न्यस्तचित्ता जगत्पतौ ।

नारायणे म्रिनिश्रेष्ठ सर्वलोकपरायणे ॥१९॥

तत्रैवावस्थिता देवमेकाग्रमनसो हरिम् ।

तुष्टुवुर्यस्स्तुतः कामान् स्तोतुरिष्टान्प्रयच्छति ॥२०॥

श्रीमैत्रेय उवाच

स्तवं प्रचेतसो विष्णोः समुद्राम्भसि संस्थिताः। चक्रुस्तन्मे मुनिश्रेष्ठ सुपुण्यं वक्तुमईसि ॥२१॥

ः ः श्रीपराशर उवाच

शृणु मैत्रेय गोविन्दं यथापूर्वं प्रचेतसः। तुष्टुवुस्तन्मयीभूताः सम्रुद्रसाललेशयाः॥२२॥

प्रचेतस उचुः

नताः स सर्ववचसां प्रतिष्ठा यत्र शाश्वती ।
तमाद्यन्तमशेषस्य जगतः परमं प्रश्चम् ॥२३॥
ज्योतिराद्यमनौपम्यमण्यनन्तमपारवत् ।
योनिभृतमशेषस्य स्थावरस्य चरस्य च॥२४॥
यसादः प्रथमं रूपमरूपस्य तथा निशा ।
सन्ध्या च परमेशस्य तसे कालात्मने नमः ॥२५॥
भूज्यतेऽजुदिनं देवैः पितृभिश्च सुधात्मकः ।
जीवभृतः समस्तस्य तसे सोमात्मने नमः ॥२६॥
यस्तमांस्यित्त तीव्रात्मा प्रभाभिर्भासयन्त्रभः ।

भगवान् विष्णुकी ही आराधना करनी चाहिये॥१६॥ कल्पके आरम्भमें जिनकी उपासना करके प्रजापतिने संसारकी रचना की है, तुम उन अच्युतकी ही आराधना करो । इससे तुम्हारी सन्तानकी वृद्धि होगी॥१७॥

श्रीपराशरजी बोले-पिताकी ऐसी आज्ञा होने-पर प्रचेता-नामक दशों । पुत्रोंने समुद्रके जलमें डूबे रहकर सावधानतापूर्वक तप करना आरम्भ कर दिया ॥ १८॥ हे मुनिश्रेष्ट ! सर्वलोकाश्रय जगत्पित श्रीनारायणमें चित्त लगाये हुए उन्होंने दश हजार वर्षतक वहीं (जलमें ही) स्थित रहकर देवाधिदेव श्रीहरिकी एकाग्र-चित्तसे स्तुति की, जो अपनी स्तुति की जानेपर स्तुति करनेवालोंकी सभी कामनाएँ सफल कर देते हैं ॥ १९-२०॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे मुनिश्रेष्ठ ! समुद्रके जलमें स्थित रहकर प्रचेताओंने भगवान् विष्णुकी जो अति पवित्र स्तुति की थी वह कृपया मुझसे कहिये ॥२१॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! पूर्वकालमें समुद्रमें स्थित रहकर प्रचेताओंने तन्मय-भावसे श्रीगोविन्दकी जो स्तुति की, वह सुनो ॥ २२॥

प्रचेताओंने कहा-जिनमें सम्पूर्ण वाक्योंकी नित्य-प्रतिष्ठा है [अर्थात् जो सम्पूर्ण वाक्योंके एकमात्र प्रतिपाद्य हैं] तथा जो जगत्की उत्पत्ति और प्रख्यके कारण हैं उन निखिल-जगनायक परमप्रमुको हम नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ जो आद्य ज्योतिस्खरूप, अनुपम, अणु, अनन्त, अपार और समस्त चराचरके कारण हैं, तथा जिन रूपहीन परमेश्वरके दिन, रात्रि और सन्ध्या ही प्रथम रूप हैं, उन कालखरूप मगवान्को नमस्कार है ॥ २४-२५ ॥ समस्त प्राणियोंके जीवनरूप जिनके अमृतमय खरूपको देव और पितृगण नित्यप्रति मोगते हैं उन सोमखरूप प्रमुको नमस्कार है ॥ २६ ॥ जो तीक्ष्णखरूप अपने तेजसे आकाशमण्डलको प्रकाशित करते हुए अन्धकार-को मक्षण कर जाते हैं तथा जो धाम, शीत और

वर्मशीताम्मसां योनिस्तसै स्वर्यात्मने नमः ॥२७॥ काठिन्यवान् यो विभक्तिं जगदेतदशेषतः । शब्दादिसंश्रयो व्यापी तसै भुम्यात्मने नमः।।२८।। यद्योनिभृतं जगतो वीजं यत्सर्वदेहिनाम् । तत्तोयरूपमीशस्य नमामो हरिमेधसः ॥२९॥ यो मुलं सर्वदेवानां हव्यभुक्व्यभुक् तथा । पितृणां च नमस्तसै विष्णवे पावकात्मने ॥३०॥ पश्चधावस्थितो देहे यश्चेष्टां कुरुतेऽनिशम्। आकाशयोनिर्भगवांस्तसै वाय्वात्मने नमः ॥३१॥ अवकाशमशेषाणां भृतानां यः प्रयच्छति । अनन्तमृर्तिमाञ्छुद्धस्तसै व्योमात्मने नमः ॥३२॥ समस्तेन्द्रियसर्गस्य यः सदा स्थानमुत्तमम् । तसै शब्दादिरूपाय नमः कृष्णाय वेधसे ।।३३।। गुह्णाति विषयाचित्यमिन्द्रियात्मा क्षराक्षरः । यत्तसै ज्ञानमृलाय नताः स हरिमेधसे ॥३४॥ गृहीतानिन्द्रियरर्थानात्मने यः प्रयच्छति। अन्तःकरणरूपाय तसौ विश्वात्मने नमः ॥३५॥ यसिननन्ते सकलं विश्वं यसात्तथोद्भतम्। लयस्थानं च यस्तसै नमः प्रकृतिधर्मिणे ॥३६॥ शुद्धः सँह्यस्यते आन्त्या गुणवानिव योऽगुणः । तमात्मरूपिणं देवं नताः स पुरुषोत्तमम् ॥३७॥ अविकारमजं शुद्धं निर्गुणं यन्निरञ्जनम् । नताः स तत्परं ब्रह्म विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥३८॥ अदीर्घहस्वमस्थूलमनण्वश्यामलोहितम् अस्नेहच्छायमत्त्रमसक्तमशरीरिणम् 113911 अनाकाशमसंस्पर्शमगन्धमरसं च

जलके उद्गमस्थान हैं उन सूर्यखरूप [नारायण] को नमस्कार है ॥ २७ ॥ जो कठिनतायुक्त होकर इस सम्पूर्ण संसारको धारण करते हैं और शब्द आदि पाँचों विषयोंके आधार तथा व्यापक हैं. उन भूमि-रूप भगवानुको नमस्कार है ॥ २८ ॥ जो संसारका योनिरूप है और समस्त देहधारियोंका बीज है, भगवान् हरिके उस जलखरूपको हम नमस्कार करते हैं ॥२९॥ जो समस्त देवताओंका ह्व्यमुक् और पितृगणका कव्यमुक् मुख है, उस अग्निसक्प विष्णुभगवानुको नमस्कार है ॥ ३०॥ जो प्राण, अपान आदि पाँच प्रकारसे देहमें स्थित होकर दिन-रात चेष्टा करता रहता है तथा जिसकी योनि आकाश है. उस वायुरूप भगवान्को नमस्कार है ॥ ३१ ॥ जो समस्त मृतोंको अवकाश देता है उस अनन्तमूर्ति और परम ग्रद्ध आकाशखरूप प्रमुको नमस्कार है ॥३२॥ समस्त इन्द्रिय-सृष्टिके जो उत्तम स्थान हैं उन शब्द-स्पर्शादिरूप विधाता श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ जो क्षर और अक्षर इन्द्रियरूपसे नित्य विषयोंको प्रहण करते हैं उन ज्ञानमूळ हरिको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ इन्द्रियोंके द्वारा प्रहण किये विषयोंको जो आत्माके सम्मख उपस्थित करता विश्वात्माको अन्त:करणरूप है ॥ ३५ ॥ जिस अनन्तमें सकल विश्व स्थित है. जिससे वह उत्पन्न हुआ है और जो उसके लयका भी स्थान है उस प्रकृतिखरूप परमात्माको नमस्कार है । ॥ ३६ ॥ जो ग्रद्ध और निर्गुण होकर भी भ्रमवश गुणयुक्त-से दिखायी देते हैं उन आत्मखरूप पुरुषोत्तमदेवको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३७॥ जो अविकारी, अजन्मा, शुद्ध, निर्गुण, निर्मल और श्रीविष्णुका परमपद है उस ब्रह्मखरूपको नमस्कार करते हैं ॥ ३८ ॥ जो न छम्बा है, न पतला है, न मोटा है, न छोटा है और न काला न छाछ है; जो स्नेह (द्रव), कान्ति तया शरीरसे रहित एवं अनासक्त और अशरीरी (जीवसे मिन्न) है ॥ ३९ ॥ जो और रससे रहित तथा आँख-कान-

अचक्षुश्रोत्रमचलमवाक्पाणिममानसम् ॥४०॥
अनामगोत्रमसुलमतेजस्कमहेतुकम् ।
अभयं भ्रान्तिरहितमनिद्रमजरामरम् ॥४१॥
अरजोऽशब्दममृतमृतुतं यदसंवृतम् ।
पूर्वापरे न वै यसिस्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥४२॥
परमेशत्वगुणवत्सर्वभूतमसंश्रयम् ।
नताः स तत्पदं विष्णोर्जिह्वाद्यगोचरं न यत्॥४३॥

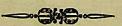
श्रीपराशर उवाच

एवं प्रचेतसो विष्णुं स्तुवन्तस्तत्समाध्यः।
दशवर्षसहस्राणि तपश्चेरुर्महार्णवे।।४४॥
ततः प्रसन्नो भगवांस्तेषामन्तर्जले हरिः।
ददौ दर्शनम्रिन्नद्रनीलोत्पलदलच्छविः।।४५॥
पत्त्रराजमारूढमवलोक्य प्रचेतसः।
प्रणिपेतुः शिरोभिस्तं भक्तिभारावनामितैः।।४६॥
ततस्तानाह भगवान्त्रियतामीप्सतो वरः।
प्रसाद समुखोऽहं वो वरदः समुपस्थितः।।४७॥
ततस्तम् चुर्वरदं प्रणिपत्य प्रचेतसः।
यथा पित्रा समादिष्टं प्रजानां वृद्धिकारणम्।।४८॥
स चापि देवस्तं दच्चा यथाभिलपितं वरम्।
अन्तर्धानं जगामाश्च ते च निश्चक्रमुर्जलात्।।४९॥

विद्यान, अचल एवं जिह्वा, हाथ और मनसे रहित है ॥ ४०॥ जो नाम, गोत्र, सुख और तेजसे शून्य तथा कारणहीन है; जिसमें भय, भ्रान्ति, निद्रा, जरा और मरण—इन (अवस्थाओं) का अभाव है ॥४१॥ जो अरज (रजोगुणरहित) अशब्द, अमृत, अप्लुत (गितशून्य) और असंवृत (अनाच्छादित) है एवं जिसमें पूर्वापर व्यवहारकी गित नहीं है वही भगवान् विष्णुका परमपद है ॥ ४२॥ जिसका ईशन (शासन) ही परमगुण है, जो सर्वरूप और अनाधार है तथा जिह्वा और दृष्टिका अविषय है, भगवान् विष्णुके उस परमपदको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४३॥

श्रीपराशरजी बोळे—इस प्रकार श्रीविष्णुभगवान्-में समाधिस्थ होकर प्रचेताओंने महासागरमें रहकर उनकी स्तुति करते हुए दश हजार वर्षतक तपस्या की ॥ ४४ ॥ तब भगवान् श्रीहरिने प्रसन्न होकर उन्हें खिळे हुए नीळ कमळकी-सी आभायुक्त दिव्य छविसे जळके मीतर ही दर्शन दिया ॥ ४५ ॥ प्रचेताओंने पक्षिराज गरुड़पर चढ़े हुए श्रीहरिको देखकर उन्हें भक्तिभावके भारसे झुके हुए मस्तकों-द्वारा प्रणाम किया ॥४६॥

तब भगवान्ने उनसे कहा — "मैं तुमसे प्रसन्न होकर तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ, तुम अपना अमीष्ट वर माँगों" ॥ ४०॥ तब प्रचेताओंने वरदायक श्रीहरिको प्रणाम कर, जिस प्रकार उनके पिताने उन्हें प्रजा-चृद्धिके लिये आज्ञा दी थी वह सब उनसे निवेदन की ॥ ४८॥ तदनन्तर, भगवान् उन्हें अमीष्ट वर देकर अन्तर्धान हो गये और वे जलसे बाहर निकल आये॥ ४९॥



इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥



पन्द्रहवाँ अध्याय

प्रचेताओंका मारिया नामक कन्याके साथ विवाह, दक्ष प्रजापतिकी उत्पत्ति एवं दक्षकी आठ कन्याओंके वंशका वर्णन ।

श्रीपराशर उवाच

तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतःसु महीरुहाः। अरक्ष्यमाणामावत्रर्वभूवाथ प्रजाक्षयः ॥ १ ॥ नाशकन्मरुतो वातुं वृतं खमभवद्दुमैः। दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्रेष्टितुं प्रजाः ॥ २ ॥ तान्दष्ट्रा जलनिष्कान्ताः सर्वे क्रुद्धाः प्रचेतसः। मुखेभ्यो वायुमप्रिं च तेऽसृजन् जातमन्यवः॥ ३॥ उन्मूलानथ तान्वृक्षान्कृत्वा वायुरशोपयत । तानिपरदहद्घोरस्तत्राभृद्द्वमसङ्ख्यः 11811 द्धमक्षयमथो दृष्टा किश्चिच्छिष्टेषु शालिषु । उपगम्यात्रवीदेतात्राजा सोमः प्रजापतीन ।। ५ ।। कोपं यच्छत राजानः शृणुध्वं च वचो मम । सन्धानं वः करिष्यामि सह क्षितिरुहैरहम् ॥ ६ ॥ रत्नभूता च कन्येयं वार्क्षेयी वरवर्णिनी। भविष्यजानता पूर्व मया गोभिविवद्धिता ॥ ७॥ मारिषा नाम नाम्नेषा वृक्षाणामिति निर्मिता । भार्या वोऽस्तु महाभागा भ्रुवं वंशविवर्द्धिनी।। ८।। युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः। अस्याम्रत्पत्स्यते विद्वान्दक्षोनाम प्रजापतिः ॥ ९ ॥ मम चांशेन संयुक्ती युष्मत्तेजोमयेन वै। तेजसामिसमो भूयः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ॥१०॥ कण्डनीम म्नुनिः पूर्वमासीद्वेदविदां वरः।

श्रीपराशरजी बोले-प्रचेताओं के तपस्यामें लगे रहनेसे [कृषि आदिहारा] किसी प्रकारकी रक्षा न होने के कारण पृथिवीको कृष्टोंने टँक लिया और प्रजा बहुत कुछ नष्ट हो गयी ॥ १ ॥ आकाश कृष्टोंसे मर गया था। इसलिये दश हजार वर्षतक न तो वायु ही चला और न प्रजा ही किसी प्रकार-की चेष्टा कर सकी ॥ २ ॥ जलसे निकल्नेपर उन कृष्टोंको देखकर प्रचेतागण अति क्रोधित हुए और उन्होंने रोषपूर्वक अपने मुखसे वायु और अग्निको छोड़ा ॥ ३ ॥ वायुने कृष्टोंको उखाइ-उखाइकर सुखा दिया और प्रचण्ड अग्निने उन्हें जला डाला। इस प्रकार उस समय वहाँ कृष्टोंका नाश होने लगा॥ ४ ॥

तव वह भयंकर वृक्ष-प्रलय देखकर थोडे-से वृक्षोंके रह जानेपर उनके राजा सोमने प्रजापित प्रचेताओंके पास जाकर कहा-|| ५॥ "हे नपतिगण ! आप क्रोध शान्त कीजिये और मैं जो कुछ कहता हुँ, सुनिये । मैं बृक्षोंके साथ आपछोगोंकी सन्धि करा दूँगा ॥ ६ ॥ वृक्षोंसे उत्पन्न हुई इस सुन्दर वर्णवाछी रत्नखरूपा कन्याका, मैंने पहलेसे ही भविष्यको जानकर अपनी अमृतमयी विकरणोंसे पालन-पोषण किया है ॥ ७॥ वृक्षोंकी यह कन्या मारिषा नामसे प्रसिद्ध है, यह महाभागा इसल्पिये ही उत्पन्न की गयी है कि निश्चय ही तुम्हारे वंशको बढ़ानेवाली तुम्हारी भार्या हो ॥ ८॥ मेरे और तुम्हारे आधे-आधे तेजसे इसके परम विद्वान दक्ष नामक प्रजापति उत्पन्न होगा ॥ ९ ॥ वह तुम्हारे तेजके सहित मेरे अंशसे युक्त होकर अपने तेजके कारण अभिके समान होगा और प्रजाकी खूत वृद्धि करेगा ॥ १०॥

पूर्वकालमें वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ एक कण्डु नामक मुनीखर थे। उन्होंने गोमती नदीके परम रमणीक तटपर घोर तप किया॥ ११॥॥ वह उन्हों ना

सुरम्ये गोमतीतीरे स तेपे परमं तपः ॥११॥ तटपर घोर तप किया ॥ ११॥ ॥ तव इन्द्रने उन्हें

तत्क्षोभाय सुरेन्द्रेण प्रम्लोचाख्या वराप्सराः। प्रयुक्ता क्षोभयामास तमृषि सा श्चिचिसता ।।१२।। क्षोमितः स तया सार्द्धं वर्षाणामधिकं शतस् । अतिष्ठन्मन्दरद्रोण्यां विषयासक्तमानसः ॥१३॥ तं सा प्राह महाभाग गन्तुमिच्छाम्यहं दिवस्। प्रसादसुमुखो ब्रह्मन्तुज्ञां दातुमहिसि ।।१४॥ तयैवमुक्तः स मुनिस्तस्यामासक्तमानसः। दिनानि कतिचिद्धद्रे स्थीयतामित्यभाषत ॥१५॥ एवमुक्ता ततस्तेन साम्रं वर्षशतं पुनः। व्रभ्रजे विषयांस्तन्वी तेन सार्क महात्मना ।।१६॥ अनुज्ञां देहि भगवन् व्रजामि त्रिद्शालयम्। उक्तस्तथेति स पुनः स्थीयतामित्यभापत ॥१७॥ पुनर्गते वर्षशते साधिके सा शुभानना। यामीत्याह दिवं ब्रह्मन्त्रणयसितशोभनम् ॥१८॥ उक्तस्तयैवं स म्रुनिरुपगुद्यायतेक्षणाम् । इहास्यतां क्षणं सुभ्रु चिरकालं गमिष्यसि ॥१९॥ सा क्रीडमाना सुश्रोणी सह तेनर्षिणा पुनः। शतद्वयं किश्चिद्नं वर्षाणामन्वतिष्ठत ।।२०॥ गमनाय महाभाग देवराजनिवेशनम् । **प्रोक्तः** प्रोक्तस्तया तन्व्या स्थीयतामित्यभापत ।२१। तस्य शापभयाद्भीता दाक्षिण्येन च दक्षिणा । प्रोक्ता प्रणयमङ्गार्त्तिवेदिनी न जहौ मुनिम् ॥२२॥

तपोश्रष्ट करनेके लिये प्रम्लोचा नामकी उत्तम अप्सराको नियुक्त किया। उस मञ्जुहासिनीने उन ऋषिश्रेष्ठको निचलित कर दिया॥ १२॥ उसके द्वारा क्षुच्य होकर वे सौसे भी अधिक वर्षतक विषयासक्त-चित्तसे मन्दराचलकी कन्दरामें रहे॥ १३॥

तब, हे महाभाग ! एक दिन उस अप्सराने कण्डु ऋषिसे कहा—"हे ब्रह्मन् ! अब मैं खर्गछोकको जाना चाहती हूँ, आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे आज्ञा दीजिये" ॥ १४ ॥ उसके ऐसा कहनेपर उसमें आसक्त-चित्त हुए मुनिने कहा—"मद्रे ! अभी कुछ दिन और रहो" ॥ १५॥ उनके ऐसा कहनेपर उस सुन्दरीने महात्मा कण्डुके साथ अगले सौ वर्षतक और रहकर नाना प्रकारके मोग मोगे ॥ १६॥ तव भी, उसके यह पूछनेपर कि 'भगवन् ! मुझे खर्गछोकको जानेकी आज्ञा दीजिये' ऋषिने यही कहा कि 'अभी और ठहरों' ॥ १७॥ तदनन्तर सौ वर्षसे कुछ अधिक बीत जानेपर उस सुमुखीने प्रणययुक्त मुसकानसे सुशोमित वचनोंमें फिर कहा-"ब्रह्मन् ! अव मैं खर्गको जाती हूँ" ॥ १८॥ यह सुनकर मुनिने उस विशालाक्षीको आलिंगनकर कहा—"अयि सुभु ! अब तो त् बहुत दिनोंके छिये चछी जायगी इसछिये क्षणमर तो और ठहर"॥ १९॥ तत्र वह सुश्रोणी (सुन्दर कमरवाली) उस ऋषिके साथ कीड़ा करती हुई दो सौ वर्षसे कुछ कम और रही ॥ २०॥

हे महाभाग ! इस प्रकार जब-जब वह सुन्दरी देवलोकको जानेके लिये कहती तभी-तभी कण्डु ऋषि उससे यही कहते कि 'अभी ठहर जा' ॥ २१ ॥ सुनिके इस प्रकार कहनेपर, प्रणयभंगकी पीड़ाको जाननेवाली उस दक्षिणाने अपने दाक्षिण्यवश तथा मुनिके शापसे भयभीत होकर उन्हें न लोड़ा ॥ २२ ॥ तथा उन महर्षि महोदयका भी, कामासक्त-

या गौरवं मयं प्रेम सद्भावं पूर्वनायके। न मुश्रात्यन्यसकापि सा क्षेत्रा दक्षिणा नुषेः॥

अन्य नायकमें आसक्त रहते हुए भी जो अपने पूर्व-नायकको गौरव, भय, प्रेम और सन्नावके कारण न

अ दक्षिणा नायिकाका छत्रण इस प्रकार कहा है—

तया च रमतस्तस्य परमर्पेरहर्निश्चम् ।
नवं नवमभूत्रेम मन्मथाविष्टचेतसः ॥२३॥
एकदा तु त्वरायुक्तो निश्चकामोटजान्युनिः ।
निष्कामन्तं च कुत्रेति गम्यते प्राह सा श्चमा ॥२४॥
इत्युक्तः स तया प्राह परिष्टक्तमहः शुमे ।
सन्ध्योपास्ति करिष्यामि कियालोपोऽन्यथा भवेत् ॥
ततः प्रहस्य सुदती तं सा प्राह महाग्रुनिम् ।
किमद्य सर्वधर्मञ्च परिष्टक्तमहस्तव ॥२६॥
बहुनां विष्र वर्षाणां परिष्टक्तमहस्तव ।
गतमेतन्न कुरुते विस्तयं कस्य कथ्यताम् ॥२७॥

मुनिरुवाच

प्रातस्त्वमागता मद्रे नदीतीरिमदं शुभम् ।
मया दृष्टासि तन्त्रङ्गि प्रविष्टासि ममाश्रमम् ॥२८॥
इयं च वर्तते सन्ध्या परिणाममहर्गतम् ।
उपहासः किमर्थोऽयं सद्भावः कथ्यतां मम ॥२९॥
प्रम्लोनोवान

प्रत्यूषस्यागता ब्रह्मन् सत्यमेतन्न तन्मृषा । नन्वस्य तस्य कालस्य गतान्यब्दशतानि ते ॥३०॥

सोम उवाच

ततस्ससाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छायतेक्षणाम् । कथ्यंतां भीरु कः कालस्त्वया मे रमतः सह ॥३१॥

प्रम्लोचोवाच सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्षशतानि ते। मासाश्च पद्तथैवान्यत्समतीतं दिनत्रयम्।।३२।।

ऋषिरुवाच

सत्यं भीरु वदस्येतत्परिहासोऽथ वा श्रुमे । दिनमेकमहं मन्ये त्वया सार्द्धमिहासितम् ॥३३॥ चित्तसे उसके साथ अहर्निश रमण करते-करते, उसमें नित्य नूतन प्रेम बढ़ता गया ॥ २३ ॥

एक दिन वे मुनिवर वड़ी शीव्रतासे अपनी कुटीसे निकले। उनके निकलते समय वह सुन्दरी बोली— "आप कहाँ जाते हैं" ॥ २४ ॥ उसके इस प्रकार पूछनेपर मुनिने कहा—"हे शुमे! दिन अस्त हो चुका है, इसिलेये मैं सन्ध्योपासना करूँगा; नहीं तो नित्य-क्रिया नष्ट हो जायगी" ॥ २५ ॥ तव उस सुन्दर दाँतोंवालीने उन मुनीश्वरसे हँसकर कहा—"हे सर्वधर्मन्न! क्या आज ही आपका दिन अस्त हुआ है ! ॥ २६ ॥ हे विप्र! अनेकों वर्षोंके पश्चात् आज आपका दिन अस्त हुआ है; इससे कहिये, किसको आश्चर्य न होगा ?" ॥ २७ ॥

मुनि बोळे-हे भद्रे! नदीं के इस सुन्दर तटपर तुम आज सबेरे ही तो आयी हो। [मुझे भछी प्रकार समरण है] मैंने आज ही तुमको अपने आश्रममें प्रवेश करते देखा था। २८॥ अब दिनके समाप्त होनेपर यह सन्ध्याकाछ हुआ है। फिर, सच तो कहो, ऐसा उपहास क्यों करती हो १॥ २९॥

प्रम्छोचा बोछी-ब्रह्मन् ! आपका यह कथन कि 'तुम सबेरे ही आयी हो' ठीक ही है, इसमें झूठ नहीं; परन्तु उस समयको तो आज सैकड़ों वर्ष बीत चुके ॥ ३०॥

सोमने कहा-तव उन विप्रवरने उस विशालाक्षीसे कुछ घवड़ाकर पूछा-"अरी मीरु! ठीक-ठीक वता, तेरे साथ रमण करते मुझे कितना समय वीत गया ?"॥ ३१॥

प्रम्छोचाने कहा—अवतक नौ सौ सात वर्ष, छः महीने तथा तीन दिन और भी वीत चुके हैं॥ ३२॥

ऋषि बोले-अयि भीरु ! यह त् ठीक कहती है, या हे ग्रुमें ! मेरी हँसी करती है ! मुझे तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि मैं इस स्थानपर तेरे साथ केवल एक ही दिन रहा हूँ ॥ ३३ ॥

प्रम्लोचोवाच

विदेष्याम्यनृतं ब्रह्मन्कथमत्र तवान्तिके। विशेषेणाद्य भवता पृष्टा मार्गानुवर्तिना।।३४॥

सोम उवाच

निश्चम्य तद्वचः सत्यं स मुनिर्नृपनन्दनाः । धिग्धिङ् मामित्यतीवेत्थं निनिन्दात्मानमात्मना।।

मुनिरुवाच

तपांसि मम नष्टानि हतं ब्रह्मविदां धनम् ।
हतो विवेकः केनापि योषिन्मोहाय निर्मिता ॥३६॥

ऊर्मिषद्कातिगं ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे ।
मितरेषा हता येन धिक् तं कामं महाग्रहम् ॥३७॥
ब्रतानि वेदवेद्याप्तिकारणान्यखिलानि च ।
नरकग्राममार्गेण सङ्गेनापहृतानि मे ॥३८॥

विनिन्धेत्थं स धर्मज्ञः खयमात्मानमात्मना ।
तामप्सरसमासीनामिदं वचनमत्रवीत् ॥३९॥
गच्छ पापे यथाकामं यत्कार्यं तत्कृतं त्वया ।
देवराजस्य मत्क्षोभं कुर्वन्त्या भावचेष्टितैः ॥४०॥
न त्वां करोम्यहं भस्म क्रोधतीत्रेण विद्वना ।
सतां सप्तपदं मैत्रग्रुषितोऽहं त्वया सह ॥४१॥
अथवा तव को दोषः किं वा कुप्याम्यहं तव ।
ममैव दोषो नितरां येनाहमजितेन्द्रियः ॥४२॥
यया शक्रियार्थिन्या कृतो मे तपसो व्ययः ।
न्वया धिक्तां महामोहमञ्जूषां सुजुगुप्सिताम्॥४३॥

प्रम्लोचा बोली-हे ब्रह्मन् ! आपके निकट मैं झूठ कैसे बोल सकती हूँ ? और फिर विशेषतया उस समय जब कि आज आप अपने धर्म-मार्गका अनुसरण करनेमें तत्पर होकर मुझसे पूछ रहे हैं ॥ ३४ ॥

सोमने कहा-हें राजकुमारो ! उसके ये सत्य वचन सुनकर मुनिने 'मुझे धिकार है ! मुझे धिकार है !' ऐसा कहकर खयं ही अपनेको बहुत कुछ भछा-बुरा कहा ॥ ३५॥

मुनि बोले-ओह! मेरा तप नष्ट हो गया, जो ब्रह्मवेत्ताओं का धन था वह छुट गया और विवेकबुद्धि मारी गयी! अहो! स्त्रीको तो किसीने मोह
उपजाने के लिये ही रचा है! ॥ ३६॥ 'मुझे अपने
मनको जीतकर छहों ऊर्मियों * से अतीत परब्रह्मको
जानना चाहिये'—जिसने मेरी इस प्रकारकी बुद्धिको नष्ट
कर दिया, उस कामरूपी महाग्रह्मको धिकार
है॥ ३७॥ नरकप्रामके मार्गरूप इस स्त्रीके संगसे
वेदवेद्य भगवान्की प्राप्तिके कारणरूप मेरे समस्त ब्रत
नष्ट हो गये॥ ३८॥

इस प्रकार उन धर्मज्ञ मुनिवरने अपने-आप ही अपनी निन्दा करते हुए वहाँ वैठी हुई उस अप्सरासे कहा—॥ ३९॥ "अरी पापिनि! अब तेरी जहाँ इच्छा हो चळी जा, त्ने अपनी मावमंगीसे मुझे मोहित करके इन्द्रका जो कार्य था वह पूरा कर ळिया॥ १०॥ मैं अपने क्रोधसे प्रज्वळित हुए अग्निद्वारा तुझे मस्म नहीं करता हूँ, क्योंकि सज्जनोंकी मित्रता सात पग साथ रहनेसे हो जाती है और मैं तो [इतने दिन] तेरे साथ निवास कर चुका हूँ॥ ४१॥ अथवा इसमें तेरा दोष भी क्या है, जो मैं तुझपर क्रोध करूँ? दोष तो सारा मेरा ही है, क्योंकि मैं बड़ा ही अजितेन्द्रिय हूँ॥ ४२॥ त् महामोहकी पिटारी और अत्यन्त निन्दनीया है। हाय! त्ने इन्द्रके खार्यके ळिये मेरी तपस्या नष्ट कर दी!! तुझे धिकार है!!!॥ १३॥

सोम उवाच

यावदित्थं स विप्रर्षित्तां त्रवीति सुमध्यमाम् । तावद्रलत्खेदज्ला सावभूवातिवेपशुः ॥४४॥ प्रवेपमानां सततं खिन्नगात्रलतां सतीम्। गच्छ गच्छेति सक्रोधम्रवाच म्रुनिसत्तमः ॥४५॥ सा तु निर्भर्तिसता तेन विनिष्क्रम्य तदाश्रमात् । आकाशगामिनी खेदं ममार्ज तरुपछुनैः ॥४६॥ निर्मार्जमाना गात्राणि गलत्स्वेदजलानि वै। वृक्षादवृक्षं ययौ वाला तदग्रारुणपछ्नवैः ॥४७॥ ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः। निर्जगाम स रोमाश्रक्वेदरूपी तदङ्गतः ॥४८॥ तं वृक्षा जगृहुर्गर्भमेकं चके तु मारुतः। मया चाप्यायितो गोभिः स तदा वृष्टे शनैः ॥४९॥ वृक्षाग्रगर्भसम्भूता मारिषाख्या वरानना । तां प्रदास्यन्ति वो वृक्षाः कोप एप प्रशाम्यताम्।५०। कण्डोरपत्यमेवं सा वृक्षेभ्यश्र समुद्रता। ममापत्यं तथा वायोः प्रम्लोचातनया च सा ॥५१॥ श्रीपराशर उवाच

स चापि भगवान् कण्डुः श्लीणे तपसि सत्तमः। पुरुषोत्तमाख्यं मैत्रेय विष्णोरायतनं ययौ ॥५२॥ तत्रैकाग्रमतिर्भृत्वा चकाराराधनं हरे:। कुर्वञ्जपमेकाग्रमानसः। ब्रह्मपारमयं ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी स्थित्वासौ भूपनन्दनाः।।५३।।

प्रचेतस ऊचुः त्रह्मपारं मुनेः श्रोतिमिच्छामः परमं स्तवम् ।

सोमने कहा-वे ब्रह्मर्षि उस सुन्दरीसे जवतक ऐसा कहते रहे तवतक वह [भयके कारण] पसीनेमें सराबोर होकर अत्यन्त काँपती रही ॥ ४४ ॥ इस प्रकार जिसका समस्त शरीर पसीनेमें इवा इआ था और जो भयसे थर-थर काँप रही थी उस प्रम्छोचासे मुनिश्रेष्ठ कण्डुने क्रोधपूर्वक कहा-"अरी ! तू चली जा ! चली जा !!" ॥ ४५॥

तव वारम्बार फटकारे जानेपर वह उस आश्रमसे निकली और आकाश-मार्गसे जाते हुए उसने अपना पसीना बृक्षके पत्तोंसे पोंछा ॥ ४६ ॥ वह बाछा वृक्षोंके नवीन छाल-लाल पत्तोंसे अपने पसीनेसे तर शरीरको पोंछती हुई एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर चलती गयी ॥४७॥ उस समय ऋषिने उसके शरीरमें जो गर्म स्थापित किया था वह भी रोमाञ्चसे निकले हुए पसीने-के रूपमें उसके शरीरसे बाहर निकल आया॥४८॥ उस गर्मको वृक्षोंने प्रहण कर लिया, उसे वायुने एकत्रित कर दिया और मैं अपनी किरणोंसे उसे पोषित करने लगा। इससे वह घीरे-धीरे वढ़ गया ॥ ४९ ॥ वृक्षाप्रसे उत्पन्न हुई वह मारिषा नामकी सुमुखी कन्या तुम्हें वृक्षगण समर्पण करेंगे। अतः अव यह क्रोध शान्त करो ॥ ५०॥ इस प्रकार वृक्षोंसे उत्पन हुई वह कन्या प्रम्छोचाकी पुत्री है तथा कण्डु मुनिकी, मेरी और वायुकी मी सन्तान है ॥ ५१॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! तिव यह सोचकर कि प्रचेतागण योगभ्रष्टकी कन्या होनेसे मारिषाको अप्राह्य न समझें सोमदेवने कहा- साघश्रेष्ठ भगवान् कण्डु भी तपके क्षीण हो जानेसे पुरुषोत्तम-क्षेत्रनामक भगवान् विष्णुकी निवास-भूमिको गये और हे राजपुत्रो! वहाँ वे महायोगी एकनिष्ठ होकर एकाग्र चित्तसे ब्रह्मपार-मन्त्रका जप करते हुए ऊर्घ्ववाहु रहकर श्रीविष्णुमगवान्की आराधना करने लो ॥ ५२-५३॥

प्रचेतागण बोले-हम कण्डु मुनिका ब्रह्मपार-नामक परमस्तोत्र सुनना चाहते हैं, जिसका जप करते जपता कण्डुना देवो येनाराध्यत केञ्चः ॥५४॥ हुए उन्होंने श्रीकेशवकी आराधना की थी॥ ५४॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

सोम उवाच

पारं परं विष्णुरपारपारः परः परेभ्यः परमार्थरूपी ।

स ब्रह्मपारः परपारभूतः

परः पराणामपि पारपारः ॥५५॥

स कारणं कारणतस्ततोऽपि

तस्यापि हेतुः परहेतुहेतुः।

कार्येषु चैवं सह कर्मकर्त्-

रूपैरशेषैरवतीह सर्वम् ॥५६॥ त्रक्ष प्रभुत्रेक्ष स सर्वभूतो

ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ ।

ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णु-

रपक्षयाद्यैरिकलैरसङ्गि ॥५७॥

तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रश्नां मम ॥५८॥ एतद्त्रक्षपराख्यं वे संस्तवं परमं जपन् । अवाप परमां सिद्धं स तमाराध्य केशवम् ॥५९॥ [इमं स्तवं यः पठित शृणुयाद्वापि नित्यशः । स कामदोपैरिखलैर्धुक्तः प्रामोति वाञ्छितम् ॥] इयं च मारिषा पूर्वमासीद्या तां त्रवीमि वः । कार्यगौरवमेतस्याः कथने फलदायि वः ॥६०॥ अपुत्रा प्रागियं विष्णुं मृते भक्तिर सत्तमाः । भूपपत्नी महामागा तोषयामास भक्तितः ॥६१॥ आराधितस्तया विष्णुः प्राह प्रत्यक्षतां गतः । वरं वृणीष्वेति शुभे सा च प्राहात्मवाञ्छितम्॥६२॥ वरं वृणीष्वेति शुभे सा च प्राहात्मवाञ्छितम्॥६२॥

सोमने कहा-[हे राजकुमारो ! वह मन्त्र इस प्रकार है--] 'श्रीविष्णुभगवान् संसार-मार्गकी अन्तिम अविध हैं, उनका पार पाना कठिन है, वे पर (आकाशादि) से भी पर अर्थात् अनन्त हैं, अतः सत्यखरूप हैं । तपोनिष्ठ महात्माओंको ही वे प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि वे पर (अनात्म-प्रपञ्च) से परे हैं तथा पर (इन्द्रियों) के अगोचर परमात्मा हैं और [भक्तोंके] पालक एवं [उनके अमीष्टको] पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ५५ ॥ वे कारण (पञ्चभूत) के कारण (पञ्चतन्मात्रा) के हेतु (तामस-अहंकार) और उसके भी हेतु (महत्तत्त्व) के हेतु (प्रधान) के भी परम हेतु हैं और इस प्रकार समस्त कर्म और कर्त्ता आदिके सहित कार्यरूपसे स्थित सकल प्रपन्न-का पालन करते हैं ॥ ५६ ॥ ब्रह्म ही प्रमु है, ब्रह्म ही सर्वजीवरूप है और ब्रह्म ही सकल प्रजाका पति (रक्षक) तथा अविनाशी है। वह ब्रह्म अन्यय, नित्य और अजन्मा है तथा वही क्षय आदि समस्त विकारोंसे शून्य विष्णु है ॥ ५७ ॥ क्योंकि वह अक्षर, अज और नित्य ब्रह्म ही पुरुषोत्तम भगवान् विष्ण हैं इसिछिये [उनका नित्य अनुरक्त भक्त होनेके कारण] मेरे राग आदि दोष शान्त हों' ॥ ५८॥

इस ब्रह्मपार-नामक परम स्तोत्रका जप करते हुए श्रीकेशवकी आराधना करनेसे उन मुनीश्वरने परमसिद्धि प्राप्त की ॥ ५९॥ [जो पुरुष इस स्तवको नित्यप्रति पढ़ता या सुनता है वह काम आदि सक्छ दोषोंसे मुक्त होकर अपना मनोवाञ्छित फळ प्राप्त करता है।] अब मैं तुम्हें यह बताता हूँ कि यह मारिषा पूर्वजन्ममें कौन थी। यह बता देनेसे तुम्हारे कार्यका गौरव सफळ होगा। [अर्थात् तुम प्रजा-वृद्धिरूप फळ प्राप्त कर सकोगे]॥ ६०॥

यह साध्वी अपने पूर्व जन्ममें एक महारानी थी। पुत्रहीन अवस्थामें ही पितके मर जानेपर इस महाभागाने अपने मिक्तभावसे विष्णुमगवान्को सन्तुष्ट किया ॥ ६१ ॥ इसकी आराधनासे प्रसन्त हो विष्णुभगवान्ने प्रकट होकर कहा—"हे शुमे । वर माँग।" तब इसने अपनी मनोभिलाषा इस प्रकार

भगवन्वालवैधव्याद् वृथाजन्माहमीदृशी ।

मन्दभाग्या समुद्भूता विफला च जगत्पते ॥६३॥

भवन्तु पतयः श्लाद्या मम जन्मिन जन्मिन ।

त्वत्प्रसादात्तथा पुत्रः प्रजापितसमोऽस्तु मे ॥६४॥

कुलं शीलं वयः सत्यं दाक्षिण्यं क्षिप्रकारिता ।

अविसंवादिता सन्त्वं वृद्धसेवा कृतज्ञता ॥६५॥

रूपसम्पत्समायुक्ता सर्वस्य प्रियदर्शना ।

अयोनिजा च जायेयं त्वत्प्रसादाद्धोक्षज ॥६६॥

सोम उवाच

तयैवम्रुक्तो देवेशो हृपीकेश उवाच ताम् । प्रणामनम्राम्रुत्थाप्य वरदः परमेश्वरः ॥६७॥ देव उवाच

भविष्यन्ति महावीर्या एकसिनेव जन्मनि ।
प्रख्यातोदारकर्माणो भवत्याः पतयो दश ॥६८॥
पुत्रश्च सुमहावीर्यं महावलपराक्रमम् ।
प्रजापतिगुणैर्युक्तं त्वमवाप्सिसि शोभने ॥६९॥
वंशानां तस्य कर्तृत्वं जगत्यसिन्भविष्यति ।
त्रैलोक्यमसिला स्रतिस्तस्य चापूर्यिष्यति ॥७०॥
त्वं चाप्ययोनिजा साध्वी रूपौदार्यगुणान्विता ।
मनःप्रीतिकरी नृणां मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥७१॥
इत्युक्त्वान्तर्द्धे देवस्तां विशालविलोचनाम् ।
सा चेयं मारिषा जाता युष्मत्यत्नी नृपात्मजाः ॥७२॥

श्रीपराशर उवाच

ततः सोमस्य वचनाञ्जगृहुस्ते प्रचेतसः । संहृत्यकोपं वृक्षेम्यः पत्नीधर्मेण मारिषाम् ॥७३॥ दश्यस्तु प्रचेतोम्यो मारिषायां प्रजापतिः । जज्ञे दक्षो महाभागो यः पूर्वे ब्रह्मणोऽभवत् ॥७४॥ कह सुनायी—॥ ६२ ॥ "मगवन् ! वाल-विधवा होनेके कारण मेरा जन्म व्यर्थ ही हुआ । हे जगत्पते ! मैं ऐसी अमागिनी हूँ कि फल्रहीन (पुत्रहीन) ही उत्पन्न हुई ॥ ६३ ॥ अतः आपकी कृपासे जन्म-जन्ममें मेरे बड़े प्रशंसनीय पित हों और प्रजापित (ब्रह्माजी) के समान पुत्र हो ॥ ६४ ॥ और हे अधोक्षज ! आपके प्रसादसे मैं भी कुल, शील, अवस्था, सत्य, दाक्षिण्य (कार्य-कुशलता), शीध-कारिता, अविसंवादिता (उल्टा न कहना), सत्त्व, खद्रसेवा और कृतज्ञता आदि गुणोंसे तथा सुन्दर रूपसम्पत्तिसे सम्पन्न और सबको प्रिय लगनेवाली अयोनिजा (माताके गर्भसे जन्म लिये विना) ही उत्पन्न होऊँ" ॥ ६५-६६ ॥

सोम बोले-उसके ऐसा कहनेपर वरदायक परमेश्वर देवाधिदेव श्रीहृषीकेशने प्रणामके लिये झुकी हुई उस वालाको उठाकर कहा ॥ ६७॥

भगवान् बोले-तेरे एक ही जन्ममें वड़े पराक्रमी और विख्यात कर्मवीर दश पित होंगे, और हे शोमने ! उसी समय तुझे प्रजापितके समान एक महावीर्यवान् एवं अत्यन्त वल-विक्रमयुक्त पुत्र भी प्राप्त होगा ॥ ६८-६९॥ वह इस संसारमें कितने ही वंशोंको चलानेवाला होगा और उसकी सन्तान सम्पूर्ण त्रिलोकोंमें फैल जायगी॥ ७०॥ तथा त्र भी मेरी कृपासे उदाररूपगुणसम्पन्ना, सुशीला और मनुष्योंके चित्तको प्रसन्न करनेवाली अयोनिजा ही उत्पन्न होगी॥ ७१॥ हे राजपुत्रो ! उस विशालाक्षीसे ऐसा कह भगवान् अन्तर्धान हो गये और वही यह मारिषाके रूपसे उत्पन्न हुई तुम्हारी पत्नी है॥ ७२॥

श्रीपराशरजी बोले—तव सोमदेवके कहनेसे प्रचेताओंने अपना क्रोध शान्त किया और उस मारिषाको वृक्षोंसे पत्नीरूपसे प्रहण किया ॥७३॥ उन दशों प्रचेताओंसे मारिषाके महामाग दक्ष प्रजापतिका जन्म हुआ, जो पहले ब्रह्माजीसे उत्पन्न इए थे ॥७४॥ स तु दक्षो महाभागस्सृष्टचर्थ सुमहामते।
पुत्रानुत्पादयामास प्रजासृष्टचर्थमात्मनः।।७५॥
अवरांश्र वरांश्रेव द्विपदोऽथ चतुष्पदान्।
आदेशं ब्रह्मणः कुर्वन् सृष्टचर्थं समुपस्थितः।।७६॥
स सृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे।।७७॥
तासु देवास्तथा दैत्या नागा गावस्तथा खगाः।
गन्धर्वाप्सरसश्चेव दानवाद्याश्र जित्ररे।।७८॥
ततः प्रभृति मेत्रेय प्रजा मेथुनसम्भवाः।
सङ्कल्पादर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषामभवन् प्रजाः।
तपोविशेषैः सिद्धानां तदात्यन्ततपिक्वनाम्।।७९॥
श्रीमैत्रेय जवाच

अजुष्ठादक्षिणाद्यः पूर्वं जातो मया श्रुतः ।
कथं प्राचेतसो भूयः सम्रुत्पन्नो महाम्रुने ॥८०॥
एप मे संशयो ब्रह्मन्सुमहान्हृदि वर्तते ।
यहाहित्रश्च सोमस्य पुनः श्रश्चरतां गतः ॥८१॥

श्रीपराशर उवाच

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यो भूतेषु सर्वदा ।

ऋषयोऽत्र न मुद्धान्ति ये चान्ये दिच्यचक्षुषः ॥८२॥

युगे युगे भवन्त्येते दक्षाद्या मुनिसत्तम ।

पुनश्चैवं निरुद्धचन्ते विद्धांस्तत्र न मुद्धाति ॥८३॥

कानिष्ठयं ज्येष्ट्यमप्येषां पूर्व नाभूद्द्विजोत्तम ।

तप एव गरीयोऽभूत्त्रभावश्चैव कारणम् ॥८४॥

श्रीमैत्रेय जवान

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरश्वसाम् । दानव, गन्धर्व, सर्प इ इत्पत्तिं विस्तरेणेह मम ब्रह्मन्त्रकीर्त्तेय ॥८५॥ पूर्वक कृहिये ॥८५॥

हें महामते ! उन महाभाग दक्षने, ब्रह्माजीकी आज्ञा पाळते हुंए सर्ग-रचनाके लिये उद्यत होकर अपनी सृष्टि वढाने और सन्तान करनेके छिये नीच-ऊँच तथा उत्पन्न चतुष्पंद आदि नाना प्रकारके जीवोंको पुत्ररूपसे उत्पन्न किया ।।७५-७६।। प्रजापति दक्षने पहले मनसे ही सृष्टि करके फिर स्त्रियोंकी उत्पत्ति की । उनमेंसे दश धर्मको और तेरह कस्यपको दीं तथा काल-परिवर्तनमें नियुक्त [अश्विनी आदि] चन्द्रमाको विवाह दीं ॥७७॥ उन्हींसे देवता, दैत्य, नाग, गौ, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा और दानव आदि उत्पन्न हुए ॥७८॥ हे मैत्रेय ! दक्षके समयसे ही प्रजाका मैथुन (स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध) द्वारा उत्पन्न होना आरम्भ हुआ है। उससे पहले तो अत्यन्त तपसी प्राचीन सिद्ध पुरुषोंके तपोबलसे उनके संकल्प, दर्शन अथवा स्पर्शमात्रसे ही प्रजा उत्पन्न होती थी ॥७९॥

श्रीमें त्रेयजी बोले—हे महामुने ! मैंने तो सुना था कि दक्षका जन्म ब्रह्माजीके दायें अँगूठेसे हुआ था, फिर वे प्रचेताओंके पुत्र किस प्रकार हुए ! ॥८०॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे हृदयमें यह बड़ा सन्देह है कि सोमदेवके दौहित्र (धेवते) होकर भी फिर वे उनके बसुर हुए ! ॥८१॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय! प्राणियोंके उत्पत्ति और नाश [प्रवाहरूपसे] निरन्तर हुआ करते हैं। इस विषयमें ऋषियों तथा अन्य दिव्यदृष्टि-पुरुषोंको कोई मोह नहीं होता ॥८२॥ हे मुनिश्रेष्ठ! ये दक्षादि युग-युगमें होते हैं और फिर लीन हो जाते हैं; इसमें विद्वान्को किसी प्रकारका सन्देह नहीं होता ॥८२॥ हे द्विजोत्तम! इनमें पहले किसी प्रकारकी ज्येष्ठता अथवा किम्छता भी नहीं थी। उस समय तप और प्रभाव ही उनकी ज्येष्ठताका कारण होता था॥८॥

श्रीमेत्रेयजी बोले—हे ब्रह्मन् ! आप मुझसे देव-दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षसोंकी उत्पत्ति विस्तार-पूर्वक कहिये ॥८५॥ श्रीपराशर उवाच

प्रजाः सुजेति न्यादिष्टः पूर्वं दक्षः खयम्भवा । यथा ससर्ज भृतानि तथा शृणु महामुने ।।८६।। मानसान्येव भूतानि पूर्वं दक्षोऽसजत्तदा । देवानुपीन्सगन्धर्वानसरान्पन्नगांस्तथा ।।८७॥ यदास्य सजमानस्य न व्यवर्धन्त ताः प्रजाः। ततः सश्चिन्त्य स प्रनः सृष्टिहेतोः प्रजापतिः॥८८॥ मैथुनेनैव धर्मेण सिसक्षविविधाः प्रजाः । असिक्रीमावहत्कन्यां वीरणस्य प्रजापतेः। सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम् ॥८९॥ अथ पुत्रसहस्राणि वैरुण्यां पश्च वीर्यवान । असिक्न्यां जनयामास सर्गहेतोः प्रजापतिः ॥९०॥ तान्द्या नारदो विप्र संविवर्द्धयिषुन्प्रजाः। सङ्गम्य प्रियसंवादो देवपिरिदमन्नवीत ॥९१॥ हे हर्यश्वा महावीर्याः प्रजा युयं करिष्यथ । ईदशो दृश्यते यत्नो भवतां श्रूयतामिदम् ॥९२॥ बालिशा बत युयं वै नास्या जानीत वै भ्रवः । अन्तरूर्ध्वमधश्रीव कथं सक्ष्यथ वै प्रजाः ॥९३॥ ऊर्घ्वं तिर्यगधश्रेव यदाऽप्रतिहता गतिः। तदा कसाद्भवो नान्तं सर्वे द्रक्ष्यथ बालिशाः॥९४॥ ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतो दिशम् । अद्यापि नो निवर्तन्ते सम्रद्रेभ्य इवापगाः ॥९५॥ हर्यश्रेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः। वैरुण्यामथ पुत्राणां सहस्रमस्जत्त्रश्चः ॥९६॥ विवर्द्धयिषवस्ते त शबलाश्वाः प्रजाः पुनः । पूर्वीक्तं वचनं ब्रह्मकारदेनैव नोदिताः ॥९७॥ अन्योऽन्यमृचुस्ते सर्वे सम्यगाह महासुनिः ।

श्रीपराशरजी बोले—हे महामुने ! खयम्भू-मगवान् ब्रह्माजीकी ऐसी आज्ञा होनेपर कि 'तुम प्रजा उत्पन्न करी' दक्षने पूर्वकालमें जिस प्रकार प्राणियोंकी रचना की थी वह सुनो ॥८६॥ उस समय पहले तो दक्षने ऋषि, गन्धर्व, असुर और सर्प आदि मानसिक प्राणियोंको ही उत्पन्न किया॥८०॥ इस प्रकार रचना करते हुए जब उनकी वह प्रजा और न बढ़ी तो उन प्रजापतिने सृष्टिकी वृद्धिके लिये मनमें विचारकर मैथुनधमेसे नाना प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे वीरण प्रजापतिकी अति तपस्विनी और लोक-धारिणी पुत्री असिक्नीसे विवाह किया ॥८८-८९॥

ं तदनन्तर वीर्यवान प्रजापति, दक्षने सर्गको बृद्धिके लिये वीरणसुता असिक्रीसे पाँच सहस्र पुत्र उत्पन्न किये ॥९०॥ उन्हें प्रजा-वृद्धिके इच्छक देख प्रिय-वादी देवर्षि नारदने उनके निकट जाकर इस प्रकार कहा-॥९१॥ "हे महापराक्रमी हर्यश्वगण ! आप-छोगोंकी ऐसी चेष्टा प्रतीत होती है कि आप प्रजा उत्पन्न करेंगे, सो मेरा यह कथन सनो ॥९२॥ खेदकी वात है, तम लोग अभी निरे अनिमन्न हो क्योंकि तम इस पृथिवीका मध्य, ऊर्ध्व (ऊपरी माग) और अधः (नीचेका भाग) कुछ भी नहीं जानते, फिर प्रजाकी रचना किस प्रकार करोगे ? देखो. तुम्हारी गति इस ब्रह्माण्डमें ऊपर-नीचे और इधर-उधर सब ओर अप्रतिहत (बे-रोक-टोक) है; अतः हे अज्ञानियो ! तम सब मिळकर इस प्रथिवीका अन्त क्यों नहीं देखते ?" ॥९३-९४॥ नारदजीके ये वचन सनकर वे सब भिन्न-भिन्न दिशाओंको चले गये और समुद्रमें जाकर जिस प्रकार नदियाँ नहीं छौटतीं उसी प्रकार वे भी आजतक नहीं छोटे ॥९५॥

हर्यश्चोंके इस प्रकार चले जानेपर प्रचेताओंके पुत्र दक्षने वैरुणीसे एक सहस्र पुत्र और उत्पन्न किये॥९६॥ वे शबलाश्चगण भी प्रजा बढ़ानेके इच्छुक हुए, किन्तु हे ब्रह्मन् ! उनसे नारदजीने ही फिर पूर्वोक्त बातें कह दीं। तब वे सब आपसमें एक दूसरेसे कहने लगे— 'महासुनि नारदजी ठीक कहते हैं; हमको भी, इसमें

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

भ्रातृणां पदवी चैव गन्तव्या नात्र संशयः ॥९८॥ ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च प्रजास्त्रक्ष्यामहे ततः। तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतोग्रुखम् । अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेम्य इवापगाः ॥९९॥ ततः प्रभृति वै आता आतुरन्वेषणे द्विज । प्रयातो नक्यति तथा तन्न कार्य विजानता ।।१००।। तांश्रापि नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः। क्रोधं चक्रे महाभागो नारदं स शशाप च ॥१०१॥ सर्गकामस्ततो विद्वान्स मैत्रेय प्रजापतिः। पष्टिं दक्षोऽसुजत्कन्या वैरुण्यामिति नः श्रुतम् १०२ दिदौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥१०३॥ द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा। द्धे कुशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ।।१०४।। अरुन्धती वसुर्यामिर्लम्या भाउमरुत्वती । सङ्कल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च ताहशी। धर्मपत्न्यो दञ्च त्वेतास्ताखपत्यानि मे शृणु ॥१०५॥ विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजायत । मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोश्च वसवः स्मृताः । भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्तायां मुहूर्तजाः ॥१०६॥ लम्बायाश्चेव घोषोऽथ नागवीथी तु यामिजा ।१०७। पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यामजायत । सङ्करपायास्तु सर्वात्मा जज्ञे सङ्करप एव हि ।।१०८।। ये त्वनेकवसुप्राणदेवा ज्योतिः पुरोगमाः । वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम्१०९ आपो ध्रुवंश्व सोमश्च धर्मश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्युषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥११०॥ आपस्य पुत्रो वैतण्डः श्रमः शान्तो घ्वनिस्तथा। ध्वस्य पुत्रो भगवान्कालो लोकंप्रकालनः।।१११।।

सन्देह नहीं, अपने भाइयोंके मार्गका ही अवलम्बन करना चाहिये। हम भी पृथिवीका परिमाण जानकर ही सृष्टि करेंगे। इस प्रकार वे भी उसी मार्गसे समस्त दिशाओंको चले गये और समुद्रगत नदियोंके समान आजतक नहीं लौटे॥ ९७—९९॥ हे द्विज! तबसे ही यदि भाईको खोजनेके लिये भाई ही जाय तो वह नष्ट हो जाता है, अतः विज्ञ पुरुषको ऐसा न करना चाहिये॥१००॥

महाभाग दक्ष प्रजापतिने उन पुत्रोंको भी गये जान नारदजीपर वड़ा क्रोध किया और उन्हें शाप दे दिया ॥१०१॥ हे मैत्रेय ! हमने सुना है कि फिर उस विद्वान् प्रजापतिने सर्गवृद्धिकी इच्छासे वैरुणीमें साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥१०२॥ उनमेंसे उन्होंने दश धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस सोम (चन्द्रमा) को और चार अरिष्टनेमिको दीं ॥१०३॥ तथा दो बहुपुत्र, दो अङ्गिरा और दो कृशास्त्रको विवाहीं। अब उनके नाम सुनो ॥ १०४॥ अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विक्वा—ये दश धर्मकी पित्नेयाँ थीं; अब तुम इनके पुत्रोंका विवरण सुनो ॥१०५॥ विस्वाके पुत्र विक्वेदेवा थे, साध्यासे साध्यगण हुए, मरुत्वतीसे मरुत्वान् और वसुसे वसुगण हुए तथा भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्ताभिमानी देवगण हुए ॥ १०६॥ लम्बासे घोष. यामीसे और अरुन्धतीसे समस्त पृथिवी-विषयक हुए तथा सङ्कल्पासे सर्वात्मक सङ्कल्पकी उत्पंत्ति हुई ॥१०७-१०८॥

नाना प्रकारका वसु (तेज अथवा धन) ही जिनका प्राण है ऐसे ज्योति आदि जो आठ वसुगण विख्यात हैं, अब मैं उनके वंशका विस्तार बताता हूँ ॥१०९॥ उनके नाम आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल्छ (वायु), अनल्छ (अग्नि), प्रत्यूष और प्रमास कहे जाते हैं ॥११०॥ आपके पुत्र वैतण्ड, श्रम, शान्त और ध्वनि हुए तथा ध्रुवके पुत्र लोक-संहारक भगवान् काल हुए ॥१११॥ भगवान् वर्चा

सोमस्य भगवान्वर्चा वर्चस्वी येन जायते ॥११२॥ धर्मस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा। मनोहरायां शिशिरः प्राणोऽथ वरुणस्तथा ॥११३॥ अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रो मनोजवः। अविज्ञातगतिश्रेव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ।।११४।। अप्रिपुत्रः क्रमारस्त शरस्तम्वे व्यजायत । तस्य शालो विशालश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥११५॥ अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्त्तिकेय इति स्पृतः ।।११६।। प्रत्युषस्य विदुः पुत्रं ऋषि नाम्नाथ देवलम् । द्रौ प्रत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ।।११७॥ बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी। योगसिद्धा जगत्कृत्स्वमसक्ता विचरत्यत । त्रभासस्य तु सा भार्या वस्नामष्टमस्य तु ॥११८॥ विश्वकर्मी महाभागस्तस्यां जज्ञे प्रजापतिः। कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च बर्द्धकी ।।११९।। भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः । यः सर्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह । मनुष्याश्रोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः।।१२०।। तस्य पुत्रास्तु चत्वारस्तेषां नामानि मे शृणु । अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान् । त्वष्टुश्चाप्यात्मजः पुत्रो विश्वरूपो महातपाः॥१२१॥ हरश्च बहरूपश्च ज्यम्बकश्चापराजितः। वृषाकिपश्च शम्भुश्च कपदी रैवतः स्मृतः ॥१२२॥ मृगव्याधश्र शर्वश्र कपाली च महासुने । एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिश्चवनेश्वराः। शतं त्वेकं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम् ।।१२३।। कञ्यपस्य त भार्या यास्तासां नामानि मे शृणु । अदितिर्दितिर्देनुश्रेवारिष्टा च सुरसा खसा ॥१२४॥ सरमिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इर।। कर्द्धिनिश्च धर्मज्ञ तद्पत्यानि मे शृणु ॥१२५॥ विवरण श्रवण करो ॥१२४-१२५॥ विवरण श्रवण करो ॥१२४-१२५॥

सोमके पुत्र थे जिनसे पुरुष वर्चस्वी (तेजस्वी) हो जाता है, और धर्मके उनकी मार्या मनोहरासे द्रविण, हुत एवं हुन्यवह, तथा शिशिर, प्राण और वरुण नामक पुत्र हुए ॥११२-११३॥ अनिलको पत्नी शिवा थी; उससे अनिलके मनोजव और अविज्ञातगति—ये दो पुत्र हुए ॥११४॥ अग्निके पुत्र कुमार शरस्तंम्व (सरकण्डे) से उत्पन्न हुए थे, ये कृत्तिकाओंके पत्र होनेसे कार्तिकेय कहळाये । शाख, विशाख और नैगमेय इनके छोटे माई थे ॥११५-११६॥ देवल नामक ऋषिको प्रत्यूषका पुत्र कहा जाता है। इन देवछके भी दो क्षमाशील और मनीषी पुत्र हुए ॥११७॥

बृहस्पतिजीकी वहिन वरस्त्री, जो ब्रह्मचारिणी और सिद्ध योगिनी थी तथा अनासक्त-भावसे समस्त भूमण्डल-में विचरती थी, आठवें वसु प्रमासकी मार्या हुई ॥११८॥ उससे सहस्रों शिल्पों (कारीगरियों) के कर्ता और देवताओंके शिल्पी महाभाग प्रजापति विश्वकर्माका जन्म हुआ ॥११९॥ जो समस्त शिल्पकारोंमें श्रेष्ठ और सब प्रकारके आभूषण वनानेवाले हुए तथा जिन्होंने देवताओंके सम्पूर्ण विमानोंकी रचना की और जिन महात्माकी [आविष्कृता] शिल्प-विद्याके आश्रयसे बहत-से मनुष्य जीवन-निर्वाह करते हैं ॥१२०॥ उन विक्वकर्माके चार पुत्र थे; उनके नाम सुनो । वे अजैकपाद, अहिर्बुप्न्य, त्वष्टा और परमपुरुषार्थी रुद्ध थे। उनमेंसे त्वष्टाके पुत्र महातपस्वी विस्वरूप थे ॥१२१॥ हे महामुने ! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृपाकिप, शम्मु, कपदीं, रैवत, मृगन्याध, शर्व और कपाछी-ये त्रिछोक्तीके अधीरवर ग्यारह रुद्र कहे गये हैं। ऐसे सैकड़ों महातेजस्वी एकादश रुद्र प्रसिद्ध हैं ॥१२२-१२३॥

जो [दक्षकन्याएँ] कस्यपजीकी स्त्रियाँ हुई उनके नाम सुनो—ने अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरमि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद् और मुनि थीं । हे धर्मज्ञ ! अव तुम उनकी सन्तानका

पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन्सुरोत्तमाः। तुषिता नाम तेऽन्योऽन्यमृचुवैवस्वतेऽन्तरे ॥१२६॥ उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षपस्यान्तरे मनोः। समवायीकृताः सर्वे समागम्य परस्परम् ॥१२७॥ आगच्छत द्वतं देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै। मन्वन्तरे प्रस्यामस्तनः श्रेयो भवेदिति ॥१२८॥ एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। मारीचात्कश्यपाञ्जाता अदित्या दक्षकन्यया।१२९। तत्र विष्णुश्र शक्रश्र जज्ञाते पुनरेव हि। अर्यमा चैव धाता च त्वृष्टा पूपा तथैव च ॥१३०॥ विवस्तान्सविता चैव मित्रो वरुण एव च । अंग्रुर्भगश्रातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः।१३१। चाश्चष्यान्तरे पूर्वमासन्ये तुषिताः सुराः । वैवस्ततेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वाद्श स्पृताः॥१३२॥ थाः सप्तविंशतिः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुत्रताः । सर्वा नक्षत्रयोगिन्यस्तनाम्न्यश्रीव ताः स्मृताः १३३ तासामपत्यान्यभवन्दीप्तान्यमिततेजसाम्। अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह पोडश ॥१३४॥ बहुपुत्रस्य विदुपश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥१३५॥ प्रत्यिङ्गरसजाः श्रेष्टा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः। कुशाश्वस्य तु देवपेदेवप्रहरणाः स्मृताः ॥१३६॥ एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि । सर्वे देवगणास्तात त्रयिस्त्रशत्तु छन्दजाः ॥१३७॥

पूर्व (चाक्षुष) मन्वन्तर में तुषित नामक बारह श्रेष्ठ देवगण थे । वे यशासी सुरश्रेष्ठ पश्चात् वैवखत-मन्वन्तरके उपस्थित मन्बन्तरके होनेपर एक दूसरेके पास जाकर मिले और परस्पर कहने छगे—॥ १२६-१२०॥ "हे देवगण! आओ, हमलोग शीघ्र ही अदितिके गर्भमें प्रवेश कर इस वैवखत-मन्वन्तरमें जन्म छें, इसीमें हमारा हित है" ॥ १२८ ॥ इस प्रकार चाक्षुष-मन्वन्तरमें निश्चयकर उन सबने मरीचिपुत्र कस्यपजीके यहाँ दक्षकन्या अदितिके गर्भसे जन्म लिया॥ १२९॥ वे अति तेजली उससे उत्पन्न होकर विष्णु, इन्द्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूपा, विवसान्, सविता, मैत्र, वरुण, अंशु और भग नामक द्वादश आदित्य कहलाये॥ १३०-१३१॥ इस प्रकार पहले चाक्षुप-मन्वन्तरमें जो तुषित नामक देवगण थे वे ही वैवस्तत-मन्वन्तरमें द्वादश आदित्य हर ॥ १३२॥

सोमकी जिन सत्ताईस सुव्रता पितवोंके विषयमें पहले कह चुके हैं वे सव नक्षत्रयोगिनी हैं और उन नामोंसे ही विख्यात हैं ॥ १३३ ॥ उन अति तेजिस्तिनियोंसे अनेक प्रतिमाशाली पुत्र उत्पन्न हुए । अरिष्टनेमिकी पितयोंके सोछह पुत्र हुए । बुद्धिमान् बहुपुत्रकी भार्या [कपिला, अतिलोहिता, पीता और अशिता * नामक] चार प्रकारकी विद्युत् कही जाती हैं सिनिने ॥ १३४-१३५॥ • ब्रह्मर्षियोंसे सत्कृत अभिमानी देवश्रेष्ठ प्रत्यंगिरासे उत्पन्न तथा शास्त्रोंके अभिमानी देवप्रहरण नामक देवगण देवर्षि कृशास्त्रकी सन्तान कहे जाते हैं॥ १३६॥ हे तात ! [आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, प्रजापति और वषट्कार] ये तैंतीस वेदोक्त देवता अपनी इच्छानुसार जन्म छेनेवाले हैं। कहते हैं, इस छोकमें इनके उत्पत्ति और निरोध निरन्तर हुआ

🕸 ज्योतिःशास्त्रमें कहा है-

वाताय कपिका विद्युदातपायातिकोहिता। पीता वर्षाय विश्वेषा दुर्भिक्षाय सिता मनेत्॥

अर्थात् कपिछ (भूरी) वर्णकी विजली वायु छानेवाली, ग्रस्यन्त लोहित भूप निकालनेवाली, पीतवर्णा वृष्टि छानेवाकी और सिता (स्वेत) दुर्भिक्षकी स्चना देनेवाकी होती है।

तेपामपीह सत्ततं निरोधोत्पत्तिरुच्यते ॥१३८॥ यथा सूर्यस्य मैत्रेय उद्यास्तमनाविह । एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे ॥१३९॥

दित्या पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् । हिरण्यकशिपुञ्जैव हिरण्याक्षश्च दुर्जयः ॥१४०॥ सिंहिका चाभवत्कन्या विश्वचित्तेः परिग्रहः॥१४१॥ हिरण्यकशिपोः पुत्राश्रत्वारः प्रथितौजसः । अनुह्लाद्थ ह्लाद्थ प्रह्लाद्थेव वृद्धिमान् । संह्लादश्च महावीर्या दैत्यवंश्वविवर्द्धनाः ॥१४२॥ तेषां मध्ये महाभाग सर्वत्र समद्द्रग्वशी । प्रह्लादः परमां भक्तिं य उवाच जनार्दने ॥१४३॥ दैत्येन्द्रदीपितो वह्निः सर्वाङ्गोपचितो द्विज । न ददाह च यं विप्र वासुदेवे हृदि स्थिते ॥१४४॥ महार्णवान्तः सिलले स्थितस्य चलतो मही । चचाल सकला यस पाशवद्धस धीमतः ॥१४५॥ न भिन्नं विविधेः शस्त्रेर्यस्य दैत्येन्द्रपातितैः । शरीरमद्रिकठिनं सर्वत्राच्युतचेतसः ॥१४६॥ विषानलोज्ज्वलमुखा यस दैत्यप्रचोदिताः। नान्ताय सर्पपतयो बभूबुरुरुतेजसः ॥१४७॥ शैलैराक्रान्तदेहोऽपि यः सरन्प्रुरुषोत्तमम् । तत्याज नात्मनः प्राणान विष्णुसरणदंशितः १४८ पतन्तम् चादवनिर्यम् पेत्य महामतिम् । दधार दैत्यपतिना श्विप्तं स्वर्गनिवासिना ॥१४९॥ यस्य संशोषको वायुर्देहे दैत्येन्द्रयोजितः । अवाप सङ्घर्यं सद्यश्चित्तस्थे मधुस्रद्रने ।।१५०॥ विषाणभङ्गमुन्मत्ता मदहानि चं दिग्गजाः ।

करते हैं । ये एक हजार युगके अनन्तर पुन:-पुन: उत्पन्न होते रहते हैं ॥१३७-१३८ ॥ हे मैत्रेय ! जिस प्रकार लोकमें सूर्यके अस्त और उदय निरन्तर हुआ करते हैं उसी प्रकार ये देवगण भी युग-युगमें उत्पन्न होते रहते हैं ॥ १३९ ॥

हमने सुना है दितिके कस्यपजीके वीर्यसे परम दुर्जय हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र तथा सिंहिका नामकी एक कन्या हुई जो विप्रचित्तिको विवाही गयो ॥ १४०-१४१॥ **हिरण्यकशिपके** अति तेजस्वी और महापराक्रमी अनुहाद, हाद, बुद्धिमान् प्रह्लाद और संह्लाद नामक चार पुत्र हुए जो दैत्यवंशको वढ़ानेवाले थे॥ १४२॥ हे महामाग! उनमें प्रह्लादजी सर्वत्र समदर्शी और जितेन्द्रिय थे, जिन्होंने श्रीविष्णुभगवान्की परम भक्तिका वर्णन किया था॥ १४३॥ जिनको दैत्यराजद्वारा दीप्त किये हुए अग्निने उनके सर्वाङ्गमें व्याप्त होकर भी, हृदयमें वासुदेव भगवान्के स्थित रहनेसे, नहीं जला पाया ॥ १४४॥ जिन महाबुद्धिमानके पाशवद्ध होकर समुद्रके जलमें पड़े-पड़े इधर-उधर हिल्ने-डुल्नेसे सारी पृथिवी हिलने लगी थी ॥ १४५॥ जिनका पर्वतके समान कठोर शरीर, सर्वत्र मगविचत्त रहनेके कारण दैत्यराजके चळाये हुए अख-शस्त्रोंसे भी छिन्न-भिन्न नहीं हुआ ॥ १४६ ॥ दैत्यराजद्वारा प्रेरित विषाग्निसे प्रज्वित मुखवाले सर्प भी जिन महातेजस्वीका अन्त नहीं कर सके॥ १४७॥ जिन्होंने भगवत्समरणरूपी कवच धारण किये रहनेके कारण पुरुषोत्तम भगवान्का स्मरण करते हुए पत्थरोंकी मार पड़नेपर भी अपने प्राणोंको नहीं छोड़ा ॥१४८॥ खर्गनिवासी दैत्यपतिद्वारा ऊपरसे गिराये जानेपर जिन महामतिको पृथिवीने पास जाकर बीचहीमें अपनी गोदमें धारण कर छिया ॥ १४९ ॥ चित्तमें श्रीमधसूदन भगवान्के स्थित रहनेसे दैत्यराजका नियुक्त किया हुआ सबका शोषण करनेवाला वायु जिनके शरीरमें लगनेसे शान्त हो गया ॥ १५०॥ दैत्येन्द्रद्वारा आक्रमणके लिये नियुक्त उन्मत्त दिग्गजोंके दाँत जिनके यस्य वक्षःस्थले प्राप्ता दैत्येन्द्रपरिणामिताः ॥१५१॥ वक्षःस्थलमें लगनेसे टूट गये और उनका सारा मद

यस्य चोत्पादिता कृत्या दैत्यराजपुरोहितैः।

बभूव नान्ताय पुरा गोविन्दासक्तचेतसः।।१५२॥
श्रम्बरस्य च मायानां सहस्रमितमायिनः।

यस्मिन्प्रयुक्तं चक्रेण कृष्णस्य वितथीकृतम्।।१५३॥
दैत्येन्द्रसदोपहृतं यस्य हालाहृलं विषम्।

जरयामास मितमानविकारममत्सरी।।१५४॥

समचेता जगत्यस्मिन्यः सर्वेष्वेव जन्तुषु।

यथात्मिन तथान्येषां परं मैत्रगुणान्वितः।।१५५॥

धर्मात्मा सत्यशौर्यादिगुणानामाकरः परः।

उपमानमशेषाणां साधूनां यः सदाभवत्।।१५६॥

चूर्ण हो गया ॥ १५१ ॥ पूर्वकालमें दैत्यराजके पुरोहितोंकी उत्पन्न की हुई कृत्या भी जिन गोविन्दा- सक्तचित्त भक्तराजके अन्तका कारण नहीं हो सकी ॥ १५२ ॥ जिनके उपर प्रयुक्त की हुई अति मायावी शम्बराधुरकी हजारों मायाएँ श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रसे व्यर्थ हो गयों ॥ १५३ ॥ जिन मितमान् और निर्मत्सर- ने दैत्यराजके रसोइयोंके लाये हुए हलाहल विषको निर्वकार-मावसे पचा लिया ॥ १५४ ॥ जो इस संसारमें समस्त प्राणियोंके प्रति समानचित्त और अपने समान ही दूसरोंके लिये भी परमप्रेमयुक्त थे ॥ १५५॥ और जो परम धर्मात्मा महापुरुष, सत्य एवं शौर्य आदि गुणोंकी खानि तथा समस्त साधु-पुरुषोंके लिये उपमा- खरूप हुए थे ॥ १५६ ॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

नृसिंहावतारविषयक प्रश्न।

श्रीमैत्रेय उवाच

कथितो भवता वंशो मानवानां महात्मनाम् ।
कारणं चास्य जगतो विष्णुरेव सनातनः ॥ १ ॥
यन्तेतद् भगवानाह प्रह्लादं दैत्यसत्तमम् ।
ददाह नाप्तिनीस्त्रैश्र क्षुण्णस्तत्याज जीवितम् ॥ २ ॥
जगाम वसुधा श्लोभं यत्राव्धिसालेले स्थिते ।
पाशैर्वद्धे विचलति विश्विसाङ्गेः समाहता ॥ ३ ॥
शैलैराक्रान्तदेहोऽपि न ममार च यः पुरा ।
त्वया चातीव माहात्म्यं कथितं यस्य धीमतः॥ ४ ॥
तस्य प्रमावमतुलं विष्णोर्भक्तिमतो सुने ।
श्रोतुमिच्छामि यस्यैतचरितं दीप्ततेजसः ॥ ५ ॥
किमिमित्तमसौ शस्त्रैविश्विसो दितिजैर्धने ।
किमिथं चाव्धिसलिले विश्विसो धर्मतत्परः ॥ ६ ॥

श्रीमैत्रेयजी वोले-आपने महात्मा वंशोंका वर्णन किया और यह भी बताया कि इस जगत्के सनातन कारण भगवान् विष्णु ही हैं ॥ १ ॥ किन्तु, भगवन् ! आपने जो कहा कि दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद-जीको न तो अग्निने ही भस्म किया और न उन्होंने अख-शस्त्रोंसे आघात किये जानेपर ही अपने प्राणीं-को छोड़ा ॥ २ ॥ तथा पाशबद्ध होकर समुद्रके जलमें पड़े रहनेपर उनके हिलते-डुलते हुए अंगोंसे आहत होकर प्रथिवी डगमगाने लगी॥ ३॥ और शरीरपर पत्थरोंकी बौछार पड़नेपर भी वे नहीं मरे। इस प्रकार जिन महाबुद्धिमान्का आपने बहुत ही माहात्म्य वर्णन किया है ॥ ४ ॥ हे मुने ! जिन अति तेजस्वी महात्माके ऐसे चरित्र हैं, मैं उन परमविष्ण-भक्तका अतुलित प्रभाव सुनना चाहता हूँ ॥ ५ ॥ मुनिवर ! वे तो बड़े ही धर्मपरायण थे; फिर दैत्योंने उन्हें क्यों अख्र-शस्त्रोंसे पीड़ित किया जलमें डाला ? ॥ ६॥ और क्यों समुद्रके

आक्रान्तः पर्वतैः कसादृष्टश्चैव महोरगैः। क्षिप्र:किमदिशिखरातिक वा पावकसञ्जये ॥ ७॥ दिग्दन्तिनां दन्तभूमिं स च कसान्निरूपितः । संशोपकोऽनिलश्रास प्रयुक्तः किं महासरैः ॥ ८॥ कृत्यां च दैत्यगुरवो युयुजस्तत्र किं मने । शम्बरश्रापि मायानां सहस्रं किं प्रयुक्तवान् ॥ ९ ॥ हालाहलं विषमहो दैत्यसदैर्महात्मनः। कसाहत्तं विनाशाय यञ्जीर्णं तेन धीमता ।।१०॥ एतत्सर्वे महाभाग प्रह्लादस्य महात्मनः । चरितं श्रोतिमिच्छामि महामाहात्म्यस्चकम् ॥११॥ न हि कौतहलं तत्र यदैत्यैः नहतो हि सः। अनन्यमनसो विष्णो कः समर्थो निपातने ॥१२॥ तसिन्धर्मपरे नित्यं केशवाराधनोद्यते । खवंशप्रभवेदेंत्यैः कृतो द्वेषोऽतिदुष्करः॥१३॥ धर्मात्मनि महाभागे विष्णुभक्ते विमत्सरे । दैतेयैः प्रहृतं कसात्तन्ममाख्यातुमृहसि ॥१४॥ प्रहरन्ति महात्मानो विपक्षा अपि नेहशे। गुणैस्समन्विते साधौ किं पुनर्यः स्वपक्षजः ॥१५॥ तदेतत्कथ्यतां सर्वं विस्तरान्युनिपुङ्गव । दैत्येश्वरस्य चरितं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥१६॥

उन्होंने किसिल्पि उन्हें पर्वतोंसे दवाया ? किस कारण सर्पोंसे डँसाया ? क्यों पर्वतिशिखरसे गिराया और क्यों अग्निमें डल्वाया ? ॥ ७ ॥ उन महादैत्योंने उन्हें दिग्गजोंके दाँतोंसे क्यों रूँघवाया और क्यों सर्वशोपक वायुको उनके लिये नियुक्त किया ? ॥ ८ ॥ हे मुने ! उनपर दैत्यगुरुओंने किसिल्ये कृत्याका प्रयोग किया और शम्बरासुरने क्यों अपनी सहस्रों मायाओंका वार किया ? ॥ ९॥ उन महात्माको मारनेके लिये दैत्यराजके रसोइयोंने, जिसे वे महाबुद्धिमान् पचा गये थे ऐसा हलाहल विष क्यों दिया ? ॥ १०॥

हे महाभाग ! महात्मा प्रह्लादका यह सम्पूर्ण चरित्र, जो उनके महान् माहात्म्यका सूचक है, मैं सुनना चाहता हूँ ॥११ ॥ यदि दैत्यगण उन्हें नहीं मार सके तो इसका मुझे कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जिसका मन अनन्यभावसे भगवान् विष्णुमें लगा हुआ है उसको भला कौन मार सकता है ? ॥ १२ ॥ आश्चर्य तो इसीका है कि] जो नित्यधर्मपरायण और भगवदाराधनामें तत्पर रहते थे उनसे उनके ही कुलमें उत्पन्न हुए दैत्योंने ऐसा अति दण्कर द्वेष किया! क्योंकि ऐसे समदर्शी और धर्मभीरु प्रश्नोंसे तो किसीका भी द्वेष होना अत्यन्त कठिन है। । १३॥ उन धर्मात्मा, महाभाग, मत्सरहीन विष्ण-भक्तको दैत्योंने किस कारणसे इतना कष्ट दिया, सो आप मुझसे कहिये ॥ १४ ॥ महात्मालीग तो ऐसे गुण-सम्पन्न साध पुरुषोंके विपक्षी होनेपर भी उनपर किसी प्रकारका प्रहार नहीं करते, फिर खपक्षमें होने-पर तो कहना ही क्या है ? || १५ || इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ ! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये । मैं उन दैत्यराजका संम्पूर्ण चरित्र सुनना चाहता हूँ ॥ १६॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे घोडशोऽध्यायः ॥ १६॥



यस्य चोत्पादिता कृत्या दैत्यराजपुरोहितैः ।

बभूव नान्ताय पुरा गोविन्दासक्तचेतसः ॥१५२॥
श्वम्बरस्य च मायानां सहस्रमितमायिनः ।

यस्मिन्प्रयुक्तं चक्रेण कृष्णस्य वितथीकृतम् ॥१५३॥
दैत्येन्द्रसदोपहृतं यस्य हालाहृलं विपम् ।

जरयामास मितमानविकारममत्सरी ॥१५४॥

समचेता जगत्यस्मिन्यः सर्वेष्वेव जन्तुषु ।

यथात्मिन तथान्येषां परं मैत्रगुणान्वितः ॥१५५॥

धर्मात्मा सत्यशौर्यादिगुणानामाकरः परः ।

उपमानमशेषाणां साधूनां यः सदाभवत् ॥१५६॥

चूर्ण हो गया ॥१५१॥ पूर्वकालमें दैत्यराजके पुरोहितोंकी उत्पन्न की हुई कृत्या मी जिन गोविन्दा-सक्तचित्त भक्तराजके अन्तका कारण नहीं हो सकी ॥१५२॥ जिनके उपर प्रयुक्त की हुई अति मायावी शम्बराधुरकी हजारों मायाएँ श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रसे व्यर्थ हो गयों॥१५३॥ जिन मितमान् और निर्मत्सर-ने दैत्यराजके रसोइयोंके लाये हुए हलाहल विषको निर्विकार-भावसे पचा लिया॥१५४॥ जो इस संसारमें समस्त प्राणियोंके प्रति समानचित्त और अपने समान ही दूसरोंके लिये मी परमप्रेमगुक्त थे॥१५५॥ और जो परम धर्मात्मा महापुरुष, सत्य एवं शौर्य आदि गुणोंकी खानि तथा समस्त साधु-पुरुषोंके लिये उपमा-खरूप हुए थे॥१५६॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

नृसिंहावतारविषयक प्रश्न।

श्रीमैत्रेय उवाच

कथितो भवता वंशो मानवानां महात्मनाम् ।
कारणं चास्य जगतो विष्णुरेव सनातनः ॥ १ ॥
यच्नेतद् भगवानाह प्रह्लादं दैत्यसत्तमम् ।
ददाह नाप्त्रिनीस्त्रैश्र श्रुण्णस्तत्याज जीवितम् ॥ २ ॥
जगाम वसुधा क्षोमं यत्राव्धिसालेले स्थिते ।
पार्श्वैर्वद्धे विचलति विश्विप्ताङ्गेः समाहता ॥ ३ ॥
शैलैराक्रान्तदेहोऽपि न ममार च यः पुरा ।
त्वया चातीव माहात्म्यं कथितं यस्य धीमतः॥ ४ ॥
तस्य प्रमावमतुलं विष्णोर्भक्तिमतो सुने ।
श्रोतुमिच्छामि यस्यैतचरितं दीप्ततेजसः ॥ ५ ॥
किश्विमित्तमसौ शस्त्रीर्विश्विप्तो दितिजैर्सने ।
किश्विमित्तमसौ शस्त्रीर्विश्विप्तो दितिजैर्सने ।
किश्वी चाव्धिसलिले विश्विप्तो धर्मतत्परः ॥ ६ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-आपने महात्मा वंशोंका वर्णन किया और यह भी बताया कि इस जगत्के सनातन कारण भगवान् विष्णु ही हैं ॥ १ ॥ किन्तु, भगवन् ! आपने जो कहा कि दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद-जीको न तो अग्निने ही भस्म किया और न उन्होंने अख-शस्त्रोंसे आघात किये जानेपर ही अपने प्राणीं-को छोड़ा ॥ २ ॥ तथा पाशबद्ध होकर समुद्रके जलमें पड़े रहनेपर उनके हिलते-डुलते हुए अंगोंसे आहत होकर प्रथिवी डगमगाने लगी ॥ ३ ॥ और शरीरपर पत्थरोंकी बौछार पड़नेपर भी वे नहीं मरे। इस प्रकार जिन महाबुद्धिमान्का आपने बहुत ही माहात्म्य वर्णन किया है ॥ ४ ॥ हे मुने ! जिन अति तेजस्वी महात्माके ऐसे चरित्र हैं, मैं उन परमविष्ण-भक्तका अतुलित प्रमाव सुनना चाहता हूँ ॥ ५ ॥ मुनिवर ! वे तो बड़े ही धर्मपरायग थे; फिर दैत्योंने उन्हें क्यों अख-राखोंसे पीड़ित किया और क्यों समुद्रके जलमें डाला ? ॥ ६ ॥

आक्रान्तः पर्वतैः कसादृष्टश्चेव महोरगैः। क्षिप्तः किमदिशिखरातिक वा पावकसञ्जये ॥ ७॥ दिग्दन्तिनां दन्तभूमिं स च कसानिरूपितः । संशोपकोऽनिलश्रास प्रयुक्तः किं महासुरैः ।। ८ ॥ कृत्यां च दैत्यगुरवो युयुजुस्तत्र किं मुने । शम्बरश्रापि मायानां सहस्रं किं प्रयुक्तवान ॥ ९॥ हालाहलं विषमहो दैत्यसदैर्महात्मनः। कसाहत्तं विनाशाय यञ्जीर्णं तेन धीमता ।।१०।। एतत्सर्वे महाभाग प्रह्लादस्य महात्मनः। चरितं श्रोतुमिच्छामि महामाहात्म्यसूचकम्।।११॥ न हि कौतहलं तत्र यहैत्यैः नहतो हि सः। अनन्यमनसो विष्णौ कः समर्थो निपातने ॥१२॥ तस्मिन्धर्मपरे नित्यं केशवाराधनोद्यते । खवंशप्रभवैदैर्त्यैः कृतो द्वेषोऽतिदष्करः॥१३॥ धर्मात्मनि महाभागे विष्णुभक्ते विमत्सरे । दैतेयैः प्रहृतं कसात्तन्ममाख्यातुमहिस ॥१४॥ प्रहरन्ति महात्मानो विपक्षा अपि नेहशे। गुणैस्समन्विते साधौ किं पुनर्यः स्वपक्षजः ॥१५॥ तदेतत्कथ्यतां सर्वं विस्तरान्मुनिपुङ्गव। दैत्येश्वरस्य चरितं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥१६॥ चाहता हूँ ॥ १६ ॥

उन्होंने किसिल्ये उन्हें पर्वतोंसे दवाया ? किस कारण सर्पोंसे डँसाया ? क्यों पर्वतिशखरसे गिराया और क्यों अग्निमें डलवाया ? ॥ ७ ॥ उन महादैत्योंने उन्हें दिग्गजोंके दाँतोंसे क्यों रुँधवाया और क्यों सर्वशोपक वायुको उनके लिये नियुक्त किया ? ॥ ८ ॥ हे मुने ! उनपर दैत्यगुरुओंने किसिल्ये कृत्याका प्रयोग किया और शम्बरासुरने क्यों अपनी सहस्रों मायाओंका वार किया ? ॥ ९॥ उन महात्माको मारनेके लिये दैत्यराजके रसोइयोंने, जिसे वे महाबुद्धिमान् पचा गये थे ऐसा हलाहल विष क्यों दिया ? ॥ १०॥

हे महाभाग ! महात्मा प्रह्लादका यह सम्पूर्ण चरित्र, जो उनके महान् माहात्म्यका सूचक है, मैं सुनना चाहता हूँ ॥११ ॥ यदि दैत्यगण उन्हें नहीं मार सके तो इसका मुझे कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जिसका मन अनन्यभावसे भगवान् विष्णुमें छगा हुआ है उसको भला कौन मार सकता है ? ॥ १२ ॥ आश्चर्य तो इसीका है कि] जो नित्यधर्मपरायण और भगवदाराधनामें तत्पर रहते थे उनसे उनके ही कुलमें उत्पन्न हुए दैत्योंने ऐसा अति दुष्कर द्वेष किया! क्योंकि ऐसे समदर्शी और धर्मभीरु पुरुषोंसे तो किसीका भी द्वेष होना अत्यन्त कठिन है] ॥ १३॥ उन धर्मात्मा, महाभाग, मत्सरहीन विष्णु-भक्तको दैत्योंने किस कारणसे इतना कष्ट दिया, सो आप मुझसे कहिये ॥ १४ ॥ महात्मालोग तो ऐसे गुण-सम्पन्न साधु पुरुषोंके विपक्षी होनेपर भी उनपर किसी प्रकारका प्रहार नहीं करते, फिर खपक्षमें होने-पर तो कहना ही क्या है ? || १५ || इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ ! यह संम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये । मैं उन दैत्यराजका संम्पूर्ण चरित्र सुनना

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे षोडशोऽध्यायः ॥ १६॥



सतरहवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपुका दिग्वज्य और प्रह्लाद्-चरित।

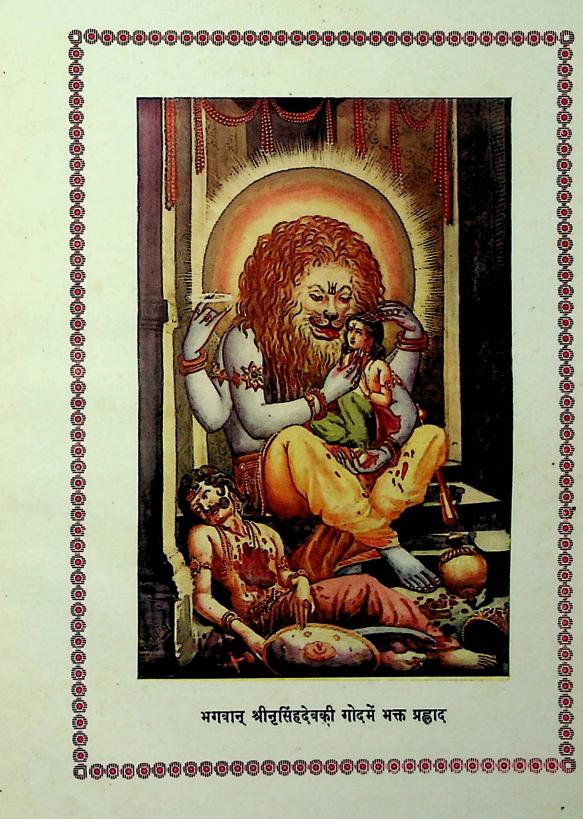
श्रीपराशर उवाच

मैत्रेय श्रूयतां सम्यक् च्रितं तस्य धीमतः। प्रह्वादस्य सदोदारचरितस्य महात्मनः ॥ १॥ दितेः पुत्रो महावीर्यो हिरण्यकशिपुः पुरा । त्रैलोक्यं वशमानिन्ये ब्रह्मणो वरदर्पितः॥२॥ इन्द्रत्वमकरोद्दैत्यः स चासीत्सविता स्वयम् । वायुरिपरपां नाथः सोमश्राभून्महासुरः ॥ ३ ॥ धनानामधिपः सोऽभृत्स एवासीत्ख्यं यमः । यज्ञमागानशेषांस्तु सं खयं बुग्रुजेऽसुरः ॥ ४॥ देवाः खर्गं परित्यज्य तत्त्रासान्मुनिसत्तम । विचेरुरवनौ सर्वे विश्राणा मानुषीं तनुम्।। ५ ॥ जित्वा त्रिभ्रवनं सर्वं त्रैलोक्यैश्वर्यदर्पितः। उपगीयमांनो गन्धर्वेर्डु भ्रुजे विषयान्त्रियान् ॥ ६ ॥ पानासक्तं महात्मानं हिरण्यकशिपुं तदा । उपासाञ्जिकरे सर्वे सिद्धगन्धर्वपन्नगाः॥ ७॥ अवादयन् जगुश्चान्ये जयशब्दं तथापरे। दैत्यराजस्य पुरतश्रक्षः सिद्धा मुदान्विताः ॥ ८॥ तत्र प्रनृत्ताप्सरसि स्फाटिकाश्रमयेऽसुरः । पपौ पानं मुदा युक्तः प्रासादे सुमनोहरे ॥ ९॥ तस्य पुत्रो महाभागः प्रह्लादो नाम नामतः । पपाठ ब्रालपाठयानि गुरुगेहङ्गतोऽर्भकः ॥१०॥ एकदा तु स धर्मात्मा जगाम गुरुणा सह । पानासक्तस्य पुरतः पितुर्दैत्यपतेस्तदा ॥११॥ पाद्प्रणामावनतं तम्रुत्थाप्य पिता सुतम्। हिरण्यकशिपुः प्राह प्रह्लादममितौजसम् ॥१२॥ हिरण्यकशिपुरुवाच पट्यतां भवता वत्स सारभृतं सुभाषितम् । कालेनेतावता यते सदोद्यक्तेन शिक्षितम्'।।१२।।

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय! उन सर्वदा उदार-चरित परमबुद्धिमान् महात्मा प्रह्लादजीका चरित्र तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो ॥ १ ॥ पूर्वकालमें दितिके पुत्र महाबली हिरण्यकशिपुने, ब्रह्माजीके वरसे गर्वयुक्त (सराक्त) होकर सम्पूर्ण त्रिलोकीको अपने वशीभूत कर लिया था ॥ २ ॥ वह दैत्य इन्द्रपदका भोग करता था। वह महान् असुर खयं ही सूर्य, वायु, अग्नि, वरुण और चन्द्रमा बना हुआ था ॥ ३ ॥ वह स्वयं ही कुबेर और यमराज भी या और वह असुर स्वयं ही सम्पूर्ण यज्ञ-भागोंको भोगता था ॥ ४॥ हे मुनिसत्तम ! उसके भयसे देवगण खर्गको छोड़कर मनुष्य-शरीर धारणकर भूमण्डलमें विचरते रहते थे ॥ ५॥ इस प्रकार सम्पूर्ण त्रिलोकोको जीतकर त्रिमुवनके वैभवसे गर्वित हुआ और गन्धवोंसे अपनी स्तुति सुनता हुआ वह अपने अमीष्ट मोगोंको मोगता था।। ६॥

उस समय उस मद्यपानासक्त महाकाय हिरण्यकशिपुकी ही समस्त सिद्ध, गन्धर्व और नाग आदि उपासना
करते थे॥ ७॥ उस दैत्यराजके सामने कोई सिद्धगण तो बाजे बजाकर उसका यशोगान करते और
कोई अति प्रसन्न होकर जयजयकार करते ॥ ८॥
तथा वह असुरराज वहाँ स्फटिक एवं अस्र-शिलाके
बने हुए मनोहर महल्में, जहाँ अप्सराओंका उत्तम
नृत्य हुआ करता था, प्रसन्नताके साथ मद्यपान
करता रहता था॥ ९॥ उसका प्रह्लाद नामक महामाग्यवान् पुत्र था। वह बालक गुरुके यहाँ जाकर
बालोचित पाठ पढ़ने लगा॥१०॥ एक दिन वह धर्मातमा
बालक गुरुजीके साथ अपने पिता दैत्यराजके पास गया
जो उस समय मद्यपानमें लगा हुआ था॥११॥ तब,अपने
चरणोंमें झुके हुए अपने परम तेजस्वी पुत्र प्रह्लादजीको
उठाकर पिता हिर्ण्यकशिपुने कहा॥ १२॥

हिरण्यकशिषु बोला-नत्स ! अनतक अध्ययन-में निरन्तर तत्पर रहकर तुमने जो कुछ पढ़ा है उसका सारमूत शुभ भाषण हमें सुनाओ॥ १३॥



प्रह्लाद उवाच

श्रूयतां तात वक्ष्यामि सारभूतं तवाज्ञ्या ।
समाहितमना भूत्वा यन्मे चेतस्यवस्थितम् ॥१४॥
अनादिमध्यान्तमजमदृद्धिश्वयमच्युतम् ।
प्रणतोऽस्म्यन्तसन्तानं सर्वकारणकारणम् ॥१५॥

श्रीपराशर उवाच

एतिश्वश्य दैत्येन्द्रः सकोपो रक्तलोचनः । विलोक्य तद्गुरुं प्राह स्फुरिताधरपछ्ठवः ॥१६॥

हिरएयकशिपुरुवाच

ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षस्तुतिसंहितम् । असारं ब्राहितो वालो मामवज्ञाय दुर्मते ॥१०॥ गुरुरुवाच

दैत्येश्वर न कोपस्य वश्चमागन्तुमहिसि । ममोपदेशजनितं नायं वदति ते सुतः ॥१८॥ हिरण्यकशिपुरुवाच

अनुशिष्टोऽसि केनेदृग्वत्स प्रह्लाद् कथ्यताम् । मयोपदिष्टं नेत्येप प्रव्रवीति गुरुस्तव ॥१९॥

प्रह्लाद उवाच

शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः।
तमृते परमात्मानं तात कः केन शास्यते।।२०॥

हिरण्यकशिपुरुवाच कोऽयं विष्णुः सुदुर्बुद्धे यं ब्रवीषि पुनः पुनः । जगतामीश्वरस्येह पुरतः प्रसमं मम ॥२१॥

प्रह्लाद उवाच

न शब्दगोचरं यस योगिष्येयं परं पदम् । यतो यश्र स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः ॥२२॥

हिरण्यकशिपुरुवाच परमेश्वरसंज्ञोऽज्ञ किमन्यो मय्यवस्थिते । तथापि मर्तुकामस्त्वं प्रब्रवीषि पुनः पुनः ॥२३॥

प्रहाद्जी बोले-पिताजी ! मेरे मनमें जो सबके सारांशरूपसे स्थित है वह मैं आपकी आज्ञानुसार सुनाता हूँ, सावधान होकर सुनिये ॥१४॥ जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अजन्मा, वृद्धि-श्वय-शून्य और अच्युत हैं, समस्त कारणोंके कारण तथा जगत्के स्थिति और अन्तकर्त्ता उन श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१५॥

श्रीपराशरजी बोले-यह सुन दैत्यराज हिरण्य-किशपुने क्रोधसे नेत्र लाल कर प्रह्लादके गुरुकी ओर देखकर काँपते हुए ओठोंसे कहा ॥ १६॥

हिरण्यकशिषु बोळा-रे दुर्बुद्धि ब्राह्मणाधम ! यह क्या ? त्ने मेरी अवज्ञा कर इस बाळकको मेरे विपक्षी-की स्तुतिसे युक्त असार शिक्षा दी है ! ॥ १७ ॥

गुरुजीने कहा-दैत्यराज ! आपको क्रोधके वशीभूत न होना चाहिये । आपका यह पुत्र मेरी सिखायी हुई वात नहीं कह रहा है ॥ १८॥

हिरण्यकशिषु बोळा-वेटा प्रह्लाद ! वताओ तो तुमको यह शिक्षा किसने दी है ? तुम्हारे गुरुजी कहते हैं कि मैंने तो इसे ऐसा उपदेश दिया नहीं है ॥ १९॥

प्रहादजी बोले-पिताजी ! हृदयमें स्थित मगवान् विष्णु ही तो सम्पूर्ण जगत्के उपदेशक हैं। उन परमात्माको छोड़कर और कौन किसीको कुछ सिखा सकता है ! ।। २०॥

हिरण्यकशिषु बोला-अरे मूर्ख ! जिस विष्णुका त् मुझ जगदीश्वरके सामने धृष्टतापूर्वक निस्तंक होकर बारम्बार वर्णन करता है, वह कोन है ? ॥ २१ ॥

प्रहादजी बोल्ले-योगियोंके ध्यान करनेयोग्य जिसका परमपद वाणीका विषय नहीं हो सकता, तथा जिससे विश्व प्रकट हुआ है और जो स्वयं विश्व- रूप है वह परमेश्वर ही विष्णु है ॥ २२॥

हिरण्यकशिषु बोला-अरे मृढ! मेरे रहते हुए और कौन परमेश्वर कहा जा सकता है? फिर भी त मौतके मुखमें जानेकी इच्छासे बारम्बार ऐसा बक रहा है।।२३॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रह्लाद उवाच

न केवलं तात मम प्रजानां स ब्रह्मभूतो "भवतश्र विष्णुः। विधाता परमेश्वरश्च **भाता** प्रसीद कोपं कुरुषे किमर्थम् ॥२४॥

हिरण्यकाशिप्रवाच

प्रविष्टः कोऽस्य हृद्ये दुर्बुद्धेरतिपापकृत् । येनेद्दशान्यसाधृनि वदत्याविष्टमानसः ॥२५॥

प्रह्लाद उवाच

केवलं मद्धृद्यं स विष्णु-राक्रम्य लोकानखिलानवस्थितः। स मां त्वदादींश्व पितस्समस्ता-न्समस्तचेष्टासु युनक्ति सर्वगः ॥२६॥ हिरण्यकशिपुरुवाच

निष्कास्यतामयं पापः शास्यतां च गुरोर्गृहे । योजितो दुर्मतिः केन विपक्षविषयस्तुतौ ॥२०॥ श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तोऽसौ तदा दैत्यैनीतो गुरुगृहं पुनः। जग्राह विद्यामनिशं गुरुगुश्रूषणोद्यतः ॥२८॥ कालेऽतीतेऽति महति प्रह्लादमसुरेश्वरः। समाहूयात्रवीद्गाथा काचित्पुत्रक गीयताम् ॥२९॥

प्रह्लाद उवाच

प्रधानपुरुषौ यतश्रेतचराचरम्। यतः कारणं सकलसास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ।।३०।।

हिरण्यकाशिपुरुवाच

दुरात्मा वध्यतामेष नानेनार्थोऽस्ति जीवता । खपथहानिकर्तृत्वाद्यः कुलाङ्गारतां गतः ॥३१॥ श्रीपराशर उवाच

इत्याज्ञप्तास्ततस्तेन प्रगृहीतमहायुधाः । उद्यतास्त्रस्य नाशाय दैत्याः शतसहस्रशः ॥३२॥ उन्हें मारनेके छिये तैयार हुए ॥ ३२ ॥

प्रहादजी बोले-हे तात ! वह ब्रह्मभूत विष्ण तो केवल मेरा ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण प्रजा और आपका भी कर्त्ता, नियन्ता और परमेश्वर है । आप प्रसन्त होइये, व्यर्थ क्रोध क्यों करते हैं ॥ २४ ॥

हिरण्यकशिषु बोला-अरे कौन पापी इस दुर्बुद्धि बालकके हृदयमें घुस बैठा है जिससे आविष्ट-चित्त होकर यह ऐसे अमङ्गल वचन बोलता है ? ॥ २५॥

प्रहादजी बोळे-पिताजी ! वे विष्णुभगवान् तो मेरे ही हृदयमें नहीं, बल्कि सम्पूर्ण छोकोंमें स्थित हैं। वे सर्वगामी तो मुझको, आप सबको और समस्त प्राणियोंको अपनी-अपनी चेष्टाओंमें प्रवृत्त करते हैं॥ २६॥

हिरण्यकशिषु बोला-इस पापीको यहाँसे निकालो और गुरुके यहाँ छे जाकर इसका मलीप्रकार शासन करो । इस दुर्मतिको न जाने किसने मेरे विपक्षीकी प्रशंसामें नियुक्त कर दिया है ! ॥ २७ ॥

श्रीपराशरजी बोले-उसके ऐसा कहनेपर दैत्य-गण उस बालकको फिर गुरुजीके यहाँ ले गये और वे वहाँ गुरुजीकी रात-दिन मलीप्रकार सेवा-ग्रुश्रूषा करते हुए विद्याध्ययन करने छगे ॥ २८ ॥ बहुत काल व्यतीत हो जानेपर दैत्यराजने प्रह्लादजीको फिर बुलाया और कहा—'वेटा ! आज कोई गाथा (कथा) सुनाओं ॥ २९॥

प्रहाद्जी बोले-जिनसे प्रधान, पुरुष और यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है वे सकल प्रपन्नके कारण श्रीविष्णुभगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ३० ॥

हिरण्यकशिषु बोला-अरे ! यह बड़ा दुरात्मा है ! इसको मार डालो; अव इसके जीनेसे कोई लाभ नहीं है, क्योंकि खपक्षकी हानि करनेवाला होनेसे यह तो अपने कुलके लिये अंगाररूप हो गया है ॥ ३१ ॥

श्रीपराशरजी बोले-उसकी ऐसी आज्ञा होनेपर सैकड़ों-हजारों दैत्यगण बड़े-बड़े अस्त-शस्त्र लेकर

CC-0. Prof. Satya Yrat Shipking Goddection, Dew Delhis Digitized by Gangotri

प्रह्लाद उवाच

विष्णुः शस्त्रेषु युष्मासु मयि चासौ न्यवस्थितः। दैतेयास्तेन सत्येन माक्रमन्त्वायुधानि मे ॥३३॥

श्रीपराशर उवाच

ततस्तैश्वतशो दैत्यैः शस्त्रीवैराहतोऽपि सन्। वेदनामल्यामभूचैव पुनर्नवः ॥३४॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

दुर्बुद्धे विनिवर्तस्य वैरिपक्षस्तवाद्तः। अभयं ते प्रयच्छामि मातिमूढमतिर्भव।।३५॥

प्रह्लाद उवाच

भयं भयानामपहारिणि स्थिते मनखनन्ते मम कुत्र तिष्ठति । यसिन्स्मृते जन्मजरान्तकादि-भयानि सर्वाण्यपयान्ति तात ॥३६॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

भो भो; सर्पाः दुराचारमेनमत्यन्तदुर्भतिम् । विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैः सद्यो नयत सङ्घन्यम् ॥३७॥ श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तास्ते ततः सर्पाः कुहकास्तक्षकाद्यः । अद्शन्त समस्तेषु गात्रेष्वतिविषोखणाः ॥३८॥ स त्वासक्तमतिः कृष्णे दश्यमानो महोरगैः । न विवेदात्मनो गात्रं तत्स्मृत्याह्वादसुस्थितः ॥३९॥

सर्पा ऊचुः

दंष्ट्रा विशीर्णा मणयः स्फुटन्ति फणेषु तापो हृद्येषु कम्पः। नास्य त्वचः खल्पमपीह भिन्नं प्रशाधि दैत्येश्वर कार्यमन्यत् ॥४०॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

दिग्गजाः सङ्कटदन्तमिश्रा

प्रहाद्जी बोले-अरे दैत्यो ! भगवान् विष्णु तो शस्त्रोंमें, तुमलोगोंमें और मुझमें-सर्वत्र ही स्थित हैं। इस सत्यके प्रभावसे इन अख-दाखोंका मेरे ऊपर कोई प्रभाव न हो ॥ ३३ ॥

श्रीपराशरजीने कहा-तत्र तो उन सैकड़ों दैत्योंके शस्त्र-समूहका आघात होनेपर भी उनको तनिक-सी भी वेदना न हुई, वे फिर भी ज्यों-के-त्यों नवीन बल-सम्पन्न ही रहे ॥ ३४ ॥

हिरण्यकशिषु बोला-रे दुर्बुद्धे ! अव त् विपश्चीकी स्तुति करना छोड़ दे; जा, मैं तुझे अभय-दान देता हूँ, अत्र और अधिक नादान मत हो ॥ ३५॥

प्रहाद्जी बोळे-हे तात ! जिनके स्मरणमात्रसे जन्म, जरा और मृत्यु आदिके समस्त, भय दूर हो जाते हैं, उन सकल-भयहारी अनन्तके हृदयमें स्थित रहते मुझे भय कहाँ रह सकता है ? ॥ ३६॥

हिरण्यकशिषु बोला-अरे सर्पो ! इस अत्यन्त दुर्बुद्धि और दुराचारीको अपने विषाग्नि-सन्तप्त मुखों-से कांटकर शीव्र ही नष्ट कर दो ॥ ३७ ॥

श्रीपराशरजी बोले-ऐसी आज्ञा होनेपर अति-क्रूर और विषधर तक्षक आदि सर्पोंने उनके समस्त अंगोंमें काटा ॥ ३८ ॥ किन्त उन्हें तो श्रीकृष्णचन्द्र-में आसक्त-चित्त रहनेके कारण भगवत्सरणके परमा-नन्दमें डूवे रहनेसे उन महासपोंके काटनेपर भी अपने शरीरकी कोई सुधि नहीं हुई ॥ ३९॥

सर्प बोळे-हे दैत्यराज ! देखो, हमारी दाढ़ें टूट गयीं, मणियाँ चटखने लगों, फर्णोमें पीड़ा होने लगी और हृदय काँपने लगा, तथापि इसकी लचा तो जरा भी नहीं कटी । इसलिये अब आप हमें कोई और कार्य वताइये ॥ ४०॥

हिरण्यकशिषु बोला-हे दिगाजो ! तुम सब अपने संकीर्ण दाँतोंको मिलाकर मेरे रात्र-पश्चद्वारा ? [बहकाकर] मुझसे विमुख किये हुए इस बालक-भतेनमस्मद्रिष्ट्रपश्चमित्रम् Vrat Shastri Collectin, मार् ह्यालो । हात्रेखो कृषेसे तहुआरणीसे उत्पन हुआ

तजा विनाशाय भवन्ति तस्य यथाऽरणेः प्रज्वितो हुताशः ॥४१॥

श्रीपराशर उवाच

ततः स दिग्गजैर्बालो भूमृच्छिखरसिन्नभैः । पातितो घरणीपृष्ठे विषाणैर्वावपीडितः ॥४२॥ स्मरतस्तस्य गोविन्दमिभदन्ताः सहस्रग्नः । श्रीर्णा वक्षःस्थलं प्राप्य स प्राह पितरं ततः ॥४३॥

द्न्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्दुराः शीर्णा यदेते न वलं ममैतत्। महाविपत्तापविनाशनोऽयं

जनार्दनानुस्मरणानुभावः ।।४४॥

, हिरण्यकाशिपुरुंवाच

ज्वाल्यतामसुरा विह्नरपसर्पत दिग्गजाः। वायो समेधयाप्तिं त्वं दह्यतामेष पापकृत्॥४५॥

श्रीपराशर उवाच

महाकाष्ट्रचयस्थं तमसुरेन्द्रसुतं ततः । प्रज्वाल्य दानवा विह्वं ददहुः स्वामिनोदिताः॥४६॥

प्रह्लाद उवाच तातैष विद्वः पवनेरितोऽपि न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम् । पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि शीतानि सर्वाणि दिशाम्मुखानि।।४७॥

श्रीपराशर उवाच अथ दैत्येश्वरं प्रोचुर्भार्गवस्थात्मजा द्विजाः । पुरोहिता महात्मानः साम्ना संस्त्य वाग्मिनः॥४८॥ पुरोहिता जनुः

राजिश्यम्यतां कोपो बालेऽपि तनये निजे।
कोपो देवनिकायेषु तेषु ते संफलो यतः ॥४९॥
तथातथैनं बालं ते शासितारो वयं नृप।
यथा विपक्षनाशाय विजीतस्ते भविष्यति॥५०॥

अग्नि उसीको जला डालता है उसी प्रकार कोई-कोई जिससे उत्पन्न होते हैं उसीके नाश करनेवाले हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

श्रीपराशरजी बोळे-तब पर्वत-शिखरके समान विशालकाय दिग्गजोंने उस बालकको पृथिवीपर पटक-कर अपने दाँतोंसे खूब रौंदा ॥ ४२ ॥ किन्तु श्रीगोविन्दका स्मरण करते रहनेसे हाथियोंके हजारों दाँत उनके वक्षःस्थलसे टकराकर टूट गये; तब उन्हों-ने पिता हिरण्यकशिपुसे कहा— ॥ ४३ ॥ "ये जो हाथियोंके वज्रके समान कठोर दाँत टूट गये हैं इसमें मेरा कोई वल नहीं है; यह तो श्रीजनार्दन भगवान्-के महाविपत्ति और क्षेशोंके नष्ट करनेवाले स्मरणका ही प्रमाव है" ॥ ४४ ॥

हिरण्यकशिषु बोला-अरे दिग्गजो ! तुम हट जाओ । दैत्यगण ! तुम अग्नि जलाओ, और हे वायु ! तुम अग्निको प्रज्वलित करो जिससे इस पापी-को जला डाला जाय ।। ४५ ।।

श्रीपराशरजी बोले-तब अपने स्वामीकी आज्ञासे दानवगण काष्टके एक बड़े ढेरमें स्थित उस अधुर-राजकुमारको अग्नि प्रज्वलित करके जलाने लगे ॥४६॥

प्रहादजी बोले-हे तात ! पवनसे प्रेरित हुआ भी यह अग्नि मुझे नहीं जलाता । मुझको तो सभी दिशाएँ ऐसी शीतल प्रतीत होती हैं मानो मेरे चारों और कमल बिछे हुए हों ॥४७॥

श्रीपराशरजी बोले-तदनन्तर, शुक्रजीके पुत्र बड़े वाग्मी महात्मा [षण्डा-मर्क आदि] पुरोहितगण साम-नीतिसे दैत्यराजकी बड़ाई करते हुए बोले ॥४८॥

पुरोहित बोले-हे राजन् ! अपने इस बालक पुत्रके प्रति अपना क्रोध शान्त कीजिये; आप-को तो देवताओंपर ही क्रोध करना चाहिये, क्योंकि उसकी सफलता तो वहीं है ॥४९॥ हे राजन् ! हम आपके इस बालकको ऐसी शिक्षा देंगे जिससे यह विपक्षके नाशका कारण होकर आपके प्रति अति विनीत हो जायगा ॥५०॥ हे दैत्यराज ! बाल्यावस्था तो सब ion, New Delhi. Digitized by eGangotri

× ज्ञान पुरेता : म्हानू ?

बालत्वं सर्वदोपाणां दैत्यराजास्पदं यतः । ततोऽत्र कोपमत्यर्थं योक्तुमहिसि नार्भके ॥५१॥ न त्यक्ष्यति हरेः पक्षमस्माकं वचनाद्यदि । ततः कृत्यां वधायास्य करिष्यामोऽनिवर्त्तिनीम्॥५२।

श्रीपराशर उवाच

एवमभ्यर्थितस्तैस्तु दैत्यराजः पुरोहितैः। दैत्यैर्निष्कासयामास पुत्रं पावकसञ्चयात्॥५३॥ ततो गुरुगृहे बालः स वसन्वालदानवान्। अध्यापयामास ग्रहुरुपदेशान्तरे गुरोः॥५४॥

प्रह्लाद उवाच

श्रूयतां परमार्थी मे दैतेया दितिजात्मजाः । न चान्यथैतन्मन्तव्यं नात्र लोभादिकारणम्।।५५।। जन्म बाल्यं ततः सर्वो जन्तः प्रामोति यौवनम् । अन्याहतैव भवति ततोऽनुदिवसं जरा।।५६।। ततश्च मृत्युमभ्येति जन्तुर्दैत्येश्वरात्मजाः। प्रत्यक्षं दृश्यते चैतदसाकं भवतां तथा।।५७॥ मृतस्य च पुनर्जन्म भवत्येतच नान्यथा। आगमोऽयं तथा यच नोपादानं विनोद्भवः ॥५८॥ गर्भवासादि यावत्तु पुनर्जन्मोपपादनम् । तावद्वःसमेवावगम्यताम् ॥५९॥ समस्तावस्थकं श्चनृष्णोपशमं तद्रच्छीताद्यपशमं सुलम्। मन्यते बालबुद्धित्वाद्यःसमेव हि तत्पुनः ॥६०॥ अत्यन्तस्तिमिताङ्गानां व्यायामेन सुसैषिणाम्। भ्रान्तिज्ञानावृताक्षाणां दुःखमेव सुखायते ॥६१॥ क शरीरमशेषाणां श्लेष्मादीनां महाचयः।

प्रकारके दोर्घोका आश्रय होती ही है, इसिलये आप-को इस बालकपर अत्यन्त क्रोधका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥५१॥ यदि हमारे कहनेसे भी यह विष्णुका पक्ष नहीं छोड़ेगा तो हम इसको नष्ट करनेके लिये किसी प्रकार न टलनेवाली कृत्या उत्पन्न करेंगे ॥५२॥

श्रीपराशरजीने कहा-पुरोहितोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर दैत्यराजने दैत्योंद्वारा प्रह्लादको अग्नि-समृहसे बाहर निकल्वाया ॥५३॥ फिर प्रह्लादजी, गुरुजीके यहाँ रहते हुए उनके पढ़ा चुकनेपर अन्य दानव-कुमारोंको बार-बार उपदेश देने लगे॥५४॥

प्रहादजी घोछे-हे दैत्यकुलोत्पन्न असुर-त्रालको ! सुनो, मैं तुम्हें परमार्थका उपदेश करता हूँ, तुम इसे अन्यथा न समझना, क्योंकि मेरे ऐसा कहनेमें किसी प्रकारका छोमादि कारण नहीं है ॥५५॥ समी जीव जन्म, बाल्यावस्था और फिर यौवन प्राप्त करते हैं, तत्पश्चात् दिन-दिनं वृद्धावस्थाकी प्राप्ति भी अनिवार्य ही है ॥५६॥ और हे दैत्यराजकुमारो । फिर यह जीव मृत्युके मुखमें चला जाता है, यह हम और तुम सभी प्रत्यक्ष देखते हैं ॥५७॥ मरनेपर पुनर्जन्म होता है, यह नियम भी कभी नहीं टलता ! इस विषयमें [श्रुति-स्मृतिरूप] आगम भी प्रमाण है कि बिना उपादानके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती * ॥५८॥ पुनर्जन्म प्राप्त करानेवाली गर्भवास आदि जितनी अवस्थाएँ हैं उन सवको दुःखरूप ही जानो ॥ ५९ ॥ मनुष्य मूर्खतावश क्षया, तृष्णा और शीतादिकी शान्तिको सुख मानते हैं, परन्त वास्तवमें तो वे दुःखमात्र ही हैं॥६०॥ जिनका शरीर वातादि दोषसे] अत्यन्त शिथिल हो जाता है उन्हें जिस प्रकार व्यायाम सुखप्रद प्रतीत होता है उसी प्रकार जिनकी दृष्टि भ्रान्तिज्ञानसे दुँकी हुई है उन्हें दुःख ही सुखरूप जान पड़ता है ॥६१॥ अहो! कहाँ तो कफ आदि महावृणित पदार्थोंका

क्ष यह पुनर्जन्म होनेमें युक्ति है क्योंकि जबतक पूर्व-जन्मके किये हुए, श्रभाश्रम कर्मरूप कारणका होना न माना जाय तबतक वर्तमान जन्म भी सिद्ध नहीं हो सकता । इसी प्रकार, जब इस जन्ममें श्रभाश्रमका आरम्म हुआ है तो इसका कार्यरूप पुनर्जन्म भी अवश्य होगा ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

क कान्तिशोभासौन्दर्यरमणीयाद्यो गुणाः ।।६२॥ मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमञ्जास्थिसंहतौ दे्हे चेत्त्रीतिमान् मूढो भविता नरकेऽप्यसौ ॥६३॥ अग्नेः शीतेन तोयस्य तृषा मक्तस्य च क्षुधा । क्रियते सुखकर्तृत्वं तद्विलोमस्य चेतरैः ॥६४॥ करोति हे दैत्यसुता यावन्मात्रं परिग्रहम्। तावन्मात्रं स एवास्य दुःखं चेतसि यच्छति ॥६५॥ यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान् । तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृद्ये शोकशङ्कवः ॥६६॥ ✓ यद्यद्गृहे तन्मनिस यत्र - तत्रावितष्ठतः । नाशदाहोपकरणं तस्य तत्रैव तिष्ठति ॥६७॥ जन्मन्यत्र महद्दुःखं म्रियमाणस्य चापि तत् । यातनासु यमस्योग्रं गर्भसङ्क्रमणेषु च ॥६८॥ गर्भेषु सुखलेशोऽपि मवद्भिरनुमीयते। यदि तत्कथ्यतामेवं सर्वं दुःखमयं जगत्।।६९॥ भवार्णवे । तदेवमतिदुःखानामास्पदेऽत्र एउं परायगम् भवतां कथ्यते सत्यं विष्णुरेकः परायणः ॥७०॥ मा जानीत वयं बाला देही देहेषु शाश्वतः। जरायौवनजन्माद्या धर्मा देहस्य नात्मनः ॥७१॥ पालोऽहं तावदिच्छातो यतिष्ये श्रेयसे युवा।

सम्हरूप शरीर और कहाँ कान्ति, शोभा, सौन्दर्य एवं रमणीयता आदि दिन्य गुण ? [तथापि मनुष्य इस घृणित शरीरमें कान्ति आदिका आरोप कर सुख मानने लगता है] ॥६२॥ यदि किसी मृद्ध पुरुषकी मांस, रुधिर, पीब, विष्टा, मृत्र, स्नायु, मज्जा और अस्थियोंके समृहरूप इस शरीरमें प्रीति हो सकती है तो उसे नरक भी प्रिय लग सकता है ॥६३॥ अग्नि, जल और भात शीत, तृषा और क्षुधाके कारण ही सुख-कारी होते हैं और इनके प्रतियोगी जल आदि भी अपनेसे भिन्न अग्नि आदिके कारण ही सुखके हेतु होते हैं ॥६॥।

हे दैत्यकुमारो ! विषयोंका जितना-जितना संग्रह किया जाता है उतना-उतना ही वे मनुष्यके चित्तमें दुःख बढ़ाते हैं ॥६५॥ जीव अपने मनको प्रिय लगनेवाले जितने ही सम्बन्धोंको बढ़ाता जाता है उतने ही उसके हृदयमें शोकरूपी शल्य (काँटै) स्थिर होते जाते हैं ॥ ६६ ॥ घरमें जो कुछ धन-धान्यादि होते हैं मनुष्यके जहाँ-तहाँ (परदेशमें) रहनेपर भी वे पदार्थ उसके चितमें वने रहते हैं, और उनके नारा और दाह आदिकी सामग्री भी उसीमें मौजूद रहती है। [अर्थात् घरमें स्थित पदार्थों के सुरक्षित रहनेपर भी मनःस्थित पदार्थों के नाश आदिकी भावनासे पदार्थ-नाशका दुःख प्राप्त हो जाता है] ।।६७॥ इस प्रकार जीते-जी तो यहाँ महान् दुःख होता ही है, मरनेपर भी यम-यातनाओंका उग्र कष्ट भोगना और गर्भप्रवेशका ॥ ६८॥ यदि तुम्हें गर्भवासमें लेशमात्र भी सुखका अनुमान होता हो तो कहो। सारा संसार इसी प्रकार अत्यन्त दुःखमय है ॥ ६९॥ इसिंख्ये दुःखोंके परम आश्रय इस संसार-समुद्रमें एकमात्र विष्णुभगवान् ही आप छोगोंकी परमगित हैं-यह मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ ॥ ७०॥

प्रा जानीत वयं बाला देही देहेषु शाश्वतः ।

जरायोवनजन्माद्या धर्मा देहस्य नात्मनः ॥७१॥

बालोऽहं तावदिच्छातो यतिष्ये श्रेयसे युवा ।

वालोऽहं तावदिच्छातो यतिष्ये श्रेयसे युवा ।

पूर्वाहं वार्द्धके प्राप्ते करिष्यान्यात्मनो हितम्॥७२॥

होतेणह कल्याण-साधनका यह करूँगा ।' [फिर युवा

वृद्धोऽहं मम कार्याणि समस्तानि न गोचरे । किं करिष्यामि मन्दात्मा समर्थेन न यत्कृतम्।।७३।। एवं दुराशया क्षिप्तमानसः पुरुषः सदा। श्रेयसोऽभिमुखं याति न कढाचित्पिपासितः॥७४॥ वाल्ये क्रीडनकासक्ता यौवने विषयोन्मुखाः। अज्ञा नयन्त्यशक्त्या च वार्द्धकं सम्रुपस्थितम्।।७५।। तसाद्धाल्ये विवेकात्मा यतेत श्रेयसे सदा । बाल्ययौवनवृद्धाद्येर्देहभावैरसंयुतः 119611 तदेतद्वो मयाख्यातं यदि जानीत नानतम् । तदस्मत्त्रीतये विष्णुः स्मर्थतां वन्धम्रक्तिदः॥७७॥ प्रयासः स्मरणे कोऽस्य स्मृतो यच्छति शोभनम् । पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम्।।७८॥ सर्वभूतस्थिते तस्मिन्मतिर्मेत्री दिवानिशम्। भवतां जायतामेवं सर्वक्रेशान्त्रहास्यथ ॥७९॥ तापत्रयेणाभिहतं यदेतदिखलं जगत्। तदा शोच्येषु भूतेषु द्वेषं प्राज्ञः करोति कः ॥८०॥ अथ भद्राणि भूतानि हीनशक्तिरहं परम् । मुदं तदापि कुर्वीत हानिर्देषफलं यतः ॥८१॥ बद्धवैराणि भूतानि द्वेषं कुर्वन्ति चेत्ततः।

एते भिन्नदशां दैत्या विकल्पाः कथिता मया । कृत्वाभ्युपगमं तत्र सङ्घेपः श्रूयतां मम ॥८३॥ समन्वयपूर्वक संक्षिप्त CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri १३

स्र्वोच्यान्यतिमोहेन व्याप्तानीति मनीषिणास् ।८२।

होनेपर क्रहता है कि] 'अभी तो मैं युवा हूँ, बुढ़ापेमें आत्मकल्याण कर छँगा ।' और विद्व होनेपर सोचता है कि] 'अब मैं बूढ़ा हो गया, अब तो मेरी इन्द्रियाँ अपने कर्मोंमें प्रवृत्त ही नहीं होतीं, शरीरके शिथिल हो जानेपर अब मैं क्या कर सकता हूँ ? सामध्ये रहते तो मैंने कुछ किया ही नहीं।' वह अपने कल्याणपथपर कभी अग्रसर नहीं होता; केवल भोग-तृष्णामें ही न्याकुल रहता है॥ ७२-७४॥ मूर्ख-लोग अपनी बाल्यावस्थामें खेल-कूदमें लगे रहते हैं. युवावस्थामें विषयोंमें फँस जाते हैं और बुढ़ापा आनेपर उसे असमर्थताके कारण न्यर्थ ही काटते हैं॥ ७५॥ इसलिये विवेकी पुरुषको चाहिये कि देहकी वाल्य, यौवन और वृद्ध आदि अवस्थाओंको अपेक्षा न करके बाल्यावस्थामें ही अपने कल्याणका यत करे।। ७६ ॥

मैंने तुम छोगोंसे जो कुछ कहा है उसे यदि तुम मिथ्या नहीं समझते तो मेरी प्रसन्नताके छिये ही वन्धनको छटानेवाले श्रीविष्णमगवान्का स्मरण करो ॥ ७७ ॥ उनका स्मरण करनेमें परिश्रम भी क्या है ! और सारणमात्रसे ही वे अति ग्रम फल देते हैं तथा रात-दिन उन्हींका स्मरण करनेवालींका पाप भी नष्ट हो जाता है ॥ ७८ ॥ उन सर्वभूतस्य प्रसुमें तुम्हारी बुद्धि अहर्निश लगी रहे और उनमें निरन्तर तम्हारा प्रेम बढ़े; इस प्रकार तुम्हारे समस्त क्लेश दूर हो जायँगे ॥ ७९ ॥

जब कि यह सभी संसार तापत्रयसे दग्ध हो रहा है तो इन बेचारे शोचनीय जीवोंसे कोन बुद्धिमान द्वेष करेगा ?॥ ८०॥ यदि [ऐसा दिखायी दे कि] 'और जीव तो आनन्दमें हैं, मैं ही परम शक्तिहीन हूँ' तब भी प्रसन्न ही होना चाहिये, क्योंकि द्वेषका फल तो दु:खरूप ही है ॥ ८१ ॥ यदि कोई प्राणी वैरमावसे द्रेष भी करें तो विचारवानोंके छिये तो वे 'अहो ! ये महामोहसे व्याप्त हैं !' इस प्रकार अत्यन्त शोचनीय ही हैं॥ ८२॥

हे दैत्यगण ! ये मैंने भिन्न-भिन्न दृष्टिवालोंके विकल्प (मिन-मिन उपाय) कहे। अब उनका विचार

विस्तारः सर्वभूतस्य विष्णोः सर्वमिदं जगत् ।

हृष्टव्यमात्मवत्तसादं मेदेन विचक्षणैः ॥८४॥

सम्रुत्मृज्यासुरं मावं तसाद्यं तथा वयम् ।

तथा यतं करिष्यामो यथा प्राप्त्याम निर्वृतिम्॥८५॥

या नाग्निना न चार्कण नेन्दुना च न वायुना ।

पर्जन्यवरुणाभ्यां वा न सिद्धैर्न च राक्षसैः ॥८६॥

न यक्षैर्न च दैत्येन्द्रैनीरगैर्न च किन्नरैः ।

न मनुष्येर्न पद्यभिदीषैनैवात्मसम्भवैः ॥८७॥

ज्वराक्षिरोगातीसारष्टीह्गुल्मादिकैस्तथा ।

द्वेषेर्ष्यामत्सराद्यैर्वा रागलोभादिभिः क्ष्यम् ॥८८॥

न चान्यैनीयते कैश्विन्नित्या यात्यन्तनिर्मला ।

िन् तामामोत्यमले न्यस्य केशवे हृद्यं नरः ॥८९॥

असारसंसारविवर्तनेषु

मा यात तोषं प्रसमं त्रवीमि ।

सर्वत्र दैत्यास्समताग्रुपेत

समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥९०॥

तसिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं

धर्मार्थकामैरलम्लपकास्ते ।

समाश्रिताद्रक्षतरोरनन्ता-

निःसंशयं प्राप्स्यथ वै महत्फलम् ॥९१॥

17:5

यह सम्पूर्ण जगत् सर्वभूतमय मगवान् विष्णुका विस्तार है, अतः विचक्षण पुरुषोंको इसे आत्माके समान अमेदरूपसे देखना चाहिये ॥ ८४ ॥ इसिल्ये दैत्य-भावको छोड़कर हम और तुम ऐसा यह करें जिससे शान्ति लाभ कर सकें ॥ ८५ ॥ जो [परम शान्ति] अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ, वरुण, सिद्ध, राक्षस, यक्ष, दैत्यराज, सर्प, किकर, मनुष्य, पश्च और अपने दोषोंसे तथा ज्वर, नेत्ररोग, अतिसार, फ्रीहा (तिल्ली) और गुल्म आदि रोगोंसे एवं द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर, राग, लोभ और किसी अन्य भावसे भी कभी क्षीण नहीं होती, और जो सर्वदा अत्यन्त निर्मल है उसे मनुष्य अमलखरूप श्रीकेशवमें मनोनिवेश करनेसे प्राप्त कर लेता है ॥ ८६—८९ ॥

हे दैत्यो ! मैं आग्रहपूर्वक कहता हूँ, तुम इस असार संसारके विषयोंमें कभी सन्तुष्ट मत होना । तुम सर्वत्र समदृष्टि करो, क्योंकि समता ही श्रीअच्युतकी [वास्तविक] आराधना है ॥ ९०॥ उन अच्युतके प्रसन्त होनेपर फिर संसारमें दुर्छम ही क्या है ! तुम धर्म, अर्थ और कामकी इच्छा कभी न करना; वे तो अत्यन्त तुच्छ हैं । उसे ब्रह्मरूप महाचृक्षका आश्रय छेनेपर तो तुम निःसन्देह [मोक्षरूप] महा-फल प्राप्त कर छोगे ॥ ९१॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥



रं उपस्डारो त्सन्दे नाजानता संशोधने भाष्यप्यसम्बद्धतम् अठारहवाँ अध्याय

> प्रह्लादको मारनेके लिये विप, शस्त्र और अग्नि आदिका प्रयोग एवं प्रह्लादकृत भगवत्-स्तुति।

श्रीपराशर उवाच

तस्यैतां दानवाश्रेष्टां दृष्टा दैत्यपतेर्भयात् । प्रतः अ आचचच्युः संचोवाच सदानाहूय सत्वरः ॥ १॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

हे सदा मम पुत्रोऽसावन्येपामि दुर्मतिः । कुमार्गदेशिको दुष्टो हन्यतामविलम्बितम् ॥ २ ॥ हालाहलं विषं तस्य सर्वभक्षेषु दीयताम् । अविज्ञातमसौ पापो हन्यतां मा विचार्यताम् ॥ ३ ॥

श्रीपराशर उवाच

ते तथैव ततश्रक्धः प्रह्लादाय महात्मने ।

विषदानं यथाज्ञःसं पित्रा तस्य महात्मनः ॥ ४ ॥

हालाहलं विषं घोरमनन्तोचारणेन सः ।

अभिमन्त्र्य सहान्नेन मैत्रेय वुश्चे तदा ॥ ५ ॥

अविकारं स तद्भुक्त्वा प्रह्लादः स्वस्थमानसः ।

अनन्तरूयातिनिवींर्यं जरयामास तद्भिषम् ॥ ६ ॥

ततः सदा भयत्रस्ता जीर्णं दृष्ट्वा महद्भिषम् ।

दैत्येश्वरसुपागम्य प्रणिपत्येदमञ्जवन् ॥ ७ ॥

सूदा उचुः

दैत्यराज विषं दत्तमसाभिरतिभीषणम् । जीर्णं तेन सहान्नेन प्रह्वादेन सुतेन ते ॥ ८॥

हिरण्यकाशिपुरुवाच

त्वर्यतां त्वर्यतां हे हे सद्यो दैत्यपुरोहिताः । कृत्यां तस्य विनाशाय उत्पादयत मा चिरम् ॥ ९॥

श्रीपराशर उवाच

सकाशमागम्य ततः प्रह्लादस्य पुरोहिताः । विनीत प्रह्लादस् सामपूर्वमथोचुस्ते प्रह्लादं विनयान्वितम् ॥१०॥ कहा ॥ १०॥

श्रीपराशरजी बोले—उनकी ऐसी चेष्टा देख दैत्योंने दैत्यराज हिरण्यकशिपुसे डरकर उससे सारा वृत्तान्त कह सुनाया, और उसने भी तुरन्त अपने रसोइयोंको बुळाकर कहा ॥ १॥

हिरण्यकशिषु बोला—अरे स्दगण! मेरा यह दुष्ट और दुर्मित पुत्र औरोंको मी कुमार्गका उपदेश देता है, अतः तुम शीघ्र ही इसे मार डालो ॥ २ ॥ तुम उसे उसके विना जाने समस्त खाद्यपदार्थों में हला-हल विष मिलाकर दो और किसी प्रकारका शोच-विचार न कर उस पापीको मार डालो ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—तव उन रसोइयोंने महात्मा प्रह्लादको, जैसी कि उनके पिताने आज्ञा दी यी उसीके अनुसार विष दे दिया॥ १॥ हे मैत्रेय! तव वे उस घोर हलाहल विषको मगवन्नामके उच्चारणसे अमिमन्त्रित कर अनके साथ खा गये॥ ५॥ तथा मगवन्नामके प्रभावसे निस्तेज हुए उस विषको खाकर उसे विना किसी विकारके पचाकर खस्थ चित्तसे स्थित रहे॥ ६॥ उस महान् विषको पचा हुआ देख रसोइयोंने भयसे व्याकुल हो हिरण्यकशिपुके पास जा उसे प्रणाम करके कहा॥ ७॥

सूद्गण बोले—हे दैत्यराज ! हमने आपकी आज्ञासे अत्यन्त तीक्ष्ण विष दिया था, तथापि आपके पुत्र प्रह्लादने उसे अनके साथ पचा लिया॥८॥

हिरण्यकशिषु बोला—हे पुरोहितगण ! शीघता करो, शीघता करो ! उसे नष्ट करनेके लिये अब कृत्या उत्पन्न करो; और देरी न करो ॥ ९॥

श्रीपराशरजी बोले—तब पुरोहितोंने अति विनीत प्रह्लादसे, उसके पास जाकर शान्तिपूर्वक कहा ॥ १०॥

पुरोहिता उचुः

जातस्रैलोक्यविख्यात आयुष्मन्त्रह्मणः कुले।
दैत्यराजस्य तनयो हिरण्यकशिपोर्भवान् ॥११॥
किं देवैः किमनन्तेन किमन्येन तवाश्रयः।
पिता ते सर्वलोकानां त्वं तथैव भविष्यसि ॥१२॥
तसात्परित्यजैनां त्वं विपक्षस्तवसंहिताम्।
स्ठाघ्यः पिता समस्तानां गुरूणां परमो गुरुः॥१३॥

प्रह्लाद उवाच

एवमेतन्महाभागाः श्लाघ्यमेतन्महाकुलम् । मरीचेः सकलेऽप्यस्मिन् त्रैलोक्ये नान्यथा वदेत् १४ पितां च मम सर्वसिञ्जगत्युत्कृष्टचेष्टितः। एतद्प्यवगच्छामि सत्यमत्रापि नानृतम् ॥१५॥ गुरूणामपि सर्वेषां पिता परमको गुरुः। यदुक्तं आन्तिस्तत्रापि खल्पापि हि न विद्यते ॥१६॥ पिता गुरुर्न सन्देहः पूजनीयः प्रयत्नतः । तत्रापि नापराध्यामीत्येवं मनसि मे स्थितम्।।१७॥ यत्त्वेतत्कमनन्तेनेत्युक्तं युष्माभिरीदृशम्। को त्रवीति यथान्याय्यं किं त नैतद्वचोऽर्थवत्।।१८।। इत्युक्त्वा सोऽभवन्मौनी तेषां गौरवयन्त्रितः । प्रहस्य च पुनः प्राह किमनन्तेन साध्विति ॥१९॥ साधु मो किमनन्तेन साधु भो गुरवो मम। श्रृयतां यदनन्तेन यदि खेदं न यास्यथ ।।२०।। धर्मार्थकाममोक्षाश्च पुरुषार्था उदाहृताः।

पुरोहित बोले—हे आयुष्मन् ! तुम त्रिलोकीमें विख्यात ब्रह्माजीके कुलमें उत्पन्न हुए हो और दैत्यंराज हिरण्यकशिएके पुत्र हो ॥ ११ ॥ तुम्हें देवता अनन्त अथवा और भी किसीसे क्या प्रयोजन है ! तुम्हारे पिता तुम्हारे तथा सम्पूर्ण लोकोंके आश्रय हैं और तुम भी ऐसे ही होगे ॥ १२ ॥ इसल्ये तुम यह विपक्षकी स्तुति करना लोड़ दो । तुम्हारे पिता सब प्रकार प्रशंसनीय हैं और वे ही समस्त गुरुओंमें परम गुरु हैं ॥ १३ ॥

प्रहादजी बोले-हे महाभागगण ! यह ठीक ही है। इस सम्पूर्ण त्रिलोकोंमें भगवान् मरीचिका यह महान् कुल अवस्य ही प्रशंसनीय है। इसमें कोई कुछ भी अन्यथा नहीं कह सकता ॥ १४ ॥ और मेरे पिताजी भी सम्पूर्ण जगत्में बहुत बड़े पराक्रमी हैं; यह भी मैं जानता हूँ। यह वात भी विल्कुल ठीक है, अन्यथा नहीं ॥ १५॥ और आपने जो कहा कि समस्त गुरुओंमें पिता ही परम गुरु हैं-इसमें भी मुझे लेशमात्र सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ पिताजी परम गुरु हैं और प्रयत्नपूर्वक पूजनीय हैं-इसमें कोई सन्देह नहीं । और मेरे चित्तमें भी यही विचार स्थिर है कि मैं उनका कोई अपराध नहीं करूँगा ॥ १७॥ किन्तु आपने जो यह कहा कि 'तुझे अनन्तसे क्या प्रयोजन है!' सो ऐसी बातको भछा कौन न्यायोचित कह सकता है ? आपका यह कथन किसी भी तरह ठीक नहीं है॥१८॥

ऐसा कहकर वे उनका गौरव रखनेके लिये चुप हो गये और फिर हँसकर कहने लगे—'तुझे अनन्तसे क्या प्रयोजन हैं इस विचारको धन्यवाद हैं। ॥१९॥ हे मेरे गुरुगण ! आप कहते हैं कि तुझे अनन्तसे क्या प्रयोजन हैं! धन्यवाद है आपके इस विचारको ! अच्छा, यदि आपको बुरा न लगे तो मुझे अनन्तसे जो प्रयोजन हैं सो मुनिये ॥ २०॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुवार्थ कहे जाते हैं। ये चारों ही जिनसे सिद्ध होते हैं, उनसे क्या प्रयोजन ! चतुष्ट्यमिदं यसाचसादिक किमिदं वचा ।।२१॥ —आपके इस क्यनको क्या कहा जाय ! ॥२१॥ चतुष्ट्यमिदं यसाचसादिक किमिदं वचा ।।२१॥ —आपके इस क्यनको क्या कहा जाय ! ॥२१॥

मरीचिमिश्रेर्दक्षाद्यैस्तथैवान्यैरनन्ततः धर्मः प्राप्तस्तथा चान्यैरर्थः कामस्तथाऽपरैः ॥२२॥ तत्तत्त्ववेदिनो भृत्वा ज्ञानध्यानसमाधिभिः। अवापुर्मक्तिमपरे पुरुषा ध्वस्तवन्धनाः ॥२३॥ सम्पदेश्वर्यमाहात्म्यज्ञानसन्ततिकर्मणाम् विम्रक्तेश्रेकतो लभ्यं मूलमाराधनं हरेः ॥२४॥ यतो धर्मार्थकामाख्यं मक्तिश्वापि फलं द्विजाः । तेनापि किं किमित्येवमनन्तेन किम्रच्यते ॥२५॥ किं चापि बहनोक्तेन भवन्तो गुरवो मम। वदन्तु साधु वासाधु विवेकोऽसाकमल्पकः ॥२६॥ बहुनात्र किम्रुक्तेन स एव जगतः पतिः । स कर्ता च विकर्ता च संहर्ता च हृदि स्थितः।।२७।। स भोक्ता भोज्यमप्येवं स एव जगदीश्वरः । भवद्भिरेतत्क्षन्तव्यं वाल्यादुक्तं तु यन्मया ॥२८॥ परोहिता उत्तः

दुसमानस्त्वमसाभिरमिना वाल रक्षितः। भृयो न वक्ष्यसीत्येवं नैव ज्ञातोऽखबुद्धिमान्।।२९।। यदास्मद्रचनान्मोहग्राहं न त्यक्ष्यते भवान्। ततः कृत्यां विनाशाय तव सृक्ष्यामं दुर्मते ॥३०॥ प्रह्लाद उंवाच

कः केन हन्यते जन्तुर्जन्तुः कः केन रक्ष्यते । हन्ति रक्षति चैवात्मा इसत्साधु समाचरन् ॥३१॥ कर्मणा जायते सर्वं कर्मेव गतिसाधनम्। साधुकर्म समाचरेत् ॥३२॥ तस्मात्सर्वप्रयतेन श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तास्तेन ते क्रुद्धा दैत्यराजपुरोहिताः।

उन अनन्तसे ही दक्ष और मरीचि आदि तथा अन्यान्य ऋषीयरोंको धर्म, किन्हीं अन्य मुनीयरोंको अर्थ एवं अन्य किन्हींको कामकी प्राप्ति हुई है ॥२२॥ किन्हीं अन्य महापुरुषोंने ज्ञान, ध्यान और समाधिके द्वारा उन्होंके तखको जानकर अपने संसार-वन्धनको काटकर मोक्षपद प्राप्त किया है ।। २३ ।। अतः सम्पत्ति, ऐश्वर्य, माहात्म्य, ज्ञान, सन्तति और कर्म तथा मोक्ष इन सवको एकमात्र मूळ श्रीहरिकी आराधना ही उपार्जनीय है ॥ २४ ॥ हे द्विजगण ! इस प्रकार. जिनसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष-ये चारों ही फल प्राप्त होते हैं उनके लिये भी आप ऐसा क्यों कहते हैं कि 'अनन्तसे तझे क्या प्रयोजन है ?' ॥२५॥ और बहुत कहनेसे क्या लाभ ? आपलोग तो मेरे गुरु हैं: उचित-अनुचित सभी कुछ कह सकते हैं। और मुझे तो विचार भी बहुत ही कम है ॥ २६॥ इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय ? ि मेरे विचारसे तो । सबके अन्तः करणों में स्थित एकमात्र वे ही संसारके खामी तथा उसके रचियता, पालक और संहारक हैं ॥ २७॥ विक हिपरे-वे ही भोक्ता और भोज्य तथा वे ही एकमात्र जगदीश्वर हैं । हे गुरुगण ! मैंने वाल्यभावसे यदि कुछ अनुचित 🕫 🏎 कहा हो तो आप क्षमा करें"॥ २८॥

परोहितगण बोछे-अरे वालक ! हमने तो यह समझकर कि तू फिर ऐसी वात न कहेगा तुझे अग्निमें जलनेसे वचाया है। हम यह नहीं जानते थे कि त् ऐसा बुद्धिहीन है ! ॥ २९ ॥ रे दुर्मते ! यदि त् हमारे कहनेसे अपने इस मोहमय आग्रहको नहीं छोड़ेगा तो हम तुझे नष्ट करनेके छिये कृत्या उत्पन्न करेंगे ॥ ३०॥

प्रहादजी बोले-कौन जीव किससे मारा जाता है और कौन किससे रक्षित होता है ? ग्रुम और अग्रुम आचरणोंके द्वारा आत्मा खर्य ही अपनी रक्षा और नाश करता है ॥ ३१॥ कर्मोंके कारण ही सब उत्पन्न होते हैं और कर्म ही उनकी ग्रुमाग्रुम गतियों-के साधन हैं। इसिंख्ये प्रयह्मपूर्वक शुभकर्मोंका ही आचरण करना चाहिये॥ ३२॥

श्रीपराशरजी बोले-उनके ऐसा कहनेपर उन दैत्यराजके पुरोहितोंने क्रोधित होकर अग्निशिखाके

कृत्यामृत्पादयामासुर्ज्वालामालोज्ज्वलाकृतिम्३३ अतिभीमा समागम्य पादन्यासक्षतिक्षितिः। ग्रूलेन साधु सङ्कुद्धा तं जघानाशु वक्षसि ॥३४॥ तत्तस्य हृद्यं प्राप्य शूलं बालस्य दीप्तिमत् । जगाम खण्डितं भूमौ तत्रापि शतधा गतम्।।३५॥ यत्रानपायी भगवान् हृद्यास्ते हरिरीश्वरः। भक्नो भवति वजस्य तत्र शूलस्य का कथा ॥३६॥

अपापे तत्र पापैश्च पातिता दैत्ययाजकैः। तानेव सा जघानाश्च कृत्या नाशं जगाम च ।।३७॥ कृत्यया दह्यमानांस्तान्विलोक्य स महामतिः। त्राहि कृष्णेत्यनन्तेति वदन्नभ्यवपद्यत् ॥३८॥ प्रह्लाद उवाच

सर्वव्यापिन् जगद्रप जगत्स्रष्टर्जनार्दन। पाहि विप्रानिमानस्मादुःसहान्मन्त्रपावकात्।।३९।। यथा सर्वेषु भृतेषु सर्वव्यापी जगद्गुरुः। विष्णुरेव तथा सर्वे जीवन्त्वेते पुरोहिताः ॥४०॥ यथा सर्वगतं विष्णुं मन्यमानोऽनपायिनम् । चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः ॥४१॥ ये हन्त्रमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हताशनः । यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पेश्च यैरपि ॥४२॥ तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न कचित् । यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुर्याजकाः ॥४३॥

श्रीपराशर उवाच इत्युक्तास्तेन ते सर्वे संस्पृष्टाश्च निरामयाः । समुत्तस्थुद्धिजा भूयस्तमृत्युः प्रश्रयान्वितम् ॥४४॥ विनयावनत बालकसे कहने लगे ॥ ४४॥ समुत्तम् अर्थाः Salya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

समान प्रज्वित शरीरवाली कृत्या उत्पन्न कर दी ॥ ३३॥ उस अति भयंकरीने अपने पादाघातसे पृथिवीको कम्पित करते हुए वहाँ प्रकट होकर बड़े क्रोधसे प्रह्लादजीकी छातीमें त्रिश्लसे प्रहार किया ॥ ३४ ॥ किन्तु उस वालकके वक्षःस्थलमें लगते ही वह तेजोमय त्रिशूल ट्रटकर पृथिवीपर गिर पड़ा और वहाँ गिरनेसे भी उसके सैकड़ों टुकड़े हो गये ॥३५॥ जिस हृदयमें निरन्तर अक्षण्णभावसे श्रीहरिभगवान् विराजते हैं उसमें लगनेसे तो वज्रके भी ट्रक-ट्रक हो जाते हैं, त्रिशूलकी तो बात ही क्या है ? ॥ ३६ ॥

उन पापी प्रोहितोंने उस निष्पाप बालकपर कृत्याका प्रयोग किया था; इसिलये तुरन्त ही उसने उनपर वार किया और खयं भी नष्ट हो गयी ॥३०॥ अपने गुरुओंको कृत्याद्वारा जलाये जाते देख महामति प्रह्लाद 'हे कृष्ण ! रक्षा करो ! हे अनन्त ! बचाओ !' ऐसा कहते हुए उनकी ओर दौड़े ॥ ३८॥

प्रह्वादजी कहने छगे-हे सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्वस्रष्टा जनार्दन ! इन ब्राह्मणोंकी इस मन्त्राग्निरूप दुःसह दुःखसे रक्षा करो॥ ३९॥ 'सर्वन्यापी जगद्गरु भगवान् विष्णु सभी प्राणियोंमें व्याप्त हैं नइस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ ॥ ४०॥ यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय श्रीविष्णुभगवान्को अपने विपक्षियोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ ॥ ४१ ॥ जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे विष दिया, जिन्होंने आगमें जलाया, जिन्होंने दिग्गजोंसे पीडित कराया और जिन्होंने सर्पोंसे डँसाया उन सबके प्रति यदि मैं समान मित्रभावसे रहा हूँ और मेरी कभी पाप-बुद्धि नहीं हुई तो उस सत्यके प्रमावसे ये दैत्यपुरोहित जी उठें 11 87-83 11

श्रीपराशरजी बोळे-ऐसा कहकर उनके स्पर्श करते ही वे ब्राह्मण स्वस्थ होकर उठ वैठे और उस

पुरोहिता उत्तुः दीर्घायुरप्रतिहतो वलवीर्यसमन्त्रितः । पुत्रपौत्रधनैथर्येर्युक्तो वत्स भवोत्तमः ॥४५॥ श्रीपराशर उवाच

इत्युक्त्वा तं ततो गत्वा यथावृत्तं पुरोहिताः । दैत्यराजाय सकलमाचचष्ट्रवर्महामुने ॥४६॥

पुरोहितगण बोले-हे बत्स ! त् वड़ा श्रेष्ठ है । त् दीर्घायु, निर्द्धन्द्वं, वल्ल-बीर्यसम्पन्न तथा पुत्र, पौत्र एवं धन-ऐश्वर्यादिसे सम्पन्न हो ॥ ४५॥

श्रीपराशरजी बोले-हे महामुने ! ऐसा कह पुरोहितोंने दैत्यराज हिरण्यकशिपुके पास जा उसे सारा समाचार ज्यों-का-त्यों सुना दिया ॥ ४६॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

• उन्नीसवाँ अध्याय

प्रह्लाद्कृत भगवत्-गुण-वणन और प्रह्लाद्की रक्षाके लिये भगवान्का सुद्श्निकक्को भेजना ।

श्रीपराशर उवाच

हिरण्यकशिषुः श्रुत्वा तां कृत्यां वितथीकृताम् । आहूय पुत्रं पप्रच्छ प्रभावस्यास्य कारणम् ॥ १॥

हिरएयकाशिपुरुवाच

प्रह्लाद सुप्रभावोऽसि किमेतत्ते विचेष्टितम् । एतन्मन्त्रादिजनितमुताहो सहजं तव ॥ २ ॥

श्रीपराशर उवाच

एवं पृष्टस्तदा पित्रा प्रह्लादोऽसुरवालकः ।

प्रणिपत्य पितुः पादाविदं वचनमत्रवीत् ॥ ३ ॥

न मन्त्रादिकृतं तात न च नैसर्गिको मम ।

प्रभाव एष सामान्यो यस यस्याच्युतो हृदि ॥ ४ ॥

अन्येषां यो न पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा ।

तस्य पापागमस्तात हेत्वभावान्न विद्यते ॥ ५ ॥

कर्मणा मनसा वाचा परपीडां करोति यः ।

तद्वीजं जन्म फलति प्रभूतं तस्य चान्नुमम् ॥ ६ ॥

सोऽहं न पापमिच्छामि न करोमि वदामि वा।

चिन्तयन्सर्वभृतस्थमात्मन्यपि च केशवम् ॥ ७ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हिरण्यंकशिपुने कृत्याको भी विफल हुई सुन अपने पुत्र प्रह्लादको बुलाकर उनके इस प्रभावका कारण पूछा ॥ १ ॥

हिरण्यकशिपु बोला-अरे प्रह्लाद ! त् वड़ा प्रभावशाली है ! तेरी ये चेष्टाएँ मन्त्रादिजनित हैं या खाभाविक ही हैं ॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले—पिताके इस प्रकार पूछनेपर दैत्यकुमार प्रह्लादजीने उसके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार कहा—॥ ३॥ "पिताजी! मेरा यह प्रभाव न तो मन्त्रादिजनित है और न खामाविक ही है, बल्कि जिस-जिसके हृदयमें श्रीअच्युतमगवान्-का निवास होता है उसके लिये यह सामान्य वात है॥ ४॥ जो मनुष्य अपने समान दूसरोंका बुरा नहीं सोचता, हे तात! कोई कारण न रहनेसे उसका मी कमी बुरा नहीं होता॥ ५॥ जो मनुष्य मन, वचन या कमसे दूसरोंको कष्ट देता है उसके उस परपीडारूप बीजसे ही उत्पन्न हुआ उसको अत्यन्त अशुम फल मिलता है॥ ६॥ अपने-सिहत समस्त प्राणियोंमें श्रीकेशवको वर्तमान समझकर में न तो किसीका बुरा चाहता हूँ और न कहता या करता ही हूँ॥ ७॥ इस प्रकार सर्वत्र श्रुमचित्त

शारीरं मानसं दुःखं दैवं भूतभवं तथा। सर्वत्र शुभचित्तस्य तस्य मे जायते कुतः ॥ ८॥ एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी। कर्तव्या पण्डितै इत्वा सर्वभृतमयं हरिम् ॥ ९ ॥

श्रीपराशर उवाच

इति श्रत्वा स दैत्येन्द्रः प्रासादशिखरे स्थितः । कोधान्धकारितमुखः प्राह दैतेयकिङ्करान् ॥१०॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

दुरात्मा क्षिप्यतामस्मात्त्रासादाच्छतयोजनात् । गिरिपृष्ठे पतत्वसिन् शिलाभिनाङ्गसंहतिः ॥११॥ ततस्तं चिश्चिपः सर्वे वालं दैतेयदानवाः। पपात सोप्यधः क्षिप्तो हृद्येनोद्रहन्हरिम् ॥१२॥ पतमानं जगद्धात्री जगद्धातरि केशवे। भक्तियुक्तं द्धारैनम्रुपसङ्गम्य मेदिनी ॥१३॥ ततो विलोक्य तं स्वस्थमविशीर्णास्थिपञ्जरम् । हिरण्यकशिपुः प्राह शम्बरं मायिनां वरम् ॥१४॥

हिरएयकाशिपुरुवाच

नास्माभिः शक्यते हन्तुमसौ दुर्वुद्धिबालकः । मायां वेत्ति भवांस्तस्मान्माययैनं निषृद्य ।।१५॥

शम्बर उवाच

सद्याम्येव दैत्येन्द्र पश्य मायावरुं मम । सहस्रमत्र मायानां पश्य कोटिशतं तथा ॥१६॥

श्रीपराशर उवाच

ततः स ससूजे मायां प्रह्लादे शम्बरोऽसुरः । विनाशमिच्छन्दुर्वुद्धिः सर्वत्र समद्शिनि ॥१७॥ समाहितमतिर्भृत्वा शम्बरेऽपि विमत्सरः । मैत्रेय सोऽपि प्रह्लादः सस्मार् मधुसद्नम् ॥१८॥ चित्तसे श्रीमधुस्दनभगवान्का स्मरण करते रहे ॥१८॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

होनेसे मुझको शारीरिक, मानसिक, दैविक अथवा भौतिक दुःख किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ।। ८॥ इसी प्रकार भगवान्को सर्वभूतमय जानकर विद्वानों-को सभी प्राणियोंमें अविचल मक्ति (प्रेम) करनी चाहिये"॥९॥

श्रीपराशरजी बोले-अपने महलकी अद्दालिकापर वैठे हुए उस दैत्यराजने यह सुनकर क्रोधान्ध हो अपने दैत्य-अनुचरोंसे कहा ॥ १०॥

हिरण्यकशिषु घोळा—यह बड़ा दुरात्मा है, इसे इस सौ योजन ऊँचे महलसे गिरा दो, जिससे यह इस पर्वतके ऊपर गिरे और शिलाओंसे इसके अंग-अंग छिन्न-भिन्न हो जायँ ॥ ११॥

तब उन समस्त दैत्य और दानवोंने उन्हें महलसे गिरा दिया और वे भी उनके दकेलनेसे हृदयमें श्रीहरिका स्मरण करते-करते नीचे गिर गये ॥ १२ ॥ जगत्कर्ता भगवान् केशवके परमभक्त प्रह्लादजीके गिरते समय उन्हें जगद्धात्री पृथिवीने निकट जाकर अपनी गोदमें छे छिया ॥ १३॥ तब बिना किसी हड्डी-पसळीके टूटे उन्हें सस्थ देख हिरण्यकशिपुने परममायावी शम्बरासुरसे कहा ॥१४॥

हिरण्यकशिपु बोला-यह दुर्बुद्धि बालक कोई ऐसी माया जानता है जिससे यह हमसे नहीं मारा जा सकता, इसिंख्ये आप मायासे ही इसे मार डालिये ॥ १५॥

शम्बरासुर बोला—हे दैत्येन्द्र ! इस बालकको मैं अभी मारे डाळता हूँ, तुम मेरी मायाका बळ देखो । देखो, मैं तुम्हें सैकड़ों-हजारों-करोड़ों मायाएँ दिखळाता हूँ ॥ १६॥

श्रीपराशरजी बोले—तब उस दुर्बुद्धि शम्बरासुरने समदर्शी प्रह्लादके लिये, उनके नाशकी इच्छासे बहुत-सी मायाएँ रचीं ॥१७॥ किन्तु, हे मैत्रेय ! शम्त्ररासुरके प्रति भी सर्वया द्वेषहीन रहकर प्रह्लादजी सावधान

ततो भगवता तस्य रक्षार्थं चक्रमत्तमम्। आजगाम समाज्ञप्तं ज्वालामालि सदर्शनम् ॥१९॥ तेन मायासहस्रं तच्छम्बरस्याञ्चगामिना। बालस्य रक्षता देहमेकैकं च विशोधितम् ॥२०॥ संशोषकं तथा वायं दैत्येन्द्रस्त्वदमत्रवीत । शीघ्रमेष ममादेशाद्रात्मा नीयतां क्षयम् ॥२१॥ तथेत्युक्त्वा तु सोऽप्येनं विवेश पवनो लघु । शीतोऽतिरूक्षः शोपाय तद्देहस्यातिदुःसहः ॥२२॥ तेनाविष्टमथात्मानं स बुद्ध्वा दैत्यवालकः । हृद्येन महात्मानं द्धार धरणीधरम्।।२३।। हृद्यस्थस्ततस्तस्य तं वायुमतिभीषणम्। पपौ जनार्दनः क्रुद्धः स ययौ पवनः क्ष्यम् ॥२४॥ क्षीणास सर्वमायास पवने च क्षयं गते। जगाम सोऽपि भवनं गुरोरेव महामतिः ॥२५॥ अहन्यहन्यथाचार्यो नीतिं राज्यफलप्रदाम् । ग्राहयामास तं वालं राज्ञाग्रुशनसा कृताम् ॥२६॥ गृहीतनीतिशास्त्रं तं विनीतं च यदा ग्ररुः । मेने तदैनं तत्पित्रे कथयामास शिक्षितम् ॥२७॥ आचार्य उवाच

गृहीतनीतिशास्त्रस्ते पुत्रो दैत्यपते कृतः । प्रह्लादस्तत्त्वतो वेत्ति भार्गवेण यदीरितम् ॥२८॥

हिरण्यकाश्रपुरुवाच

मित्रेषु वर्तेत कथमरिवर्गेषु भूपतिः।

प्रह्लाद त्रिषु लोकेषु मध्यस्थेषु कथं चरेत्।।२९॥

कथं मन्त्रिष्वमात्येषु वाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च।

चारेषु पौरवर्गेषु शङ्कितेष्वितरेषु च॥३०॥

उस समय भगवान्की आज्ञासे उनकी रक्षाके छिये वहाँ ज्वाछा-माछाओंसे युक्त सुदर्शनचक्र आ गया ॥ १९॥ उस शीव्रगामी सुदर्शनचक्रने उस वाछककी रक्षा करते हुए शम्बरासुरकी सहस्रों मायाओंको एक-एक करके नष्ट कर दिया ॥ २०॥

तब दैत्यराजने सबको सुखा डाल्नेवाले वायुसे कहा कि मेरी आज्ञासे तुम शीप्र ही इस दुरात्माको नष्ट कर दो ॥ २१ ॥ अतः उस अति तीव्र शीतल और रूक्ष वायुने, जो अति असहनीय था 'जो आज्ञा' कह उनके शरीरको सुखानेके लिये उसमें प्रवेश किया ॥ २२ ॥ अपने शरीरमें वायुका आवेश हुआ जान दैत्यकुमार प्रह्लादने मगवान् धरणीधरको हृदयमें धारण किया ॥ २३ ॥ उनके हृदयमें स्थित हुए श्रीजनार्दनने कुद्ध होकर उस मीषण वायुको पी लिया, इससे वह क्षीण हो गया ॥ २४ ॥

इस प्रकार पवन और सम्पूर्ण मायाओं के क्षीण हो जाने-पर महामित प्रह्लादजी अपने गुरुके घर चले गये ॥२५॥ तदनन्तर गुरुजी उन्हें नित्यप्रति शुक्राचार्यजीकी बनायी हुई राज्यफल-प्रदायिनी राजनीतिका अध्ययन कराने लगे ॥ २६ ॥ जब गुरुजीने उन्हें नीतिशास्त्रमें निपुण और विनयसम्पन्न देखा तो उनके पितासे कहा—'अब यह सुशिक्षित हो गया है'॥ २७॥

आचार्य बोले-हे दैत्यराज ! अब हमने तुम्हारे पुत्रको नीतिशास्त्रमें पूर्णतया निपुण कर दिया है, भृगुनन्दन शुक्राचार्यजीने जो कुछ कहा है उसे प्रह्लाद तत्त्वतः जानता है ॥ २८ ॥

हिरण्यकशिषु बोळा-प्रह्लाद ! [यह तो वता] राजाको मित्रोंसे कैसा वर्ताव करना चाहिये ! और शत्रुओंसे कैसा ! तथा त्रिलोकीमें जो मध्यस्थ (दोनों पक्षोंके हितचिन्तक) हों, उनसे किस प्रकार आचरण करे ! ।। २९ ।। मन्त्रियों, अमात्यों, बाह्य और अन्तःपुरके सेवकों, गुप्तचरों, पुरवासियों, शिक्कतों (जिन्हें जीतकर बलात्कारसे दास बना लिया हो) तथा अन्यान्य जनोंके प्रति किस प्रकार कृत्याकृत्यविधानञ्च दुंर्गाटविकसाधनम् । प्रह्लाद कथ्यतां सम्यक् तथा कण्टकशोधनम्॥३१॥ एतचान्यच सकलमधीतं भवता यथा। तथा मे कथ्यतां ज्ञातुं तवेच्छामि मनोगतम् ॥३२॥

श्रीपराशर उवाच प्रणिपत्य पितुः पादौ तदा प्रश्रयभूषणः । प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं कृताञ्जलिपुटस्तथा ॥३३॥ प्रह्लाद उवाच

ममोपदिष्टं सकलं गुरुणा नात्र संग्रयः। गृहीतन्तु मया किन्तु न सदेतन्मतम्मम ॥३४॥ साम चोपप्रदानं च भेददण्डौ तथापरौ। उपायाः कथिताः सर्वे मित्रादीनां च साधने ।।३५।। तानेवाहं न पश्यामि मित्रादीं स्तात मा क्रुधः । 🗸 साध्याभावे महाबाहो साधनैः किं प्रयोजनम् ।।३६।। सर्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये। परमात्मनि गोविन्दे मित्रामित्रकथा कुतः ॥३७॥ त्वय्यस्ति भगवान् विष्णुर्मयि चान्यत्र चास्ति सः। यतस्ततोऽयं मित्रं मे शत्रुश्चेति पृथक्कृतः ॥३८॥ तदेभिरलमत्यर्थ दुष्टारम्भोक्तिविस्तरैः। अविद्यान्तर्गतैर्यतः कर्त्तव्यस्तात शोभने ॥३९॥ विद्याबुद्धिरविद्यायामज्ञानात्तात बालोऽप्रिं किं न खद्योतमसुरेश्वर मन्यते ॥४०॥ तत्कर्म यन बन्धाय सा विद्या या विम्रक्तये । आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ।।४१।।

व्यवहार करना चाहिये ? ॥ ३०॥ हे प्रह्लाद ! यह ठीक-ठीक बता कि करने और न करनेयोग्य कार्योंका विधान किस प्रकार करे, दुर्ग और आटविक (जंगळी मनुष्य) आदिको किस प्रकार बशीभूत करे और गुप्त शत्रुरूप काँटेको कैसे निकाले ! ॥ ३१॥ यह सब तथा और भी जो कुछ त्ने पढ़ा हो वह सब मुझे सुना, मैं तेरे मनके भावों-को जाननेके लिये बहुत उत्सुक हूँ ॥ ३२॥

श्रीपराशरजी बोले-तब विनयभूषण प्रह्लादजीने पिताके चरणोंमें प्रणाम कर दैत्यराज हिरण्यकशिपुसे हाथ जोड़कर कहा ॥ ३३॥

प्रह्लाद्जी बोले-पिताजी ! इसमें सन्देह नहीं, गुरुजीने तो मुझे इन सभी विषयोंकी शिक्षा दी है, और मैं उन्हें समझ भी गया हूँ; परन्तु मेरा विचार है कि वे नीतियाँ अच्छी नहीं हैं ॥ ३४ ॥ साम, दान तथा दण्ड और भेद-ये सब उपाय मित्रादिके बतलाये गये हैं ॥ ३५॥ किन्तु, साधनेके छिये पिताजी ! आप क्रोध न करें, मुझे तो कोई रात्र-मित्र आदि दिखायी ही नहीं देते; और हे महाबाहो ! जब कोई साध्य ही नहीं है तो इन साधनोंसे छेना ही क्या है ? ॥ ३६ ॥ हे तात ! सर्वभूतात्मक जगन्नाथ जगन्मय पर्मात्मा गोविन्दमें मला शत्र-मित्र-की बात ही कहाँ है ? ॥ ३७॥ श्रीविष्णुभगवान् तो आपमें, मुझमें और अन्यत्र भी सभी जगह वर्तमान हैं, फिर 'यह मेरा मित्र है और यह रात्र है' ऐसे भेदमावको स्थान ही कहाँ है ? ॥ ३८॥ इसलिये, हे तात ! अविद्याजन्य दुष्कर्मों में प्रवृत्त करनेवाले इस वाग्जालको सर्वथा छोड़कर अपने शुभके लिये ही यत करना चाहिये ॥ ३९ ॥ हे दैत्यराज ! अज्ञानके कारण ही मनुष्योंकी अविद्यामें विद्या-बुद्धि होती है। वालक क्या अज्ञानवरा खद्योतको ही अग्नि नहीं समझ छेता ? ॥ ४०॥ कर्म वही है जो बन्धनका कारण न हो और विद्या भी वही है जो मुक्तिकी साधिका हो । इसके अतिरिक्त और कर्म तो विद्याएँ कला-कौशलमात्र परिश्रमरूप तथा अन्य ही हैं ॥ ४१॥

तदेतदवगम्याहमसारं सारमुत्तमम्। निशामय महाभाग प्रणिपत्य ब्रवीमि ते ॥४२॥ न चिन्तयति को राज्यं को धनं नाभिवाञ्छति । तथापि भाव्यमेवैतदुभयं प्राप्यते नरैः ॥४३॥ सर्व एव महाभाग महत्त्वं प्रति सोद्यमाः । तथापि पुंसां भाग्यानि नोद्यमा भृतिहेतवः ॥४४॥ जडानामविवेकानामञ्जराणामपि भाग्यभोज्यानि राज्यानि सन्त्यनीतिमतामपि ।४५। तसाद्यतेत पुण्येषु य इच्छेन्महतीं श्रियम् । यतितव्यं समत्वे च निर्वाणमपि चेच्छता ॥४६॥ देवा मनुष्याः पश्चवः पश्चिवृक्षसरीसपाः। रूपमेतदनन्तस्य विष्णोर्भिन्नमिव स्थितम् ॥४७॥ एतद्विजानता सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। द्रष्टव्यमात्मवद्विष्णुर्यतोऽयं विश्वरूपधृक् ॥४८॥ एवं ज्ञाते स भगवाननादिः परमेश्वरः। प्रसीदत्यच्युतस्त**सिन्**यसन्ने क्रेशसङ्ख्यः ॥४९॥

श्रीपराशर उवाच

एतच्छ्रत्वा तु कोपेन सम्रत्थाय वरासनात् । हिरण्यकशिपुः पुत्रं पदा वक्षस्यताबयत्।।५०।। उवाच च स कोपेन सामर्षः प्रज्वलिन । निष्पिष्य पाणिना पाणि हन्त्रकामो जगद्यथा।।५१।।

हिरण्यकशिपुरुवाच

हे विप्रचित्ते हे राहो हे बलैप महार्णवे। नागपाञ्चेद्देवेद्ध्वा क्षिप्यतां मा विलम्ब्यताम् ।५२। अन्यथा सकला लोकास्तथा दैतेयदानवाः। अनुयास्यन्ति मृढस्य मतमस्य दुरात्मनः ॥५३॥ तरह वे. भी विष्णुभक्त हो जायँगे] ॥ ५३॥

हे महाभाग ! इस प्रकार इन सवको असार समझकर अव आपको प्रणाम कर मैं उत्तम सार बतलाता हूँ, आप श्रवण कीजिये ॥ ४२ ॥ राज्य पानेकी निन्ता किसे नहीं होती और धनकी अभिलाषा भी किसको नहीं है ? तथापि ये दोनों मिलते उन्हींको हैं जिन्हें मिळनेवाळे होते हैं ॥४३॥ हे महाभाग ! महत्त्व-प्राप्तिके लिये सभी यह करते हैं, तथापि वैभव-का कारण तो मनुष्यका भाग्य ही है, उद्यम नहीं ॥ १४॥ हे प्रभो ! जड, अविवेकी, निर्वल और अनीतिज्ञों-को भी भाग्यवश नाना प्रकारके भोग और राज्यादि प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥ इसलिये जिसे महान वैभवकी इच्छा हो उसे केवल पण्यसञ्चयका ही यह करना चाहिये; और जिसे मोक्षकी इच्छा हो उसे भी समत्व-लाभका ही प्रयत करना चाहिये ॥ ४६॥ देव. मनुष्य, पश्च, पक्षी, वृक्ष और सरीसृप—ये सब भगवान् विष्णुसे भिन्न-से स्थित हुए भी वास्तवमें श्रीअनन्तके ही रूप हैं ॥ ४७॥ इस वातको जाननेवाटा पुरुष सम्पूर्ण चराचर जगत्को आत्मवत् देखे, क्योंकि यह सब विश्वरूपधारी मगवान विष्ण ही हैं ॥ ४८ ॥ ऐसा जान छेनेपर वे अनादि परमेश्वर भगवान् अन्यत प्रसन्न होते हैं और उनके प्रसन होनेपर सभी क्रेश क्षीण हो जाते हैं ॥ ४९॥

श्रीपराशरजी बोले-यह सनकर हिरण्यकशिप-ने क्रोधपूर्वक अपने राजसिंहासनसे उठकर पुत्र प्रह्लादके वक्षः स्थलमें लात मारी ॥ ५० ॥ और क्रोध तथा अमर्षसे जलते हुए मानो सम्पूर्ण संसारको मार डालेगा इस प्रकार हाथ मलता हुआ वोला ॥५१॥

हिरण्यकशिपुने कहा-हे विप्रचित्ते ! हे राहो ! हे वल ! तुमलोग इसे भली प्रकार नागपाशसे वाँघकर महासागरमें डाल दो, देरी मत करो ॥५२॥ नहीं तो सम्पूर्ण लोक और दैत्य-दानव आदि भी इस मृद दुरात्माके मतका ही अनुगमन करेंगे [अर्थात् इसकी बहुशो वारितोऽसाभिरयं पापस्तथाप्यरेः ।
स्तुतिं करोति दुष्टानां वध एवोपकारकः ॥५४॥
श्रीपराशरं उवाच

ततस्ते सत्वरा दैत्या बद्धा तं नागवन्धनैः ।
भर्तुराज्ञां पुरस्कृत्य चिक्षिपुः सिललार्णवे ॥५५॥
ततश्रचाल चलता प्रह्लादेन महार्णवः ।
उद्वेलोभृत्परं क्षोभम्रपेत्य च समन्ततः ॥५६॥
भूर्लोकमित्वलं दृष्ट्वा प्राच्यमानं महाम्भसा ।
हिरण्यकशिपुर्देत्यानिदमाह महामते ॥५७॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

दैतेयाः सकलैः शैलैरत्रैव वरुणालये ।
निश्छिद्रैः सर्वश्चः सर्वैश्वीयतामेष दुर्मतिः ॥५८॥
नाग्निर्दहित नैवायं श्रस्तिश्चिको न चोरगैः ।
क्षयं नीतो न वातेन न विषेण न कृत्यया ॥५९॥
न मायामिर्न चैवोच्चात्पातितो न च दिग्गजैः ।
वालोऽतिदृष्टचित्तोऽयं नानेनार्थोऽस्ति जीवता।६०।
तदेष तोयमध्ये तु समाक्रान्तो महीघरैः ।
तिष्ठत्वब्दसहस्रान्तं प्राणान्हास्यति दुर्मतिः ॥६१॥
ततो दैत्या दानवाश्च पर्वतैस्तं महोदघौ ।
आक्रम्य चयनं चक्र्योजनानि सहस्रशः ॥६२॥
स चितः पर्वतैरन्तः समुद्रस्य महामतिः ।
तष्टावाह्विकवेलायामेकाग्रमतिरच्युतम् ॥६३॥

प्रह्वाद उवाच

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते पुरुषोत्तम ।

नमस्ते सर्वलोकात्मन्नमस्ते तिग्मचिक्रणे ॥६४॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥६५॥

हमने इसे बहुतेरा रोका, तथापि यह दुष्ट शत्रुकी ही स्तुति किये जाता है। ठीक है, दुष्टोंको तो मार देना ही लाभदायक होता है।।५४॥

श्रीपराशरजी बोले-तब उन दैत्योंने अपने खामी-की आज्ञाको शिरोधार्य कर तुरन्त ही उन्हें नागपाश-से बाँधकर समुद्रमें डाल दिया ॥ ५५॥ उस समय प्रह्लादजीके हिलने-डुलनेसे सम्पूर्ण महा-सागरमें हलचल मच गंयी और अत्यन्त क्षोमके कारण उसमें सब ओर ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं ॥५६॥ हे महामते ! उस महान् जल-पूरसे सम्पूर्ण पृथिवीको इबती देख हिरण्यकशिपुने दैत्योंसे इस प्रकार कहा ॥५७॥

हिरण्यकशिषु बोला-अरे दैत्यो ! तुम इस दुर्मितको इस समुद्रके मीतर ही किसी ओरसे खुला न रखकर सब ओरसे सम्पूर्ण पर्वतोंसे दबा दो ॥५८॥ देखो, इसे न तो अग्निने जलाया, न यह शक्षोंसे कटा, न सपोंसे नष्ट हुआ और न वायु, विष और कृत्यासे ही क्षीण हुआ, तथा न यह मायाओंसे, ऊपरसे गिरानेसे अथवा दिग्गजोंसे ही मारा गया। यह बालक अत्यन्त दुष्ट-चित्त है, अब इसके जीवनका कोई प्रयोजन नहीं है ॥५९-६०॥ अतः अब यह पर्वतोंसे लदा हुआ हजारों वर्षतक जलमें ही पड़ा रहे, इससे यह दुर्मित खयं ही प्राण छोड़ देगा ॥६१॥

तब दैत्य और दानवोंने उसे समुद्रमें ही पर्वतों-से ढँककर उसके ऊपर हजारों योजनका ढेर कर दिया ॥६२॥ उन महामितने समुद्रमें पर्वतोंसे छाद दिये जानेपर अपने नित्यकर्मोंके समय एकाग्र चित्तसे श्रीअच्युतमगवान्की इस प्रकार स्तुति की ॥६३॥

प्रह्वाद्जी बोले-हे कमल-नयन ! आपको नमस्कार है। हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है। हे सर्वलोकात्मन् ! आपको नमस्कार है। हे तीक्ष्ण-चक्रधारी प्रभो ! आपको बारम्बार नमस्कार है।।६४।। गो-ब्राह्मण-हितकारी ब्रह्मण्यदेव मगवान् कृष्णको नमस्कार है। जगत्-हितकारी श्रीगोविन्दको बारम्बार नमस्कार है।।६५।।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

त्रह्मत्वे सृजते विश्वं स्थितौ पालयते पुनः । रुद्ररूपाय कल्पान्ते नमस्तुभ्यं त्रिमूर्तये ॥६६॥ देवा यक्षासुराः सिद्धा नागा गन्धर्वकिन्नराः । पिशाचा राक्षसाश्चेव मनुष्याः पश्चवस्तथा ॥६७॥ पक्षिणः स्थावराश्चेव पिपीलिकसरीसपाः। भूम्यापोऽमिर्नभो वायुः शब्दःस्पर्शस्तथा रसः।६८। रूपं गन्धो मनो बुद्धिरात्मा कालस्तथा गुणाः। एतेषां परमार्थश्र सर्वमेतत्त्वमच्युत ॥६९॥ विद्याविद्ये भवान्सत्यमसत्यं त्वं विषामते । अवृत्तं च निवृत्तं च कर्म वेदोदितं भवान् ॥७०॥ समस्तकर्मभोक्ता च कर्मोपकरणानि च। त्वमेव विष्णो सर्वाणि सर्वकर्मफलं च यत् ॥७१॥ मय्यन्यत्र तथान्येषु भूतेषु भ्रुवनेषु च। व्याप्तिरैश्वर्यगुणसंद्विकी प्रभो ॥७२॥ त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति त्वां यजन्ति च याजकाः। हव्यकव्यभुगेकस्त्वं पितृदेवस्तरूपधृक् ॥७३॥ रूपं महत्ते स्थितमत्र विश्वं ततश्र सक्ष्मं जगदेतदीश। रूपाणि सर्वाणि च भूतभेदा-स्तेष्वन्तरात्माख्यमतीव स्रक्ष्मम् ॥७४॥ तस्माच स्रक्ष्मादिविशेषणाना-मगोचरे यत्परमात्मरूपम् । किमप्यचिन्त्यं तव रूपमस्ति तस्मै नमस्ते प्ररुषोत्तमाय ॥७५॥ सर्वभृतेषु सर्वात्मन्या शक्तिरपरा तव। गुणाश्रया नमस्तस्यै शाश्रतायै सुरेश्वर ॥७६॥ /यातीतगोचरा वाचां मनसां चाविशेषणा । ज्ञानिज्ञानपरिच्छेद्या तां वन्दे स्वेश्वरीं पराम् ॥७७॥

आप ब्रह्मारूपसे विश्वकी रचना करते हैं. फिर उसके स्थित हो जानेपर विष्णरूपसे पाछन करते हैं और अन्तमें रुद्ररूपसे संहार करते हैं-ऐसे त्रिमृतिधारी आपको नमस्कार है ॥६६॥ हे अच्युत ! देव, यक्ष, असुर, सिद्ध, नाग, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य, पञ्च, पक्षी, स्थावर, पिपीलिका (चींटी) सरीसृप, पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, आत्मा, काल और गुण-इन सबके पारमार्थिक रूप आप ही हैं, वास्तवमें आप ही ये सब हैं ॥ ६७-६९ ॥ आप ही विद्या और अविद्या, सत्य और असत्य तथा विष और अमृत हैं तथा आप ही वेदोक्त प्रवृत्त और निवृत्त कर्म हैं ॥७०॥ हे विष्णो ! आप ही समस्त कमोंके भोक्ता और उनकी सामग्री हैं तथा सर्व कर्मी-के जितने भी फल हैं वे सब भी आप ही हैं ॥७१॥ हे प्रभो ! मुझमें तथा अन्यत्र समस्त भूतों और मुवनोंमें आपहींके गुण और ऐश्वर्यकी सचिका न्याप्ति हो रही है ॥७२॥ योगिगण आपहीका ध्यान घरते हैं और याज्ञिकगण आपहीका यजन करते हैं, तथा पित्रगण और देवगणके रूपसे एक आप ही हव्य और कव्यके भोक्ता हैं ॥७३॥

हे ईश ! यह निखिल ब्रह्माण्ड ही आपका स्थूल रूप है, उससे स्क्ष्म यह संसार (पृथिवीमण्डल) है, उससे भी स्क्ष्म ये भिन्न-भिन्नरूपधारी समस्त प्राणी हैं; उनमें भी जो अन्तरात्मा है वह और भी अत्यन्त स्क्ष्म है ॥७४॥ उससे भी परे जो स्क्ष्म आदि विशेषणोंका अविषय आपका कोई अचिन्त्य परमात्मखरूप है उन पुरुषोत्तमरूप आपको नमस्कार है ॥७५॥ हे सर्वात्मन् ! समस्त भूतोंमें आपकी जो गुणाश्रया पराशक्ति है, हे सुरेश्वर ! उस नित्य-खरूपिणीको नमस्कार है॥७६॥ जो वाणी और मनके परे है, विशेषणरहित तथा ज्ञानियोंके ज्ञानसे परिच्लेख है उस स्वतन्त्रा पराशक्तिकी मैं वन्दना करता हूँ॥७०॥

ॐ नमो वासुदेवाय तसै भगवते सदा। व्यतिरिक्तं न यस्यास्ति व्यतिरिक्तोऽखिलस्य यः७८ नमत्तसै नमत्तसै नमत्तसै महात्मने। नाम रूपं न यसैको योऽस्तित्वेनोपलभ्यते ॥७९॥ यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः। अपञ्यन्तः परं रूपं नमस्तसौ महात्मने ॥८०॥ योऽन्तस्तिष्टनशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम्। तं सर्वसाक्षिणं विश्वं नमस्ये परमेश्वरम् ॥८१॥ नमोऽस्तु विष्णवे तसै यस्याभिन्नमिदं जगत्। ध्येयः स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मेऽव्ययः ॥८२॥ च विश्वमक्षरमञ्ययम् । यत्रोतमेतत्त्रोतं आधारभूतः सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः ॥८३॥ ॐ नमो विष्णवे तसौ नमस्तसौ पुनः पुनः । यत्र सर्वे यतः सर्वे यः सर्वं सर्वसंश्रयः ॥८४॥ सर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थितः। मत्तः सर्वमहं सर्वं मिय सर्वं सनातने ॥८५॥ अहमेवाक्षयो नित्यः परमात्मात्मसंश्रयः। ब्रह्मसंज्ञोऽहमेवाग्रे तथान्ते च परः पुमान् ॥८६॥

उँ० उन भगवान् वासुदेवको सदा नमस्कार है, जिनसे अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है तया जो स्वयं सबसे अतिरिक्त (असङ्ग) हैं ॥७८॥ जिनका कोई भी नाम अथवा रूप नहीं है और जो अपनी सत्तामात्रसे ही उपलब्ध होते हैं उन महात्माको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है ॥७९॥ जिनके पर-स्वरूपको न जानते हुए ही देवतागण उनके अवतार-शरीरोंका सम्यक् अर्चन करते हैं उन महात्माको नमस्कार है ॥८०॥ जो ईस्वर सबके अन्तःकरणोंमें स्थित होकर उनके शुमाशुम कर्मोंको देखते हैं उन सर्वसाक्षी विस्वरूप परमेस्वरको मैं नमस्कार करता हूँ ॥८१॥

जिनसे यह जगत् सर्वथा अभिन्न है उन श्रीविष्णुभगवान्को नमस्कार है वे जगत्के आदिकारण और
योगियोंके ध्येय अन्यय हिर मुझपर प्रसन्न हों ॥८२॥
जिनमें यह सम्पूर्ण विश्व ओतप्रोत है वे अक्षर,
अन्यय और सबके आधारमूत हिर मुझपर प्रसन्न
हों ॥८३॥ ॐ जिनमें सब कुछ स्थित है, जिनसे
सब उत्पन्न हुआ है और जो स्वयं सब कुछ तथा
सबके आधार हैं, उन श्रीविष्णुभगवान्को नमस्कार
है, उन्हें वारम्बार नमस्कार है ॥८॥ भगवान्
अनन्त सर्वगामी हैं; अतः वे ही मेरे रूपसे स्थित हैं,
इसिल्ये यह सम्पूर्ण जगत् मुझहीसे हुआ है, मैं ही
यह सब कुछ हूँ और मुझ सनातनमें ही यह सब
स्थित है ॥८५॥ मैं ही अक्षय, नित्य और आत्माधार
परमात्मा हूँ; तथा मैं ही जगत्के आदि और अन्तमें
स्थित ब्रह्मसंज्ञक परमपुरुष हूँ ॥८६॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥



बीसवाँ अध्याय

प्रह्लाद्द्यत भगवत्-स्तुति और भगवान्का आविर्भाव ।

श्रीपराशर उवाच

एवं सञ्चिन्तयन्विष्णुमभेदेनात्मनो द्विज । तन्मयत्वमवाप्याउयं मेने चात्मानमच्युतम् ॥ १ ॥ विससार तथात्मानं नान्यत्किश्चिदजानत । अहमेवाव्ययोऽनन्तः परमात्मेत्यचिन्तयत्।। २ ॥ तस्य तद्भावनायोगात्क्षीणपापस्य वै ऋमात् । श्रुद्धेडन्तः करणे विष्णुस्तस्थौ ज्ञानमयोऽच्युतः ॥३॥ योगप्रभावात्प्रह्लादे जाते विष्णुमयेऽसुरे। चलत्युरगबन्धेस्तेमेंत्रेय त्रुटितं क्षणात् ॥ ४॥ भ्रान्तग्राहगणः सोर्मिर्ययौ श्लोमं महार्णवः । चचाल च मही सर्वी सर्शेलवनकानना ॥ ५॥ स च तं शैलसङ्घातं दैत्यैर्न्यस्तमथोपरि । उत्धिप्य तसात्सिललानिश्रकाम महामतिः ॥ ६॥ दृष्ट्रा च स जगद्भयो गगनाद्युपलक्षणम् । प्रह्लादोऽसीति ससार पुनरात्मानमात्मनि ॥ ७॥ तुष्टाव च पुनर्धीमाननादिं पुरुषोत्तमम्। यतवाकायमानसः ॥ ८॥ एकाग्रमतिरव्यग्रो

प्रहलाद उवाच

ॐ नमः परमार्थार्थ स्थूलस्क्ष्म क्षराक्षर ।

<u>व्यक्ताव्यक्त</u> कलातीत सकलेश निरञ्जन ॥ ९ ॥

<u>गुणाञ्जन गुणाधार निर्गुणात्मन् गुणस्थित</u> ।

मूर्त्तामूर्तमहामूर्ते सक्ष्ममूर्ते स्फुटास्फुट ॥१०॥

करालसौम्यरूपात्मन्विद्याऽविद्यामयाच्युत ।

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विज! इस प्रकार भगवान् विष्णुको अपनेसे अभिन्न चिन्तन करते-करते पूर्ण तन्मयता प्राप्त हो जानेसे उन्होंने अपनेको अच्युत-रूप ही अनुभव किया ॥१॥ वे अपने-आपको भूल गये; उस समय उन्हें श्रीविष्णुभगवान्के अतिरिक्त और कुछ भी प्रतीत न होता था। वस, केवल यही भावना चित्तमें थी कि मैं ही अव्यय और अनन्त परमात्मा हूँ ॥२॥ उस भावनाके योगसे वे क्षीण-पाप हो गये और उनके शुद्ध अन्तःकरणमें ज्ञानस्वरूप अच्युत श्रीविष्णुभगवान् विराजमान हुए ॥३॥

हे मैत्रेय ! इस प्रकार योगवलसे असुर प्रह्लादजीके विष्णुमय हो जानेपर उनके विचलित होनेसे वे नागपाश एक क्षणभरमें ही टूट गये ॥४॥ भ्रमणशील प्राह्मण और तरलतरंगोंसे पूर्ण सम्पूर्ण महासागर क्षुव्य हो गया, तथा पर्वत और वनोपवनोंसे पूर्ण समस्त पृथिवी हिल्ने लगी ॥५॥ तथा महामित प्रह्लादजी अपने ऊपर दैत्योंद्वारा लादे गये उस सम्पूर्ण पर्वत-समृहको दृर फेंककर जलसे वाहर निकल आये ॥६॥ तव आकाशादिरूप जगत्को फिर देखकर उन्हें चित्तमें यह पुनः मान हुआ कि मैं प्रह्लाद हूँ ॥७॥ और उन महाबुद्धिमान्ने मन, वाणी और शरीरके संयमपूर्वक धैर्य धारणकर एकाप्र-चित्तसे पुनः मगवान् अनादि पुरुषोत्तमकी स्तुति की ॥८॥

प्रह्लावृजी कहने लगे-हे परमार्थ ! हे अर्थ (दृश्यरूप)!हे स्थृलसूक्ष्म (जाप्रत्-स्वप्रदृश्यस्वरूप)! हे क्षराक्षर (कार्य-कारणरूप)! हे व्यक्ताव्यक्त (दृश्यादृश्यस्वरूप)! हे कलातीत! हे सकलेक्वर !हे निरञ्जन देव! आपको नमस्कार है ॥९॥ हे गुणोंको अनुरक्षित करनेवाले! हे गुणाधार! हे निर्गुणात्मन्! हे गुणिस्त !हे मृर्त और अमूर्तरूप महामृर्तिमन्! हे स्क्ष्ममृर्ते! हे प्रकाशाप्रकाशस्क्ष्प ! [आपको नमस्कार है]॥१०॥ हे विकराल और सुन्दररूप! हे विद्या और अविद्यामय अच्युत! हे सदसत् (कार्यकारण)

सदसद्र्पसद्भाव सदसद्भावभावन ॥११॥

नित्यानित्यप्रपश्चात्मिष्प्रपश्चामलाश्रित ।

एकानेक नमस्तुभ्यं वासुदेवादिकारण ॥१२॥

यः स्थूलस्क्ष्मः प्रकटप्रकाशो

यः सर्वभूतो न च सर्वभूतः ।

विश्वं यतश्चैतद्विश्वहेतो
र्नमोऽस्तु तसै पुरुषोत्तमाय ॥१३॥

तस्य तचेतसो देवः स्तुतिमित्थं प्रकुर्वतः । आविर्वभूव भगवान् पीताम्बरधरो हरिः ॥१४॥

ससम्भ्रमस्तमालोक्य सम्रत्थायाकुलाक्षरम् । नमोऽस्तु विष्णवेत्येतद् व्याजहारासकृदु द्विज।१५।

श्रीपराशर उवाच

प्रह्लाद उवाच देव प्रपन्नार्तिहर प्रसादं कुरु केशव । अवलोकनदानेन भूयो मां पावयाच्युत ॥१६॥ श्रीमगवानुवाच

कुर्वतस्ते प्रसन्नोऽहं भक्तिमव्यभिचारिणीम् । यथाभिलपितो मत्तः प्रह्लाद व्रियतां वरः ॥१७॥

प्रह्लाद उवाच

नाथ योनिसहस्रेष्ठ येषु येषु त्रजाम्यहम् ।

तेषु तेष्वच्युतामक्तिरच्युतांस्तु सदा त्विय।।१८॥

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।

त्वामनुसारतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥१९॥

श्रीभगवानुवाच

मयि भक्तिस्तवास्त्येव भूयोऽप्येवं भविष्यति । वरस्तु मत्तः प्रह्लाद् त्रियतां यस्तवेप्सितः ॥२०॥

पर्या अलाव । अथता अस्तवाप्सतः ॥२०॥ प्रह्लाद जनाच मिय द्वेषाजुनन्घोऽभृत्संस्ततानुद्यने सन्व descrite रूप जगत्के उद्भवस्थान और सदसज्जगत्के पालक ! [आपको नमस्कार है] ॥११॥ हे नित्यानित्य (आकाश-घटादिरूप) प्रपन्नात्मन् ! हे प्रपन्नसे पृथक् रहनेवाले ! हे ज्ञानियोंके आश्रयरूप ! हे एकानेकरूप आदिकारण वासुदेव ! [आपको नमस्कार है] ॥१२॥ जो स्थूल-सूक्ष्मरूप और स्फुट-प्रकाशमय हैं, जो अधिष्ठानरूपसे सर्वभूतस्वरूप तथापि वस्तुतः सम्पूर्ण भूतादिसे परे हैं, विश्वके कारण न होनेपर भी जिनसे यह समस्त विश्व उत्पन्न हुआ है; उन पुरुषोत्तम भगवान्को नमस्कार है ॥१३॥

श्रीपराशरजी बोल्ले-उनके इस प्रकार तन्मयता-पूर्वक स्तुति करनेपर पीताम्बरधारी देवाधिदेव मगवान् हरि प्रकट हुए ॥ १४ ॥ हे द्विज ! उन्हें सहसा प्रकट हुए देख वे खड़े हो गये और गद्गद वाणीसे 'विष्णुमगवान्को नमस्कार है ! विष्णुमगवान्को नमस्कार है !' ऐसा वारम्बार कहने लगे ॥ १५ ॥

प्रहादजी बोले-हे शरणागत-दुःखहारी श्रीकेशव-देव! प्रसन्न होइये। हे अच्युत! अपने पुण्य-दर्शनोंसे मुझे फिर भी पवित्र कीजिये॥ १६॥

श्रीभगवान् बोले-हे प्रह्लाद ! मैं तेरी अनन्य-मित्तसे अति प्रसन्न हूँ; तुझे जिस वरकी इच्छा हो माँग ले॥ १७॥

प्रहाद्जी बोले-हे नाथ ! सहस्रों योनियोंमेंसे मैं जिस-जिसमें भी जाऊँ उसी-उसीमें, हे अच्युत ! आपमें मेरी सर्वदा अक्षुण्ण भक्ति रहे ॥ १८ ॥ अविवेकी प्रश्नोंकी विषयोंमें जैसी अविचल प्रीति होती है वैसी ही आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदयसे कभी दूर न हो॥ १९ ॥

श्रीमगवान् बोले-हे प्रह्लाद ! मुझमें तो तेरी मिक्त है ही और आगे भी ऐसी ही रहेगी; किन्तु इसके अतिरिक्त भी तुझे और जिस वरकी इच्छा हो मुझसे माँग ले ॥ २,०॥

प्रहादजी बोले-हे देव ! आपकी स्तुतिमें प्रवृत्त द्वेपाजुवन्थोऽभूत्संस्तुतालुद्धते त्व क्षेव्धार Collहोनेसे Ne मेरे elhi पिताके ed चित्तमें भीरें प्रति जो द्वेप मित्पतुस्तत्कृतं पापं देव तस्य प्रणक्यतु ॥२१॥
शक्षाणि पातितान्यङ्गे क्षिप्तो यचाप्रिसंहतौ ।
दंशितश्रोरगैर्द्तं यद्विषं मम भोजने ॥२२॥
वद्धा सम्रद्रे यत्क्षिप्तो यचितोऽस्मि शिलोचयैः ।
अन्यानि चाप्यसाधूनि यानि पित्रा कृतानि मे॥२३॥
त्विय भक्तिमतो द्वेपाद्यं तत्सम्भवं च यत् ।
त्वत्प्रसादात्प्रभो सद्यस्तेन मुच्येत मे पिता ॥२४॥
श्रीभगवानुवाच

प्रह्लाद सर्वमेतत्ते मत्प्रसादाद्भविष्यति । अन्यच ते वरं दक्षि व्रियतामसुरात्मज ॥२५॥ प्रह्लाद् उनाच

कृतकृत्योऽसि भगवन्वरेणानेन यन्त्रयि । भवित्री त्वत्प्रसादेन भक्तिरव्यभिचारिणी ॥२६॥ धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता । समस्तजगतां मुले यस्य भक्तिः स्थिरा त्विय ॥२०॥

श्रीमगवानुवाच यथा ते निश्वलं चेतो मिय भक्तिसमन्वितम् । तथा त्वं मत्प्रसादेन निर्वाणम्परमाप्स्यसि ॥२८॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्त्वान्तर्द्धे विष्णुस्तस्य मैत्रेय पश्यतः ।
स चापि पुनरागम्य ववन्दे चरणौ पितुः ॥२९॥
तं पिता मूध्न्युपाघ्राय परिष्वज्य च पीडितम् ।
जीवसीत्याह वत्सेति बाष्पार्द्रनयनो द्विज ॥३०॥
प्रीतिमांश्राऽभवत्तसिम्ननुतापी महासुरः ।
गुरुपित्रोश्रकारैवं शुश्रूषां सोऽपि धर्मवित् ॥३१॥

हुआ है उन्हें उससे जो पाप लगा है वह नष्ट हो जाय ॥ २१ ॥ इसके अतिरिक्त [उनकी आज्ञासे] मेरे शरीरपर जो शस्त्राघात किये गये—मुझे अग्नि-समृहमें डाला गया, सपोंसे कटवाया गया मोजनमें विष दिया गया, वाँघकर समुद्रमें डाला गया, शिलाओंसे दवाया गया तथा और भी जो-जो दुर्व्यवहार पिताजीने मेरे साथ किये हैं, वे सब आपमें मिक्त रखनेवाले पुरुषके प्रति द्वेष होनेसे, उन्हें उनके कारण जो पाप लगा है, हे प्रमो! आपकी कृपासे मेरे पिता उससे शीघ्र ही मुक्त हो जायँ॥ २२—२४॥

श्रीभगवान बोले-हे प्रह्लाद ! मेरी कृपासे तुम्हारी ये सब इच्छाएँ पूर्ण होंगी । हे असुरकुमार ! मैं तुमको एक वर और भी देता हूँ, तुम्हें जो इच्छा हो माँग लो ॥ २५॥

प्रहादनी बोले-हे भगवन् ! मैं तो आपके इस वरसे ही कृतकृत्य हो गया कि आपकी कृपासे आपमें मेरी निरन्तर अविचल भक्ति रहेगी ॥ २६ ॥ हे प्रमो ! सम्पूर्ण जगत्के कारणरूप आपमें जिसकी निश्चल भक्ति है, मुक्ति भी उसकी मुट्टीमें रहती है, फिर धर्म, अर्थ, कामसे तो उसे लेना ही क्या है?॥ २७॥

श्रीभगवान् बोल्ले-हे प्रह्लाद ! मेरी मिक्तसे युक्त तेरा चित्त जैसा निश्चल है उसके कारण द् मेरी कृपासे परम निर्वाणपद प्राप्त करेगा ॥ २८॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! ऐसा कह मगवान् उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये; और उन्होंने भी फिर आकर अपने पिताके चरणोंकी वन्दना की ॥ २९ ॥ हे द्विज ! तव पिता हिरण्यकशिपुने, जिसे नाना प्रकारसे पीडित किया था उस पुत्रका शिर स्प्रकर, आँखोंमें आँस् भरकर कहा—'वेटा, जीता तो है !' ॥३० ॥ वह महान् असुर अपने कियेपर पछताकर फिर प्रह्लादसे प्रेम करने छगा और इसी प्रकार धर्मन्न प्रह्लादजी भी अपने गुरु और माता-पिताकी सेवा-शुश्रुषा करने छगे ॥ ३१ ॥

नीते नरसिंहस्तरूपिणा । X पितर्श्वपरति विष्णुना सोऽपि दैत्यानां मैत्रेयाभूत्पतिस्ततः॥३२॥ ततो राज्यद्यतिं प्राप्य कर्मशुद्धिकरीं द्विज । पुत्रपौत्रांश्र सुबहूनवाप्यैश्वर्यमेव च ॥३३॥ श्लीणाधिकारः स यदा पुण्यपापविवर्जितः । तदा स भगवद्धचानात्परं निर्वाणमासवान् ॥३४॥ एवं प्रभावो दैत्योऽसौ मैत्रेयासीन्महामतिः। प्रह्लादो भगवद्भक्तो यं त्वं मामनुष्ट्चास ॥३५॥ यस्त्वेतचरितं तस्य प्रह्लादस्य महात्मनः। शृणोति तस्य पापानि सद्यो गच्छन्ति सङ्क्रयम्।३६। अहोरात्रकृतं पापं प्रह्लादचरितं नरः। शृष्वन पठंश्र मैत्रेय व्यपोहति न संशयः ॥३७॥ पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यामथ वा पठन् । द्वाद्रयां वा तदामोति गोप्रदानफलं द्विज ॥३८॥ प्रह्वादं सकलापत्सु यथा रक्षितवान्हरिः। तथा रक्षति यस्तस्य शृणोति चरितं सदा ॥३९॥ उनका चरित्र सुनता है ॥ ३९॥

हे मैत्रैय ! तदनन्तर नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुद्वारा पिताके मारे जानेपर वे दैत्योंके राजा हुए॥३२॥ हे द्विज ! फिर प्रार्व्यक्षयकारिणी राज्यलक्ष्मी, बहुत-से पुत्र-पौत्रादि तथा परम ऐश्वर्य पाकर, कर्माधिकारके क्षीण होनेपर पुण्य-पापसे रहित हो भगवान्का ध्यान करते हुए उन्होंने परम निर्वाणपद प्राप्त किया ॥ ३३-३४ ॥

हे मैत्रेय ! जिनके विषयमें तुमने पूछा था वे परम भगवद्भक्त महामति दैत्यप्रवर प्रह्लादजी ऐसे प्रभावशाली हुए ॥ ३५ ॥ उन महात्मा प्रह्लादजीके इस चरित्रको जो पुरुष सुनता है उसके पाप शीघ ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ हे मैत्रेय ! इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य प्रह्लाद-चरित्रके सुनने या पढ़नेसे दिन-रातके (निरन्तर) किये हुए पापसे अवस्य छूट जाता है ॥ ३७ ॥ हे द्विज ! पूर्णिमा, अमावास्या, अष्टमी अथवा द्वादशीको इसे पढ़नेसे मनुष्य-को गोदानका फल मिलता है ।। ३८ ।। जिस प्रकार भगवान्ने प्रह्लादजीकी सम्पूर्ण आपत्तियोंसे रक्षा की थी उसी प्रकार वे सर्वदा उसकी भी रक्षा करते हैं जो

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इकीसवाँ अध्याय

कश्यपजीकी अन्य स्त्रियोंके वंश एवं मरुद्रणकी उत्पत्तिका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

संह्वादपुत्र आयुष्माञ्छिविबीष्कल एव च। विरोचनस्तु प्राह्वादिर्विलर्जिञ्चे विरोचनात् ॥ १॥ वलेः पुत्रशतं त्वासीद्वाणज्येष्टं महासुने । हिरण्याक्षसुताश्रासन्सर्व एव महाबलाः॥२॥ उत्करः शकुनिश्चेव भृतसन्तापनस्तथा। महानामो महावाहुः कालनाभस्तथापरः॥ ३॥ अमवन्दनुपुत्राश्च द्विमुद्धी शम्बरत्तथा। अयोग्रुखः शङ्कश्चिराः कपिलः शङ्करस्तथा ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले-संह्लादके पुत्र आयुष्मान् शिबि और बाष्कल थे तथा प्रह्लादके पुत्र विरोचन थे और विरोचनसे बळिका जन्म हुआ ।। १ ।। हे महा-मुने ! बलिके सौ पुत्रथे, जिनमें बाणासुर सबसे बड़ा था । हिरण्याक्षके पुत्र उत्कुर, शकुनि, भूतसन्तापन, महानाम, महाबाहु तथा कालनाम आदि समी महाबळवान् थे ॥ २-३ ॥

(करयपजीकी एक दूसरी स्त्री) दनुके पुत्र द्विमूर्घा, शम्बर, अयोमुख, शंकुशिरा, कपिछ, शंकर, एकचको महाबाहुस्तारकश्च महाबलः । hastri Colleman, we Iमहाबाहु, itized तीरकी, महाबल, समीज्

स्वर्भानुर्दृषपर्वा च पुलोमश्र महाबलः ॥ ५ ॥ एते दनोः सुताः ख्याता विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ।६। स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । उपदानी हयशिराः प्रख्याता वरकन्यकाः ॥ ७ ॥ वैश्वानरसुते चोभे पुलोमा कालका तथा। उभे सुते महाभागे मारीचेस्तु परिग्रहः ॥ ८॥ ताभ्यां पुत्रसहस्राणि पष्टिदीनवसत्तमाः। पौलोमाः कालकेयाश्च मारीचतनयाः स्पृताः ॥ ९ ॥ ततोऽपरे महावीर्या दारुणास्त्वतिनिर्धृणाः । सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा ॥१०॥ व्यंशः शल्यश्र बलवान् नभश्रेव महाबलः । वातापी नम्रचिश्रेव इल्वलः खसूमस्तथा ॥११॥ अन्धको नरकश्चेव कालनाभस्तथैव च। स्वर्भातुश्च महावीर्यो वक्त्रयोधी महासुरः ॥१२॥ एते वै दानवाः श्रेष्ठा दुनुवंशविवर्द्धनाः । एतेषां पुत्रपौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥१३॥ प्रह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले । समुत्पनाः सुमहता तपसा भावितात्मनः ॥१४॥ षद् सुताः सुमहासत्त्वास्ताम्रायाः परिकीर्त्तेताः । ग्रकी रयेनी च भासी च सुग्रीवीशुचिगृद्धिकाः१५ शुकानजनयदुल्कप्रत्युल्किकान्। श्रकी इयेनी इयेनांस्तथा भासी भासान्गृद्धांश्र गृद्ध्रचपि ग्रुच्यौदकान्पक्षिगणान्सुग्रीवी तु व्यजायत । अक्वानुष्ट्रान्गर्दभांश्र ताम्रावंशः प्रकीर्तितः ॥१७॥ विनतायास्त द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुडारुणौ । सुपर्णः पततां श्रेष्ठो दारुणः पन्नगाश्चनः ॥१८॥ सुरसायां सहस्रं तु सर्पाणामितौजसाम्। अनेकशिरसां ब्रह्मन् खेचराणां महात्मनाम् ॥१९॥ काद्रवेयास्तु वलिनः सहस्रमितौजसः। सुपर्णवश्चा ब्रह्मन् जिल्लरे नैकमस्तकाः ॥२०॥

वृषपर्वी, महाबली पुलोम और परमपराक्रमी विप्र-चित्ति थे। ये सब दनुके पुत्र विख्यात हैं।। ४-६॥ खर्मानुकी कन्या प्रभा थी तथा शर्मिष्टा, उपदानी और हयशिरा-ये वृषपर्वाकी परम सुन्दरी कन्याएँ विख्यात हैं ॥ ७ ॥ वैश्वानरकी पुलोमा और कालका दो पुत्रियाँ थीं। हे महाभाग ! वे दोनों कन्याएँ मरीचि-नन्दन कश्यपजीकी भार्या हुई ॥ ८॥ उनके पुत्र साठ हजार दानव-श्रेष्ठ हुए। मरीचि-नन्दन करयपजीके वे सभी पुत्र पौछोम और कालकेय कहलाये ॥ ९ ॥ इनके सिवा विप्रचित्तिके सिंहिकाके गर्भसे और भी बहुत-से महावलवान्, भयंकर और अतिकर पुत्र उत्पन्न हुए ।। १० ।। वे व्यंश, शल्य, वलवान् नभ, महाबली वातापी, नमुचि, इल्वल, खसूम, अन्धक, नरक, कालनाभ, महावीर खर्भानु और महादैत्य वक्त्रयोधी थे ॥ ११-१२ ॥ ये सव दानव-श्रेष्ठ दनुके वंशको बढ़ानेवाले थे। इनके और भी सैकड़ों-हजारों पुत्र-पौत्रादि हुए ॥ १३ ॥ महान् तपस्याद्वारा आत्मज्ञानसम्पन्न दैत्यवर प्रह्लादजीके कुलमें निवातकवचं नामक दैत्य उत्पन्न हुए॥ १४॥

करयपजीकी स्त्री ताम्राकी शुकी, रयेनी, भासी, सुप्रीवी, शुचि और गृद्धिका-ये छः अति प्रभाव-शालिनी कन्याएँ कही जाती हैं ॥ १५॥ शुकीसे ग्रुक, उल्लक एवं उल्लकोंके प्रतिपक्षी काक आदि उत्पन्न हुए तथा स्येनीसे स्येन (बाज), भासीसे भास और गृद्धि कासे गृद्धोंका जन्म हुआ ॥१६॥ शुचिसे जलके पक्षिगण और सुप्रीवीसे अश्व, उष्ट्र और गर्दभोंकी उत्पत्ति हुई । इस प्रकार यह ताम्राका वंश कहा जाता है || १७ |। विनताके गरुड और अरुण ये दो पुत्र विख्यात हैं। इनमें पक्षियों में श्रेष्ठ सुपर्ण (गरुडजी) अति भयंकर और सर्पोंको खानेवाले हैं ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! सुरसासे सहस्रों सर्प उत्पन्न हुए जो बड़े ही प्रभावशाली, आकाशमें विचरनेवाले, अनेक शिरोंवाले और बड़े विशालकाय थे ॥ १९ ॥ और कदके पुत्र भी महाबछी और अमित तेजस्वी अनेक शिरवाले सहस्रों सर्प ही हुए जो गरुडजीके वशवर्ती थे ॥२०॥

तेषां प्रधानभूतास्तु शेषवासुकितक्षकाः। शृङ्खश्वेतो महापद्मः कम्यलाश्वतरौ तथा ॥२१॥ एलापुत्रस्तथा नागः कर्कोटकधनञ्जयौ । एते चान्ये च बहवो दन्दश्रुका विषोल्वणाः ॥२२॥ गणं क्रोधवशं विद्धि तस्याः सर्वे च दंष्ट्रिणः । स्यलजाः पश्चिणोऽञ्जाश्च दारुणाः पिशिताशनाः२३ क्रोधा तु जनयामास पिशाचांश्र महावलान् । गास्त वै जनयामास सुरिममहिपांस्तथा। इरावृक्षलतावल्लीस्त्रणजातीश्र सर्वजः ॥२४॥ खसा तु यक्षरक्षांसि म्रनिरप्सरसस्तथा। अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्वान्समजीजनत् ।।२५।। एते कश्यपदायादाः कीर्त्तिताः स्थाणुजङ्गमाः । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥२६॥ एप मन्वन्तरे सर्गो ब्रह्मन्खारोचिये स्मृतः ॥२७॥ वैवस्तते च महति वारुणे वितते कृतौ । जुह्वानस ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ॥२८॥ पूर्व यत्र तु सप्तर्पानुत्पन्नान्सप्तमानसान् । पितृत्वे कल्पयामास खयमेव पितामहः। गन्धर्वभोगिदेवानां दानवानां च सत्तम ॥२९॥ दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोपयामास काश्यपम् । तया चाराधितः सम्यकाश्यपस्तपतां वरः ॥३०॥ वरेणच्छन्दयामास सा च वत्रे ततो वरम्। पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थमितौजसम् ॥३१॥ स च तसे वरं प्रादाद्भार्याये मुनिसत्तमः। दस्ता च वरमत्युग्रं कश्यपस्ताम्रुवाच ह् ॥३२॥ शकं पुत्रो निहन्ता ते यदि गर्भ शरच्छतम्। समाहितातिप्रयता शौचिनी धारियण्यसि ॥३३॥

उनमेंसे शेष, वासुकि, तक्षक, शंखरवेत, महापदा, नाग, कर्कोटक, अश्वतर. एलापुत्र, कम्बल, धनस्त्रय तथा और भी अनेकों उप्र विषधर एवं काटने-वाले सर्प प्रधान हैं॥ २१-२२॥ क्रोधवशाके पत्र क्रोध-वशगण हैं। वे सभी बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले, भयंकर और कचा मांस खानेवाले जलचर, स्थलचर एवं पक्षिगण हैं ॥ २३ ॥ महावली पिशाचोंको भी क्रोधा-ने ही जन्म दिया है। सुरिमसे गौ और महिष आदिकी उत्पत्ति हुई तथा इरासे वृक्ष, छता, बेल और सव प्रकारके तृण उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥ खसाने यक्ष और राक्षसोंको, मुनिने अप्सराओंको तथा अरिष्टाने अति समर्थ गन्धर्वोंको जन्म दिया॥ २५॥ ये सत्र स्थावर-जंगम कस्यपजीकी सन्तान हुए। इनके और भी सैकड़ों-हजारों पुत्र-पौत्रादि हुए ॥२६॥ हे ब्रह्मन् ! यह खारोचिष-मन्वन्तरकी सृष्टिका वर्णन कहा जाता है ॥ २७ ॥ वैवस्तत-मन्वन्तरके आरम्भमें महान् वारुण यज्ञ हुआ, उसमें ब्रह्माजी होता थे, अब मैं उनकी प्रजाका वर्णन करता हूँ ॥ २८॥

हे साधुश्रेष्ठ ! पूर्व-मन्वन्तरमें जो सप्तिर्धिगण खयं व्रह्माजीके मानसपुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे, उन्हींको ब्रह्माजीने इस कल्पमें गन्धर्व, नाग, देव और दान-वादिके पितृरूपसे निश्चित किया ॥२९॥ पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर दितिने कश्यपजीको प्रसन्न किया । उसकी सम्यक् आराधनासे सन्तुष्ट हो तपित्वयोंमें श्रेष्ठ कश्यपजीने उसे वर देकर प्रसन्न किया । उस समय उसने इन्द्रके वध करनेमें समर्थ एक अति तेजस्ती पुत्रका वर माँगा ॥ ३०-३१॥ मुनिश्रेष्ठ कश्यपजीने अपनी मार्या दितिको वह वर दिया और उस अति उम्र वरको देते हुए वे उससे बोळे—॥३२॥ "यदि तुम मग्वान्के ध्यानमें तत्पर रहकर अपना गर्म शौच अरे संयमपूर्वक सौ वर्षतक धारण कर सकोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्रको मारनेवाळा होगा" ॥३३॥

क शोच आदि नियम मस्त्यपुरायामें इस प्रकार बतलाये गये हैं— 'सन्ध्यायां नैव भोकव्यं गर्भिण्या वरवर्णिन । न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा ॥ वर्भयेत् कर्लहं छोके गात्रमङ्गं तथैव च । नोन्मुककेशी तिष्ठेच नास्युजिन्धः स्थात् कृद्श्यक्ष्णाः CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delita इत्येवम्रुक्त्वा तां देवीं सङ्गतः कश्यपो मुनिः। दधार सा च तं गर्भं सम्यक्छौचसमन्विता ॥३४॥

गर्भमात्मवधार्थाय ज्ञात्वा तं मघवानि ।

शुश्रुषुस्तामथागच्छद्विनयादमराधिपः ॥३५॥

तस्याश्रेवान्तरप्रेप्सुरतिष्ठत्पाकशासनः ।

ऊने वर्पशते चास्या ददर्शान्तरमात्मना॥३६॥

अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत् ।

निद्रां चाहारयामास तस्याः कुक्षि प्रविश्य सः।३७॥

वज्रपाणिर्महागर्भं चिच्छेदाथ स सप्तधा ।

सम्पीडचमानो वज्रेण स रुरोदातिदारुणम् ॥३८॥

मा रोदीरिति तं शक्तः पुनः पुनरभाषत ।

सोऽभवत्सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रः कुपितः पुनः ॥३९॥

एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रणारिविदारिणा ।

मरुतो नाम देवास्ते वभूवुरतिवेगिनः ॥४०॥

यदुक्तं वै भगवता तेनैव मरुतोऽभवन् ।

देवा एकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥४१॥

ऐसा कहकर मुनि कश्यपजीने उस देवीसे संगमन किया और उसने बड़े शौचपूर्वक रहते हुए वह गर्भ धारण किया ॥३॥

उस गर्भको अपने वधका कारण जान देवराज इन्द्र भी विनयपूर्वक उसकी सेवा करनेके छिये आ गये ।।३५।। उसके शौचादिमें कभी कोई अन्तर पड़े-यही देखनेकी इच्छासे इन्द्र वहाँ हर समय उपिथत रहते थे। अन्तमें सौ वर्षमें कुछ ही कमी रहनेपर उन्होंने एक अन्तर देख ही लिया।। ३६।। एक दिन दिति विना चरण-शुद्धि किये ही अपनी शय्यापर छेट गयी। उस समय निदाने उसे वेर लिया । तव इन्द्र हाथमें वज लेकर उसकी कुक्षिमें घुस गये और उस महागर्भके सात टुकड़े कर डाले। इस प्रकार वज़से पीडित होनेसे वह गर्भ जोर-जोरसे रोने छगा ।।३७-३८।। इन्द्रने उससे पुन:-पुन: कहा कि 'मत रो' । किन्तु जब वह गर्भ सात भागोंमें विभक्त हो गया, शिर फिर भी न मरा] तो इन्द्रने अत्यन्त कुपित हो अपने शत्र-विनाशक वज्रसे एक-एकके सात-सात टुकड़े और कर दिये । वे ही अति वेगवान् मरुत् नामक देवता हुए ।।३९-४०।। भगवान् इन्द्रने जो उससे कहा या कि 'मा रोदी:' (मत रो) इसीलिये वे मरुत् कहलाये। ये उनचास मरुद्रण इन्द्रके सहायक देवता हुए ॥४१॥

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रयमें ऽशे एकविंशोऽध्यायः।।२१।।



हे सुन्दरि ! गर्सिणी स्त्रीको चाहिये कि सार्यकालमें भोजन न करे, दृक्षोंके नीचे न जाय और न वहाँ टहरे ही तथा लोगोंके साथ कलह और ग्रॅंगड़ाई जेना लोड़ दे, कभी केश खुळा न रक्खे और न अपवित्र ही रहे।

तथा भागवतमें भी कहा है—'न हिंस्यात्सर्वभूतानि न शपेतानृतं वदेत्' इस्यादि । अर्थाद प्राणियोंकी हिंसा न करे, किसीको बुरा-भछा न कहे घोर कभी झूठ न बोले ।

बाईसवाँ अध्याय

विष्णुभगवान्की विभूति और जगत्की व्यवस्थाका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

यदाभिषिक्तः स पृथुः पूर्व राज्ये महर्षिभिः। ततः क्रमेण राज्यानि ददौ लोकपितामहः ॥ १ ॥ नक्षत्रग्रहविप्राणां वीरुधां चाप्यशेषतः। सोमं राज्ये दधह्रह्या यज्ञानां तपसामपि ॥ २ ॥ राज्ञां वैश्रवणं राज्ये जलानां वरुणं तथा। आदित्यानां पतिं विष्णुं वस्नामथ पावकम् ॥ ३ ॥ प्रजापतीनां दक्षं त वासवं मरुतामपि। दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमिष्यं ददौ ॥ ४ ॥ पितृणां धर्मराजं तं यमं राज्येऽभ्यपेचयत् । ऐरावतं गजेन्द्राणामशेषाणां पतिं ददौ॥ ५॥ पतित्रणां तु गरुडं देवानामपि वासवस् । उचैः श्रवसमश्वानां वृषभं तु गवामपि ॥ ६॥ मृगाणां चैव सर्वेषां राज्ये सिंहं ददौ प्रभः। शेषं तु दन्दश्कानामकरोत्पतिमव्ययः॥ ७॥ हिमालयं स्थावराणां मुनीनां कपिलं मुनिम्। नितनां दंष्ट्रिणां चैव सृगाणां व्याघ्रमीक्वरस्।। ८।। वनस्पतीनां राजानं प्रश्नमेवाभ्यपेचयत्। 'एवमेवान्यजातीनां प्राधान्येनाकरोत्प्रभून्।। ९।। एवं विभज्य राज्यानि दिशां पालाननन्तरम् । प्रजापतिपतिर्त्रह्मा स्थापयामास सर्वतः ॥१०॥ पूर्वसां दिशि राजानं वैराजस्य प्रजापतेः। दिशापालं सुघन्वानं सुतं वै सोऽभ्यपेचयत् ॥११॥ दक्षिणस्यां दिशि तथा कर्दमस्य प्रजापतेः। पुत्रं शङ्कपदं नाम राजानं सोऽम्यवेचयत् ॥१२॥ पश्चिमस्यां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् । केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यपेचयत् ॥१३॥ तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः।

श्रीपराशरजी बोले-पूर्वकालमें महर्षियोंने जब महाराज पृथुको राज्यपदपर अभिषिक्त किया तो लोक-पितामह श्रीब्रह्माजीने भी क्रमसे राज्योंका बँटवारा किया ।।१।। ब्रह्माजीने नक्षत्र, ग्रह, ब्राह्मण, सम्पूर्ण वनस्पति और यज्ञ तथा तप आदिके राज्यपर चन्द्रमाको नियुक्त किया ।।२।। इसी प्रकार विश्रवाके पुत्र कुवेरजीको राजाओंका, वरुणको जलोंका, विष्णुको आदित्योंका और अग्निको वसुगणोंका अधिपति बनाया ।।३।। दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्र-को मरुद्रणका, तथा प्रह्लादजीको दैत्य और दानवींका आधिपत्य दिया ।।४।। पितृगणके राज्यपदपर धर्मराज यमको अभिषिक्त किया और सम्पूर्ण गजराजोंका स्वामित्व ऐरावतको दिया ॥५॥ गरुडको पक्षियोंका, इन्द्रको देवताओंका, उच्चैःश्रवाको घोडोंका वृषभको गौओंका अधिपति बनाया ।। ६ ।। प्रम ब्रह्माजीने समस्त मृगों (वन्यपशुओं) का राज्य सिंहको दिया और सर्पोका स्वामी शेषनागको वनाया ।।७।। स्थावरोंका स्वामी हिमालयको, मुनि-जनोंका कपिछदेवजीको और नख तथा दाढ्वाछे मृगगणका राजा ब्याघ (बाघ) को बनाया।। ८।। तथा प्रक्ष (पाकर) को वनस्पतियोंका राजा किया। इसी प्रकार ब्रह्माजीने और-और जातियोंके प्राधान्यकी भी व्यवस्था की ॥९॥

प्लं विभज्य राज्यानि दिशां पालाननन्तरम् ।
प्रजापतिपतिर्वक्षाः स्थापयामास सर्वतः ॥१०॥
पूर्वस्यां दिशि राजानं वैराजस्य प्रजापतेः ।
दिशापालं सुधन्वानं सुतं वै सोऽभ्यपेचयत् ॥११॥
दक्षिणस्यां दिशि तथा कर्दमस्य प्रजापतेः ।
पुत्रं शक्कपदं नाम राजानं सोऽभ्यपेचयत् ॥१२॥
पश्चिमस्यां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ।
केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यपेचयत् ॥१३॥
केतुमन्तं महात्मानं केतुमान्को उन्होंने पश्चिम-विक्रः क्रित्मा ।१३॥ क्रे आज्ञतकः सात द्वीप और

तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। यथाप्रदेशमद्यापि धर्मतः परिपाल्यते ॥१५॥ एते सर्वे प्रवृत्तस्य स्थितौ विष्णोर्महात्मनः । विभूतिभूता राजानो ये चान्ये मुनिसत्तम ॥१६॥ ये भविष्यन्ति ये भूताः सर्वे भूतेश्वरा द्विज । ते सर्वे सर्वभूतस्य विष्णोरंशा द्विजोत्तम ॥१७॥ ये तु देवाधिपतयो ये च दैत्याधिपास्तथा। दानवानां च ये नाथा ये नाथाः पिश्चिताश्चिनाम्।। पश्नां ये च पतयः पतयो ये च पक्षिणाम् । मनुष्याणां च सर्पाणां नागानामधिपाश्च ये ।।१९॥ दृक्षाणां पर्वतानां च ग्रहाणां चापि येऽधिपाः। अतीता वर्त्तमानाश्च ये भविष्यन्ति चापरे । ते सर्वे सर्वभूतस्य विष्णोरंशसमुद्भवाः ॥२०॥ न हि पालनसामर्थ्यमृते सर्वेश्वरं हरिम्। स्थितं स्थितौ महाप्राज्ञ भवत्यन्यस्य कस्यचित्।।२१।। सुजत्येप जगत्सृष्टी स्थितौ पाति सनातनः । हन्ति चैवान्तकत्वेन रजःसत्त्वादिसंश्रयः ॥२२॥ चतुर्विभागः संसृष्टौ चतुर्धा संस्थितः स्थितौ । प्रलयं च करोत्यन्ते चतुर्भेदो जनार्दनः ॥२३॥ एकेनांशेन ब्रह्मासौ भवत्यव्यक्तमूर्तिमान्। मरीचिमिश्राः पतयः प्रजानां चान्यभागशः॥२४॥ कालस्तृतीयस्तस्यांशः सर्वभृतानि चापरः। इत्थं चतुर्घा संसृष्टौ वर्त्ततेऽसौ रजोगुणः ॥२५॥ एकांशेनास्थितो विष्णुः करोति प्रतिपालनम् । मन्वादिरूपश्चान्येन कालरूपोऽपरेण च ॥२६॥ सर्वभृतेषु चान्येन संस्थितः कुरुते स्थितिम्। सत्त्वं गुणं समाश्रित्य जगतः पुरुषोत्तमः ॥२७॥ आश्रित्य तमसो वृत्तिमन्तकाले तथा पुनः । रुद्रखरूपो भगवानेकांशेन भवत्यजः ॥२८॥ अग्न्यन्तकादिरूपेण भागेनान्येन वर्त्तते।

अनेको नगरोंसे युक्त इस सम्पूर्ण पृथिवीका अपने-अपनें विभागानुसार धर्मपूर्वक पालन करते हैं ॥१५॥

हे मनिसत्तम ! ये तथा अन्य भी जो सम्पूर्ण राजालोग हैं वे सभी विस्वके पालनमें प्रवृत्त परमात्मा श्रीविष्णुभगवान्के विभूतिरूप हैं॥१६॥ हे द्विजोत्तम! जो-जो भूताधिपति पहले हो गये हैं और जो-जो आगे होंगे वे सभी सर्वभूत भगवान् विष्णुके अंश हैं ॥१७॥ जो-जो भी देवताओं दैत्यों, दानवों, और मांसभोजियोंके अधिपति हैं, जो-जो पशुओं, पक्षियों, मनुष्यों, सपीं और नागोंके अधिनायक हैं, जो-जो वृक्षों, पर्वतों और प्रहोंके खामी हैं तथा और भी भूत, भविष्यत एवं वर्तमानकालीन जितने भूतेस्वर हैं वे सभी सर्वभूत भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं ॥ १८-२०॥ हे महाप्राज्ञ ! सृष्टिको पालन-कार्यमें प्रवृत्त सर्वेद्वर श्रीहरिको छोड़कर और किसीमें भी पालन करनेकी शक्ति नहीं है ॥ २१ ॥ रजः और सत्त्वादि गुणोंके आश्रयसे वे सनातन प्रभु ही जगत्की रचनाके समय रचना करते हैं, स्थितिके समय पालन करते हैं और अन्तसमयमें कालकपसे संहार करते हैं ॥२२॥

वे जनार्दन चार विभागसे सृष्टिके और चार विभागसे ही स्थितिके समय रहते हैं तथा चार रूप धारण करके ही अन्तमें प्रख्य करते हैं ॥२३॥ एक अंशसे वे अव्यक्तखरूप ब्रह्मा होते हैं, दूसरे अंशसे मरीचि आदि प्रजापति होते हैं, उनका तीसरा अंश काल है और चौथा सम्पूर्ण प्राणी । इस प्रकार वे रजोगुणविशिष्ट होकर चार प्रकारसे सृष्टिके समय स्थित होते हैं ॥२४-२५॥ फिर वे पुरुषोत्तम सत्त्वगुणका आश्रय लेकर जगत्की स्थिति करते हैं। उस समय वे एक अंशसे विष्णु होकर पाछन करते हैं, दूसरे अंशसे मनु आदि होते हैं तथा तीसरे अंशसे काल और चौथेसे सर्वभूतोंमें स्थित होते हैं ॥२६-२७॥ तथा अन्तकालमें वे अजन्मा भगवान् तमोगुणकी वृत्तिका आश्रय छे एक अंशसे रुद्ररूप दृसरे भागसे अग्नि और अन्तकादि रूप, तीसरेसे काल्रूप और कालखरूपो भागो यस्सर्वभूतानि चापरः ॥२९॥ चौथेसे सम्पूर्ण भूतखरूप हो जाते हैं ॥२८-२९॥
CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

विनाशं कुर्वतस्तस्य चतुर्द्धेवं महात्मनः। विभागकल्पना ब्रह्मन् कथ्यते सार्वकालिकी।।३०।। ब्रह्मा दक्षादयः कालस्तथैवाखिलजन्तवः। विभूतयो हरेरेता जगतः सृष्टिहेतवः ॥३१॥ विष्णुर्मन्वाद्यः कालः सर्वभृतानि च द्विज । स्थितेर्निमित्तभृतस्य विष्णोरेता विभृतयः ॥३२॥ रुद्रः कालान्तकाद्याश्च समस्ताश्चेव जन्तवः। चतुर्घा प्रलयायैता जनार्दनविभूतयः ॥३३॥ जगदादौ तथा मध्ये सृष्टिराप्रलयाद्द्रिज । धात्रा मरीचिमिश्रैश्च क्रियते जन्त्रमिस्तथा ॥३४॥ ब्रह्मा सृजत्यादिकाले मरीचित्रग्रुखास्ततः । उत्पादयन्त्यपत्यानि जन्तवश्च प्रतिक्षणम् ॥३५॥ कालेन न विना ब्रह्मा सृष्टिनिष्पादको द्विज। न प्रजापतयः सर्वे न चैवाखिलजन्तवः ॥३६॥ एवमेव विभागोऽयं स्थितावप्युपदिश्यते। चतर्घा तस्य देवस्य मैत्रेय प्रलये तथा।।३७॥ यत्किञ्चित्सुज्यते येन सत्त्वजातेन वै द्विज। तस सृज्यस्य सम्भूतौ तत्सर्व वै हरेस्तनुः ।।३८।। हन्ति यावच यत्किश्चित्सच्वं स्थावरजङ्गमम्। जनार्दनस्य तद्रौद्रं मैत्रेयान्तकरं वपुः॥३९॥ एवमेष जगत्स्रष्टा जगत्पाता तथा जगत्। जगद्भक्षयिता देवः समस्तस्य जनार्दनः॥४०॥ सृष्टिस्थित्यन्तकालेषु त्रिधैवं सम्प्रवर्तते । गुणप्रवृत्त्या परमं पदं तस्यागुणं महत्।।४१॥ तच ज्ञानमयं व्यापि खसंवेद्यमनौपमम्। चतुष्प्रकारं तदपि स्तरुपं Professioner किराजिक मिश्री शिक्ष Pigitized by eGangotri

हे ब्रह्मन् ! विनाश करनेके छिये उन महात्माकी यह चार प्रकारकी सार्वकालिक विभागकल्पना कही जाती है ॥३०॥ ब्रह्मा, दक्ष आदि प्रजापतिगण, काल तथा समस्त प्राणी-ये श्रीहरिकी विभूतियाँ जगत्की सृष्टिकी कारण हैं ॥३१॥ हे द्विज ! विष्ण, मन आदि. काछ और समस्त भूतगण-ये जगत्की स्थितिके कारणरूप भगवान् विष्णुकी विभूतियाँ हैं ॥३२॥ तथा रुद्र, काल, अन्तकादि और सकल जीव-शीजनार्दन-की ये चार विभूतियाँ प्रलयकी कारणरूप हैं॥३३॥

हे द्विज! जगत्के आदि और मध्यमें तथा प्रलयपर्यन्त भी ब्रह्मा, मरीचि आदि तथा भिन्न-भिन्न जीवोंसे ही सृष्टि हुआ करती है ॥३४॥ सृष्टि-के आरम्भमें पहले ब्रह्माजी रचना फिर मरीचि आदि प्रजापतिगण और तदनन्तर समस्त जीव क्षण-क्षणमें सन्तान उत्पन्न करते रहते हैं ॥३५॥ हे द्विज ! कालके विना ब्रह्मा, प्रजापति, एवं अन्य समस्त प्राणी भी सृष्टि-रचना नहीं कर सकते [अतः भगवान् काल्रूप विष्णु ही सर्वदा सृष्टिके कारण हैं] ॥३६॥ हे मैत्रेय ! इसी प्रकार जगत्की स्थिति और प्रलयमें भी उन देवदेवके चार-चार विभाग वताये जाते हैं ॥ २७ ॥ हे द्विज ! जिस किसी जीवद्वारा जो कुछ भी रचना की जाती है उस उत्पन्न हुए जीवकी उत्पत्तिमें सर्वथा श्रीहरिका शरीर हीं कारण है।।३८॥ हे मैत्रेय ! इसी प्रकार जो कोई स्थावर-जंगम भूतोंमेंसे किसीको नष्ट करता है, वह नाश करनेवाला भी श्रीजनार्दनका अन्तकारक रौद्ररूप ही है ॥३९॥ इस प्रकार वे जनार्दनदेव ही समस्त संसारके रचयिता, पाळनकर्ता और संहारक हैं तथा वे ही खयं जगत्-रूप भी हैं ॥४०॥ जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और अन्तके समय वे इसी प्रकार तीनों गुणोंकी प्रेरणासे प्रवृत्त होते हैं, तथापि उनका परमपद महान् निर्गुण है ॥४१॥ परमात्माका वह खरूप ज्ञानमय, व्यापक, खसंवेद्य (खयं-प्रकाश) और अनुपम है तथा वह भी चार प्रकार-

श्रीमैत्रेय उवाच

चतुःप्रकारतां तस्य ब्रह्मभूतस्य हे ग्रुने । ममाचक्ष्व यथान्यायं यदुक्तं परमं पदम् ॥४३॥

श्रीपराशर उवाच

मैत्रेय कारणं त्रोक्तं साधनं सर्ववस्तुषु । साध्यं च वस्त्वभिमतं यत्साधियतुमात्मनः ॥४४॥ योगिनो मुक्तिकामस्य प्राणायामादिसाधनम् । साध्यं च परमं ब्रह्म पुनर्नावर्त्तते यतः ॥४५॥ साधनालम्बनं ज्ञानं ग्रुक्तये योगिनां हि यत् । स भेदः प्रथमस्तस्य ब्रह्मभूतस्य वै मुने ॥४६॥ युक्ततः क्रेशमुक्त्यर्थं साध्यं यद्रक्ष योगिनः । तदालम्बनविज्ञानं द्वितीयोंऽशो महामुने ॥४७॥ उभयोस्त्वविभागेन साध्यसाधनयोहिं यत् । विज्ञानमद्वैतमयं तद्भागोऽन्यो मयोदितः ॥४८॥ ज्ञानत्रयस्य वै तस्य विशेषो यो महामुने । तिनराकरणद्वारा दिशितात्मखरूपवत् ॥४९॥ निर्व्यापारमनाख्येयं व्याप्तिमात्रमनूपमम्। आत्मसम्बोधविषयं सत्तामात्रमलक्षणम् ॥५०॥ प्रशान्तमभयं ग्रुद्धं दुविभाव्यमसंश्रयम्। विष्णोज्ञीनमयस्योक्तं तज्ज्ञानं त्रक्षसंज्ञितम् ॥५१॥ तत्र ज्ञाननिरोधेन योगिनो यान्ति ये लयम्। संसारकर्पणोप्तौ ते यान्ति निर्वीजतां द्विज ॥५२॥ एवंप्रकारममलं नित्यं व्यापकमक्षयम्। समस्तहेयरहितं विष्ण्वाख्यं परमं पदम् ॥५३॥ तद्भक्ष परमं योगी यतो नावर्तते पुनः। श्रयत्यपुण्योपरमे श्वीणक्केशोऽतिनिर्मलः ॥५४॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे मुने ! आपने जो मगवान्-का परम पद कहा, वह चार प्रकारका कैसे है? यह आप मुझसे विधिपूर्वक कहिये ॥४३॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! सव वस्तुओंका जो कारण होता है वहीं उनका साधन भी होता है और जिस अपनी अभिमत वस्तुकी सिद्धि की जाती है वहीं साध्य कहलाती है ॥४४॥ मुक्तिकी इच्छा-वाले योगिजनोंके लिये प्राणायाम आदि साधन हैं और परव्रक्ष ही साध्य है, जहाँसे फिर छोटना नहीं पड़ता ॥ १५॥ हे मुने ! जो योगीकी मुक्तिका कारण है, वह 'साधनालम्बन-ज्ञान' ही उस ब्रह्मभूत परमपदका प्रथम भेद है *॥४६॥ क्रेश-वन्धनसे मुक्त होनेके छिये योगाभ्यासी योगीका साध्यरूप जो ब्रह्म है, हे महा-मुने ! उसका ज्ञान ही 'आल्प्यन-विज्ञान' नामक दूसरा भेद है ॥ १०॥ इन दोनों साध्य-साधनोंका अभेदपूर्वक जो 'अद्दैतमय ज्ञान' है उसीको मैं तीसरा भेद कहता हूँ ॥४८॥ और हे महामुने ! उक्त तीनों प्रकारके ज्ञानकी विशेषताका निराकरण करनेपर अनुभव हुए आत्मखरूपके समान ज्ञान-खरूप भगवान् विष्णुका जो निर्व्यापार अनिर्वचनीय, व्याप्तिमात्र, अनुपम, आत्मबोधस्ररूप, सत्तामात्र, अलक्षण, शान्त, अभय, गुद्ध, भावनातीत और आश्रय-हीन रूप है,वह 'ब्रह्म' नामक ज्ञान [उसका चौथा मेद] है ॥४९-५१॥ हे द्विज ! जो योगिजन अन्य ज्ञानींका निरोधकर इस (चौथे भेद) में ही छीन हो जाते हैं वे इस संसार-क्षेत्रके मीतर वीजारोपणरूप कर्म करनेमें निर्वीज (वासनारहित) होते हैं। [अर्थात् वे छोकसंग्रहके छिये कर्म करते भी रहते हैं तो भी उन्हें उन कर्मोंका कोई पाप-पुण्यरूप फल प्राप्त नहीं होता] ॥५२॥ इस प्रकारका वह निर्मेछ, नित्य, व्यापक, अक्षय और समस्त हेय गुणोंसे रहित विष्णु नामक परमपद है ॥५३॥ पुण्य-पापका क्षय और क्रेशोंकी निवृत्ति होनेपर जो अत्यन्त निर्मल हो जाता है वहीं योगी उस प्रव्रक्षका आश्रय छेता है जहाँसे वह फिर नहीं छैटता ॥५४॥

द्वे रूपे ब्रह्मणस्तस्य मूर्त चामूर्तमेव च। सर्वभूतेष्ववस्थिते ॥५५॥ क्षराक्षरखरूपे ते अक्षरं तत्परं ब्रह्म क्षरं सर्विमिदं जगत्। एकदेशस्थितस्यामेज्यीत्स्ना विस्तारिणी यथा। परस ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत् ॥५६॥ तत्राप्यासन्नद्रत्वाद्धहुत्वखल्पतामयः ज्योत्स्वाभेदोऽस्ति तच्छक्तेस्तद्धन्मैत्रेय विद्यते ॥५७॥ ब्रह्मविष्णशिवा ब्रह्मन्प्रधाना ब्रह्मशक्तयः। ततश्च देवा मैत्रेय न्यूना दक्षादयस्ततः ॥५८॥ ततो मनुष्याः पश्चो मृगपक्षिसरीसपाः । न्यूनान्न्यूनतराश्चैव वृक्षगुल्माद्यस्तथा ॥५९॥ तदेतदक्षरं नित्यं जगन्म्यनिवराखिलम्। आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत् ॥६०॥ सर्वशक्तिमयो विष्णुः खरूपं ब्रह्मणः परम् । मूर्तं यद्योगिभिः पूर्वं योगारम्मेषु चिन्त्यते ॥६१॥ सालम्बनो महायोगः सबीजो यत्र संस्थितः । मनसक्याहते सम्यग्युञ्जतां जायते मुने ।।६२॥ स परः परशक्तीनां ब्रह्मणः समनन्तरम् । मूर्तं ब्रह्म महाभाग सर्वब्रह्ममयो हरिः ॥६३॥ तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत्। ततो जगञ्जगत्तसिन्स जगचाखिलं ग्रुने ॥६४॥ क्षराक्षरमयो विष्णुविंमर्च्यतिलमी व्वरः। पुरुषाच्याकृतमयं भूषणास्त्रस्वरूपवत् ॥६५॥

श्रीमैत्रेय उवाच भूषणास्त्रसरूपसं यचैतद्तिलं जगत। विभात्ति भगवान्विष्णुस्तन्ममारूयातुम्हिसि ॥६६॥ सहःआपः सुमसो सहिसेः॥६६०॥ हर

उस ब्रह्मके मूर्त और अमूर्त दो रूप हैं, जो क्षर और अक्षररूपसे समस्त प्राणियोंमें स्थित हैं ॥ ५५ ॥ अक्षर ही वह परब्रह्म है और क्षर सम्पूर्ण जगत् है। जिस प्रकार एकदेशीय अग्निका प्रकाश सर्वत्र फैला रहता है उसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत परब्रह्मकी ही शक्ति है ॥ ५६॥ हे मैत्रेय ! अग्निकी निकटता और दूरताके भेदसे जिस प्रकार उसके प्रकाशमें भी अधिकता और न्यूनताका भेद रहता है उसी प्रकार ब्रह्मकी शक्तिमें भी तारतम्य है ॥ ५७ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा, विष्णु और शिव ब्रह्मकी प्रधान शक्तियाँ हैं, उनसे न्यून देवगण हैं तथा उनके अनन्तर दक्ष आदि प्रजापतिगण हैं ॥ ५८ ॥ उनसे भी न्यून मनुष्य, पशु, पश्ची, मृग और सरीसृपादि हैं तथा उनसे भी अत्यन्त न्यून वृक्ष. गुल्म और छता आदि हैं ॥५९॥ अतः हे मुनिवर ! आविर्माव (उत्पन्न होना) तिरोभाव (छिप जाना) जन्म और नाश आदि विकल्पयुक्त भी यह सम्पूर्ण जगत् वास्तवमें नित्य और अक्षय ही है ॥ ६०॥

. सर्वशक्तिमय विष्णु ही ब्रह्मके पर-खरूप तथा मूर्तरूप हैं जिनका योगिजन योगारम्भके पूर्व चिन्तन करते हैं ॥ ६१ ॥ हे मुने ! जिनमें मनको सम्यक्-प्रकारसे निरन्तर एकाम्र करनेवाछोंको आलम्बनयुक्त सबीज (सम्प्रज्ञात) महायोगकी प्राप्ति होती है, हे महा-भाग ! वे सर्वत्रहामय श्रीविष्णुभगवान् समस्त परा शक्तियों-में प्रधान और ब्रह्मके अत्यन्त निकटवर्ती मूर्त-ब्रह्मखरूप हैं ॥ ६२-६३ ॥ हे मुने ! उन्होंमें यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है, उन्हींसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है और ख़यं वे ही समस्त जगत् हैं ॥ ६४ ॥ क्षराक्षरमय (कार्य-कारण-रूप) ईश्वर विष्णु ही इस पुरुष-प्रकृतिमय सम्पूर्ण जगत्को अपने आसूषण और आयुष्ररूपसे धारण करते हैं ॥ ६५॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-भगवान् विष्णु इस संसारको भूषण और आयुधरूपसे किस प्रकार धारण करते हैं

श्रीपराशर उवाच

नमस्कृत्याप्रमेयाय विष्णवे प्रभविष्णवे। कथयामि यथाख्यातं वसिष्ठेन ममाभवत् ॥६७॥ आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणामलम् । बिभित्तं कौस्तुभमणिखरूपं भगवान्हरिः ॥६८॥ श्रीवत्ससंस्थानधरमनन्तेन समाश्रितम् । प्रधानं बुद्धिरप्यास्ते गदारूपेण माधवे ॥६९॥ भूतादिमिन्द्रियादिं च द्विधाहङ्कारमीश्वरः। बिभित्तं शङ्करुपेण शार्ङ्गरूपेण च स्थितम् ॥७०॥ चलत्खरूपमत्यन्तं जवेनान्तरितानिलम्। चक्रखरूपं च मनो धत्ते विष्णुकरे स्थितम् ॥७१॥ पश्चरूपा तु या माला वैजयन्ती गदाभृतः। सा भूतहेतुसङ्घाता भूतमाला च वै द्विज ॥७२॥ यानीन्द्रियाण्यशेषाणि बुद्धिकर्मात्मकानि वै । शररूपाण्यशेषाणि तानि धत्ते जनाईनः ॥७३॥ बिभित्तं यचासिरत्नमच्युतोऽत्यन्तनिर्मलम्। विद्यामयं तु तज्ज्ञानमविद्याकोशसंस्थितम्।।७४।। इत्थं पुमान्प्रधानं च बुद्धचहङ्कारमेव च। भूतानि च ह्यीकेशे मनः सर्वेन्द्रियाणि च । विद्याविद्ये च मैत्रेय सर्वमेतत्समाश्रितम् ॥७५॥ अस्त्रभूषणसंस्थानस्रह्मं रूपवर्जितः । विभर्ति मायारूपोऽसौ श्रेयसे प्राणिनां हरिः ॥७६॥ सविकारं प्रधानं च पुमांसमितलं जगत्। पुण्डरीकाश्चस्तदेवं परमेश्वरः॥७७॥ या विद्या या तथाविद्या यत्सद्यचासद्व्ययम् । सर्वभूतेशे मैत्रेय मधुद्धद्ने ॥७८॥ तत्सर्वे कलाकाष्ट्रानिमेषादिदिनर्त्वयनहायनैः कालखरूपो भगवानपापो हरिरव्ययः ॥७९॥ भूलोंकोऽथ भ्रवलोंकः खलोंको म्रुनिसत्तम ।

श्रीपराशरजी बोले-हे मुने ! जगत्का पालन करनेवाले अप्रमेय श्रीविष्णुभगवान्को नमस्कार कर अब मैं, जिस प्रकार वसिष्ठजीने मुझसे कहा था वह तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ६७ ॥ इस जगत्के निर्छेप तथा निर्गुण और निर्मेल आत्माको अर्थात् शुद्ध क्षेत्रज्ञ-खरूपको श्रीहरि कौस्तुभमणिरूपसे धारण करते हैं ॥ ६८॥ श्रीअनन्तने प्रधानको श्रीवत्सरूपसे आश्रय दिया है और बुद्धि श्रीमाधवकी गदारूपसे स्थित है ॥ ६९ ॥ भूतोंके कारण तामस अहंकार और इन्द्रियोंके कारण राजस अहंकार इन दोनोंको वे शंख और शार्झ धनुष-रूपसे धारण करते हैं ॥ ७० ॥ अपने वेगसे पवनको भी पराजित करनेवाला अत्यन्त चन्नल, सात्तिक अहंकाररूप मन श्रीविष्णुभगवान्के कर-कमलोंमें स्थित चक्रका रूप धारण करता है ॥ ७१ ॥ हे द्विज ! भगवान् गदाधरकी जो [मुक्ता, मागिक्य, मरकत, इन्द्रनील और हीरकमयी] पञ्चरूपा वैजयन्ती माला है वह पञ्चतन्मात्राओं और पञ्चभूतोंका ही संघात है ॥ ७२ ॥ जो ज्ञान और कर्ममयी इन्द्रियाँ हैं उन सबको श्रीजनार्दन भगवान् वाणरूपसे धारण करते हैं ॥ ७३ ॥ भगवान् अच्युत जो अत्यन्त निर्मल खड्ग धारण करते हैं वह अविद्यामय कोशसे आच्छादित विद्यामय ज्ञान ही है ॥ ७४ ॥ हे मैत्रेय ! इस प्रकार पुरुष, प्रधान, बुद्धि, अहंकार, पश्चभूत, मन, इन्द्रियाँ तया विद्या और अविद्या सभी श्रीहृषीकेशमें आश्रित हैं ॥७५॥ श्रीहरि रूपरहित होकर भी मायामयरूपसे प्राणियोंके कल्याणके छिये इन सत्रको अस्र और भूषणरूपसे घारण करते हैं ॥७६॥ इस प्रकार वे कमल-नयन परमेश्वर सविकार प्रधान [निर्विकार], पुरुष तथा सम्पूर्ण जगत्को धारण करते हैं ॥ ७७ ॥ जो कुछ भी विद्या-अविद्या, सत्-असत् तथा अन्ययरूप है, हे मैत्रेय ! वह सब सर्वभूतेश्वर श्रीमधुसूदन-में ही स्थित है ॥ ७८ ॥ कला, काष्टा, निमेष, दिन, ऋतु, अयन और वर्षरूपसे वे कालखरूप निष्पाप अन्यय श्रीहरि ही विराजमान हैं ॥७९॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! भूर्लोक, मुवर्लोक और खर्लोक तथा मह, जन, तप और सत्य आदि सातों छोक भी सर्वज्यापक भगवान् ही हैं ॥ ८०॥

महर्जनस्तपः सत्यं सप्त लोका इमे विश्वः ॥८०॥ लोका भी सर्वेव्यापक भ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

लोकात्ममृत्तिः सर्वेषां पूर्वेषामपि पूर्वजः । आधारः सर्वविद्यानां खयमेव हरिः स्थितः ॥८१॥ देवमानुषपश्चादिस्वरूपैर्वहुभिः स्थितः । ततः सर्वेश्वरोऽनन्तो भूतमृर्तिरमृर्त्तिमान् ॥८२॥ ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि वै। इतिहासोपवेदाश्च वेदान्तेषु तथोक्तयः ॥८३॥ वेदाङ्गानि समस्तानि मन्वादिगदितानि च । शास्त्राण्यशेषाण्याख्यानान्यजुवाकाश्च ये कचित् ८४ काञ्यालापाश्च ये केचिद्गीतकान्यखिलानि च । शब्दमृर्तिधरस्येतद्रपुर्विष्णोर्महात्मनः 116411 यानि मूर्त्तान्यमूर्त्तानि यान्यत्रान्यत्र वा क्रचित्। सन्ति वै वस्तुजातानि तानि सर्वाणि तद्वपुः ॥८६॥ अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो नान्यत्ततः कारणकार्यजातम्। इंडब्रुनो यस न तस भूयो भवोद्भवा द्वनद्वगदा भवन्ति।।८७।।

इत्येप तेंऽशः प्रथमः पुराणसास्य वै द्विज । यथानत्कथितो यसिञ्छूते पापैः प्रमुच्यते ॥८८॥ कार्त्तिक्यां पुष्करस्ताने द्वादशाब्देन यत्फलम्। तदस्य श्रवणात्सर्वं मैत्रेयामोति मानवः ॥८९॥ देविंपितृगन्धर्वयक्षादीनां च सम्भवम्। भवन्ति शृण्वतः पुंसो देवाद्या वरदा ग्रुने ॥९०॥ वरदायक हो जाते हैं ॥ ९०॥

सभी पूर्वजोंके पूर्वज तथा समस्त विद्याओंके आधार श्रीहरि ही खयं लोकमयखरूपसे स्थित हैं ॥८१॥ निराकार और सर्वेश्वर श्रीअनन्त ही भूतखरूप होकर देव, मनुष्य और पशु आदि नानारूपोंसे स्थित हैं ॥ ८२ ॥ ऋक्, यजुः, साम और अथर्वनेद, इतिहास (महाभारतादि), उपवेद (आयुर्वेदादि), वेदान्त-वाक्य, समस्त वेदांग, मनु आदि कथित समस्त धर्मशास्त्र. पुराणादि सकल शास्त्र, आख्यान, अनुवाक (कल्पसूत्र) तथा समस्त कान्य-चर्चा और रागरागिनी आदि जो कुछ भी हैं वे सब शब्दमूर्तिधारी परमात्मा विष्णका ही शरीर हैं ॥ ८३-८५ ॥ इस छोकमें अथवा कहीं और भी जितने मूर्त, अमूर्त पदार्थ हैं वे सब उन्हों-का शरीर हैं ॥ ८६ ॥ 'मैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् जनार्दन श्रीहरि ही हैं; उनसे मिन्न और कुछ भी कार्य-कारणादि नहीं हैं'--जिसके चित्तमें ऐसी भावना है उसे फिर देहजन्य राग-द्वेषादि द्वन्द्वरूप रोगकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ८७॥

हे द्विज ! इस प्रकार तुमसे इस पुराणके पहले अंशका यथावत् वर्णन किया । इसका श्रवण करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥८८॥ हे मैत्रेय ! बारह वर्षतक कार्तिक मासमें पुष्करक्षेत्रमें स्नान करनेसे जो फल होता है; वह सब मनुष्यको इसके श्रवणमात्रसे मिल जाता है ॥ ८९ ॥ हे मुने ! देव, ऋषि, गन्धर्व, पितृ और यक्ष आदिकीं उत्पत्तिका श्रवण करनेवाले पुरुषको वे देवादि

इति श्रीविष्णुपुराणे प्रथमेंऽशे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इति श्रीपराश्चरम्रनिविरचिते श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायके श्रीमति विष्णु-

पहापुराणे प्रथमों इस् स्मार्स है। Digitized by eGangotri



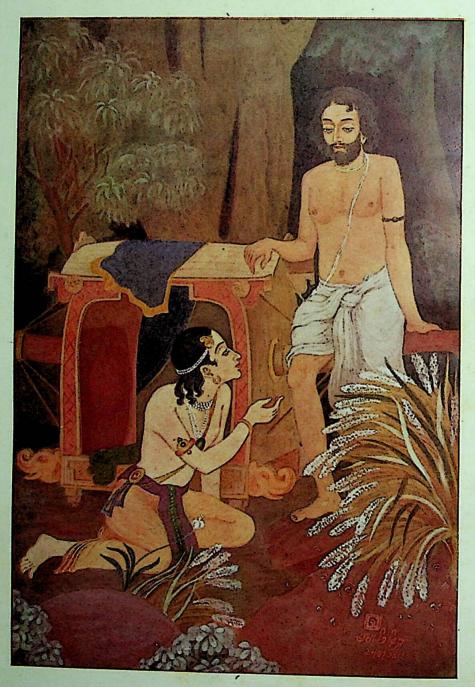


श्रीविष्णुपुराण

दितिय अंश



सत्यं सत्यातीतमसत्यं सदसन्तं शुद्धं बुद्धं मुक्तमनुक्तं विधिमुक्तम् । सर्वं सर्वोसर्वसुदूरं सुखसान्द्रं वन्दे विष्णुं सर्वसहायं सुरसेव्यम्॥



जडभरत और सौवीर-नरेशका संवाद

श्रीमन्नारायणाय नमः

श्रीविष्णुपुराण

4--

दितीय अंश

पहला अध्याय

प्रियवतके वंशका वर्णन।

श्रीमैत्रेय उवाच

भगवन्सम्यगाख्यातं ममैतद्खिलं त्वया।
जगतः सर्गसम्बन्ध यत्पृष्टोऽसि गुरो मया॥१॥
योऽयमंशो जगत्सृष्टिसम्बन्धो गदितस्त्वया।
तत्राहं श्रोतुमिच्छामि भूयोऽपि म्रुनिसत्तम॥२॥
प्रियत्रतोत्तानपादौ सुतौ खायम्भ्रवस्य यौ।
तयोरुत्तानपादस्य ध्रुवः पुत्रस्त्वयोदितः॥३॥
प्रियत्रतस्य नैवोक्ता भवता द्विज सन्ततिः।
तामहं श्रोतुमिच्छामि प्रसन्नो वक्तुमहिसि॥४॥

श्रीपराशर उवाच

कर्दमस्यात्मजां कन्यामुपयेमे प्रियत्रतः ।
सम्राद् कुक्षिश्च तत्कन्ये दशपुत्रास्तथाऽपरे ॥ ५ ॥
महाप्रज्ञा महावीर्या विनीता द्यिताः पितुः ।
प्रियत्रतस्रुताः ख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ६ ॥
आग्नीध्रश्चाग्निवाहुश्च वपुष्मान्युतिमांस्तथा ।
मेघा मेघातिथिर्मन्यः सवनः पुत्र एव च ॥ ७ ॥
ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत् ।
प्रियत्रतस्य पुत्रास्ते प्रख्याता वलवीर्यतः ॥ ८ ॥
मेघाप्रिवाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः ।
जातिसमरा महाभागा न राज्याय मनो द्युः ॥ ९ ॥

श्रीमेंत्रेयजी बोले-हे भगवन् ! हे गुरो ! मैंने जगत्की सृष्टिके विषयमें आपसे जो कुछ पृछा या वह सब आपने मुझसे भछी प्रकार कह दिया ।।१॥ हे मुनिश्रेष्ट ! जगत्की सृष्टिसम्बन्धी आपने जो यह प्रयम अंश कहा है, उसकी एक बात मैं और धुनना चाहता हूँ ॥२॥ खायम्भुवमनुके जो प्रियत्रत और उत्तानपाद दो पुत्र थे, उनमेंसे उत्तानपादके पुत्र ध्रुवके विषयमें तो आपने कहा ॥ ३॥ किन्तु, हे द्विज ! आपने प्रियत्रवकी सन्तानके विषयमें कुछ भी नहीं कहा, अतः मैं उसका वर्णन सुनना चाहता हूँ, सो आप प्रसन्ता-पूर्वक कहिये ॥ ४॥

श्रीपराशरजी बोले-प्रियन्नतने कर्दमजीकी पुत्रीसे विवाह किया था। उससे उनके सम्राट् और कुक्षि नामकी दो कन्याएँ तथा दश पुत्र हुए॥ ५॥ प्रियन्नतके पुत्र बड़े बुद्धिमान्, बल्वान्, विनयसम्पन्न और अपने माता-पिताके अत्यन्त प्रिय कहे जाते हैं; उनके नाम सुनो-—॥६॥ वे आग्नीघ्र, अग्निवाहु, वपुष्मान्, सुतिमान्, मेघा, मेघातिथि, मन्य, सवन और पुत्र ये तथा दशवाँ यथार्यनामा ज्योतिष्मान् था। वे प्रियन्नतके पुत्र अपने बल-पराक्रमके कारण विल्यात थे॥७-८॥ उनमें महामाग मेघा, अग्निवाहु और पुत्र—ये तीन योग-परायण तथा अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त जाननेवाले थे। उन्होंने राज्य आदि मोगोंमें अपना चित्त नहीं लगाया।९।

निर्मलाः सर्वकालन्तु समस्तार्थेषु वै मुने । चक्रः क्रियां यथान्यायमफलाकाङ्किणो हि ते।१०।

प्रियत्रतो ददौ तेषां सप्तानां मुनिसत्तम । सप्तद्वीपानि मैत्रेय विभज्य सुमहात्मनाम् ॥११॥ जम्बूद्वीपं महाभाग साम्रीभ्राय ददौ पिता। मेघातिथेस्तथा प्रादात्प्रश्चद्वीपं तथापरम् ॥१२॥ शाल्मले च वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान् । ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान्त्रश्चः ॥१३॥ द्युतिमन्तं च राजानं क्रौश्रद्धीपे समादिशत् । शाकद्वीपेश्वरं चापि भन्यं चक्रे त्रियत्रतः। पुष्कराधिपति चक्रे सवनं चापि स प्रशुः ॥१४॥

जम्बृद्धीपेश्वरो यस्तु आग्नीश्रो म्रुनिसत्तम ॥१५॥ तस्य पुत्रा वभुवुस्ते प्रजापतिसमा नव । नाभिः किम्पुरुपश्चेव हरिवर्ष इलावृतः ॥१६॥ रम्यो हिरण्वान्यष्टश्च कुरुर्भद्राञ्च एव च । केतुमालस्तथैवान्यः साधुचेष्टोऽभवन्नृपः ॥१७॥ जम्बृद्वीपविभागांश्र तेपां वित्र निशामय। पित्रा दत्तं हिमाह्वं तु वर्षं नामेस्तु दक्षिणम् ॥१८॥ हेमकूटं तथा वर्षं ददौ किम्पुरुपाय सः। तृतीयं नैषधं वर्षं हरिवर्षाय दत्तवान् ॥१९॥ इलांबताय प्रददौ मेरूर्यत्र तु मध्यमः। नीलाचलाश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता।।२०।। श्वेतं तदुत्तरं वर्षे पित्रा दत्तं हिरण्वते ॥२१॥ यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत्कुरवे ददौ। मेरोः पूर्वेण यद्वर्षं भद्राक्वाय प्रदत्तवान् ॥२२॥ गन्धमादनवर्षे तु केतुमालाय दत्तवान्। इत्येतानि ददौं तेम्यः पुत्रेम्यः स नरेक्वरः ॥२३॥ वर्षेष्वेतेषु तान्युत्रानिमिषच्य स भूमिपः। शालग्रामं महापुण्यं मेत्रेय तपसे ययौ।।२४॥ यानि किम्पुरुपादीनि वर्पाण्यष्टौ महामुने ।

हे मुने ! वे निर्मलचित्त और कर्म-फलकी इच्छासे रहित थे तथा समस्त विषयोंमें सदा न्यायानुकूल ही प्रवृत्त होते थे ॥ १० ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! राजा प्रियव्रतने अपने शेष सात महात्मा पुत्रोंको सात द्वीप बाँट दिये ॥ ११ ॥ हे महाभाग! पिता प्रियन्नतने आग्नीध्रको जम्बूद्धीप और मेधातिथिको प्रक्ष नामक दृसरा द्वीप दिया॥ १२॥ शाल्मलद्वीपमें वपुष्मान्को अभिविक्त ज्योतिष्मान्को कुशद्वीपका राजा बनाया ॥१३॥ द्युति-मान्को क्रौब्रद्वीपके शासनपर नियुक्त किया, मन्यको प्रियत्रतने शाकद्वीपका खामी बनाया और सवनको पुष्करद्वीपका अधिपति किया ॥ १४ ॥

हे मुनिसत्तम ! उनमें जो जम्बृद्वीपके अधीश्वर राजा आर्रीघ्र थे उनके प्रजापतिके समान नौ पुत्र हुए। वे नामि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्यान, कुरु, भद्राय और सत्कर्मशील राजा केतुमाल थे ॥ १५–१७॥ हे विप्र ! अव उनके जम्बूद्वीपके विभाग सुनो । पिता आग्नीध्रने दक्षिणकी ओरका हिमवर्ष [जिसे अब भारतवर्ष कहते हैं] नामिको दिया ।१८। इसी प्रकार किम्पुरुषको हेमकूटवर्ष तथा हरिवर्षको तीसरा नैषधवर्ष दिया ॥ १९ ॥ जिसके मध्यमें मेरुपर्वत है वह इलावृतवर्ष उन्होंने इलावृतको दिया तथा नीलाचलसे लगा हुआ वर्ष रम्यको दिया ॥२०॥ पिता आशीध्रने उसका उत्तरवर्ती स्रोतवर्ष हिरण्वान्को दिया तथा जो वर्ष शृंगवान्पर्वतके उत्तरमें स्थित है वह कुरुको और जो मेरुके पूर्वमें स्थित है वह भद्राश्वको दिया तथा केतुमाळको गन्धमादनवर्ष दिया। इस प्रकार राजा आग्रीध्रने अपने पुत्रोंको ये वर्ष दिये ॥ २१--२३॥ हे मैत्रेय ! अपने पुत्रोंको इन वर्षोंमें अभिविक्त कर वे तपस्याके लिये शालग्राम नामक महा-पवित्र क्षेत्रको चले गये ॥ २४॥

हे महामुने ! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं उनमें सुखकी बहुलता हैं और विना यहके समावसे तेषां सामाविकी सिद्धिः सुख्याया हामकतः ॥२५॥ व्हिन्समस्ते भोगे-सिद्धियाँ प्राप्त हैं ॥ २५॥

द्वितीय अंश

विपर्ययो न तेष्वर्सि जरामृत्युभयं न च। अर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः । न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टसु सर्वदा ॥२६॥ हिमाह्वयं तु वै वर्षं नाभेरासीन्महात्मनः। तस्पर्पभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेन्यां महाद्युतिः ॥२७॥ ऋपभाद्भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः। कुत्वा राज्यं स्वधर्मेण तथेष्ट्रा विविधान्मखान् ॥२८॥ अभिषिच्य सुतं वीरं भरतं पृथिवीपतिः। तपसे स महाभागः पुलहस्याश्रमं ययौ ॥२९॥ वानप्रस्थविधानेन तत्रापि कृतनिश्रयः। तपस्तेपे यथान्यायमियाज स महीपतिः ॥३०॥ तपसा कर्षितोऽत्यर्थं कुशो धमनिसन्ततः । नमो वीटां मुखे कृत्वा वीराघ्वानं ततो गतः ॥३१॥ भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते।× भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम् ॥३२॥ सुमतिर्भरतस्याभृत्पुत्रः परमधार्मिकः। कृत्वा सम्यग्ददौ तसौ राज्यमिष्टमखः पिता ॥३३॥ पुत्रसङ्क्रामितश्रीस्तु भरतः स महीपतिः। योगाभ्यासरतः प्राणान्शालप्रामेऽत्यजन्मुने ॥३४॥ अजायत च विप्रोऽसौ योगिनां प्रवरे कुले। मैत्रेय तस्य चरितं कथयिष्यामि ते पुनः ॥३५॥ सुमतेस्तेजसस्तसादिन्द्रद्यम्रो व्यजायत । परमेष्टी तत्तत्तसात्प्रतिहारत्तदन्वयः ॥३६॥ प्रतिहर्तेति विख्यात उत्पन्नस्तस्य चात्मजः ।

उनमें किसी प्रकारके विपर्यय (असुख या अकाल-मृत्यु आदि)तथा जरा-मृत्यु आदिका कोई भय नहीं होता और न धर्म, अधर्म अथवा उत्तम, अधम और मध्यम आदि-का ही मेद है। उन आठ वर्षों में कभी कोई युग-परिवर्तन भी नहीं होता ॥ २६ ॥

महात्मा नामिका हिम नामक वर्ष था; उनके मेरुदेवीसे अतिशय कान्तिमान् ऋषभ नामक पुत्र हुआ ॥ २७॥ ऋषमजीके भरतका जन्म हुआ जो उनके सौ पुत्रोंमें सबसे वड़े थे। महाभाग पृथिवीपति ऋषभदेवजी धर्मपूर्वक राज्य-शासन तथा विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करनेके अनन्तर अपने वीर पुत्र भरत-को राज्याधिकार सौंपकर तपस्याके छिये पुछहाश्रमको चले गये ॥ २८-२९ ॥ महाराज ऋषमने वहाँ भी वानप्रस्थ-आश्रमकी विधिसे रहते हुए निश्चयपूर्वक तपस्या की तथा नियमानुकूळ यज्ञानुष्ठान किये ॥३०॥ वे तपस्याके कारण सूखकर अत्यन्त कृश हो गये और उनके शरीरकी शिराएँ (रक्तवाहिनी नाड़ियाँ) दिखायी देने लगीं । अन्तमें अपने मुखमें एक पत्थरकी वटिया रखकर उन्होंने नग्नावस्थामें महाप्रस्थान किया॥ ३१॥

पिता ऋषमदेवजीने वन जाते समय अपना राज्य . भरतजीको दिया था; अतः तवसे यह (हिमवर्ष) इस छोकमें मारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ **॥ ३२ ॥ मरतजी**-के सुमित नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ। पिता (भरत) ने यज्ञानुष्ठानपूर्वक यथेच्छ राज्य-सुख मोग-कर उसे सुमितको सौंप दिया ॥ ३३॥ हे मुने ! महाराज भरतने पुत्रको राज्यछक्ष्मी सौंपकर योगाभ्यास-में तत्पर हो अन्तमें शालग्रामक्षेत्रमें अपने प्राण छोड़ दिये ॥ ३४ ॥ फिर इन्होंने योगियोंके पवित्र कुलमें ब्राह्मणरूपसे जन्म लिया। हे मैत्रेय ! इनका वह चरित्र मैं तुमसे फिर कहूँगा ॥ ३५॥

तदनन्तर सुमितके वीर्यसे इन्द्रबुम्नका जन्म हुआ, उससे परमेष्टी और परमेष्टीका पुत्र प्रतिहार हुआ ॥ ३६ ॥ प्रतिहारके प्रतिहर्ता नामसे विख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ तथा प्रतिहर्ताका पुत्र भव, भवका उद्गीथ और भवस्तसादथोद्गीथः प्रस्तावस्तत्सतो विश्वः ॥३७॥ उद्गीयका पुत्र अति समर्थे प्रस्ताव हुआ ॥ ३७॥

पृथुततत्तत्ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः सुतः । नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रोऽभृद्विराद् ततः ॥३८॥ तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तसादजायत । महान्तस्तत्सुतश्राभृन्मनस्युस्तस्य चात्मजः ।।३९।। त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजो रजस्तस्याप्यभूतसुतः। श्वतिब्रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं ग्रुने ॥४०॥ विष्वग्ज्योतिः प्रधानास्ते यैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः। तैरिदं भारतं वर्ष नवभेदमलङ्कृतम् ॥४१॥ तेषां वंशप्रस्तैश्र शक्तेयं भारती पुरा। कृतत्रेतादिसर्गेण युगाख्यामेकसप्ततिम् ॥४२॥ एप खायम्भ्रवः सर्गो येनेदं पूरितं जगत्।

प्रस्तावका पृथु, पृथुका नक्त और नक्तका पुत्र गय हुआ। गयके नर और उसके विराट् नामक पुत्र हुआ ॥३८॥ उसका पत्र महावीर्य था, उससे धीमान्का जन्म हुआ तथा धीमान्का पुत्र महान्त और उसका पुत्र मनस्यु हुआ ॥ ३९॥ मनस्युका पुत्र त्वष्टा, त्वष्टाका विरज और विरजका पुत्र रज हुआ। हे मुने ! रजके पुत्र शतजित्के सौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४०॥ उनमें विष्वग्ज्योति प्रधान था। उन सौ पुत्रोंसे यहाँकी प्रजा बहुत बढ़ गयी। तब उन्होंने इस भारतवर्षको नौ विभागोंसे विभूषित किया । [अर्थात् वे सन्न इसको नौ भागोंमें बाँटकर भोगने छगे] ॥ ४१॥ उन्हींके वंशधरोंने पूर्वकालमें कृतत्रेतादि युगक्रमसे इकहत्तर युगपर्यन्त इस भारतभूमिको भोगा था॥ ४२॥ हे मुने ! यही इस वाराहकल्पमें सबसे पहले मन्वन्तराधिप खायम्भुवमनुका वंश है, जिसने उस बाराहे तु मुने कल्पे पूर्वमन्वन्तराधिपः ॥४३॥ समय इस सम्पूर्ण संसारको व्याप्त किया हुआ था ॥४३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीर्यें ऽशे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

भूगोलका विवरण।

श्रीमैत्रेय उवाच

कथितो भवता ब्रह्मन्सर्गः खायम्भ्रवश्च मे । श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वत्तः सकलं मण्डलं भ्रुवः ॥ १ ॥ यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्वताः । वनानि सरितः पुर्यो देवादीनां तथा मुने ॥ २ ॥ यत्त्रमाणमिदं सर्वं यदाधारं यदात्मकम्। संस्थानमस्य च मुने यथावद्वक्तुमईिस ॥ ३॥ श्रीपराशर उवाच

श्र्यतामेतत्सङ्क्षेपाद्भद्तो मम्। नास्य वर्षशतेनापि वक्तुं शक्यो हि विस्तरः ॥ ४ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे ब्रह्मन्!आपने मुझसे खायम्मुव-मनुके वंशका वर्णन किया। अब मैं आपके मुखार-विन्दसे सम्पूर्ण पृथिवीमण्डलका विवरण सुनना चाहता हूँ ॥ १॥ हे मुने ! जितने भी सागर, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ और देवता आदिकी पुरियाँ हैं, उन सबका जितना-जितना परिमाण है, जो आधार है, जो उपादान-कारण है और जैसा आकार है, वह सब आप यथावत् वर्णन कीजिये ॥ २-३ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! सुनो, मैं इन सब वातोंका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, इनका विस्तारपूर्वक नास्य वपश्तनापि वर्ष्ण शक्यो हि विस्तरः ॥ ४॥ वर्णन तो सौ वर्षमें भी नहीं हो सकता ॥ ४॥ हे वर्षमें भी नहीं हो सकता ॥ ४॥ हे वर्षमें जम्बू, प्रक्ष, शाल्मल, कुश, क्रीब्र, शांक और कुशः क्रौश्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः॥५॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तमिरावृताः।
लवणेक्षुसुरासिर्पर्दिधिदुग्धजलैः समम्॥६॥
जम्बृद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः।
तस्यापि मेरुमैंत्रेय मध्ये कनकपर्वतः॥७॥
चतुराशीतिसाहस्रो योजनैरस्य चोच्छ्यः॥८॥
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्सूर्धि विस्तृतः।
सुले पोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वशः॥९॥
भूपश्चस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः॥१०॥
दिमवान्हेमकृत्श्च निपध्यास्य दक्षिणे।
नीलः श्वतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः॥११॥
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्यौ दश्वहीनास्तथापरे।
सहस्रद्वितयोच्छायास्तावद्विस्तारिणश्च ते॥१२॥

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् ।

हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोदिक्षिणतो द्विज ॥१३॥

रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैवानु हिरण्मयम् ।

उत्तराः कुरवश्रेव यथा वै भारतं तथा॥१४॥

नवसाहस्रमेकेकमेतेषां द्विजसत्तम् ।

इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छितः॥१५॥

मेरोश्रतुर्दिशं तत्तु नवसाहस्रविस्तृतम् ।

हलावृतं महाभाग चत्वारश्रात्र पर्वताः॥१६॥

विष्कम्भारचिता मेरोयोजनायुत्युच्छिताः॥१७॥

पूर्वण मन्दरो नाम दक्षिणे ग्रान्धुमादुनः ।

विष्कम्भारचिता निरायोजनायुत्युच्छिताः॥१७॥

सातवाँ पुष्कर—ये सातों द्वीप चारों ओरसे खारे पानी, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दिध, दुग्ध और मीठे जलके सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं ॥ ५-६॥

हे मैत्रेय ! जम्बूद्वीप इन सबके मध्यमें स्थित है और उसके भी बीचों-बीचमें सुवर्णमय सुमेरुपर्वत है ॥ ७॥ इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है और नीचेकी ओर यह सोलह हजार योजन पृथिवीमें घुसा हुआ है। इसका विस्तार ऊपरी भागमें वत्तीस हजार योजन है तथा नीचे (तलैटीमें) केवल सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत इस पृथिवीरूप कमलकी कर्णिका (कोश) के समान है ॥ ८-१०॥ इसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट और निषंघ तथा उत्तरमें नील, इवेत और शृङ्गी नामक वर्षपर्वत हैं [जो भिन्न-भिन्न वर्षोंका विभाग करते हैं] ॥ ११॥ उनमें बीचके दो पर्वत [निषध और नीछ] एक-एक लाख योजनतक फैले हुए हैं, उनसे दृसरे-दृसरे दश-दश हजार योजन कम हैं। [अर्थात् हेमकूट और श्वेत नव्वे-नव्वे हजार योजन तथा हिमवान् और शृङ्गी अस्सी-अस्सी सहस्र योजनतक फैले हुए हैं ।] वे सभी दो-दो सहस्र योजन ऊँचे और इतने ही चौड़े हैं॥ १२॥

हे द्विज! मेरुपर्वतके दक्षिणकी ओर पहला भारतवर्ष है तथा दूसरा किम्पुरुपवर्ष और तीसरा हरिवर्ष
है ॥ १३ ॥ उत्तरको ओर प्रथम रम्यक, फिर हिरणमय
और तदनन्तर उत्तरकुरुवर्ष है जो [द्वीपमण्डलकी सीमापर होनेके कारण] भारतवर्षके समान [धनुषाकार]
है ॥ १४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इनमेंसे प्रत्येकका विस्तार
नौ-नौ हजार योजन है तथा इन सबके बीचमें इलावृतवर्ष है जिसमें सुवर्णमय सुमेरुपर्वत खड़ा हुआ
है ॥ १५ ॥ हे महाभाग! यह इलावृतवर्ष सुमेरुके चारों
ओर नौ हजार योजनतक फैला हुआ है । इसके चारों
ओर चार पर्वत हैं ॥ १६ ॥ ये चारों पर्वत मानो
सुमेरुको धारण करनेके लिये ईश्वरकृत कीलियाँ हैं
[क्योंकि इनके बिना ऊपरसे विस्तृत और मूल्गें
संकुचित होनेके कारण सुमेरुके गिरनेकी सम्भावना है]।
इन्होंसे मन्द्राचल पूर्वमें अस्त्रमाद्वत दक्षिणमें, विपुल

विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः ॥१८॥ कदम्बस्तेषु जम्बुश्च पिप्पलो वट एव च । एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः ॥१९॥ जम्बुद्वीपस्य सा जम्बुर्नामहेतुर्महासुने । महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि वै । पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः ॥२०॥ रसेन तेषां प्रख्याता तत्र जाम्बुनदीति वै। सरित्यवर्त्तते चापि पीयते तनिवासिभिः ॥२१॥ न स्वेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः । तत्पानात्खच्छमनसां जनानां तत्र जायते ॥२२॥ तीरमृत्तद्रसं प्राप्य सुखवासुविशोषिता । जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ॥२३॥ मद्राश्वं पूर्वतो मेरोः केतुमालं च पश्चिमे । वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठ तयोर्मध्यमिलावृतः ॥२४॥ वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनम्। वैश्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं स्मृतम्।।२५॥ अरुणोदं महाभद्रमसितोदं समानसम्। सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्वदा ॥२६॥ शीताम्भश्र कुमुन्दश्र कुररी माल्यवांस्तथा। वैकङ्कप्रमुखा मेरोः पूर्वतः केसराचलाः ॥२७॥ त्रिक्टः शिशिरश्रेव पतङ्गो रुचकस्तथा। निपदाद्या दक्षिणतस्तस्य केसरपर्वताः ॥२८॥ शिखिवासाः सवैद्वर्यः कपिलो गन्धमादनः । जारुधिप्रमुखास्तद्वत्पश्चिमे केसराचलाः ॥२९॥ मेरोरनन्तराङ्गेषु जठरादिष्ववस्थिताः। शङ्खक्टोऽथ ऋषमो हंसो नागस्तथापरः। कालङ्जाद्याश्र तथा उत्तरे केसराचलाः ॥३०॥ चतुर्दशसहस्राणि योजनानां महापुरी। मेरोरुपरि मैत्रेय ब्रह्मणः प्रथिता दिवि ॥३१॥ तस्यास्समन्तत्रश्राष्ट्रो दिवासुः विदिशासुः भूडी

पश्चिममें और सुपार्श्व उत्तरमें है। ये सभी दश-दश हजार योजन ऊँचे हैं॥ १७-१८॥ इनपर पर्वतोंकी ध्वजाओंके समान क्रमशः ग्यारह-ग्यारह सौ योजन ऊँचे कदम्ब, जम्बू, पीपल और वटके वृक्ष हैं॥ १९॥

हे महामुने ! इनमें जम्बू (जामुन) वृक्ष जम्बू-द्वीपके नामका कारण है। उसके फल महान् गजराज-के समान बड़े होते हैं। जब वे पर्वतपर गिरते हैं तो फटकर सब ओर फैल जाते हैं ॥ २०॥ उनके रससे निकली जम्बू नामकी प्रसिद्ध नदी वहाँ बहती है, जिसका जल वहाँके रहनेवाले पीते हैं ॥ २१॥ उसका पान करनेसे वहाँके शुद्धचित्त छोगोंको दुर्गन्ध, बुढ़ापा अथवा नहीं होता ॥ २२ ॥ उसके किनारेकी मृत्तिका उस रससे मिलकर मन्द-मन्द वायुसे जाम्बूनद नामक सुवर्ण हो जाती है, जो सिद्ध पुरुषों-का मूषण है ॥ २३ ॥ मेरुके पूर्वमें भद्राश्ववर्ष और पश्चिममें केतुमालवर्ष है तथा, हे मुनिश्रेष्ठ ! इन दोनोंके बीचमें इलावृतवर्ष है ॥ २४ ॥ इसी प्रकार उसके पूर्वकी ओर चैत्ररथ, दक्षिणकी ओर गन्धमादन, पश्चिमकी ओर वैभाज और उत्तरकी ओर नन्दन नामक वन है॥ २५॥ तथा सर्वदा देवताओंसे सेवनीय अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस-ये चार सरोवर हैं ॥ २६॥

हे मैत्रेय ! शीताम्म, कुमुन्द, कुररी, माल्यवान् तथा वैकंक आदि पर्वत [भूपग्नकी कर्णिकारूप] मेरुके पूर्व-दिशाके केसराचल हैं ॥ २० ॥ त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक और निषाद आदि केसराचल उसके दक्षिण ओर हैं ॥ २८ ॥ शिखिवासा, वैडूर्य, कपिल, गन्धमादन और जारुधि आदि उसके पश्चिमीय केसरपर्वत हैं ॥ २९ ॥ तथा मेरुके अति समीपस्थ इलावृतवर्षमें और जठरादि देशोंमें स्थित शङ्ककूट, ऋषम, हंस, नाग तथा काल्झ आदि पर्वत उत्तर-दिशाके केसराचल हैं ॥ ३० ॥

हे मैत्रेय । मेरुके ऊपर अन्तरिक्षमें चौदह सहस्र १॥ योजनके विस्तारवाली ब्रह्माजीकी महापुरी (ब्रह्मपुरी) Collection, New Delhi, Dignized by दिशा एवं विदिशाओं में

इन्द्रादिलोकपालानां प्रख्याताः प्रवराः पुरः ।।३२।। विष्णुपादविनिष्कान्ता प्रावयित्वेन्दुमण्डलम् । समन्ताद् त्रह्मणः पुर्यां गङ्गा पतति वै दिवः ।।३३।। सा तत्र पतिता दिश्च चतुर्द्धा प्रतिपद्यते। सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात्।।३४॥ पूर्वेण शैलात्सीता तु शैलं यात्यन्तरिक्षगा। ततश्र पूर्ववर्षेण भद्राश्वेनैति सार्णवम् ॥३५॥ तथैवालकनन्दापि दक्षिणेनैत्य भारतम् । प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा महामुने ।।३६।। चक्षश्र पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्ततः। पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षं गत्वैति सागरम् ॥३७॥ भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून । अतीत्योत्तरमम्भोधिं समभ्येति महामुने ॥३८॥ आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादंनौ । तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ॥३९॥ भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा। पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः ॥४०॥ मर्यादापर्वतावुभौ। जठरो देवकूटश्र तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ।।४१।। गन्धमादनकैलासौ पूर्वपश्चायतावुभौ । अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।।४२॥ निषधः पारियात्रश्च मर्यादापर्वताबुभौ । मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्वे तथा स्थितौ ॥४३॥ त्रिशृङ्गो जारुधिश्रेव उत्तरौ वर्षपर्वतौ। पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ 118811 इत्येते ग्रुनिवर्योक्ता मर्यादापर्वतास्तव। जठराद्याः स्थिता मेरोस्तेषां द्वौ द्वौ चतुर्दिशम् १४५। हैं ॥ ४५॥ उपार्थिता मेरोस्तेषां द्वौ द्वौ चतुर्दिशम् १४५। हैं ॥ ४५॥

इन्द्रादि लोकपालोंके आठ अति रमणीक और विख्यात नगर हैं।।३२॥ विष्णुपादोद्भवा श्रीगंगाजी चन्द्रमण्डलको चारों ओरसे आद्यावित कर खर्गछोकसे ब्रह्मपुरीमें गिरती हैं ॥ ३३ ॥ वहाँ गिरनेपर वे चारों दिशाओंमें क्रमसे सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामसे चार भागोंमें विभक्त हो जाती हैं ॥ ३४ ॥ उनमेंसे सीता पूर्वेकी ओरं आकाशमार्गसे एक पर्वतसे दृसरे पर्वतपर जाती हुई अन्तमें पूर्वस्थित भद्राश्ववर्ध-को पारकर समुद्रमें मिल जाती है ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार, हे महामुने ! अलकनन्दा दक्षिण-दिशाकी ओर भारतवर्षमें आती है और सात भागोंमें विभक्त होकर समुद्रमें मिल जाती है ॥ ३६ ॥ चक्ष पश्चिम-दिशाके समस्त पर्वतोंको पारकर केतुमाल नामक वर्षमें वहती हुई अन्तमें सागरमें जा गिरती है ॥३०॥ तथा हे महामुने ! भद्रा उत्तरके पर्वतों और उत्तरकुर-वर्षको पार करती हुई उत्तरीय समुद्रमें मिल जाती है ॥ ३८॥ माल्यवान् और गन्धमादनपर्वत उत्तर तथा दक्षिणकी ओर नीलाचल और निपधपर्वततक पैले हुए हैं । उन दोनोंके बीचमें कर्णिकाकार मेरुपर्वत स्थित है ॥ ३९॥

हे मैत्रेय ! मर्यादापर्वतोंके विहर्भागमें स्थित भारत. केतुमाल, भद्राश्व और कुरुवर्ष इस लोकपद्मके पत्तींके समान हैं।।४०।। जठर और देवकूट-ये दोनों मर्यादा-पर्वत हैं जो उत्तर और दक्षिणकी ओर नील तथा निषधपर्वततक फैले हुए हैं ॥ ४१ ॥ पूर्व और पश्चिमकी ओर फैले हुए गन्धमादन और कैलास-ये दो पर्वत जिनका विस्तार अस्सी योजन है, समुद्रके मीतर स्थित हैं ॥ ४२ ॥ पूर्वके समान मेरुकी पश्चिम ओर भी निषध और पारियात्र नामक दो मर्यादापर्वत स्थित हैं॥ १३॥ उत्तरकी ओर त्रिशृङ्क और जारुघि नामक वर्षपर्वत हैं । ये दोनों पूर्व और पश्चिमकी ओर समुद्रके गर्भमें स्थित हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकार, हे मुनिवर ! तुमसे जठर आदि मर्यादापर्वतोंका वर्णन किया, जिनमेंसे दो-दो मेरुकी चारों दिशाओंमें स्थित

मेरोश्रतुर्दिशं ये तु प्रोक्ताः केसरपर्वताः। श्रीतान्ताद्या सने तेषामतीव हि मनोरमाः। श्रैलानामन्तरे द्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः ॥४६॥ सरम्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च । लक्ष्मीविष्ण्वप्रिस्पादिदेवानां स्निसत्तम । तास्वायतनवर्याणि जुष्टानि वरिकसरैः ॥४७॥ गन्धर्वयक्षरक्षांसि तथा दैतेयदानवाः। क्रीडन्ति तासु रम्यासु शैलद्रोणीष्वहर्निशम् ॥४८॥ मौमा ह्येते स्मृताः स्वर्गा धर्मिणामालया सुने । नैतेषु पापकर्माणो यान्ति जन्मशतैरि ॥४९॥ मद्राश्वे भगवान्विष्णुरास्ते हयशिरा द्विज । वराहः केतुमाले तु भारते कूर्मरूपधृक्।।५०।। मत्स्यरूपश्च गोविन्दः कुरुष्वास्ते जनार्दनः। विश्वरूपेण सर्वत्र सर्वः सर्वत्रगो हरिः॥५१॥ सर्वस्याधारभूतोऽसौ मैत्रेयास्तेऽखिलात्मकः॥५२॥ यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने । न तेषु शोको नायासो नोद्देगः क्षुद्भयादिकम्।।५३।। स्वस्थाः प्रजा निरातङ्कास्सर्वदुःखविवर्जिताः। दशद्वादश्चवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः ॥५४॥ न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै। कृतत्रेतादिकं नैव तेषु स्थानेषु कल्पना ॥५५॥ सर्वेष्ट्रेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः। नद्यश्र शतशस्तेम्यः प्रस्ता या द्विजोत्तमः ॥५६॥

हे मुने ! मेरुके चारों ओर स्थित जिन शीतान्त आदि केसरपर्वतोंके विषयमें तुमसे कहा था, उनके बीचमें सिद्ध-चारणादिसे सेवित अति सुन्दर कन्दराएँ हैं ॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तम ! उनमें सुरम्य नगर तथा उपवन हैं और छक्ष्मी, विष्णु, अग्नि एवं सूर्य आदि देवताओंके अत्यन्त सुन्दर मन्दिर हैं जो सदा किन्नरश्रेष्ठों-से सेवित रहते हैं ॥४७॥ उन सुन्दर पर्वत-द्रोणियोंमें गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानवादि अहर्निश कीडा करते हैं ॥४८॥ हे मुने ! ये सम्पूर्ण स्थान मौम (पृथिवीके) खर्ग कहछाते हैं; ये धार्मिक पुरुषोंके निवासस्थान हैं। पापकर्मा पुरुष इनमें सो जन्ममें भी नहीं जा सकते॥ ४९॥

हे द्विज ! श्रीविष्णुभगवान् भद्राश्ववर्षमें हयग्रीव-रूपसे, केतुमालवर्षमें वराहरूपसे और मारतवर्षमें कूर्मरूपसे रहते हैं ॥ ५० ॥ तथा वे भक्तप्रतिपालक श्रीगोविन्द कुरुवर्षमें मत्स्यरूपसे रहते हैं । इस प्रकार वे सर्वमय सर्वगामी हरि विश्वरूपसे सर्वत्र ही रहते हैं । हे मैत्रेय ! वे सबके आधारभूत और सर्वात्मक हैं ॥ ५१-५२ ॥ हे महामुने ! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं उनमें शोक, श्रम, उद्देग और क्षुधाका भय आदि कुछ भी नहीं है ॥ ५३ ॥ वहाँकी प्रजा खस्य, आतङ्क-हीन और समस्त दुःखोंसे रहित है तथा वहाँके लोग दश-वारह हजार वर्षकी स्थिर आयुवाले होते हैं ॥५४॥ उनमें वर्षा कभी नहीं होती, केवल पार्थिव जल ही है और न उन स्थानोंमें कृतत्रेतादि युगोंकी ही कल्पना है ॥५५॥ हे द्विजोत्तम ! इन सभी वर्षों में सात-सात कुल-पर्वत हैं और उनसे निकली हुई सैकड़ों नदियाँ हैं ॥५६॥

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



तीसरा अध्याय

भारतादि नौ खण्डोंका विभाग।

श्रीपराशर उवाच

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्वेव दक्षिणम्। वर्षं तद्धारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥ १॥ नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महाम्रने । कर्मभूमिरियं खर्गमपवर्गं च गच्छताम्।। २।। महेन्द्रो मलयः सद्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः । विन्ध्यश्र पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥ ३॥ अतः सम्प्राप्यते खर्गो मुक्तिमस्मात्प्रयान्ति वै । तिर्यक्तवं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा मुने ।। ४।। इतः खर्गश्र मोक्षश्र मध्यं चान्तश्र गम्यते । न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्म भूमौ विधीयते ॥ ५ ॥ भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान्निशामय। इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ॥ ६ ॥ नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः । अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः॥७॥ योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ॥ ८॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शुद्राश्च भागशः। इज्यायुधवाणिज्याद्यैर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥ ९ ॥ शतद्रचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिर्गताः। वेदस्पृतिमुखाद्याश्र पारियात्रोद्भवा मुने ॥१०॥ नर्मदा सुरसाद्याश्च नद्यो विनध्याद्रिनिर्गताः। तापीपयोष्णीनिर्विन्ध्याप्रमुखा ऋक्षसम्भवाः।११। गोदावरी भीमरथी कृष्णवेण्यादिकास्तथा। सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः ॥१२॥ कृतमाला ताम्रपणींत्रमुखा मलयोद्भवाः । मल्याचलसे, त्रिसामा और आर्यकुल्या आदि महेन्द्र-

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय! जो समुद्रके उत्तर तथा हिमालयके दक्षिणमें स्थित है वह देश भारतवर्ष कहलाता है। उसमें भरतकी सन्तान वसी हुई है ॥ १ ॥ हे महामुने ! इसका विस्तार नौ हजार योजन है। यह खर्ग और अपवर्ग प्राप्त करनेवालोंकी कर्म-भूमि है ॥ २ ॥ इसमें महेन्द्र, मलय, सहा, शुक्तिमान् . ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं ॥ ३ ॥ हे मुने ! इसी देशमें श्चमकर्मोंद्वारा खर्ग अथवा मोक्ष सकते हैं और यहींसे [पाप-कर्मोंमें प्रवृत्त होनेपर] वे नरक अथवा तिर्यग्योनिमें पड़ते यहींसे [कर्मानुसार] खर्ग, मोक्ष, अन्तरिक्ष अथवा पाताल आदि लोकोंको प्राप्त किया जा सकता है. पृथिवीमें यहाँके सिवा और कहीं भी मनुष्यके छिये कर्मकी विधि नहीं है ॥ ५॥

इस भारतवर्षके नौ भाग हैं; उनके नाम ये हैं-इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गमस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वारुण तथा यह समुद्रसे घिरा हुआ द्वीप उनमें नवाँ है ॥६-७॥ द्वीप उत्तरसे दक्षिणतक सहस्र योजन है। इसके पूर्वीय भागमें किरात छोग और पश्चिमीयमें यवन बसे हुए हैं ॥ ८ ॥ तथा यज्ञ, युद्ध और न्यापार आदि अपने-अपने कर्मोंकी व्यवस्थाके अनुसार आचरण करते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण वर्ण-विभागानुसार मध्यमें रहते हैं ॥ ९ ॥ हे मुने ! इसकी शतद् और चन्द्रभागा आदि नदियाँ हिमालयकी तलैटी-से वेद और स्मृति आदि पारियात्र पर्वतसे, नर्मदा और सरसा आदि विनध्याचलसे तथा तापी, पयोष्णी और निर्विन्ध्या आदि ऋक्षगिरिसे निकली हैं॥ १०-११ ॥ गोदावरी, भीमरथी और कृष्णवेणी आदि पापहारिणी नदियाँ सञ्चपर्वतसे उत्पन्न हुई कही जाती हैं ॥ १२ ॥ कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि

त्रिसामा चार्यकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः।।१३।। ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः। आसां नद्यपनद्यश्च सन्त्यन्याश्च सहस्रशः ॥१४॥ ताखिमे कुरुपाश्चाला मध्यदेशादयो जनाः। पूर्वदेशादिकाश्रैव कामरूपनिवासिनः ॥१५॥ पुण्डाः कलिङ्गा मगधा दक्षिणाद्याश्च सर्वशः। तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूराभीरास्तथार्बुदाः ॥१६॥ कारूषा मालवाश्रेव पारियात्रनिवासिनः। सौवीराः सैन्धवा हूणाः साल्वाः कोशलवासिनः। माद्रारामास्तथाम्बष्टाः पारसीकादयस्तथा ।।१७।। आसां पिवन्ति सलिलं वसन्ति सहिताः सदा । समीपतो महाभाग हृष्ट्पृष्टजनाकुलाः ॥१८॥ चत्वारि भारते वर्षे युगान्यत्र महासुने । कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चान्यत्र न कचित्।।१९॥ तपस्तप्यन्ति ग्रुनयो जुह्वते चात्र यज्यिनः । दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात्।।२०।। पुरुपैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते । यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा।।२१।। अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बुद्धीपे महामुने । यतो हि कर्मभूरेपा झतोऽन्या भोगभूमुयः ॥२२॥ अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रेरिप सत्तम। कदाचिछ्रमते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् ॥२३॥ गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे । स्वर्गापवर्गास्पद्मार्गभृते मवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥२४॥

कर्माण्यसङ्कल्पिततत्फलानि

संन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते । अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते

गिरिसे तथा ऋषिकुल्या और कुमारी आदि नदियाँ शुक्तिमान् पर्वतसे निकली हैं। इनकी और भी सहस्रों शाखा नदियाँ और उपनदियाँ हैं ॥ १३-१४ ॥ इन नदियोंके तटपर कुरु, पाञ्चाल और मध्यदेशादिके रहनेवाले, पूर्वदेश और कामरूपके निवासी, पुण्डू, कलिंग, मगध और दाक्षिणात्यलोग, अपरान्तदेश-वासी, सौराष्ट्रगण तथा शूर, आभीर और अर्बुद्रगण, कारूपं, माल्य और पारियात्रनिवासी, सैन्धव, हूण, साल्व और कोशल-देशवासी तथा माद्र, आराम, अम्बष्ट और पारसीगण रहते हैं॥ १५— १७॥ हे महाभाग ! वे छोग सदा आपसमें मिळकर रहते हैं और इन्हींका जल पान करते हैं। इनकी सिनिधिके कारण वे बड़े हृष्ट-पुष्ट रहते हैं ॥ १८॥

हे मुने ! इस भारतवर्षमें ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और किछ नामक चार युग हैं, अन्यत्र कहीं नहीं ॥ १९॥ इस देशमें परलोकके लिये मुनिजन तपस्या करते हैं, याज्ञिक छोग यज्ञानुष्ठान करते हैं और दानी-जन आदरपूर्वक दान देते हैं ॥ २०॥ जम्बूद्वीपमें यज्ञमय यज्ञपुरुष भगवान् विष्णुका सदा यज्ञोंद्वारा यजन किया जाता है, इसके अतिरिक्त अन्य द्वीपोंमें उनकी और-और प्रकारसे उपासना होती है ॥ २१॥ हे महामुने ! इस जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि यह कर्मभूमि है इसके अतिरिक्त अन्यान्य देश भोग-भूमियाँ हैं ॥ २२ ॥ हे सत्तम ! जीवको सहस्रों जन्मोंके अनन्तर महान् पुण्योंका उदय होनेपर ही कमी इस देशमें मनुष्य-जन्म प्राप्त होता है ॥ २३॥ देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि 'जिन्होंने खर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म लिया है वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक धन्य (बङ्मागी) हैं॥ २४॥ जो छोग इस कर्मभूमि-में जन्म छेकर अपने फलाकांक्षासे रहित कर्मोंको प्रमात्मखरूप श्रीविष्णुभगवान्को अर्पण करनेसे निर्मछ (पापपुण्यसे रहित) होकर उन अनन्तमें ही छीन हो तिसँछ्यं ये त्वमुखाः प्रयान्ति ॥२५॥ जाते हैं. विश्वम्य हैं भावति एक्विवाgotri

जानीम नैतत्क वयं विलीने
स्वर्गप्रदे कर्मणि देहवन्धम् ।
प्राप्साम धन्याः खलु ते मनुष्या
ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः ॥२६॥
नववर्षे तु मैत्रेय जम्बूद्वीपमिदं मया।
लक्षयोजनविस्तारं सङ्घेपात्कथितं तव॥२७॥
जम्बूद्वीपं समाष्ट्रत्य लक्षयोजनविस्तरः।
मैत्रेय वलयाकारः स्थितः क्षारोदिधिर्वहिः॥२८॥

'पता नहीं, अपने स्वर्गप्रदक्षमींका क्षय होनेपर हम कहाँ जन्म प्रहण करेंगे श्वन्य तो वे ही मनुष्य हैं जो भारतभूमिमें उत्पन्न होकर इन्द्रियोंकी शक्तिसे हीन नहीं हुए हैं ।। २६॥

हे मैत्रेय ! इस प्रकार छाख योजनके विस्तारवाछे नववर्ष-विशिष्ट इस जम्बूद्धीपका मैंने तुमसे संक्षेपसे वर्णन किया ॥ २०॥ हे मैत्रेय ! इस जम्बूद्धीपको बाहर चारों ओरसे छाख योजनके विस्तारवाछे वळयाकार खारे पानीके समुद्रने घेरा हुआ है ॥ २८॥

- AND CONTRACT -

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीर्येऽशे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

प्रक्ष तथा शाल्मल आदि द्वीपोंका विशेष वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

क्षारोदेन यथा द्वीपो जम्बूसंज्ञोऽभिवेष्टितः ।
संवेष्ट्य क्षारमुद्धि प्रक्षद्वीपस्तथा स्थितः ॥ १ ॥
जम्बूद्वीपस्य विस्तारः श्रतसाहस्रसम्मितः ।
स एव द्विगुणो ब्रह्मन् प्रक्षद्वीप उदाहृतः ॥ २ ॥
सप्त मेघातिथेः पुत्राः प्रक्षद्वीपेश्वरस्य वै ।
ज्येष्ठः शान्तहयो नाम शिशिरस्तदनन्तरः ॥ ३ ॥
सुखोदयस्तथानन्दः शिवः क्षेमक एव च ।
ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्रक्षद्वीपेश्वरा हि ते ॥ ४ ॥
पूर्व शान्तहयं वर्ष शिशिरं च सुखं तथा ।
आनन्दं च शिवं चेव क्षेमकं ध्रुवमेव च ॥ ५ ॥
मर्यादाकारकास्तेषां तथान्ये वर्षपर्वताः ।
सप्तेव तेषां नामानि शृणुष्व म्रनिसत्तथा ।
सोमकः सुमनाश्चेव वैश्राजश्चेव सप्तमः ॥ ७ ॥
सोमकः सुमनाश्चेव वैश्राजश्चेव सप्तमः ॥ ७ ॥
वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षष्वतेषु चान्धाः ।
वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षष्वतेषु चान्धाः ।

श्रीपराशरजी बोले-जिस प्रकार जम्बृद्दीप क्षार-समुद्रसे घिरा हुआ है उसी प्रकार क्षारसमुद्रको घेरे हुए प्रक्षद्वीप स्थित है ॥ १॥ जम्बूद्वीपका विस्तार एक लक्ष योजन है; और हे ब्रह्मन्! प्रक्षद्वीपका उससे दूना कहा जाता है॥ २॥ प्रश्नद्वीपके खामी मेधातिथिके सात पत्र हुए । उनमें सबसे वड़ा शान्त-ह्य था और उससे छोटा शिशिर ॥ ३ ॥ उनके अनन्तर क्रमशः सुखोदय, आनन्द, शिव और क्षेमक थे तथा सातवाँ ध्रव था । ये सब प्रश्नद्वीपके अधीखर हुए ॥ ४ ॥ [उनके अपने-अपने अधिकृत वर्षोंमें] प्रथम शान्तहयवर्ष है तथा अन्य शिशिरवर्ष, सुखोदयवर्ष, आनन्दवर्ष, शिववर्ष, क्षेमकवर्ष और ध्रुववर्ष हैं॥ ५॥ तथा उनकी मर्यादा निश्चित करनेवाले अन्य सात पर्वत हैं । हे मुनिश्रेष्ट ! उनके नाम ये हैं, सुनो-॥६॥ गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुमि, सोमक, सुमना और सातवाँ वैभ्राज ॥ ७॥

वान्धाः । इन अति सुरम्य वर्ष-पर्वतों और वर्षोमें देवता Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

वसन्ति देवगन्धर्वसहिताः सततं प्रजाः ॥ ८॥ तेषु प्रण्या जनपदाश्चिराच स्रियते जनः। नाधयो व्याधयो वापि सर्वकालसुखं हि तत् ॥ ९ ॥ तेषां नद्यस्त सप्तेव वर्षाणां च सम्रद्रगाः । नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि श्रुताः पापं हरन्ति याः।१०। अत्रतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवाक्कमा । अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः ॥११॥ एते शैलास्तथा नद्यः प्रधानाः कथितास्तव । शुद्रशैलास्तथा नद्यस्तत्र सन्ति सहस्रशः। ताः पिवन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते ॥१२॥ अपसर्पिणी न तेषां वै न चैवोत्सर्पिणी द्विज । न त्वेवास्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु ॥१३॥ त्रेतायुगसमः कालः सर्वदैव महामते। प्रश्रद्वीपादिषु ब्रह्मञ्छाकद्वीपान्तिकेषु वै ॥१४॥ पश्च वर्षसदृसाणि जना जीवन्त्यनामयाः। धर्माः पञ्च तथैतेषु वर्णाश्रमविभागशः ॥१५॥ वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तात्रिबोध वदामि ते ॥१६॥ आर्यकाः कुरराश्चेव विदिश्या भाविनश्च ते । विप्रक्षत्रियवैद्यास्ते ग्रुद्राश्च मुनिसत्तम।।१७॥ जम्बृब्धप्रमाणस्तु तन्मध्ये सुमहांसारुः। प्रक्षत्तन्नामसंज्ञोऽयं प्रक्षद्वीपो द्विजोत्तम ॥१८॥ इज्यते तत्र भगवांस्तैर्वणरार्यकादिभिः। सोमरूपी जगत्स्रष्टा सर्वः सर्वेश्वरो हरिः।।१९॥ प्रश्रद्धीपप्रमाणेन प्रश्नद्वीपः समावृतः। तथैवेशुरसोदेन परिवेषाजुकारिणा ॥२०॥ इत्येवं तव मेत्रेय प्रश्नद्वीप उदाह्तः।

और गन्धवोंके सहित सदा निष्पाप प्रजा निवास करती है॥ ८॥ वहाँके निवासीगण पुण्यवान् होते हैं और वे चिरकालतक जीवित रहकर मरते हैं; उनको किसी प्रकारकी आधि-व्याधि नहीं होती, निरन्तर सुख ही रहता है ॥९॥ उन वर्षोंकी सात ही समुद्रगामिनी नदियाँ हैं। उनके नाम मैं तुम्हें वतलाता हूँ जिनके अवणमात्रसे वे पापोंको दूर कर देती हैं ॥ १०॥ वहाँ अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, अक्रमा, अमृतां और सुकृता-ये ही सात नदियाँ हैं ॥ ११॥ यह मैंने तुमसे प्रधान-प्रधान पर्वत और नदियोंका वर्णन किया है; वहाँ छोटे-छोटे पर्वत और नदियाँ तो और भी सहस्रों हैं। उस देशके हृष्ट-पुष्ट छोग सदा उन नदियोंका जल पान करते हैं ॥ १२ ॥ हे द्विज ! उन छोगोंमें हास अथवा वृद्धि नहीं होती और न उन सात वर्षोंमें युगकी ही कोई अवस्था है ॥ १३ ॥ हे महामते ! हे ब्रह्मन् ! प्रक्षद्वीपसे लेकर शाकद्वीपपर्यन्त छहीं द्वीपोंमें सदा त्रेतायुगके समान समय रहता है ॥ १४ ॥ इन द्वीपोंके मनुष्य सदा नीरोग रहकर पाँच हजार वर्षतक जीते हैं और इनमें वर्णाश्रम-विभागानुसार पाँचों धर्म (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिप्रह) वर्तमान रहते हैं ॥ १५॥

वहाँ जो चार वर्ण हैं वह मैं तुमको सुनाता अर्थकाः कुरराश्रेव विदिश्या भाविनश्र ते । वहाँ जो चार वर्ण हैं वह मैं तुमको सुनाता हैं। १६॥ हे मुनिसत्तम ! उस द्वीपमें जो आर्थक, कुरर, विदिश्य और भावी नामक जातियाँ हैं; वे ही कमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शृद्ध हैं ॥ १८॥ हे द्विजोत्तम ! उसीमें जम्बूब्र्यके ही परिमाणवाटण एक प्रश्च (पाकर) का ब्रश्च हैं, जिसके नामसे उसकी जगत्सष्टा सर्वः सर्वेश्वरो हिरः ॥१८॥ इसकी संज्ञा प्रश्नद्वीप हुई है ॥ १८॥ वहाँ आर्यकादि वर्णोद्वारा जगत्सष्टा, सर्वेश्वर, समावान् हिरा । वर्षो वर्षे व

शाल्मलस्येश्वरो वीरो वपुष्मांस्तत्सुताञ्छूणु । तेषां तु नामसंज्ञानि सप्तवर्षाणि तानि वै।।२२।। श्वेतोऽथ हरितश्चेव जीमृतो रोहितस्तथा। वैद्युतो मानसश्चेव सुप्रभश्च महासुने ॥२३॥ शाल्मलेन समुद्रोऽसौ द्वीपेनेक्षुरसोदकः। विस्तारद्विगुणेनाथ सर्वतः संवृतः स्थितः ॥२४॥ तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः। वर्षामिन्यञ्जका ये तु तथा सप्त च निम्नगाः ।।२५॥ कुमुद्योनत्र्येव तृतीयश्र वलाहकः। द्रोणो यत्र महौपध्यः स चतुर्थो महीधरः ॥२६॥ कङ्कस्तु पश्चमः पष्टो महिषः सप्तमस्तथा। ककुबान्पर्वतवरः सरिन्नामानि मे शृणु ॥२७॥ योनिस्तोया वितृष्णा च चन्द्रा मुक्ता विमोचनी । निवृत्तिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पापशान्तिदाः २८ श्वेतश्च हरितं चैव वैद्युतं मानसं तथा। जीमृतं रोहितं चैव सुप्रभं चापि शोभनम् । सप्तैतानि तु वर्षाणि चातुर्वर्ण्ययुतानि वै।।२९॥ शाल्मले ये तु वर्णाश्च वसन्त्येते महाम्रने । कपिलाश्वारुणाः पीताः कृष्णाश्चेव पृथक् पृथक् ३० ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः ग्रुद्राश्चेव यजन्ति तम्। भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानम्वययम्। वायुभृतं मखश्रेष्टैर्यज्ञानो यज्ञसंस्थितिम् ॥३१॥ देवानामत्र सान्निध्यमतीव सुमनोहरे। शाल्मिलः समहान्वक्षां नाम्ना निर्वृतिकारकः ॥३२॥ एष द्वीपः सम्रद्रेण सुरोदेन समावृतः। विस्ताराच्छाल्मलस्यैव समेन तु समन्ततः ॥३३॥ सरोदकः परिवृतः कुश्रद्वीपेन सर्वतः। शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः ॥३४॥

शाल्मलद्वीपके खामी वीरवर वपुष्मान् थे। उनके पुत्रोंके नाम सुनो-हे महामुने ! वे इवेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ थे। उनके सात वर्ष उन्होंके नामानुसार संज्ञावाले हैं॥ २२-२३॥ यह (प्रश्नद्वीपको चेरनेवाला) इञ्चरसका समुद्र अपनेसे दूने विस्तारवाले इस शाल्मलद्वीपसे चारों ओरसे घिरा हुआ है ॥ २४ ॥ वहाँ भी रहोंके उद्भवस्थानरूप सात पर्वत हैं, जो उसके सातों वर्षों के विभाजक हैं तथा सात नदियाँ ॥ २५ ॥ पर्वतोंमें पहला क्रुमुद, दूसरा उन्नत और तीसरा वलाहक है तथा चौथा द्रोणाचल है, जिसमें नाना प्रकारकी महोषिधयाँ हैं ॥ २६ ॥ पाँचवाँ कङ्क, छठा महिष और सातवाँ गिरिवर ककुग्रान् है। अव नदियोंके नाम सुनो ॥ २७ ॥ वे योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, मुक्ता, विमोचनी और निवृत्ति हैं तथा स्मरणमात्रसे ही सारे पापोंको शान्त कर देनेवाली हैं ॥ २८ ॥ स्वेत, हरित, वैद्युत, मानस, जीमूत, रोहित और अति शोभायमान सुप्रभ-ये उसके चारों वर्णीसे युक्त सात वर्ष हैं ॥ २९ ॥ हे महामुने ! शाल्मलद्वीपमें कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण-ये चार वर्ण निवास करते हैं जो पृथक्-पृथक् क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शृद्ध हैं । ये यजनशील लोग सबके आत्मा, अन्यय और यज्ञके आश्रय वायुरूप विष्णुभगवान्का श्रेष्ठ यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं || २०-३१ || इस अत्यन्त मनोहर द्वीपमें देवगण सदा विराजमान रहते हैं। इसमें शाल्मल (सेमल) का एक महान् वृक्ष है जो अपने नामसे ही अत्यन्त शान्तिदायक है ॥ ३२ ॥ यह द्वीप अपने समान ही विस्तारवाले एक मदिराके समुद्रसे सब ओरसे पूर्णतया घिरा हुआ है ॥ ३३॥ और यह सुरा-समुद्र शाल्मलद्वीपसे दृने विस्तारवाले कुशद्वीपद्वारा सब ओरसे परिवेष्टित है ॥ ३४॥

ज्योतिष्मतः कुश्रद्वीपे सप्त पुत्राञ्च्छुणुष्य तान् ।३५। कुश्रद्वीपमें [वहाँके अधिपति] ज्योतिष्मान्के

उद्भिदो वेणुमांश्रेव वैरथो लम्बनो धृतिः । प्रभाकरोऽथ कपिलस्तनामा वर्षपद्धतिः ॥३६॥ तसिन्वसन्ति मनुजाः सह दैतेयदानवैः। देवगन्धर्वयक्षकिम्पुरुषादयः ॥३७॥ वर्णास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः। दमिनः शुष्मिणः स्नेहा मन्देहाश्च महामुने ।।३८।। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्रानुक्रमोदिताः ३९ यथोक्तकर्मकर्तृत्वात्खाधिकारक्षयाय ते। तत्रैव तं कुशद्वीपे ब्रह्मरूपं जनार्दनम्। क्षपयन्त्युग्रमधिकारफलप्रदम् ॥४०॥ विद्वमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्पवांसाथा। कुशेशयो हरिश्रेव सप्तमो मन्दराचलः ॥४१॥ वर्षाचलास्तु सप्तेते तत्र द्वीपे महासुने। नद्यश्च सप्त तासां तु शृणु नामान्यनुक्रमात् ॥४२॥ धृतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा। विद्युद्म्मा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः ॥४३॥ अन्याः सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यस्तथाचलाः। कुशद्वीपे कुशस्तम्त्रः संज्ञया तस्य तत्स्मृतम् ॥४४॥ तत्त्रमाणेन स द्वीपो घृतोदेन समावृतः। घृतोद्श्र समुद्रो वै कौश्रद्वीपेन संवृतः ॥४५॥ कौश्चद्वीपो महाभाग श्रृयताश्चापरो महान्। कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणो यस्य विस्तरः॥४६॥ क्रौश्रद्वीपे द्वतिमतः पुत्रास्तस्य महात्मनः। तत्रामानि च वर्षाणि तेषां चक्रे महीपतिः ॥४७॥ कुशंलो मन्द्गश्चोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः । मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तेते तत्सुता मुने ॥४८॥ तत्रापि देवगन्धर्वसेविताः सुमनोहराः।

सात पत्र थे, उनके नाम सुनो । वे उद्भिद, वेणमान . वैरथ, छम्बन, घृति, प्रभाकर और कपिछ थे। उनके नामानसार ही वहाँके वर्षोंके नाम पड़े ॥ ३५-३६॥ उसमें दैत्य और दानवोंके सहित मनुष्य तथा देव. गन्धर्व. यक्ष और किन्नर आदि निवास करते हैं ॥ ३७ ॥ हे महामुने ! वहाँ भी अपने-अपने कर्मामें तत्पर दमी, शुष्मी, स्नेह और मन्देहनामक चार ही वर्ण हैं, जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शृद्ध ही हैं ॥ ३८-३९ ॥ अपने प्रारब्धस्यके निमित्त शास्त्रानुकूल कर्म करते हुए वहाँ कुशद्वीपमें ही वे ब्रह्मरूप जनार्दनकी उपासनाद्वारा अपने प्रारम्भफलके देनेवाले अत्युप्र अहंकारका क्षय करते हैं ॥ ४० ॥ हे महामुने ! उस द्वीपमें विद्रुम, हेमशैल, बुतिमान्, पुष्पवान्, कुरोशय, हरि और सातवाँ मन्दराचल ये सात वर्षपर्वत हैं। तथा उसमें सात ही निदयाँ हैं, उनके नाम क्रमशः सुनी-॥४१-४२॥ वे धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मति, विद्युत्, अम्भा और मंही हैं। ये सम्पूर्ण पापोंको हरनेवाली हैं॥ ४३॥ वहाँ और भी सहस्रों छोटी-छोटी नदियाँ और पर्वत हैं । कुराद्वीपमें एक कुराका झाड़ है । उसीके कारण इसका यह नाम पड़ा है ॥ ४४ ॥ यह द्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले घीके समुद्रसे घिरा हुआ है और वह घृत-समुद्र क्रोब्बद्वीपसे परिवेष्टित है ॥ ४५॥

हे महामाग ! अब इसके अगले क्रीश्चनामक कुशहीपस्य विस्ताराद् द्विगुणो यस्य विस्तर:॥४६॥ क्रीश्चदीपे द्वातिमतः पुत्रास्तस्य महात्मनः । तन्नामानि च वर्षाणि तेषां चक्रे महीपतिः ॥४७॥ जो पुत्र थे; उनके नामानुसार ही महाराज खुतिमान्के जो पुत्र थे; उनके नामानुसार ही महाराज खुतिमान्ने उनके वर्षोके नाम रखे॥ ४७॥ हे मुने ! उसके कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुमिन्ये सात पुत्र थे॥ ४८॥ बहाँ मी वेदवता और गन्धवेसीविताः सुमनोहराः । देवता और गन्धवेसीदितः अदिक्यादिक मनोहर सात वर्षन्वता महाद्वद्वे तेषां नामानि में भृष्णु॥४९॥ पर्वत हैं। हे महाद्वद्वे ! उनके नाम सुनो—॥४९॥

कौश्चश्च वामनश्चेव तृतीयश्चान्धकारकः। चतुर्थो रत्नशैलश्च खाहिनी हयसन्निमः ॥५०॥ दिवावृत्पश्चमश्रात्र तथान्यः पुण्डरीकवान् । दुन्दुभिश्च महाशैलो द्विगुणास्ते परस्परम्। द्वीपा द्वीपेषु ये शैला यथा द्वीपेषु ते तथा ॥५१॥ वर्षेष्वेतेषु रम्येषु तथा शैलवरेषु च। निवसन्ति निरातङ्काः सह देवगणैः प्रजाः ॥५२॥ पुष्कराः पुष्कला धन्यास्तिष्याख्याश्च महामुने । बाह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः ग्रुद्राश्रानुक्रमोदिताः।५३। नदीमेंत्रेय ते तत्र याः पिवन्ति शृणुष्व ताः । सप्तप्रधानाः शतशस्तत्रान्याः क्षुद्रनिम्नगाः॥५४॥ गौरी कुमुद्रती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा । क्षान्तिश्र पुण्डरीका च सप्तेता वर्षनिम्नगाः ॥५५॥ तत्रापि विष्णुर्भगवान्पुष्कराधैर्जनार्दनः। यांगे रुद्रसहराश्च इज्यते यज्ञसिन्धौ ॥५६॥ क्रौश्चद्वीपः समुद्रेण द्धिमण्डोद्केन च। आवृतः सर्वतः कौश्चद्वीपतुल्येन मानतः ॥५७॥ द्धिमण्डोदकश्रापि शाकद्वीपेन संवृतः। कौश्वद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन महासुने ॥५८॥ शाकद्वीपेश्वरस्थापि भन्यस्य सुमहात्मनः। सप्तैव तनयास्तेषां ददौ वर्षाणि सप्त सः ॥५९॥ जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मरीचकः। कुसुमोद्श्र मौदािकः सप्तमश्र महाद्रुमः ॥६०॥ तत्संज्ञान्येव तत्रापि सप्त वर्षाण्यज्ञमात्। तत्रापि पर्वताः सप्त वर्षविच्छेदकारिणः ॥६१॥ पूर्वस्तत्रोदयगिरिर्जलाधारस्तथापरः श्यामस्तथैवास्तगिरिद्विज। तथा रैवतकः आम्बिकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्वतोत्तमः ॥६२॥ ग्राकस्तत्र महावृक्षः सिद्धगन्धर्वसेवितः। यत्रत्यवातसंस्पर्शादाह्नाद्दो नजायते पुरः ॥६३॥

उनमें पहला क्रौञ्च, दूसरा वामन, तीसरा अन्ध-कारक, चौथा घोड़ीके मुखके समान रतमय खाहिनी पर्वत, पाँचवाँ दिवादृत्, छठा पुण्डरीकवान् और सातवाँ महापर्वत दुन्दुभि है। वे द्वीप परस्पर एक-दूसरेसे दूने हैं; और उन्हींकी माँति उनके पर्वत भी [उत्तरोत्तर द्विगुण] हैं ॥ ५०-५१ ॥ इन सुरम्य वर्षी और पर्वतश्रेष्ठोंमें देवगणोंके सहित सम्पूर्ण प्रजा निर्भय होकर रहती है ॥ ५२ ॥ हे महामुने ! वहाँके त्राह्मण; क्षत्रिय, वैश्य और शृद्ध क्रमसे पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य कहळाते हैं ॥ ५३ ॥ हे मैत्रेय ! वहाँ जिनका जल पान किया जाता है उन निदयों-का विवरण सुनो । उस द्वीपमें सात प्रधान तथा अन्य सैकड़ों क्षुद्र नदियाँ हैं ॥ ५४ ॥ वे सात वर्ष-नदियाँ गौरी, कुमुद्रती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, क्षान्ति और पुण्डरीका हैं ॥ ५५ ॥ वहाँ मी रुद्ररूपी जनार्दन भगवान् विष्णुकी पुष्करादि वर्णोद्वारा यज्ञादिसे पूजा की जाती है ॥ ५६ ॥ यह कोञ्चद्वीप चारों ओरसे अपने तुल्य परिमाणवाले दिधमण्ड (मट्टे) के समुद्रसे घिरा हुआ है ॥ ५७ ॥ और हे महामुने ! यह मट्टोका समुद्र भी शाकद्वीपसे घिरा हुआ है, जो विस्तारमें क्रीब्रद्वीपसे दूना है ॥ ५८॥

शाकद्वीपके राजा महात्मा मन्यके भी सात ही पुत्र थे। उनको भी उन्होंने पृथक्-पृथक् सात वर्ष दिये॥ ५९॥ वे सात पुत्र जल्द, कुमार, सुकुमार, मरीचक, कुसुमोद, मौदािक और महाद्रुम थे। उन्हींके नामानुसार वहाँ क्रमशः सात वर्ष हैं और वहाँ भी वर्षोंका विभाग करनेवाले सात ही पर्वत हैं ॥ ६०-६१॥ हे द्विज! वहाँ पहला पर्वत उदयाचल है और दूसरा जलाधार; तथा अन्य पर्वत रैवतक, स्याम, अस्ताचल, आम्विकेय और अति सुरम्य गिरि-श्रेष्ठ केसरी हैं॥ ६२॥ वहाँ सिद्ध और गन्धवोंसे सेवित एक अति महान् शाकवृक्ष है, जिसके वायुका स्पर्श कार्नेसे इद्धामें पुरम्ध अम्बाद्ध है, जिसके वायुका स्पर्श कार्नेसे इद्धामें पुरम्ध अम्बाद्ध है, जिसके वायुका स्पर्श कार्नेसे इद्धामें पुरम्ध आहाद्ध उद्धान होता है॥६३॥

तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः। नद्यश्रात्र महापुण्याः सर्वपापभयापहाः ॥६४॥ सुकुमारी कुमारी च नलिनी घेनुका च या। इक्ष्य वेणका चैव गमस्ती सप्तमी तथा।।६५॥ अन्याश्र शतशस्तत्र शुद्रनद्यो महामुने । महीधरास्तथा सन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ॥६६॥ ताः पिवन्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिताः । वर्षेषु ते जनपदाः स्वर्गादम्येत्य मेदिनीम् ॥६७॥ धर्महानिर्न तेष्वस्ति न सङ्घर्षः परस्परम्। मर्यादान्युत्क्रमो नापि तेषु देशेषु सप्तसु ॥६८॥ वङ्गाश्च मागधाश्चेव मानसा मन्दगास्तथा। वङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियास्तथा। वैश्यास्त मानसास्तेषां ग्रुद्रास्तेषां तु मन्दगाः।६९। शाकद्वीपे तु तैर्विष्णुः सूर्यरूपधरो सुने । यथोक्तैरिज्यते सम्यक्कर्मभिर्नियतात्मभिः॥७०॥ शाकद्वीपस्तु मैत्रेय श्वीरोदेन समावृतः। शाकद्वीपप्रमाणेन वलयेनेव वेष्टितः ॥७१॥ क्षीराब्धिः सर्वतो ब्रह्मन्युष्कराख्येन वेष्टितः। द्वीपेन शाकद्वीपाचु द्विगुणेन समन्ततः ॥७२॥

पुष्करे सवनस्थापि महावीरोऽभवत्सुतः।
धातिकश्च तयोस्तत्र द्वे वर्षे नामचिह्निते।
महावीरं तथैवान्यद्धातकीखण्डसंज्ञितम्॥७३॥
एकश्चात्र महाभाग प्रख्यातो वर्षपर्वतः।
मानसोत्तरसंज्ञो व मध्यतो वलयाकृतिः॥७४॥
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पश्चाशदुच्छितः।
तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः॥७५॥
पुष्करद्वीपवलयं मध्येन विभजन्तिव।
स्थितोऽसौ तेन विच्छिनं जातं तद्वर्षकद्वयम्॥७६॥
वलयाकारमेकैकं तयोर्वर्षं तथा गिरिः॥७०॥
दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्तिः भानवाः भिवारा ८०

वहाँ चातुर्वर्ण्यसे युक्त अति पवित्र देश और समस्त पाप तथा भयको दूर करनेवाली सुकुमारी, कुमारी, निलनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और गमस्ती-ये सात महापवित्र नदियाँ हैं ॥ ६४-६५॥ हे महामने ! इनके सिवा उस द्वीपमें और भी सैकड़ों छोटी-छोटो नदियाँ और सैकडों-हजारों पर्वत हैं ॥ ६६॥ स्वर्ग-भोगके अनन्तर जिन्होंने पृथिवी-तलपर आकर जलद आदि वर्षोंमें जन्म प्रहण किया है वे लोग प्रसन होकर उनका जल पान करते हैं ॥ ६७ ॥ उन सातों वर्षों में धर्मका हास पारस्परिक संघर्ष (कलह) अथवा मर्यादाका उल्लंघन कमी नहीं होता ॥ ६८॥ वहाँ बंग, मागध, मानस और मन्दग—ये चार वर्ण हैं। इनमें बंग सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, मागन क्षत्रिय हैं, मानस वैस्य हैं तथा मन्दग शूद हैं ॥ ६९॥ हे मुने ! शाकद्वीपमें शास्त्रानुकूल कर्म करनेवाले पूर्वोक्त चारों वर्णोद्वारा संयत चित्तसे विधिपूर्वक सूर्यरूपधारी. भगवान् विष्णुकी उपासना की जाती है।। ७०॥ हे मैत्रेय ! वह शाकद्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले मण्डलाकार दुग्धके समुद्रसे घिरा हुआ है ॥ ७१ ॥ और हे ब्रह्मन् ! वह क्षीर-समुद्र शाकद्वीपसे दूने परिमाणवाळे पुष्करद्वीपसे परिवेष्टित है ॥ ७२ ॥

पुष्करद्वीपमें वहाँके अधिपति महाराज सवनके महावीर और धातिकनामक दो पुत्र हुए । अतः उन दोनोंके नामानुसार उसमें महावीर-खण्ड और धातिकी-खण्डनामक दो वर्ष हैं ॥ ७३ ॥ हे महाभाग । इसमें मानसोत्तरनामक एक ही वर्ष-पर्वत कहा जाता है जो इसके मध्यमें वल्र्याकार स्थित है तथा पचास सहस्र योजन ऊँचा और इतना ही सब ओर गोलाकार फैला हुआ है ॥ ७४-७५ ॥ यह पर्वत पुष्करद्वीपक्षप गोलेको मानों बीचमेंसे विमक्त कर रहा है और इससे विमक्त होनेसे उसमें दो वर्ष हो गये हैं; उनमेंसे प्रत्येक वर्ष और वह पर्वत बल्र्याकार ही है ॥ ७६-७७ ॥ वहाँके मनुष्य रोग, शोक और रागद्वेषादिसे रहित

निरामया विशोकाश्च रागद्वेषादिवर्जिताः ॥७८॥ अधमोत्तमो न तेष्वास्तां न वध्यवधकौ द्विज । नेष्यीस्या मयं द्वेषो दोषो लोभादिको न च ॥७९॥ महावीरं वहिर्वर्षं धातकीखण्डमन्ततः। मानसोत्तरशैंलस देवदैत्यादिसेवितम् ॥८०॥ सत्यानृते न तत्रास्तां द्वीपे पुष्करसंज्ञिते। न तत्र नद्यः शैला वा द्वीपे वर्षद्वयान्त्रिते ॥८१॥ तुल्यवेषास्तु मनुजा देवास्तत्रैकरूपिणः। वर्णाश्रमाचारहीनं धर्माचरणवर्जितम् ॥८२॥ त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चश्रूपारहितश्च यत्। वर्षद्वयं तु मैत्रेय भौमः स्वर्गोऽयम्रुत्तमः ॥८३॥ सर्वर्तुसुखदः कालो जरारोगादिवर्जितः। धातकीखण्डसंज्ञेऽथ महावीरे च वै मने ॥८४॥ न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानग्रुत्तमम् । तसिनिवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः ॥८५॥ खाद्दकेनोदिधना पुष्करः परिवेष्टितः। समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलं तथा।।८६॥

एवं द्वीपाः समुद्रेश्च सप्त सप्तिमरावृताः ।
द्वीपश्चेव समुद्रश्च समानौ द्विगुणौ परौ ॥८७॥
पयांसि सर्वदा सर्वसमुद्रेषु समानि वै ।
न्यूनातिरिक्तता तेषां कदाचिन्नैव जायते ॥८८॥
स्थालीस्थमित्रसंयोगादुद्रेकि सलिलं यथा ।
तथेन्दुवृद्धौ सलिलमम्भोधौ म्रुनिसत्तम ॥८९॥
अन्यूनानिरिक्ताश्च वर्धन्त्यापो इसन्ति च ।
उद्यास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः ग्रुक्ककृष्णयोः ॥९०॥
दशोत्तराणि पश्चेव ह्यनुलानां शतानि वै ।
अपां वृद्धिश्वयौ दृष्टी सामुद्रीणां महामुने ॥९१॥॥

हुए दश सहस्र वर्षतक जीवित रहते हैं॥ ७८॥ हे द्विज ! उनमें उत्तम-अधम अथवा वध्य-वधक आदि (विरोधी) भाव नहीं हैं और न उनमें ईर्ष्या. अस्या, भय, द्रेष और छोभादि दोष ही हैं ॥७९॥ महावीरवर्ष मानसोत्तर पर्वतके वाहरकी ओर है और धातकी-खण्ड भीतरकी ओर । इनमें देव और दैत्य आदि निवास करते हैं ॥ ८० ॥ दो खण्डोंसे युक्त उस पुष्करद्वीपमें सत्य और मिथ्याका व्यवहार नहीं है और न उसमें पर्वत तथा नदियाँ ही हैं॥ ८१॥ वहाँके मनुष्य और देवगण समान वेप और समान रूपवाले होते हैं। हे मैत्रेय ! वर्णाश्रमाचारसे हीन, काम्य कर्मोंसे रहित तथा वेदत्रयी, कृषि, दण्डनीति और ग्रुश्रृषा आदिसे श्र्न्य वे दोनों वर्ष तो मानों अत्युत्तम भौम (पृथिवीके) स्वर्ग हैं ॥ ८२-८३ ॥ हे मुने ! उन महावीर और धातुकी-खण्डनामक वर्षोंमें काळ (समय) समस्त ऋतुओंमें सुखदायक और जरा तथा रोगादिसे रहित रहता है ॥ ८४ ॥ पुष्करद्वीपमें ब्रह्माजीका उत्तम निवासस्थान एक न्यप्रोध (वट) का बृक्ष है, जहाँ देवता और दानवादिसे पूजित श्रीव्रह्माजी विराजते हैं ॥८५॥ पुष्करद्वीप चारों ओरसे अपने ही समान विस्तारवाछे मीठे पानीके समुद्रसे मण्डलके समान घिरा हुआ है ॥ ८६ ॥

इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं और वे द्वीप तथा [उन्हें वेरनेवाले] समुद्र परस्पर समान हैं, और उत्तरोत्तर दृने होते गये हैं ॥ ८७ ॥ सभी समुद्रोंमें सदा समान जल रहता है, उसमें कभी न्यूनता अथवा अधिकता नहीं होती ॥ ८८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! पात्रका जल जिस प्रकार अग्निका संयोग होनेसे उवले लगता है उसी प्रकार चन्द्रमाकी कलाओंके बढ़नेसे समुद्रका जल मी बढ़ने लगता है ॥ ८९ ॥ शुक्र और कृष्ण पक्षोंमें चन्द्रमाके उदय और अस्तसे न्यूनाधिक न होते हुए ही जल घटता और बढ़ता है ॥ ९० ॥ हे महामुने ! समुद्रके जलकी वृद्धि और क्षय पाँच सौ दश (५१०) अंगुल्तक देखी कालाती है ॥ ९१ ॥

स्वयग्रपस्थितम् । भोजनं प्रष्करद्वीपे तत्र पदुसं भुञ्जते वित्र प्रजाः सर्वाः सदैव हि ॥९२॥

स्वाद्दकस्य परितो इक्यतेऽलोकसंस्थितिः। द्विगुणा काश्चनी भूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता ॥९३॥ लोकालोकस्ततस्थैलो योजनायतविस्तृतः। उच्छायेणापि तावन्ति सहस्राण्यचलो हि सः ॥९४॥ ततस्तमः समावृत्य तं शैलं सर्वतः स्थितम् । तमश्राण्डकटाहेन समन्तात्परिवेष्टितम् ॥९५॥ पश्चाशत्कोटिविस्तारा सेयमुवी महामुने। सद्वीपाव्धिमहीधरा ॥९६॥ सहैवाण्डकटाहेन सेयं घात्री विधात्री च सर्वभृतगुणाधिका । आघारभूता सर्वेषां मैत्रेय जगतामिति ॥९७॥

हे विप्र ! पुष्करद्वीपमें सम्पूर्ण प्रजावर्ग सर्वदा [विना प्रयत्नके] अपने-आप ही प्राप्त हुए षड्रस भोजनका आहार करते हैं ॥ ९२ ॥

खादूदक (मीठे पानीके) समुद्रके चारों ओर लोक-निवाससे शून्य और समस्त जीवोंसे रहित उससे दूनी सुवर्णमयी भूमि दिखायी देती है ॥ ९३ ॥ वहाँ दश सहस्र योजन विस्तारवाला लोकालोक-पर्वत है। वह पर्वत ऊँचाईमें भी उतने ही सहस्र योजन है ॥ ९४ ॥ उसके आगे उस पर्वतको सब ओरसे आवृतकर घोर अन्धकार छाया हुआ है, तथा वह अन्वकार चारों ओरसे ब्रह्माण्ड-कटाहरी आवृत है ॥ ९५ ॥ हे महामुने ! अण्डकटाहके सहित द्वीप, समुद्र और पर्वतादियुक्त यह समस्त भूमण्डल पचास करोड़ योजन विस्तारवाळा है ॥ ९६ ॥ हे मैत्रेय ! आकाशादि समस्त भूतोंसे अधिक गुणवाली यह पृथिवी सम्पूर्ण जगत्की आधारमूता और उसका पालन तथा उद्भव करनेवाली है ॥ ९७ ॥

3×CERESENE C

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

सात पाताललोकोंका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

विस्तार एष कथितः पृथिव्या भवतो मया। सप्ततिस्तु सहस्राणि द्विजोच्छ्रायोऽपि कथ्यते ॥ १ ॥ दशसाहस्रमेकैकं पातालं म्रनिसत्तम । अतलं वितलं चैव नितलं च गमस्तिमत्। महारूयं सुतलं चाप्रयं पातालं चापि सप्तमम् ॥ २ ॥ ग्रक्ककृष्णारुणाः पीताः शर्कराः शैलकाश्चनाः । भूमयो यत्र मैत्रेय वरप्रासादमण्डिताः॥३॥ तेषु दानवदैतेया यक्षाश्र शतशस्तथा।

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विज! मैंने तुमसे यह पृथिवीका विस्तार कहा; इसकी ऊँचाई भी सत्तर सहस्र योजन कही जाती है॥ १॥ हे मुनिसत्तम ! अतल, वितल, नितल, गमस्तिमान्, महातल, सुतल और पाताल इन सार्तोमेंसे प्रत्येक दश-दश सहस्र योजनकी दूरीपर है ॥२॥ हे मैत्रेय ! सुन्दर महलोंसे सुशोमित वहाँकी भूमियाँ शुक्र, कृष्ण, अरुण और पीत वर्णकी तथा शर्करामयी (कॅंकरीली), शैली (पत्थरकी) और सुवर्णमयी है ॥ ३॥ हे महामुने ! उनमें दानव, दैत्य, यक्ष और बड़े-बड़े नाग आदिकों-निवसन्ति महानागजात्मभ्य Salमहाद्वने पिष्ट्रिती हैं। शिष्ट्रा जातियाँ निवास करती हैं॥ १॥

खर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारदः। प्राह स्वर्गसदां मध्ये पातालाभ्यागतो दिवि ॥ ५ ॥ आह्वादकारिणः ग्रुआ मणयो यंत्र सुप्रभाः । नागाभरणभूपासु पातालं केन तत्समम्।।६।। दैत्यदानवकन्याभिरितश्रेतश्र शोभिते। पाताले कस्य न प्रीतिविधक्तस्यापि जायते ॥ ७॥ दिवार्करश्मयो यत्र प्रभां तन्वन्ति नातपम् । शशिरिक्मर्न शीताय निशि द्योताय केवलम् ॥ ८॥ मक्ष्यभोज्यमहापानम्रदितैरपि भोगिभिः। यत्र न ज्ञायते काला गतांऽपि दन्जादिभिः ॥ ९ ॥ वनानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकराः । पुंस्कोकिलाभिलापाश्च मनोज्ञान्यम्बराणि च ।।१०।। भृषणान्यतिशुभ्राणि गन्धाट्यं चानुलेपनम् । वीणावेणुमृदङ्गानां खनास्तूर्याणि च द्विज ॥११॥ एतान्यन्यानि चोदारभाग्यभोग्यानि दानवैः । दैत्योरगैश्र भ्रज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः ॥१२॥ पातालानामधश्रास्ते विष्णोर्या तामसी तनः । शेषाख्या यद्गणान्वकुं न शक्ता दैत्यदानवाः ॥१३॥ योऽनन्तः पठ्यते सिद्धैर्दैवो देवर्षिपूजितः । स सहस्रशिरा व्यक्तस्यस्तिकामलभूषणः ॥१४॥ फणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन्दिशः। सर्वान्करोति निर्वीर्यान् हिताय जगतोऽसुरान्।।१५॥ मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ यः सदैवैककुण्डलः। किरीटी सम्धरो भाति साग्निः श्वेत इवाचलः ॥१६॥ नीलवासा मदोत्सिक्तः श्वेतहारोपशोभितः । साअगङ्गाप्रवाहोऽसौ ्कैलासाद्भिरिवापरः ॥१७॥

एक बार नारदजीने पाताछछोकसे खर्गमें आकर वहाँके निवासियोंसे कहा था कि 'पाताल तो खर्गसे भी अधिक सुन्दर है' ॥५॥ जहाँ नागगणके आभूषणोंमें सुन्दर प्रभायुक्त आह्नादकारिणी शुभ्र मणियाँ जड़ी हुई हैं उस पातालको किसके समान कहें ? ॥ ६॥ जहाँ-तहाँ दैत्य और दानवोंकी कन्याओंसे सुशोमित पाताल्लोकमें किस मुक्त पुरुपकी भी प्रीति न होगी ।।।।। जहाँ दिनमें सूर्यकी किरणें केवल प्रकाश ही करती हैं, घाम नहीं करतीं; तथा रातमें चन्द्रमाकी किरणोंसे शीत नहीं होता, केवल चाँदनी ही फैलती है ।।८।। जहाँ भक्ष्य, भोज्य और महापानादिके भोगोंसे आनन्दित सर्पों तथा दानवादिकोंको समय जाता हुआ भी प्रतीत नहीं होता ॥ ९॥ जहाँ सुन्दर वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर और कमळोंके वन हैं, जहाँ नरकोकिलोंकी सुमधुर कूक गूँजती है एवं आकाश मनोहारी है ॥ १०॥ और हे द्विज! जहाँ पातालिनवासी दैत्य, दानव एवं नागगण-द्वारा अति स्वच्छ आभूषण, सुगन्धमय अनुछेपन, वीणा, वेण आर मृदंगादिके खर तथा तुर्य-ये सब एवं भाग्यशालियोंके भोगनेयोग्य और भी अनेक भोग भोगे जाते हैं ॥ ११-१२॥

पातालोंके नीचे विष्णुमगवान्का शेप नामक जो तमोमय विग्रह है उसके गुणोंका दैत्य अथवा दानवगण भी वर्णन नहीं कर सकते॥ १३॥ जिन देवर्षिपूजित देवका सिद्धगण 'अनन्त' कहकर बखान करते हैं वे अति निर्मल, स्पष्ट खस्तिक चिह्नोंसे विभूषित तथा सहस्र शिरवाले हैं॥ १४॥ जो अपने फणोंकी सहस्र मणियोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए संसारके कल्याणके लिये समस्त अंधुरोंको वीर्यहीन करते रहते हैं ॥१५॥ मदके कारण अरुणनयन, सदैव एक ही कुण्डल पहने हुए तथा मुकुट और माला आदि धारण किये जो अग्नियुक्त क्वेत पर्वतके समान सुशोमित हैं॥१६॥ मदसे उन्मत्त हुए जो नीलाम्बर तथा इवेत हारोंसे सुशोमित होकर मेघमाला और गंगाप्रवाहसे युक्त दूसरे केलास-पूर्वतके समान विराजमान हैं॥१७॥

लाङ्गलासक्तहस्तात्रो विश्रन्युसलग्रुचमम्। उपाखते खर्यं कान्त्या यो वारुण्या च मूर्त्तया ॥१८॥ कल्पान्ते यस्य वक्त्रेम्यो विषानलशिखोज्ज्वलः । सङ्कर्षणात्मको रुद्रो निष्कम्यात्ति जगत्त्रयम् ॥१९॥ स विश्रच्छेखरीभृतमशेषं क्षितिमण्डलम्। आस्ते पातालमूलस्यः शेषोऽशेषसुरार्चितः ॥२०॥ तस वीर्य प्रभावश्च खरूपं रूपमेव च। न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं च त्रिदशैरपि ॥२१॥ यस्येषा सकला प्रथ्वी फणामणिशिखारुणा । आस्ते क्रसममालेव कस्तद्वीर्यं वदिष्यति ॥२२॥ यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः। तदा चलति भूरेषा साब्धितोया सकानना ॥२३॥ गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः किन्नरोरगचारणाः । नान्तं गुणानां गच्छन्ति तेनानन्तोऽयमव्ययः।२४। नागवधृहस्तैर्लेपितं हरिचन्दनम्। ग्रहुः श्वासानिलापास्तं याति दिश्चद्वासताम्॥२५॥ यमाराध्य प्रराणविंगेगी ज्योतींवि तत्त्वतः । ज्ञातवान्सकलं चैव निमित्तपिठतं फलम्।।२६।। तेनेयं नागवर्येणं शिरसा विष्टता मही। विमृतिं मालां लोकानां सदेवासुरमानुषाम् ॥२७॥

जो अपने हाथोंमें हल और उत्तम मूसल धारण किये हैं तथा जिनकी उपासना शोभा और वारुणी देवी खर्यं मूर्तिमती होकर करती हैं॥ १८॥ कल्पान्तमें जिनके मुखोंसे विषाग्निशिखाके समान देदीप्यमान संकर्षण-नामक रुद्र निकलकर तीनों छोकोंका भक्षण कर जाता है ॥१९॥ वे समस्त देव-गणोंसे बन्दित शेषभगवान् अशेष भूमण्डलको मुकुटवत् धारण किये हुए पाताल-तलमें विराजमान हैं ॥२०॥ उनका बल-बीर्य, प्रमाव, खरूप (तत्त्व) और रूप (आकार) देवताओंसे भी नहीं जाना और कहा जा सकता ॥२१॥ जिनके फणोंकी मणियोंकी आसा-से अरुण वर्ण हुई यह समस्त पृथिवी फूलोंकी मालाके समान रखी हुई है उनके बल-वीर्यका वर्णन मला कौन करेगा ? ॥ २२ ॥ जिस समय मदमत्तनयन शेषजी जमुहाई छेते हैं उस समय समुद्र और वन आदिके सिहत यह सम्पूर्ण पृथिवी चलायमान हो जाती है ॥२३॥ इनके गुणोंका अन्त गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, नाग और चारण आदि कोई भी नहीं पा सकते; इसिंखेये ये अविनाशी देव 'अनन्त' कहलाते हैं ॥ २४ ॥ जिनका नाग-वधुओंद्वारा लेपित हरिचन्दन पुनः-पुनः स्वास-वायुसे छूट-छूटकर दिशाओंको सुगन्धित करता रहता है ॥२५॥ जिनकी आराधनासे पूर्वकालीन महर्षि गर्गने समसा ज्योतिर्मण्डल (प्रहनक्ष-त्रादि) और शक्रुन-अपशकुनादि नैमित्तिक फलोंको तत्त्वतः जाना था ॥२६॥ उन नागश्रेष्ठ शेषजीने इस पृथिवीको अपने मस्तकपर धारण किया हुआ है, जो स्वयं भी देव, असुर और मनुष्योंके सहित सम्पूर्ण छोकमाछा (पाताछादि समस्त छोकों) को धारण किये हुए हैं ॥२७॥

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे पञ्चमोऽच्यायः ॥ ५ ॥



बठा अध्याय

भिन्न-भिन्न नरकोंका तथा भगवन्नामके माहात्म्यका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

ततश्र नरका वित्र भुवोऽधः सलिलस च। पापिनो येषु पात्यन्ते ताञ्च्छुणुष्य महामुने ॥ १ ॥ रौरवः सकरो रोधस्तालो विश्रसनस्तथा। महाज्वालस्तप्तक्रमभो लवणोऽथ विलोहितः ॥ २ ॥ रुधिराम्भो वैतरणिः कृमीशः कृमिभोजनः । असिपत्रवनं कृष्णो लालामक्षश्र दारुणः ॥ ३॥ तथा पूयवहः पापो विद्वज्वालो ह्यथःशिराः । कालसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च ॥ ४॥ श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठश्राप्रचिश्र तथा परः । इत्येवमादयश्चान्ये नरका भृशदारुणाः ॥ ५॥ यमस्य विषये घोराः शस्त्राग्निभयदायिनः। पतन्ति येषु पुरुषाः पापकर्मरतास्तु ये ॥ ६ ॥ कूटसाक्षी तथाऽसम्यक्पक्षपातेन यो वदेत् । यश्चान्यद्नृतं वक्ति स नरो याति रौरवम् ॥ ७ ॥ भ्रूणहा पुरहन्ता च गोन्नश्च मुनिसत्तम। यान्ति ते नरकं रोधं यश्रोच्छ्वासनिरोधकः ॥ ८ ॥ सुरापो ब्रह्महा हर्ता सुवर्णस च स्करे। प्रयान्ति नरके यश्र तैः संसर्गमुपैति वै।। ९।। राजन्यवैश्यहा ताले तथैव गुरुतल्पगः। तप्तकुण्डे खसुगामी हन्ति राजभटांश्र यः ॥१०॥ साध्वीविकयकृद्धन्धपालः केसरिविकयी। तप्तलोहे पतन्त्येते यश्र मक्तं परित्यजेत् ॥११॥ स्तुषां सुतां चापि गत्वा महाज्वाले निपात्यते । अवमन्ता गुरूणां यो यश्राक्रोष्टा नराघमः ॥१२॥

श्रीपराशरजी बोले-हे विप्र ! तदनन्तर पृथिवी और जलके नीचे नरक हैं जिनमें पापी लोग गिराये जाते हैं। हे महामुने! उनका विवरण सुनो।।१।। रौरव, स्कर, रोध, ताल, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, ल्वण, विलोहित, रुधिराम्भ, वैतरणि, कृमीश, कृमिमोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, लालामक्ष, दारुण, प्यवह, पाप, विहुज्वाल, अधःशिरा, सन्दंश, कालस्त्र, तमस्, आवीचि, स्वमोजन, अप्रतिष्ठ और अप्रचि—ये सब तथा इनके सिवा और भी अनेकों महाभयङ्कर नरक हैं, जो यमराजके शासनाधीन हैं और अति दारुण शस्त्र-भय तथा अग्नि-भय देनेवाले हैं और जिनमें जो पुरुष पापरत होते हैं वे ही गिरते हैं ॥२—६॥

जो पुरुष कूटसाक्षी (झूठा गवाह अर्थात् जान-कर भी न बतलानेवाला या कुछ-का-कुछ कहनेवाला) होता है अथवा जो पश्चपातसे यथार्थ नहीं बोछता और जो मिथ्या-भाषण करता है वह रौरवनरकर्मे जाता है ॥ ७ ॥ हे मुनिसत्तम ! भ्रूण (गर्म) नष्ट करनेवाछे प्रामनाशक और गो-हत्यारे छोग रोध नामक नरकमें जाते हैं जो स्वासोच्छ्वासको रोकनेवाछा है ॥८॥ मद्य-पान करनेवाला, ब्रह्मघाती, सुवर्ण चुराने-वाला तथा जो पुरुष इनका संग करता है ये सत्र सूकरनर्कमें जाते हैं ॥९॥ क्षत्रिय अथवा वैश्यका वध करनेवाला तालनरकमें तथा गुरुखीके साथ गमन करनेवाला, मगिनीगामी और राजदृतोंको मारनेवाला पुरुष तप्तकुण्डनरकामें पड़ता है ॥१०॥ सतीस्त्रीको वेचने-वाला, कारागृहरक्षक, अस्वविक्रोता और भक्तपुरुषका त्याग करनेवाळा ये सब छोग तप्तछोहनरकमें गिरते हैं ॥११॥ पुत्रंबधू और पुत्रीके साथ विषय करनेवाला पुरुष महाज्वालनरकमें गिराया जाता है, तथा जो नराधम गुरुजनोंका अपमान करनेवाला और उनसे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

यश्च वेदविक्रयिकश्च यः । वेदद्ययिता अगम्यगामी यक्च स्याचे यान्ति लवणं द्विज ।१३। चोरो विलोहे पतति मर्यादाद्यकस्तथा ॥१४॥ देवद्विजिपतृद्वेष्टा रत्नद्पयिता स याति कृमिभक्षे वै कृमीशे च दुरिष्टकृत ॥१५॥ पितदेवातिथींस्त्यक्त्वा पर्यश्नाति नराधमः । लालामक्षे स यात्युग्रे शरकर्ता च वेधके ॥१६॥ करोति कर्णिनो यश्च यश्च खद्गादिकुन्नरः । प्रयान्त्येते विशसने नरके भृशदारुणे ॥१७॥ असत्प्रतिगृहीता तु नरके यात्यधोष्ठखे। अयाज्ययाजकश्रेव तथा नक्षत्रसूचकः ॥१८॥ वेगी पूयवहे चैको याति मिष्टान्न सुङ्नरः ॥१९॥ लाक्षामांसरसानां च तिलानां लवणस्य च । विकेता ब्राह्मणो याति तमेव नरकं द्विज ॥२०॥ मार्जारकुक्कुटच्छागश्चवराहविहङ्गमान् पोषयन्नरकं याति तमेव द्विजसत्तम।।२१॥ रङ्गोपजीवी कैवर्तः कुण्डाशी गरदस्तथा। द्वची माहिषकक्चैव पर्वकारी च यो द्विजः ॥२२॥ आगारदाही मित्रप्तः शाकुनिर्प्रामयाजकः। रुधिरान्धे पतन्त्येते सोमं विक्रीणते च ये ॥२३॥ मलहा प्रामहन्ता च व्याति वितरणीं नर्ी। रिप्ता

दुर्वचन बोलनेवाला होता है तथा जो वेदकी निन्दा करनेवाला, वेद वेचनेवाला या अगम्या ख्रीसे सम्भोग करता है, हे द्विज! वे सब लवणनरकमें जाते हैं ॥१२-१३॥ चोर तथा मर्यादाका उञ्ज्बन करने-बाला पुरुष विलोहितनरकमें गिरता है॥ १४॥ देव, द्विज और पितृगणसे द्वेष करनेवाला तथा रक्षको दूषित करनेवाला कृमिमक्षनरकमें और अनिष्ट यज्ञ करनेवाला कृमीशनरकमें जाता है॥१५॥

जो नराधम पितृगण, देवगण और अतिथियोंको छोड़कर उनसे पहले भोजन कर लेता है वह अति उप्र लालामक्षनरकमें पडता है; और वाण बनाने-वाला वेधकनरकमें जाता है 11१६॥ जो मनुष्य कर्णा नामक वाण बनाते हैं और जो खडगादि शस्त्र बनानेवाले हैं वे अति दारुण विशसननरकमें गिरते हैं ॥ १७॥ असत्-प्रतिप्रह (दृषित उपायोंसे धन-संग्रह) करनेवाला, अयाज्य-याजक और नक्षत्रो-पजीवी (नक्षत्र-विद्याको न जानकर भी उसका ढोंग रचनेवाला) पुरुष अधोमुखनरकमें पड़ता है ॥१८॥ साहस (निष्ठुर कर्म) करनेवाला पुरुष पूयवह-नरकमें जाता है, तथा [पुत्र-मित्रादिकी बच्चना करके] अकेले ही खादु मोजन करनेवाला और लाख, मांस, रस, तिल तथा लवण आदि बेचनेवाला ब्राह्मण भी उसी (पूयवह) नरकमें गिरता है ॥ १९-२०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! विलाव, कुक्कुट, छाग, अस्व, शूकर तथा पक्षियोंको [जीविकाके छिये] पाछनेसे भी पुरुष उसी नरकमें जाता है ॥ २१ ॥ नट या मञ्ज-वृत्तिसे रहनेवाला, धीवरका कर्म करनेवाला, कुण्ड (उपपतिसे उत्पन्न सन्तान) का अन्न खाने-बाला, विष देनेवाला, चुगलखोर, स्त्रीकी असद्-वृत्तिके आश्रय रहनेवाला, धन आदिके लोमसे बिना पर्वके अमाबास्या आदि पर्वदिनोंका कार्य कराने-वाला द्विज, घरमें आग लगानेवाला, मित्रकी हत्या करने-वाळा, राकुन आदि बतानेवाळा, प्रामका पुरोहित तथा सोम (मदिरा) वेचनेवाला—ये सव रुधिरान्धनरकर्मे गिरते हैं ॥२२-८३॥ अधन्ता आमको नष्ट करने-वाला पुरुष वैतर्णीनरकमें जाता है, तथा जो लोग

रेतः पातादिकत्तीरो मर्यादा भेदिनो हि ये। ते कृष्णे यान्त्यशौचाइच कुहकाजीविनइच ये।।२५॥ असिपत्रवनं याति वनच्छेदी वृथैव यः। औरश्रिको मृगव्याघो बह्बिज्वाले पतन्ति वै॥२६॥ यान्त्येते द्विज तत्रैव ये चापाकेषु वह्विदाः ॥२७॥ त्रतानां लोपको यक्च खाश्रमाद्विच्युतक्च यः । सन्दंशयातनामध्ये पततस्तावुभावपि ॥२८॥ दिवा खप्ने च स्कन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः। पुत्रैरध्यापिता ये च ते पतन्ति श्वमोजने ॥२९॥ एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः। येषु दुष्कृतकर्माणः पच्यन्ते यातनागताः ॥३०॥ यथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः। भुज्यन्ते तानि पुरुपैर्नरकान्तरगोचरैः ॥३१॥ वर्णाश्रमविरुद्धं च कर्म क्रवन्ति ये नराः। कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते ॥३२॥ अधःशिरोभिर्दश्यन्ते नारकैर्दिवि देवताः । देवाश्राधोप्रस्वान्सर्वानधः पश्यन्ति नारकान् ।३३। स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पश्चवो नराः । धार्मिकास्त्रिद्शास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम्।।३४॥ द्वितीयानुक्रमास्तथा। सहस्रभागप्रथमा सर्वे ह्येते महाभाग यावन्युक्तिसमाश्रयाः ॥३५॥ यावन्तो जन्तवः खर्गे तावन्तो नरकौकसः। पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्गुखः ॥३६॥ पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा। तथा तथैव संस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः ॥३७॥ पापे गुरूणि गुरुणि खल्पान्यल्पे च तद्विदः।

वीर्यपातादि करनेवाले, खेतोंकी वाड़ तोड़नेवाले, अपवित्र और छल्द्वतिके आश्रय रहनेवाले होते हैं वे कृष्णनरकमें गिरते हैं ॥२४-२५॥

जो वृथा ही वनोंको काटता है वह असिपत्रवननरकमें जाता है। मेपोपजीवी (गइरिये) और व्याधगग विहुज्ञालनरकमें गिरते हैं तथा हे द्विज़! जो
कच्चे घड़ों अथवा ईंट आदिको पकानेके लिये उनमें
अग्नि डालते हैं, वे भी उस (विहुज्ज्ञालनरक) में
ही जाते हैं ॥२६-२७॥ त्रतोंको लोप करनेवाले तथा
अपने आश्रमसे पतित दोनों ही प्रकारके पुरुष सन्दंश
नामक नरकमें गिरते हैं ॥२८॥ जिन ब्रह्मचारियोंका
दिनमें तथा सोते समय [बुरी भावनासे] वीर्यपात हो
जाता है, अथवा जो अपने ही पुत्रोंसे पढ़ते हैं वे लोग
इयमोजननरकमें गिरते हैं ॥२९॥

इस प्रकार, ये तथा अन्य सैकड़ों हजारों नरक हैं जिनमें दुष्कर्मी छोग नाना प्रकारकी यातनाएँ मोगा करते हैं ॥३०॥ इन उपरोक्त पार्पोके समान और भी सहस्रों पाप-कर्म हैं, उनके फल मनुष्य मिन्न-मिन्न नरकोंमें भोगा करते हैं ॥३१॥ जो छोग अपने वर्णा-श्रम-धर्मके विरुद्ध मन, वचन अथवा कर्मसे कोई आचरण करते हैं वे नरकमें गिरते हैं ॥३२॥ अधोमख-नरकिनवासियोंको स्वर्ग-छोकमें देवगण दिखायी दिया करते हैं और देवता छोग नीचेके छोकोंमें नारकी जीवोंको देखते हैं ॥३३॥ पापी छोग नरकमोगके अनन्तर क्रमसे स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धार्मिक पुरुष, देवगण तथा मुमुक्ष होकर जन्म प्रहण करते हैं ॥३४॥ हे महाभाग! मुमुक्षुपर्यन्त इन सबमें दूसरोंकी अपेक्षा पहले प्राणी [संख्यामें] सहस्र-गुण अधिक हैं ॥३५॥ जितने जीव खर्गमें हैं उतने ही नरकमें हैं, जो पापी पुरुष अपने पापका] प्रायश्चित्त नहीं करते वे ही नरकमें जाते हैं ॥३६॥

मिन्न-भिन्न पापोंके अनुरूप जो-जो आयश्चित्त हैं उन्हीं-उन्हींको महर्षियोंने वेदार्थका स्मरण करके वताया है ॥ ३७॥ हे मैत्रेय ! खायम्मुवमनु आदि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रायश्चित्तानि मैत्रेय जगुः खायम्भुवादयः ॥३८॥ प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै। यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणम्परंम् ॥३९॥ कृते पापेऽनुतापो वै यस पुंसः प्रजायते । प्रायितं तु तस्यैकं हरिसंसरणं परम् ॥४०॥ प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्वादिषु संसरन् । नारायणमवासोति सद्यः पापक्षयान्नरः ॥४१॥ विष्णुसंसरणात्क्षीणसमस्तक्केशसञ्चयः मुक्तिं प्रयाति खर्गाप्तिस्तस्य विद्योऽनुमीयते ॥४२॥ वासुदेवे मनो यस जपहोमार्चनादिषु । तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥४३॥ नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम् । क जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥४४॥ तसादहर्निशं विष्णुं संसरन्पुरुषो मुने। न याति नरकं मर्त्यः सङ्घीणाखिलपातकः ॥४५॥ मनःश्रीतिकरः खर्गी नरकस्तद्विपर्ययः। नरकखर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तम ॥४६॥ वस्त्वेकमेव दुःखाय सुलायेर्ष्यागमाय च । कोपाय च यतस्तसाद्वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः ॥४७॥ तदेव त्रीतये भूत्वा पुनर्दुः स्वाय जायते । तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते ॥४८॥ तसाद्दुः सात्मकं नास्ति न च किञ्चित्सुसात्मकम्। मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः ॥४९॥

स्मृतिकारोंने महान पापोंके लिये महान और अल्पोंके लिये अल्प प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था की है ॥३८॥ किन्त जितने भी तपस्यात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित्त हैं उन सबमें श्रीकृष्णस्मरण सर्वश्रेष्ठ है ॥ ३९॥ जिस प्रकार चित्तमें पाप-कर्मके अनन्तर पश्चात्ताप होता है उसके लिये ही प्रायश्चित्तोंका विधान है। किन्त यह हरिस्मरण तो एकमात्र खयं ही परम प्रायश्चित्त है ॥ १०॥ प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रिमें अथवा मध्याद्वमें किसी भी समय श्रीनारायणका स्मरण करनेसे पुरुषके समस्त पाप तत्काळ क्षीण हो जाते हैं ॥ १॥ श्रीविष्णुभगवान्के स्मर्णसे समस्त पाप-राशिके भस्म हो जानेसे पुरुष मोक्षपद प्राप्त कर छेता है, स्वर्ग-छाभ तो उसके लिये विष्नरूप माना जाता है ॥४२॥ हे मैत्रेय ! जिसका चित्त जप, होम और अर्चनादि करते हुए निरन्तर भगवान् वासुदेवमें लगा रहता है उसके लिये इन्द्रपद आदि फल तो अन्तराय (विष्न) हैं ॥ ३॥ कहाँ तो पनर्जनमके चक्रमें डालने-वाली स्वर्ग-प्राप्ति और कहाँ मोक्षका सर्वोत्तम वीज 'वासदेव' नामका जप ! ॥ १४॥

इसिंखेये हे मुने ! श्रीविष्णुभगवान्का अहर्निश स्मरण करनेसे सम्पूर्ण पाप क्षीण हो जानेके कारण मनुष्य फिर नरकमें नहीं जाता ॥ ४५ ॥ चित्तको प्रिय लगनेवाला ही खर्ग है और उसके विपरीत (अप्रिय लगनेवाला) ही नरक है । हे द्विजोत्तम ! पाप और पुण्यहींके दूसरे नाम नरक और खर्ग हैं ॥ ४६॥ जब कि एक ही वस्तु सुख और दु:ख तथा ईर्ष्या और कोपका कारण हो जाती है तो उसमें वस्तुता (नियत-स्वमावत्व) ही कहाँ है ? ॥४०॥ क्योंकि एक ही वस्तु कभी प्रीतिकी कारण होती है तो वही दूसरे समय दु:खदायिनी हो जाती है और वही कभी कोधकी हेतु होती है तो कभी प्रसन्तता देनेवाछी हो जाती है ॥ ४८॥ अतः कोई भी पदार्थ दुःखमय नहीं है और न कोई सुखमय है। ये सुख-दुःख तो मनके ही विकार हैं ॥ ४९ ॥ [परमार्थतः] ज्ञान ही परब्रह्म श्चानमेव परं त्रहा ज्ञानं वन्त्राम saनेक्यतेः शिक्षां ८० हि जीर एअविधाकी उपाधिसे वन्धनका कारण

ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम् ॥५०॥ विद्याविद्येति मैत्रेय ज्ञानमेवोपधारय ।i५१।। एवमेतन्मयाख्यातं भवतो मण्डलं भवः। पातालानि च सर्वाणि तथैव नरका द्विज ॥५२॥ सम्रद्राः पर्वताश्चेव द्वीपा वर्षाणि निम्नगाः। सङ्क्षेपात्सर्वमारूयातं किं भूयः श्रोतुमिच्छिस ॥५३॥ क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ५३ ॥

है। यह सम्पूर्ण विश्व ज्ञानमय ही है; ज्ञानसे भिन्न और कोई वस्तु नहीं है। हे मैत्रेय! विद्या और अविद्याको भी तम ज्ञान ही समझो ॥ ५०-५१ ॥

हे द्विज ! इस प्रकार मैंने तुमसे समस्त भूमण्डल, सम्पूर्ण पाताललोक और नरकोंका वर्णन कर दिया ॥ ५२ ॥ समुद्र, पर्वत, द्वीप, वर्ष और नदियाँ—इन समीकी मैंने संक्षेपसे व्याख्या कर दी; अव, तुम और

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे पष्टोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

भूभूं वः आदि सात ऊर्घ्वलोकोंका वृत्तान्त।

श्रीमैत्रेय उवाच

कथितं भूतलं ब्रह्मनमैतद्खिलं त्वया। भुवर्लोकादिकाँ छोकाञ्च्छोतुमिच्छाम्यहं भुने ।।१।। तथैव ग्रहसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा। समाचक्ष्व महाभाग तन्मद्यं परिपृच्छते ॥ २ ॥

श्रीपराशर उवाच

रविचन्द्रमसोर्यावन्मयुखैरवभास्यते ससम्रद्धसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता।।३॥ यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डलात् । नभस्तावत्त्रमाणं वै व्यासमण्डलतो द्विज ॥ ४ ॥ भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं मैत्रेय मण्डलम् । लक्षादिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्थितम् ॥ ५ ॥ पूर्णे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात्। कृत्स्रप्रपरिष्टात्प्रकाशते ॥ ६ ॥ नक्षत्रमण्डलं द्रे लक्षे चोत्तरे ब्रह्मन् बुधो नक्षत्रमण्डलात् । तावत्त्रमाणभागे तु बुधस्याप्युश्चनाः स्थितः ॥ ७ ॥ अङ्गारकोऽपि ग्रक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः ।

श्रीमैत्रेयजी बोले-त्रहान् ! आपने मुझसे समस्त भूमण्डलका वर्णन किया । हे मुने ! अव मैं भुवर्लीक आदि समस्त छोकोंके विषयमें सुनना चाहता हूँ ॥ १॥ हे महाभाग ! मुझ जिज्ञासुसे आप प्रहगणकी स्थिति तथा उनके परिमाण आदिका यथावत् वर्णन कीजिये 11311

श्रीपराशरजी बोले-जितनी दूरतक सूर्य और चन्द्रमाकी किर्णोंका प्रकाश जाता है; समुद्र, नदी और पर्वतादिसे युक्त उतना प्रदेश पृथिवी कहलाता है ॥ ३ ॥ हे द्विज ! जितना प्रथिवीका विस्तार और परिमण्डल (घेरा) है उतना ही विस्तार और परिमण्डल मुवर्लीकका भी है ॥ १ ॥ हे मैत्रेय ! पृथिवीसे एक लाख योजन दूर सूर्यमण्डल है और सूर्यमण्डलसे भी एक लक्ष योजनके अन्तरपर चन्द्रमण्डल है ॥ ५॥ चन्द्रमासे पूरे सौ हजार (एक लाख) योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल प्रकाशित हो रहा है ॥ ६ ॥

हे ब्रह्मन् ! नक्षत्रमण्डलसे दो लाख योजन ऊपर बुध और बुघसे भी दो लक्ष योजन ऊपर शुक्र स्थित हैं ॥७॥ गुक्रसे इतनी ही दूरीपर मंगल हैं और मंगलसे लक्षद्वये तु भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥ ८॥ भी दो लाख योजन ऊपर बृहस्पतिजी हैं ॥ ८॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri शौरिर्शृहस्पतेश्रोध्यं द्विलक्षे समयस्थितः।
सप्तिषिण्डलं तसाल्रक्षमेकं द्विजोत्तम॥९॥
ऋषिम्यस्तु सहस्राणां शताद्ध्यं व्यवस्थितः।
मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्रकस्य वै ध्रुवः॥१०॥
त्रैलोक्यमेतत्कथितग्रत्सेथेन महाग्रुने।
इज्याफलस्य भूरेषा इज्याचात्र प्रतिष्ठिता॥११॥
ध्रुवाद्ध्यं महलोंको यत्र ते कल्पवासिनः।
एकयोजनकोटिस्तु यत्र ते कल्पवासिनः॥१२॥
दे कोटी तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः।
सनन्दनाद्याः प्रथिता मैत्रेयामलचेतसः॥१२॥
चतुर्गुणोत्तरे चोर्ध्यं जनलोकात्तपः स्थितम्।
वैराजा यत्र ते देवाः स्थितादाहिववर्जिताः॥१४॥
पड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको विराजते।
अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः॥१५॥

पादगम्यन्तु यत्किश्चिद्धस्त्वस्ति पृथिवीमयम् ।
स भूलोंकः समाख्यातो विस्तरोऽस्य मयोदितः।१६।
भूमिस्दर्यान्तरं यच सिद्धादिग्रुनिसेवितम् ।
भ्रुवलोंकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो ग्रुनिसत्तम ॥१७॥
भ्रुवस्त्र्यान्तरं यच नियुतानि चतुर्दश ।
स्वलोंकः सोऽपि गदितो लोकसंस्थानचिन्तकैः१८
त्रैलोक्यमेतत्कृतकं मैत्रेय परिपठ्यते ।
जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम् ॥१९॥
कृतकाकृतयोर्मध्ये महलोंक इति स्मृतः ।
भूत्यो मवति कल्पान्ते योऽत्यन्तं न विनद्यति।२०।
पते सप्त मया लोका मैत्रेय कथितास्तव ।

हे द्विजोत्तम! बृहस्पतिजीसे दो छाख योजन ऊपर शिन हैं और शनिसे एक छक्ष योजनके अन्तरपर सप्तिषिमण्डल है॥ ९॥ तथा सप्तिषयोंसे भी सौ हजार योजन ऊपर समस्त ज्योतिश्चककी नाभिरूप ध्रुवमण्डल स्थित है ॥ १०॥ हे महामुने ! मैंने तुमसे यह त्रिलोकीकी उच्चताके विषयमें वर्णन किया। यह त्रिलोकी यञ्चफल-की मोग-भूमि है और यज्ञानुष्ठानकी स्थिति इस भारतवर्षमें ही है॥ ११॥

ध्रुवसे एक करोड़ योजन ऊपर महर्लोक है, जहाँ कल्पान्त-पर्यन्त रहनेवाले भृगु आदि सिद्धगण रहते हैं ॥ १२ ॥ हे मैत्रेय ! उससे भी दो करोड़ योजन ऊपर जनलोक है जिसमें ब्रह्माजीके प्रख्यात पुत्र निर्मलिचित्त सनकादि रहते हैं ॥ १३ ॥ जनलोकसे चौगुना अर्थात् आठ करोड़ योजन ऊपर तपलोक है; वहाँ वैराज नामक देवगणोंका निवास है जिनका कभी दाह नहीं होता ॥ १४ ॥ तपलोकसे छःगुना अर्थात् वारह करोड़ योजनके अन्तरपर सत्यलोक सुशोमित है जो ब्रह्मलोक भी कहलाता है और जिसमें फिर न मरनेवाले अमरगण निवास करते हैं ॥ १५ ॥

जो भी पार्थिव वस्तु चरणसञ्चारके योग्य है वह
भूळींक ही है। उसका विस्तार मैं कह चुका ॥ १६ ॥
हे मुनिश्रेष्ठ ! पृथिवी और सूर्यके मध्यमें जो सिद्धगण
और मुनिगणसेवित स्थान है, वहीं दूसरा भुवर्लोक
है ॥ १७ ॥ सूर्य और ध्रुवके बीचमें जो चौदह लक्ष
योजनका अन्तर है, उसीको लोकस्थितिका विचार
करनेवालोंने सर्लोक कहा है ॥ १८ ॥ हे मैत्रेय ! ये
(भू:, मुव:, सः) 'कृतक' त्रैलोक्य कहलते हैं और
जन, तप तथा सत्य—ये तीनों 'अकृतक' लोक
हैं ॥ १९ ॥ इन कृतक और अकृतक त्रिलोकियोंके
मध्यमें महर्लोक कहा जाता है, जो कल्पान्तमें केवल
जनस्त्य हो जाता है, अत्यन्त नष्ट नहीं होता
[इसलिये यह 'कृतकाकृत' कहलाता है] ॥ २० ॥

पते सप्त मया लोका मैत्रेय कथितास्तव। हे मैत्रेय ! इस प्रकार मैंने तुमसे ये सात लोक और सात ही पाताल कहे। इस पातालानि च सप्तेव ब्रह्माण्डस्येष विस्तरः ॥२१॥ ब्रह्माण्डका वस इतना ही विस्तार है॥२१॥

एतदण्डकटाहेन तिर्यक् चोर्ध्वमधस्तथा। कपित्थस्य यथा वीजं सर्वतो वै समावृतम् ॥२२॥ द्शोत्तरेण पयसा मैत्रेयाण्डं च तद्वृतम्। सर्वीऽम्बुपरिधानोऽसौ वह्विना वेष्टितो वहिः ॥२३॥ विद्वञ्च वायुना वायुर्मेत्रेय नमसा वृतः । भूतादिना नभः सोऽपि महता परिवेष्टितः । दशोत्तराण्यशेषाणि मैत्रेयैतानि सप्त वै ॥२४॥ महान्तं च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम् । अनन्तस्य न तस्यान्तः संख्यानं चापि विद्यते॥२५॥ तदनन्तमसंख्यातप्रमाणं चापि वै यतः। हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा मुने ॥२६॥ अण्डानां तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च । ईदशानां तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च ॥२७॥ दारुण्यमिर्यथा तैलं तिले तद्वत्पुमानपि । प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मात्मवेदनः ॥२८॥ प्रधानं च पुमांश्रेव सर्वभूतात्मभूतया। विष्णुशक्त्या महाबुद्धे वृतौ संश्रयधर्मिणौ ॥२९॥ त्योः सैव पृथग्भावकारणं संश्रयस्य च। क्षोभकारणभूता च सर्गकाले महामते ॥३०॥ यथा सक्तं जले वातो विभक्तिं कणिकाशतम् । शक्तिः सापि तथा विष्णोः प्रधानपुरुपात्मकम्।३१। यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः । आदिबीजात्प्रभवति वीजान्यन्यानि वै ततः॥३२॥ प्रभवन्ति ततस्तेभ्यः सम्भवन्त्यपरे द्रुमाः । तेऽपि तस्रक्षणद्रव्यकारणानुगता मुने ॥३३॥ एवमन्याकृतात्पूर्वं जायन्ते महदादयः। विशेषान्तास्ततस्तेभ्यः सम्भवन्त्यसुराद्यः। तेम्यश्र पुत्रास्तेषां च पुत्राणामपरे सुताः ॥३४॥ बीजादृष्टक्षप्ररोहेण ट्यूथा न नापच्यस्तरोः ।

यह ब्रह्माण्ड किपत्य (कैथे) के बीजके समान ऊपर-नीचे सव ओर अण्डकटाहसे घिरा हुआ है ॥ २२॥ हे मैत्रेय ! यह अण्ड अपनेसे दशगुने जल्से आवृत है और वह जलका सम्पूर्ण आवरण अग्निसे घिरा हुआ है ॥ २३ ॥ अग्नि वायुसे और वायु आकाशसे परिवेधित है तथा आकाश मूर्तोके कारण तामस अहंकार और अहंकार महत्तत्त्वसे घिरा हुआ है । हे मैत्रेय ! ये सातों उत्तरोत्तर एक-दूसरेसे दशगुने हैं ॥ २४ ॥ महत्तत्त्व-को भी प्रधानने आवृत कर रक्खा है। वह अनन्त है; तथा उसका न कभी अन्त (नारा) होता है और न कोई संख्या ही है; क्योंिक हे मुने ! वह अनन्त, असंख्येय, अपरिमेय और सम्पूर्ण जगत्का कारण है और वहीं परा प्रकृति है ॥ २५-२६ ॥ उसमें ऐसे-ऐसे हजारों, ठाखों तथा सैकड़ों करोड़ ब्रह्माण्ड हैं॥२७॥ जिस प्रकार काष्टमें अग्नि और तिल्में तैल रहता है उसी प्रकार खप्रकाश चेतनात्मा व्यापक पुरुष प्रधान-में स्थित है॥ २८॥ हे महाबुद्धे ! ये संश्रयशील (आपसमें मिले हुए) प्रधान और पुरुष भी समस्त भूतोंकी खरूपभूता विष्णु-शक्तिसे आवृत हैं॥ २९॥ हे महामते ! वह विष्णु-राक्ति ही [प्रलयके समय] उनके पार्थक्य और [स्थितिके समय] उनके सम्मिछन-की हेतु है तथा सर्गारम्भके समय वही उनके क्षोमकी कारण है ॥ ३० ॥ जिस प्रकार जलके संसर्गसे वायु सैकड़ों जल-कणोंको धारण करता है उसी प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्ति भी प्रधान-पुरुषमय जगत्को धारण करती है ॥ ३१ ॥

हे मुने ! जिस प्रकार आदि-वीजसे ही म्ल, स्कन्ध और शाखा आदिके सहित वृक्ष उत्पन्न होता है और तदनन्तर उससे और भी वीज उत्पन्न होते हैं, तथा उन बीजोंसे अन्यान्य वृक्ष उत्पन्न होते हैं और वे भी उन्हीं लज्ञण, द्रज्य और कारणोंसे युक्त होते हैं और वे भी उन्हीं लज्ञण, द्रज्य और कारणोंसे युक्त होते हैं; उसी प्रकार पहले अव्याकृत (प्रधान) से महत्त्त्वसे लेकर पश्चभूतपर्यन्त [सम्पूर्ण विकार] उत्पन्न होते हैं तथा उनसे देव, असुर आदिका जन्म होता है और फिर उनके पुत्र तथा उन पुत्रोंके अन्य पुत्र होते हैं ॥ ३२—३४ ॥ अपने बीजसे अन्य वृक्षके उत्पन्न होनेसे जिस प्रकार पूर्ववृक्षकी कोई क्षति नहीं होती उसी, New Delhi. Digitized by eGangotri

भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ॥३५॥

सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः । तथैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान्हरिः ॥३६॥ त्रीहिबीजे यथा मूलं नालं पत्राङ्कुरौ तथा । काण्डं कोपस्तु पुष्पं च क्षीरं तद्वच तण्डुलाः ॥३७॥ तुषाः कणाइच सन्तो वै यान्त्याविभविमात्मनः । त्ररोहहेतसामग्रीमासाद्य म्रनिसत्तम ॥३८॥ तथा कर्मस्वनेकेषु देवाद्याः समवस्थिताः। विष्णुशक्ति समासाद्य प्ररोहम्पयान्ति वै।।३९॥ स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्वमिदं जगत्। जगच यो यत्र चेदं यसिंश्च लयमेष्यति ॥४०॥ तद्त्रहा तत्परं धाम सदसत्परमं पदम्। सर्वमभेदेन यतक्चैतचराचरम् ॥४१॥ स एव मृलप्रकृतिर्न्यक्तरूपी जगच सः। तिसनेव लयं सर्वे याति तत्र च तिष्ठति ॥४२॥ कर्ता कियाणां स च इज्यते कतुः स एव तत्कर्मफलं च तस्य। स्रगादि यत्साधनमप्यशेषं

प्रकार अन्य प्राणियोंके उत्पन्न होनेसे उनके जन्मदाता प्राणियोंका हास नहीं होता ॥ ३५॥

जिस प्रकार आकाश और काल आदि सनिधि-मात्रसे ही वृक्षके कारण होते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीहरि भी बिना परिणामके ही विश्वके कारण हैं ॥ ३६ ॥ हे मुनिसत्तम ! जिस प्रकार धानके बीजमें मूल, नाल, पत्ते, अङ्कर, तना, कोष, पुष्प, क्षीर, तण्डूल, तुष और कण सभी रहते हैं; तथा अङ्करोत्पत्ति-की हेतुभूत [भूमि एवं जल आदि] सामग्रीके प्राप्त होनेपर वे प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार अपने अनेक पूर्वकर्मोंमें स्थित देवता आदि विष्णु-शक्तिका आश्रय पानेपर आविर्भूत हो जाते हैं॥ ३७-३९॥ जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जो खयं जगत्रूपसे स्थित है, जिसमें यह स्थित है तथा जिसमें यह लीन हो जायगा वह परब्रह्म ही विष्णुभगवान् हैं ॥ ४०॥ वह ब्रह्म ही उन (विष्णु) का परमधाम (परखरूप) है, वह पद सत् और असत् दोनोंसे विलक्षण है तथा उससे अभिन हुआ ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उससे उत्पन्न हुआ है ॥ ४१ ॥ वहीं अन्यक्त मूलप्रकृति है, वही व्यक्तलरूप संसार है, उसीमें यह सम्पूर्ण जगत् छीन होता है तथा उसीके आश्रय स्थित है ॥ ४२ ॥ यज्ञादि क्रियाओंका कर्ता वही है, यज्ञ-रूपसे उसीका यजन किया जाता है, और उन यज्ञादिका फलखरूप भी वहीं है तथा यज्ञके साधन-रूप जो सुवा आदि हैं वे सब भी हरिसे अतिरिक्त हरेर्न किश्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति ॥४३॥ और कुछ नहीं हैं ॥ ४३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे सप्तमोऽध्यायः॥७॥

आठवाँ अध्याय

स्यं,नक्षत्र एवं राशियोंको व्यवस्था तथा कालचक, लोकपाल और गंगाविर्मावका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

श्रीपराशरजी बोले-हे सुव्रत ! मैंने तुमसे यह व्याख्यातमेतद्श्रह्माण्डसंस्थानं तव सूत्रत् । शह्माण्डकी स्थिति itizकही, eGश्चर्यास्य आदि प्रहों-ततः प्रमाणसंस्थाने स्यादीनां मृणुष्य मे ॥ १ ॥ की स्थिति और उनके परिमाण सुनो ॥ १ ॥

योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव । र्डपादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो मुनिसत्तम ॥ २ ॥ सार्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि वै। योजनानां तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥ त्रिनाभिमति पश्चारे पण्नेमिन्यक्षयात्मके। संवत्सरमये कृत्स्नं कालचकं प्रतिष्ठितम्।। ४।। हयाश्र सप्तच्छन्दांसि तेषां नामानि मे शृणु । गायत्री च बृहत्युष्णिग्जगती त्रिष्ट्रवेव च । अनुष्टुप्पङ्किरित्युक्ता छन्दांसि इरयो रवेः ॥ ५ ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणिद्वितीयोऽश्वो विवस्ततः। पञ्चान्यानि तु सार्घानि खन्दनस्य महामते ॥ ६ ॥ अक्षप्रमाणग्रुभयोः प्रमाणं तद्युगार्द्धयोः । हस्रोऽक्षस्तद्यगार्द्धेन भ्रुवाधारो रथस्य वै। द्वितीयेऽक्षे तु तचकं संस्थितं मानसाचले ॥ ७॥ मानसोत्तरशैलस पूर्वतो वासवी पुरी। दक्षिणे तु यमस्यान्या प्रतीच्यां वरुणस्य च। उत्तरेण च सोमस तासां नामानि मे शृणु ॥ ८ ॥ वस्तीकसारा शकस्य याम्या संयमनी तथा। पुरी सुखा जलेशस्य सोमस्य च विभावरी ॥ ९ ॥ काष्ट्रां गतो दक्षिणतः क्षिप्तेषुरिव सर्पति । मैत्रेय मगवान्मानुर्ज्योतिषां चक्रसंयुतः ॥१०॥ अहोरात्रव्यवस्थानकारणं भगवात्रविः । देवयानः परः पन्था योगिनां क्रेशसङ्ग्ये ॥११॥ दिवसस्य रविर्मध्ये सर्वकालं व्यवस्थितः। सर्वद्वीपेषु मैत्रेय निशार्द्धस च सम्मुखः ॥१२॥ उदयास्तमने चैव सर्वकालं तु सम्मुखे। विदिशासु त्वशेषासु तथा त्रसन् दिशासु च ॥१३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! सूर्यदेवके रथका विस्तार नौ हजार योजन है तथा इससे दुना उसका ईपा-दण्ड (जूआ और रथके बीचका भाग) है ॥ २ ॥ उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात छाख योजन छम्बा है जिसमें उसका पहिया लगा हुआ है ॥ ३॥ उस पूर्वाह, मध्याह और पराहरूप तीन नामि, परिवत्सरादि पाँच अरे और पड्-ऋतुरूप छः नेमिवाले अक्षयखरूप संवत्सरात्मक चक्रमें सम्पूर्ण काल्चक्र स्थित है ॥ ४ ॥ सात छन्द ही उसके घोड़े हैं, उनके नाम सुनो-गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति-ये छन्द ही सूर्य-के सात घोड़े कहे गये हैं ॥ ५॥ हे महामते ! भगवान् सूर्यके रथका दूसरा धुरा साढ़े पैतालीस सहस्र योजन लम्बा है ॥ ६ ॥ दोनों धुरोंके परिमाणके तुल्य ही उसके युगादी (ज्ओं) का परिमाण है, इनमेंसे छोटा धरा उस रथके एक युगाई (जूए) के सहित ध्रुवके आधारपर स्थित है और दूसरे धुरेका चक्र मानसोत्तर-पर्वतपर स्थित है ॥ ७ ॥

इस मानसोत्तरपर्वतके पूर्वमें इन्द्रकी, दक्षिणमें यम-की, पश्चिममें वरुणकी और उत्तरमें चन्द्रमाकी पुरी है; उन पुरियोंके नाम सुनो ॥ ८॥ इन्द्रकी पुरी वस्तौकसारा है, यमकी संयमनी है, वरुणकी सुखा है तथा चन्द्रमाकी विभावरी है॥ ९॥ हे मैंत्रेय! ज्योतिश्वक्रके सहित भगवान् भानु दक्षिण-दिशामें प्रवेशकर छोड़े हुए वाणके समान तीत्र वेगसे चळते हैं॥ १०॥

भगवान् सूर्यदेव दिन और रात्रिकी व्यवस्थाके कारण हैं और रागादि क्लेशोंके क्षीण हो जानेपर वे ही क्रममुक्तिमागी योगिजनोंके देवयान नामक श्लेष्ट मार्ग हैं॥ ११॥ हे मैत्रेय! सभी द्वीपोंमें सर्वदा मध्याह तथा मध्यरात्रिके समय सूर्यदेव मध्यआकाशमें सामनेकी ओर रहते हैं *॥ १२॥ इसी प्रकार उदय और अस्त भी सदा एक-दृसरेके सम्मुख ही होते हैं। हे ब्रह्मन्! समस्त दिशा और विदिशाओं में जहाँके छोग [रात्रिका

श्राणंत् जिस द्वीप या खण्डमें स्पेंदेव मध्याहके समय सम्मुख पड़ते हैं उसकी समान रेखापर दूसरी और स्थित द्वीपान्तरमें वे असी प्रकार अध्यक्तिके अस्प उहिते औं, New Delhi. Digitized by eGangotri

यैर्यत्र दश्यते भास्वान्स तेषामुद्यः स्मृतः । तिरोभावं च यत्रैति तत्रैवास्तमनं खेः॥१४॥ नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः। उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः ॥१५॥ शकादीनां परे तिष्ठन स्पृश्चत्येष प्रत्रयम् । विकोणौ द्रौं विकोणस्थस्त्रीन कोणान्द्रे पुरे तथा १६ उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्वात्तपत्रविः। ततः परं इसन्तीभिगोंभिरस्तं नियच्छति ॥१७॥ उदयास्तमनाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे दिशौ। यावत्प्ररस्तात्तपति तावत्पृष्ठे च पार्श्वयोः ॥१८॥ ऋतेऽमरगिरेमेरोरुपरि ब्रह्मणः ये ये मरीचयोऽर्कस्य प्रयान्ति ब्रह्मणः सभाम् । ते ते निरस्तास्तद्धासा प्रतीपम्रपयान्ति वै।।१९॥ तसाहिश्यत्तरस्यां वै दिवारात्रिः सदैव हि । सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतो यतः॥२०॥ प्रभा विवस्वतो रात्रावस्तं गच्छति भास्करे। विश्वत्यग्रिमतो रात्रौ विहुर्द्रात्प्रकांशते ॥२१॥ वहैः प्रभा तथा भाजुर्दिनेष्वाविश्वति द्विज । अतीव विद्वसंयोगादतः सूर्यः प्रकाशते ॥२२॥ तेजसी मास्कराग्रेये प्रकाशोष्णसक्तिपणी। परस्पराज्यवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥२३॥ अन्त होनेपर] सूर्यको जिस स्थानपर देखते हैं उनके लिये वहाँ उसका उदय होता है और जहाँ दिनके अन्तमें सर्यका तिरोभाव होता है वहीं उसका अस्त कहा जाता है ॥ १३-१४ ॥ सर्वदा एक रूपसे स्थित सूर्यदेवका. वास्तवमें न उदय होता है और न अस्त; वस, उनका देखना और न देखना ही उनके उदय और अस्त हैं ॥ १५ ॥ मध्याह्नकालमें इन्द्रादिमेंसे किसीकी पुरीपर प्रकाशित होते हुए सूर्यदेव [पार्श्ववर्ती दो पुरियोंके सहित | तीन परियों और दो कोणों (विदिशाओं) को प्रकाशित करते हैं, इसी प्रकार अग्नि आदि कोणोंमेंसे किसी एक कोणमें प्रकाशित होते हुए वे [पार्श्ववर्ती दो कोणोंके सहित] तीन कोण और दो परियोंको प्रकाशित करते हैं ॥ १६ ॥ सूर्यदेव उदय होनेके अनन्तर मध्याह्नपर्यन्त अपनी बढ़ती हुई किरणोंसे तपते हैं, और फिर क्षीण होती हुई किरणोंसे अस्त हो जाते हैं * ॥ १७ ॥

सूर्यके उदय और अस्तसे ही पूर्व तथा पश्चिम दिशाओंकी व्यवस्था हुई है। वास्तवमें तो, वे जिस प्रकार पूर्वमें प्रकाश करते हैं उसी प्रकार पश्चिम तथा पार्श्ववर्तिनी [उत्तर और दक्षिण] दिशाओं में मी करते हैं ॥ १८ ॥ सूर्यदेव देवपर्वत समेरुके ऊपर स्थित ब्रह्माजीकी सभाके अतिरिक्त और सभी स्थानोंको प्रकाशित करते हैं; उनकी जो किरणें ब्रह्माजीकी सभामें जाती हैं वे उसके तेजसे निरस्त होकर उंटरी छौट आती हैं ॥ १९ ॥ सुमेरुपर्वत समस्त द्वीप और वर्षों के उत्तरमें है इसलिये उत्तर-दिशामें (मेरुपर्वतपर) सदा [एक ओर] दिन और [दूसरी ओर] रात रहते हैं ॥ २० ॥ रात्रिके समय सूर्यके अस्त हो जानेपर उसका तेज अग्निमें प्रविष्ट हो जाता है; इंसलियें उस समय अग्नि दृरहींसे प्रकाशित होने लगता है ॥ २१-॥ इसी प्रकार, हे द्विज ! दिनके समय अग्निका तेज सूर्यमें प्रविष्ट हो जाता है; अतः अग्निके संयोगसे ही सूर्य अत्यन्त प्रखरतासे प्रकाशित होता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार सूर्य और अग्निके प्रकाश तथा उष्णतामय तेज परस्पर मिलकर दिन-रातमें वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं॥२३॥

क किरणोंकी वृद्धि, हास एवं तीवता-मन्द्रता आदि सूर्यके समीप और दूर होनेसे मनुष्यके अनुमवके अनुमवके

दक्षिणोत्तरभूम्यर्द्धे सम्रुत्तिष्ठति भास्करे । अहोरात्रं विश्वत्यम्भस्तमःप्राकाश्यशीलवत्।।२४।। आताम्रा हि भवन्त्यापो दिवा नक्तप्रवेशनात्। दिनं विश्वति चैवाम्भो भास्करेऽस्तम्प्रेयपि । तसाच्छुक्का भवन्त्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात् ॥२५॥ एवं पुष्करमध्येन यदा याति दिवाकरः। त्रिंशद्भागन्तु मेदिन्यास्तदा मौहूर्तिकी गतिः ।२६। कुलालचक्रपर्यन्तो भ्रमन्नेष दिवाकरः। करोत्यहस्तथा रात्रिं विम्रश्चन्मेदिनीं द्विज ॥२७॥ अयनस्थोत्तरस्थादौ मकरं याति भास्करः। ततः क्रम्भं च मीनं च राशे राश्यन्तरं द्विज ॥२८॥ त्रिष्वेतेष्वथ भुक्तेषु ततो वैषुवतीं गतिम्। प्रयाति सविता कुर्वनहोरात्रं ततः समम् ॥२९॥ ततो रात्रिः क्षयं याति वर्द्धतेऽनुदिनं दिनम् ॥३०॥ ततश्र मिथुनस्थान्ते परां काष्ट्रामुपागतः। राशिं कर्कटकं प्राप्य कुरुते दक्षिणायनम् ॥३१॥ कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं प्रवर्त्तते। दक्षिणप्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघं प्रवर्तते ॥३२॥ अतिवेगितया कालं वायुवेगवलाचरन्। तसात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनारपेन गच्छति॥३३॥ सूर्यो द्वादश्रिभः शैघ्रचान्सुहूर्तैर्दक्षिणायने ।

मेरुके दक्षिणी और उत्तरी भूम्यईमें सूर्यके प्रकाशित होते समय अन्धकारमयी रात्रि और प्रकाश-मय दिन क्रमशः जलमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ २४ ॥ दिनके समय रात्रिके प्रवेश करनेसे ही जल कुछ ताम्रवर्ण दिखायी देता है, किन्तु सूर्य अस्त हो जानेपर उसमें दिनका प्रवेश हो जाता है; इसिछिये दिनके प्रवेशके कारण ही रात्रिके समय वह गुक्कवर्ण हो जाता है ॥ २५ ॥

इस प्रकार जब सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यमें पहुँचकर पृथ्वीका तीसवाँ भाग पार कर छेता है तो उसकी वह गति एक मुदूर्तकी होती है। [अर्थात् उतने भागके अतिक्रमण करनेमें उसे जितना समय छगता है वही मुहूर्त कहलाता है] ॥ २६॥ हे द्विज ! कुलाल-चक्र (कुम्हारके चाक) के सिरेपर घूमते हुए जीवके समान भ्रमण करता हुआ यह सूर्य पृथिवीके तीसों भागोंका अतिक्रमण करनेपर एक दिन-रात्रि करता है ॥ २७॥ हे द्विज ! उत्तरायणके आरम्भमें सूर्य सबसे पहले मकरराशिमें जाता है, उसके पश्चात् वह कुम्भ और मीन राशियोंमें एक राशिसे दूसरी राशिमें जाता है ॥ २८॥ इन तीनों राशियोंको मोग चुकनेपर सूर्य रात्रिऔर दिनको समान करता हुआ वैषुवती गति-का अवलम्बन करता है, [अर्थात् वह भूमध्य-रेखा-के बीचमें ही चळता है] ॥ २९ ॥ उसके अनन्तर नित्यप्रति रात्रि क्षीण होने लगती है और दिन बढ़ने लगता है। फिर [मेष तथा वृष राशिका अति-क्रमण कर] मिथुनराशिसे निकलकर उत्तरायणकी अन्तिम सीमापर उपस्थित हो वह कर्कराशिमें पहुँच-कर दक्षिणायनका आरम्भ करता है ॥ ३०-३१ ॥ जिस प्रकार कुछाछ-चक्रके सिरेपर स्थित जीव अति शीव्रतासे घूमता है उसी प्रकार सूर्य भी दक्षिणायनको पार करनेमें अति शीघ्रतासे चलता है ॥ ३२ ॥ अतः वह अति शीघ्रतापूर्वक वायुवेगसे चलते हुए अपने उत्कृष्ट मार्गको थोड़े समयमें ही पार कर छेता है ॥ ३३॥ हे द्विज ! दक्षिणायनमें दिनके समय शीघ्रतापूर्वक चलने-त्रयोदशार्द्रमृक्षाणामका Pra Samulat क्रिजा Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

नक्तमष्टाद्शैश्ररन् ॥३४॥ **मुहूर्तैस्तावदक्षाणि** कुलालचक्रमध्यस्थों यथा मन्दं प्रसर्पति । तथोदगयने सर्यः सर्पते मन्दविक्रमः।।३५॥ तस्मादीर्घेण कालेन भूमिमल्पां तु गच्छति । यदुत्तरायणपश्चिमम् ॥३६॥ अष्टादशसुहर्त अहर्भवति तचापि चरते मन्दविक्रमः ॥३७॥ त्रयोदशार्द्धमह्या तु ऋक्षाणां चरते रविः। मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्वरन् ॥३८॥ अतो मन्दतरं नाम्यां चकं अमित वै यथा। मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो अमित वै तथा ॥३९॥ कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्तते। ध्रवस्तथा हि मैत्रेय तत्रैव परिवर्तते ॥४०॥ उभयोः काष्ट्रयोर्मध्ये अमतो मण्डलानि त । दिवा नक्तं च सर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः ॥४१॥ मन्दाह्वि यसिन्यने शीघा नक्तं तदा गतिः। शीघा निशि यदा चास्य तदा मन्दा दिवा गतिः ४२ एकप्रमाणमेवैष मार्ग याति दिवाकरः। अहोरात्रेण यो भुद्धे समस्ता राश्यो द्विज ॥४३॥ पडेव राशीन् यो भुङ्के रात्रावन्यांश्र षड्दिवा ॥४४॥ राशित्रमाणजनिता दीर्घहस्रात्मता दिने। तथा निशायां राशीनां प्रमाणैर्लघुदीर्घता ॥४५॥ दिनादेदीं घेइस्रत्वं तद्भोगेनैव जायते।

महतों में पार कर छेता है, किन्तु रात्रिके समय (मन्दगामी होनेसे) उतने ही नक्षत्रोंको अठारह महतों में पार करता है ॥ ३४ ॥ कुळाळ-चक्रके मध्यमें स्थित जीव जिस प्रकार धीरे-धीरे चलता है उसी प्रकार उत्तरायणके समय सूर्य मन्दगतिसे चलता है ॥ ३५॥ इसिंखेये उस समय वह थोड़ी-सी भूमि भी अति दीर्घ-काळमें पार करता है, अतः उत्तरायणका अन्तिम दिन अठारह मुहर्तका होता है, उस दिन भी सूर्य अति मन्दगतिसे चलता है और ज्योतिश्वकार्धके साढ़े तेरह नक्षत्रोंको एक दिनमें पार करता है किन्तु रात्रिके समय वह उतने ही (साढ़े तेरह) नक्षत्रोंको बारह मुहतींमें ही पार कर छेता है ॥ ३६--३८॥ अतः जिस प्रकार नाभिदेशमें चक्रके मन्द-मन्द घूमनेसे वहाँका मृत्-पिण्ड भी मन्दगतिसे घूमता है उसी प्रकार ज्योतिश्वक्रके मध्यमें स्थित ध्रुव अति मन्द गतिसे घूमता है ॥ ३९ ॥ हे मैत्रेय ! जिस प्रकार कुळाळ-चक्रकी नामि अपने स्थानपर ही घूमती रहती है, उसी प्रकार ध्रुव भी अपने स्थानपर ही घूमता रहता है ॥ ४० ॥

इस ब्रकार उत्तर तथा दक्षिण सीमाओंके मध्यमें मण्डलाकार घूमते रहनेसे सूर्यकी गति दिन अथवा रात्रिके समय मन्द अथवा शीघ्र हो जाती है॥ ४१॥ जिस अयनमें सूर्यकी गति दिनके समय मन्द होती है उसमें रात्रिके समय शीघ्र होती है तथा जिस समय रात्रि-कालमें शीव्र होती है उस दिनमें मन्द हो जाती है॥ ४२॥ हे द्विज! सूर्यको सदा एक बरावर मार्ग ही पार करना पड़ता है; एक दिन-रात्रिमें यह समस्त राशियोंका भोग कर छेता है ॥ ४३ ॥ सूर्य छः राशियोंको रात्रिके समय मोगता है और छःको दिनके समय । राशियोंके परिमाणानुसार ही दिनका बढ़ना-घटना होता है तथा रात्रिकी छघुता-दोर्घता मी राशियोंके परिमाणसे ही होती है ॥ ४४-४५ ॥ राशियोंके मोगानुसार ही ादिन्त्र अभवातं शक्तिकति ७, उच्चता होती उत्तरे प्रक्रमे शीघा निश्चि मन्दा गतिर्दिवा ॥४६॥ है। उत्तरायणमें सूर्यकी गति रात्रिकालमें शीघ होती

दक्षिणे त्वयने चैव विपरीता विवस्वतः ॥४७॥

उपा रात्रिः समाख्याताच्युष्टिश्चाप्युच्यते दिनम् । प्रोच्यते च तथा सन्ध्या उषाव्युष्टचोर्यदन्तरम्॥४८॥ सन्ध्याकाले च सम्प्राप्ते रौद्रे परमदारुणे । मन्देहा राक्षसा घोराः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ।४९। प्रजापतिकृतः शापस्तेषां मैत्रेय रक्षसाम् । अक्षयत्वं शरीराणां मरणं च दिने दिने ॥५०॥ ततः सूर्यस्य तैर्युद्धं भवत्यत्यन्तदारुणम् । ततो द्विजोत्तमास्तोयं सङ्क्रिपन्ति महामुने ॥५१॥ ॐकारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् । तेन दह्यन्ति ते पापा वज्रीभृतेन वारिणा ॥५२॥ अग्निहोत्रे हूयते या समन्त्रा प्रथमाहुतिः । सूर्यो ज्योतिः सहस्रांशुस्तया दीप्यति भास्करः ।५३। ओङ्कारो भगवान्विष्णुस्त्रिधामा वचसां पतिः । तदुचारणतस्ते त विनाशं यान्ति राक्षसाः ॥५४॥ वैष्णवोंऽशः परः सूर्यो योऽन्तर्ज्योतिरसम्ध्रवम् । अभिधायक ॐकारस्तस्य तत्त्रेरकः परः ॥५५॥ तेन सम्प्रेरितं ज्योतिरोङ्कारेणाथ दीप्तिमत्। दहत्यशेषरक्षांसि मन्देहाख्यान्यघानि वै ॥५६॥ तसान्नोल्लद्धनं कार्यं सन्ध्योपासनकर्मणः। स हन्ति सूर्यं सन्ध्याया नोपास्ति कुरुते तु यः ॥५७॥ ततः प्रयाति भगवान्त्राह्मणैरभिरक्षितः। बालखिल्यादिभिश्वैव जगतः पालनोद्यतः ॥५८॥

> काष्टा निमेषा दश पश्च चैव त्रिंशच काष्टा गणयेत्कलां च ।

है तथा दिनमें मन्द । दक्षिणायनमें उसकी गति इसके विपरीत होती है ॥ ४६-४७ ॥

रात्रि उपा कहलाती है तथा दिन व्युष्टि (प्रभात) कहा जाता है; इन उषा तथा व्युष्टिके वीचके समयको सन्ध्या कहते हैं 🛊 ॥ ४८ ॥ इस अति दारुण और भयानक सन्व्या-कालके उपिथत होनेपर मन्देहा नामक भयंकर राक्षसगण सूर्यको खाना चाहते हैं ॥ ४९ ॥ हे मैत्रेय ! उन राक्षसोंको प्रजापतिका यह शाप है कि उनका शरीर अक्षय रहकर भी मरण नित्यप्रति हो ॥ ५०॥ अतः सन्ध्या-कालमें उनका सूर्यसे अति भीषण युद्ध होता है; हे महामुने ! उस समय द्विजोत्तमगग जो ब्रह्मखरूप ॐकार तथा गायत्रीसे अभिमन्त्रित जल छोड़ते हैं उस वज्रखरूप जलसे वे दुष्ट राक्षस दग्ध हो जाते हैं ॥ ५१-५२ ॥ अग्निहोत्रमें जो 'सूर्यो ज्योतिः' इत्यादि मन्त्रसे प्रथम आदुति दी जाती है उससे सहस्रांशु दिननाथ देदीप्यमान हो जाते हैं ॥ ५३॥ ॐकार विश्व, तैजस और प्राज्ञरूप तीन धामोंसे युक्त भगवान् विष्णु है तथा सम्पूर्ण वाणियों (वेदों) का अधिपति है, उसके उचारणमात्रसे ही वे राक्षसगण नष्ट हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ सूर्य विष्णुभगवान्का अति श्रेष्ठ अंश, और विकाररहित अन्तर्ज्योतिःखरूप है। उँकार उसका वाचक है और वह उसे उन राक्षसोंके वधमें अत्यन्त प्रेरित करनेवाला है ॥ ५५ ॥ उस ॐकारकी प्रेरणासे अति प्रदीप्त होकर वह ज्योति मन्देहा नामक सम्पूर्ण पापी राक्षसोंको दग्ध कर देती है ॥ ५६ ॥ इसल्यि सन्ध्योपासनकर्मका उअंघन कमी न करना चाहिये। जो पुरुष सन्ध्योपासन नहीं करता वह भगवान् सूर्यका घात करता है ॥ ५७ ॥ तदनन्तर [उन राक्षसोंका वध करनेके पश्चात्] भगवान् सूर्य संसारके पालनमें प्रवृत्त हो वालखिल्यादि ब्राह्मणोंसे सुरक्षित होकर गमन करते हैं ॥५८॥

पन्द्रह निमेषकी एक काष्टा होती है और तीस काष्टाकी एक कला गिनी जाती है। तीस कलाओंका

क 'च्युष्टि' और 'त्रुप्' दिन और रात्रिके वैदिक नाम हैं; यथा—'रात्रिकों उपा अहर्न्युष्टिः ।'

भिरोज इति द क्रिक्नीयाः।

त्रिंशत्कलश्रेव भवेन्सुहूर्त-स्तैस्त्रिंशता रात्र्यह्नी समेते।।५९॥ हासबुद्धी त्वहर्भागैदिवसानां यथाक्रमम्। सन्ध्या सुहूर्तमात्रा वै हासबुद्धचोः समा स्मृता।।६०।। रेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तगते रवौ । प्रातः स्पृतस्ततः कालो भागश्राह्यः स पश्चमः ।६१ तसात्प्रातस्तनात्कालात्त्रिग्रहृतेस्तु सङ्गवः। मध्याह्नस्त्रियुहूर्तस्तु तसात्कालात्तु सङ्गवात् ॥६२॥ तसान्माध्याह्विकात्कालादपराह्व इति स्मृतः। त्रय एव ग्रहूर्तास्तु कालमागः स्मृतो बुधैः ॥६३॥ अपराह्ने व्यतीते तु कालः सायाह्व एव च। द्शपश्चमुहूर्ता वे मुहूर्तास्त्रय एव च ॥६४॥ दशपश्चमुहूर्त वै अहर्वेषुवर्त स्मृतम्।।६५॥ , वर्द्धते इसते चैवाप्ययने दक्षिणोत्तरे। अहस्तु प्रसते रात्रिं रात्रिप्रसति वासरम्।।६६॥ शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवं तु विभान्यते। तुलामेषगते मानौ समरात्रिदिनं तु तत्।।६७॥ कर्कटावस्थिते भानौ दक्षिणायनग्रुच्यते। उत्तरायणमप्युक्तं मकरस्थे दिवाकरे ॥६८॥ त्रिंशन्मुहूर्तं कथितमहोरात्रं तु यन्मया। तानि पञ्चद्श त्रह्मन् पक्ष इत्यमिधीयते ॥६९॥ मासः पश्चद्रयेनोक्तो द्वौ मासौ चार्कजावृतः । ऋतुत्रयं चाप्ययनं द्वेऽयने वर्षसंज्ञिते।।७०।।

संवत्सराद्यः पश्च चतुमासविकाल्पताः।

एक मुहर्त होता है और तीस मुहर्तीके सम्पूर्ण रात्र-दिन होते हैं ॥ ५९ ॥ दिनोंका हास अथवा वृद्धि क्रमशः प्रातःकाल, मध्याह्नकाल आदि दिवसांशोंके हास-वृद्धिके कारण होते हैं; किन्तु दिनोंके घटते-बढ़ते रहनेपर भी सन्ध्या सर्वेदा समान भावसे एक मुहर्तकी ही होती है ॥ ६०॥ उदयसे लेकर सूर्यकी तीन मुहुर्तकी गतिके कालको 'प्रातःकाल' कहते हैं, यह सम्पूर्ण दिनका पाँचवाँ भाग होता है ॥ ६१ ॥ इस प्रातःकालके अनन्तर तीन मुहुर्तका समय 'सङ्गव' कहलाता है तथा सङ्गवकालके पश्चात् तीन मुह्तीका 'मध्याह्न' होता है ॥ ६२ ॥ मध्याह्न-कालसे पीछेका समय 'अपराह्न' कहलाता है इस काल-भागको भी बुधजन तीन मुहूर्तका ही वताते हैं ॥ ६३ ॥ अपराह्नके बीतनेपर 'सायाह्न' आता है। इस प्रकार [सम्पूर्ण दिनमें] पन्द्रह मुहूर्त और [प्रत्येकः दिवसांशमें] तीन मुहूर्त होते हैं ॥ ६४ ॥

श्राविष्णुपुराण

वैषुवत दिवस पन्द्रह मुहूर्तका होता है, किन्तु उत्तरायण और दक्षिणायनमें क्रमशः उसके दृद्धि और हास होने लगते हैं। इस प्रकार उत्तरायणमें दिन रात्रिका प्रास करने लगता है और दक्षिणायनमें रात्रि दिनका प्रास करती रहती है ॥ ६५-६६ ॥ शरद् और वसन्तऋतुको मध्यमें सूर्यको तुला अथवा मेषराशिमें जानेपर 'विषुव' होता है। उस समय दिन और रात्रि समान होते हैं ॥ ६७ ॥ सूर्यके कर्कराशिमें उपस्थित होनेपर दक्षिणायन कहा जाता है और उसके मकरराशिपर आनेसे उत्तरायण कहळाता है ॥ ६८॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने जो तीस मुहूर्तके एक रात्रि-दिन कहे हैं ऐसे पन्द्रह रात्रि-दिवसका एक 'पक्ष' कहा जाता

है ॥ ६९ ॥ दो पक्षका एक मास होता है, दो सौर-

मासकी एक ऋतु और तीन ऋतुका एक अयन होता है तथा दो अयन ही [मिलाकर] एक वर्ष कहे जाते

हैं ॥ ७० ॥ [सौर, सावन, चान्द्र तथा नाक्षत्र-इन]

ाह्यार् अवारके मासोंके अनुसार विविधरूपसे कल्पित संबत्सरादि पाँच प्रकारके वर्ष 'युग' कहलाते हैं निश्रयः सर्वकालस युगमित्यभिधीयते ॥७१॥ संवत्सरस्त प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः। चतुर्थश्रानुवत्सरः । इद्रत्सरस्तृतीयस्त वत्सरः पश्चमश्चात्र कालोऽयं युगसंज्ञितः ॥७२॥ यः श्वेतस्योत्तरः शैलः शृङ्गवानिति विश्वतः । त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणि यैरयं शृङ्गवान्समृतः ॥७३॥ दक्षिणं चोत्तरं चैव मध्यं वैषुवतं तथा। शरद्वसन्तयोर्मध्ये तद्धातः प्रतिपद्यते । मेषादौ च तुलादौ च मैत्रेय विषुवत्स्थितः ॥७४॥ तदा तुल्यमहोरात्रं करोति तिमिरापहः। द्शपश्चमुहूर्तं वे तदेतदुभयं स्मृतम् ॥७५॥ प्रथमे कृत्तिकाभागे यदा भास्त्रांस्तदा शशी। विशाखानां चतुर्थेंऽशे मुने तिष्ठत्यसंशयम् ॥७६॥ विशाखानां यदा सर्यश्ररत्यंशं तृतीयकम् । तदा चन्द्रं विजानीयात्कृत्तिकाशिरसि स्थितम् ।७७। तदैव विषुवाख्योऽयं कालः पुण्योऽभिधीयते । तदा दानानि देयानि देवेभ्यः प्रयतात्मभिः ॥७८॥ ब्राह्मणेभ्यः पितृभ्यश्च ग्रुखमेतत्तु दानजम् । दत्तदानस्तु विषुवे कृतकृत्योऽभिजायते ॥७९॥ अहोरात्रार्द्धमासास्तु कलाः काष्टाः क्षणास्तथा। पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च । सिनीवाली कुहुश्रेव राका चानुमतिस्तथा।।८०॥

यह युग ही [मल्रमासादि] सत्र प्रकारके काल-निर्णय-का कारण कहा जाता है ॥ ७१ ॥ उनमें पहला संब-त्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनु-वत्सर और पाँचवाँ वत्सर है । यह काल 'युग' नामसे विख्यात है ॥ ७२ ॥

श्वेतवर्षके उत्तरमें जो श्रृंगवान नामसे विख्यात पर्वत है उसके तीन शृंग हैं, जिनके कारण यह श्रृंगवान् कहा जाता है ॥ ७३ ॥ उनमेंसे एक श्रृंग उत्तरमें, एक दक्षिणमें तथा एक मध्यमें है। मध्य-शृंग ही 'वैषुवत' है। शरत् और वसन्तऋतुके मध्यमें सूर्य इस वैषुवतशृंगपर आते हैं; अतः हे मैत्रेय ! मेष अथवा तुलाराशिके आरम्भमें तिमिराप-हारी स्पेदेव विषुवत्पर स्थित होकर दिन और रात्रिको समान-परिमाण कर देते हैं। उस समय ये दोनों पन्द्रह-पन्द्रह मुइर्तके होते हैं ॥ ७४-७५ ॥ है मुने ! जिस समय सूर्य कृतिकानक्षत्रके प्रथम भाग अर्थात् मेषराशिके अन्तमें तथा चन्द्रमा निश्चय ही विशाखाके चतुर्थाश [अर्थात् वृश्चिकके आरम्भ] में हों: अथवा जिस समय सूर्य विशाखाके तृतीय भाग अर्थात् तुलाके अन्तिमांशका मोग करते हों और चन्द्रमा कृतिकाके प्रथम भाग अर्थात् मेषान्तमें स्थित जान पड़ें तभी यह 'विषुव' नामक अति पवित्र काल कहा जाता है; इस समय देवता, ब्राह्मण और पितृगणके उद्देश्यसे संयतचित्त होकर दानादि देने चाहिये। यह समय दानग्रहणके लिये मानों देवताओं के खुले हुए मुखके समान है। अतः 'विषुव' कालमें दान करने-वाला मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥ ७६-७९ ॥ यागादिके काल-निर्णयके लिये दिन, रात्रि, पक्ष, कला, काष्टा और क्षण आदिका विषय भली प्रकार चाहिये । राका और अनुमति दो प्रकारकी पूर्णमासी* तथा सिनीवाली और कुड् दो प्रकारकी अमावास्या | होती हैं ॥ ८०॥

अ जिस पूर्णिमामें पूर्णचन्द्र विराजमान होता है वह 'राका' कहलाती है तथा जिसमें एक कजाहीन होती है वह 'अनुमति' कही जाती है।

[†] दृष्टचन्द्रा असावास्त्राका नाम 'सिनीवास्त्री' है श्रीर नष्ट्चन्द्राका नाम 'कुहू' है। CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

तपस्तपस्यो मधुमाधवो च ग्रुकः ग्रुचिश्रायनग्रुत्तरं स्यात्। नभोनमस्यो च इपस्तथोर्ज-. स्सहःसहस्याविति दक्षिणं तत्।।८१।।

लोकालोकश्च यदशैलः प्रागुक्तो भवतो मया। लोकपालास्त चत्वारस्तत्र तिष्टन्ति सुत्रंताः ॥८२॥ सुधामा शङ्खपाचैव कर्दमस्यात्मजो द्विज । हिरण्यरोमा चैवान्यश्रतुर्थः केतुमानपि ॥८३॥ निर्द्धन्द्वा निरभिमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः। लोकपालाः स्थिता होते लोकालोके चतुर्दिशम्।८४। उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीध्याश्र दक्षिणम् । .पितृयानः स वै पन्था वैश्वानरपथाद्वहिः ॥८५॥ तत्रासते महात्मान ऋषयो येऽग्रिहोत्रिणः । भूतारम्भकृतं ब्रह्म शंसन्तो ऋत्विगुद्यताः। प्रारमन्ते तु ये लोकास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः ।८६। चिंत ते पुनर्बद्य स्थापयन्ति युगे युगे । सन्तत्या तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ॥८७॥ जायमानास्तु पूर्वे च पश्चिमानां गृहेषु वै। पश्चिमाश्चेव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह ॥८८॥ एवमावर्तमानास्ते तिष्ठन्ति नियतत्रताः। सवितुर्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ॥८९॥ नागवीथ्युत्तरं यच सप्तर्पिम्यश्च दक्षिणम् । उत्तरः सवितुः पन्था देवयानश्च स स्मृतः ॥९०॥ तत्र ते विश्वनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः । सन्तर्ति ते जुगुप्सन्ति तसान्मृत्युर्जितश्च तैः ॥९१॥ अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामुर्ध्वरेतसाम्।

माध-फाल्गुन, चैत्र-वैशाख तथा ज्येष्ट-आषाढ़-—ये छः मास उत्तरायण होते हैं और श्रावण-भाद्र, आश्विन-कार्तिक तथा अगहन-पौप——ये छः दक्षिणायन कहळाते हैं ।। ८१ ॥

मैंने पहले तुमसे जिस लोकालोकपर्वतका वर्णन किया है, उसीपर चार व्रतशील लोकपाल निवास करते हैं ॥ ८२॥ हे द्विज ! सुधामा, कर्दमके पुत्र शंखपाद और हिरण्यरोमा तथा केतुमान्—ये चारों निर्द्रन्द्व, निर्मिमान, निरालस्य और निष्परिग्रह लोकपालगण लोकालोकपर्वतकी चारों दिशाओं में स्थित हैं ॥८३-८४॥

जो अगस्त्यके उत्तर तथा अजवीथिके दक्षिणमें वैश्वानरमार्गसे मिन्न [मृगवीथि नामक] मार्ग है वही पितृयानपथ है ॥ ८५॥ उस पितृयानमार्गमें महात्मा-मुनिजन रहते हैं । जो छोग अग्निहोत्री होकर प्राणियोंकी उत्पत्तिके आरम्भक ब्रह्म (वेद) की स्तुति करते हुए यज्ञानुष्टानके लिये उद्यत हो कर्मका आरम्भ करते हैं वह (पितृयान) उनका दक्षिणमार्ग है ॥ ८६ ॥ वे युग-युगान्तरमें विच्छिन हुए वैदिक धर्मकी, सन्तान तपस्या वर्णाश्रम-मर्यादा और विविध शास्त्रोंके द्वारा पुनः स्थापना करते हैं ॥ ८७ ॥ पूर्वतन धर्मप्रवर्तक ही अपनी उत्तरकालीन सन्तानके यहाँ उत्पन्न होते हैं और फिर उत्तरकालीन धर्म-प्रचारकगण अपने यहाँ सन्तानरूपसे उत्पन्न हुए अपने पितृगणके कुलोंमें जन्म छेते हैं ॥ ८८ ॥ इस प्रकार, वे व्रतशील महर्षिगण चन्द्रमा और तारागणकी स्थितिपर्यन्त सूर्यके दक्षिणमार्गमें पुनः-पुनः आते-जाते रहते हैं ॥ ८९ ॥

नागवीथ्युत्तरं यच सप्तर्पिभ्यश्च दक्षिणम् ।
उत्तरः सिवतुः पन्था देवयानश्च स स्मृतः ॥९०॥
तत्र ते विश्वनः सिद्धा विमला त्रह्मचारिणः ।
सन्तितं ते जुगुप्सन्ति तस्मान्मृत्युर्जितश्च तैः ॥९१॥
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
उद्वपन्थानमर्थम्णः स्थितान्याभूतसम्भ्रवम् ॥९२॥
मृनिगण प्रल्यकाल्पर्यन्त निवास करते हैं ॥ ९२॥
मृनिगण प्रल्यकाल्पर्यन्त निवास करते हैं ॥ ९२॥

तेऽसम्प्रयोगाल्लोभस मैथुनस च वर्जनात्। इच्छाद्वेपाप्रवृत्त्या च भृतारम्भविवर्जनात् ॥९३॥ पुनश्र कामासंयोगाच्छव्दादेदीपदर्शनात् । इत्येभिः कारणैः शुद्धास्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे ॥९४॥ आभूतसम्छवं स्थानममृतत्वं विभाव्यते । त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार उच्यते ॥९५॥ ब्रह्महत्याश्चमेधाभ्यां पापपुण्यकृतो विधिः। आभूतसम्यवान्तन्तु फलग्रुक्तं तयोर्द्विज ॥९६॥ यावन्मात्रे प्रदेशे तु मैत्रेयावस्थितो ध्रवः। क्षयमायाति तावत्तु भूमेराभूतसम्प्लवात् ॥९७॥ ऊर्घ्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्र व्यवस्थितः । एतद्विष्णुपदं दिच्यं तृतीयं च्योम्नि भासुरम् ॥९८॥ निर्धृतदोषपङ्कानां यतीनां संयतात्मनाम् । स्थानं तत्परमं विप्र पुण्यपापपरिक्षये ॥९९॥ अपुण्यपुण्योपरमे क्षीणाशेषाप्तिहेतवः । यत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्।१००। धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाक्षिणः। तत्साष्ट्योत्पत्रयोगेद्धास्तद्विष्णोः परमं पदम् ।१०१। यत्रोतमेतत्त्रोतं च यद्भृतं सचराचरम् । भाव्यं च विश्वं मैत्रेय तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१०२॥ दिवीव चक्षुराततं योगिनां तन्मयात्मनाम्। विवेकज्ञानदृष्टं च तद्विष्णोः परमं पद्म् ॥१०३॥ यसिन्प्रतिष्ठितो भाखांन्मेढीभूतः खर्यं ध्रुवः। धुवे च सर्वज्योतींपि ज्योतिः ज्वम्भोमुचो द्विज १०४ मेघेषु सङ्गता वृष्टिवृष्टेः सृष्टेश्च पोषणम् ।

उन्होंने होभके असंयोग, मैथुनके त्याग, इच्छा और द्वेपकी अप्रवृत्ति. कर्मानुष्टानके त्याग, काम-वासनाके असंयोग और शब्दादि विपयोंके दोप-दर्शन इत्यादि कारणोंसे गुद्धचित्त होकर अमरता प्राप्त कर ली है ॥ ९३-९४ ॥ भूतोंके प्रख्यपर्यन्त स्थिर रहनेको हो अमरता कहते हैं। त्रिलोकीकी स्थिति-तकके इस कालको ही अपुनर्मार (पुनर्मृत्युरहित) कहा जाता है ॥ ९५ ॥ हे द्विज ! ब्रह्महत्या और अश्वमेध-यज्ञसे जो पाप और पुण्य होते हैं उनका फल प्रलयपर्यन्त कहा गया है ॥ ९६॥

हे मैत्रेय ! जितने प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथिवीसे लेकर उस प्रदेशपर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है ॥ ९७ ॥ सप्तर्पियोंसे उत्तर-दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित है वह अति तेजोमय स्थान ही आकाशमें विष्णुभगवान्का तीसरा दिव्य-धाम है ॥ ९८ ॥ हे विष्र ! पुण्य-पापके क्षीण हो जानेपर दोष-पंकश्र्न्य संयतात्मा मुनिजनोंका यही प्रमस्थान है ॥९९॥ पाप-पुण्यके निवृत्त हो जाने तथा देह-प्राप्तिके सम्पूर्ण कारणोंके नष्ट हो जानेपर प्राणिगण जिस स्थानपर जाकर फिर शोक नहीं करते वहीं भगवान् विष्णुका परमपद है ॥ १००॥ जहाँ भगवान्की समानऐश्वर्यतासे प्राप्त हुए योगद्वारा सतेज होकर धर्म और ध्रुव आदि साक्षिगण निवास करते हैं वहीं भगवान् विष्णुका परमपद है ॥ १०१ ॥ हे मैत्रेय ! जिसमें यह भूत, भविष्यत् और वर्तमान चराचर जगत् ओतप्रोत हो रहा है वहीं भगवान् विष्णुका परमपद है ॥ १०२ ॥ जो तङ्घीन योगिजनोंको आकाशमण्डलमें देदीप्यमान सूर्यके समान सत्रके प्रकाशकरूपसे प्रतीत होता है तथा जिसका विवेक-ज्ञानसे ही प्रत्यक्ष होता है वहीं भगवान् विष्णुका परमपद है ॥१०३॥ हे द्विज ! उस विष्गुपदमें हो सत्रके आधारभूत परम-तेजस्वी ध्रुव स्थित हैं, तथा ध्रुवजीमें समस्त नक्षत्र, नंक्षत्रोंमें मेघ और मेघोंमें वृष्टि आश्रित है। हे महा-मुने! उस वृष्टिसे ही समस्त सृष्टिका पोपण और सम्पूर्ण आप्यायनं च सर्वेषां देवादीनां महापुने ॥१०५॥ देव-मनुष्यादि प्राणियोंकी पुष्टि होती है॥१०४-१०५॥ ततश्राज्याहुतिद्वारा पोषितास्ते हविर्धुजः। बृष्टेः कारणतां यान्ति भूतानां स्थितये पुनः।।१०६।। एवमेतत्पदं विष्णोस्तृतीयममलात्मकम्। आधारभूतं लोकानां त्रयाणां वृष्टिकारणम् ॥१०७॥ ततः प्रभवति ब्रह्मन्सर्वपापहरा सरित्। देवाङ्गनाङ्गानामनुरुपनपिञ्जरा ॥१०८॥ वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठनखस्रोतोविनिर्गताम्। विष्णोर्विमर्ति यां मक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः १०९ ततः सप्तर्वयो यस्याः प्राणायामपरायणाः। तिष्ठन्ति वीचिमालाभिरुद्यमानजटा जले ।।११०।। वार्योधैः सन्ततैर्यस्याः प्लावितं शशिमण्डलम् । भूयोऽधिकतरां कान्ति वहत्येतदुह क्षये ।।१११।। मेरुपृष्ठे पतत्युचैर्निष्क्रान्ता शशिमण्डलात् । जगतः पावनार्थाय प्रयाति च चतुर्दिशम् ॥११२॥ सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च संस्थिता । एकैव या चतुर्भेदा दिग्भेदगतिलक्षणा ॥११३॥ मेदं चालकनन्दाख्यं यस्याः शर्वीऽपि दक्षिणम्। द्घार शिरसा प्रीत्या वर्षाणामधिकं शतम्।।११४।। शम्मोर्जटाकलापाच विनिष्कान्तास्थिशकराः। प्लावयित्वा दिवं निन्ये या पापान्सगरात्मजान् ।। स्नातस्य सिछले यस्याः सद्यः पापं प्रणक्यति । अपूर्वपुण्यप्राप्तिश्र सद्यो मैत्रेय जायते ॥११६॥ दत्ताः पितृम्यो यत्रापस्तनयैः श्रद्धयान्वितैः। समाग्रतं प्रयच्छन्ति तृप्तिं मैत्रेय दुर्लभाम् ॥११७॥ द्विज भूगाः परां सिद्धिमवापुर्दिवि चेह च ॥११८॥ छोकमें

तदनन्तर गौ आदि प्राणियोंसे और घृत आदिकी आहुतियोंसे परितुष्ट अग्निदेव लिये स्थितिके प्राणियोंकी कारण होते हैं ॥ १०६ ॥ इस प्रकार विष्णुभगवान्-का यह निर्मल तृतीय लोक (ध्रुव) ही त्रिलोकीका आधारमूत ओर वृष्टिका आदिकारण है ॥ १०७॥

हे ब्रह्मन् ! इस विष्णुपदसे ही देवांगनाओंके पाण्डुरवर्ण हुई-सी सर्वपापापहारिणी श्रीगंगाजी उत्पन्न हुई हैं ॥ १०८॥ विष्णुमगवान्के वाम चरण-कमलके अँगूठेके नखरूप स्रोतसे निकली हुई उन गंगाजीको ध्रुव दिन-रात अपने मस्तकपर धारण करता है ॥ १०९ ॥ तदनन्तर जिनके जलमें सप्तर्षिगण उनकी खड़े होकर प्राणायाम-परायण तरंगमंगीसे जटाकछापके कम्पायमान होते द्वए, अघमर्षण-मन्त्रका जप करते हैं तथा जिनके विस्तृत जलसमूहसे आप्रावित होकर चन्द्रमण्डल क्षयके अनन्तर पुनः पहलेसे भी अधिक कान्ति धारण करता है, वे श्रीगंगाजी चन्द्रमण्डलसे निकलकर मेरुपर्वतके ऊपर गिरती हैं और संसारको पवित्र करनेके लिये चारों दिशाओंमें जाती हैं॥ ११०-११२ ॥ चारों दिशाओंमें जानेसे वे एक ही सीता, अलकनन्दा, चक्षु और मद्रा इन चार मेदोंबाली हो जाती हैं ॥ ११३॥ जिसके अलकनन्दा नामक दक्षिणीय भेदको भगवान् शंकरने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सौ वर्षसे भी अधिक अपने मस्तकपर किया था, जिसने श्रीशंकरके जटाकलापसे निकलकर पापी सगरपुत्रोंके अस्थिचूर्णको आप्रावित उन्हें खर्गमें पहुँचा कर हे मैत्रेय ! जिसके जलमें स्नान करनेसे शीप्र ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है ॥ ११४-११६॥ जिसके प्रवाहमें पुत्रोंद्वारा पितरोंके छिये श्रद्धापूर्वक किया हुआ एक दिनका भी तर्पण उन्हें सौ वर्षतक दुर्छभ तृप्ति देता है ॥११७॥ हे द्विज ! यस्यामिष्ट्रा महायज्ञैर्यज्ञेशं पुरुषोत्तमम् । CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collec पुरुषोत्तमका hi स्वानं zed hy Gangotri हें हलोक और खर्ग-परमसिद्धि लाम की है ॥

स्नानाद्विध्तपापाश्च यञ्जर्रेर्यतयस्तथा।
केशवासक्तमनसः प्राप्ता निर्वाणग्रुत्तमम् ॥११९॥
श्रुताऽभिरुपिता दृष्टा स्पृष्टा पीताऽवगाहिता।
या पावयति भूतानि कीर्तिता च दिने दिने॥१२०॥
गङ्गा गङ्गेति यैनीम योजनानां श्रतेष्वपि।
स्थितरुचारितं हन्ति पापं जन्मत्रयार्जितम्॥१२१॥
यतः सा पावनायालं त्रयाणां जगतामपि।
सग्रुद्धता परं तत्तु तृतीयं भगवत्पदम्॥१२२॥

जिसके जल्में स्नान करनेसे निष्पाप हुए यतिजनोंने भगवान् केशवमें चित्त लगाकर अत्युत्तम निर्वाणपद प्राप्त किया है।।११९॥ जो अपना श्रवण, इच्छा, दर्शन, स्पर्श, जल्पान, स्नान तथा यशोगान करनेसे ही नित्यप्रति प्राणियोंको पवित्र करती रहती है॥१२०॥ तथा जिसका 'गंगा, गंगा' ऐसा नाम सौ योजनकी दूरीसे भी उच्चारण किये जानेपर [जीवके] तीन जन्मोंके सिश्चित पापोंको नष्ट कर देता है॥१२१॥ त्रिलोकोको पवित्र करनेमें समर्थ वह गंगा जिससे उत्पन्न हुई है, वहीं भगवान्का तीसरा परमपद है॥१२२॥

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीर्येऽशे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८॥

नवाँ अध्याय

ज्योतिश्चक और शिशुमारचक ।

श्रीपराशर उवाच

तारामयं भगवतः शिशुमाराकृति प्रभोः ।
दिवि रूपं हरेर्यन्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः ॥ १ ॥
सैष अमन् आमयति चन्द्रादित्यादिकान् प्रहान् ।
अमन्तमनु तं यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥ २ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।
वातानीकमयैर्वन्धेर्ध्ववे बद्धानि तानि वै ॥ ३ ॥
शिशुमाराकृति प्रोक्तं यद्र्पं ज्योतिषां दिवि ।
नारायणोऽयनं धाम्नां तस्याधारः स्वयं हृदि ॥ ४ ॥
उत्तानपादपुत्रस्तु तमाराध्य जगत्पतिम् ।
स ताराशिशुमारस्य ध्रवः पुच्छे व्यवस्थितः ॥ ५ ॥
आधारः शिशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनार्दनः ।
ध्रवस्य शिशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनार्दनः ।
ध्रवस्य शिशुमारस्तु ध्रवे भानुव्यवस्थितः ॥ ६ ॥
तदाधारं जगचेदं तसदेवासुरमानुष्प् ॥ ७ ॥

श्रीपराशरजी बोले-आकाशमें मगवान् विण्युका जो शिशुमार (गिरगिट अथवा गोधा) के समान आकारवाला तारामय खरूप देखा जाता है उसके पुच्छ-मागमें ध्रुव अवस्थित है ॥ १॥ यह ध्रुव खर्य घूमता हुआ चन्द्रमा और सूर्य आदि प्रहोंको घुमाता है। उस श्रमणशील ध्रुवके साथ नक्षत्रगण भी चक्रके समान घूमते रहते हैं ॥ २॥ सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र और अन्यान्य समस्त प्रह्रगण वायु-मण्डलमयी डोरीसे ध्रुवके साथ वैधे हुए हैं ॥ ३॥

मैंने तुमसे आकारामें प्रहगणके जिस शिशुमार-खरूपका वर्णन किया है, अनन्त तेजके आश्रय खयं भगवान् नारायण ही उसके हृदयस्थित आधार हैं ॥ ४ ॥ उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने उन जगत्पतिकी आराधना करके तारामय शिशुमारके पुच्छस्थानमें स्थिति प्राप्त की है ॥ ५ ॥ शिशुमारके आधार सर्वेश्वर श्रीनारायण हैं, शिशुमार ध्रुवका आश्रय है और ध्रुवमें स्पेदेव स्थित हैं तथा हे विप्र ! जिस प्रकार देव, असुर और मनुष्यादिके सहित यह सम्पूर्ण जगत सूर्यके आश्रित है, येन विप्र विधानेन तन्ममैकमनाः शृणु ।
विवस्तानष्टिभिर्मासैरादायापो रसात्मिकाः ।
वर्षत्यम्ब ततः चान्नमन्नाद्प्यस्तिलं जगत् ॥ ८॥
विवस्तानं ग्रुभिस्तीक्ष्णेरादाय जगतो जलम् ।
सोमं पुष्णात्यथेन्दु स्च वायुनाडीमयैदिंवि ।
नालैविक्षिपते अप्रेषु धूमाग्न्यनिलम् तिषु ॥ ९॥
न अस्यन्ति यतस्तेम्यो जलान्यभ्राणि तान्यतः ।
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना सम्रदीरिताः ।
संस्कारं कालजनितं मैत्रेयासाद्य निर्मलाः ॥१०॥

सरित्समुद्रभौमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः । चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सविता मुने ॥११॥ आकाशगङ्गासिललं तथादाय गभितमान् । अन्त्रगतमेवोर्च्यां सद्यः क्षिपति रिक्मिभः ॥१२॥ संस्पर्शनिर्धृतपापपङ्को द्विजोत्तम। न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्स्मृतम् ।१३। दृष्टसूर्य हि यद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः । आकाशगङ्गासलिलं तद्रोभिः क्षिप्यते रवेः ॥१४॥ कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेषु च यद्दिवः । दृष्टार्कपतितं ज्ञेयं तद्गाङ्गं दिग्गजोज्झितम् ॥१५॥ युग्मर्थेषु च यत्तोयं पतत्यकों ज्झितं दिवः । तत्स्र्यरिक्मिभिः सर्वे समादाय निरस्यते ॥१६॥ उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापभयापहम्। आकाशगङ्गासिललं दिच्यं स्नानं महाम्रुने ।।१७।।

यत्तु मेषः सम्रत्सृष्टं वारि तत्त्राणिनां द्विज ।

वह तुम एकाप्र होकर सुनो।

सूर्य आठ मासतक अपनी किरणोंसे छः रसोंसे युक्त जलको ग्रहण करके उसे चार महीनोंमें वरसा देता है उससे अनकी उत्पत्ति होती है और अनहींसे सम्पूर्ण जगत् पोषित होता है ॥६—८॥ सूर्य अपनी तीक्ष्ण रिम्म्योंसे संसारका जल खींचकर उससे चन्द्रमाका पोषण करता है और चन्द्रमा आकाशमें वायुमयी नाडियोंके मार्गसे उसे घूम, अग्नि और वायुमय मेघोंमें पहुँचा देता है ॥९॥ यह चन्द्रमाह्वारा प्राप्त जल मेघोंसे तुरन्त ही भ्रष्ट नहीं होता इसिलये 'अभ्र' कहलाता है। हे मैत्रेय! कालजनित संस्कारके प्राप्त होनेपर यह अश्रस्थ जल निर्मल होकर वायुकी प्रेरणासे पृथिवीपर वरसने लगता है॥ १०॥

हे मुने ! भगवान सूर्यदेव नदी, समुद्र, पृथिवी तथा प्राणियोंसे उत्पन्न-इन चार प्रकारके जलोंका आकर्षण करते हैं ॥ ११ ॥ तथा आकाशगंगाके जलको प्रहण करके वे उसे बिना मेघादिके अपनी किरणोंसे ही तरन्त पृथिवीपर वरसा देते हैं ॥ १२ ॥ हे द्विजोत्तम ! उसंके स्पर्शमात्रसे पाप-पंकके धुळ जानेसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता । अतः वह दिव्यस्नान कहलाता है ॥ १३ ॥ सूर्यके दिखलायी देते हुए, बिना मेघोंके ही जो जल बरसता है वह सूर्यकी किरणोंद्वारा बरसाया हुआ आकाशगंगाका ही जल होता है ॥ १४॥ कृतिका आदि विपम (अयुग्म) नक्षत्रोंमें जो जल सूर्यके प्रकाशित रहते हुए बरसता है उसे दिग्गजों-द्वारा बर्साया हुआ आकाशगंगाका जल समझना चाहिये ॥ १५॥ [रोहिणी और आर्दा आदि] सम संख्यावाले नक्षत्रोंमें जिस जलको सूर्य बरसाता है वह सूर्यरिंग्योंद्वारा [आकाशगंगासे] ग्रहण करके ही वरसाया जाता है ॥१६॥ हे महामुने ! आकाशगंगाके ये [सम तथा विषम नक्षत्रोंमें बरसनेवाले] दोनों प्रकारके जलमय दिव्य स्नान अत्यन्त पवित्र और मनुष्योंके पाप-भयको दृर करनेवाले हैं ॥ १७॥ ction, New Delhi. Digitized by eGangotri

हे द्विज ! जो जल मेघोंद्वारा वरसाया जाता है वह

पुष्णात्योपधयः सर्वा जीवनायामृतं हि तत्।।१८।। तेन वृद्धि परां नीतः सकल्योपधीगणः। साधकः फलपाकान्तः प्रजानां द्विज जायते ॥१९॥ तेन यज्ञान्यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुपः । कुर्वन्त्यहरहस्तैश्र देवानाप्याययन्ति ते ॥२०॥ एवं यज्ञाश्र वेदाश्र वर्णाश्र वृष्टिपूर्वकाः । सर्वे देवनिकायाश्च सर्वे भूतगणाञ्च ये।।२१।। बृष्टचा धृतमिदं सर्वमनं निष्पाद्यते यया । सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तम ॥२२॥ आधारभूतः सवितुर्भुवो मुनिवरोत्तम । ध्रवस्य शिश्चमारोऽसौ सोऽपि नारायणात्मकः।२३। हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः । विभर्ता सर्वभूतानामादिभूतः सनातनः ॥ २४ ॥ सनातन पुरुप हैं ॥ २४ ॥

प्राणियोंके जीवनके लिये अमृतरूप होता है और ओषियोंका पोपण करता है।। १८।। हे विप्र ! उस वृष्टिके जल्से परम वृद्धिको प्राप्त होकर समस्त ओषियाँ और फल पक्तनेपर सुख जानवाले [गोधूम, यव आदि अन] प्रजावर्गके [शरीरकी उत्पत्ति एवं पोपण आदिके] साधक होते हैं॥ १९॥ उनके द्वारा शास्त्रविद मनीपिगण नित्यप्रति यथाविधि यज्ञानुष्टान करके देवताओंको सन्तुष्ट करते हैं ॥२०॥ इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ, वेद, ब्राह्मणादि वर्ण, समस्त देवसमृह और प्राणिगण वृष्टिके ही आश्रित हैं ॥ २१ ॥ हे मुनिश्रेष्ट ! अन्नको उत्पन्न करनेवाली वृष्टि ही इन सबको धारण करती है तथा उस वृष्टिकी उत्पत्ति सूर्यसे होती है ॥ २२ ॥

हे मुनिवरोत्तम ! सूर्यका आधार ध्रुव है, ध्रुवका शिशुमार है तथा शिशुमारके आश्रय श्रीनारायण हैं ॥ २३ ॥ उस शिञ्जमारके हृदयमें श्रीनारायण स्थित हैं जो समस्त प्राणियोंके पाळनकर्ता तथा आदिमृत

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयें ऽशे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशवाँ अध्याय

द्वादश सूर्योंके नाम एवं अधिकारियोंका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

साजीतिमण्डलञ्जतं काष्ट्रयोरन्तरं द्वयोः। आरोहणावरोहाभ्यां भानोरब्देन या गतिः ॥ १ ॥ स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋपिभिस्तथा। ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥ २ ॥ गन्धर्वेरप्सरोभिश्र धाता ऋतुस्थला चैव पुलस्त्यो वासुकिस्तथा । रथभृद्ग्रामणीहेंतिस्तुम्बुरुव्चेव सप्तमः ॥ ३ ॥ एते वसन्ति वै चैत्रे मधुमासे सदैव हि। मैत्रेय सन्दने भानोः सप्त मासाधिकारिणः॥ ४॥ अर्यमा पुलहरूचैव रथौजाः पुञ्जिकस्थला ।

श्रीपराशरजी बोले-आरोह और अवरोहके द्वारा सूर्यकी एक वर्षमें जितनी गति है उस सम्पूर्ण मार्गकी दोनों काष्टाओंका अन्तर एक सौ अस्सी मण्डल है ॥ १॥ सूर्यका रथ [प्रति मास] भिन्न-भिन्न आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सर्प और राक्षसगणोंसे अधिष्ठित होता है ॥ २ ॥ हे मैत्रेय ! मधुमास चैत्र-में सूर्यके रथमें सर्वदां धाता नामक आदित्य, ऋतुस्थला अप्सरा, पुलस्त्य ऋषि, वासुकि सर्प, रथमृत् यक्ष, हेति राक्षस और तुम्बुरु गन्धर्व ये सात मासा-विकारी रहते हैं ॥३-४॥ तथा अर्यमा नामक आदित्य. पुलह ऋषि, रथौजा यक्ष, पुञ्जिकस्थला अप्सरा, प्रहेति tion, New Delhi. Digitized by eGangotri प्रहेतिः कच्छवीरश्व नारदश्च रथे खेः॥ ५॥ माधवे निवसन्त्येते शुचिसंज्ञे निबोध मे ॥ ६॥ मित्रोऽत्रिस्तक्षको रक्षः पौरुषेयोऽथ मेनका । हाहा रथखनश्चेव मैत्रेयैते वसन्ति वै॥७॥ वरुणो वसिष्ठो नागश्च सहजन्या हूहू रथः। शुक्रे वसन्त्याषाढसंज्ञके ॥ ८॥ रथचित्रस्तथा इन्द्रो विश्वावसुः स्रोत एलापुत्रस्तथाङ्गिराः । प्रम्लोचा च नभस्येते सर्पिश्चार्के वसन्ति वै ॥ ९ ॥ भृगुरापूरणस्तथा । विवस्तात्रप्रसेनश्च अनुम्लोचा शङ्खपालो व्याघ्रो भाद्रपदे तथा।।१०॥ पूषा वसुरुचिर्वातो गौतमोऽथ धनझयः। सुवेणोऽन्यो घृताची च वसन्त्याश्वयुजे रवौ।।११।। विश्वावसुर्भरद्वाजः पर्जन्यैरावतौ तथा। विक्वाची सेनजिचापः कार्तिके च वसन्ति वै।।१२।। अंशकाश्यपतार्ध्यास्त महापद्यस्तथोर्वशी । चित्रसेनस्तथा विद्यन्मार्गशीर्पेऽधिकारिणः ॥१३॥ ऋतुर्भगस्तथोणीयुः स्फूर्जः कर्कोटकस्तथा। अरिष्टनेमिश्रवान्या पूर्वचित्तिर्वराप्सराः ॥१४॥ पौपमासे वसन्त्येते सप्त भास्करमण्डले । लोकप्रकाशनार्थाय विप्रवर्याधिकारिणः ॥१५॥ त्वष्टाथ जमदमिश्च कम्बलोऽथ तिलोत्तमा। त्रह्मोपेतोऽथ ऋतजिद् धृतराष्ट्रोऽथ सप्तमः ॥१६॥ माथमासे वसन्त्येते सप्त मैत्रेय भास्करे। श्रूयतां चापरे सूर्ये फाल्गुने निवसन्ति ये ॥१७॥

राक्षस, कच्छवीर सर्प और नारद नामक गन्धर्व—ये वैशाख-मासमें सूर्यके रथपर निवास करते हैं। हे मैत्रेय! अब ज्येष्ठ मासमें [निवास करनेवाळोंके नाम] सुनो ॥५-६॥ उस समय मित्र नामक आदित्य, अत्रि ऋषि, तक्षक सर्प, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथखन नामक यक्ष—ये उस रथमें वास करते हैं।।।।।। तथा आषाढ़-मासमें वरुण नामक आदित्य, विसष्ठ ऋषि, नाग सर्प, सहजन्या अप्सरा, हुद्र गन्धर्व, रथ राक्षस और रथिचत्र नामक यक्ष उसमें रहते हैं।। ८॥

श्रावण-मासमें इन्द्र नामक आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, स्रोत यक्ष, एळापुत्र सर्प, अंगिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और सर्पि नामक राक्षस सूर्यके रथमें वसते हैं॥९॥ तथा भाद्रपदमें विवस्तान् नामक आदित्य, उग्रसेन गन्धर्व, भृगु ऋषि, आपूरण यक्ष, अनुम्लोचा अप्सरा, शंखपाल सर्प और व्याच्र नामक राक्षसका उसमें निवास होता है॥१०॥

आश्विन-मासमें पूषा नामक आदित्य, वसुरुचि गन्धर्व, वात राक्षस, गौतम ऋषि, धनञ्जय सर्प, सुषेण-गन्धर्व और घृताची नामकी अप्सराका उसमें वास होता है ॥ ११ ॥ कार्तिक-मासमें उसमें विश्वावसु नामक गन्धर्व, मरद्वाज ऋषि, पर्जन्य आदित्य, ऐरावत सर्प, विश्वाची अप्सरा, सेनजित् यक्ष तथा आप नामक राक्षस रहते हैं ॥ १२ ॥

मार्गशोर्षके अधिकारी अंश नामक आदित्य, काश्यप ऋषि, तार्क्य यक्ष, महापद्म सर्प, उर्वशी अप्सरा, चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत् नामक राक्षस हैं ॥ १३ ॥ हे विप्रवर ! पौष-मासमें कृतु ऋषि, मग आदित्य, ऊर्णाय गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोटक सर्प, अरिष्टनेमि यक्ष तथा पूर्वचित्ति अप्सरा जगत्को प्रकाशित करनेके छिये सूर्यमण्डलमें रहते हैं ॥ १४-१५ ॥

हे मैत्रेय ! त्वष्टा नामक आदित्य, जमदिश ऋषि, कम्बल सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मोपेत राक्षस, ऋत-जित् यक्ष और धृतराष्ट्र गन्धर्व—ये सात माध-मासमें सास्करसाहल्में तहते हैं बील्अन, जो फाल्गुन-मासमें सूर्यके रथमें रहते हैं उनके नाम सुनो ॥ १६-१७॥ विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्यवर्चाञ्च सत्यजित् ।
विश्वामित्रस्तथा रक्षो यज्ञोपेतो महामुने ॥१८॥
मासेष्वेतेषु मैंत्रेय वसन्त्येते तु सप्तकाः ।
सवितुर्मण्डले त्रह्मान्त्रिष्णुशक्त्युपचृंहिताः ॥१९॥
सतुवन्ति मुनयः सूर्यं गन्धवैंगीयते पुरः ।
नृत्यन्त्यप्सरसो यान्ति सूर्यसानु निशाचराः॥२०॥
वहन्ति पन्नगा यक्षैः कियतेऽभीषुसङ्गहः ॥२१॥
वालिखल्यास्तथैवैनं परिवार्य समासते ॥२२॥
सोऽयं सप्तगणः सूर्यमण्डले मुनिसत्तम ।
हिमोष्णवारिवृष्टीनां हेतुः स्वसमयं गतः ॥२३॥

हे महामुने ! वे विष्णु नामक आदित्य, अश्वतर सर्प, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और यज्ञोपेत नामक राक्षस हैं ॥ १८ ॥

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार विष्णुभगवान्की शक्तिसे तेजोमय हुए ये सात-सात गण एक-एक मासतक सूर्यमण्डल्में रहते हैं ॥ १९ ॥ मुनिगण सूर्यकी स्तुति करते हैं, गन्धर्व सम्मुख रहकर उनका यशोगान करते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती हैं, राक्षस रथके पीछे चलते हैं, सर्प वहन करनेके अनुकूल रथको सुसिक्जित करते हैं और यक्षगण रथकी वागडोर सँमालते हैं तथा नित्यसेवक वालिल्यादि इसे सब ओरसे घेरे रहते हैं ॥ २०—२२ ॥ हे मुनिसत्तम ! सूर्यमण्डलके ये सात-सात गण ही अपने-अपने समयपर उपस्थित होकर शीत, प्रीष्म और वर्षा आदिके कारण होते हैं ॥२३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे दशमोऽध्यायः ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सूर्यशक्ति एवं वैष्णवी शक्तिका वर्णन ।

श्रीमैत्रेय उवाच

यदेतद्भगवानाह गणः सप्तविधो रवेः।
मण्डले हिमतापादेः कारणं तन्मया श्रुतम्॥१॥
व्यापारश्चापि कथितो गन्धवोरगरक्षसाम्।
ऋषीणां वालखिल्यानां तथैवाप्सरसां गुरो॥२॥
यक्षाणां च रथे भानोर्विष्णुशक्तिधतात्मनाम्।
किं चादित्यस्य यत्कर्म तन्नात्रोक्तं त्वया मुने॥३॥
यदि सप्तगणो वारि हिममुष्णं च वर्षति।
तत्किमत्र रवेर्येन वृष्टिः सूर्यादितीर्यते॥४॥
विवस्वानुदितो मध्ये यात्यस्तमिति किं जनः।
ब्रवीत्येतत्समं कर्म यदि सप्तगणस्य तत्॥५॥

श्रीमेत्रेयजी बोले-भगवन् ! आपने जो कहा कि सूर्यमण्डलमें स्थित सातों गण शीत-प्रीष्म आदिके कारण होते हैं, सो मैंने सुना ॥ १ ॥ हे गुरो ! आपने सूर्यके रथमें स्थित और विष्णु-शक्तिसे प्रभावित गन्धर्व, सर्प, राक्षस, ऋषि, वालखिल्यादि, अप्सरा तथा यश्चोंके तो पृथक्-पृथक् व्यापार वतलाये, किन्तु हे मुने ! यह नहीं वतलाया कि सूर्यका कार्य क्या है ! ॥ २-३ ॥ यदि सातों गण ही शीत, प्रीष्म और वर्पाके करनेवाले हैं तो फिर सूर्यका क्या प्रयोजन है ! और यह कैसे कहा जाता है कि वृष्टि सूर्यसे होती है ! ॥ ४ ॥ यदि सातों गणोंका यह वृष्टि आदि कार्य समान ही है तो 'सूर्य उदय हुआ, अव मध्यमें है, अब अस्त होता है' ऐसा लोग क्यों कहते हैं ? ॥ ५॥

श्रीपराशर उवाच

श्र्यतामेतद्यद्भवान्परिपृच्छति । मेत्रेय यथा सप्तगणेऽप्येकः प्राधान्येनाधिको रविः।।६॥ सर्वशक्तिः परा विष्णोर्ऋग्यज्ञःसामसंज्ञिता । सैषा त्रयी तपत्यंहो जगतश्च हिनस्ति या।। ७।। सैष विष्णुः स्थितः स्थित्यां जगतः पालनोद्यतः । ऋग्यज्ञःसामभृतोऽन्तः सवितुर्द्विज तिष्ठति ॥ ८ ॥ मासि मासि रवियों यस्तत्र तत्र हि सा परा। त्रयीमयी विष्णुशक्तिरवंस्थानं करोति वै।। ९।। ऋचः स्तुवन्ति पूर्वोह्ने मध्याह्वेऽथ यज्ंषि वै । बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्वः क्षये रविम् ॥१०॥ अङ्गमेषा त्रयी विष्णोर्ऋग्यज्ञःसामसंज्ञिता। विष्णुशक्तिरवस्थानं सदादित्ये करोति सा ॥११॥ न केवलं खेः शक्तिवेंज्यवी सा त्रयीमयी। पुरुषो रुद्रस्रयमेतत्त्रयीमयम् ॥१२॥ सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यज्रर्भयः। रुद्रः साममयोऽन्ताय तसात्तसाशुचिध्वीनः।।१३।। एवं सा सास्विकी शक्तिवेंष्णवी या त्रयीमयी। आत्मसप्तगणस्यं तं भाखन्तमधितिष्ठति ॥१४॥ तया चाघिष्ठितः सोऽपि जाज्वलीति खरिक्मिभः। तमः समस्तजगतां नाशं नयति चाखिलम् ॥१५॥ स्तुवन्ति चैनं ग्रुनयो गन्धर्वेर्गीयते पुरः। नृत्यन्त्योऽप्सरसो यान्ति तस्य चातु निशाचराः ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! जो कुछ तुमने पूछा है उसका उत्तर सुनो, सूर्य सात गणोंमेंसे ही एक हैं तथापि उनमें प्रधान होनेसे उनकी विशेषता है ॥६॥ भगवान् विष्णकी जो सर्वशक्तिमयी ऋक, यजुः, साम नामकी परा शक्ति है वह वेदत्रयी ही सूर्यको ताप प्रदान करती है और िउपासना जानेपर] संसारके समस्त पापोंको नष्ट कर देती है ॥ ७॥ हे द्विज! जगत्की स्थिति और पालनके लिये वे ऋक्, यजुः और सामरूप विष्णु सूर्यके भीतर निवास करते हैं ॥ ८॥ प्रत्येक मासमें जो-जो सूर्य होता है उसी-उसीमें वह वेदत्रयीरूपिणी विष्णुकी परा शक्ति निवास करती है ॥ ९ ॥ पूर्वीह्वमें ऋक, मध्याह्रमें बृहद्रथन्तरादि यजुः तथा सायंकालमें सामश्रुतियाँ सूर्यकी स्तुति करती हैं * ॥१०॥ यह ऋक्-यजुः-सामखरूपिणी वेदत्रयी भगवान् विष्णुका ही अङ्ग है। यह विष्णु-शक्ति सर्वदा आदित्यमें रहती है ॥११॥

यह त्रयीमयी वैष्णवी राक्ति केवल सूर्यहीकी अधिष्ठात्री हो, सो नहीं; विल्क ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी त्रयीमय ही हैं ॥१२॥ सर्गके आदिमें ब्रह्मा ऋड्म् मय हैं, उसकी स्थितिके समय विष्णु यजुर्मय हैं तथा अन्तकालमें रुद्ध साममय हैं। इसीलिये सामगानकी. ध्विन अपवित्र † मानी गयी है॥१३॥ इस प्रकार, वह त्रयीमयी सास्विकी वैष्णवी राक्ति अपने सप्तगणोंमें स्थित आदित्यमें ही [अतिशयरूपसे] अवस्थित होती है॥१४॥ उससे अधिष्ठित सूर्यदेव भी अपनी प्रखर रिमर्योंसे अत्यन्त प्रज्वलित होकर संसारके सम्पूर्ण अन्धकारको नष्ट कर देते हैं॥१५॥

उन सूर्यदेवकी मुनिगण स्तुति करते हैं, गन्धर्व-गण उनके सम्मुख यशोगान करते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती हुई चल्रती हैं, राक्षस रथके पीछे रहते हैं,

इस विषयमें यह श्रुति भी है
 —

^{&#}x27;ऋचः पूर्वीहे दिवि देव ईयते यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अहः सामवेदेनास्तमये महीयते ।'

[†] रुद्रके नाशकारी होनेसे उनका साम अपवित्र माना गया है अतः सामगानके समय (रातमें) ऋक् तथा यजुर्वेद्रके अध्ययनका निपेध किया गया है। इसमें गौतमकी स्यृति प्रमाण है—'न सामध्वनावृग्यज्ञुषी' अर्थात् सामगानके समय ऋक्-युज्ञका अध्ययमान अक्होगां Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

वहन्ति पन्नगा यक्षैः क्रियतेऽभीषुसङ्गृहः। बालिखल्यास्तथैवैनं परिवार्य समासते ॥१७॥ नोदेता नास्तमेता च कदाचिच्छक्तिरूपधृक्। विष्णुर्विष्णोः पृथक् तस्य गणस्सप्तविधोऽप्ययम् १८ स्तम्भस्यदर्पणस्येव योऽयमासन्नतां गतः। छायाद्र श्रीनसंयोगं स तं प्रामोत्यथात्मनः ॥१९॥ एवं सा वैष्णवी शक्तिनैवापैति ततो द्विज । मासाजुमासं भाखन्तमध्यास्ते तत्र संस्थितम्।।२०।। पितृदेवमनुष्यादीन्स सदाप्याययन्त्रभुः। परिवर्तत्यहोरात्रकारणं सविता द्विज ॥२१॥ सूर्यरिमः सुषुम्ना यस्तर्पितस्तेन चन्द्रमाः । कृष्णपक्षेऽमरेः शश्वत्पीयते वै सुधामयः ॥२२॥ पीतं तं द्विकलं सोमं कृष्णपक्षक्षये द्विज । पिबन्ति पितरस्तेषां भास्करात्तर्पणं तथा ॥२३॥ आदत्ते रिममिर्यन्तु क्षितिसंस्थं रसं रविः। तम्रत्युजित भूतानां पुष्ट्यर्थं सस्यवृद्धये ॥२४॥ तेन त्रीणात्यशेषाणि भृतानि भगवात्रविः। पितृदेवमजुष्यादीनेवमाप्याययत्यसौ 112411 पक्षतृप्तिं तु देवानां पितृणां चैव मासिकीम्।

सर्पगण रथका साज सजाते हैं और यक्ष घोड़ोंकी वागडोर सँमाछते हैं तथा वाछिकल्यादि रथको सब ओरसे घेरे रहते हैं ॥ १६-१७॥ त्रयीशक्तिरूप मगवान् विष्णुका न कभी उदय होता है और न अस्त [अर्थात् वे स्थायीरूपसे सदा विद्यमान रहते हैं] ये सात प्रकारके गण तो उनसे पृथक् हैं ॥ १८॥ स्तम्भमें छो हुए दर्पणके निकट जो कोई जाता है उसीको अपनी छाया दिखायी देने छगती है॥ १९॥ हे द्विज! इसी प्रकार वह वैष्णवी शक्ति सूर्यके रथसे कभी चलायमान नहीं होती और प्रत्येक मासमें पृथक्-पृथक् सूर्यके [परिवर्तित होकर] उसमें स्थित होनेपर वह उसकी अधिष्ठात्री होती है॥ २०॥

हे द्विज ! दिन और रात्रिके कारणखरूप भगवान् सूर्य पितृगण, देवगण और मनुष्यादिको सदा तृप्त करते घूमते रहते हैं ॥ २१ ॥ सूर्यकी जो सुषुम्ना नामकी किरण है उससे गुक्रपक्षमें चन्द्रमाका पोषण होता है और फिर कृष्णपक्षमें उस अमृतमय चन्द्रमाकी एक-एक कलाका देवगण विरन्तर पान करते हैं ॥ २२ ॥ हे द्विज ! कृष्णपक्षके क्षय होनेपर [चतुर्दशीके अनन्तर] दो कलायुक्त चन्द्रमाका पितृगण पान करते हैं । इस प्रकार सूर्यद्वारा पितृगणका तर्पण होता है ॥ २३ ॥

आदत्ते रिश्मिभर्यन्तु श्वितिसंस्थं रसं रिनः ।

तम्रुत्सुजित भूतानां पुष्ट्यर्थं सस्यवृद्धये ॥२४॥
तेन प्रीणात्यशेषाणि भूतानि भगवात्रविः ।

पितृदेवमजुष्यादीनेवमाप्याययत्यसौ ॥२५॥
पश्तितिं तु देवानां पितृणां चैव मासिकीम् ।

श्वास्त्रितिं च मर्त्यानां मेत्रेयार्कः प्रयच्छिति ॥२६॥

सूर्य अपनी किरणोंसे पृथिवीसे जितना जल खींचता है उस सक्तो प्राणियोंको पृष्टि और अक्तकी वृद्धिके छिये बरसा देता है ॥२४॥ उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंको आनित्तत कर देते हैं और इस प्रकार वे देव, मजुष्य और पितृगण आदि समीका पोषण करते हैं ॥२५॥ हे मैत्रेय ! इस रीतिसे सूर्य-देव देवताओंकी पाश्चिक, पितृगणकी मासिक तथा मजुष्योंकी नित्यप्रति तृप्ति करते रहते हैं ॥२६॥

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे एकादशोऽघ्यायः ॥ ११ ॥

बारहवां अध्याय

नवप्रहोंका वर्णन तथा लोकान्तरसम्बन्धी व्याख्यानका उपसंहार।

श्रीपराशर उवाच

रथित्वकः सोमस्य क्रन्दाभारतस्य वाजिनः। वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन चरत्यसौ ॥ १॥ वीध्याश्रयाणि ऋक्षाणि ध्रवाधारेण वेगिना। हासवृद्धिक्रमस्तस्य रक्मीनां सवितुर्यथा ॥ २ ॥ अर्कस्येव हि तसाश्वाः सकृद्यक्ता वहन्ति ते । कल्पमेकं मुनिश्रेष्ठ वारिगर्भसमुद्भवाः ॥ ३॥ क्षीणं पीतं सुरैः सोममाप्याययति दीप्तिमान्। मैत्रेयैककलं सन्तं रिमनैकेन भास्करः ॥ ४॥ क्रमेण येन पीतोऽसौ देवैस्तेन निशाकरम्। आप्याययत्यजुदिनं भास्करो वारितस्करः।। ५।। सम्भृतं चार्घमासेन तत्सोमस्यं सुधामृतम् । पिबन्ति देवा मैत्रेय सुधाहारा यतोऽमराः ॥ ६ ॥ त्रयस्त्रिशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिशच्छतानि च। त्रयित्वंशत्तथा देवाः पिवन्ति क्षणदाकरम् ॥ ७ ॥ कलाद्वयावशिष्टस्तु प्रविष्टः सूर्यमण्डलम्। अमारूयरञ्मो वसति अमावास्या ततः स्पृता ॥ ८ ॥ अप्सु तसिमहोरात्रे पूर्व विश्वति चन्द्रमाः। ततो वीरुत्सु वसति प्रयात्यकै ततः क्रमात् ॥ ९ ॥ छिनत्ति वीरुघो यस्तु वीरुत्संस्थे निशाकरे। पत्रं वा पातयत्येकं ब्रह्महत्यां स विन्दति ॥१०॥ सोमं पश्चद्रशे भागे किश्चिच्छिष्टे कलात्मके । अपराक्के पितृगणा जघन्यं पर्युपासते ॥११॥ पिचन्ति द्विकलाकारं शिष्टा तस्य कला तु या।

श्रीपराशरजी बोले-चन्द्रमाका रथ तीन पहियों-वाला है, उसके वाम तथा दक्षिण ओर कुन्द-कुसमके समान स्वेतवर्ण दश घोड़े जुते हुए हैं। ध्रुवके आधारपर स्थित उस वेगशाली रथसे चन्द्रदेव भ्रमण करते हैं. और नागवीथिपर आश्रित अख़िनी आदि नक्षत्रोंका भोग करते हैं । सूर्यके समान इनकी किरणोंके भी घटने-बढ़नेका निश्चित क्रम है ॥१-२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! सूर्यके समान समुद्रगर्भसे उत्पन्न हुए उसके घोड़े भी एक बार जोत दिये जानेपर एक कल्पपर्यन्त रथ र्खींचते रहते हैं ॥३॥ हे मैत्रेय ! सुरगणके पान करते रहनेसे क्षीण हुए कलामात्र चन्द्रमात्रा प्रकाशमय सूर्यदेव अपनी एक किरणसे पुनः पोषण करते हैं ॥ श जिस क्रमसे देवगण चन्द्रमाका पान करते हैं उसी क्रमसे जलापहारी सूर्यदेव उन्हें शुक्रा प्रतिपदासे प्रतिदिन पुष्ट करते हैं ॥५॥ हे मैत्रेय ! इस प्रकार आधे महीनेमें एकत्रित हुए चन्द्रमाके अमृतको देवगण फिर पीने छगते हैं क्योंकि देवताओंका आहार तो अमृत ही है ॥६॥ तैंतीस हजार, तैंतीस सो, तैंतीस (३६३३३) देवगण चन्द्रस्य अमृतका पान करते हैं ॥॥ जिस समय दो कलामात्र रहा हुआ चन्द्रमा सूर्यमण्डलमें प्रवेश करके उसकी अमा नामक किरण-में रहता है वह तिथि अमावास्या कहलाती है ॥८॥ उस दिन रात्रिमें वह पहले तो जलमें प्रवेश करता है, फिर वृक्ष-छता आदिमें निवास करता है और तदनन्तर क्रमसे सूर्यमें चला जाता है ॥९॥ वृक्ष और ळता आदिमें चन्द्रमाकी स्थितिके समय [अमावास्या-को] जो उन्हें काटता है अथवा उनका एक पत्ता भी तोड़ता है उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है।।१०।। केवल पन्द्रहवीं कलारूप यत्किञ्चित् भागके वच रहने-पर उस क्षीण चन्द्रमाको पितृगण मध्याह्वोत्तर कालमें चारों ओरसे घेर लेते हैं॥ ११॥ हे मुने ! उस समय उस द्विकलाकार चन्द्रमाकी वची हुई सुवामृतमयी पुण्या तासिन्द्रोः पित्रहो सुने १।१९२।। अमृतमेया एक कलाका वै पितृगण पान करते हैं ॥१२॥

निस्सृतं तदमावास्यां गभित्तम्यः सुधामृतम् ।
मासं तृप्तिमवाप्याग्रयां पितरः सन्ति निर्वृताः ।
सौम्या वर्हिपदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ॥१३॥
एवं देवान् सिते पक्षे कृष्णपक्षे तथा पितृन् ।
वीरुधश्चामृतमयैः शीतैरप्परमाणुभिः ॥१४॥
वीरुधौपधिनिष्पत्त्या मजुष्यपश्चकीटकान् ।
आप्याययति शीतांशुः ग्राकाक्याह्नादनेन तु ॥१५॥

वाय्वप्रिद्रव्यसम्भूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च। पिशङ्गेस्तुरगैर्युक्तः सोऽष्टाभिर्वायुवेगिभिः ॥१६॥ सवरूथः सानुकर्षो युक्तो भूसम्भवैर्हयैः। सोपासङ्गपताकस्तु ग्रुऋस्यापि रथो महान् ॥१७॥ अष्टाश्वः काश्चनः श्रीमान्भौमस्यापि रथो महान् । पन्नरागारुणेरश्वैः संयुक्तो वह्निसम्भनैः ॥१८॥ अष्टाभिः पाण्डुरैर्युक्तो वाजिभिः काश्चनो रथः। तिसितिष्ठति वर्षान्ते राशौ राशौ बृहस्पतिः ॥१९॥ आकाशसम्भवैरश्वैः शवलैः सन्दनं युतम् । तमारुह्य शनैर्याति मन्दगामी शनैश्ररः॥२०॥ स्वर्भानोस्तरगा हाष्टौ भृङ्गाभा धूसरं रथम्। सकुद्यक्तास्त मैत्रेय वहन्त्यविरतं सदा।।२१॥ आदित्यानिस्सृतो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु । आदित्यमेति सोमाच पुनः सौरेषु पर्वसु ॥२२॥ तथा केतुरथसाश्वा अप्यष्टौ वातरंहसः। पलालधूमवर्णाभा लाक्षारसनिभारुणाः ॥२३॥ एते मया ग्रहाणां वै तवाख्याता रथा नव ।

सर्वे ध्रवे महाभाग प्रवद्धा वायुरिक्मभिः ॥२४॥

ग्रहर्श्वताराधिष्ण्यानि ध्रवे बद्धान्यशेषतः ।

अमात्रास्याके दिन चन्द्र-रिमसे निकले हुए उस सुधामृतका पान करके अत्यन्त तृप्त हुए सौम्य, बर्हिपद् और अग्निष्यात्ता तीन प्रकारके पितृगण एकमासपर्यन्त सन्तुष्ट रहते हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार चन्द्रदेव गुह्रपक्षमें देवताओंकी और कृष्ण-पक्षमें पितृगणकी पृष्टि करते हैं तथा अमृतमय शीतल जलकणोंसे लता-बृक्षादिका और लता-ओषि आदि उत्पन्न करके तथा अपनी चन्द्रिकाद्वारा आह्रादित करके वे मनुष्य, पशु, एवं कीट-पतंगादि समी प्राणियोंका पोषण करते हैं ॥१४-१५॥

चन्द्रमाके पुत्र बुधका रथ वायु और अग्निमय द्रव्यका वना हुआ है और उसमें वायुके समान वेगशाळी आठ पिशंगवर्ण घोड़े जुते हैं ॥ १६॥ वरूथं, अनुकर्षं, उपा-सङ्ग और पताका तथा पृथिवीसे उत्पन्न हुए घोड़ोंके सहित ग्रुक्रका रथ भी अति महान् है ॥१७॥ तथा मङ्गळका अति शोभायमान सुवर्ण-निर्मित महान् रथ भी अग्नि-से उत्पन्न हुए, पद्मराग-मणिके समान, अरुणवर्ण, आठ घोड़ोंसे युक्त है ॥१८॥ जो आठ पाण्डुरवर्ण घोड़ोंसे युक्त सुवर्णका रथ है उसमें वर्षके अन्तमें प्रत्येक राशिमें वृहस्पतिजी विराजमान होते हैं ॥१९॥ आकाशसे उत्पन्न हुए विचित्रवर्ण घोड़ोंसे युक्त रथमें आरूढ़ होकर मन्दगामी शनैश्वरजी घीरे-धीरे चळते हैं ॥२०॥

राहुका रथ धूसर (मिटयां) वर्णका है उसमें अमरके समान कृष्णवर्ण आठ घोड़े जुते हुए हैं। हे मैंत्रेय ! एक बार जोत दिये जानेपर वे घोड़े निरन्तर चलते रहते हैं ॥२१॥ चन्द्रपर्वी (पूर्णिमा) पर यह राहु सूर्यसे निकलकर चन्द्रमाके पास आता है तथा सौरपर्वी (अमावास्या) पर यह चन्द्रमासे निकलकर सूर्यके निकट जाता है ॥२२॥ इसी प्रकार केतुके रथके वायुवेगशाली आठ घोड़े भी पुआलके धुएँकी-सी आमावाले तथा लाखके समान लाल रक्तके हैं ॥२३॥

हे महाभाग ! मैंने तुमसे यह नवों प्रहोंके रथोंका वर्णन किया; ये सभी वायुमयी डोरीसे ध्रुवके साथ वैंघे हुए हैं ॥२४॥ हे मैत्रेय ! समस्त प्रह, नक्षत्र

भ्रमन्त्युचितचारेण मैत्रेयानिलरिमिः ॥२५॥ यावन्त्यश्रेव तारास्तास्तावन्तो वातरक्मयः। सर्वे ध्रुवे निवद्धास्ते अमन्तो आमयन्ति तम्।।२६।। तैलपीडा यथा चक्रं भ्रमन्तो भ्रामयन्ति वै। तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातविद्धानि सर्वशः॥२७॥ अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु । यसाज्ज्योतींपि वहति प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥२८॥ शिश्रमारस्त यः प्रोक्तः स ध्रुवो यत्र तिष्ठति । सिनवेशं च तस्यापि शृणुष्व म्रनिसत्तम ॥२९॥ यदह्वा कुरुते पापं तं दृष्ट्वा निश्चि मुच्यते । यावन्त्यश्रेव तारास्ताः शिश्चमाराश्रिता दिवि । तावन्त्येव त वर्षाणि जीवत्यभ्यधिकानि च ॥३०॥ उत्तानपादस्तस्याथो विज्ञेयो ह्यूत्तरो हनुः। यज्ञोऽधरश्च विज्ञेयो धर्मो मूर्द्धानमाश्रितः ॥३१॥ हृदि नारायणश्चास्ते अश्विनौ पूर्वपादयोः । वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनी ।।३२।। शिश्वः संवत्सरस्तस्य मित्रोऽपानं समाश्रितः ॥३३॥ ' पुच्छेऽप्रिश्च महेन्द्रश्च करुयपोऽथ ततो ध्रुवः । तारका शिशुमारस्य नास्तमेति चतुष्टयम् ॥३४॥ इत्येष सन्निवेशोऽयं पृथिव्या ज्योतिषां तथा । द्वीपानामुद्धीनां च पर्वतानां च कीर्तितः ॥३५॥ वर्षाणां च नदीनां च ये च तेषु वसन्ति वै। तेषां खरूपमाख्यातं सङ्ग्रेपः श्रूयतां पुनः ॥३६॥ यदम्बु वैष्णवः कायस्ततो विप्र वसुन्धरा । पद्माकारा समुद्भुता पर्वताब्ध्यादिसंयुता।।३७।। ज्योतींपि विष्णुर्भुवनानि विष्णु-

र्वनानि विष्णुर्गिरयो दिश्रश्च । नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वे यदस्ति यश्चास्ति च विष्रवर्ये ॥३८॥ और तारामण्डल वायुमयी रज्जुसे ध्रुवके साथ वैंधे हुए यथोचित प्रकारसे घूमते रहते हैं ॥२५॥ जितने तारागण हैं उतनी ही वायुमयी डोरियाँ हैं । उनसे वैंधकर वे सब स्वयं घूमते तथा ध्रुवको धुमाते रहते हैं ॥२६॥ जिस प्रकार तेली लोग स्वयं घूमते हुए कोल्हू-को भी धुमाते रहते हैं उसी प्रकार समस्त प्रहगण वायुसे वैंध कर घूमते रहते हैं ॥२७॥ क्योंकि इस वायुचक्रसे प्रेरित होकर समस्त प्रहगण अलातचक्र (बनैती) के समान घूमा करते हैं, इसलिये यह 'प्रवह' कहलाता है ॥२८॥

जिस शिशुमारचक्रका पहले वर्णन कर चुके हैं. तथा जहाँ ध्रव स्थित है, हे मुनिश्रेष्ठ ! अब तुम उसकी स्थितिका वर्णन सनो ॥२९॥ रात्रिके समय उनका दर्शन करनेसे मनुष्य दिनमें जो कुछ पाप-कर्म करता है उनसे मुक्त हो जाता है तथा आकाश-मण्डलमें जितने तारे इसके आश्रित हैं उतने ही अधिक वर्ष वह जीवित रहता है ॥३०॥ उत्तानपाद उसकी ऊपरकी हुनु (ठोड़ी) है और यज्ञ नीचेकी तथा धर्मने उसके मस्तकपर अधिकार कर रखा है ॥३१॥ उसके द्वदय-देशमें नारायण हैं, दोनों चरणों-में अस्विनीकुमार हैं तथा जंघाओंमें वरुण और अर्यमा हैं ॥ ३२ ॥ संवत्सर उसका शिश्न है, मित्रने उसके अपान-देशको आश्रित कर रखा है, तथा अग्नि, महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव पुच्छमागमें स्थित हैं। शिशुमारके पुच्छमागमें स्थित ये अग्नि आदि चार तारे कभी अस्त नहीं होते ॥३३-३४॥ इस प्रकार मैंने तमसे पृथिवी, प्रहराण, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियोंका तथा जो-जो उनमें बसते हैं उन सभीके स्वरूपका वर्णन कर दिया । अब इसे संक्षेपसे फिर सुनो ॥३५-३६॥

हे विप्र ! भगवान् विष्णुका जो मूर्तरूप जल है उससे पर्वत और समुद्रादिके सहित कमलके समान आकारवाली पृथिवी उत्पन्न हुई ॥३०॥ हे विप्रवर्य ! तारागण, त्रिमुवन, वन, पर्वत, दिशाएँ, नदियाँ और समुद्र सभी भगवान् विष्णु ही हैं तथा और भी जो कुछ इंडेजा, New Delhi, Digitized by eGangotri है अथवा नहीं है वह सब भी एकमात्र वे ही हैं॥३८॥ ज्ञानस्तरूपो भगवान्यतोऽसावशेषमूर्तिने तु वस्तुभूतः।

ततो हि शैलाव्धिधरादिभेदाज्ञानीहि विज्ञानविजृम्भितानि ॥३९॥

यदा तु शुद्धं निजरूपि सर्व
कर्मक्षये ज्ञानमपास्तदोषम्।

तदा हि सङ्कल्पतरोः फलानि
भवन्ति नो वस्तुषु वस्तुभेदाः॥४०॥

वस्त्वस्ति किं क्रुत्रचिदादिमध्य-पर्यन्तहीनं सततैकरूपम् । यचान्यथात्वं द्विज याति भूयो न तत्त्रथा तत्र कुतो हि तत्त्वम् ॥४१॥ मही घटत्वं घटतः कपालिका कपालिका चूर्णरजस्ततोऽणुः। जनैः खकर्मस्तिमितात्मनिश्रये-रालक्ष्यते ब्रुहि किमत्र वस्तु ॥४२॥ तसान विज्ञानमृतेऽस्ति किश्चि-त्क्वचित्कदाचिद्द्विज वस्तुजातम्। निजकर्मभेद-विज्ञानमेकं विभिन्नचित्तैर्बहुधाम्युपेतम् ॥४३॥ ज्ञानं विशुद्धं विमलं विशोक-मशेषलोभादिनिरस्तसङ्गम्। एकं सदैकं परेशः परमः स वासुदेवो न यतोऽन्यदस्ति ॥४४॥

सद्भाव एवं भवतो मयोक्तो ज्ञानं यथा सत्यमसत्यमन्यत् । एतत्तु यत्संव्यवहारभूतं तत्रापि चोक्तं भ्रवनाश्रितं ते ॥४५॥

यज्ञः पशुर्विह्नरशेषऋत्वि-क्सोमः सुराः स्वर्गमयश्र कामः। क्योंकि भगवान् विष्णु ज्ञानस्ररूप हैं इसिल्ये वे सर्वमय हैं, परिच्छित्र पदार्थाकार नहीं हैं। अतः इन पर्वत, समुद्र और पृथिवी आदि भेदोंको तुम एकमात्र विज्ञानका ही विल्ञास जानो ॥ ३९ ॥ जिस समय जीव आत्मज्ञानके द्वारा दोषरहित होकर सम्पूर्ण कर्मोंका क्षय हो जानेसे अपने शुद्ध-स्ररूपमें स्थित हो जाता है उस समय आत्मवस्तुमें संकल्पवृक्षके फल्रूप पदार्थ-भेदोंकी प्रतीति नहीं होती ॥४०॥

हे द्विज ! कोई भी घटादि वस्तु है ही कहाँ ? आदि, मध्य और अन्तसे रहित नित्य एकरूप चित् हीं तो सर्वत्र व्याप्त है । जो वस्तु पुनः-पुनः वदलती रहती है, पूर्ववत् नहीं रहती, उसमें वास्तविकता ही क्या है ? ॥ १॥ देखो, मृत्तिका ही घटरूप हो जाती है और फिर वहीं घटसे कपाल, कपालसे चूर्णरज और रजसे अणुरूप हो जाती है। तो फिर वताओ अपने कर्मों के वशीभूत हुए इसमें मनुष्य आत्मस्यरूपको मूलकर् सी सत्य वस्तु देखते हैं ॥ ४२ ॥ अतः हे द्विज ! विज्ञानसे अतिरिक्त कभी कहीं कोई पदार्थादि नहीं हैं । अपने-अपने कर्मों के मेदसे मिन्न-मिन्न चित्तोंद्वारा एक ही विज्ञान नाना प्रकारसे मान लिया गया है।।४३॥ वह विज्ञान अति विशुद्ध, निर्मल, नि:शोक और छोमादि समस्त दोषोंसे रहित है। वही एक सत्त्वरूप परम परमेश्वर वासदेव है, जिससे प्यक् और कोई पदार्थ नहीं है ॥४४॥

इस प्रकार, मैंने तुमसे यह परमार्थका वर्णन किया है, केवल एक ज्ञान ही सत्य है, उससे मिन्न और सव असत्य है। इसके अतिरिक्त जो केवल व्यवहारमात्र है उस त्रिमुवनके विषयमें भी मैं तुमसे कह चुका॥ ४५॥ [इस ज्ञान-मार्गके अतिरिक्त] मैंने कर्म-मार्ग-सम्बन्धी यज्ञ, पशु, विह, समस्त ऋत्विक्, सोम, सुरगण, तथा स्वर्गमय कामना आदिका भी दिग्दर्शन

इत्यादिकमीश्रितमार्गदृष्टं भूरादिमोगाश्च फलानि तेषाम् ॥४६॥ यचैतद्भवनगतं मया तवोक्तं सर्वत्र त्रजति हि तत्र कर्मवश्यः। ज्ञात्वैवं ध्रुवमचलं सदैकरूपं

करा दिया । भूर्लोकादिके सम्पूर्ण भोग इन कर्म-कलापोंके ही फल हैं ॥ ४६ ॥ यह जो मैंने तुमसे त्रिमुवनगत लोकोंका वर्णन किया है इन्हींमें जीव कर्मवश घूमा करता है ऐसा जानकर इससे विरक्त हो मनुष्य-को वहीं करना चाहिये जिससे ध्रुव, अचल एवं सदा तत्कुर्याद्विशति हि येन वासुदेवम् ॥४७॥ एकरूप भगवान् वासुदेवमें लीन हो जाय ॥४०॥

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

भरत-चरित्र।

श्रीमैत्रेय उवाच

मगवन्सम्यगाख्यातं यत्पृष्टोऽसि मया किल । भूसग्रद्रादिसरितां संस्थानं ग्रहसंस्थितिः ॥ १॥ विष्ण्वाघारं यथा चैतत्त्रैलोक्यं समवस्थितम् । परमार्थस्तु ते प्रोक्तो यथा ज्ञानं प्रधानतः ॥ २ ॥ महीपतेः । यत्त्वेतद्भगवानाह भरतस्य श्रोतिमच्छामि चरितं तन्ममाख्यातुमईसि ॥ ३ ॥ मरतः स महीपालः शालग्रामेऽवसत्किल । योगयुक्तः समाधाय वासुदेवे सदा मनः ॥ ४ ॥ पुण्यदेशप्रभावेन ध्यायतश्च सदा हरिम् । कथं तु नाऽभवन्युक्तिर्यद्भृत्स द्विजः पुनः ॥ ५ ॥ विप्रत्वे च कृतं तेन यद्भयः सुमहात्मना । भरतेन मुनिश्रेष्ठ तत्सर्व वक्तुमहिसि ॥ ६॥

श्रीपराशर उवाच

शालग्रामे महाभागो भगवन्न्यस्तमानसः। स उवास चिरं कालं मैत्रेय पृथिवीपतिः ॥ ७ ॥ अहिंसादिष्वशेषेषु गुणेषु गुणिनां वरः।

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे भगवन् ! मैंने पृथिवी, समुद्र, नदियों और प्रह्रगणकी स्थिति आदिके विषयमें जो कुछ पूछा था सो सब आपने वर्णन कर दिया ॥१॥ उसके साथ ही आपने यह भी बतला दिया कि किस प्रकार यह समस्त त्रिलोकी भगवान् विष्णुके ही आश्रित है और कैसे परमार्थस्वरूप ज्ञान ही सबमें प्रधान है ॥२॥ किन्तु भगवन् ! आपने पहले जिसकी चर्ची की थी वह राजा भरतका चरित्र मैं सुनना ₹, कहिये करके 11311 चाहता कृपा कहते हैं, वे राजा भरत निरन्तर योगयुक्त होकर भगवान् वासुदेवमें चित्त लगाये शालप्रामक्षेत्रमें रहा करते थे ॥ ४ ॥ इस प्रकार पुण्यदेशके प्रभाव और हरि-चिन्तनसे भी उनकी मुक्ति क्यों नहीं हुई, जिससे उन्हें फिर ब्राह्मणका जन्म छेना पड़ा ॥५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्राह्मण होकर भी उन महात्मा भरतजीने फिर जो कुछ किया वह सब आप कृपा करके मुझसे कहिये॥६॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! वे महाभाग पृथिवी-पति भरतजी भगवान्में चित्त छगाये चिरकाछतकः शालग्रामक्षेत्रमें रहे ॥ ७॥ गुणवानोंमें श्रेष्ठ भरतजीने अहिंसा आदि सम्पूर्ण अवाप परमां काष्टां मनस्थापि संयमे ॥ ८ ॥ ८ ॥ संयम् संयम् अत्यामें हुप्तरम by उत्कर्भ काम किया ॥ ८ ॥

यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव । कृष्ण विष्णो ह्पीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥ इति राजाह भरतो हरेनीमानि केवलम्। नान्यज्ञगाद मैत्रेय किश्चित्स्वमान्तरेऽपि च। एतत्पदन्तदर्थं च विना नान्यदचिन्तयत् ॥१०॥ समित्पुष्पकुशादानं चक्रे देविकयाकृते। नान्यानि चक्रे कर्माणि निस्सङ्गो योगतापसः ।११। जगाम सोऽभिवेकार्थमेकदा तु महानदीम्। सस्रो तत्र तदा चके स्नानस्नानन्तरिकयाः ॥१२॥ अथाजगाम तत्तीरं जलं पातं पिपासिता। आसन्त्रप्रसवा त्रह्मनेकैव हरिणी वनात्।।१३॥ ततः समभवत्तत्र पीतप्राये जले तथा। सिंहस्य नादः सुमहान्सर्वप्राणिभयङ्करः ॥१४॥ ततः सा सहसा त्रासादाप्छता निम्नगात्रस्। अत्युचारोहणेनास्या नद्यां गर्भः पपात ह ॥१५॥ तम्रद्यमानं वेगेन वीचिमालापरिप्छतम्। जग्राह स नृपो गर्भात्पतितं मृगपोतकम् ॥१६॥ गर्भप्रच्युतिदोषेण प्रोत्तुङ्गाक्रमणेन च। मैत्रेय सापि हरिणी पपात च ममार च।।१७।। हरिणीं तां विलोक्याथ विपनां नृपतापसः। मृगपोतं समादाय निजमाश्रममागतः ॥१८॥ चकाराजुदिनं चासौ मृगपोतस्य वै नृपः। पोषणं पुष्यमाणश्च स तेन ववृधे मुने ॥१९॥ चचाराश्रमपर्यन्ते तृणानि गहनेषु सः।

'हे यज्ञेश! हे अच्युत! हे गोविन्द! हे माधव! हे अनन्त! हे केशव! हे कृष्ण! हे विष्णो! हे ह्यांकेश! हे वासुदेव! आपको नमस्कार है'— इस प्रकार राजा भरत निरन्तर केवल भगवनामीं- का ही उच्चारण किया करते थे। हे मैत्रेय! वे स्वप्नमें भी इस पदके अतिरिक्त और कुल नहीं कहते थे और न कभी इसके अर्थके अतिरिक्त और कुल चिन्तन ही करते थे॥ ९-१०॥ वे निःसंग, योगयुक्त और तपस्वी राजा भगवान्की पूजाके लिये केवल समिय, पुष्प और कुशाका ही सञ्चय करते थे। इसके अतिरिक्त वे और कोई कम नहीं करते थे॥ ११॥

एक दिन वे स्नानके छिये नदीपर गये और वहाँ स्नान करनेके अनन्तर उन्होंने स्नानोत्तर क्रियाएँ कीं ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! इतनेहीमें उस नदी-तीरपर एक आसन्तप्रसवा (शीघ्र ही बचा जननेवाछी) प्यासी हरिणी बनमेंसे जल पीनेके लिये आयी ॥ १३ ॥ उस समय जब वह प्रायः जल पी चुकी थी, वहाँ सब प्रागियोंको भयभीत कर देनेवाली सिंह-की गम्भीर गर्जना सुनायी पड़ी ॥ १४ ॥ तब वह अत्यन्त भयभीत हो अकस्मात् उछलकर नदीके तटपर चढ़ गयी; अतः अत्यन्त उच्चस्थानपर चढ़नेके कारण उसका गर्म नदीमें गिर गया ॥ १५ ॥

नदीकी तरङ्गमालाओं में पड़कर बहते हुए उस गर्भ-भ्रष्ट मृगवालकको राजा भरतने पकड़ लिया ॥ १६॥ हे मैत्रेय ! गर्भपातके दोषसे तथा बहुत ऊँचे उल्लंबे-के कारण वह हरिणी भी पलाड़ खाकर गिर पड़ी और मर गयो ॥ १७॥ उस हरिणीको मरी हुई देख तपस्ती भरत उसके बच्चेको अपने आश्रमपर ले आये ॥ १८॥

वकारानुदिनं चासौ मृगपोतस्य वै नृपः।

पोषणं पुष्यमाणश्च स तेन ववृधे मुने ॥१९॥

चचाराश्रमपर्यन्ते तृणानि गहनेषु सः।

दूरं गत्वा च शार्द्रुलत्रासाद्रभ्याययौ पुनः ॥२०॥

हे मुने ! फिर राजा भरत उस मृगछोनेका नित्यप्रित पाळन-पोषण करने छगे और वह भी उनसे
पोषित होकर दिन-दिन वढ़ने छगा ॥ १९॥

वह बच्चा कभी तो उस आश्रमके आसपास
ही घास चरता रहता और कभी वनमें द्रतक

जाकर फिर सिंहके भयसे छौट आता ॥२०॥

प्रातर्गत्वातिदृरं च सायमायात्यथाश्रमम्। भरतसाभूदाश्रमसोटजाजिरे ॥२१॥ पुनश्च तस्य तस्मिन्मुगे दूरसमीपपरिवर्तिनि । आसीचेतः समासक्तं न ययावन्यतो द्विज ॥२२॥ विम्रक्तराज्यतनयः प्रोज्झिताशेषवान्धवः । ममत्वं स चकाराचैस्तस्मिन्हरिणबालके ॥२३॥ कि वकैर्भक्षितो व्याघ्रैः कि सिंहेन निपातितः । चिरायमाणे निष्कान्ते तस्यासीदिति मानसम् ।२४। एषा वसुमती तस्य खुराप्रक्षतकर्वुरा। **श्रीतये मंम जातोऽसौ क ममैणकवालकः ॥२५॥** विषाणात्रेण मद्धाइं कण्डूयनपरो हि सः। क्षेमेणाम्यागतोऽरण्यादपि मां सुखयिष्यति ॥२६॥ एते छ्नशिखास्तस्य दशनैरचिरोद्रतैः। कुशाः काशा विराजन्ते बटवः सामगा इव ।।२७।। इत्थं चिरगते तसिन्स चक्रे मानसं मुनिः। व्रीतित्रसन्तवद्नः पार्श्वस्थे चामवन्सृगे ॥२८॥ समाधिभङ्गस्तस्यासीत्तन्मयत्वादतात्मनः । सन्त्यक्तराज्यमोगर्द्धिस्वजनस्यापि भूपतेः ॥२९॥ चपलं चपले तसिन्दूरगं दूरगामिनि। मृगपोतेऽमविच्चं स्थैर्यवत्तस्य भूपतेः ॥३०॥ कालेन गच्छता सोऽथ कालं चक्रे महीपतिः। पितेव साम्नं पुत्रेण मृगपोतेन वीक्षितः ॥३१॥ तदाद्राक्षीत्त्यजन्त्राणानसावपि । तन्मयत्वेन मैत्रेय नान्यत्किञ्चिद्चिन्तयत् ॥३२॥। CC-0. Prof. Sarya Vrat Shatti Collet

प्रातःकाल वह वहुत दूर भी चला जाता, तो भी सायंकालको फिर आश्रममें ही लौट आता और भरतजी-के आश्रमकी पर्णशालाके आँगनमें पड़ रहता ॥ २१॥

हे द्विज ! इस प्रकार कभी पास और कभी दूर रहने-वाले उस मृगमें ही राजाका चित्त सर्वदा आसक्त रहने लगा, वह अन्य विषयोंकी ओर जाता ही नहीं था ॥२२॥ जिन्होंने सम्पूर्ण राज-पाट और अपने पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़ दिया था वे ही भरतजी उस हरिणके बचेपर अत्यन्त ममता करने छगे ॥ २३॥ उसे बाहर जानेके अनन्तर यदि छौटनेमें देशी हो जाती तो वे मन-ही-मन सोचने लगते 'अहो ! उस बच्चेको आज किसी भेड़ियेने तो नहीं खा लिया ? किसी सिंहके पञ्जेमें तो आज वह नहीं पड़ गया ? ॥ २४॥ देखो, उसके ख़ुरोंके चिह्नोंसे यह पृथिवी कैसी चित्रित हो रही है ? मेरी ही प्रसन्नताके छिये उत्पन्न हुआ वह मृगछौना न जाने आज कहाँ रह गया है ? ॥ २५॥ क्या वह वनसे कुरालपूर्वक लौटकर अपने सींगोंसे मेरी मुजाको खुजलाकर मुझे आनन्दित करेगा ? ॥ २६ ॥ देखो, उसके नवजात दाँतोंसे कटी हुई शिखावाछे ये कुश और काश सामाध्यायी [शिखा-हीन] ब्रह्मचारियोंके समान कैसे सुशोभित हो रहे हैं ? ॥ २७ ॥ देरके गये हुए उस बच्चेके निमित्त भरत मुनि इसी प्रकार चिन्ता करने लगते थे और जब वह उनके निकट आ जाता तो उसके प्रेमसे उनका मुखं खिळ जाता था ॥ २८॥ इस प्रकार उसीमें आसक्तचित्त रहनेसे, राज्य, भोग, समृद्धि और खजनों-को त्याग देनेवाले भी राजा भरतकी समाधि भंग हो गयी ॥ २९॥ उस राजाका स्थिर चित्त उस मृगके चञ्चल होनेपर चञ्चल हो जाता और दूर चले जानेपर दूर चला जाता ॥ ३०॥

कालान्तरमें राजा भरतने, उस मृगबालकद्वारा पुत्रके सजल नयनोंसे देखे जाते हुए पिताके समान, अपने प्राणोंका त्याग किया ॥ ३१ ॥ हे मैत्रेय ! राजा भी प्राण छोड़ते समय स्नेहवश उस मृगको ही देखता रहा, तथा उसीमें तन्मय रहनेसे उसके और क्षेत्र माण्डि angorri ततश्च तत्कालकृतां भावनां प्राप्य तादशीम् । जम्बूमार्गे महारण्ये जातो जातिसारो मृगः ॥३३॥ जातिसरत्वादुद्वियः संसारस्य द्विजोत्तम । विहाय मातरं भूयः ज्ञालग्रामम्रुपाययौ ॥३४॥ ग्रुष्कैस्तृणैस्तथा पर्णेः स कुर्वन्नात्मपोषणम् । सृगत्वहेतुभूतस्य कर्मणो निष्कृति ययौ ॥३५॥

तत्र चोत्सृष्टदेहोऽसौ जज्ञे जातिसरो द्विजः । सदाचारवतां शुद्धे योगिनां प्रवरे कुले ।।३६।। सर्वविज्ञानसम्पनः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्। अपन्यत्स च मैत्रेय आत्मानं प्रकृतेः परम् ॥३७॥ आत्मनोऽधिगतज्ञानो देवादीनि महाम्रने । सर्वभूतान्यभेदेन स दुद्श तदात्मनः ॥३८॥ न पपाठ गुरुप्रोक्तं कृतोपनयनः श्रुतिम् । न दुद्री च कमीणि शास्त्राणि जगृहेन च ।।३९।। उक्तोऽपि बहुशः किश्रिज्जडवाक्यमभाषत् । तद्प्यसंस्कार्गुणं ग्राम्यवाक्योक्तिसंश्रितम् ॥४०॥ अपध्यस्तवपुः सोऽपि मलिनाम्बरधृग्द्विजः । क्किन्नदन्तान्तरः सर्वैः परिभृतः स नागरैः ॥४१॥

सम्मानना परां हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः । जनेनावमतो योगी योगसिद्धिं च विन्दति ॥४२॥ तसाच्चरेत वै योगी सतां धर्ममदृषयन्। जना यथावमन्येरन्गच्छेयुर्नैव सङ्गतिम् ॥४३॥ हिरण्यगर्भवचनं विचिन्त्येत्थं महामतिः।

तदनन्तर, उस समयकी सुदृढ़ भावनाके कारण बह जम्बूमार्ग (काल्झरपर्वत) के घोर वनमें अपने पूर्वजन्मकी स्मृतिसे युक्त एक मृग हुआ ॥ ३३ ॥ हे द्विजोत्तम ! अपने पूर्वजन्मका स्मरण रहनेके कारण वह संसारसे उपरत हो गया और अपनी माताको छोड़कर फिर शालप्रामक्षेत्रमें आकर ही रहने लगा ॥ ३४ ॥ वहाँ सूखे घास-फूँस और पत्तोंसे ही अपना शरीर-पोषण करता हुआ वह अपने मृगत्व-प्राप्तिके हेतुभूत कर्मीका निराकरण करने छगा ॥ ३५॥

तदनन्तर, उस शरीरको छोडकर उसने सदाचार-सम्पन्न योगियोंके पवित्र कुछमें त्राह्मण-जन्म प्रहण किया । उस देहमें भी उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण वना रहा ॥ ३६ ॥ हे मैत्रेय ! वह सर्वविज्ञानसम्पन्न और समस्त शास्त्रोंके मर्मको जाननेवाला था तथा अपने आत्माको निरन्तर प्रकृतिसे परे देखता था ॥३७॥ हे महामुने ! आत्मज्ञानसम्पन्न होनेके कारण वह देवता आदि सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्नरूपसे देखता था ॥ ३८॥ उपनयन-संस्कार हो जानेपर वह गुरुके पढ़ानेपर भी वेद-पाठ नहीं करता था तया न किसो कर्मकी ओर घ्यान देता और न कोई अन्य शास्त्र ही पढ़ता था ॥ ३९॥ जब कोई उससे बहुत पृछताछ करता तो जडके समान कुछ असंस्कृत, असार एवं प्रामीण वाक्योंसे मिले हुए वचन बोल देता ॥ ४० ॥ निरन्तर मैला-कुचैला शरीर, मिलन वस्न और अपरिमार्जित दन्तयुक्त रहनेके कारण वह ब्राह्मण सदा अपने नगरनिवासियोंसे अपमानित होता रहता था ॥ ४१ ॥

हे मैत्रेय ! योगश्रीके लिये सबसे अधिक हानि-कारक सम्मान ही है, जो योगी अन्य मनुष्योंसे अपमानित होता है वह शोघ ही सिद्धि लाभ कर लेता है ॥ ४२ ॥ अतः योगीको, सन्मार्गको दृषित न करते हुए ऐसा आचरण करना चाहिये जिससे छोग अपमान करें और संगतिसे दूर रहें ॥ ४३-॥ हिरण्यगर्भके इस सारयुक्त बचनको स्मरण रखते हुए वे महामति विप्रवर अपने-आपको छोगोंमें जड आत्मानं दर्शयामास जडोक्सन्ताकृति जने अधिका और ew जनता खाता ही by प्रकाद्भात ये ॥ ४४ ॥

श्रुक्के कुल्मापत्रीद्यादिशाकं वन्यं फलं कणान् । यद्यदामोति सुबहु तदत्ते कालसंयमम्।।४५॥

पितर्युपरते सोऽथ आतुआतृज्यबान्धवैः ।

कारितः क्षेत्रकर्मादि कद्बाहारपोषितः ॥४६॥

सतुक्षपीनावयवो जडकारी च कर्मणि ।

सर्वलोकोपकरणं वभूवाहारचेतनः ॥४७॥

तं तादृशमसंस्कारं विप्राकृतिविचेष्टितम् । क्षत्ता पृषतराजस्य काल्यै पशुमकल्पयत् ॥४८॥ रात्रो तं समलङ्कृत्य वैशसस्य विधानतः। अधिष्ठितं महाकाली ज्ञात्वा योगेश्वरं तथा।।४९।। ततः खड्नं समादाय निश्चितं निश्चि सा तथा। क्षत्तारं क्रूरकर्माणमच्छिनत्कण्ठमूलतः। स्त्रपार्षद्युता देवी पपौ रुघिरम्रुल्वणम् ॥५०॥ ततस्तीवीरराजस्य प्रयातस्य महात्मनः। विष्टिकर्ताथ मन्येत विष्टियोग्योऽयमित्यपि ॥५१॥ तं तादृशं महात्मानं भस्मच्छन्नमिवानलम् । क्षत्ता सौवीरराजस्य विष्टियोग्यममन्यत ॥५२॥ स राजा शिविकारूढो गन्तुं कृतमतिर्द्विज । वभूवेक्षुमतीतीरे कपिलर्पेर्वराश्रमम्।।५३।। श्रेयः किमत्र संसारे दुःखप्राये नृणामिति । प्रष्टुं तं मोक्षधर्मज्ञं कपिलाख्यं महाम्रुनिम् ॥५४॥ उनाह शिविकां तस्य क्षतुर्वचनचोदितः। नृणां विष्टिगृहीतानामन्येषां सोऽपि मध्यगः ॥५५॥ गृहीतो विष्टिना विष्रः सर्वज्ञानैकभाजनः। जातिसरोऽसौ पापृस्य अग्रकाम जवाह ताम्।।५६॥

कुल्माष (जो आदि) धान, शाक, जंगली फल अथवा कण आदि जो कुछ भक्ष्य मिल जाता उस थोड़ेसेको भी बहुत मानकर वे उसीको खा लेते और अपना कालक्षेप करते रहते ॥ ४५॥

फिर पिताके शान्त हो जानेपर उनके माई-बन्धु उनका सड़े-गले अनसे पोषण करते हुए उनसे खेती-बारीका कार्य कराने लगे ॥ ४६ ॥ वे बैलके समान पुष्ट शरीरवाले और कर्ममें जडवत् निश्चेष्ट थे । अतः केवल आहारमात्रसे ही वे सब लोगोंके यन्त्र बन जाते थे । [अर्थात् समी लोग उन्हें आहारमात्र देकर अपना-अपना काम निकाल लिया करते थे] ॥ ४७॥

उन्हें इस प्रकार संस्कारशून्य और ब्राह्मणवेषके विरुद्ध आचरणवाला देख रात्रिके समय पृषतराजके सेवकोंने बिल्की विधिसे सुसिज्जितकर कालीका बिल्पिया बनाया। किन्तु इस प्रकार एक परमयोगीश्वरको बिल्के लिये उपस्थित देख महाकालीने एक तीक्षण खड्ग ले उस क्रूरकर्मा राजसेवकका गला काट डाला और अपने पार्वदोंसिहत उसका तीखा रुधिर पान किया॥ ४८—५०॥

तदनन्तर, एक दिन महात्मा सौवीरराज कहीं जा रहे थे। उस समय उनके बेगारियोंने समझा कि यह भी बेगारके ही योग्य है ॥५१॥ राजाके सेवकोंने भी भसमें छिपे हुए अग्निके समान उन महात्माका रङ्ग-दक्त देखकर उन्हें बेगारके योग्य समझा॥५२॥ हे द्विज ! उन सौवीरराजने मोक्षधर्मके ज्ञाता महामुनि किपछसे यह पूछनेके छिये कि 'इस दुःखमय संसारमें मनुष्योंका श्रेय किसमें है' शिबिकापर चढ़कर इक्षुमती नदीके किनारे उन महर्षिके आश्रमपर जानेका विचार किया॥ ५३-५४॥

तब राजसेवकके कहनेसे भरत मुनि भी उसकी पाछकीको अन्य बेगारियोंके बीचमें छगकर वहन करने छो ॥ ५५ ॥ इस प्रकार बेगारमें पकड़े जाकर अपने पूर्वजन्मका स्मरण रखनेवाछे, सम्पूर्ण विज्ञानके एक-मात्र पात्र वे विप्रवर अपने पापमय प्रारम्भका क्षय करने छेगे। पद्मी करने छेगे। पद्मी करने छेगे उस शिविकाको उठाकर चछने छगे।। पद्मी

ययौ जडमतिः सोऽथ युगमात्रावलोकनम् । कुर्वन्मतिमतां श्रेष्ठस्तद्न्ये त्वरितं ययुः ॥५७॥ विलोक्य नृपतिः सोऽथ विषमां शिविकागतिम्। किमेतदित्याह समं गम्यतां शिविकावहाः ॥५८॥ पुनस्तथैव शिविकां विलोक्य विषमां हि सः। नृपः किमेतदित्याह भवद्भिर्गम्यतेऽन्यथा ॥५९॥ भूपतेर्वदतस्तस्य श्रुत्वेत्थं बहुशो वचः। शिविकावाहकाः प्रोचुर्यं यातीत्यसत्वरम् ॥६०॥

राजोवाच

किं श्रान्तोऽस्यल्पमध्वानं त्वयोदा शिविका मम । किमायाससहो न त्वं पीवानसि निरीक्ष्यसे ।।६१।।

बाह्यण उवाच

नाहं पीवान चैवोढा शिविका भवतो मया। न श्रान्तोऽसि न चायासो सोढन्योऽस्ति महीपते ६२ राजोवाच

प्रत्यक्षं दृश्यसे पीवानद्यापि शिविका त्वयि । श्रमञ्च भारोद्वहने भवत्येव हि देहिनाम् ॥६३॥

प्रत्यक्षं भवता भूप यद्दष्टं मम तद्वद् । बलवानबलक्चेति वाच्यं पक्चाद्विशेषणम् ॥६४॥ त्वयोढा शिविका चेति त्वय्यद्यापि च संस्थिता । मिथ्यैतदत्र तु भवाञ्छूणोतु वचनं मम।।६५॥ भूमी पादयुगं त्वास्ते जङ्गे पादद्वये स्थिते । ऊर्वोर्जङ्घाद्रयावस्थौ तदाधारं तथोदरम् ॥६६॥ वक्षः खलं तथा बाहू स्कन्यौ चोदरसंस्थितौ ।

वे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ट द्विजवर तो चार हाथ भूमि देखते हुए मन्द-गतिसे चछते थे, किन्तु उनके अन्य साथी जल्दी-जल्दी चल रहे थे ॥ ५७ ॥

इस प्रकार शिविकाकी विषम-गृति देखकर राजाने कहा- "अरे शिविकावाहको ! यह क्या करते हो ? समान-गतिसे चलो" ॥ ५८ ॥ किन्तु फिर भी उसकी गति उसी प्रकार विषम देखकर राजाने फिर कहा-"अरे क्या है ? इस प्रकार असमान भावसे क्यों चळते हो ?" ॥ ५९ ॥ राजाके वार-वार ऐसे वचन सुनकर वे शिविकावाहक [भरतजीको दिखाकर] कहने लगे-"हममेंसे एक यही धीरे-धीरे चलता है" ॥ ६० ॥

राजाने कहा-अरे, तूने तो अभी मेरी शिविकाको थोड़ी ही दूर वहन किया है; क्या इतनेहींमें थक गया ? तू वैसे तो बहुत मोटा-मुष्टण्डा दिखायी देता है, फिर क्या तुझसे इतना भी श्रम नहीं सहा जाता ? ॥ ६१ ॥

ब्राह्मण बोले-राजन् ! मैं न मोटा हूँ और न मैंने आपकी शिविका ही उठा रखी है। मैं थका भी नहीं हूँ और न मुझे श्रम सहन करनेकी ही आवस्यकता है॥६२॥

राजा बोळा-अरे, त् तो प्रत्यक्ष ही मोटा दिखायी दे रहा है, इस समय भी शिविका तेरे कन्धेपर रक्खी हुई है और वोझा ढोनेसे देहधारियोंको श्रम होता ही है ॥ ६३ ॥

ब्राह्मण बोले-राजन् ! तुम्हें प्रत्यक्ष क्या दिखायी दे रहा है, मुझे पहले यही बताओ । उसके 'बल्वान्' अथवा 'अबल्यान्' आदि विशेषणोंकी वात तो पीछे करना ॥ ६४ ॥ 'त्ने मेरी शिविकाका बहन किया है, इस समय भी वह तेरे ही कन्धोंपर रखी हुई है'---तुम्हारा ऐसा कहना सर्वथा मिध्या है, अच्छा मेरी बात सुनो-॥ ६५॥ देखो, पृथिबीपर तो मेरे पैर रखे हैं, पैरोंके ऊपर जंघाएँ हैं और जंघाओंके ऊपर दोनों जरु तथा जरुओं के उपर उदर है ॥ ६६॥ उदरके ऊपर वक्षःस्थल, वाहु और कन्धोंकी स्थिति है तथा कन्वोंके ऊपर यह शिविका रखी है। स्कन्धाश्रितेयं शिविका सम भारोऽत्र किं कृतः।६७॥ इसमें मेरे जपर कैसे बोझा रहा ? ।। ६७॥

शिविकायां स्थितं चेदं वपुस्त्वदुपलक्षितम् । तत्र त्वमहमप्यत्र प्रोच्यते चेदमन्यथा ॥६८॥ अहं त्वं च तथान्ये च भूतैरुद्याम पार्थिव । गुणप्रवाहपतितो भृतवर्गीऽपि यात्ययम् ॥६९॥ कर्मवस्या गुणाश्चैते सत्त्वाद्याः पृथिवीपते । अविद्यासिश्चतं कर्म तचाशेपेषु जन्तुषु ॥७०॥ आत्मा ग्रद्धोऽक्षरः शान्तो निर्गुणः प्रकृतेः परः। प्रदृद्धचपचयौ नास एकसाखिलजन्तुषु ॥७१॥ यदा नोपचयस्तस्य न चैवापचयो नृप । तदा पीवानसीतीत्थं कया युक्त्या त्वयेरितम्।।७२।। भूपादजङ्गाकटच्रुजठरादिषु संस्थिते। शिविकेयं यथा स्कन्धे तथा भारः समस्त्वया।।७३।। तथान्यैर्जन्तुमिर्भूप शिविकोढा न केवलम् । शैलद्भमगृहोत्थोऽपि पृथिवी सम्भवोऽपि वा ॥७४॥ यदा पुंसः पृथग्भावः प्राकृतैः कारणैर्नुप । सोढव्यस्तु तदायासः कथं वा नृपते मया।।७५॥ यद्द्रच्या शिविका चेयं तद्द्रच्यो भूतसंप्रहः । भवतो मेऽिखलसासां ममत्वेनोपवृंहितः ॥७६॥

श्रीपराशर उवाच

एनप्रक्त्वाभवन्मौनी स वह ञ्छिविकां द्विज । सोऽपि राजावतीर्योठ्यां तत्पादौ जगृहे त्वरन्॥७७॥ राजोवाच

भो भो विसुज्य शिविकां प्रसादं कुरु मे द्विज ।

इस शिबिकामें जिसे तुम्हारा कहा जाता है वह शरीर रखा हुआ है। वास्तवमें तो 'तुम वहाँ (शिविकामें) हो और मैं यहाँ (पृथिवीपर) हूँ'-ऐसा कहना सर्वथा मिध्या है ||६८|| हे राजन् ! मैं, तुम और अन्य भी समन्त जीव पञ्चमृतोंसे ही वहन किये जाते हैं। तथा यह भूतवर्ग भी गुणोंके प्रवाहमें पड़कर ही बहा जा रहा है ॥६९॥ हे पृथिवीपते ! ये सत्त्वादि गुण भी कर्मीके वशीभूत हैं और समस्त जीवोंमें कर्म अविद्याजन्य ही हैं ॥७०॥ आत्मा तो शुद्ध, अक्षर, शान्त, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है तथा समस्त जीवोंमें वह एक ही ओतप्रोत है। अतः उसके वृद्धि अथवा क्षय कभी नहीं होते ॥७१॥ हे नृप! जन उसके उपचय (वृद्धि) अपचय (क्षय) ही नहीं होते तो तुमने यह बात किस युक्तिसे कही कि 'त् मोटा है ?' ॥ ७२ ॥ यदि क्रमशः पृथिवी, पाद, जंघा, कटि, ऊरु और उदरपर स्थित कन्धोंपर रखी हुई यह शित्रिका मेरे छिये भाररूप हो सकती है तो उसी प्रकार तुम्हारे लिये भी तो हो सकती है ? [क्योंकि ये पृथिवी आदि तो जैसे तुमसे पृथक् हैं वैसे ही मुझ आत्मासे भी सर्वथा भिन हैं]॥ ७३ ॥ तथा इस युक्तिसे तो अन्य समस्त जीवों-ने भी केवल शिबिका ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण पर्वत, वृक्ष, गृह और पृथिवी आदिका भार उठा रखा है ॥ ७४ ॥ हे राजन् ! जव प्रकृतिजन्य कारणोंसे पुरुष सर्वथा मिन है तो उसका परिश्रम भी मुझको कैसे हो सकता है ? ॥ ७५ ॥ और जिस द्रव्यसे यह शिविका बनी हुई है उसीसे यह आपका, मेरा अथवा और सबका शरीर भी बना है; जिसमें कि ममत्वका आरोप किया हुआ है ॥ ७६ ॥

श्रीपराशरजी बोले-ऐसा कह वे द्विजवर शिविका-को धारण किये हुए ही मौन हो गये; और राजाने भी तुरन्त पृथिवीपर उतरकर उनके चरण पंकड़ छिये ॥ ७७ ॥

राजा बोला-अहो द्विजराज ! इस शिविकाको छोड़कर आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये । प्रभो ! कृपया कथ्यतां को मवानत्र जालमकप्रवरः स्थितः।।७८।।। अस्तार्थे इसि अंडवेषकी धीरण किये आप कौन हैं ?।।७८।।

यो भवान्यन्त्रिमित्तं वा यदागमनकारणम् । तत्सर्वं कथ्यतां विद्वन्मद्यं शुश्रुपवे त्वया ॥७९॥

वाह्मण उवाच

श्रूयतां सोऽहमित्येतद्वक्तुं भूप न शक्यते । उपभोगनिमित्तं च . सर्वत्रागमनिक्रया ॥८०॥ सुखदुः खोपभोगों तु तौ देहाद्यपपादकौ। धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तं जन्तुर्देहादिमृच्छति ॥८१॥ सर्वस्यैव हि भ्रुपाल जन्तोः सर्वत्र कारणम् । धर्माधर्मी यतः कस्मात्कारणं पृच्छचते त्वया ।८२। राजोवाच

धर्माधर्मी न सन्देहस्सर्वकार्येषु कारणम्। उपभोगनिमित्तं च देहादेहान्तरागमः।।८३।। यस्त्वेतद्भवता श्रोक्तं सोऽहमित्येतदात्मनः । वक्तं न शक्यते श्रोतुं तन्ममेच्छा प्रवर्तते ॥८४॥ योऽस्ति सोऽहमिति ब्रह्मन्कथं वक्तुं न शक्यते । आत्मन्येष न दोषाय शब्दोऽहमिति यो द्विज ॥८५॥

बाह्यण उवाच

शब्दोऽहमिति दोषाय नात्मन्येष तथैव तत् । अनात्मन्यात्मविज्ञानं शब्दो वा आन्तिलक्षणः ८६ जिह्वा त्रवीत्यहमिति दन्तोष्ठौ ताछके नृप। एते नाहं यतः सर्वे वाङ्निष्पादनहेतवः ॥८७॥ किं हेतुभिर्वद्त्येषा वागेवाहमिति खयम्। अतः पीवानसीत्येतृह्कुमित्थं न युज्यते ॥८८॥ है' ऐसा कहना भी उचित नहीं है ॥ ८८॥

हे विद्वन् ! आप कौन हैं ? किस निमित्तसे यहाँ आपका आना हुआ ? तथा आनेका क्या कारण है ? यह सत्र आप मुझसे कहिये। मुझे आपके विषयमें सननेकी वड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥ ७९ ॥

ब्राह्मण बोले-हे राजन ! सुनो, मैं अमुक हूँ-यह बात कही नहीं जा सकती और तुमने जो मेरे यहाँ आनेका कारण पृछा सो आना-जाना आदि सभी कियाएँ कर्मफलके उपभोगके लिये ही हुआ करती हैं ॥ ८० ॥ सुख-दु:खका भोग ही देह आदि-की प्राप्ति करानेवाला है तथा धर्माधर्मजन्य सुख-दुःखोंको भोगनेके छिये ही जीव देहादि धारण करता है ॥ ८१ ॥ हे भूपाल ! समस्त जीवोंकी सम्पूर्ण अवस्थाओं के कारण ये धर्म और अधर्म ही हैं, फिर विशेषरूपसे मेरे आगमनका कारण तुम क्यों पृछते हो ! ॥ ८२ ॥

राजा बोला-अवस्य ही, समस्त कार्यों में धर्म और अधर्म ही कारण हैं और कर्मफलके उपमोगके लिये ही एक देहसे दूसरे देहमें जाना होता है || ८३ || किन्तु आपने जो कहा कि 'मैं कौन हूँ—यह नहीं बताया जा सकता' इसी बातको सुननेकी मुझे इच्छा हो रही है ॥ ८४ ॥ हे ब्रह्मन् ! 'जो है [अर्थात् जो आत्मा कर्त्ता-भोक्तारूपसे प्रतीत होता हुआ सदा सत्तारूपसे वर्तमान है] वही मैं हूँ'-ऐसा क्यों नहीं कहा जा सकता ? हे द्विज ! यह 'अहं' शब्द तो आत्मामें किसी प्रकारके दोषका कारण नहीं होता ॥ ८५॥

ब्राह्मण बोलें-हे राजन्! तुमने जो कहा कि 'अहं' शब्दसे आत्मामें कोई दोष नहीं आता सो ठीक ही है. किन्त अनात्मामें ही आत्मत्वका ज्ञान करानेवाला भ्रान्तिमूलक 'अहं' शब्द ही दोषका कारण है ॥८६॥ हे नृप ! 'अहं' राब्दका उचारण जिह्ना, दन्त, ओष्ठ और तालुसे ही होता है, किन्तु ये सब उस शब्दके उचारणके कारण हैं, 'अहं' (मैं) नहीं ॥ ८७ ॥ तो क्या जिह्नादि कारणोंके द्वारा यह वाणी ही खयं अपनेको 'अहं' कहती है ? नहीं । अतः ऐसी स्थितिमें 'तू मोटा

पिण्डः पृथग्यतः पुंसः शिरःपाण्यादिलक्षणः । ततोऽहमिति कुत्रैतां संज्ञां राजन्करोम्यहम् ॥८९॥ यद्यन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम । तदैषोऽहमयं चान्यो. वक्तुमेवमपीष्यते ॥९०॥ यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः। तदा हि को भवान्सोऽहमित्येतद्विफलं वचः ॥९१॥ त्वं राजा शिविका चेयमिमे वाहाः पुरःसराः। अयं च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते ॥९२॥ बुक्षाहारु ततश्रेयं शिबिका त्वदिष्ठिता। कि वृक्षसंज्ञा वास्याः स्याद्दारुसंज्ञाथ वा नृप ॥९३॥ ब्रुक्षारूढो महाराजो नायं वदति ते जनः। न च दारुणि सर्वस्त्वां ब्रवीति शिविकागतम् ॥९४॥ शिविका दारुसङ्घातो रचनास्थितिसंस्थितः। अन्विष्यतां नृपश्रेष्ठ तद्भेदे शिविका त्वया ।।९५॥ एवं छत्रशलाकानां पृथग्भावे विसृक्यतास् । क यातं छत्रमित्येष न्यायस्त्वयि तथा मयि।।९६।। पुमान् स्त्री गौरजो वाजी कुंखरो विहगस्तरुः। देहेषु लोकसंज्ञेयं विज्ञेया कर्महेतुषु ॥९७॥ पुमान देवो न नरो न पशुर्न च पाद्पः । **यरीराकृतिमेदास्तु भूपैते कर्मयोनयः।।९८।।** वस्तु राजेति यह्लोके यच राजभटात्मकम् । तथान्यच नृपेत्थं तन्न सत्सङ्कल्पनामयम् ॥ ९९ ॥ यज्ञ काळान्तरेणापि नान्यां संज्ञासुपैति वै ।

शिर तथा कर-चरणादिरूप यह शरीर भी आत्मासे पृथक् ही है । अतः हे राजन् ! इस 'अहं' शब्दका मैं कहाँ प्रयोग करूँ ! ॥८९॥ तथा हे नृपश्रेष्ठ ! यदि मुझसे भिन्न कोई और भी सजातीय आत्मा हो तो भी 'यह मैं हूँ और यह अन्य हैं'—ऐसा कहा जा सकता था ॥ ९०॥ किन्तु, जब समस्त शरीरोंमें एक ही आत्मा विराजमान है तब 'आप कीन हैंं ? मैं वह हूँ ।' ये सब वाक्य निष्फल ही हैं ॥ ९१॥

'तू राजा है, यह शिविका है, ये सामने शिविका-वाहक हैं तथा ये सब तेरी प्रजा हैं'-हे नृप! इनमेंसे कोई भी बात परमार्थतः सत्य नहीं है ॥९२॥ हे राजन् ! वृक्षसे छकड़ी हुई और उससे तेरी यह शिविका बनी; तो बता इसे छकड़ी कहा जाय या वृक्ष ? ॥ ९३ ॥ किन्तु 'महाराज वृक्षपर बैठे हैं' ऐसा कोई नहीं कहता और न कोई तुझे छकडीपर बैठा हुआ ही बताता है ! सब छोग शिविकामें वैठा हुआ ही कहते हैं ॥ ९४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! रचनाविशेषमें स्थित छकडियोंका समृह ही तो शिविका है। यदि वह उससे कोई मिन्न वस्तु है तो काष्ट्रको अलग करके उसे ढूँढ़ो ॥ ९५॥ इसी प्रकार छत्रकी रालाकाओंको अलग रखकर छत्रका विचार करो कि वह कहाँ रहता है। यही न्याय तुममें और मुझमें लागू होता है [अर्थात् मेरे और तुम्हारे शरीर भी पश्चभूतसे अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं हैं] ॥ ९६ ॥ पुरुष, स्त्री, गौ, अज (बकरा) अश्व, गज, पक्षी और वृक्ष आदि छौकिक संज्ञाओंका प्रयोग कर्महेतुक शरीरोंमें ही जानना चाहिये ॥ ९७॥ हे राजन् ! पुरुष (जीव) तो न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष है। ये सव तो कर्मजन्य शरीरोंकी आकृतियोंके ही भेद हैं ॥ ९८॥

वस्तु राजेति यह्नोके यच राजमटात्मकम् ।

तथान्यच नृपेत्थं तन्न सत्सङ्कल्पनामयम् ॥ ९९ ॥ जो-जो वस्तुएँ हैं, हे राजन् ! वे परमार्थतः सत्य नहीं हैं, केवल कल्पनामय ही हैं ॥ ९९ ॥ जिस वस्तुका परिणामादिके कारण होनेवाली कोई संज्ञा कालान्तरेणापि नान्यां संज्ञामुपेति वे ।

परिणामादिसम्भूतां तद्वस्तु नृप तच्च किम् ॥१००॥ हो राजन्त निमित्रेसी होती, वही परमार्थवस्तु है ।

त्वं राजा सर्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपो रिपुः । पत्न्याः पतिः पिता सनोः किं त्वां भूप वदाम्यहम्। त्वं किमेतच्छिरः किं नु ग्रीवा तव तथोदरम् । किम्रु पादादिकं त्वं वा तवैतितंक महीपते ॥१०२॥ समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूय व्यवस्थितः । कोऽहमित्यत्र निपुणो भूत्वा चिन्तय पार्थिव।१०३। एवं व्यवस्थिते तत्त्वे मयाहमिति भाषितुम् । पृथकरणनिष्पाद्यं शक्यते नृपते कथम्।।१०४।। शब्दसे कैसे वतला सकता हूँ ।। १०४॥

[त् अपनेहीको देख—] समस्त प्रजाके लिये त् राजा है, पिताके लिये पुत्र है, शत्रुके लिये शत्रु है, पत्नीका पति है और पुत्रका पिता है। हे राजन् ! बतला, में तुझे क्या कहूँ ? ॥ १०१ ॥ हे महीपते ! त् क्या यह शिर है, अथवा ग्रीवा है या पेट अथवा पादादिमेंसे कोई है ? तथा ये शिर आदि मी 'तेरे ' क्या हैं ? ॥१०२॥ हे पृथिवीश्वर ! तू इन समस्त अवयवों-से पृथक् है; अतः सावधान होकर विचार कि 'मैं कौन हूँ' ॥ १०३ ॥ हे महाराज ! आत्मतत्त्व इस प्रकार व्यवस्थित है। उसे सत्रसे पृथक करके ही वताया जा सकता है। तो फिर, मैं उसे 'अहं'

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीर्येऽशे त्रयोदशोऽघ्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद।

श्रीपराशर उवाच निशम्य तस्येति वचः परमार्थसमन्वितम्। प्रश्रयावनतो भूत्वा तमाह नृपतिर्द्विजम्।। १।। राजोवाच

भगवन्यस्वया प्रोक्तं परमार्थमयं वचः। श्रुते तिसन्भ्रमन्तीय मनसो मम वृत्तयः ॥ २ ॥ यदशेषेषु एतद्विवेकविज्ञानं भवता दर्शितं वित्र तत्परं प्रकृतेर्महत्।। ३।। नाहं वहामि शिविकां शिविका न मयि स्थिता । श्रुरीरमन्यदसत्तो येनेयं शिविका धृता॥४॥ गुणप्रवृत्त्या भूतानां प्रवृत्तिः कर्मचोदिता। प्रवर्तन्ते गुणा ह्येते किं ममेति त्वयोदितम् ॥ ५॥ एतसिन्परमार्थज्ञ मम श्रोत्रपर्थं गते। मनो विह्वलतामेति परमार्थार्थितां गतम्।। ६।।

श्रीपराशरजो बोले-उनके ये परमार्थमय वचन सुनकर राजाने विनयावनत होकर उन विप्रवरसे कहा ॥ १ ॥

राजा बोळे-भगवन् ! आपने जो परमार्थमय वचन कहे हैं उन्हें सुनकर मेरी मनोवृत्तियाँ भ्रान्त-सी हो गयी हैं ॥ २ ॥ हे विप्र ! आपने सम्पूर्ण जीवोंमें व्याप्त जिस असंग विज्ञानका दिग्दर्शन कराया है वह प्रकृतिसे परे ब्रह्म ही है [इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है] ॥ ३॥ परन्तु आपने जो कहा कि मैं शिविकाको वहन नहीं कर रहा हूँ, शिविका मेरे ऊपर नहीं है, जिसने इसे उठा रखा है वह शरीर मुझसे अत्यन्त पृथक् है । जीवोंकी प्रवृत्ति गुणों (सत्त्व, रज, तम) की प्रेरणासे होती है और गुण क्मोंसे प्रेरित होकर प्रवृत्त होते हैं-इसमें मेरा कर्तृत्व कैसे माना जा सकता है ! ॥ ४-५ ॥ हे परमा-र्धन । यह बात मेरे कानोंमें पड़ते ही मेरा मन प्रमार्थका जिज्ञासु होकर बड़ा उतावळा हो रहा है ॥६॥ पूर्वमेन महामागं किपलिपिंमहं द्विज ।
प्रष्टुमम्युद्यतो गत्ना श्रेयः किं त्वत्र शंस मे ॥ ७ ॥
तदन्तरे च भवता यदेतद्वाक्यमीरितम् ।
तेनैन परमार्थार्थं त्विय चेतः प्रधानित ॥ ८ ॥
किपलिपिंभगवतः सर्वभूतस्य चै द्विज ।
विष्णोरंशो जगन्मोहनाशायोवीं सुपागतः ॥ ९ ॥
स एव भगवान्न्त्नमसाकं हितकाम्यया ।
प्रत्यक्षतामत्र गतो यथैतद्भवतोच्यते ॥१०॥
तन्मद्यं प्रणताय त्वं यच्छ्रेयः परमं द्विज ।
तद्भवासिलिविज्ञानजलवीच्युदिधिर्भवान् ॥११॥
नाक्षण जवाच

भूप प्रच्छित कि श्रेयः परमार्थं तु प्रच्छित ।
श्रेयांस्परमार्थानि अशेषाणि च भूपते ।।१२॥
देवताराधनं कृत्वा धनसम्पदमिच्छित ।
पुत्रानिच्छित राज्यं च श्रेयस्तस्यैव तन्नृप ।।१३॥
कर्म यज्ञात्मकं श्रेयः फलं स्वर्गाप्तिलक्षणम् ।
श्रेयः प्रधानं च फले तदेवानिमसंहिते ॥१४॥
आत्मा ध्येयः सदा भूप योगयुक्तैस्तथा परम् ।
श्रेयस्तस्यैव संयोगः श्रेयो यः परमात्मनः ॥१५॥
श्रेयस्तस्यैव संयोगः श्रेयो यः परमात्मनः ॥१५॥
श्रेयांस्येवमनेकानि शतशोऽथ सहस्रशः ।
सन्त्यत्र परमार्थस्तु न त्वेते श्रूयतां च मे ॥१६॥
धर्माय त्यज्यते किन्तु परमार्थो धनं यदि ।
च्ययश्र क्रियते कस्मात्कामप्राप्त्युपलक्षणः ॥१७॥
पुत्रश्रेत्परमार्थः स्थात्सोऽप्यन्यस्य नरेश्वर ।

हे द्विज! मैं तो पहले ही महाभाग कपिल-मुनिसे यह पूछनेके लिये कि बताइये 'संसारमें मनुष्योंका श्रेय किसमें हैं उनके पास जानेको तत्पर हुआ हूँ ॥ ७ ॥ किन्तु बीचहीमें, आपने जो वाक्य कहे हैं उन्हें सुनकर मेरा चित्त परमार्थ-श्रवण करनेके छिये आपकी ओर झुक गया है ॥ ८॥ हे द्विज ! ये कपिलमुनि सर्वभूत भगवान् विष्णुके ही अंश हैं। इन्होंने संसारका मोह दूर करने के लिये ही पृथिवी-पर अवतार लिया है ॥ ९॥ किन्तु आप जो इस प्रकार भाषण कर रहे हैं उससे मुझे निश्चय होता है कि वे ही भगवान कपिछदेव मेरे हितकी कामनासे यहाँ आपके रूपमें प्रकट हो गये हैं ॥ १० ॥ अतः हे द्विज ! हमारा जो परम श्रेय हो वह आप मुझ विनीतसे कहिये। हे प्रभो । आप सम्पूर्ण विज्ञान-तरंगोंके मानो समुद्र ही हैं।। ११॥

ब्राह्मण बोले—हे राजन् ! तुम श्रेय पूछना चाहते हो या परमार्थ ! क्योंिक हे भूपते ! श्रेय तो सब अपारमार्थिक ही हैं ॥ १२ ॥ हे नृप ! जो पुरुष देवताओंकी आराधना करके धन, सम्पत्ति, पुत्र और राज्यादिकी इच्छा करता है उसके लिये तो वे ही परम श्रेय हैं ॥ १३ ॥ जिसका फल खर्गलोककी प्राप्ति है वह यज्ञात्मक कर्म भी श्रेय हैं; किन्तु प्रधान श्रेय तो उसके फलकी इच्छा न करनेमें ही है ॥१४॥ अतः हे राजन् ! योगयुक्त पुरुषोंको प्रकृति आदिसे अतीत उस आत्माका ही ध्यान करना चाहिये, क्योंिक उस परमात्माका संयोगरूप श्रेय ही वास्तिविक श्रेय है ॥ १५॥

श्रयास्थवमनेकानि शतशोऽथ सहस्रशः।
सन्त्यत्र परमार्थस्तु न त्वेते श्र्यतां च मे ॥१६॥
धर्माय त्यज्यते किन्तु परमार्थो धनं यदि।
चर्माय त्यज्यते किन्तु परमार्थो धनं यदि।
चर्माय कियते कस्मात्कामप्राप्त्युपलक्षणः॥१७॥
चर्माय कियते कस्मात्कामप्राप्त्युपलक्षणः॥१७॥
पुत्रश्रेत्परमार्थः स्थात्सोऽप्यन्यस्य नरेश्वर ।

८८-०. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Dellar क्षिय उसका उसका प्रमुक्त है तथा इन्छित भोगोंकी प्राप्तिके लिये उसका व्यय क्यों किया जाता है शिवाः वह परमार्थ नहीं है ।॥१०॥ हे नरेश्वर ! यदि पुत्रको परमार्थ कहा जाय तो वह तो अन्य (अपने पिता) का परमार्थ कहा जाय तो वह तो अन्य (अपने पिता) का परमार्थ कहा जाय तो वह तो अन्य (अपने पिता) का परमार्थ कहा जाय तो वह तो अन्य (अपने पिता) का परमार्थ कहा जाय तो वह तो अन्य (अपने पिता)

परमार्थभूतः सोऽन्यस्य परमार्थो हि तत्पिता ।।१८।। एवं न परमार्थोऽस्ति जगत्यसिश्चराचरे । परमार्थो हि कार्याणि कारणानामशेषतः ॥१९॥ राज्यादिप्राप्तिरत्रोक्ता परमार्थतया यदि । परमार्था भवन्त्यत्र न भवन्ति च वै ततः ॥२०॥ ऋग्यज्ञःसामनिष्पाद्यं यज्ञकर्म मतं तव । परमार्थभूतं तत्रापि श्रूयतां गदतो मम।।२१।। यत्तु निष्पाद्यते कार्य मृदा कारणभृतया । तत्कारणानुगमनाज्ज्ञायते नृप मृण्मयम् ॥२२॥ एवं विनाशिभिर्द्रव्यैः समिदाज्यक्रशादिभिः। निष्पाद्यते किया या तु सा भवित्री विनाशिनी।२३। अनाशी परमार्थश्च प्राज्ञैरभ्युपगम्यते । तत्तु नाशि न सन्देही नाशिद्रव्योपपादितम् ॥२४॥ तदेवाफलदं कर्म परमार्थी मुक्तिसाधनभूतत्वात्परमार्थो न साधनम् ॥२५॥ ध्यानं चैवात्मनो भूप परमार्थार्थशन्दितम् । मेदकारि परेम्यस्तु परमार्थो न भेदवान् ॥२६॥ परमात्मात्मनोर्योगः परमार्थ इतीष्यते । मिथ्यैतद्वन्यदुद्रव्यं हि नैति तद्दुव्यतां यतः ॥२७॥ तस्माच्छ्रेयांस्यशेषाणि नृपैतानि न संशयः। परमार्थस्त भूपाल सङ्ग्रेपाच्छ्यतां मम।।२८।।

होनेके कारण उस (अपने पिता) का परमार्थ होगा ॥ १८ ॥ अतः इस चराचर जगत्में पिताका कार्यरूप पुत्र भी परमार्थ नहीं है। क्योंकि फिर तो सभी कारणोंके कार्य परमार्थ हो जायँगे॥ १९॥ यदि संसारमें राज्यादिकी प्राप्तिको परमार्थ कहा जाय तो ये कमी रहते हैं और कमी नहीं रहते । अतः परमार्थ भी आगमापायी हो जायगा। [इसिटिये राज्यादि भी परमार्थ नहीं हो सकते] ॥ २०॥ यदि ऋक् , यजुः और सामरूप वेदत्रयीसे सम्पन्न होनेवाले यज्ञकर्मको परमार्थ मानते हो तो उसके विषयमें मेरा ऐसा विचार है-।। २१ ॥ हे नृप ! जो वस्तु कारणरूपा मृत्तिकाका कार्य होती है वह कारणकी अनुगामिनी होनेसे मृत्तिकारूप ही जानी जाती है ॥ २२ ॥ अतः जो क्रिया समिध, घृत और कुशा आदि नाशवान् द्रव्योंसे सम्पन्न होती है वह भी नाशवान् ही होगी ॥ २३ ॥ किन्तु परमार्थको तो प्राज्ञ पुरुप अविनाशी बतलाते हैं और नाशवान् द्रव्योंसे निप्पन्न होनेके कारण कर्म अथवा उनसे निष्पन्न होनेवाले स्वर्गादि] नाशवान् ही हैं- इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ यदि फलाशासे रहित निष्काम-कर्मको परमार्थ मानते हो तो वह तो मुक्तिरूप फलका साधन होनेसे साधन ही है, परमार्थ नहीं ॥ २५॥ यदि देहादिसे आत्माका पार्थक्य विचारकर उसके ध्यान करनेको परमार्थ कहा जाय तो वह तो अनात्मासे आत्माका भेद करनेवाला है और परमार्थमें भेद है नहीं अतः वह भी परमार्थ नहीं हो सकता] ॥ २६॥ यदि परमात्मा और जीवात्माके संयोगको परमार्थ कहें तो ऐसा कहना सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि अन्य द्रव्यसे अन्य द्रव्यकी एकता कभी नहीं हो सकती * ॥ २७॥

अतः हे राजन् ! निःसन्देह ये सत्र श्रेय ही हैं, [परमार्थ नहीं] अत्र जो परमार्थ है वह मैं संक्षेपसे सुनाता हूँ, श्रवण करो ॥ २८॥

क्ष अर्थात् यदि आस्मा परमास्मासे मिन्न है तब तो गौ और अश्वके समान उनकी एकता हो नहीं सकती और यदि विस्त्र-प्रतिविस्त्रकी भाँति अभिन्न है तो उपाधिके निराकरणके अतिरिक्त और उनका संयोग ही क्या होगा ?

एको च्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः । जन्मवृद्धचादिरहित आत्मा सर्वगतोऽन्ययः ॥२९॥ परज्ञानमयोऽसद्भिर्नामजात्यादिभिविं धः न योगवान युक्तोऽभूनेव पार्थिव योक्ष्यते ॥३०॥ तस्यात्मपरदेहेषु सतोऽप्येकमयं हि यत्। विज्ञानं परमार्थोऽसौ द्वैतिनोऽतथ्यदर्शिनः 11३१।। वेणुरन्ध्रप्रमेदेन मेदः पड्जादिसंज्ञितः । अमेदच्यापिनो वायोस्तथास्य परमात्मनः ॥३२॥ एकखरूपमेदश्र बाह्यकर्मप्रवृत्तिजः। देवादि मेदेऽपध्वस्ते नास्त्येवावरणे हि सः ॥३३॥

आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है: वह जन्म-वृद्धि आदिसे रहित, सर्वव्यापी और अव्यय है ॥ २९ ॥ हे राजन् ! वह परम ज्ञानमय है. असत् नाम और जाति आदिसे उस सर्वन्यापकका संयोग न कमी हुआ, न है और न होगा ॥ ३०॥ 'वह. अपने और अन्य प्राणियोंके शरीरमें विद्यमान रहते हुए भी, एक ही हैं'-इस प्रकारका जो विशेष ज्ञान है वही परमार्थ है; द्वैत भावनावाले पुरुष तो अपरमार्थ-दशीं हैं ॥३१॥ जिस प्रकार अभिन्न भावसे व्याप्त एक ही वायुके, बाँसुरीके छिद्रोंके भेट्से षड्ज आदि भेद होते हैं उसी प्रकार [शरीरादि उपाधियोंके कारण] एक ही परमात्माके [देवता-मनुष्यादि] अनेक भेद प्रतीत होते हैं ॥३२॥ एकरूप आत्माके जो नाना भेद हैं वे बाह्य देहादिकी कर्मप्रवृत्तिके कारण ही हुए हैं । देवादि शरीरोंके भेदका निराकरण हो जानेपर वह नहीं रहता । उसकी स्थिति तो अविद्याके आवरणतक ही

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

अर्भुका निवायंको अद्वीतक्षानोपदेश।

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तं मौनिनं भूयश्रिन्तयानं महीपतिम्। प्रत्युवाचाथ विप्रोऽसावद्वैतान्तर्गतां कथाम् ।। १ ।।

वाद्यण उवाच

श्र्यतां नृपशार्द्ह यद्गीतमृश्रुणा पुरा । अवबोधं जनयता निदाघस्यं महात्मनः॥२॥ ऋग्रुर्नामाऽभवत्पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। विज्ञाततत्त्वसद्भावों निसर्गादेव भूपते ॥ ३ ॥ तस शिष्यो निदाघोऽभृत्पुलस्त्यतनयः पुरा । प्रादादशेपविज्ञानं स तस्मै परया मुदा ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! ऐसा कहनेपर, राजाको मौन होकर मन-ही-मन सोच-विचार करते देख वे विप्रवर यह अद्देत-सम्बन्धिनी कथा सुनाने लगे ॥ १ ॥

ब्राह्मण बोले-हे राजशादृं ! पूर्वकालमें महर्षि ऋमुने महात्मा निदाघको उपदेश करते हुए जो कुछ कहा था वह सुनो ॥२॥ हे भूपते! परमेष्ठी श्रीब्रह्माजी-का ऋभु नामक एक पुत्र था, वह खभावसे ही परमार्थ-तत्त्वको जाननेवाला था।।३॥ पूर्वकालमें महर्षि पुलस्त्य-का पुत्र निदाघ उन ऋमुका शिष्य था। उसे उन्होंने अति प्रसन्न होकर सम्पूर्ण तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया अवाप्तज्ञानतन्त्रस्य न तस्याद्वेतत्रासनाः। Collect आशिश्वीधि निरेश्वर्षं ऋधिने देखा कि सम्पूर्ण शास्त्रोंका स ऋश्वस्तर्भयामास निदाघस्य नरेश्वर ॥ ५॥ देविकायास्तरे वीरनगरं नाम वै पुरम् । समृद्धमितरम्यं च पुलस्त्येन निवेशितम् ॥ ६॥ रम्योपवनपर्यन्ते स तस्मिन्पार्थिवोत्तम् ॥ ६॥ निदाघो नाम योगज्ञ ऋश्विश्विष्योऽवसत्पुरा ॥ ७॥ दिव्ये वर्षसहस्रे तु समतीतेऽस्य तत्पुरम् । जगाम स ऋशुः शिष्यं निदाघमवलोककः ॥ ८॥ स तस्य वैश्वदेवान्ते द्वारालोकनगोचरे । स्थितस्तेन गृहीतार्घ्यो निजवेश्म प्रवेशितः ॥ ९॥ प्रश्वालिताङ्ग्रिपाणि च कृतासनपरिग्रहम् । उवाच स द्विजश्रेष्ठो श्रुज्यतामिति सादरम् ॥ १०॥ जवाच स द्विजश्रेष्ठो श्रुज्यतामिति सादरम् ॥ १०॥

ऋभुरुवाच

भो विप्रवर्थ भोक्तव्यं यदनं भवतो गृहे। तत्कथ्यतां कदनेषु न प्रीतिः सततं मम ॥११॥

निदाघ उवाच

सक्तुयावकवाट्यानामपूपानां च मे गृहे । यद्रोचते द्विजश्रेष्ठ तत्त्वं ग्रुङ्क्ष्व यथेच्छया ॥१२॥

ऋमुरुवाच

कदन्नानि द्विजैतानि मृष्टमत्रं प्रयच्छ मे । संयावपायसादीनि द्रप्सफाणितवन्ति च ॥१३॥

निदाघ उवाच

हे हे शालिनि मद्रेहे यत्किश्चिद्तिशोभनम् । भक्ष्योपसाधनं मृष्टं तेनास्यात्रं प्रसाधय ॥१४॥

बाह्यण उवाच

इत्युक्ता तेन सा पत्नी मृष्टमनं द्विजस्य यत् । प्रसाधितवती तद्वै भर्तुर्वचनगौरवात् ॥१५॥

तं भुक्तवन्तिमञ्छातो मृष्टमश्नं महामुनिम् । हे राजन् ! ऋभुके यथेच्छ निदाधः प्राह भूपाल प्रश्रयावनतः स्थितः ॥१६॥ निदाधने अति विनीत होकर उन CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

ज्ञान होते हुए भी निदायकी अद्दैतमें निष्ठा नहीं है ॥५॥

उस समय देविकानदीके तीरपर पुरुस्त्यजीका वसाया हुआ वीरनगर नामक एक अति रमणीक और समृद्धिसम्पन्न नगर था ॥ ६ ॥ हे पार्थिवोत्तम ! रम्य उपवनींसे सुशोमित उस पुरमें पूर्वकालमें ऋभुका शिष्य योगवेत्ता निदाघ रहता था ॥ ७ ॥ महर्षि ऋभु अपने शिष्य निदाघको देखनेके ल्रिये एक सहस्र दिव्यवर्ष वीतनेपर उस नगरमें गये ॥ ८ ॥ जिस समय निदाघ वल्रिवैश्वदेवके अनन्तर अपने द्वारपर [अतिथियों-की] प्रतीक्षा कर रहा था,वे उसके दृष्टिगोचर हुए और वह उन्हें द्वारपर पहुँच अर्घ्यदानपूर्वक अपने घरमें ले गया ॥९॥ उस द्विजश्रेष्ठने उनके हृाय-पैर धुलाये और फिर आसनपर विठाकर आदरपूर्वक कहा—'भोजन कीजिये' ॥ १०॥

ऋभु बोले-हे विप्रवर ! आपके यहाँ क्या-क्या अन्न भोजन करना होगा—यह वताइये, क्योंकि कुत्सित अन्नमें मेरी रुचि नहीं है ॥ ११ ॥

निदाधने कहा-हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरे घरमें सत्, जौकी लप्सी, कन्द-म्ल-फलादि तथा पृए वने हैं। आपको इनमेंसे जो कुछ रुचे वहीं मोजन कीजिये॥१२॥

ऋमु बोले-हे द्विज ! ये तो सभी कुत्सित अन हैं, मुझे तो तुम हल्वा, खीर तथा मट्टा और खाँडके पदार्थ आदि खादिष्ट भोजन कराओ॥ १३॥

तव निदाधने [अपनी स्त्रीसे] कहा-हे गृहदेवि ! हमारे घरमें जो अच्छी-से-अच्छी वस्तु हो उसीसे इनके लिये अति खादिष्ट भोजन वनाओ ॥ १४ ॥

ब्राह्मण (जंडभरत) ने कहा—उसके ऐसा कहनेपर उसकी पत्नीने अपने पतिकी आज्ञासे उन विश्रवरके लिये अति स्वादिष्ट अन्न तैयार किया ॥ १५॥

हे राजन् ! ऋभुके यथेच्छ भोजन कर चुकनेपर निदाघने अति विनीत होकर उन महामुनिसे कहा ॥१६॥ निदाघ उवाच

अपि ते परमा तृप्तिरुत्पन्ना तुष्टिरेव च । अपि ते मानसं स्वस्थमाहारेण कृतं द्विज ॥१७॥ किन्वासो भवान्विप्र क च गन्तुं समुद्यतः । आगम्यते च भवता यतस्तच द्विजोच्यताम् ॥१८॥

ऋभुरुवाच

क्षुद्यस्य तस्य भ्रक्तेऽने तृप्तिर्वाक्षण जायते । न मे क्षुत्राभवत्तृप्तिः कसान्मां परिपृच्छसि ॥१९॥ वहिना पार्थिवे घातौ क्षपिते क्षत्समुद्भवः । भवत्यम्भसि च क्षीणे नृणां तृडपि जायते ॥२०॥ श्चनुष्णे देहधर्माख्ये न ममैते यतो द्विज । ततः क्षुत्सम्भवाभावात्तृप्तिरस्त्येव मे सदा ॥२१॥ मनसः खस्यता तृष्टिश्चित्तधर्माविमौ द्विज । चेतसो यस्य तत्पृच्छ पुमानेभिन युज्यते ॥२२॥ क निवासस्तवेत्युक्तं क गन्तासि च यत्त्वया । कुतश्रागम्यते तत्र त्रितयेऽपि निबोध मे ॥२३॥ पुमान्सर्वगतो व्यापी आकाशवद्यं यतः। इतः कुत्र क गन्तासीत्येतदप्यर्थवत्कथम् ॥२४॥ सोऽहं गन्ता न चागन्ता नैकदेशनिकेतनः। त्वं चान्ये च न च त्वं च नान्ये नैवाहमप्यहम्।।२५।। मृष्टं न मृष्टमप्येषा जिज्ञासा मे कृता तव । किं वस्यसीति तत्रापि श्रूयतां द्विजसत्तम ।।२६।। किमखाद्वथ वा मृष्टं भुज्जतोऽस्ति द्विजोत्तम।

निदाध बोले-हे द्विज ! कहिये मोजन करके आपका चित्त खस्थ हुआ न ? आप पूर्णतया तृप्त और सन्तुष्ट हो गये न ? ॥ १०॥ हे विप्रवर ! कहिये आप कहाँ रहनेवाले हैं ? कहाँ जानेकी तैयारीमें हैं ? और कहाँसे पधारे हैं ? ॥ १८॥

ऋभ बोछे-हे ब्राह्मण ! जिसको क्षुधा लगती है उसीकी तृप्ति भी हुआ करती है। मुझको तो कभी क्षुघा ही नहीं छगी, फिर तृप्तिके विषयमें तुम क्या पूछते हो ? ॥ १९ ॥ जठराम्निके द्वारा पार्थिव (ठोस) धातुओं के क्षीण हो जाने से मनुष्यको क्षधाकी प्रतीति होती है और जलके क्षीण होनेसे तृषाका अनुभव होता है ॥ २० ॥ हे द्विज ! ये क्षधा और तृपा तो देहके ही धर्म हैं, मेरे नहीं; अतः कभी क्षधित न होनेके कारण मैं तो सर्वदा तृप्त ही हूँ ॥ २१ ॥ खस्थता और तुष्टि भी मनहीमें होते हैं, अतः ये मन-हींके धर्म हैं; पुरुष (आत्मा) से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है । इसलिये हे द्विज ! ये जिसके धर्म हैं उसीसे इनके विषयमें पूछो ॥ २२ ॥ और तुमने जो पूछा कि 'आप कहाँ रहनेवाले हैं ? कहाँ जा रहे हैं ! तथा कहाँसे आये हैं 'सो इन तीनोंके विषयमें मेरा मत सुनो-॥ २३ ॥ आत्मा सर्वगत है, क्योंकि यह आकाशके समान व्यापक है: अतः 'कहाँसे आये हो, कहाँ रहते हो और कहाँ जाओगे ?' यह कथन भी कैसे सार्थक हो सकता है ? ॥२॥ मैं तो न कहीं जाता हूँ, न आता हूँ और न किसी एक स्थानपर रहता हूँ । [तू , मैं और अन्य पुरुष भी देहादिके कारण जैसे पृथक्-पृथक् दिखायी देते हैं वास्तवमें वैसे नहीं हैं] वस्तुतः तू तू नहीं है, अन्य अन्य नहीं है और मैं मैं नहीं हूँ ॥ २५॥

वास्तवमें मधुर मधुर है भी नहीं; देखों, मैंने तुमसे जो मधुर अनुकी याचना की थी उससे भी मैं यही देखना चाहता था कि 'तुम क्या कहते हो।' हे द्विजश्रेष्ठ! मोजन करने-वालेके लिये खादु और अखादु भी क्या है ! क्योंकि खादिष्ट पदार्थ ही जब समयान्तरसे अखादु हो जाता तदेवोद्देशकारकम् ॥२७॥ है तो यही उद्देशजुनक होने ब्लुगता है ॥ २६-२७॥

अमृष्टं जायते मृष्टं मृष्टादुद्विजते जनः।

आदिमध्यावसानेषु किमनं रुचिकारकम्।।२८॥

मृष्मयं हि गृहं यद्दन्मृदा लिप्तं स्थिरं भवेत्।

पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः ॥२९॥

यवगोधूमग्रद्वादि घृतं तैलं पयो दिध।

गुडं फलादीनि तथा पार्थिवाः परमाणवः ॥३०॥

तदेतद्भवता ज्ञात्वा मृष्टामृष्टविचारि यत्।

तन्मनस्समतालम्ब कार्यं साम्यं हि ग्रुक्तये ॥३१॥

वाह्मण जवाच

इत्याकण्ये वचस्तस्य परमार्थाश्रितं नृप ।
प्रणिपत्य महाभागो निदाघो वाक्यमत्रवीत्।।३२॥
प्रसीद मद्धितार्थाय कथ्यतां यत्त्वमागतः ।
नष्टो मोहस्तवाकण्ये वचांस्येतानि मे द्विज ।।३३॥
प्रमुख्वाच

ऋग्ररसि तवाचार्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज । इहागतोऽहं यास्यामि परमार्थस्तवोदितः ॥३४॥ एवमेकमिदं विद्धि न मेदि सकलं जगत् । वासुदेवामिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ॥३५॥

तथेत्युक्त्वा निदाघेन प्रणिपातपुरःसरम् । पूजितः परया भक्त्या इच्छातः प्रययाद्रभुः ॥३६॥

बाह्यण उवाच

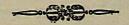
इसी प्रकार कभी अरुचिकर पदार्थ रुचिकर हो जाते हैं और रुचिकर पदार्थों से मनुष्यको उद्देग हो जाता है । ऐसा अन भला कौन-सा है जो आदि, मध्य और अन्त तीनों कालमें रुचिकर ही हो ? ॥ २८ ॥ जिस प्रकार मिट्टीका घर मिट्टीसे लीपने-पोतनेसे दृढ़ होता है, उसी प्रकार यह पार्थिव देह पार्थिव-अनने परमाणुओंसे पृष्ट हो जाता है ॥ २९ ॥ जौ, गेहूँ, मूँग, घृत, तैल, दूध, दही, गुड और फल आदि सभी पदार्थ पार्थिव परमाणु ही तो हैं । [इनमेंसे किसको खादु कहें और किसको अखादु ?] ॥३०॥ अतः, ऐसा जानकर तुम्हें इस स्वादु-अखादुका विचार करनेवाले चित्तको समदर्शी वनाना चाहिये, क्योंकि मोक्षका एकमात्र उपाय समता ही है ॥ ३१ ॥

ब्राह्मण बोले-हे राजन् ! उनके ऐसे परमार्थमय वचन सुनकर महाभाग निदाधने उन्हें प्रणाम करके कहा—॥ ३२॥ "प्रभो ! आप प्रसन्न होइये ! कृपया वतलाइये, मेरे कल्याणकी कामनासे आये हुए आप कौन हैं ? हे द्विज ! आपके इन वचनोंको सुनकर मेरा सम्पूर्ण मोह नष्ट हो गया है"॥ ३३॥

ऋभु बोले-हे द्विज ! मैं तेरा गुरु ऋभु हूँ; तुझको सदसदिवेकिनी बुद्धि प्रदान करनेके लिये मैं यहाँ आया था। अत्र मैं जाता हूँ; जो कुछ परमार्थ है वह मैंने तुझसे कह ही दिया है ॥ ३४ ॥ इस परमार्थ-तत्त्वका विचार करते हुए त इस सम्पूर्ण जगत्को एक वासुदेव परमात्माहीका खरूप जान; इसमें मेद-माव विल्कुल नहीं है ॥ ३५ ॥

ब्राह्मण बोले-तदनन्तर निदाघने 'बहुत अच्छा' कह उन्हें प्रणाम किया और फिर उससे परम मक्ति-पूर्वक प्जित हो ऋमु खेच्छानुसार चले गये॥ ३६॥

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे पञ्चदशोऽच्यायः ॥ १५ ॥



सोलहवाँ अध्याय

ऋभुकी आज्ञासे निदाघका अपने घरको छौटना।

नाह्मण उवाच

ऋधुर्वर्षसहस्रे तु समतीते नरेश्वर ।
निदाधज्ञानदानाय तदेव नगरं ययौ ॥ १ ॥
नगरस्य वहिः सोऽथ निदाधं दृहशे मुनिः ।
महाबलपरीवारे पुरं विश्वति पार्थिवे ॥ २ ॥
दूरे स्थितं महाभागं जनसम्मर्दवर्जकम् ।
धुत्थामकण्ठमायान्तमरण्यात्ससमित्कुशम् ॥ ३ ॥
दृष्टा निदाधं स ऋधुरुपगम्याभिवाद्य च ।
उवाच कसादेकान्ते स्थीयते भवता द्विज ॥ ४ ॥

निदाघ उवाच

भो वित्र जनसम्मदीं महानेष नरेश्वरः । प्रविविश्वः पुरं रम्यं तेनात्र स्थीयते मया ॥ ५॥

ऋमुरुवाच

नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः। कथ्यतां मे द्विजश्रेष्ठ त्वमभिज्ञो मतो मम।। ६।।

निदाघ उवाच

योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुच्छितम् । अधिरुद्धो नरेन्द्रोऽयं परिलोकस्तथेतरः ॥ ७॥

ऋभुरुवाच

एतौ हि गजराजानौ युगपद्शिंतौ मम ।
भवता न विशेषेण पृथक्चिह्वोपलक्षणौ ॥ ८ ॥
तत्कथ्यतां महाभाग विशेषो भवतानयोः ।
ज्ञातुमिच्छाम्यदं कोऽत्र गजः को वा नराधिपः ॥९॥

निदाघ उवाच

गजो योऽयमघो ब्रह्मन्तुपर्यस्येष भूपतिः । वाद्यवाहकसम्बन्धं को न जानाति वै द्विज् ॥१०॥

ब्राह्मण बोले-हे नरेश्वर! तदनन्तर सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर महर्षि ऋमु निदाधको ज्ञानोपदेश करनेके लिये फिर उसी नगरको गये ॥ १ ॥ वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने देखा कि वहाँका राजा बहुत-सी सेना आदिके साथ बड़ी धूम-धामसे नगरमें प्रवेश कर रहा है और वनसे कुशा तथा सिमध लेकर आया हुआ महाभाग निदाध जनसमृहसे हटकर मूखा-प्यासा दूर खड़ा है ॥२-३॥

निदाघको देखकर ऋमु उसके निकट गये और उसका अभिवादन करके बोळे—'हे द्विज! यहाँ, एकान्तमें आप कैसे खड़े हैं' ॥ ४॥

निदाघ बोळे-हे विप्रवर ! आज इस अति रमणीक नगरमें राजा जाना चाहता है, सो मार्गमें बड़ी भीड़ हो रही है; इसिंछिये मैं यहाँ खड़ा हूँ ॥ ५॥

ऋभु बोले-हे द्विजश्रेष्ठ ! माल्यम होता है आप यहाँकी सब बातें जानते हैं । अतः कहिये इनमें राजा कौन है ! और अन्य पुरुष कौन हैं ! ॥ ६॥

निदाब बोळे-यह जो पर्वतके समान ऊँचे मत्त गजराजपर चढ़ा हुआ है वही राजा है, तथा दूसरे छोग परिजन हैं॥ ७॥

ऋभु बोले-आपने राजा और गज, दोनों एक साथ ही दिखाये, किन्तु इन दोनोंके पृथक्-पृथक् विशेष चिह्न अथवा लक्षण नहीं बतलाये ॥ ८॥ अतः हे महाभाग ! इन दोनोंमें क्या-क्या विशेषताएँ हैं, यह बतलाइये । मैं यह जानना चाहता हूँ कि इनमें कौन राजा है और कौन गज है ?॥ ९॥

निदाध बोले-इनमें जो नीचे है वह गज है और उसके ऊपर राजा है। हे द्विज ! इन दोनोंका वाह्य-वाहक-सम्बन्ध है—इस बातको कौन नहीं जानता है।। १०॥

ion, New Dell. Bightiled by eGangotri

ऋभुरुवाच

जानाम्यहं यथा ब्रह्मंस्तथा मामवबोधय । अधःशब्दनिगद्यं हि किं चोर्घ्वमभिधीयते ॥११॥

त्राह्मण उवाच

इत्युक्तः सहसारुद्ध निदाधः प्राह तमृश्चम् । श्रूयतां कथयाम्येष यन्मां त्वं परिपृच्छिस ॥१२॥ उपर्यहं यथा राजा त्वमधः कुञ्जरो यथा । अवबोधाय ते ब्रह्मन्द्दष्टान्तो दर्शितो मया ॥१३॥

ऋभुरुवाच

त्वं राजेव द्विजश्रेष्ठ स्थितोऽहं गजवद्यदि । तदेतत्त्वं समाचक्ष्य कतमस्त्वमहं तथा ॥१४॥

बाह्मण उवाच

इत्युक्तः सत्वरं तस्य प्रगृह्य चरणानुमौ ।
निदायस्त्वाह भगवानाचार्यस्त्वमृश्चर्ध्ववम् ॥१५॥
नान्यस्याद्वेतसंस्कारसंस्कृतं मानसं तथा।
यथाचार्यस्य तेन त्वां मन्ये प्राप्तमहं गुरुम् ॥१६॥
ऋभुरुवाच

तवोपदेशदानाय पूर्वश्चभूषणाहतः ।
गुरुस्तेहाहश्चर्नाम निदाघ सग्चपागतः ॥१७॥
तदेतदुपदिष्टं ते सङ्ग्रेपेण महामते ।
परमार्थसारभूतं यत्तद्वैतमशेषतः ॥१८॥

बाह्यण उवाच

एवग्रुक्त्वा ययौ विद्वािश्वदाघं स ऋग्रुर्गुरुः ।
निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत् ॥१९॥
सर्वभूतान्यभेदेन दृहशे स तदात्मनः ।
यथा ब्रह्मपरो ग्रुक्तिमवाप परमां द्विजः ॥२०॥
तथा त्वमपि धर्मज्ञ तुल्यात्मिरिपुवान्धवः ।
भव सर्वगतं जानवात्मानमवनीपते ॥२१॥

ऋभु बोले-[ठीक है, किन्तु] हे ब्रह्मन् ! मुझे इस प्रकार समझाइये, जिससे मैं यह जान सक्टूँ कि 'नीचे' इस शब्दका वाच्य क्या है? और 'ऊपर' किसे कहते हैं ? ॥ ११॥

ब्राह्मणने कहा—ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाधने अकस्मात् उनके ऊपर चढ़कर कहा—"सुनिये, आपने जो पूछा है वही वतछाता हूँ—॥ १२॥ इस समय राजाकी भाँति मैं तो ऊपर हूँ और गजकी भाँति आप नीचे हैं। हे ब्रह्मन् ! आपको समझानेके छिये ही मैंने यह दृष्टान्त दिखळाया है"॥ १३॥

ऋभु बोळे-हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि आप राजाके समान हैं और मैं गजके समान हूँ तो यह बताइये कि आप कौन हैं ! और मैं कौन हूँ ! ॥ १४ ॥

ब्राह्मणने कहा-ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघने तुरन्त ही उनके दोनों चरण पकड़ लिये और कहा— 'निश्चय ही आप आचार्यचरण महर्षि ऋमु हैं ॥ १५॥ हमारे आचार्यजीके समान अद्देत-संस्कार-युक्त चित्त और किसीका नहीं है; अतः मेरा विचार है कि आप हमारे गुरुजी ही आकर उपस्थित हुए हैं'॥ १६॥

ऋमु बोले-हे निदाध ! पहले तुमने सेवा-गुश्रूषा करके मेरा बहुत आदर किया था अतः तुम्हारे स्नेह-वश मैं ऋमु नामक तुम्हारा गुरु ही तुमको उपदेश देनेके लिये आया हूँ ॥१७॥ हे महामते ! 'समस्त पदार्थोंमें अद्वैत-आत्म-बुद्धि रखना' यही परमार्थ-का सार है जो मैंने तुम्हें संक्षेपमें उपदेश कर दिया ॥ १८॥

ब्राह्मण बोले-निदाघसे ऐसा कह परम विद्वान् गुरुवर मगवान् ऋमु चले गये और उनके उपदेशसे निदाघ मी अद्वैत-चिन्तनमें तत्पर हो गया ॥ १९॥ और समस्त प्राणियोंको अपनेसे अभिन्न देखने लगा हे धर्मञ्च ! हे पृथिवीपते ! जिस प्रकार उस ब्रह्मपरायण ब्राह्मणने परम मोक्षपद प्राप्त किया, उसी प्रकार द भी आत्मा, शत्रु और मित्रादिमें समान माव रखकर अपनेको सर्वगत जानता हुआ मुक्ति लाभ कर ॥२०-२१॥ सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः।

श्रान्तिदृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन्पृथकपृथक्।२२।

एकः समस्तं यदिदृास्ति किश्चि
तद्च्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत्।

सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेत
दात्मखरूपं त्यज भेदमोहम्॥२३॥

श्रीपराशर उवाच

इतीरितस्तेन स राजवर्यस्तत्याज मेदं परमार्थदृष्टिः ।

स चापि जातिस्मरणाप्तबोधस्तत्रैव जन्मन्यपवर्गमाप ॥२४॥

इति भरतनरेन्द्रसारवृत्तं जो पुरुष भक्तिपूर्वक कहत कथयति यश्च शृणोति भक्तियुक्तः ।

स विमलमितरेति नात्ममोहं नहीं होती और वह जन्म-ज प्राप्त कर हेता है ॥ २५॥

जिस प्रकार एक ही आकाश खेत-नील आदि भेदोंबाला दिखायी देता है, उसी प्रकार भ्रान्त- दृष्टियोंको एक ही आत्मा पृथक्-पृथक् दोखता है ॥ २२॥ इस संसारमें जो कुछ है वह सब एक आत्मा ही है और वह अविनाशी है, उससे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है; मैं, तू और ये सब आत्मखरूप ही हैं। अतः मेद-ज्ञानरूप मोहको छोड़ ॥ २३॥

श्रीपराशरजी बोले-उनके ऐसा कहनेपर सौवीर-राजने परमार्थदृष्टिका आश्रय लेकर मेद-बुद्धिको छोड़ दिया और वे जातिस्मर ब्राह्मणश्रेष्ठ भी बोधयुक्त होनेसे उसी जन्ममें मुक्त हो गये ॥ २४ ॥ इस प्रकार महाराज भरतके इतिहासके इस सारभूत वृत्तान्तको जो पुरुष भक्तिपूर्वक कहता या सुनता है उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, उसे कभी आत्म-विस्मृति नहीं होती और वह जन्म-जन्मान्तरमें मुक्तिकी योग्यता प्राप्त कर लेता है ॥ २५ ॥

- OXESSIVE -

इति श्रीविष्णुपुराणे द्वितीयेंऽशे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥



इति श्रीपराश्चरमुनिविरचिते श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायके श्रीमति विष्णुमहापुराणे द्वितीयोंऽशः समाप्तः ॥





श्रीविष्णुपुराण

ह्तीय अंश



मानं मानातीतममेयं मनसाप्यं मन्तुर्मन्तारं मुनिमान्यं महिमाट्यम् । मायाक्रीडं मायिनमाद्यं गतमायं बन्दे विष्णुं मोहमहारिं महनीयम् ॥





यमराज और दूतका संवाद CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

श्रीमञ्जारायणाय नमः

श्रीविष्णुपुराण

हतीय अंश

पहला अध्याय

पहले सात मन्बन्तरोंके मनु, इन्द्र, देवता, सप्तर्पि और मनुपुत्रोंका वर्णन।

श्रीमैत्रेय उवाच

कथिता गुरुणा सम्यग्भूसमुद्रादिसंस्थितिः।
सूर्यादीनां च संस्थानं ज्योतिषां चातिविस्तरात्।।१॥
देवादीनां तथा सृष्टिर्ऋषीणां चापि वर्णिता।
चातुर्वण्यस्य चोत्पत्तिस्तिर्यग्योनिगतस्य च॥२॥
ध्रुवप्रह्लादचरितं विस्तराच त्वयोदितम्।
मन्वन्तराण्यशेषाणि श्रोतुमिच्छाम्यनुक्रमात्॥३॥
मन्वन्तराधिपांश्रेव शकदेवपुरोगमान्।
भवता कथितानेताञ्छोतुमिच्छाम्यहं गुरो॥४॥

श्रीपराशर उवाच अतीतानागतानीह यानि मन्बन्तराणि वै।

अतीतानागतानीह याान मन्वन्तराण व ।
तान्यहं भवतः सम्यक्तथयामि यथाऋमम् ॥ ५ ॥
स्वायम्भुवो मतुः पूर्व परः स्वारोचिषस्तथा ।
उत्तमस्तामसश्चेव रैवतश्चाभ्रुषस्तथा ॥ ६ ॥
षडेते मनवोऽतीतास्साम्प्रतं तु रवेस्सुतः ।
वैवस्वतोऽयं यस्यैतत्सप्तमं वर्ततेऽन्तरम् ॥ ७ ॥
स्वायम्भुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं मया ।

देवास्सप्तर्षयश्चेव यथावत्कथिता मया।। ८।।

श्रीमैन्नेयजी बोले-हे गुरुदेव ! आपने पृथिवी और समुद्र आदिकी स्थिति तथा सूर्य आदि प्रह्नगणके संस्थानका मुझसे मली प्रकार अति विस्तारपूर्वक वर्णन किया ॥ १ ॥ आपने देवता आदि और ऋषिगणोंकी सृष्टि तथा चातुर्वण्यं एवं तिर्यक्-योनिगत जीवोंकी उत्पत्तिका भी वर्णन किया ॥ २ ॥ ध्रुव और प्रह्लादके चिर्त्रोंको भी आपने विस्तारपूर्वक सुना दिया । अतः हे गुरो ! अव मैं आपके मुखारविन्दसे सम्पूर्ण मन्वन्तर तथा इन्द्र और देवताओंके सिहत मन्वन्तरोंके अधिपति समस्त मनुओंका वर्णन सुनना चाहता हूँ [आप वर्णन कीजिये] ॥ ३-४ ॥

श्रीपराशरजी बोले-भूतकालमें जितने मन्वन्तर हुए हैं तथा आगे भी जो-जो होंगे, उन सबका मैं तुमसे क्रमशः वर्णन करता हूँ ॥ ५॥ प्रथम मनु खायम्भुव थे। उनके अनन्तर क्रमशः खारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाश्चुष हुए॥ ६॥ ये छः मनु पूर्वकालमें हो चुके हैं। इस समय सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु हैं, जिनका यह सातवाँ मन्वन्तर वर्तमान है॥ ७॥

मया। मैंने कहा है उसके देवता और सप्तिपेयोंका तो मैं मया।। ८॥ पहले ही यथावत् वर्णन कर चुका हूँ॥८॥

अत ऊर्घ्वं प्रवक्ष्यामि मनोस्खारोचिषस्य तु । मन्वन्तराधिपान्सम्यग्देवर्षांसत्सुतांस्तथा ॥ ९॥ पारावतास्सतुपिता देवास्स्वारोचिपेऽन्तरे। विपश्चित्तत्र देवेन्द्रो मैत्रेयासीन्महाबलः ॥१०॥ ऊर्जः स्तम्भस्तथा प्राणो वातोऽथ पृषभस्तथा। निरंयश्र परीवांश्र तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ।।११।। चैत्रकिम्प्ररुपाद्याश्च सुतास्खारोचिषस्य तु । द्वितीयमेतद्वचाख्यातमन्तरं शृणु चोत्तमम् ॥१२॥ वृतीयेऽप्यन्तरे ब्रह्मन्त्रत्तमो नाम यो मतः। सुशान्तिर्नाम देवेन्द्रो मैत्रेयासीत्सुरेश्वरः ॥१३॥ सुधामानस्तथा सत्या जपाश्राथ प्रतर्दनाः। वशवर्तिनश्च पश्चैते गणा द्वादशकास्स्मृताः ।।१४॥ वसिष्ठतनया ह्येते सप्त सप्तर्षयोऽभवन् । अजः परश्चदीप्ताद्यास्तथोत्तममनोस्स्रताः ।/१५॥ तामसस्यान्तरे देवास्सुपारा हरयस्तथा। सत्याश्र सुधियश्रेव सप्तविंशतिका गणाः ॥१६॥ शिविरिन्द्रस्तथा चासीच्छतयज्ञोपलक्षणः। सप्तर्पयश्च ये तेषां तेषां नामानि मे शृणु ।।१७।। ज्योतिर्घामा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽप्रिर्वनकस्तथा। पीवरश्चर्षयो ह्येते सप्त तत्रापि चान्तरे ।।१८।। नरः ख्यातिः केतुरूपो जानुजङ्घाद्यस्तथा । पुत्रास्तु तामसस्यासत्राजानस्सुमहाबलाः ॥१९॥ पश्चमे वापि मैत्रेय रैवतो नाम नामतः। मनुर्विभ्रुश्च तत्रेन्द्रो देवांश्वात्रान्तरे शृणु ।।२०।। अमितामा भृतरया वैकुण्ठास्स्समेघसः। देवगणास्तत्र चतुर्दश चतुर्दश ॥२१॥ हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः । वेदबाहुस्सुघामा च पर्जन्यश्च महाम्रुनिः।

अव आगे मैं खारोचिषमनुके मन्वन्तराधिकारी देवता, ऋषि और मनुपुत्रोंका स्पष्टतया वर्णन करूँगा ॥९॥ हे मैत्रेय ! खारोचिषमन्वन्तरमें पारावत और तुषित-गण देवता थे, महावळी विपश्चित् देवराज इन्द्र थे ॥ १०॥ ऊर्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, पृषम, निरय और परीवान् ये उस समय सप्तर्षि थे ॥११॥ तथा चैत्र और किम्पुरुष आदि खारोचिषमनुके पुत्र थे । इस प्रकार तुमसे द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन कर दिया । अव उत्तम-मन्वन्तरका विवरण सुनो ॥ १२ ॥

हे ब्रह्मन् ! तीसरे मन्वन्तरमें उत्तम नामक मनु और धुशान्ति नामक देवाधिपति इन्द्र थे ॥ १३ ॥ उस समय धुधाम, सत्य, जप, प्रतर्दन और वशवर्ती— ये पाँच बारह-बारह देवताओंके गण थे ॥ १४ ॥ तथा वसिष्ठजीके सात पुत्र सप्तर्षिगण और अज, परशु एवं दीप्त आदि उत्तममनुके पुत्र थे ॥ १५ ॥

तामस-मन्वन्तरमें सुपार, हरि, सत्य और सुधि—ये चार देवताओं के वर्ग थे और इनमेंसे प्रत्येक वर्ग में सत्ताईस-सत्ताईस देवगण थे ॥ १६ ॥ सौ अश्वमेध यज्ञवाला राजा शिवि इन्द्र था तथा उस समय जो सप्तिर्धिगण थे उनके नाम मुझसे सुनो—॥ १७ ॥ ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर—ये उस मन्वन्तरके सप्तिर्धि थे ॥ १८ ॥ तथा नर, ख्याति, केतुरूप और जानुजंध आदि तामसम्मनुके महाबली पुत्र ही उस समय राज्याधिकारी थे ॥ १९ ॥

पश्चमे वापि मेंत्रेय रैवतो नाम नामतः।

मनुर्विश्वश्व तत्रेन्द्रो देवांश्वात्रान्तरे शृणु ॥२०॥
अमितामा भूतरया वैकुण्ठास्सुसमेधसः।
एते देवगणास्तत्र चतुर्दश चतुर्दश ॥२१॥
हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः।
वेदवाहुस्सुधामा च पर्जन्यश्व महाग्रुनिः।

एते सप्तर्पयो विश्व तत्रासत्रेवतेऽन्तरे ॥२२॥

अर महाग्रुनि—ये सात सप्तर्पिगण थे॥ २२॥

क्रिंग्यरोमां,वेदश्री, ऊर्ध्वत्रांहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य

पते सप्तर्पयो विश्व तत्रासत्रेवतेऽन्तरे ॥२२॥

अर महाग्रुनि—ये सात सप्तर्षिगण थे॥ २२॥

क्रिंग्यरोमां,वेदश्री, ऊर्ध्वत्रांहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य

पते सप्तर्पयो विश्व तत्रासत्रेवतेऽन्तरे ॥२२॥

अर महाग्रुनि—ये सात सप्तर्षिगण थे॥ २२॥

वलवन्धुश्र सम्भाव्यस्सत्यकाद्याश्र तत्सुताः। महावीर्या वभूवुर्ग्रनिसत्तम ॥२३॥ नरेन्द्राश्व स्त्रारोचिपश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा। प्रियवतान्वया ह्येते चत्वारो मनवस्स्मृताः ॥२४॥ विष्णुमाराध्य तपसा स राजिं। प्रियत्रतः । मन्वन्तराधिपानेताँ छुव्धवानात्मवंशजान् ॥२५॥ षष्ठे मन्त्रन्तरे चासीचाक्षुषाख्यस्तथा मनुः । मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवानपि निवोध मे ॥२६॥ आप्याः प्रस्ता भव्याश्र पृथुकाश्र दिवौकसः। महाजुभावा लेखाश्र पश्चेते ह्यष्टका गणाः ॥२७॥ सुमेघा विरजाश्रव हविष्मानुत्तमो मधुः। अतिनामा सहिष्णुश्र सप्तासिन्नति चर्षयः ॥२८॥ पूरुक्शतद्यस्रप्रमुखास्सुमहावलाः । জন্চ: चाक्षुपस्य मनोः पुत्राः पृथिवीपतयोऽभवन् ॥६९॥ विवस्ततस्तुतो विप्र श्राद्धदेवो महाद्युतिः। मनुस्संवर्तते धीमान् साम्प्रतं सप्तमेऽन्तरे ॥३०॥ आदित्यवसुरुद्राद्या देवाश्वात्र महासुने । पुरन्दरस्तथैवात्र मैत्रेय त्रिदशेश्वरः ॥३१॥ वसिष्ठः काश्यपोऽथात्रिर्जमद्ग्रिस्सगौतमः। विश्वामित्रभरद्वाजौ सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥३२॥ इक्ष्वाकुश्र नृगश्रीव घृष्टः शर्यातिरेव च। नरिष्यन्तश्र विख्यातो नामागोऽरिष्ट एव च ॥३३॥ सुमहाँ होकविश्वतः। पृषभ्रश्र करूपश्च मनोवैवस्वतस्यैते नव पुत्राः सुधार्मिकाः ॥३४॥ विष्णुशक्तिरनौपम्या सच्चोद्रिक्ता स्थितौ स्थिता । देवत्वेनाधितिष्ठति ॥३५॥ मन्वन्तरेष्वशेषेषु अंशेन तस्या जज्ञेऽसौ यज्ञस्खायम्भुवेऽन्तरे । आकृत्यां मानसो देव उत्पन्नः प्रथमेऽन्तरे ॥३६॥ ततः पुनः स वै देवः प्राप्ते खारोचिषेऽन्तरे ।

हे मुनिसत्तम ! उस समय रैवतमनुके महावीर्यशाली पुत्र वलवन्धु, सम्भाव्य और सत्यक आदि राजा थे ॥२३॥

हे मैत्रेय! खारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत—ये चार मनु, राजा प्रियव्रतके बंशधर कहे जाते हैं ॥२४॥ राजिं प्रियव्रतने तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना करके अपने वंशमें उत्पन्न हुए इन चार मन्वन्तराधिपोंको प्राप्त किया था॥ २५॥

छठे मन्वन्तरमें चाक्षुष नामक मनु और मनोजव नामक इन्द्र थे। उस समय जो देवगण ये उनके नाम सुनो—।।२६॥ उस समय आप्य,प्रसूत, भव्य, पृथुक और छेख—ये पाँच प्रकारके महानुभाव देवगण वर्तमान ये और इनमेंसे प्रत्येक गणमें आठ-आठ देवता थे॥२७॥ उस मन्वन्तरमें सुमेधा, विरजा, हविष्मान, उत्तम, मधु, अतिनामा और सिहण्णु—ये सात सप्तर्षि थे॥२८॥ तथा चाक्षुषके अति वछवान् पुत्र ऊरु, पूरु, और शतसुम्न आदि राज्याधिकारी थे॥२९॥

हे विप्र ! इस समय इस सातवें मन्वन्तरमें सूर्यके पुत्र महातेजस्वी और बुद्धिमान् श्राद्ध-देवजी मनु हैं ॥३०॥ हे महामुने ! इस मन्वन्तरमें आदित्य, वसु और रुद्ध आदि देवगण हैं तथा पुरन्दर नामक इन्द्र है ॥ ३१ ॥ इस समय विसष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदिश, गोतम, विश्वामित्र और भरद्वाज—ये सात सप्तिषि हैं ॥ ३२ ॥ तथा वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, निष्यन्त, नामाग, अरिष्ट, करूष और पृषध—ये अत्यन्त छोकप्रसिद्ध और धर्मात्मा नौ पुत्र हैं ॥ ३३-३४ ॥

समस्त मन्वन्तरों में देवरूपसे स्थित भगवान् विष्णु-की अनुपम और सत्त्वप्रधाना शक्ति ही संसारकी स्थिति-में उसकी अधिष्ठात्री होती है ॥३५॥ सबसे पहले स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें मानसदेव यज्ञपुरुष उस विष्णु-शक्तिके अंशसे ही आकृतिके गर्भसे उत्पन्न हुए थे ॥३६॥ फिर स्वारोचिष-मन्वन्तरके उपस्थित होनेपर वे

तुषितायां सम्रत्पन्नो ह्यजितस्तुषितैः सह ॥३७॥ औत्तमेऽप्यन्तरे देवस्तुषितस्तु पुनस्स वै। सत्यायामभवत्सत्यः सत्यैस्सह सुरोत्तमैः ॥३८॥ तामसस्यान्तरे चैव सम्याप्ते पुनरेव हि। हर्यायां हरिमिस्सार्घं हरिरेव वसूव ह।।३९॥ रैवतेऽप्यन्तरे देवस्सम्भृत्यां मानसो हरिः। सम्भूतो रैवतैस्सार्घ देवैर्देववरो हरिः ॥४०॥ चाश्चुषे चान्तरे देवो वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः। विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैदेवतैः सह ॥४१॥ मन्वन्तरेऽत्र सम्प्राप्ते तथा वैवस्वते द्विज । वामनः कश्यपाद्विष्णुरदित्यां सम्बभूव ह ॥४२॥ त्रिभिः क्रमैरिमाँ छोकाञ्जित्वा येन महात्मना । पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहल्कण्टकम् ॥४३॥ इत्येतास्तनवस्तस्य सप्तमन्वन्तरेषु वै। सप्तखेवाभवन्वित्र याभिः संवर्द्धिताः त्रजाः ॥४४॥ यसाद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शंक्त्या महात्मनः । तसात्स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्घातोः प्रवेशनात्।।४५॥ सर्वे च देवा मनवस्समस्ता-स्सप्तर्पयो मनुस्नवश्र । इन्द्रश्च योऽयं त्रिद्शेशभूतो

मानसदेव श्रीअजित ही तुषित नामक देवगणोंके साथ तुपितासे उत्पन्न हुए ॥३०॥ फिर उत्तम-मन्वन्तरमें ने तुषितदेव हीं देवश्रेष्ठ सत्यगणके सहित सत्यरूपसे सत्याके उदरसे प्रकट हुए॥३८॥ तामस-मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर वे हरि-नाम देवगणके सहित हरिरूपसे हर्या-के गर्भसे उत्पन्न हुए ॥३९॥ तत्पश्चात् वे देवश्रेष्ट हरि, रैवत-मन्वन्तरमें तत्कालीन देवगणके सहित सम्भूति-के उदरसे प्रकट होकर मानस नामसे विख्यात हुए ॥ ४०॥ तथा चाक्षुष-मन्वन्तरमें वे पुरुषोत्तम भगवान् वैकुण्ठ नामक देवगणोंके सहित विकुण्ठासे उत्पन्न हो-कर वैकुण्ठ कहलाये ॥४१॥ और हे द्विज ! इस वैवस्वत-मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर भगवान् विष्णु कस्यपजी-द्वारा अदितिके गर्भसे वामनरूप होकर प्रकट हुए ॥४२॥ उन महात्मा वामनजीने अपनी तीन डगोंसे सम्पूर्ण छोकोंको जीतकर यह निष्कण्टक त्रिछोकी इन्द्रको दे दी थी ॥४३॥

हे विग्न ! इस प्रकार सातों मन्चन्तरोंमें भगवान्की ये सात मूर्तियाँ प्रकट हुई, जिनसे (भविष्यमें) सम्पूर्ण प्रजाकी दृद्धि हुई ॥ ४४ ॥ यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्माकी हो राक्तिसे व्याप्त है; अतः वे 'विष्णु' कहलाते हैं, क्योंकि 'विरा्' धातुका अर्थ प्रवेश करना है ॥४५॥ समस्त देवता, मनु, सप्तर्षि तथा मनुपुत्र और देवताओंके अधिपति इन्द्रगण—ये सत्र भगवान् विष्णुकी हो विभूतियाँ हैं ॥४६॥

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीयेंऽशे प्रथमोऽघ्यायः ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

नावर्णिमनुकी उत्पत्ति तथा आगामी सात मन्यन्तरोंके मनु, मनुपुत्र, देवता, इन्द्र और सप्तर्थियोंका वर्णन।

श्रीमैत्रेय उवाच

विष्णोरशेषास्तु विभृतयस्ताः ॥४६॥

श्रोक्तान्येतानि भवता सप्तमन्वन्तराणि वै। भविष्याण्यपि विश्रर्षे ममाख्यातुं त्वमईसि॥ १॥ श्रीमैत्रेयजी बोले-हे विप्रवें ! आपने यह सात अतीत मन्वन्तरोंकी कथा कही, अब आप मुझसे आगामी मन्वन्तरोंका भी वर्णन कीजिये ॥१॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

श्रीपराशर उवाच

स्र्यस्य पत्नी संज्ञाभूत्तनया विश्वकर्मणः। मनुर्यमो यमी चैव तद्पत्यानि वै मुने ॥ २ ॥ असहन्ती तु सा भर्तुस्तेजक्छायां युयोज वै। भर्त्तृश्चश्रूषणेऽरण्यं स्वयं च तपसे ययौ ॥ ३ ॥ संज्ञेयमित्यथार्कश्च छायायामात्मजत्रयम् । श्नेश्वरं मतुं चान्यं तपतीं चाप्यजीजनत् ॥ ४॥ छायासंज्ञा ददौ शापं यमाय कुपिता यदा । तदान्येयमसौ वुद्धिरित्यासीद्यमसूर्ययोः ॥ ५ ॥ ्ततो विवस्त्रानाख्याते तयैवारण्यसंस्थिताम् । समाधिदृष्ट्या दृहशे तामश्वां तपसि स्थिताम्।। ६।। वाजिरूपघरः सोऽथ तस्यां देवावथाश्विनौ । जनयामास रेवन्तं रेतसोऽन्ते च भास्करः॥ ७॥ आनिन्ये च पुनः संज्ञां खस्थानं भगवात्रविः । तेजसक्शमनं चास्य विश्वकर्मा चकार ह।। ८॥ अली अममारोप्य सर्यं तु तस्य तेजोनिशातनम्। ए देश कृतवानष्टमं भागं स व्यशातयद्व्ययम् ॥ ९ ॥ यत्तसाद्वेष्णवं तेजक्शातितं विश्वकर्मणा। जाज्वल्यमानमपतत्तऋमौ ग्रुनिसत्तम।।१०।। त्वष्टैव तेजसा तेन विष्णोश्रक्रमकल्पयत्। त्रिशूलं चैव शर्वस शिविकां धनदस्य च ॥११॥ शक्ति गृहस्य देवानामन्येषां च यदायुधम् । तत्सर्वं तेजसा तेन विश्वकर्मा व्यवर्धयत्।।१२।। छायासंज्ञासुतो योऽसौ द्वितीयः कथितो मनुः । पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सावर्णिस्तेन कथ्यते ॥१३॥ तस्य मन्वन्तरं ह्येतत्सावार्णिकमथाष्ट्रमम्। तच्छृणुष्व महाभाग भविष्यत्कथयामि ते ॥१४॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मुने ! विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा सूर्यकी भार्या थी। उससे उनके मनु, यम और यमी-तीन सन्तानें हुई ॥२॥ काळान्तरमें पतिका तेज सहन न कर सकनेके कारण संज्ञा छायाको पतिको सेवामें नियुक्त कर स्वयं तपस्याके लिये वन-को चली गयी ॥३॥ सूर्यदेवने यह समझकर कि यह संज्ञा ही है, छायासे रानैश्वर, एक और मनु तथा तपती-ये तीन सन्तानें उत्पन्न की ॥१॥

एक दिन जब छायारूपिणी संज्ञाने क्रोधित होकर [अपने पुत्रके पक्षपातसे] यमको शाप दिया तव सूर्य और यमको विदित हुआ कि यह तो कोई और है।।।।। तत्र छायाके द्वारा ही सारा रहस्य खुळ जानेपर सूर्यदेवने समाधिमें स्थित होकर देखा कि संज्ञा घोड़ी-का रूप धारण कर वनमें तपस्या कर रही है ॥६॥ अतः उन्होंने भी अस्वरूप होकर उससे दो अश्विनी-कुमार और रेतःस्रावके अनन्तर ही रेवन्तको उत्पन्न किया ॥७॥

फिर भगवान सूर्य संज्ञाको अपने स्थानपर ले आये तथा विश्वकर्मीने उनके तेजको शान्त कर दिया ॥८॥ उन्होंने सूर्यको भ्रमियन्त्र (सान) पर चढ़ाकर उनका तेज छाँटा, किन्तु वे उस अञ्चण तेजका केवल अष्टमांश ही क्षीण कर सके ॥ ९ ॥ हे मुनि-सत्तम ! सूर्यके जिसं जाज्वल्यमान वैष्णव-तेनको विस्वकर्माने छाँटा या वह पृथिवीपर गिरा ॥१०॥ उस प्रियोपर गिरे हुए सूर्य-तेजसे ही विश्वकर्माने विष्णु-भगवान्का चक्र, राङ्करका त्रिशूल, कुत्रेरका विमान, कार्तिकेयकी शक्ति बनायी तथा अन्य देवताओं के भी जो-जो शब्र थे उन्हें उससे पुष्ट किया ॥११-१२॥ जिस छायासंज्ञाके पुत्र दूसरे मनुका ऊपर वर्णन कर चुके हैं वह अपने अप्रज मनुका सवर्ण होनेसे सावर्णि कहलाया॥१३॥

हे महाभाग ! सुनो, अत्र मैं उनके इस सावर्णिकनाम आठवें मन्वन्तरका, जो आगे होनेवाला है, वर्णन करता हूँ ||१४|| हे मैत्रेय ! यह सावर्णि ही उस समय मनु होंगे सुतपाश्चामितामाश्च मुख्याश्चापि तथा सुराः ॥१५॥ तथा सुतप, अमिताम और मुख्यगण देवता होंगे ॥१५॥

सावर्णिस्तु मनुर्योऽसौ मैत्रेय भविता ततः।

तेषां गणश्च देवानामेकैको विशकः स्पृतः। सप्तर्शनिप वक्ष्यामि भविष्यान्मुनिसत्तम ॥१६॥ दीप्तिमान् गालवो रामः कृपो द्रौणिस्तथा परः । मत्पुत्रश्च तथा व्यास ऋष्यशृङ्गश्च सप्तमः॥१७॥ विष्णुप्रसादादनघः पातालान्तरगोचरः। विरोचनसुतस्तेषां बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥१८॥ निर्मोकाद्यास्तथापरे। विरजाश्चोर्वरीवांश्च सावर्णेस्तु मनोः पुत्रा मविष्यन्ति नरेश्वराः ॥१९॥ नवमो दक्षसावर्णिर्भविष्यति मुने मनुः ॥२०॥ पारा मरीचिगर्भाश्च सुधर्माणस्तथा त्रिधा। भविष्यन्ति तथा देवा ह्येकैको द्वादशो गणः ॥२१॥ तेषामिन्द्रो महावीर्यो भविष्यत्यद्भतो द्विज ॥२२॥ सवनो द्यतिमान् भन्यो वसुर्मेधातिथिस्तथा । ज्योतिष्मान् सप्तमः सत्यस्तत्रैते च महर्षयः ॥२३॥ पश्चहस्तनिरामयौ । धृतकेतुदीं सिकेतुः पृथुश्रवाद्याश्र तथा दक्षसावर्णिकात्मजाः ॥२४॥ दशमो ब्रह्मसावर्णिभीविष्यति सुने मनुः। सुधामानो विश्वद्धाश्र शतसंख्यास्तथा सुराः ॥२५॥ तेषामिन्द्रश्र भविता शान्तिनीम महाबलः। सप्तर्षयो भविष्यन्ति ये तथा ताञ्छ्रणुष्व ह ॥२६॥ हविष्मान्सुकृतस्सत्यस्तपोमृर्तिस्तथापरः । नामागोऽप्रतिमौजाश्च सत्यकेतुस्तथैव च ॥२७॥ सुक्षेत्रश्रोत्तमौजाश्र भृरिषेणादयो दश् । ब्रह्मसावर्णिपुत्रास्तु रक्षिष्यन्ति वसुन्धराम् ॥२८॥ एकादश्य मविता धर्मसावर्णिको मनुः॥२९॥ विद्दङ्गमाः कामगमा निर्वाणरतयस्तथा। गणास्त्वेते तदा मुख्या देवानां च भविष्यताम् । एकैकस्त्रिशकस्तेषां गणश्चेन्द्रश्च वै वृषः ॥३०॥ निःस्तरशामितेजाश्च त्युष्माज्ञ्चाम्यात्राम्भात्वीतः Collectiद्धास्त्रसम्प्राहोतेह्याले साम्राहियों हो साम

उन देवताओंका प्रत्येक गण वीस-वीसका समृह कहा जाता है। हे मुनिसत्तम! अब मैं आगे होनेवाले सप्तर्षि भी वतलाता हूँ ॥ १६॥ उस समय दीप्तिमान्, गालव, राम, कृप, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, मेरे पुत्र व्यास और सातवें ऋष्यशृङ्ग-ये सप्तर्षि होंगे ॥ १७॥ तथा पाताल-लोकवासी विरोचनके पुत्र विछ श्रीविष्णुभगवान्की कृपासे तत्कालीन इन्द्र और सावर्णिमनुके पुत्र विरजा, उर्वरीवान् एवं निर्मोक आदि तत्कालीन राजा होंगे ॥ १८-१९॥

हे मुने ! नवें मनु दक्षसावर्णि होंगे । उनके समय पार, मरीचिगर्भ और सुत्रमी नामक तीन देव-वर्ग होंगे, जिनमेंसे प्रत्येक वर्गमें बारह-बारह देवता होंगे; तथा हे द्विज ! उनका नायक महापराक्रमी अद्भुत नामक इन्द्र होगा ॥२०-२२॥ सवन, द्युतिमान्, भन्य, वसु, मेधातिथि, ज्योतिष्मान् और सातवें सत्य-ये उस समयके सप्तर्षि होंगे ॥ २३ ॥ तथा भृतकेतु, दीप्तिकेतु, पञ्चहस्त, निरामय और पृथुश्रवा आदि दक्ष-सावर्णिमनुके पुत्र होंगे॥ २४॥

हे मुने ! दशवें मन ब्रह्मसावर्णि होंगे। उनके समय सुधामा और विशुद्ध नामक सौ-सौ देवताओं के दो गण होंगे ॥ २५॥ महाबलवान् शान्ति उनका इन्द्र होगा तथा उस समय जो सप्तिषीगण होंगे उनके नाम सुनो-॥ २६॥ उनके नाम हविष्मान्, सुकृत, सत्य, तपोमूर्ति, नामाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेत हैं ॥ २७ ॥ उस समय ब्रह्मसावर्णिमन्के सुक्षेत्र, उत्तमौजा और भूरिषेण आदि दश पुत्र पृथिवी-की रक्षा करेंगे॥ २८॥

ग्यारहवाँ मन् धर्मसावर्णि होगा। उस समय होनेवाले देवताओंके विद्यंगम, कामगम और निर्वाणरित नामक मुख्य गण होंगे-इनमेंसे प्रत्येकमें तीस-तीस देवता रहेंगे और वृष नामक इन्द्र होगा ॥ २९-३०॥

हविष्मानन्वश्रेव भाव्याः सप्तर्पयस्तथा ॥३१॥
सर्वत्रगस्युधर्मा च देवानीकादयस्तथा ।
भविष्यन्ति मनोस्तस्य तनयाः पृथिवीश्वराः ॥३२॥
रुद्रपुत्रस्तु सावर्णिर्भविता द्वादशो मनुः ।
ऋतुधामा च तत्रेन्द्रो भविता शृणु मे सुरान् ॥३३॥
हरिता रोहिता देवास्तथा सुमनसो द्विज ।
सुकर्माणः सुरापाश्र दशकाः पश्च वै गणाः ॥३४॥
तपस्त्री सुतपाश्रेव तपोम् तिस्तपोरतिः ।
तपोष्टतिर्द्धितिश्चान्यः सप्तमस्तु तपोधनः ।
सप्तर्पयस्त्विमे तस्य पुत्रानि निवोध मे ॥३५॥
देववानुपदेवश्र देवश्रेष्ठादयस्तथा ।
मनोस्तस्य महावीर्या भविष्यन्ति महानृपाः ॥३६॥

त्रयोदशो रुचिनीमा भविष्यति मुने मनुः ॥३७॥ स्त्रामाणः सुकर्माणः सुधर्माणस्त्रथामराः । त्रयस्त्रिशृद्धिभेदास्ते देवानां यत्र वै गणाः ॥३८॥ दिवस्पतिर्महावीर्यस्तेपामिन्द्रो भविष्यति ॥३९॥ निर्मोहस्तत्त्वदर्शी च निष्प्रकम्प्यो निरुत्सुकः । धृतिमानव्ययश्रान्यस्सप्तमस्सुतपा सुनिः। सप्तर्षयस्त्वमी तस्य पुत्रानपि निबोध मे । ४०॥ चित्रसेनविचित्राद्या भविष्यन्ति महीक्षितः ॥४१॥ भौमश्रुतर्दश्रश्रात्र मैत्रेय भविता मनुः। ग्रुचिरिन्द्रः सुरगणास्तत्र पश्च भृणुष्य तान् ॥४२॥ चाक्षुषाश्च पवित्राश्च कनिष्ठा आजिकास्तथा। वाचावृद्धाश्च वे देवास्सप्तर्धीनिप मे श्रुणु ॥४३॥ अग्निवाहुः शुचिः शुक्रो मागधोऽग्निध्र एव च। युक्तस्तथा जितश्रान्यो मनुपुत्रानतः शृणु ॥४४॥ ऊरुगम्भीरबुद्धचाद्या मनोस्तस्य सुता नृपाः । कथिता मुनिशार्द्रल पालयिष्यन्ति ये महीम् ॥४५॥ चतुर्युगान्ते वेदानां जायते किल विप्रवः।

तेजा, वपुष्मान्, घृणि, आरुणि, हविष्मान् और अनघ हैं ॥ ३१ ॥ तथा धर्मसावर्णि मनुके सर्वत्रग, सुवर्मा, और देवानीक आदि पुत्र उस समयके राज्याधिकारी पृथिवीपति होंगे ॥ ३२ ॥

रुद्र पुत्र सावर्णि वारहवाँ मनु होगा । उसके समय ऋतुधामा नामक इन्द्र होगा तथा तत्काळीन देवताओं- के नाम ये हैं सुनो—॥ ३३ ॥ हे द्विज ! उस समय दश-दश-देवताओं के हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा और सुराप नामक पाँच गग होंगे ॥ ३४ ॥ तपस्वी, सुतपा, तपोम् तिं, तपोरित, तपोष्टित, तपोस्चित तथा तपोधन—ये सात सप्तर्षि होंगे । अव मनुपुत्रों के नाम सुनो—॥३५॥ उस समय उस मनुके देववान, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि महावीर्यशाळी पुत्र तत्काळीन सम्राट् होंगे ॥ ३६ ॥

हे मुने ! तेरहवाँ रुचि नामक मनु होगा । इस मन्वन्तरमें सुत्रामा, सुकर्मा और सुधर्मा नामक देवगण होंगे इनमेंसे प्रत्येकमें तैंतीस-तैंतीस देवता रहेंगे; तथा महावळवान् दिवस्पति उनका इन्द्र होगा ॥३७—३९॥ निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निष्प्रकम्प, निरुत्सुक, धृतिमान्, अव्ययं और सुतपा—ये तत्काळीन सप्तर्षि होंगे । अव मनुपुत्रोंके नाम भी सुनो ॥ ४०॥ उस मन्वन्तरमें चित्रसेन और विचित्र आदि मनुपुत्र राजा होंगे ॥४१॥

हे मैत्रेय ! चौदहवाँ मनु भौम होगा । उस समय शुचि नामक इन्द्र और पाँच देवगग होंगे; उनके नाम सुनो—वे चाक्षुष, पिवत्र, किनष्ट, भाजिक और वाचावृद्ध नामक देवता हैं । अब तत्काळीन सप्तर्पियोंके नाम भी सुनो ॥४२-४३॥ उस समय अग्निवाह, शुचि, शुक्र, मागध, अग्निध्र, युक्त और जित—ये सप्तर्षि होंगे । अब मनुपुत्रोंके विषयमें सुनो ॥ ४४ ॥ हे मुनिशार्द्छ ! कहते हैं, उस मनुके ऊरु और गम्भीरबुद्धि आदि पुत्र होंगे जो राज्याधिकारी होकर पृथिवीका पाळन करेंगे॥ ४५ ॥

ं प्रत्येक चतुर्युगके अन्तमें वेदोंका छोप हो जाता

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रवर्तयन्ति तानेत्य भ्रवं सप्तर्षयो दिवः ॥४६॥ कृते कृते स्मृतेविंत्र प्रणेता जायते मनुः। देवा यज्ञभ्रजस्ते तु यावन्मन्वन्तरं तु तत् ॥४७॥ मवन्ति ये मनोः पुत्रा यावन्मन्वन्तरं तु तैः । तदन्त्रयोद्भवैश्वेत ताबद्धः परिपाल्यते ॥४८॥ मजुस्सप्तर्वयो देवा भूपालाश्च मनोः सुताः । मन्वन्तरे भवन्त्येते शकश्चैवाधिकारिणः ॥४९॥ गतैर्मन्वन्तरैर्द्धिज । चतुर्दशभिरेतैस्त सहस्रयुगपर्यन्तः कल्पो निश्शेष उच्यते ॥५०॥ तावत्त्रमाणा च निशा ततो भवति सत्तम। ब्रह्मरूपधरक्रोते शेषाहावम्बुसम्प्रवे ॥५१॥ त्रैलोक्यमखिलं ग्रस्त्वा भगवानादिकृद्धिश्वः । खमायासंस्थितो वित्र सर्वभूतो जनार्दनः ॥५२॥ ततः प्रबद्धो भगवान् यथा पूर्व तथा पुनः । सृष्टिं करोत्यव्ययातमा कल्पे कल्पे रजोगुणः ॥५३॥ मनवो भुभुजस्तेन्द्रा देवास्तप्तर्थयस्तथा। सारित्रकोंऽशः स्थितिकरो जगतो द्विजसत्तम।।५४।। चतुर्धगेऽप्यसौ विष्णुः स्थितिच्यापारलक्षणः । युगव्यवस्थां कुरुते यथा मैत्रेय तच्छृणु।।५५॥ कृते युगे परं ज्ञानं किपलादिखरूपधृक्। ददाति सर्वभुतात्मा सर्वभुतहिते रतः ॥५६॥ चक्रवर्त्तिखरूपेण त्रेतायामपि स प्रभुः। दुष्टानां निग्रहं कुर्वन्परिपाति जगत्त्रयम् ॥५७॥ वेदमेकं चतुर्मेदं कृत्वा शाखाशतैविधः। करोति बहुरुं भूयो वेदच्यासस्त्ररूपधृक् ॥५८॥

है, उस समय सप्तर्षिगण ही खर्गछोकसे पृथिवीमें अवतीर्ण होकर उनका प्रचार करते हैं ॥ ४६ ॥ प्रत्येक सत्ययुगके आदिमें [मनुष्योंकी धर्म-मर्यादा स्थापित करनेके छिये] स्मृति-शास्त्रके रचयिता मनुका प्रादुर्माव होता है; और उस मन्वन्तरके अन्त-पर्यन्त तत्काछीन देवगण यज्ञ-भागोंको भोगते हैं ॥ ४७ ॥ तथा मनुके पुत्र और उनके वंशधर मन्वन्तरके अन्ततक पृथिवी-का पाळन करते रहते हैं ॥ ४८ ॥ इस प्रकार मनु सप्तर्षि, देवता, इन्द्र तथा मनु-पुत्र राजागण—ये प्रत्येक मन्वन्तरके अधिकारी होते हैं ॥ ४९ ॥

हे द्विज ! इन चौदह मन्यन्तरोंके वीत जानेपर एक सहस्त्र युग रहनेवाल कल्प समाप्त हुआ कहा जाता है ॥५०॥ हे साधुश्रेष्ठ ! फिर इतने ही समयकी रात्रि होती है । उस समय ब्रह्मरूपधारी श्रीविष्णुभगवान् प्रल्यकालीन जलके ऊपर रोष-राय्यापर रायन करते हैं ॥ ५१ ॥ हे विप्र ! तब आदिकर्ता सर्वव्यापक सर्वभूत भगवान् जनार्दन सम्पूर्ण त्रिलोकीका प्राप्त कर अपनी मायामें स्थित रहते हैं ॥ ५२ ॥ फिर [प्रल्य-रात्रिका अन्त होनेपर] प्रत्येक कल्पके आदिमें अव्ययात्मा मगवान् जाप्रत् होकर रजोगुणका आश्रय कर सृष्टिकी रचना करते हैं ॥ ५३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मनु, मनु-पुत्र राजागण, इन्द्र देवता तथा सप्तर्षि—ये सब जगत्का पालन करनेवाले भगवान्के सात्त्वक अंश हैं ॥ ५४ ॥

हे मैत्रेय ! स्थितिकारक भगवान् विष्णु चारों युगोंमें युगव्यवस्थां कुरुते यथा मैत्रेय तच्छ्रणु ॥५५॥ जिस प्रकार व्यवस्था करते हैं, सो सुनो—॥ ५५॥ समस्त प्राणियोंके कल्याणमें तत्पर वे सर्वभूतातमा सत्य-युगमें किपल आदिरूप धारणकर परम ज्ञानका उपदेश करते हैं ॥ ५६॥ त्रेतायुगमें वे सर्वसमर्थ प्रभु चक्रवर्ती स्वरूपेण त्रेतायामि स प्रभुः । दुष्टानां निप्रदं कुर्वन्परिपाति जगत्त्रयम् ॥५७॥ विदमेकं चतुर्भेदं कृत्वा शास्त्राश्यतिविधः । करोति वहुलं भूयो वेदच्यासस्करपधृक् ॥५८॥ वेदन्यासरूप धारणकर एक वेदके चार विमाग करते हैं और फिर सैकड़ों शास्त्रओंमें वाँटकर उसका बहुत विस्तार कर देते हैं ॥ ५८॥ इस प्रकार वेदांस्तु द्वापरं व्यस्य कुरुरन्ते अपनर्दिक्ताया त्यावार्यों वाँटकर अपने वेदांस्तु द्वापरं व्यस्य कुरुरन्ते अपनर्दिक्ताया त्यावार्यों वाँटकर अपने वेदांस्तु द्वापरं व्यस्य कुरुरन्ते अपनर्दिक्ताया त्यावार्यों वाँदकर अन्तमें वाँदकर वार वेदांस्तु द्वापरं व्यस्य कुरुरन्ते अपनर्दिक्ताया त्यावार्यों वाँदकर अन्तमें वाँदकर वार वेदांस्तु द्वापरं व्यस्य कुरुरन्ते अपनर्दिक्ताया त्यावार्यों वाँदकर वार वेदांस्तु द्वापरं व्यस्य कुरुरन्ते अपनर्दिक्ताया त्याव्यक्ताय करते हैं ॥ ५८॥ इस प्रकार व्यस्य द्वापरं व्यस्य कुरुरन्ते अपनर्दिक्ताया वार्यों का अन्तमें वार्यकर वार्यों का वार्यों वार्यों का वार्यों का वार्यों का वार्यों वार्यों का वार्यों का वार्यों का वार्यों वार्य

कल्किखरूपी दुर्वतान्मार्गे स्थापयति प्रभुः ॥५९॥ एवमेतज्जगत्सर्वं शश्वत्पाति करोति च। हन्ति चान्तेष्वनन्तात्मा नास्त्यसाद्व्यतिरेकि यत् भृतं भव्यं भविष्यं च सर्वभूतान्महात्मनः । तदत्रान्यत्र वा विप्र सद्भावः कथितस्तव ॥६१॥ मन्बन्तराण्यशेषाणि कथितानि मया तव। मन्वन्तराधिपांश्चेव किमन्यत्कथयामि ते ॥६२॥

भगवान् कल्किरूप धारणकर दुराचारी छोगोंको सन्मार्ग-में प्रवृत्त करते हैं ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार, अनन्तात्मा प्रभु निरन्तर इस सम्पूर्ण जगत्के उत्पत्ति, पालन और नाश करते रहते हैं । इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो उनसे मिल हो ॥ ६०॥ हे विप्र ! इह-छोक और परछोकमें भूत, भविष्यत् और वर्तमान जितने भी पदार्थ हैं वे सब महात्मा भगवान् विष्णुसे ही उत्पन्न हुए हैं-यह सब मैं तुमसे कह चुका हूँ ॥ ६१ ॥ मैंने तुमसे सम्पूर्ण मन्वन्तरों और मन्वन्तरा-धिकारियोंका वर्णन कर दिया । कहो, अब और क्या सुनाऊँ ? ॥ ६२ ॥

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीर्येऽशे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

चतुर्यु गानुसार मित्र-मित्र व्यासोंके नाम तथा ब्रह्म-ज्ञानके माहात्म्यका वर्णन।

श्रीमैत्रेय उवाच

ज्ञातमेतन्मया त्वत्तो यथा सर्वमिदं जगत । विष्णुर्विष्णौ विष्णुतश्च न परं विद्यते ततः ॥ १ ॥ एतत्तु श्रोतुमिच्छामि व्यस्ता वेदा महात्मना । वेदच्यासस्वरूपेण तथा तेन युगे युगे॥२॥ यसिन्यसिन्युगे व्यासो यो य आसीन्महायुने । तं तमाचक्ष्व भगवञ्छाखाभेदांश्व मे वद ॥ ३॥

श्रीपराशर उवाच

वेदद्रमस्य मैत्रेय शाखाभेदास्सहस्रशः। न शक्तो विस्तराद्वकुं सङ्गेपेण शृणुष्व तम् ॥ ४ ॥ द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महासुने। वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितः॥५॥ वीर्यं तेजो वलं चाल्पं मनुष्याणामवेश्य च।

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन्! आपके कथनसे मैं यह जान गया कि किस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है, विष्णुमें ही स्थित है, विष्णुसे ही उत्पन्न हुआ है तथा विष्णुसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ? || १ || अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि भगवान्ने वेदव्यासरूपसे युग-युगमें किस प्रकार वेदों-का विभाग किया || २ || हे महामुने ! हे भगवन् ! जिस-जिस युगमें जो-जो वेदव्यास हुए उनका तथा वेदोंके सम्पूर्ण शाखा-भेदोंका आप मुझसे वर्णन कीजिये॥३॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! वेदरूप वृक्षके सहसों शाखा-भेद हैं, उनका विस्तारसे वर्णन करनेमें तो कोई भी समर्थ नहीं है, अतः संक्षेपसे सुनो-॥ ४॥ हे महामुने ! प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् विष्णु व्यास-रूपसे अवतीर्ण होते हैं और संसारके कल्याणके छिये एक वेदके अनेक भेद कर देते हैं ॥ ५॥ मनुष्योंके वल, वीर्य और तेजको अल्प जानकर वे समस्त हिताय सर्वभूतानां वेद्भेदान्करोति सः ॥ ६ ॥ प्राणियोंके हितके छिये वेदोंका विभाग करते हैं ॥ ६ ॥ ययासौ कुरुते तन्वा वेदमेकं पृथक् प्रश्वः । वेदन्यासाभिधाना तु सा च मूर्तिर्मधुद्विषः ॥ ७॥

यसिन्मन्वन्तरे व्यासा ये ये स्युस्तानिबोध मे । यथा च भेदक्शाखानां व्यासेन क्रियते ग्रने।। ८।। अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदो व्यस्तो महर्पिभिः। वैवस्वतेऽन्तरे तसिन्द्रापरेषु पुनः पुनः ॥९॥ वेदव्यासा व्यतीता ये ह्यष्टाविंशति सत्तम । चतुर्घा यैः कृतो वेदो द्वापरेषु पुनः पुनः ॥१०॥ द्वापरे प्रथमे व्यत्तस्त्वयं वेदः स्वयम्भुवा । द्वितीये द्वापरे चैव वेदच्यासः प्रजापतिः ॥११॥ त्तीये चोशना व्यासश्रतुर्थे च बृहस्पतिः। सविता पश्चमे न्यासः षष्ठे मृत्युस्स्मृतः प्रभुः॥१२॥ सप्तमे च तथैंवेन्द्रो वसिष्ठश्राष्टमे स्मृतः। सारखतश्च नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः ॥१३॥ एकाद्शे तु त्रिशिखो भरद्वाजस्ततः परः। त्रयोदशे चान्तरिक्षो वर्णी चापि चतुर्दशे ॥१४॥ त्रय्यारुणः पश्चदशे पोडशे तु धनञ्जयः । ऋतुञ्जयः सप्तदशे तद्ध्वं च जयस्स्मृतः ॥१५॥ ततो व्यासो भरद्वाजो भरद्वाजाच गौतमः। गौतमादुत्तरो न्यासो हर्यात्मा योऽभिधीयते॥१६॥ अथ हर्यात्मनोऽन्ते च स्पृतो वाजश्रवा ग्रुनिः। सोमञ्जब्मायणस्तसाचृणविन्दुरिति स्मृतः ॥१७॥ ऋक्षोभुद्धार्गवस्तसाद्वाल्मीकियोंऽभिधीयते । तसादसत्पिता शक्तिर्र्यासस्तसादहं मुने ॥१८॥ जातुकर्णोऽभवन्मत्तः कृष्णद्वैपायनस्ततः। अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः ॥१९॥ एको वेदश्रतुर्घा तु तैः कृतो द्वापरादिषु ॥२०॥ भविष्ये द्वापरे चापि द्रौणिर्व्यासो भविष्यति । व्यतीते मम पुत्रेऽसिन् कृष्णद्वैपायने मुने ।।२१॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Colle

जिस शरीरके द्वारा वे प्रभु एक वेदके अनेक विभाग करते हैं भगवान् मधुसूदनकी उस मूर्तिका नाम वेद-व्यास है ॥ ७ ॥

हे मुने ! जिस-जिस मन्वन्तरमें जो-जो व्यास होते हैं और वे जिस-जिस प्रकार शाखाओंका विमाग करते हैं - वह मुझसे सुनो ॥ ८॥ इस वैवस्वत-मन्वन्तरके प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यास महर्षियोंने अवतक पुनः पुनः अट्टाईस बार वेदोंके विमाग किये हैं॥ ९॥ हे साधुश्रेष्ठ ! जिन्होंने पुनः-पुनः द्वापरयुगमें वेदोंके चार-चार विमाग किये हैं उन अट्टाईस ज्यासोंका विवरण सुनो—॥ १०॥ पहले द्वापरमें खयं भगवान् ब्रह्माजीने वेदोंका विभाग किया था । दूसरे द्वापरके वेदव्यास प्रजापति हुए ॥ ११॥ तीसरे द्वापरमें शुक्राचार्यजी और चौथेमें बृहरपतिजी न्यास हुए, तथा पाँचवेंमें सूर्य और छठेमें मगवान् मृत्यु व्यास कहलाये ॥ १२ ॥ सातवें द्वापरके वेदन्यास इन्द्र, आठवेंके वसिष्ठ, नवेंके सारखत और दशवेंके त्रिधामा कहे जाते हैं ॥ १३ ॥ ग्यारहवेंमें त्रिशिख, बारहवेंमें भरद्वाज, तेरहवेंमें अन्तरिक्ष और चौदहवेंमें वर्णी नामक व्यास हुए ॥ १४॥ पन्द्रहवेंमें त्रय्यारुण, सोलहवेंमें धनञ्जय, सत्रहवेंमें क्रतुञ्जय और तदनन्तर अठारहवेंमें जय नामक न्यास हुए ॥१५॥ फिर उनीसवें व्यास भरद्वाज हुए, भरद्वाजके पीछे गौतम हुए और गौतमके पीछे जो न्यास हुए वे हर्यात्मा कहे जाते . हैं॥ १६॥ हर्यात्माके अनन्तर वाजश्रवामुनि व्यास हुए तथा उनके पश्चात् सोमशुष्मवंशी तृणविन्दु (तेईसर्वें) वेदन्यास कह्छाये ॥ १७॥ उनके पीछे मृगुवंशी ऋक्ष न्यास हुए जी कहलाये, तदनन्तर हमारे पिता शक्ति हुए और फिर मैं हुआ ॥ १८॥ मेरे अनन्तर जातुकर्ण व्यास हुए और फिर कृष्णद्वैपायन—इस प्रकार ये अट्टाईस व्यास प्राचीन हैं। इन्होंने द्वापरादि युगोंमें एक ही वेदके चार-चार विमाग किये हैं ॥ १९-२०॥ हे मुने ! मेरे पुत्र कृष्णद्दैपायनके अनन्तर आगामी द्वापरयुगमें द्रोप-पुत्रः अस्कायामाः नेव्व्यासः होंगे ॥ २१॥

ध्रुवमेकाक्षरं ब्रह्म ओमित्येव व्यवस्थितम् । बृहत्वाद्बृंहणत्वाच तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥२२॥ प्रणवावस्थितं नित्यं भूर्भ्ववस्खरितीर्यते । ऋग्यज्ञस्सामाथर्वाणो यत्तसै ब्रह्मणे नमः ॥२३॥ जगतः प्रलयोत्पत्त्योर्यत्तत्कारणसंज्ञितम् । महतः परमं गुद्धं तस्मै सुत्रक्षणे नमः ॥२४॥ अगाधापारमक्षय्यं जगत्सम्मोहनालयम् । स्त्रप्रकाशप्रवृत्तिस्यां पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥२५॥ सांख्यज्ञानवतां निष्ठा गतिक्शमद्मात्मनाम् । प्रवृत्तिव्रक्ष शाश्वतम् ॥२६॥ यत्तद्व्यक्तममृतं प्रधानमात्मयोनिश्च गुहासंस्थं च शब्द्यते । अविभागं तथा शुक्रमक्ष्यं बहुधात्मकम् ॥२७॥ परमब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमो नमः । यद्रपं वासदेवस्य परमात्मखरूपिणः ॥२८॥ एतद्वस त्रिधा भेदमभेदमपि स प्रभुः। सर्वभेदेष्वभेदोऽसौ भिद्यते भिन्नबुद्धिभिः ॥२९॥ स ऋद्ययस्साममयः सर्वात्मा स यज्जर्मयः । ऋग्यज्ञस्सामसारात्मा स एवात्मा शरीरिणाम् ३० स भिद्यते वेदमयस्खवेदं करोति भेदैर्बहुभिस्सशाखम्। शाखाप्रणेता स समस्तशाखा-

उँ यह अविनाशी एकाक्षर ही ब्रह्म है। यह बृहत् और व्यापक है इसिछये 'ब्रह्म' कहलाता है ॥२२॥ भूलोंक, भुवलोंक और खर्लोक-ये तीनों प्रणवरूप ब्रह्ममें ही स्थित हैं तथा प्रणव ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्वरूप है; अतः उस ओंकाररूप ब्रह्मको नमस्कार है ॥ २३ ॥ जो संसारके उत्पत्ति और प्रलयका कारण कहलाता है तथा महत्तत्त्वसे भी परम गुग्र (सूक्ष्म) है उस ओंकाररूप ब्रह्मको नमस्कार है ॥ २४ ॥ जो अगाध, अपार और अक्षय है, संसारको मोहित करनेवाछे तमोगुणका आश्रय है, तथा प्रकाशमय सत्त्वगुण और प्रवृत्तिरूप रजोगुणके द्वारा पुरुषोंके भोग और मोक्षरूप परमपुरुषार्थका हेतु है ॥ २५॥ जो सांख्यज्ञानियोंकी परमनिष्ठा है, शम-दमशालियों-का गन्तव्य स्थान है, जो अव्यक्त और अविनाशी है तथा जो सिक्रय ब्रह्म होकर भी सदा रहने-वाला है ॥ २६ ॥ जो खयम्भू , प्रधान और अन्तर्यामी कहलाता है तथा जो अविभाग, दीप्तिमान्, अक्षय और अनेक रूप है ॥ २७॥ और जो प्रमात्मखरूप मगवान् वासुदेवका ही रूप (प्रतीक) है, उस ओंकाररूप परब्रह्मको सर्वदा बारम्बार नमस्कार है ।। २८ ।। यह ओंकाररूप ब्रह्म अभिन होकर भी [अकार, उकार और मकाररूपसे] तीन भेदोंबाला है। यह समस्त भेदोंमें अभिन्नरूपसे स्थित तथापि मेदबुद्धिसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है ॥ २९ ॥ वह सर्वात्मा ऋङ्मय, साममय और यजुर्मय है तथा ऋग्यजुःसामका साररूप वह ओंकार ही सब शरीरधारियोंका आत्मा है।। ३०।। वह वेदमय है, वही ऋग्वेदादिरूपसे मिन्न हो जाता है और वही अपने वेदरूपको नाना शाखाओंमें विमक्त करता है तथा वह असंग भगवान् ही समस्त शाखाओं-ज्ञानखरूपो भगवानसङ्गः ॥३१॥ का रचियता और उनका ज्ञानखरूप है ॥ ३१॥

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीयेंऽशे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

ऋग्वेदकी शाखाओंका विस्तार।

श्रीपराशर उवाच

आद्यो वेदश्रतुष्पादः शतसाहस्रसम्मितः। ततो दश्युणः कृत्स्नो यज्ञोऽयं सर्वकामधुक्।। १।। ततोऽत्र मत्स्रतो व्यासो अष्टाविंशतिमेऽन्तरे। वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्घा व्यमजत्प्रभुः ॥ २ ॥ यथा च तेन वै व्यस्ता वेदव्यासेन धीमता। वेदास्तथा समस्तैस्तैर्ज्यस्ता ज्यस्तैस्तथा मया ॥३॥ तदनेनैव वेदानां शाखाभेदान्द्विजोत्तम । चतुर्यगेषु पठितान्समस्तेष्ववधारय ॥ ४ ॥ कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रश्चम् । को झन्यो अवि मैत्रेय महाभारतकुद्भवेत्।। ५।। तेन व्यस्ता यथा वेदा मत्पुत्रेण महात्मना । द्वापरे सत्र मैत्रेय तसिञ्छुणु यथातथम्।। ६।। ब्रह्मणा चोदितो व्यासो वेदान्व्यस्तुं प्रचक्रमे । अथ शिष्यान्त्रजग्राह चतुरो वेदपारगान् ॥ ७॥ ऋग्वेदपाठकं पैलं जप्राह स महाम्रुनिः। वैश्वम्पायननामानं यज्जर्वेदस्य चाप्रहीत्।।८॥ जैमिनिं सामवेदस्य तथैवाथर्ववेदवित्। सुमन्तुस्तस्य शिष्योऽभृद्देदव्यासस्य घीमतः॥९॥ रोमहर्षणनामानं महाबुद्धिं महाम्रुनिः। स्तं जप्राह शिष्यं स इतिहासपुराणयोः ॥१०॥ एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्घा व्यकल्पयत्। चातुईत्रिमभूत्तासंस्तेन यज्ञमथाकरोत्।।११॥ आष्वर्यवं यजुर्मिस्तु ऋग्मिहीत्रं तथा मुनिः। औद्गात्रं सामभिश्रके ज्ञानकं चाष्यथर्विभिक्षा १९५१। अधेविवेदसे प्रदेशके कर्मकी स्थापना की ॥ १२॥

श्रीपराशरजी बोले-सृष्टिके आदिमें इस्वरसे आविर्भूत वेद ऋक-यजुः आदि चार पादोंसे युक्त और एक लक्ष मन्त्रवाला था । उसीसे समस्त कामनाओंको देनेवाले अग्निहोत्रादि दंश प्रकारके यज्ञोंका प्रचार हुआ ॥ १ ॥ तदनन्तर अट्टाईसवें द्वापरयुगमें मेरे पुत्र कृष्णद्वैपायनने इस चतुष्पादयुक्त एक ही वेदके चार भाग किये ॥ २ ॥ परम बुद्धिमान् वेदव्यासने उनका जिस प्रकार विभाग किया है, ठीक उसी प्रकार अन्यान्य वेदव्यासोंने तथा मैंने भी पहले किया था ॥३॥ अतः हे द्विज ! समस्त चतुर्युगोंमें इन्हीं शाखामेदों-से वेदका पाठ होता है-ऐसा जानो ॥ ४॥ भगवान् कृष्णद्वैपायनको तुम साक्षात् नारायण ही समझो, क्योंकि हे मैत्रेय ! संसारमें नारायणके अतिरिक्त और कौन महाभारतका रचयिता हो सकता है ! ॥ ५॥

हे मैत्रेय ! द्वापरयुगमें मेरे पुत्र महात्मा कृष्ण-द्वैपायनने जिस प्रकार वेदोंका विभाग किया था वह यथावत् सुनो ॥ ६ ॥ जब ब्रह्माजीकी प्रेरणासे व्यास-जीने वेदोंका विभाग करनेका उपक्रम किया, तो उन्होंने वेदका अन्ततक अध्ययन करनेमें समर्थ चार ऋषियों-को शिष्य बनाया ॥ ७॥ उनमेंसे उन महामुनिने पैलको ऋग्वेद, वैशम्पायनको यजुर्वेद और जैमिनिको सामवेद पढ़ाया तथा उन मतिमान् व्यासजीका सुमन्तु नामक शिष्य अथर्ववेदका ज्ञाता हुआ ॥ ८-९ ॥ इनके सिवा स्तजातीय महाबुद्धिमान् रोमहर्षणको महामुनि व्यासजीने अपने इतिहास और पुराणके विद्यार्थीरूपसे प्रहण किया ॥ १०॥

पूर्वकालमें यजुर्वेद एक ही था। उसके उन्होंने चार विभाग किये, अतः उसमें चातुर्होत्रकी प्रवृत्ति हुई और इस चातुर्होत्र-विधिसे ही उन्होंने यज्ञा-नुष्टानकी व्यवस्था की ॥ ११ ॥ व्यासजीने यजुः से अष्वर्युके, ऋक्से होताके, सामसे उद्गाताके तथा

ततस्स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान्मुनिः। यजूंषि च यजुर्वेदं सामवेदं च सामभिः ॥१३॥ राज्ञां चाथर्ववेदेन सर्वकर्माणि च प्रभः। कारयामास मैत्रेय ब्रह्मत्वं च यथास्थिति ॥१४॥ सोऽयमेको यथा वेदस्तरुस्तेन पृथक्कृतः । चतुर्घाथ ततो जातं वेदपादपकाननम् ॥१५॥ विभेद प्रथमं विप्र पैलो ऋग्वेदपादपम्। इन्द्रप्रमित्रये प्रादाद्वाष्क्रलाय च संहिते ॥१६॥ चतुर्धा स विभेदाथ वाष्कलोऽपि च संहिताम्। बोध्यादिभ्यो ददौ ताश्च शिष्येभ्यस्स महाम्रुनिः१७ बोध्याग्रिमाढको तद्वद्याज्ञवल्क्यपराशरौ । प्रतिशाखास्तु शाखायास्तस्यास्ते जगृहुर्धुने ॥१८॥ इन्द्रप्रमितिरेकां तु संहितां खसुतं ततः। माण्डुकेयं महात्मानं मैत्रेयाध्यापयत्तदा । १९॥ तस्य शिष्यप्रशिष्येभ्यः पुत्रशिष्यक्रमाद्ययौ ॥२०॥ वेदमित्रस्तु शाकल्यः संहितां तामधीतवान्। चकार संहिताः पञ्च शिष्येभ्यः प्रददौ च ताः ।२१। तस्य शिष्यास्तु ये पश्च तेषां नामानि मे शृणु । मुद्रलो गोमुखश्रैव वात्स्यक्शालीय एव च। शरीरः पञ्चमश्रासीन्मैत्रेय सुमहामूतिः ॥२२॥ द्यान्के सुन्ति रथीतरः संहितात्रितयं चके शाकपुणस्तथेतरः। म्रुनिसत्तम ॥२३॥ निरुक्तमकरोत्तद्रचतुर्थं क्रौश्चो वैतालिकस्तद्रद्रलाकश्च महाम्रुनिः। ॥२४॥ निरुक्तकृचतुर्थोऽभृद्वेदवेदाङ्गपारगः इत्येताः प्रतिशाखाभ्यो ह्यनुशाखा द्विजोत्तम । बाष्कलश्रापरास्तिस्रस्संहिताः कृतवान्द्रिज। शिष्यः कालायनिर्गार्ग्यस्तृतीयश्च कथाजवः॥२५॥ इत्येते वह्वचाः प्रोक्ताः संहिता यैः प्रवर्तिताः।२६। संहिताओंकी रचना की वे बह्वच कहळाये ॥२५-२६॥

तदनन्तर उन्होंने ऋम् तथा यजुःश्रुतियोंका उद्घार करके ऋग्वेद एवं यजुर्वेदकी और सामश्रुतियोंसे सामवेदकी रचना की ॥ १३॥ हे मैत्रेय ! अथर्ववेदके द्वारा भगवान् व्यासजीने सम्पूर्ण राज-कर्म और ब्रह्मत्वकी यथावत् व्यवस्था की ॥१४॥ इस प्रकार व्यासजीने वेद-रूप एक वृक्षके चार विभाग कर दिये फिर विभक्त हुए उन चारोंसे वेदरूपी वृक्षोंका वन उत्पन्न हुआ ॥ १५॥

हे विप्र ! पहले पैलने ऋग्वेदरूप वृक्षके दो विभाग किये और उन दोनों शाखाओंको अपने शिष्य इन्द्रप्रमिति और वाष्कलको पढाया ॥१६॥ फिर वाष्कलने भी अपनी शाखाके चार भाग किये और उन्हें बोध्य आदि अपने शिष्योंको दिया ॥१७॥ हे मुने ! वाष्क्रळको शाखाकी उन चारों प्रतिशाखाओंको उनके शिष्य बोध्य, आग्निमाढक, याज्ञवल्क्य और पराशरने प्रहण किया ॥१८॥ हे मैत्रेयजी ! इन्द्रप्रमितिने अपनी प्रतिशाखाको अपने पुत्र महात्मा माण्डुकेयको पढ़ाया ॥१९॥ इस प्रकार शिष्य-प्रशिष्य-क्रमसे उस शाखाका उनके पुत्र और शिष्योंमें प्रचार हुआ । इस शिष्य-परम्परासे ही शाकल्य वेदिमत्रने उस संहिताको पढ़ा और उस-को पाँच अनुशाखाओंमें विमक्त कर अपने पाँच शिष्योंको पढ़ाया ॥२०-२१॥ उसके जो पाँच शिष्य थे उनके नाम सुनो । हे मैत्रेय ! वे मुद्रल, गोमुख, वाल्य और शालीय तथा पाँचवें महामति शरीर थे ॥२२॥ हे मुनिसत्तम ! उनके एक दूसरे शिष्य शाकपूर्णने तीन वेदसंहिताओंकी तथा चौथे निरुक्त-प्रनथकी रचना की ॥२३॥ उन संहिताओंका अध्ययन करनेवाले उनके शिष्यी महामुनि क्रौञ्च, वैतालिक और वलाक ये तथा [निरुक्त-का अध्ययन करनेवाले] एक चौथे शिष्य वेद-वेदाङ्गके पारगामी निरुक्तकार हुए ॥ २४ ॥ इस प्रकार वेदरूप वृक्षकी प्रतिशाखाओंसे अनुशाखाओंकी उत्पत्ति हुई। हे द्विजोत्तम ! बाष्कलने और भी तीन संहिताओंकी रचना की। उनके [उन संहिताओंको पढ़नेवाले] शिष्य कालायनि, गार्ग्य तथा कथाजव थे। इस प्रकार जिन्होंने

पाँचवाँ अध्याय

शुक्रयजुर्वेद तथा तैत्तिरीय यजुःशाखाओंका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

यज्ञर्वेदतरोक्शाखास्सप्तविंशन्महाम्रुनिः । वैश्चम्पायननामासौ व्यासशिष्यश्रकार वै ॥ १ ॥ शिष्येम्यः प्रददौं ताश्र जगृहुस्तेऽप्यनुक्रमात्।।२।। याज्ञवल्क्यस्तु तत्राभृद्रह्मरातसुतो द्विज। परमधर्मज्ञो गुरुष्टचिपरस्सदा ॥ ३ ॥ शिष्यः ऋषिर्योऽद्य महामेरोः समाजे नागमिष्यति । तस्य वै सप्तरात्राचु ब्रह्महत्या भविष्यति ॥ ४ ॥ पूर्वमेवं मुनिगणैस्समयो यः कृतो द्विज। वैशम्पायन एकस्तु तं व्यतिक्रान्तवांस्तदा ॥ ५ ॥ स्वसीयं वालकं सोऽथ पदा स्पृष्टमघातयत् ॥ ६॥ शिष्यानाह स भो:शिष्या ब्रह्महत्यापहं ब्रतम् । चरध्वं मत्कृते सर्वे न विचार्यमिदं तथा॥ ७॥ अथाह याज्ञवल्क्यस्तु किमेभिर्मगवन्द्रिजैः। क्केशितैरल्पतेजोमिश्वरिष्येऽहमिदं व्रतम् ॥ ८॥ ततः क्रुद्धो गुरुः प्राह याज्ञवल्क्यं महामुनिम्। म्रुच्यतां यत्त्वयाधीतं मत्तो वित्रावमानक।। ९।। निस्तेजसो वदस्येनान्यत्त्वं ब्राह्मणपुङ्गवान् । तेन शिष्येण नार्थोऽस्ति ममाज्ञाभङ्गकारिणा ॥१०॥ याज्ञवल्क्यस्ततः प्राह भक्त्यैतत्ते मयोदितम् । ममाप्यलं त्वयाधीतं यन्मया तदिदं द्विज ।।११॥

श्रीपराशर जवाच इत्युक्तो रुघिराक्तानि सरूपाणि यर्जूषि सः ।

श्रीपराशरजी बोले - हे महामुने ! व्यासजीके शिष्य वैशम्पायनने यजुर्वेदरूपी वृक्षकी सत्ताईस शाखाओंकी रचना की; और उन्हें अपने शिष्योंको पढ़ाया तथा शिष्योंने भी उन्हें क्रमशः प्रहण किया ॥१-२॥ हे द्विज ! उनका एक परम धार्मिक और सदैव गुरुसेवामें तत्पर रहनेवाला शिष्य ब्रह्मरातका पुत्र याज्ञवल्क्य था ॥३॥ [एक समय समस्त ऋषिगणने मिलकर यह नियम किया कि] जो कोई महामेरुपर स्थित हमारे इस समाजमें सम्मिलित न होगा उसको सात रात्रियोंके भीतर ही ब्रह्महत्या ल्गेगी ॥४॥ हे द्विज ! इस प्रकार मुनियोंने पहले जिस समयको नियत किया था उसका केवल एक वैशम्पायनने ही अतिक्रमण कर दिया ॥५॥ इसके पश्चात्ं उन्होंने [प्रमादवश] पैरसे छूए हुए अपने भानजेकी हत्या कर डाली; तव उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा—'हे शिष्यगण ! तुम सव छोग किसी प्रकारका विचार न करके मेरे लिये ब्रह्म-हत्याको दूर करनेवाला व्रत करो' ॥६-०॥

तब याज्ञवल्क्य बोळे—"भगवन्! ये सव ब्राह्मण अत्यन्त निस्तेज हैं, इन्हें कष्ट देनेकी क्या आवश्यकता है? मैं अकेळा ही इस ब्रतका अनुष्ठान करूँगा"॥ ८॥ इससे गुरु वैशम्पायनजीने क्रोधित होकर महामुनि याज्ञवल्क्यसे कहा—"अरे ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाले! तूने मुझसे जो कुछ पढ़ा है, वह सब त्यांग दे॥ ९॥ त् इन समस्त द्विजश्रेष्ठोंको निस्तेज बताता है, मुझे तुंझ-जैसे आज्ञा-भङ्ग-कारी शिष्यसे कोई प्रयोजन नहीं है"॥१०॥ याज्ञवल्क्यने कहा, "हे द्विज! मैंने तो भक्तिवश आपसे ऐसा कहा था, मुझे भी आपसे कोई प्रयोजन नहीं है; लीजिये, मैंने आपसे जो कुछ पढ़ा है वह यह मौजूद है"॥ ११॥

सरूपाणि यज्रंपि सः । वल्यजीने रुधिरसे अग्रा Ga हुआ मूर्तिमान् यजुर्वेद

छर्दियित्वा दंदौ तस्मै ययौ स स्वेच्छया मुनिः।।१२।। यजूंष्यथ विसृष्टानि याज्ञवल्क्येन वै द्विज। जगृहुस्तिचिरा भृत्वा तैत्तिरीयास्तु ते ततः ॥१३॥ ब्रह्महत्याव्रतं चीर्णं गुरुणा चोदितैस्तु यैः। चरकाध्वर्यवस्ते तु चरणान्मुनिसत्तम ॥१४॥ याज्ञवल्क्योऽपि मैत्रेय प्राणायामपरायणः। तुष्टाव प्रयतस्मूर्यं यज्रंष्यभिलयंस्ततः ॥१५॥

याज्ञवल्क्य उवाच

द्वाराय मुक्तेरिमततेजसे । नसस्मित्रित्रे ऋग्यज्ञस्सामभूताय त्रयीधाम्ने च ते नमः ॥१६॥ नमोऽप्रीपोमभूताय जगतः कारणात्मने। भास्कराय परं तेजस्सौषुम्नरुचिविश्रते ॥१७॥ कलाकाष्टानिमेषादिकालज्ञानात्मरूपिणे विष्णुरूपाय परमाक्षररूपिणे ॥१८॥ ध्येयाय विमर्ति यस्सुरगणानाप्यायन्दुं स्वरिक्मिभः। स्वधामृतेन च पितृंस्तसै तृप्त्यात्मने नमः ॥१९॥ हिमाम्बुधर्मवृष्टीनां कर्ता भर्ता चयः प्रशुः। तस्मै त्रिकालरूपाय नमस्द्वर्याय वेधसे ॥२०॥ अपहन्ति तमो यश्च जगतोऽस्य जगत्पतिः। सत्त्वधामधरो देवो नमस्तस्मै विवस्वते ॥२१॥ सत्कर्मयोग्यो न जनो नैवापः शुद्धिकारणम्। यसिन्नतुदिते तसै नमो देवाय भास्रते।।२२।। स्पृष्टो यदंशुभिलोंकः क्रियायोग्यो हि जायते। पवित्रताकारणाय तस्मै शुद्धात्मने नमः॥२३॥ नमः सवित्रे सूर्याय भास्कराय विवस्तते । आदित्यायादिभूताय देवादीनां नमो नमः ॥२४॥ आदिभूत आदित्यदेवको वारम्वार नमस्कार है॥२४॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

वमन करके उन्हें दे दिया; और स्वेच्छानुसार चले गये ॥१२॥ हे द्विज ! याज्ञवल्क्यद्वारा वमन की हुई उन यजुः-श्रुतियोंको अन्य शिष्योंने तित्तिर (तीतर) होकर प्रहण कर लिया, इसलिये वे सब तैतिरीय कहलाये॥१ ३॥ हे मुनिसत्तम! जिन विप्रगणने गुरुकी प्रेरणासे ब्रह्महत्या-विनाशक ब्रतका अनुष्ठान किया था, वे सब व्रताचरणके कारण यजुःशाखाध्यायी चरकाध्वर्यु हुए ॥१४॥ तदनन्तर, याज्ञवल्क्यने भी यजुर्वेदकी प्राप्तिकी इच्छासे प्राणोंका संयम कर संयतचित्तसे सूर्यभगवान्को स्तुति की ॥१५॥

याज्ञवल्क्यजी बोले-अतुलित तेजसी, मुक्तिके द्वारखरूप तथा वेदत्रयरूप तेजसे सम्पन एवं ऋक्, यजुः तथा सामखरूप सवितादेवको नमस्कार है ॥ १६॥ जो अग्नि और चन्द्रमारूप, जगत्के कारण और सुषुम्न नामक परमतेजको धारण करनेवाछे हैं, उन भगवान् भास्करको नमस्कार है ॥ १७॥ कला, काष्टा, निमेष आदि कालज्ञानके कारण तथा घ्यान करनेयोग्य परब्रह्मस्ररूप विष्णुमय श्रीसूर्यदेवको नमस्कार है ॥ १८ ॥ जो अपनी किरणोंसे चन्द्रमाको पोषित करते हुए देवताओंको तथा खधारूप अमृतसे पितृगणको तृप्त करते हैं, उन तृप्तिरूप सूर्यदेवको नमस्कार है ॥ १९॥ जो हिम, जल और उष्णताके कर्ता [अर्थात् शीत, वर्षा और ग्रीष्म आदि ऋतुओंके कारण] हैं और [जगत्का] पोपण करनेवाछे हैं, उन त्रिकालमूर्ति विधाता भगवान् सूर्यको नमस्कार है ॥ २०॥ जो जगत्पति इस सम्पूर्ण जगत्के अन्वकारको दूर करते हैं, उन सत्त्वम्र्तिघारी-विवसान्को नमस्कार है ॥ २१ ॥ जिनके उदित हुए विना मनुष्य सत्कर्ममें प्रवृत्त नहीं हो सकते और जल शुद्धिका कारण नहीं हो सकता, उन भाखान्देवको नमस्कार है ॥ २२ ॥ जिनके किरण-समृहका स्पर्श होनेपर लोक कर्मानुष्ठानके योग्य होता है, उन पवित्रताके कारण, शुद्धखरूप सूर्यदेवको नमस्कार है ॥ २३ ॥ भगवान् सविता, सूर्य, भास्कर और विवलान्को नमस्कार है; देवता आदि समस्त भूतोंके

हिरण्मयं रथं यस्य केतवोऽमृतवाजिनः। वहन्ति अवनालोकिचक्षुपं तं नमाम्यहम् ॥२५॥

श्रीपराशर उवाच इत्येवमादिभिस्तेन स्तूयमानस्स वै रविः। वाजिरूपधरः प्राह त्रियतामिति वाञ्छितम्।।२६।। याज्ञवल्क्यस्तदा प्राह प्रणिपत्य दिवाकरम्। यजूंपि तानि मे देहि यानि सन्ति न मे गुरौ ॥२७॥ एवमुक्तो ददौ तस्मै यजुंषि भगवात्रविः। अयातयामसंज्ञानि यानि वेत्ति न तद्गुरुः ॥२८॥ यजूंपि यैरंधीतानि तानि विश्रिद्धिंजोत्तम । वाजिनस्ते समाख्याताः सूर्योऽप्यश्वोऽभवद्यतः २९ शालाभेदास्तु तेषां वै दश पश्च च वाजिनाम्। काण्वाद्यास्सुमहाभाग याज्ञवल्क्याः प्रकीर्तिताः ३० जाती हैं ॥ ३०॥

जिनका तेजोमय रथ है, [प्रज्ञारूप] ध्वजाएँ हैं, जिन्हें [छन्दोमय] अमर अरवगण वहन करते हैं तथा जो त्रिमुबनको प्रकाशित करनेवाले नेत्ररूप हैं, उन सर्यदेवको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥

श्रीपराशरजी बोले-उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्य अश्वरूपसे प्रकट होकर वोछे-'तुम अपना अभीष्ट वर माँगो' || २६ || तव याज्ञ-वल्क्यजीने उन्हें प्रणाम करके कहा-"आप मुझे उन यजुःश्रुतियोंका उपदेश कीजिये जिन्हें मेरे गुरुजी भी न जानते हों"॥२७॥ उनके ऐसा कहनेपर भगवान् सूर्यने उन्हें अयातयाम नामक यजुःश्रुतियोंका उपदेश दिया जिन्हें उनके गुरु वैशम्पायनजी भी नहीं जानते थे ॥ २८ ॥ हे द्विजोत्तम ! उन श्रुतियोंको जिन ब्राह्मणोंने पढ़ा था वे वाजी-नामसे विख्यात हुए क्योंकि उनका उपदेश करते समय सूर्य भी अश्वरूप हो गये थे॥ २९॥ हे महाभाग ! उन वाजि-श्रुतियोंकी काण्य आदि पन्द्रह शाखाएँ हैं; वे सर्व शाखाएँ महर्षि याज्ञवल्क्यकी प्रवृत्त की हुई कही

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीर्येऽशे पश्चमोऽध्यायः॥५॥

बठा अध्याय

सामवेदकी शाखा, अठारह पुराण और चौदह विद्याओंके विभागका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच सामवेदतरोक्शाखा व्यासशिष्यस्स जैमिनिः। क्रमेण येन मैत्रेय विभेद शृणु तन्मम ॥ १ ॥ सुमन्तुत्तस पुत्रोऽभृत्सुकर्मासाप्यभृत्सुतः। अधीतवन्तौ चैकैकां संहितां तौ महामती।। २।। सहस्रसंहितामेदं सुकर्मा तत्स्रतस्ततः। चकार तं च तच्छिष्यौ जगृहाते महाव्रतौ ॥ ३ ॥ हिरण्यनाभः कौसल्यः पौष्पिञ्जिश्र द्विजोत्तम।

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! जिस क्रमसे व्यासजीके शिष्य जैमिनिने सामवेदकी शाखाओंका विभाग किया था, वह मुझसे सुनो ॥१॥ जैमिनिका पुत्र सुमन्तु था और उसका पुत्र सुकर्मा हुआ । उन दोनों महामित पुत्र-पौत्रोंने सामवेदकी एक-एक शाखाका अध्ययन किया ॥२॥ तदनन्तर सुमन्तुके पुत्र सुकर्मा-ने अपनी सामवेदसंहिताके एक सहस्र शाखामेद किये और हे द्विजोत्तम ! उन्हें उसके कौसल्य, हिरण्यनाम तथा पौष्पिञ्जि नामक दो महात्रती शिष्योंने प्रहण किया । हिरण्यनाभके पाँच सौ उदीच्यास्सामगाः शिष्यास्तस्य पञ्चात्तं स्मृताः । श्रीलिहाष्यः स्थे क्षेत्रोठः उदीच्यः सामागणकहलाये ॥ ३-४॥

हिरण्यनाभात्तावत्यस्संहिता यैद्विजोत्तमैः। गृहीतास्तेऽपि चोच्यन्ते पण्डितैः प्राच्यसामगाः।५। लोकाक्षिनींधिमश्रेव कक्षीवाँ छाङ्गलिस्तथा। पौष्पिञ्जिशिष्यास्तक्रेदैस्संहिता बहुलीकृताः ॥६॥ हिरण्यनाभिश्वष्यस्तु चतुर्विश्वतिसंहिताः। प्रोवाच कृतिनामासौ शिष्येभ्यश्च महामुनिः ॥ ७ ॥ तैश्रापि सामवेदोऽसौ शाखाभिर्वहुलीकृतः। अथर्वणामथो वक्ष्ये संहितानां समुचयम् ॥ ८ ॥ अथर्ववेदं स ग्रुनिस्सुमन्तुरमितद्युतिः। शिष्यमध्यापयामास कवन्धं सोऽपि तं द्विधा । कुत्वा तु देवदर्शाय तथा पथ्याय दत्तवान् ॥ ९ ॥ देवदर्शस्य शिष्यास्तु मेघोत्रक्षविस्तथा। शौल्कायनिः पिप्पलादस्तथान्यो द्विजसत्तम।।१०।। पथ्यस्यापि त्रयश्चिष्याः कृता यैद्विंज संहिताः। जावालिः कुमुदादिश्र तृतीयक्शौनको द्विज ॥११॥ शौनकस्त द्विधा कृत्वा द्दावेकां तु वभ्रवे । द्वितीयां संहितां प्रादात्सैन्थवाय च संज्ञिने ॥१२॥ सैन्धवान्मञ्जिकेशश्च द्वेधामिनास्त्रिधा पुनः । नक्षत्रकल्पो वेदानां संहितानां तथैव च ॥१३॥ चत्रर्थस्स्यादाङ्गिरसङ्गान्तिकल्पश्च पश्चमः । श्रेष्ठास्त्वथर्वणामेते संहितानां विकल्पकाः ।।१४॥ आख्यानैश्वाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः। पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ॥१५॥ प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभृतस्तो वै रोमहर्षणः । पुराणसंहितां तस्मै ददौ व्यासो महामतिः ॥१६॥ सुमतिश्राग्निवर्चाश्र मित्रायुरशांसपायनः। अकृतव्रणसावणीं षद् शिष्यास्तस्य चाभवन् ॥१७॥ काञ्यपः संहिताकर्ता सावार्णेञ्शांसपायनः। रोमहर्षणिका चान्या तिसूणां मूलसंहिता ॥१८॥ हैं। उन तीनों संहिताओंको आधार एक रोमहर्षणजी-

इसी प्रकार जिन अन्य द्विजोत्तमोंने इतनी ही संहिताएँ हिरण्यनाभसे और प्रहण कीं उन्हें पण्डितजन प्राच्य सामग कहते हैं ॥ ५ ॥ पौष्पिञ्जिके शिष्य छोकाक्षि, नौधिम, कक्षीवान् और छांगछि थे। उनके शिष्य-प्रशिष्योंने अपनी-अपनी संहिताओंके विभाग करके उन्हें बहुत बढ़ा दिया॥६॥ महामुनि कृति नामक हिरण्यनाभ-के एक और शिष्यने अपने शिष्योंको सामवेदकी चौवीस संहिताएँ पढ़ायों ॥ ७ ॥ फिर उन्होंने भी इस सामवेदका शाखाओंद्वारा खूव विस्तार किया । अव मैं अथर्व-वेदकी संहिताओंके समुचयका वर्णन करता हूँ॥ ८॥

अथर्ववेदको सर्वप्रथम अमिततेजोमय सुमन्तु मुनिने अपने शिष्य कवन्धको पढ़ाया था फिर कवन्धने उसके दो भाग कर उन्हें देवदर्श और पथ्य नामक अपने शिष्योंको दिया॥९॥ हे द्विजसत्तम ! देवदर्शके शिष्य मेघ, ब्रह्मबिछ, शोल्कायनि और पिप्पछाद थे ॥ १० ॥ हे द्विज ! पथ्यके भी जावालि, कुसुदादि और शौनक नामक तीन शिष्य थे, जिन्होंने संहिताओंका विभाग किया ॥ ११ ॥ शौनकने भी अपनी संहिताके दो विभाग करके उनमेंसे एक वस्रुको तथा दूसरी सैन्धव नामक अपने शिष्यको दी ॥ १२ ॥ सैन्धवसे पढ़कर मुक्किकेशने अपनी संहिताके पहले दो और फिर तीन [इस प्रकार पाँच] विमाग किये । नक्षत्रकल्प, वेदकल्प, संहिताकल्प, आंगिरस-कल्प और शान्तिकल्प-उनके रचे हुए ये पाँच विकल्प अथर्ववेद-संहिताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १३-१४॥

तदनन्तर, पुराणार्थविशारद व्यासजीने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धिके सहित पुराण-संहिताकी रचना की ॥ १५॥ रोमहर्षण सूत व्यास-जीके प्रसिद्ध शिष्य ये । महामित व्यासजीने उन्हें पुराणसंहिताका अध्ययन कराया ॥१६॥ उन सूतर्जा-के सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, शांसपायन, अकृतत्रण और सावर्णि—ये छः शिष्य थे ॥१७॥ कास्यपगोत्रीय अकृतत्रण, सावर्णि और शांसपायन-ये तीनों संहिताकर्ता

चत्रष्टयेन भेदेन संहितानामिदं मुने ॥१९॥ आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्मग्रुच्यते । अष्टादशपुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥२०॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा । तथान्यं नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ॥२१॥ आग्नेयमष्टमं चैव भविष्यन्नवमं स्पृतम्। दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम्।।२२।। वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम्। चतुर्दशं वामनं च कौमं पञ्चदशं तथा ॥२३॥ मात्सं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम् । महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश्च महासुने ॥२४॥ तथा चोपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च । सर्ग्थ प्रतिसर्गथ वंशमन्वन्तराणि च। सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत्।।२५॥ यदेतत्तव मैत्रेय पुराणं कथ्यते मया। एतद्वैष्णवसंज्ञं वै पात्रस्य समनन्तरम्।।२६।। सर्गे च प्रतिसर्गे च वंशमन्वन्तरादिषु। कथ्यते भगवान्विष्णुरशेषेष्वेव सत्तम ॥२७॥ अङ्गानि वेदाश्रत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं घर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्रतुर्दश ।।२८॥ आयुर्वेदो घनुर्वेदो गान्धर्वश्रेव ते त्रयः। अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या सप्टाद्शेव ताः ॥२९॥ ब्रेया ब्रह्मर्पयः पूर्वं तेभ्यो देवर्पयः पुनः। राजर्षयः पुनस्तेभ्य ऋषिप्रकृतयस्त्रयः ॥३०॥ इति शाखास्समाख्याताश्शाखामेदास्तथैव च। कर्तारबैव शाखानां मेदहेतुस्तथोदितः ॥३१॥ सर्वमन्वन्तरेष्वेवं शाखामेदास्समाः स्पृताः। प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे द्विज ३२

की संहिता है। हे मुने ! इन चारों संहिताओं की सारभूत मैंने यह विष्णुपुराणसंहिता वनायी है ॥ १८-१९॥ पुराणज्ञ पुरुष कुल अठारह पुराण बतलाते हैं; उन सबमें प्राचीनतम ब्रह्मपुराण है ॥२०॥ प्रथम पुराण ब्राह्म है, दूसरा पाद्म, तीसरा वैष्णव, चौथा शैव, पाँचवाँ भागवत, छठा नारदीय और सातवाँ मार्कण्डेय है ॥ २१ ॥ इसी प्रकार आठवाँ आग्नेय, नवाँ भविष्यत् , दशवाँ ब्रह्मवैवर्त्त और ग्यारहवाँ पुराण छैङ्ग कहा जाता है ॥ २२ ॥ तथा वारहवाँ वाराह, तेरहवाँ स्कान्द, चौदहवाँ वामन, पन्द्रहवाँ कौर्म, तथा इनके पश्चात् माल्य, गारुड और ब्रह्माण्डपुराण हैं । हे महामुने ! ये ही अठारह महापुराण हैं ॥ २३-२४ ॥ इनके अतिरिक्त मुनिजनोंने और भी अनेक उपपुराण वतलाये हैं । इन सभीमें सृष्टि, प्रलय, देवता आदिकोंके वंश, मन्वन्तर और भिन्न-भिन राजवंशोंके चरित्रोंका वर्णन किया गया है ॥२५॥

हे मैत्रेय ! जिस पुराणको मैं तुम्हें सुना रहा हूँ वह पाद्मपुराणके अनन्तर कहा हुआ वैष्णव नामक महापुराण है ॥ २६ ॥ हे साधुश्रेष्ठ ! इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वन्तरादिका वर्णन करते हुए सर्वत्र केवल विष्णुभगवान्का ही वर्णन किया गया है ॥ २७ ॥

जान्धर्वश्चेत्र ।।२८॥ ज्वा हो चौदह विद्याएँ हैं ॥ २८ ॥ इन्हीं में आयुर्वेद, धनुर्वेद और गान्धर्वश्चेत्र ते त्रयः । विद्या ह्यष्टाद्शेव ताः ॥२९॥ विद्या ह्यष्टादश्चेव ताः ॥२९॥ व्या द्वर्षयः पुनः । व्या देवर्षयः पुनः । व्या देवर्षि और फिर राजिषि ॥ २९-३० ॥ इस प्रकार मैंने तुमसे वेदोंकी शाखा, शाखाओंके भेद, उनके रचयिता तथा शाखा-भेदके कारणोंका भी वर्णन कर दिया ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार समस्त मन्वन्तरोंमें एक-से शाखाभेद रहते हैं; हे द्विज ! प्रजापित ब्रह्माजीसे प्रकट होनेवाली श्रुति तो नित्य है, ये तो उसके विद्या ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार समस्त मन्वन्तरोंमें एक-से शाखाभेद रहते हैं; हे द्विज ! प्रजापित ब्रह्माजीसे प्रकट होनेवाली श्रुति तो नित्य है, ये तो उसके विद्या हो इसी प्रकार है ॥ ३२ ॥

एतत्ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया। मैत्रेय वेदसम्बन्धः किमन्यत्कथयामि ते ॥३३॥ हे मैत्रेय ! वेदके सम्बन्धमें तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था वह सत्र मैंने सुना दिया; अत्र और क्या कहूँ ? ॥ ३३ ॥

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीर्येऽशे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

यमगीता।

श्रीमैत्रेय उवाच

यथावत्कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽसि मया गुरो । श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वेकं तद्भवान्प्रत्रवीतु मे ॥ १ ॥ सप्त द्वीपानि पातालविधयश्च महामुने । सप्तलोकाश्च येऽन्तःस्था ब्रह्माण्डस्यास्य सर्वतः।।२।। स्थुलै: स्रक्ष्मेस्तथा स्रक्ष्मस्रक्ष्मात्स्रक्ष्मतरेस्तथा । स्थूलात्स्थूलतरैश्रेव सर्वं प्राणिभिरावृतम्।। ३।। अङ्गुलसाष्ट्रभागोऽपि न सोऽस्ति मुनिसत्तम । न सन्ति प्राणिनो यत्र कर्मवन्धनिवन्धनाः।। 8।। सर्वे चैते वशं यान्ति यमस भगवन् किल । आयुषोऽन्ते तथा यान्ति यातनास्तत्प्रचोदिताः ॥५॥ यातनाभ्यः परिश्रष्टा देवाद्याखथ योनिषु । जन्तवः परिवर्तन्ते शास्त्राणामेष निर्णयः ॥ ६ ॥ सोऽहमिच्छामि तच्छ्रोतुं यमस्य वश्ववर्त्तिनः। न भवन्ति नरा येन तत्कर्म कथयख में।। ७।।

श्रीपराशर उवाच

अयमेव मुने प्रश्नो नकुलेन महात्मना। पृष्टः पितामहः प्राह भीष्मो यत्तच्छृणुष्य मे ॥ ८॥

भीष्म उवाच

पुरा ममागतो वत्स सखा कालिङ्गको द्विजः। स मामुवाच पृष्टो वै मया जातिसारो मुनिः ॥ ९ ॥ सब वार्ते अमुक-अमुक प्रकार ही होंगी ।' हे वत्स !

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे गुरो ! मैंने जो कुछ पूछा था वह सव आपने यथावत् वर्णन किया । अव मैं एक बात और सुनना चाहता हूँ, वह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ हे महामुने ! सातों द्वीप, सातों पाताल और सातों लोक-ये सभी स्थान जो इस ब्रह्माण्डके अन्तर्गत हैं, स्थूल, स्दम, स्दमतर, स्क्मातिस्क्म तथा,स्थृल और स्थूलतर जीवोंसे मरे हुए हैं ॥ २-३ ॥ हे मुनिसत्तम । एक अङ्गुलका आठवाँ भाग भी कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ कर्म-बन्धनसे वँधे हुए जीव न रहते हों ॥ ४ ॥ किन्तु हे भगवन् ! आयुके समाप्त होनेपर ये सभी यमराजके वशीभूत हो जाते हैं और उन्हींके आदेशानुसार नरक आदि नाना प्रकारकी यातनाएँ मोगते हैं ॥ ५॥ तदनन्तर पाप-भोगुक्रे समाप्त होनेपर वे देवादि योनियोंमें चूमते रहते हैं सकल शास्त्रोंका ऐसा ही मत है ॥ ६ ॥ अतः आप मुझे वह कर्म बताइये जिसे करनेसे मनुष्य यमराजके वशीभूत नहीं होता; मैं आपसे यही सुनना चाहता हूँ ॥७॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मुने ! यही प्रश्न महात्मा नकुलने पितामह भीष्मसे पूछा था । उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा था वह सुनो ॥ ८॥

भीष्मजीने कहा—हे वत्स ! पूर्वकालमें मेरे पास एक किन्द्रदेशीय ब्राह्मण-मित्र आया और मुझसे बोछा-'मेरे पछनेपर एक जातिस्मर मुनिने बतलाया था कि ये

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

तेनाख्यातिमदं सर्वमित्थं चैतद्भविष्यति ।
तथा च तदभूद्भत्स यथोक्तं तेन धीमता ॥१०॥
स पृष्टश्र मया भूयः श्रद्धानेन वै द्विजः ।
यद्यद्वाह न तद्दष्टमन्यथा हि मया क्रचित् ॥११॥
एकदा तु मया पृष्टमेतद्यद्भवतोदितम् ।
प्राह कालिङ्गको विप्रस्स्मृत्वा तस्य मुनेर्वचः ॥१२॥
जातिसरेण कथितो रहस्यः परमो मम ।
यमिङ्करयोर्थोऽभूत्संवादस्तं व्रवीमि ते ॥१३॥
कालिङ्ग जवाच

खुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं

वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।

परिहर मधुद्धद्नप्रपन्ना-

न्त्रभुरहमन्यनृणामवैष्णवानाम्।।१४॥

अहममरवरार्चितेन धात्रा

यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः।

हरिगुरुवशगोऽसि न खतन्त्रः

प्रभवति संयमने ममापि विष्णुः ॥१५॥

कटकमुकुटकर्णिकादि भेदैः

कनकममेदमपीष्यते यथैकम्।

सुरपशुमनुजादिकल्पनाभि-

हिरिरिखलाभिरुदीर्यते तथैकः ॥१६॥

क्षितितलपरमाणवोऽनिलान्ते

पुनरुपयान्ति यथैकतां धरित्र्याः ।

सुरपशुमनुजादयस्तथान्ते

गुणकछुपेण सनातनेन तेन ॥१७॥

हरिममरवरार्चिताङ्घ्रिपद्यं

प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्यः ।

तमपगतसमस्तपापबन्धं

त्रज परिहृत्य यथाग्रिमाज्यसिक्तम् ॥१८॥ जाना' ॥ १८॥ टि. Digitized by eGangotri

उस बुद्धिमान्ने जो-जो बातें जिस-जिस प्रकार होनेको कही थीं वे सब ज्यों-की-त्यों हुई ॥ ९-१० ॥ इस प्रकार उसमें श्रद्धा हो जानेसे मैंने उससे फिर कुछ और भी प्रश्न किये और उनके उत्तरमें उस द्विजश्रेष्ठने जो-जो बातें बतलायीं उनके विपरीत मैंने कभी कुछ नहीं देखा ॥ ११ ॥ एक दिन, जो बात तुम मुझसे पूछते हो वही मैंने उस कालिंग ब्राह्मणसे पूछी । उस समय उसने उस मुनिके बचनों-को याद करके कहा कि उस जातिस्मर ब्राह्मणने, यम और उनके दूतोंके बीचमें जो संवाद हुआ था, वह अति गृढ़ रहस्य मुझे सुनाया था । वही मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १२-१३ ॥

कालिंग बोला-अपने अनुचरको हाथमें पाश लिये देखकर यमराजने उसके कानमें कहा-'भगवान् मधुसूदनके शरणागत व्यक्तियोंको छोड़ःदेना, क्योंकि मैं वैष्णवोंसे अतिरिक्त और सब मनुष्योंका ही खामी हूँ ॥ १४ ॥ देव-पूज्य विधाताने मुझे 'यम' नामसे छोकोंके पाप-पुण्यका विचार करनेके छिये नियक्त किया है। मैं अपने गुरु श्रीहरिके वशीभूत हूँ, खतन्त्र नहीं हूँ । भगवान विष्णु मेरा भी नियन्त्रण करनेमें समर्थ हैं ॥१५॥ जिस प्रकार सुवर्ण मेदरहित और एक होकर भी कटक, मुकुट तथा कर्णिका आदिके भेदसे नानारूप प्रतीत होता है उसी प्रकार एक ही हरिका देवता, मनुष्य और पशु आदि नाना-विध कल्पनाओंसे निर्देश किया जाता है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार वायुके शान्त होनेपर उसमें उड़ते हुए परमाणु पृथिवीसे मिलकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार गुण-क्षोमसे उत्पन्न हुए समस्त देवता, मनुष्य और पशुआदि [उस-का अन्त हो जानेपर] उस सनातन परमात्मामें छीन हो जाते हैं ॥ १७ ॥ जो भगवान्के सुरवरवन्दित चरण-कमलोंकी परमार्थ-बुद्धिसे वन्दना करता है, घृताहुति-से प्रज्वलित अग्निके समान समस्त पाप-बन्धनसे मुक्त हुए उस पुरुषको तुम दूरहीसे छोड़कर निकल

इति यमवचनं निशम्य पाशी
यमपुरुपस्तम्रवाच धर्मराजम् ।
कथय मम विभो समस्तधातुर्भवति हरेः खळु यादृशोऽस्य भक्तः ।१९।
यम जवाच

न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे । न हरति न च हन्ति किश्चिदुचैः

सितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम्।।२०।।

किलके खुरमलेन यस्य नात्मा
विमलमते मिलनीकृतस्त मेनम्
मनिस कृतजनार्दनं मनुष्यं
सततमबेहि हरेरतीवभक्तम् ॥२१॥

कनकमपि रहस्यवेश्य बुद्धचा तृणमिव यस्समवैति वै परस्तम्।

भवति च भगवत्यनन्यचेताः

पुरुषवरं तमवेहि विष्णुभक्तम् ॥२२॥

स्फटिकगिरिशिलामलः क विष्णु-

र्मनिस नृणां क च मत्सरादिदोषः ।

न हि तुहिनमय् खर्रिमपुञ्जे

भवति हुताशनदीप्तिजः प्रतापः ॥२३॥

विमलमतिरमत्सरः प्रशान्त-

इशुचिचरितोऽखिलसत्त्वमित्रभूतः।

प्रियहितवचनोऽस्तमानमायो

वसति सदा हृदि तस्य वासुदेवः ॥२४॥

वसति हृदि सनातने च तसिन्

भवति पुमाञ्जगतोऽस्य सौम्यरूपः।

क्षितिरसमतिरम्यमात्मनोऽन्तः

कथयति चारुतयैव शालपोतः ॥२५॥

यमनियमविध्तकलमषाणा-

मनुदिनमच्युतसक्तमानसानाम् । अपगतमदमानमत्सराणां

त्यज भट दूरतरेण मानवानाम् ॥२६॥

यमराजके ऐसे बचन सुनकर पाशहस्त यमदूतने उनसे पूछा—'प्रभो! सबके विधाता भगवान् हरिका भक्त कैसा होता है, यह आप मुझसे कहिये'॥ १९॥

यमराज बोले-जो पुरुष अपने वर्ण-धर्मसे विचलित नहीं होता, अपने सुहृद् और विपक्षियोंके प्रति समान भाव रखता है, किसीका द्रव्य हरण नहीं करता तथा किसी जीवकी हिंसा नहीं करता उस अत्यन्त रागादि-शून्य और निर्मलचित्त व्यक्तिको भगवान् विष्णुका मक्त जानो ॥ २०॥ जिस निर्मेळमतिका चित्त किल-कल्मपरूप मलसे मिलन नहीं हुआ और जिसने अपने हृदयमें श्रीजनार्दनको वसाया हुआ है उस मनुष्यको भगवान्का अतीव भक्त समझो ॥ २१॥ जो एकान्तमें पड़े हुए दृसरेके सोनेको देखकर मी उसे अपनी बुद्धिद्वारा तृणके समान समझता है और निरन्तर भगवान्का अनन्यभावसे चिन्तन करता है उस नर-श्रेष्टको विष्णुका मक्त जानो ॥ २२ ॥ कहाँ तो स्फटिकगिरि-शिङांके समान अति निर्मेख भगवान् विष्णु और कहाँ मनुष्योंके चित्तमें रहनेवाछे राग-द्वेषादि दोष ? [इन दोनोंका संयोग किसी प्रकार नहीं हो सकता] हिमकर (चन्द्रमा) के किरणजाल-में अग्नि-तेजकी उष्णता कभी नहीं रह सकती है। ॥ २३ ॥ जो व्यक्ति निर्मेट-चित्त, मात्सर्यरहित, प्रशान्त, शुद्ध-चरित्र, समस्त जीवोंका सुदृद्, प्रिय और हितवादी तथा अभिमान एवं मायासे रहित होता है उसके हृदयमें भगवान् वासुदेव सर्वदा विराजमान रहते हैं ॥ २४ ॥ उन सनातन मगवान्के हृदयमें विराजमान होनेपर पुरुष इस जगत्में सौम्य-मूर्ति हो जाता है, जिस प्रकार नवीन शाल वृक्ष अपने सौन्दर्यसे ही मीतर भरे हुए अति सुन्दर पार्थिव रसको बतला देता है ॥ २५॥

हे दूत ! यम और नियमके द्वारा जिनकी पाप-राशि दूर हो गयी है, जिनका इदय निरन्तर श्री-अच्युतमें ही आसक्त रहता है, तथा जिनमें गर्व, अभिमान और मार्स्सर्यका छेश भी नहीं रहा है उन मनुष्योंको तुम दूरहीसे त्याग देना ॥ २६॥

यदि भगवाननादिरास्ते हदि हरिरसिशङ्खगदाधरोऽव्ययात्मा । तद्यमघविघातकर्रुभिनं भवति कथं सति चान्धकारमर्के ॥२७॥ हरति परधनं निहन्ति जन्तून् वदति तथाऽनृतनिष्द्रराणि यश्च । अशुभजनितदुर्भदस्य पुंसः कलुषमतेईदि तस्य नास्त्यनन्तः ॥२८॥ न सहित परसम्पदं विनिन्दां कछपमतिः कुरुते सतामसाधुः। न यजित न ददाति यश्र सन्तं मनिस न तस्य जनार्दनोऽधमस्य ॥२९॥ परमसुहृदि वान्धवे कलत्रे सुततनयापितृमातृभृत्यवर्गे शठमतिरुपयाति योऽर्थतृष्णां तमधमचेष्टमवेहि नास भक्तम्।।३०॥ अशुभमतिरसत्प्रवृत्तिसक्त-स्सततमनार्यक्रशीलसङ्गमत्तः अनुदिनकृतपापवन्धयुक्तः हि वासुदेवभक्तः ॥३१॥ पुरुषपशुर्न सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान्परमेश्वरस्स एकः। इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान्विहाय दूरात्।।३२।। कमलनयन वासुदेव विष्णो **धरणिधराच्युत** शह्वचक्रपाणे । भव शरणमितीरयन्ति त्यज भट दुरतरेण तानपापान् ॥३३॥ वसति मनसि यस सोऽव्ययात्मा पुरुषवरस्य न तस्य दृष्टिपाते। तव गतिरथ वा ममास्ति चक्र-

यदि खड्ग, राङ्क और गदाधारी अन्ययात्मा भगवान् हरि हृद्यमें विराजमान हैं तो उन पापनाशक भगवानके द्वारा उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। सूर्यके रहते हुए भला अन्धकार कैसे ठहर सकता है ? ॥ २७ ॥ जो पुरुष दूसरोंका धन हरण करता है, जीवोंकी हिंसा करता है तथा मिध्या और कट्-भाषण करता है उस अशुभ कर्मीन्मत्त दुष्टबुद्धिके हृदयमें भगवान् अनन्त नहीं टिक सकते ॥ २८॥ जो कुमित दूसरोंके वैभवको नहीं देख सकता, जो दूसरोंकी निन्दा करता है, साधुजनोंका अपकार करता है तथा [सम्पन्न होकर भी] न तो श्रीविष्णु-भगवान्की पूजा ही करता है और न [उनके भक्तों-को] दान ही देता है उस अधमके हृदयमें श्रीजना-र्दनका निवास कमी नहीं हो सकता ॥ २९॥ जो दुष्टबुद्धि अपने परम सुहृद्, बन्धु-वान्धव, स्त्री, पुत्र, कन्या, माता, पिता तथा मृत्यवर्गके प्रति अर्थ-तृष्णा प्रकट करता है उस पापाचारीको भगवान्का भक्त मत समझो ॥३०॥ जो दुर्बुद्धि पुरुष असत्कर्मों में लगा रहता है, नीच पुरुषोंके आचार और उन्होंके संगमें उन्मत्त रहता है तथा नित्यप्रति मय कर्मबन्धनसे ही बँधता जाता है वह मनुष्यरूप पशु ही है; वह भगवान् वासुदेवका मक्त नहीं हो सकता ॥ ३१ ॥ यह सकल प्रपञ्च और मैं एक परमपुरुष परमेश्वर वासुदेव ही हैं, हृदयमें मगवान् अनन्तके स्थित होनेसे जिनकी ऐसी स्थिर बुद्धि हो गयी हो, उन्हें तुम दूरहीसे छोड़कर चले जाना ॥ ३२ ॥ 'हे कमल्रनयन !हे वासुदेव ! हे विष्णो ! हे धरणिधर ! हे अच्युत ! हे शंख-चक्र-पाणे ! आप हमें शरण दीजिये'—जो लोग इस प्रकार पुकारते हों उन निष्पाप व्यक्तियोंको तुम दूरसे ही त्याग देना ॥ ३३ ॥ जिस पुरुषश्रेष्ठके अन्तःकरणमें वे अन्ययात्मा भगवान् विराजते हैं उसका जहाँतक दृष्टिपात होता है वहाँतक भगवान्-के चक्रके प्रभावसे अपने बल-वीर्य नष्ट हो जानेके कारण तुम्हारी अथवा मेरी गति नहीं हो सकती । बह (महापुरुष) तो अन्य (वैकुण्ठादि) लोकों-प्रतिहतनीर्यवलस्य सोऽन्यलोक्यः ॥३४॥ का प्राकृति ॥ हर् क्ष्रित ॥ eGangotri

कालिङ्ग उवाच

इति निजमटशासनाय देवो रवितनयस्स किलाह धर्मराजः। मम कथितमिदं च तेन तुम्यं कुरुवर सम्यगिदं मयापि चोक्तम्॥३५॥

श्रीभीष्म उवाच

नकुलैतन्समाख्यातं पूर्वं तेन द्विजन्मना ।
किल्क्षदेशाद्भ्येत्य प्रीतेन सुमहात्मना ॥३६॥
सयाप्येतद्यथान्यायं सम्यग्वत्स तवोदितम् ।
यथा विष्णुमृते नान्यत्त्राणं संसारसागरे ॥३७॥
किङ्कराः पाशदण्डाश्च न यमो न च यातनाः ।
समर्थात्तस्य यस्यात्मा केशवालम्बनस्सदा ॥३८॥

श्रीपराशर उनाच श्रीपराशर एतन्युने समाख्यातं गीतं वैवस्वतेन यत् । त्वत्प्रश्नानुगतं सम्यिकमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३९॥ हो १॥ ३९॥

कालिंग योला—हे कुरुवर ! अपने दृतको शिक्षा देनेके लिये सूर्यपुत्र धर्मराजने उससे इस प्रकार कहा । मुझसे यह प्रसंग उस जातिस्मर मुनिने कहा था और मैंने यह सम्पूर्ण कथा तुमको सुना दी है ॥ ३५॥

श्रीभीष्मजी बोले—हे नकुल! पूर्वकालमें कलिंग-देशसे आये हुए उस महात्मा ब्राह्मणने प्रसन्न होकर मुझे यह सब विषय सुनाया था ॥३६॥हे वत्स! वहीं सम्पूर्ण वृत्तान्त, जिस प्रकार कि इस संसार-सागरमें एक विष्णुभगवान्को छोड़कर जीवका और कोई भी रक्षक नहीं है, मैंने ज्यों-का-यों तुम्हें सुना दिया ॥३७॥ जिसका हृदय निरन्तर भगवत्परायण रहता है उसका यम, यमदूत, यमपाश, यमदण्ड अथवा यम-यातना कुछ भी नहीं विगाड़ सकते ॥ ३८॥

श्रीपराशरजी बोर्ले—हे मुने ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार जो कुछ यमने कहा था, वह सब मैंने तुम्हें भर्ली प्रकार सुना दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो ! ॥ ३९॥

इति श्रोविष्णुपुराणे तृतीयेंऽशे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

विष्णुभगवान्को आराधना और चातुर्वर्ण्य-धर्मका वर्णन ।

श्रीमैत्रेय उवाच

भगवन्भगवान्देवः संसारविजिगीषुभिः। समाख्याहि जगनाथो विष्णुराराध्यते यथा॥१॥ आराधिताच गोविन्दादाराधनपरैनेरैः। यत्प्राप्यते फलं श्रोतुं तचेच्छामि महाम्रुने॥२॥

. श्रीपराशर उवाच

यत्पृच्छति भवानेतत्सगरेण महात्मना । और्वः प्राह यथा पृष्टस्तन्मे निगद्तस्पृषु ॥ ३॥ सगरः प्रणिपत्यैनमौर्वे पप्रच्छ भार्गवम् ।

श्रामैत्रेयजी बोले—हे मगवन् ! जो लोग संसारको जीतना चाहते हैं वे जिस प्रकार जगत्पति भगवान् विष्णुकी उपासना करते हैं, वह वर्णन कीजिये॥ १॥ और हे महामुने ! उन गोविन्दकी आराधना करने-पर आराधनपरायण पुरुषोंको जो फल मिलता है, वह मी मैं सुनना चाहता हूँ ॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! तुम जो कुछ पूछते हो यही वात महात्मा सगरने और्वसे पूछी थी ! उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा वह मैं तुमको सुनाता हूँ, श्रवण करो ॥ ३॥ हे मुनिश्रेष्ट ! सगरने भृगुवंशी महात्मा और्वको प्रणाम करके उनसे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

विष्णोराराधनोपायसम्बन्धं मुनिसत्तम ॥ ४ ॥ फलं चाराधिते विष्णौ यत्पुंसामभिजायते । स चाह पृष्टो यत्नेन तस्मै तन्मेऽखिलंश्रुणु ॥ ५ ॥

और्व उवाच

भौमं मनोरथं खर्ग खर्गे रम्यं च यत्पदम् । प्रामोत्याराधिते विष्णौ निर्वाणमपि चोत्तमम्।। ६।। यद्यदिच्छति यावच फलमाराधितेऽच्युते । तत्तदामोति राजेन्द्र भूरि खल्पमथापि वा ॥ ७ ॥ यत्तु पृच्छिस भूपाल कथमाराध्यते हरिः। तदहं सकलं तुभ्यं कथयामि निवोध मे ॥ ८॥ वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्। विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः ॥ ९ ॥ ्र यजन्यज्ञान्यजत्येन<u>ं</u> जपत्येनं जपन्नृप । निमन्नन्यान्हिनस्त्येनं सर्वभूतो यतो हरिः ॥१०॥ तस्मात्सदाचारवता पुरुषेण जनार्दनः। आराध्यते स्ववणोंक्तधर्मानुष्ठानकारिणा ॥११॥ त्राह्मणः क्षत्रियो वैक्यः शुद्धश्च पृथिवीपते । खधर्मतत्परो विष्णुमाराधयति नान्यथा।।१२।। पैशुन्यमनृतं च न भाषते। परापवादं अन्योद्देगकरं वापि तोष्यते तेन केशवः ॥१३॥ परदारपरद्रव्यपरहिंसासु रतिम्। न करोति पुमानभूप तोष्यते तेन केशवः ॥१४॥ न ताडयति नो इन्ति प्राणिनोऽन्यांश्र देहिनः ।

भगवान् विष्णुकी आराधनाके उपाय और विष्णुकी उपासना करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है उसके विषयमें पृछा था। उनके पृछनेपर और्वने यहपूर्वक जो कुछ कहा था वह सब सुनो।। ४-५॥

और्व बोले-भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे मनुष्य भूमण्डल-सम्बन्धी समस्त मनोरथ, खर्ग, खर्गसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मपद और परम निर्वाण-पद भी प्राप्त कर छेता है ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र ! वह जिस-जिस फलकी जितनी-जितनी इच्छा करता है, अल्प हो या अधिक, श्रीअच्युतकी आराधनासे निश्चय ही वह सब प्राप्त कर लेता है ॥ ७ ॥ और हे भूपाल ! तुमने जो पूछा कि हरिकी आराधना किस प्रकार की जाय, सो सब मैं तुमसे कहता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ ८॥ जो पुरुष वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाला है वहीं परमपुरुष विष्णुकी आराधना कर सकता है; उनको सन्तुष्ट करनेका और कोई मार्ग नहीं है ॥९॥ हे नृप ! यज्ञोंका यजन करनेवाला पुरुष उन (विष्णु) हीका यजन करता है, जप करनेवाला उन्हींका जप करता है और दूसरोंकी हिंसा करनेवाला उन्हींकी हिंसा करता है; क्योंकि भगवान् हरि सर्वभूतमय हैं ॥१०॥ अतः सदाचारयुक्त पुरुष अपने वर्णके लिये विहित धर्मका आचरण करते हुए श्रीजनार्दनहीकी उपासना करता है ॥ ११ ॥ हे पृथिवीपते ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैरय और शृद्ध अपने-अपने धर्मका पालन करते हुए ही विष्णुकी आराधना करते हैं अन्य प्रकारसे नहीं ॥ १२॥

जो पुरुष दूसरोंकी निन्दा, चुगळी अथवा मिध्याभाषण नहीं करता तथा ऐसा वचन भी नहीं बोळता
जिससे दूसरोंको खेद हो, उससे निश्चय ही भगवान्
नेराव प्रमान्भूप तोष्यते तेन केशवः ॥१४॥
न करोति प्रमान्भूप तोष्यते तेन केशवः ॥१४॥
न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः ।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः ॥१४॥
न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः ।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः ॥१४॥
न ताड्यति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः ।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः ॥१४॥
न ताड्यति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः ।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः ॥१४॥
न ताड्यति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः ।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः ॥१४॥
न ताड्यति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः ।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः ॥१४॥
न ताड्यति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः ।

देवद्विजगुरूणां च शुश्रुपासु सदोद्यतः। तोष्यते तेन गोविन्दः पुरुपेण नरेश्वर ॥१६॥ यथात्मनि च पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तथा। हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते सुखम् ॥१७॥ यस्य रागादिदोषेण न दुष्टं नृप मानसम् । विशुद्धचेतसा विष्णुस्तोष्यते तेन सर्वदा ॥१८॥ वर्णाश्रमेषु ये धर्माञ्जास्त्रोक्ता नृपसत्तम । तेषु तिष्ठकरो विष्णुमाराधयति नान्यथा ॥१९॥

सगर उवाच

तद्दं श्रोतुमिच्छामि वर्णधर्मानशेषतः। तथैवाश्रमधर्माश्च द्विजवर्य त्रवीहि तान् ॥२०॥

और्व उवाच

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शुद्राणां च यथाऋमम्। त्वमेकाग्रमतिर्भृत्वा शृणु धर्मान्मयोदितान्।।२१।। दानं दद्याद्यजेदेवान्यज्ञेस्खाध्यायतत्परः । नित्योदकी भवेद्विप्रः कुर्याचाग्निपरिग्रहम् ॥२२॥ वृत्त्यर्थं याजयेचान्यानन्यानध्यापयेत्तथा । कुर्यात्प्रतिप्रहादानं ग्रुक्कार्थान्न्यायतो द्विजः ।२३। सर्वभृतहितं कुर्यानाहितं कस्यचिद् द्विजः। मैत्री समस्तभूतेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम्।।२४॥ ग्राव्या रते च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद् द्विजः । ऋतावभिगमः पत्न्यां शस्यते चास्य पार्थिव॥२५॥

दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपि वा। यजेच विविधैर्यज्ञैरधीयीत च पार्थिवः ॥२६॥ शसाजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका। तत्रापि प्रथमः कल्पः पृथिवीपरिपालनम् ॥२७॥ भी पृथिवी-पालन ही उत्कृष्ट् CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

जो पुरुष देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहता है, हे नरेश्वर ! उससे गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ १६ ॥ जो व्यक्ति खयं अपने और अपने पुत्रोंके समान ही समस्त प्राणियोंका भी हित-चिन्तक होता है वह सुगमतासे ही श्रीहरिको प्रसन्न कर छेता है ॥ १७॥ हे नृप ! जिसका चित्त रागादि दोर्पोसे दृषित नहीं है उस विशुद्ध-चित्त पुरुषसे भगवान् विष्णु सदा सन्तुष्ट रहते हैं ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! शास्त्रोंमें जो-जो वर्णाश्रम-धर्म कहे हैं उन-उनका ही आचरण करके पुरुष विष्णुकी आराधना कर सकता है और किसी प्रकार नहीं ॥ १९॥

सगर बोले-हे द्विजश्रेष्ठ ! अव मैं सम्पूर्ण वर्णधर्म और आश्रमधर्मीको सुनना चाहता हूँ, कृपा करके वर्णन कीजिये ॥ २०॥

और्च बोले-जिनका मैं वर्णन करता हूँ,उन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शृहोंके धर्मोंका तुम एकाप्रचित्त होकर क्रमशः श्रवण करो ॥२१॥ त्राह्मणका कर्तव्य है कि दान दे, यज्ञोंद्वारा देवताओंका यजन करे, खाध्याय-शील हो, नित्य स्नान-तर्पण करे और अग्न्याधान आदि कर्म करता रहे ॥ २२ ॥ ब्राह्मणको उचित है कि वृत्तिके लिये दूसरोंसे यज्ञ करावे, औरोंको पढ़ावे और न्यायोपार्जित शुद्ध धनमेंसे न्यायानुकूछ द्रव्य-संग्रह करे ॥२३॥ ब्राह्मणको कमी किसीका अहित नहीं करना चाहिये और सर्वदा समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहना चाहिये। सम्पूर्ण प्राणियोंमें मैत्री रखना ही त्राह्मण-का परम धन है ॥२४॥ पत्थरमें और पराये रत्नमें ब्राह्मणको समान-बुद्धि रखनी चाहिये। हे राजन् ! पत्नीके विषयमें ऋतुगामी होना ही ब्राह्मणके लिये प्रशंसनीय कर्म है॥ २५॥

क्षत्रियको उचित है कि ब्राह्मणोंको यथेच्छ दान दे, विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करे और अध्ययन करे ॥ २६ ॥ शस्त्र धारण करना और पृथिवीकी रक्षा करना ही क्षत्रियकी उत्तम आजीविका है; इनमें भी पृथिवी-पालन ही उत्कृष्टतर है ॥ २७ ॥

धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपाः। भवन्ति नृपतेरंशा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥२८॥ दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् । प्रामोत्यभिमताँ छोकान्वर्णसंस्थां करोति यः ॥२९॥ पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं च मनुजेश्वर । वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोकपितामहः ॥३०॥ तसाप्यध्ययनं यज्ञो दानं धर्मश्र शस्यते । नित्यनैमित्तिकादीनामजुष्टानं च कर्मणाम् ।।३१॥ द्विजातिसंश्रितं कर्म तादर्थ्यं तेन पोषणम् । ऋयविऋयजैर्वापि धनैः कारुद्धवेन वा ॥३२॥ ग्रदस्य सन्नतिश्शीचं सेवा स्वामिन्यमायया । अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्सङ्गो विप्ररक्षणम् ॥३३॥ दानं च दद्याच्छूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च। पित्र्यादिकं च तत्सर्वे शुद्रः कुर्वीत तेन वै ॥३४॥ भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रहः। ऋतुकालेऽभिगमनं खदारेषु महीपते ॥३५॥ दया समस्तभृतेषु तितिक्षा नातिमानिता। सत्यं शौचमनायासो मङ्गलं प्रियवादिता ॥३६॥ मैत्र्यस्पृहा तथा तद्वदकार्पण्यं नरेश्वर । अनस्या च सामान्यवर्णानां कथिता गुणाः ॥३७॥ आश्रमाणां च सर्वेपामेते सामान्यलक्षणाः । गुणांत्तथापद्धर्माश्च विप्रादीनामिमाञ्छूणु ॥३८॥ क्षात्रं कर्म द्विजस्थोक्तं वैश्यं कर्म तथाऽपढि । राजन्यस च वैश्योक्तं ग्रुद्रकर्म न चैतयोः ॥३९॥ पृथिवी-पालनसे ही राजालोग कृतकृत्य हो जाते हैं, क्योंकि पृथिवीमें होनेवाले यज्ञादि कर्मोंका अंश राजाको मिलता है ॥ २८॥ जो राजा अपने वर्णधर्मको स्थिर रखता है वह दुष्टोंको दण्ड देने और साधुजनोंका पालन करनेसे अपने अभीष्ट लोकोंको प्राप्त कर लेता है ॥२९॥

हे नरनाथ ! लोकपितामह ब्रह्माजीने वैश्योंको पशु-पालन, वाणिज्य और कृषि—ये जीविकारूपसे दिये हैं ॥ ३०॥ अध्ययन, यज्ञ, दान और नित्य-नैमित्तिकादि कर्मोंका अनुष्टान—ये कर्म उसके लिये भी विहित हैं ॥ ३१॥

शद्रका कर्तव्य यही है कि द्विजातियोंकी प्रयोजन-सिद्धिके लिये कर्म करे और उसीसे अपना पालन-पोषण करे, अथवा [आपत्कालमें, जब उक्त उपायसे जीविका-निर्वाह न हो सके तो] वस्तुओंके छेने-वेचने अथवा कारीगरीके कामोंसे निर्वाह करे ॥३२॥ अति नम्रता, शौच, निष्कपट खामि-सेवा, मन्त्रहीन यज्ञ, अस्तेय, सत्सङ्ग और ब्राह्मणकी रक्षा करना-ये शृद्धके प्रधान कर्म हैं ॥३३॥ हे राजन !शृद्धको भी उचित है कि दान दे, विलेगेश्वदेव अथवा नमस्कार आदि अल्प यज्ञोंका अनुष्ठान करे, पितृश्राद्ध आदि कर्म करे, अपने आश्रित कुट्नियोंके भरण-पोषण-के लिये सकल वर्णों से द्रव्य-संप्रह करे और ऋतुकालमें अपनी ही स्त्रीसे प्रसङ्ग करे ॥३४-३५॥ हे नरेस्वर ! इनके अतिरिक्त समस्त प्राणियोंपर दया, सहन-शीलता, अमानिता, सत्य, शौच, अधिक परिश्रम न करना, मङ्गलाचरण, प्रियवादिता, मैत्री, निष्कामता, अकृपणता और किसीके दोष न देखना—ये समस्त वर्णींके सामान्य गुण हैं ॥३६-३७॥

तदेवापदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसङ्करम्।।४०।। इत्येते कथिता राजन्वर्णधर्मा मया तव। धर्मीनाश्रमिणां सम्यग्बुवतो मे निशामय ॥४१॥ निरूपण और करता हूँ, सावधान होकर सुनो॥४१॥

में ही इनका आश्रय हे, कर्म-सङ्करता (कर्मोंका मेह) न करे ॥ ४० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार ! वर्णधर्मोंका वर्णन तो मैंने तुमसे कर दिया; अत्र आश्रमधर्मीका

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीर्येऽशे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंका वर्णन।

और्व उवाच 291840121894

बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः। गुरुगेहे वसेद्भप ब्रह्मचारी समाहितः॥१॥ शौचाचारव्रतं तत्र कार्यं शुश्रृपणं गुरोः। व्रतानि चरता ग्राह्यो वेदश्च कृतबुद्धिना ॥ २ ॥ उमे सन्ध्ये रवि भूप तथैवाप्तिं समाहितः । कुर्यादुरोरप्यभिवादनम् ॥ ३॥ उपतिष्ठेत्तदा स्थिते तिष्ठेद्वजेद्याते नीचैरासीत चासति । शिष्यो गुरोर्नुपश्रेष्ठ प्रतिकूलं न सश्चरेत् ॥ ४ ॥ तेनैवोक्तं पठेद्वेदं नान्यचित्तः पुरस्थितः । अनुज्ञातश्र मिश्रान्नमञ्नीयाद्भरुणा ततः॥५॥ अवगाहेदपः पूर्वमाचार्येणाव गाहिताः। समिजलादिकं चास्य कल्यं कल्यम्रुपानयेत्।।६।। गृहीतग्राह्यवेदश्च ततोऽनुज्ञामवाप्य च । गार्हस्थ्यमाविदोत्प्राज्ञो निष्पत्रगुरुनिष्कृतिः॥ ७॥ विधिनावासदारस्तु धनं प्राप्य खकर्मणा। गृहस्थकार्यमिललं कुर्याद्भपाल शक्तितः॥८॥

और्व बोले-हे भूपते ! वालकको चाहिये कि उपनयन-संस्कारके अनन्तर वेदाध्ययनमें तत्पर होकर ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर, सावधानतापूर्वक गुरुगृह-में निवास करे ॥१॥ वहाँ रहकर उसे शौच और आचार-त्रतका पालन करते हुए गुरुकी सेवा-शुश्रृषा करनी चाहिये तथा त्रतादिका आचरण करते हुए स्थिर-बुद्धिसे वेदाध्ययन करना चाहिये॥२॥ हे राजन् ! [प्रातःकाल और सायंकाल] दोनों सन्ध्याओंमें एकाप्र होकर सूर्य और अग्निकी उपासना करे तथा गुरुका अभिवादन करे॥ ३॥ गुरुके खड़े होनेपर खड़ा हो जाय, चलनेपर पीछे-पीछे चलने लगे तथा बैठ जानेपर नीचे बैठ जाय। हे नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार कभी गुरुके विरुद्ध कोई आचरण न करे ॥४॥ गुरुजीके कहनेपर ही उनके सामने बैठकर एकाम्रचित्तसे वेदाध्ययन करे और उनकी आज्ञा होनेपर ही भिक्षान मोजन करे॥ ५॥ जलमें प्रथम आचार्यके स्नान कर चुकनेपर फिर खयं स्नान करे तथा प्रतिदिन प्रातःकाल गुरुजीके लिये समिधा, जल, कुश और पुष्पादि लाकर जुटा दे ॥६॥

इस प्रकार अपना अमिमत वेदपाठ समाप्त कर चुकनेपर बुद्धिमान् शिष्य गुरुजीकी आज्ञासे उन्हें गुरु-दक्षिणा देकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे ॥ ।। हे राजन् !-फिर विधिपूर्वक पाणिप्रहण कर अपनी वर्णानुकूल वृत्तिसे द्रव्योपार्जन करता हुआ सामर्घ्यानुसार समस्त गृह-कार्य करता रहे ॥८॥ पिण्ड-दानादिसे पितृगणकी, यज्ञादिसे देवताओंकी, अन्नदानसे अतिथियोंकी, Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अनैर्धुनींश्र स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ॥ ९ ॥ भृतानि बलिभिश्रेव वात्सल्येनाखिलं जगत्। प्रामोति लोकान्प्ररुषो निजकर्मसमार्जितान् ।।१०॥ मिक्षाग्रजश्र ये केचित्परिव्राद्ब्रह्मचारिणः। तेऽप्यत्रैव प्रतिष्ठन्ते गाईस्थ्यं तेन वै परम् ॥११॥ वेदाहरणकार्याय तीर्थस्नानाय च प्रभो। अटन्ति वसुघां विप्राः पृथिवीद्रश्चेनाय च ॥१२॥ अनिकेता ह्यनाहारा यत्र सार्यगृहाश्च ये। तेषां गृहस्थः सर्वेषां प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥१३॥ तेषां खागतदानादि वक्तव्यं मधुरं नृप। गृहागतानां दद्याच शयनासनभोजनम् ॥१४॥ अतिथिर्यस भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृतं तसै पुण्यमादाय गच्छति ॥१५॥ अवज्ञानमहङ्कारो दम्भश्रीव गृहे सतः। परितापोपघातौ च पारुष्यं च न शस्यते।।१६॥ यस्तु सम्यकरोत्येवं गृहस्थः परमं विधिम् । सर्ववन्धविनिर्धुक्तो लोकानामोत्यजुत्तमान् ॥१७॥ रिणत- वयःपरिणतो राजन्कृतकृत्यो गृहाश्रमी। पुत्रेषु मार्यां निश्चिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥१८॥ पर्णमूलफलाहार: केशक्मश्रुजटाधरः। भूमिशायी भवेत्तत्र ग्रुनिस्सर्वातिथिर्नृप ॥१९॥ चर्मकाशकुशैः कुर्यात्परिधानोत्तरीयके । तद्वत्त्रिपवणं स्नानं शस्तमस्य नरेश्वर ॥२०॥ देवताभ्यर्चनं होमस्सर्वाभ्यागतपूजनम् ।

ऋषियोंकी, पुत्रोत्पत्तिसे खाध्यायसे विषयों (अन्नमाग) से भूतगणकी तथा वात्सल्यभावसे सम्पूर्ण जगत्की पूजा करते हुए पुरुष अपने कर्मोंद्वारा मिले हुए उत्तमोत्तम लोकोंको प्राप्त कर लेता है ॥९-१०॥ जो केवल मिक्षावृत्तिसे ही रहनेवाले परिव्राजक और ब्रह्मचारी आदि हैं उनका आश्रय भी गृहस्थाश्रम ही है, अतः यह सर्वश्रेष्ठ है ॥११॥ हे राजन् ! विप्रगण वेदाध्ययन, तीर्थस्नान और देश-दर्शनके लिये पृथिवी-पर्यटन किया करते हैं ॥१२॥ उनमेंसे जिनका कोई निश्चित गृह अथवा मोजन-प्रबन्ध नहीं होता और जो जहाँ सायंकाल हो जाता है वहीं ठहर जाते हैं, उन सबका आधार और मूळ गृहस्थाश्रम ही है ॥१३॥ हे राजन् ! ऐसे छोग जब घर आवें तो उनका कुशल-प्रश्न और मधुर वचनोंसे खागत करे तथा शय्या, आसन और मोजनके द्वारा उनका यथाशक्ति सत्कार करे ॥१४॥ जिसके घरसे अतिथि निराश होकर छौट जाता है उसे अपने समस्त दुष्कर्म देकर वह (अतिथि) उसके पुण्य-कर्मोंको खयं छे जाता है ॥१५॥ गृहस्थके छिये अतिथिके प्रति अपमान, अहङ्कार और दम्भका आचरण करना, उसे देकर पछताना, उसपर प्रहार करना अथवा उससे कटुमाषण करना उचित नहीं है ॥१६॥ इस प्रकार जो गृहस्थ अपने परम धर्मका पूर्णतया पालन करता है वह समस्त वन्धनोंसे मुक्त होकर अत्युत्तम लोकोंको प्राप्त कर लेता है ॥१७॥

हे राजन् ! इस प्रकार गृहस्थोचित कार्य करते-करते जिसकी अवस्था ढल गयी हो उस गृहस्थको उचित है कि स्त्रीको पुत्रोंके प्रति सौंपकर अथवा अपने साथ लेकर वनको चला जाय ॥१८॥ वहाँ पत्र, मूल, फल आदिका आहार करता हुआ, लोम, इमश्रु (दाढ़ी-म्ँछ) और जटाओंको घारण कर पृथिवीपर शयन करे और मुनिवृत्तिका अवलम्बन कर सब प्रकार अतिथिकी सेवा करे ॥ १९ ॥ उसे चर्म, काश और कुशाओंसे अपना विद्योना तथा ओढ़नेका वस्न बनाना चाहिये। हे नरेखर! उस मुनिके लिये त्रिकाल-स्नानका विधान है ॥२०॥ इसी प्रकार देवपूजन, होम, सब अतिथियोंका सुस्कार, सिक्षा और बल्विवैस्वदेव मी भिक्षा विलेपदानं च शस्तमस्य नरेश्वर ॥२१॥ वन्यस्रोहेन गात्राणामभ्यङ्गश्चास्य शस्यते। तपश्च तस्य राजेन्द्र शीतोष्णादिसहिष्णुता ॥२२॥ यस्त्वेतां नियतश्चर्यां वानप्रस्थश्चरेन्म्रनिः। स दहत्यग्निवदोषाञ्जयेछोकांश्र शाश्वतान्।।२३।। चतुर्थश्राश्रमो भिक्षोः प्रोच्यते यो मनीपिभिः । तस्य खरूपं गदतो मम श्रोतुं नृपाईसि ॥२४॥ पुर्तद्रव्यकलत्रेषु त्यक्तस्रेहो नराधिप । चतुर्थमाश्रमस्थानं गच्छेन्निर्धृतमत्सरः ॥२५॥ त्रैवर्गिकांस्त्यजेत्सर्वानारम्भानवनीपते मित्रादिषु समो मैत्रस्समस्तेष्वेव जन्तुषु ॥२६॥ जरायुजाण्डजादीनां वाञ्चनःकायकर्मभिः। युक्तः कुर्वीत न द्रोहं सर्वसङ्गांश्च वर्जयेत ॥२७॥ एकरात्रस्थितिग्रीमे पश्चरात्रस्थितिः पुरे। तथा तिष्ठेद्यथाप्रीतिर्द्वेषो वा नास्य जायते ॥२८॥ प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्गारे भ्रक्तवजने। काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थं पर्यटेद् गृहान् ॥२९॥ कामः क्रोधस्तथा दर्पमोहलोभादयश्च ये। तांस्तु सर्वान्परित्यज्य परित्राट् निर्ममो भवेत् ।३०। अभयं सर्वभृतेभ्यो दत्त्वा यश्वरते मुनिः। तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं विद्यते कचित् ॥३१॥ स्वशरीरसंस्थं कृत्वाग्निहोत्रं शारीरमप्रिं समुखे जुहोति। मैक्ष्योपहितैईविर्मि-विप्रस्त श्रिताग्निकानां त्रजति स लोकान् ॥३२॥ यथोक्तं यश्चरते मोक्षाश्रमं

उसके विहित कर्म हैं ॥२१॥ हे राजेन्द्र ! वन्य तैलादिको शरीरमें मलना और शीतोष्णका सहन करते हुए तपस्यामें लगे रहना उसके प्रशस्त कर्म हैं ॥२२॥ जो वानप्रस्थ मुनि इन नियत कर्मोंका आचरण करता है वह अपने समस्त दोषोंको अग्निके समान भस्म कर देता है और नित्य-लोकोंको प्राप्त कर लेता है ॥२३॥

हे नृप ! पण्डितगण जिस चतुर्थ आश्रमको मिक्षु-आश्रम कहते हैं अब मैं उसके खरूपका वर्णन करता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ २४ ॥ हे नरेन्द्र ! तृतीय आश्रमके अनन्तर पुत्र, द्रव्य और स्त्री आदिके स्रेहको सर्वथा त्यागकर तथा मात्सर्यको छोड़कर चतुर्थ आश्रम-में प्रवेश करे॥ २५॥ हे पृथिवीपते! मिक्षुको उचित है कि अर्थ, धर्म और कामरूप त्रिवर्ग-सम्बन्धी समस्त कर्मीको छोड़ दे, शत्रु-मित्रादिमें समान भाव रखे और सभी जीवोंका सुहृद् हो ॥ २६॥ निरन्तर समाहित रहकर जरायुज, अण्डज और स्रोदज आदि समस्त जीवोंसे मन, वाणी अथवा कर्म-द्वारा कभी द्रोह न करे तथा सत्र प्रकारकी आसक्तियों-को त्याग दे ॥ २७ ॥ ग्राममें एक रात और पुरमें पाँच रात्रितक रहे तथा इतने दिन भी तो इस प्रकार रहे जिससे किसीसे प्रेम अथवा द्वेष न हो ॥२८॥ जिस समय घरोंमें अग्नि शान्त हो जाय और लोग भोजन कर चुकें उस समय प्राणरक्षाके छिये उत्तम वर्णोमें भिक्षाके लिये जाय ॥२९॥ परित्राजकको चाहिये कि काम, क्रोघ तथा दर्प, छोभ और मोह आदि समस्त दुर्गुणोंको छोड़कर ममताश्र्न्य होकर रहे ॥ ३०॥ जो मुनि समस्त प्राणियोंको अभयदान देकर विचरता है उसको भी किसीसे कभी कोई भय नहीं होता ॥३१॥ जो ब्राह्मण चतुर्थ आश्रममें अपने शरीरमें स्थित प्राणादि-सहित जठराप्रिके उद्देश्यसे अपने मुखमें मिक्षान-रूप हिनसे हवन करता हैं, वह ऐसा अग्निहोत्र करके अग्निहोत्रियोंके छोकोंको प्राप्त हो जाता है ॥ ३२ ॥ जो त्राह्मण [त्रहासे मिन सभी मिध्या है, सम्पूर्ण जगत् भगवान्का ही संकल्प है-ऐसे] बुद्धि-योगसे युक्त होकर, यथाविषि आचरण करता हुआ

ग्रुचिस्सुलं कल्पितबुद्धियुक्तः।

अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तः

स ब्रह्मलोकं श्रयते द्विजातिः ॥३३॥

इस मोक्षाश्रमका पवित्रता और सुखपूर्वक आचरण करता है, वह निरिन्धन अग्निके समान शान्त होता है और अन्तमें ब्रह्मछोक प्राप्त करता है ॥ ३३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीयेंऽशे नवमोऽध्यायः ॥ ९॥

दशवाँ अध्याय

जातकर्म, नामकरण और विवाह-संस्कारकी विधि।

सगर उवाच

कथितं चातुराश्रम्यं चातुर्वर्ण्यक्रियास्तथा । पुंसः क्रियामहं श्रोतुमिच्छामि द्विजसत्तम ॥ १ ॥ नित्यनैमित्तिकाः काम्याः क्रियाः पुंसामशेषतः । समाख्याहि भृगुश्रेष्ठ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥ २ ॥

और्व उवाच

यदेतदुक्तं भवता नित्यनैमित्तिकाश्रयम् ।
तदहं कथिय्यामि शृणुष्वैकमना मम ॥ ३ ॥
जातस्य जातकर्मादिकियाकाण्डमशेषतः ।
पुत्रस्य कुर्वीत पिता श्राद्धं चाम्युद्यात्मकम् ॥ ४ ॥
युग्मांस्तु प्राङ्गुखान्विप्रान्भोजयेन्मनुजेश्वर ।
यथा वृत्तिस्तथा कुर्याद्दैवं पित्र्यं द्विजन्मनाम् ॥ ५ ॥
दश्चा यवैः सबदरैमिश्रान्पिण्डान्मुदा युतः ।
नान्दीमुखेम्यस्तीर्थेन दद्यादैवेन पार्थिव ॥ ६ ॥
प्राजापत्येन वा सर्वम्रपचारं प्रदक्षिणम् ।
कुर्वीत तत्तथाशेषवृद्धिकालेषु भूपते ॥ ७ ॥
ततश्च नाम कुर्वीत पित्तैव दश्चमेऽहिन ।
देवपूर्वं नराख्यं हि शर्मवर्मादिसंयुतम् ॥ ८ ॥
देवपूर्वं नराख्यं हि शर्मवर्मादिसंयुतम् ॥ ८ ॥

सगर बोळे—हे द्विजश्रेष्ठ ! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णोंके कर्मोंका वर्णन किया । अब मैं आपके द्वारा मनुष्योंके (षोडश संस्काररूप) कर्मों-को सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ हे भृगुश्रेष्ठ ! मेरा विचार है कि आप सर्वज्ञ हैं । अतएव आप मनुष्योंके नित्य-नैमित्तिक और काम्य आदि सब प्रकारके कर्मोंका निरूपण कीजिये ॥ २ ॥

श्रीव घोले—हे राजन्! आपने जो नित्य-नैमित्तंक आदि क्रियाकलापके विषयमें पृछा सो मैं सबका वर्णन करता हूँ, एकाप्रचित्त होकर सुनो ॥ ३ ॥ पुत्रके उत्पन्न होनेपर पिताको चाहिये कि उसके जातकर्म आदि सकल क्रियाकाण्ड और आम्युदियक श्राद्ध करे ॥४॥ हे नरेक्वर ! पूर्वीमिमुख विठाकर युग्म ब्राह्मणोंको मोजन करावे तथा द्विजातियोंके न्यवहारके अनुसार देव और पितृपक्षकी तृप्तिके लिये श्राद्ध करे ॥ ५ ॥ और हे राजन् ! प्रसन्नतापूर्वक दैवतीर्थ (अँगुल्योंके अप्रभाग) द्वारा नान्दीमुख पितृगणको दहीं, जो और बदरीफल मिलाकर बनाये हुए पिण्ड दे ॥ ६ ॥ अथवा प्राजापत्यतीर्थ (किनिष्ठिकाके मूल) द्वारा सम्पूर्ण उपचारद्रव्योंका दान करे । इसी प्रकार [कन्या अथवा पुत्रोंके विवाह आदि] समस्त वृद्धिकालोंमें भी करे ॥ ७ ॥

तत्थ नाम कुर्वीत पितेव दशमेऽहिन ।
तदनन्तर, पुत्रोत्पत्तिके दशवें दिन पिता नामकरणसंस्कार करे । पुरुषका नाम पुरुषवाचक होना
देवपूर्व नराख्यं हि शर्मवर्मादिसंयुतम् ॥ ८॥
वाहिये । उसके पूर्वमें देववाचक शब्द हो तथा पीछे
शर्मी, वर्मा आदि होने चाहिये ॥ ८॥ ब्राह्मणके नामशर्मेति ब्राह्मणस्थोक्तं वर्मेति अवस्थाअयम् वीमा Collection. अन्तर्मे स्थानिक श्रीत्यके अपन्तर्मे निया वैदय और

गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशृद्रयोः ॥ ९ ॥ नार्थहीनं न चाशस्तं नापशब्दयुतं तथा। नामङ्गरुयं जुगुप्स्यं वा नाम कुर्यात्समाक्ष्रम् ॥१०॥ नातिदीर्घं नातिहस्यं नातिगुर्वश्वरान्त्रितम् । सुखोचार्यं तु तन्नाम कुर्याद्यत्प्रवणाक्षरम् ॥११॥

ततोऽनन्तरसंस्कारसंस्कृतो गुरुवेश्मनि । यथोक्तविधिमाश्रित्य कुर्याद्विद्यापरिग्रहम् ॥१२॥ गृहीतविद्यो गुरवे दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् । गार्हस्थ्यमिच्छन्भूपाल कुर्यादारपरिग्रहम् ॥१३॥ ब्रह्मचर्येण वा कालं कुर्यात्संकल्पपूर्वकम्। गुरोक्शुश्रूपणं कुर्यात्तत्पुत्रादेरथापि वा ॥१४॥ वैखानसो वापि भवेत्परिवाडथ वेच्छया। पूर्वसङ्कालिपतं यादक् तादक्कुर्यान्नराधिप ॥१५॥ वर्षेरेकगुणां भार्यामुद्रहेत्त्रिगुणस्स्वयम्। नातिकेशामकेशां वा नातिकृष्णां न पिङ्गलाम्।१६। निसर्गतोऽधिकाङ्गीं वा न्यूनाङ्गीमपि नोद्रहेत्। नाविशुद्धां सरोमां वाकुलजां वापि रोगिणीम्।१७। न दुष्टां दुष्टवाक्यां वा व्यक्तिनीं पितृमातृतः । न इमश्रुव्यञ्जनवतीं न चैव पुरुषाकृतिम् ॥१८॥ न घर्घरस्वरां क्षामां तथा काकस्वरां न च। नानिबन्धेक्षणां तद्रद्र्ताक्षीं नोद्रहेद्भुधः ॥१९॥ यस्याश्च रोमशे जङ्घे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नतौ । गण्डयोः क्रूपरौ यस्या इसन्त्यास्तां न चोद्वहेत्॥२०॥ पाण्डुकरजामरुणेक्षणाम् । अत्यन्त उदासीन न हा, नख पाण्डु CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri नातिरूक्षच्छवि

शृद्धोंके नामान्तमें क्रमशः गुप्त और दास शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये॥ ९॥ नाम अर्थहीन, अविहित, अपशब्दयुक्त, अमांगलिक और निन्दनीय न होना चाहिये तथा उसके अक्षर समान होने चाहिये॥ १०॥ अति दीर्घ, अति लघु अथवा कठिन अक्षरोंसे युक्त नाम न रखे । जो सुखपूर्वक उचारण किया जा सके और जिसके पीछेके वर्ण लघु हों ऐसे नामका व्यवहार करे॥ ११॥

तदनन्तर उपनयन-संस्कार हो जानेपर गुरुगृहमें रहकर विधिपूर्वक विद्याध्ययन करे ॥ १२ ॥ हे भूपाछ ! फिर विद्याध्ययन कर चुकनेपर गुरुको दक्षिणा देकर यदि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी इच्छा हो, तो विवाह कर छे ॥ १३ ॥ या दृढ़ संकल्पपूर्वक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य प्रहणकर गुरु अथवा गुरुपुत्रोंकी सेवा-शुश्रूपा करता रहे ॥ १४ ॥ अथवा अपनी इच्छानुसार वानप्रस्थ या संन्यास प्रहण कर छे। हे राजन्! पहले जैसा संकल्प किया हो वैसा ही करे ॥ १५॥

[यदि विवाह करना हो तो] अपनेसे, तृतीयांश अवस्थावाळी कन्यासे विवाह करे तथा अधिक या अल्प केशवाली अथवा अति साँवली या पाण्डुवर्णा (भूरे रंगकी) स्त्रीसे सम्बन्ध न करे ॥ १६॥ जिसके जन्मसे ही अधिक या न्यून अंग हों, जो अपवित्र, रोमयुक्त, अकुळीना अथवा रोगिणी हो उस स्नीसे पाणिप्रहण न करे ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् पुरुपको उचित है कि जो दुष्ट खमाववाली हो, कटुमापिणी हो, माता अथवा पिताके अनुसार अंगहीना हो, जिसके इमश्रु (मूँछोंके) चिह्न हों, जो पुरुषके-से आकार-वाली हो, अथवा घर्घर शब्द करनेवाले अति मन्द या कौएके समान (कर्णकटु) खरवाछी हो तथा पक्ष्मशून्या या गोल नेत्रोंबाली हो उस विवाह न करे ॥ १८-१९ ॥ जिसकी जंघाओंपर रोम हों, जिसके गुल्फ (टख़ने) ऊँचे हों तथा हँसते समय जिसके कपोलोंमें गड्डे पड़ते हों उस कन्यासे विवाह न करे ॥ २०॥ जिसकी कान्ति अत्यन्त उदासीन न हो, नख पाण्डुवर्ण हों, नेत्र छाछ हों आपीनहस्तपादां च न कन्यामुद्रहेद् बुधः ॥२१॥ न वामनां नातिदीर्घां नोद्रहेत्संहतभ्रवम् । न चातिच्छिद्रदशनां न करालग्रुखीं नरः।।२२।। पश्चमीं मातृपक्षाच पितृपक्षाच सप्तमीम्। गृहस्थश्रोद्वहेत्कन्यां न्यायेन विधिना नृप ॥२३॥ ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः। गान्धर्वराक्षसौ चान्यौ पैशाचश्राष्ट्रमो मतः ॥२४॥ एतेषां यस यो धर्मी वर्णस्थोक्तो महर्षिभिः । कुर्वीत दारग्रहणं तेनान्यं परिवर्जयेत् ॥२५॥ सधर्मचारिणीं प्राप्य गाईस्थ्यं सहितस्तया । समुद्रहेददात्येतत्सम्यगृढं महाफलम् ॥२६॥ होता है ॥ २६॥

तथा हाथ-पैर कुछ भारी हों, बुद्धिमान् पुरुष उस कन्यासे सम्बन्ध न करे ॥ २१ ॥ जो अति वामन (नाटी) अथवा अति दीर्घ (लम्बी) हो, जिसकी भृक्टियाँ जुड़ी हुई हों, जिसके दाँतोंमें अधिक अन्तर हो तथा जो दन्तुर (आगेको दाँत निकले हुए) मुखवाली हो उस स्नीसे कभी विवाह न करे ॥ २२ ॥ हे राजन ! मातृपक्षसे पाँचवीं पीढ़ी-तक और पितृपक्षसे सातवीं पीढ़ीतक जिस कन्याका सम्बन्ध न हो, गृहस्थ पुरुषको नियमानुसार उसीसे विवाह करना चाहिये ॥ २३ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्प, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच-ये आठ प्रकारके विवाह हैं॥ २४॥ इनमेंसे जिस विवाहको जिस वर्णके लिये महर्षियोंने धर्मानुकूल कहा है उसीके द्वारा दार-परिग्रह करे, अन्य विधियों-को छोड़ दे॥ २५॥ इस प्रकार सहधर्मिणीको प्राप्तकर उसके साथ गाईस्थ्यधर्मका पालन करे, क्योंकि उसका पालन करनेपर वह महान् फल देनेवाला

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीयेंऽशे दशमोऽध्यायः।।१०।। ----

ग्यारहवाँ अध्याय

गृहस्थसम्बन्धी सदाचारका वर्णन ।

सगर उवाच

गृहस्थस्य सदाचारं श्रोतुमिच्छाम्यहं मुने । लोकादसात्परसाच यमातिष्ठन हीयते ॥ १ ॥

और्व उवाच

श्रृयतां पृथिवीपाल सदाचारस लक्षणम्। सदाचारवता पुंसा जितौ लोकाबुभावपि।। २।। साधवः क्षीणदोपास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः । तेषामाचरणं यत्तु सदाचारस्स उच्यते ॥ ३ ॥ सप्तर्पयोऽथ मनवः प्रजानां पतयस्तथा। सदाचारस वक्तारः ccकर्तार्अवाप्महीयतेवशाः ४० मिन्ताहाँ, New Melhi. Digitized by eGangotri

सगर बोर्छ-हे मुने ! मैं गृहस्थके सदाचारों-को सुनना चाहता हूँ, जिनका आचरण करनेसे वह इहलोक और परलोक दोनों जगह पतित नहीं होता ॥ १ ॥

और्व बोले-हे पृथिवीपाल ! तुम सदाचारके लक्षण सुनो । सदाचारी पुरुष इहलोक और परलोक दोनोंहीको जीत लेता है।। २ ॥ 'सत्' शब्दका अर्थ साधु है और साधु वहीं है जो दोपरहित हो। उस साधु पुरुषका जो आचरण होता है उसीको सदाचार कहते हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! इस सदाचार-के वक्ता और कर्ता सप्तर्षिगण, मनु एवं प्रजापति त्राह्मे महर्ते चोत्थाय मनसा मतिमान्नृप । चाप्यविरोधिनम् ॥ ५ ॥ प्रवृद्धश्चिन्तयेद्धर्ममर्थ अपीडया तयोः कामग्रुभयोरिप चिन्तयेत । दृष्टादृष्ट्विनाशाय त्रिवर्गे समद्शिता ॥ ६ ॥ परित्यजेदर्थकामौ धर्मपीडाकरौ नृप । धर्ममप्यसुखोदकं लोकविद्विष्टमेव ततः कल्यं सम्रत्थाय कुर्यान्मूत्रं नरेश्वर ॥ ८॥ नैर्ऋत्यामिपुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भ्रुवः। दूरादावसथान्सूत्रं पुरीषं च विसर्जयेत् ॥ ९ ॥ पादावनेजनोच्छिप्टे प्रक्षिपेत्र गृहाङ्गणे ॥१०॥ आत्मच्छायां तरुच्छायां गोसूर्याग्न्यनिलांस्तथा। गुरुद्विजादींस्तु वुधो नाधिमेहेत्कदाचन ॥११॥ न कृष्टे सस्यमध्ये वा गोत्रजे जनसंसदि। न वर्त्मनि न नद्यादितीर्थेषु पुरुषर्पम ॥१२॥ नाप्सु नैवाम्भसस्तीरे इमशाने न समाचरेत्। उत्सर्ग वै पुरीषस्य मूत्रस्य च विसर्जनम् ॥१३॥ उद्ङ्युखो दिवा मुत्रं विपरीतमुखो निशि । कुर्वीतानापदि प्राज्ञो मूत्रोत्सर्गं च पार्थिव ॥१४॥ तृणैरास्तीर्य वसुधां वस्त्रप्रावृतमस्तकः। तिष्ठेनातिचिरं तत्र नैव किश्चिदुदीरयेत् ॥१५॥ वल्मीकमृषिकोद्भ्तां मृदं नान्तर्जलां तथा। शौचावशिष्टां गेहाच नादद्याल्लेपसम्भवाम् ॥१६॥

अणुप्राण्युपपन्नां च हलोत्खातां च पार्थिव ।

हे नृप ! बुद्धिमान् पुरुष खस्थ चित्तसे ब्राह्ममुहूर्त-में जगकर अपने धर्म और धर्माविरोधी अर्थका चिन्तन करे ॥ ५ ॥ तथा जिसमें धर्म और अर्थकी क्षति न हो ऐसे कामका भी चिन्तन करे। इस प्रकार दृष्ट और अदृष्ट अनिष्टका निवृत्तिके लिये धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गके प्रति समान भाव रखना चाहिये ॥ ६ ॥ हे नृप ! धर्मविरुद्ध अर्थ और काम दोनोंका त्याग कर दे तथा ऐसे धर्मका भी आचरण न करे जो उत्तरकालमें दुःखमय अथवा समाज-विरुद्ध हो ॥ ७ ॥

हे नरेश्वर ! तदनन्तर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रथम मूत्रत्याग करे। प्रामसे नैऋत्यकोणमें जितनी दूर वाण जा सकता है उससे आगे बढ़कर अथवा अपने निवास-स्थानसे दूर जाकर मल्र-मूत्र त्याग करे। पैर घोया हुआ और ज्ठा जल अपने घरके आँगनमें न डाले ॥ ८—१०॥ अपनी या दृक्षकी छायाके ऊपर तथा गौ, सूर्य, अग्नि, वायु, गुरु और द्विजातीय पुरुषके सामने बुद्धिमान् पुरुष कमी मळ-म्त्रत्याग न करे ॥ ११ ॥ इसी प्रकार हे पुरुपर्पम ! जुते हुए खेतमें,सस्यसम्पन्न भूमिमें, गौओंके गोष्ठमें, जन-समाजमें, मार्गके वीचमें, नदी आदि तीर्थस्थानोंमें, जल अथवा जलाशयके तटपर और इमशानमें मी कभी मल-मूत्रका त्याग न करे ॥ १२-१३ ॥ हे राजन् ! कोई विशेष आपत्ति न हो तो प्राज्ञ पुरुपको चाहिये कि दिनके समय उत्तर-मुख और रात्रिके समय दक्षिण-मुख होकर मृत्रत्याग करे ॥ १४ ॥ मछ-त्यागके समय पृथिवीको तिनकोंसे और सिरको वस्रसे डाँप छे तथा उस स्थानपर अधिक समयतक न रहे और न कुछ बोले ही ॥ १५॥

हे राजन् ! बाँबीकी, चूहोंद्वारा विलसे निकाली हुई, जलके भीतरकी, शौचकर्मसे वची हुई, घरके ळीपनकी,चींटी आदि छोटे-छोटे जीवोंद्वारा निकाछी हुई और हलसे उखाड़ी हुई-इन सब प्रकारकी मृत्तिकाओं-परित्यजेन्युदो होतास्सकलाश्शीचकर्मणि ॥१७॥ का शोच कर्ममें उपयोग न करे ॥ १६-१७॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

एका लिङ्गे गुदे तिस्रो दश वामकरे नृप। हस्तद्वये च सप्त स्युर्मृद्क्शौचोपपादिकाः ॥१८॥ अच्छेनागन्धलेपेन जलेनाबुद्बुदेन च। आचामेच मृदं भ्रयस्तथादद्यात्समाहितः ॥१९॥ निष्पादिताङ्क्तिशौचस्तु पादावस्युक्ष्य तैः पुनः । त्रिःपिवेत्सिळळं तेन तथा द्विः परिमार्जयेत् ॥२०॥ शीर्षण्यानि ततः खानि मूर्द्वानं च समालभेत्। बाहू नार्भि च तोयेन हृद्यं चापि संस्पृशेत् ॥२१॥ स्वाचान्तस्त ततः क्वर्यात्प्रमान्केश्वप्रसाधनम् । आदर्शञ्जनमाङ्गल्यं दूर्वाद्यालम्भनानि च ॥२२॥ ततस्खवर्णधर्मेण वृत्त्यर्थं च धनार्जनम् । कुर्वीत श्रद्धासम्पन्नो यजेच पृथिवीपते ॥२३॥ सोमसंस्था हविस्संस्थाः पाकसंस्थास्तु संस्थिताः। धने यतो मनुष्याणां यतेतातो धनार्जने ॥२४॥ नदीनदत्तराकेष देवखातजलेष नित्यिक्रयार्थं स्नायीत गिरिप्रस्रवणेषु च ॥२५॥ क्रपेषुद्धततोयेन स्नानं कुर्वीत वा श्रुवि। गृहेषुद्धृततोयेन ह्यथवा भुव्यसम्भवे ॥२६॥ श्चिवस्वधरः स्नातो देवर्षिपितृतर्पणम् । तेपामेव हि तीर्थेन कुर्वीत सुसमाहितः ॥२७॥ त्रिरपः त्रीणनार्थाय देवानामपवर्जयेत् । ऋषीणां च यथान्यायं सकुचापि प्रजापतेः ॥२८॥ पितृणां प्रीणनार्थाय त्रिरपः पृथिवीपते । पितामहेम्यश्र तथा त्रीणयेत्प्रपितामहान् ॥२९॥ मातामहाय तित्पत्रे तित्पत्रे च समाहितः। दद्यात्<u>पेत्रेण</u> तीर्थेन काम्यं चान्यच्छृणुष्य मे ।।३०।।

हे नृप ! लिंगमें एक बार, गुदामें तीन बार. बायें हाथमें दश वार और दोनों हाथोंमें सात वार मृत्तिका लगानेसे शौच सम्पन होता है॥ १८॥ तदनन्तर गन्ध और पे.नरहित आचमन करे । तथा फिर सावधानतापूर्वक वहत-सी मृत्तिका ले ॥ १९॥ उससे चरण-शुद्धि करनेके अनन्तर फिर पैर घोकर तीन वार कुड़ा करे और दो बार मुख धोवे ॥२०॥ तत्पश्चात् जल लेकर शिरोदेशमें स्थित इन्द्रियरन्ध्र, मूर्द्धा, वाहु, नामि और हृदयको स्पर्श करे ॥ २१ ॥ फिर भली प्रकार स्नान करनेके अनन्तर केश सँवारे और दर्पण, अञ्चन तथा दुर्वा आदि मांगलिक द्रन्योंका यथाविधि न्यवहार करे ॥ २२ ॥ तदनन्तर हे पृथिवीपते ! अपने वर्णधर्मके अनुसार आजीविकाके छिये धनोपार्जन करे और श्रद्धा-पूर्वक यज्ञानुष्ठान करे॥ २३ ॥ सोमसंस्था, हविस्संस्था और पाकसंस्था-इन सब धर्म-कर्मीका आधार धन ही है। अतः मनुष्योंको धनोपार्जनका यत करना चाहिये ॥ २४ ॥ नित्यकर्मीं के सम्पादनके लिये नदी, नद, तडाग, देवाल्योंकी वावड़ी और पर्वतीय झरनोंमें स्नान करना चाहिये॥ २५॥ अथवा कुँएसे जल खींचकर उसके पासकी भूमिपर स्नान करे और यदि वहाँ भूमिपर स्नान करना सम्भव न हो तो कुँएसे खींचकर छाये हुए जल्से घरहीमें नहा ले ॥ २६॥

स्नान करनेके अनन्तर शुद्ध वस्न धारण कर देवता, ऋषिगण और पितृगणका उन्होंके तीथोंसे तर्पण करे ।। २७ ।। देवना और ऋषियोंके तर्पणके छिये तीन-तीन बार तथा प्रजापतिके छिये एक वार जल छोड़े ।।२८।। हे पृथिवीपते ! पितृगग और पितामहोंकी प्रसन्तताके छिये तीन बार जल छोड़े तथा इसी प्रकार प्रपितामहोंको भी सन्तुष्ट करे एवं मातामह (नाना) और उनके पिता तथा उनके पिताको भी सावधानतापूर्वक पितृ-तीर्थसे जल-दान करे । अब काम्य तर्पणका वर्णन करता हूँ, श्रवण करो ॥२९-३०॥

🕾 गौतमस्यृतिके अष्टम अध्यायमें कहा है—

'औपासनमष्टका पार्वणश्राद्धः श्रावण्याग्रहायणी चैत्र्याश्चयुजीति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः। अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावाग्रयणं चातुर्मास्यानि निरूढपशुबन्त्रस्सीत्रामणीति सप्त हनिर्यञ्जसंस्थाः। अग्निहोमोऽत्यिग्निहोम उत्तयः षोडशी वाजपयोऽतिरात्राप्तोमा इति सप्त सोमसंस्थाः।

औषासन, घष्टका श्राह्म, पार्वण श्राह्म तथा श्रावण अग्रहायण चैत्र और आश्विन मासकी पूर्णिमाएँ-—ये सात 'पार्क-पज-संस्था' हैं, चान्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास, आग्रयण, चातुमास्य, यज्ञपश्चान्य और सौत्रामणी ये सात 'हवि पंजसंस्था' हैं यथा अग्निष्टोम, अत्यिग्निष्टीम, वस्य, पार्डिशी, बाजपैय, अतिरात्र और स्नासीयोम—ये सात् 'सोमयज्ञसंस्था' हैं ।

मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे गुरुपत्न्ये तथा नृप । गुरूणां मातुलानां च स्निग्धमित्राय भूभुजे ।।३१।। इदं चापि जपेदम्यु दद्यादातमेच्छया नृप । उपकाराय भूतानां कृतदेवादितर्पणम् ॥३२॥ देवासुरास्तथा यक्षा नागगन्धर्वराक्षसाः। पिशाचा गुह्यकास्सिद्धाः कूष्माण्डाः पशवः खगाः॥ जलेचरा भृनिलया वाय्वाहाराश्च जन्तवः। दृप्तिमेतेन यान्त्वाशु मह्त्तेनाम्बुनाखिलाः ॥३४॥ नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः। तेपामाप्यायनायैतदीयते सलिलं मया ॥३५॥ ये बान्धवायान्धवा वा येऽन्यजन्मनि वान्धवाः । ते तृप्तिमखिला यान्तु ये चास्मत्तोयकाङ्क्रिणः ।३६। यत्र क्रचनसंस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम् । इद्माप्यायनायास्तु मया दत्तं तिलोद्कम् ॥३७॥ काम्योदकप्रदानं ते मयंतत्कथितं नृप। यहत्त्वा प्रीणयत्येतन्मनुष्यस्सकलं जगत्। जगदाप्यायनोद्भतं पुण्यमामोति चानघ ॥३८॥ दत्त्वा काम्योदकं सम्यगेतेभ्यः श्रद्धयान्वितः । आचम्य च ततो दद्यात्सूर्याय सलिलाञ्जलिम् ।३९। नमो विवखते ब्रह्मभास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मसाक्षिणे ॥४०॥ ततो गृहार्चनं कुर्यादभीष्टसुरपूजनम्। जलामिपेकैः पुष्पेश्र भूपाद्येश्र निवेदनम् ॥४१॥ अपूर्वमित्रहोत्रं च कुर्यात्प्राग्त्रह्मणे नृप ॥४२॥ प्रजापति समुद्दिश्य दद्यादाहुतिमादरात्। गुह्येम्यः काञ्यपायाथ ततोऽनुमतये ऋमात् ।।४३।। तच्छेपं मणिके पृथ्वीपर्जन्येभ्यः क्षिपेत्ततः ।

'यह जल माताके लिये हो, यह प्रमाताके लिये हो, यह वृद्धाप्रमाताके लिये हो, यह गुरुपत्नीको, यह गुरु-को,यह मामाको, यह प्रिय मित्रको तथा यह राजा-प्राप्त हो-हे राजन् ! यह जपता हुआ समस्त भूतोंके हितके छिये देवादितर्पण करके अपनी इच्छानुसार अभिलिषत सम्बन्धीके लिये जलदान करे ॥ ३१-३२ ॥ [देवादि-तर्पणके समय इस प्रकार कहे-] 'देव, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूप्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर और वायु-भक्षक आदि सभी प्रकारके जीव मेरे दिये हुए इस जलसे तृप्त हों ॥ ३३-३४ ॥ जो प्राणी सन्पूर्ण नरकोंमें नाना प्रकारकी यातनाएँ भोग रहे हैं उनकी तृप्तिके छिये मैं यह जलदान करता हूँ ॥ ३५॥ जो मेरे बन्धु अथवा अवन्धु हैं, तथा जो अन्य जन्मोंमें मेरे वन्धु थे एवं और भी जो-जो मुझसे जलकी इच्छा रखनेवाले हैं वे सब मेरे दिये हुए जलसे परितृप्त हों ॥ ३६ ॥ क्षुधा और तृष्णासे व्याकुछ जीव कहीं भी क्यों न हों मेरा दिया हुआ यह तिलोदक उनको तृप्ति प्रदान करें ॥ ३७ ॥ हे नृप! इस प्रकार मैंने तुमसे यह काम्यतर्पणका निरूपण किया, जिसके करनेसे मनुष्य सकल संसारको तृप्त कर देता है और हे अनघ ! इससे उसे जगत्की तृप्तिसे होनेवाला पुण्य प्राप्त होता है ॥ ३८॥

इस प्रकार उपरोक्त जीवोंको श्रद्धापूर्वक काम्य-जल-दान करनेके अनन्तर आचमन करे और फिर सूर्य-देवको जलाञ्जलि दे ॥३९॥ [उस समय इस प्रकार कहे —] 'भगवान् विवखान्को नमस्कार है जो वेद-वेद्य और विष्णुके तेजस्खरूप हैं तथा जगत्को उत्पन्न करनेवाले, अति पवित्र एवं कर्मोंके साक्षी हैं'॥४०॥

तदनन्तर जलाभिषेक और पुष्प तथा घूपादि निवेदन करता हुआ गृहदेव और इष्टदेवका प्जन करे ॥४१॥ हे नृप ! फिर अपूर्व अग्निहोत्र करे, उसमें पहले ब्रह्माको और तदनन्तर क्रमशः प्रजापति, गुझ, काश्यप और अनुमतिको आदरपूर्वक आहुतियाँ दे ॥ ४२-४३॥ उससे बचे हुए हन्यको पृथिवी और मेघके उद्देश्यसे उदकपात्रमें, * धाता और विधाताके उद्देश्यसे

[#] वह जल भरा पात्र जो अग्निहोत्र करते समय समीपमें रख खिया जाता है और जिसमें 'इद्ब मम' कह-कर आहुत्तिका शेष माम खोहा जाता है । vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

द्वारे घातुर्विधातुश्र मध्ये च ब्रह्मणे क्षिपेत् ॥४४॥ गृहस्य पुरुषच्यात्र दिग्देवानपि मे शृणु ॥४५॥

इन्द्राय धर्मराजाय वरुणाय तथेन्दवे । प्राच्यादिषु बुघो दद्याद्धुतशेषात्मकं वलिम्।।४६॥ प्रागुत्तरे च दिग्भागे धन्वन्तरिवर्लि बुधः । निर्विपेद्वैश्वदेवं च कर्म कुर्यादतः परम्।।४७।। वायव्यां वायवे दिश्च समस्तासु यथादिशम्। ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय भानवे च क्षिपेद्वलिम् ॥४८॥ विश्वेदेवान्विश्वभूतानथ विश्वपतीन्पितृन् । यक्षाणां च सम्रद्दिश्य वलिं दद्यान्नरेश्वर ॥४९॥

ततोऽन्यदत्रमादाय भूमिभागे शुचौ बुधः। द्वादशेपभृतेभ्यस्स्वेच्छ्या सुसमाहितः॥५०॥ देवा मनुष्याः पश्वो वयांसि सिद्धास्सयक्षोरगदैत्यसङ्घाः ।

त्रेताः पिशाचास्तरवस्समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मयात्र दत्तम् ॥५१॥

पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या कमंनिवन्धबद्धाः। **बुभुक्षिताः**

प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयात्रं तेम्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥५२॥

येषां न माता न पिता न बन्ध-र्नेवानसिद्धिर्न तथानमस्ति ।

तत्त्रप्रयेऽसं भ्रवि दत्तमेतत् ते यान्तु तृप्तिं मुदिता भवन्तु ॥५३॥

भूतानि सर्वाणि तथान्नमेत-

दहं च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति। तसादहं भृतानकायभृत-

मनं प्रयच्छामि भवाय तेषाम्।।५४।।

चतुर्दशों भूतगणो य एष

तत्र स्थिता येऽखिलभूतसङ्घाः।

द्वारके दोनों ओर तथा ब्रह्माके उद्देशसे घरके मध्यमें छोड़ दे । हे पुरुषन्यात्र ! अव मैं दिक्पालगणकी पूजाका वर्णन करता हूँ, अवण करो ॥ ४४-४५॥

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें क्रमशः इन्द्र, यम, वरुण और चन्द्रमाके लिये हुतशिष्ट सामग्रीसे वलि प्रदान करे ॥ ४६ ॥ पूर्व और उत्तर-दिशाओं में भन्वन्तरिके लिये वलि दे तथा इसके अनन्तर वलिवैश्वदेव-कर्म करे ॥ ४७ ॥ विख्वैश्वदेवके समय वायन्यकोणमें वायुको तथा अन्य समस्त दिशाओंमें वायु एवं उन दिशाओंको बलि दे, इसी प्रकार ब्रह्मा, अन्तरिक्ष और सूर्यको भी उनकी दिशाओंके अनुसार [अर्थात् मध्यमें] बि प्रदान करे ॥ ४८ ॥ फिर हे नरेश्वर ! विद्वेदेवों, विश्वभूतों, विश्वपतियों, पितरों और यक्षोंके उद्देश्यसे [यथास्थान] विछ दान करे ॥ ४९ ॥

तदनन्तर बुद्धिमान् व्यक्ति और अन्न छेकर पवित्र पृथिवीपर समाहित चित्तसे वैठकर स्वेच्छानुसार समस्त प्राणियोंको विछ प्रदान करे ॥५०॥ [उस समय इस प्रकार कहे—] 'देवता, मनुष्य, पश्च, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, दैत्य, प्रेत, पिशाच, बृक्ष तथा और भी चींटी आदि कीट-पतङ्क जो अपने कर्मबन्धनसे वँधे हुए क्षुधातुर होकर मेरे दिये हुए अनकी इच्छा करते हैं, उन सबके छिये मैं यह अन्न दान करता हूँ। वे इससे परितृप्त और आनन्दित हों ॥५१-५२॥ जिनके माता, पिता अथवा कोई और वन्धु नहीं हैं तथा अन्न प्रस्तुत करनेका साधन और अन्न भी नहीं है उनकी तृप्तिके छिये पृथिवीपर मैंने यह अन रखा है; वे इससे तृप्त होकर आनन्दित हों ॥५३॥ सम्पूर्ण प्राणी, यह अन और मैं—सभी विष्णु हैं; क्योंकि उन्से मिन्न और कुछ है ही नहीं। अतः मैं समस्त भूतोंका शारीररूप यह अन उनके पोपणके लिये दान करता हूँ ॥५४॥ यह जो चौदह प्रकारका* प्राणिगण उसमें जितने भी भूतसमुदाय है

[🕸] चौदह भूतसमुदायोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है-'अष्टिविधं देवत्वं त्यां मार्तिकः प्राप्त Shastri Collection, New Della, Digitized by eGantaria; सर्गः ॥'

तृष्त्यर्थमनं हि मया विसृष्टं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥५५॥
इत्युचार्य नरो द्यादनं श्रद्धासमन्वितः ।
भ्रुवि सर्वोपकाराय गृही सर्वाश्रयो यतः ॥५६॥
श्रचण्डालविहङ्गानां भ्रुवि द्यान्नरेश्वर ।
ये चान्ये पतिताः केचिद्पुत्राः सन्ति मानवाः५७
ततो गोदोहमात्रं वै कालं तिष्ठेद् गृहाङ्गणे ।
अतिथिग्रहणार्थाय तद्ध्वं तु यथेच्छ्या ॥५८॥
अतिथिं तत्र सम्म्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना ।
तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥५९॥

गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिम्रुत्पादयेद् गृही ॥६०॥ अज्ञातकुलनामानमन्यदेशादुपागतम् ।

श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्लोत्तरेण च।

पूजयेदतिथिं सम्यङ् नैकग्रामनिवासिनम् ॥६१॥ अकिञ्चनमसम्बन्धमज्ञातकुलशीलिनम् ।

असम्पूज्यातिथि भ्रुक्त्वा मोक्तुकामं त्रजत्यधः ६२ स्वाध्यायगोत्राचरणमण्ड्वा च तथा कुलम् ।

हिरण्यगर्भचुद्धचा तं मन्येताभ्यागतं गृही ॥६३॥

पित्रर्थं चापरं विप्रमेकमप्याशयेन्नृप।

तद्देश्यं विदिताचारसम्भूति पाश्चयज्ञिकम् ॥६४॥

अन्नाग्रश्च समुद्धत्य हन्तकारोपकल्पितम्।

निर्वापभूतं भूपाल श्रोत्रियायोपपादयेत् ॥६५॥ ब्राह्मणको भोजन करावे ॥६५॥

अवस्थित हैं उन सबकी तृप्तिके छिये मैंने यह अन प्रस्तुत किया है; वे इससे प्रसन्न हों' ॥५५॥ इस प्रकार उच्चारण करके गृहस्थ पुरुष श्रद्धापूर्वक समस्त जीवोंके उपकार-के छिये पृथिवीमें अन्नदान करे, क्योंकि गृहस्थ ही सबका आश्रय है ॥५६॥ हे नरेस्वर ! तदनन्तर कुत्ता, चाण्डाछ, पक्षिगग तथा और भी जो कोई पतित एवं पुत्रहीन पुरुष हों उनकी तृप्तिके छिये पृथिवीमें विष्टमाग रखे ॥५७॥

फिर गो-दोहनकालपर्यन्त अथवा इच्छानुसार इससे भी कुछ अधिक देर अतिथि ग्रहण करनेके छिये घरके आँगनमें रहे ॥ ५८ ॥ यदि अतिथि आ जाय तो उसका खागतादिसे तथा आसन देकर और चरण घोकर सत्कार करे ॥५९॥ फिर श्रद्धापूर्वक मोजन कराकर मधुर वाणीसे प्रश्नोत्तर करके तथा उसके जानेके समय पीछे-पीछे जाकर उसको प्रसन्न करे ॥ ६०॥ जिसके कुछ और नामका कोई पता न हो तथा अन्य देशसे आया हो उसी अतियिंका सत्कार करे, अपने ही गाँवमें रहनेवाछे पुरुपको अतिथिरूपसे पूजा करनी उचित नहीं है ॥६१॥ जिसके पास कोई सामग्री न हो, जिससे कोई सम्वन्य न हो, जिसके कुळ-शीळका कोई पता न हो और जो भोजन करना चाहता हो उस अतिथिका सत्कार किये विना भोजन करनेसे मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि आये हुए अतिथिके अध्ययन, गोत्र, आचरण और कुछ आदिके विषयमें कुछ भी न पूछकर हिरण्यगर्भ-बुद्धिसे उसकी पूजा करे ॥६३॥ हे नृप ! अतिथि-सत्कारके अनन्तर अपने ही देशके एक और पाञ्चयिकक ब्राह्मणको जिसके आचार और कुछ आदिका ज्ञान हो पितृगणके **छिये भोजन करावे। ॥ ६**४॥ हे भूपाल! [मनुष्ययज्ञकी विधिसे 'मनुष्येभ्यो हन्त' इत्यादि मन्त्रोचारणपूर्वक] पहले ही निकालकर अलग रखे हुए हन्तकार नामक अन्नसे उस श्रोत्रिय

अर्थात् आठ प्रकारका देवसम्बन्धी, पाँच प्रकारका तिर्यंग्योनिसम्बन्धी और एक प्रकारका मनुष्ययोनि-सम्बन्धी—यह संक्षेपसे भौतिक सर्ग कहलाता है। इनका पृथक्-पृथक् विवरण इस प्रकार है—

सिद्धगृह्यकगन्धर्वयक्षराक्षसपत्रगाः । विद्याघराः पिशाचाश्च निर्दिष्टा देवयोनयः ॥ सरोसृपा वानराश्च पशवा मृगपक्षिणः । तिर्यश्च इति कथ्यन्ते पश्चेताः प्राणिजातयः ॥

सरामुपा बानराश्च परावा जुगनावना । तानम रता प्रकार माना माना माना गर्या है तथा अर्थ—सिंद, गुह्मक, गन्धर्व, यक्ष, राज्ञस, सर्प, विद्याधर और पिशाच-ये आठ देवयोनियाँ मानी गयी हैं तथा सरीस्प, वानर, प्रा, मृग, (जंगली प्राणी) और पक्षी—ये पाँच तिर्यंक् योनियाँ कही गयी हैं।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

दत्त्वा च भिक्षात्रितयं परित्राइब्रह्मचारिणाम् । इच्छया च बुधो दद्याद्विभवे सत्यवारितम् ॥६६॥ इत्येतेऽतिथयः प्रोक्ताः प्रागुक्ता भिक्षवश्र ये। चतुरः पूजयित्वैतान्नृप पापात्प्रग्रच्यते ॥६७॥ अतिथिर्यस्य भन्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ।।६८।। भाता प्रजापतिः शको वह्निर्वसुगणोऽर्यमा । प्रविक्यातिथिमेते वै ग्रुझन्तेऽनं नरेश्वर ॥६९॥ तसादतिथिपूजायां यतेत सततं नरः। स केवलमधं अङ्क्ते यो अङ्क्ते ह्यतिथिं विना ।७०। ततः खवासिनीदुः खिगभिणीवृद्धबालकान् । भोजयेत्संस्कृतान्नेन प्रथमं चरमं गृही ॥७१॥ अश्रुक्तवत्सु चैतेषु भुज्जनश्रङ्के स दुष्कृतम् । मृतश्र गत्वा नरकं श्लेष्मभ्रग्जायते नरः ॥७२॥ अस्नाताशी मलं श्रङ्क्ते ह्यजपी पूयशोणितम्। असंस्कृतानशुङ्मूत्रं वालादिप्रथमं शकृत्।।७३॥ अहोमी च कुमीन्धुङ्क्ते अद्त्वा विषमश्तुते।।७४।। तसाच्छृणुष्व राजेन्द्र यथा भुझीत वै गृही । भुक्ततश्च यथा पुंसः पापवन्धो न जायते ॥७५॥ इह चारोग्यविपुलं बलबुद्धिस्तथा नृप। भवत्यरिष्टशान्तिश्च वैरिपक्षाभिचारिका।।७६।। स्नातो यथावत्कृत्वा च देवर्षिपितृतर्पणम् । प्रशस्तरत्वपाणिस्तु भुङ्गीत प्रयतो गृही।।७७॥ कृते जपे हुते वह्नौ शुद्धवस्त्रधरो नृप ।

इस प्रकार [देवता, अतिथि और ब्राह्मणको] ये तीन मिक्षाएँ देकर, यदि सामर्थ्य हो तो परित्राजक और ब्रह्मचारियोंको भी विना छौटाये हुए इच्छानुसार भिक्षा दे ॥६६॥ तीन पहले तथा भिक्षुगण-ये चारों अतिथि कहन्त्राते हैं। हे राजन् ! इन चारोंका पूजन करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ६७ ॥ जिसके घरसे अतिथि निराश होकर छौट जाता है उसे वह अपने पाप देकर उसके शुभकर्मोंको छे जाता है ॥६८॥ हे नरेखर ! धाता. प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण और अर्थमा—ये समस्त देवगण अतिथिमें प्रविष्ट होकर अन भोजन करते हैं ॥६९॥ अतः मनुष्यको अतिथि-पूजाके लिये निरन्तर प्रयत करना चाहिये। जो पुरुष अतिथिके विना भोजन करता है वह तो केवल पाप ही भोग करता है ॥७०॥ तदनन्तर गृहस्य पुरुष पितृगृहमें रहनेवाली विवाहिता कन्या, दुखिया और गर्मिणी स्त्री तथा वृद्ध और बालकोंको संस्कृत अन्नसे भोजन कराकर अन्तमें खयं भोजन करे ॥७१॥ इन सबको भोजन कराये बिना जो खयं भोजन कर छेता है वह पापमय भोजन करता है और अन्तमें मरकर नरकमें **इ** होता है ॥७२॥ जो व्यक्ति स्नान किये विना भोजन करता है वह मल मक्षण करता है, जप किये बिना भोजन करनेवाला रक्त और पूय पान करता है, संस्कारहीन अन खानेवाला मूत्र पान करता है तथा जो बालक-वृद्ध आदिसे पहले आहार करता है वह विष्टाहारी है। इसी प्रकार विना होम किये भोजन करनेवाला मानो कीड़ोंको खाता है और बिना दान किये खानेवाला विष-भोजी है ॥ ७३-७४॥

पुण्यगन्धरशस्तमाल्यधारी चैव नरेश्वर ॥७८॥ एकवस्त्रधरोऽथाईपाणिपादो महीपते । विशुद्धवद्नः प्रीतो भुञ्जीत न विदिङ्गुखः॥७९॥ प्राङ्ग्रखोदङ्ग्रखो वापि न चैवान्यमना नरः। अनं प्रशस्तं पथ्यं च प्रोक्षितं प्रोक्षणोदकैः ॥८०॥ न कुत्सिताहृतं नैव जुगुप्सावदसंस्कृतम्। दत्त्वा त भक्तं शिष्येभ्यः क्षुधितेभ्यस्तथा गृही ।८१। प्रशस्तशुद्धपात्रे तु भुङ्गीताकुपितो द्विजः ॥८२॥ नासन्दिसंस्थिते पात्रे नादेशे च नरेश्वर। नाकाले नातिसङ्कीणें दत्त्वाग्रं च नरोऽग्रये ॥८३॥ मन्त्राभिमन्त्रितं शस्तं न च पर्युपितं नृप । अन्यत्र फलमूलेभ्यक्शुष्कशाखादिकात्तथा ॥८४॥ तद्वद्वारीतकेम्यश्च गुडभक्ष्येम्य एव च । भुञ्जीतोद्धृतसाराणि न कदापि नरेश्वर ॥८५॥ नाशेषं पुरुषोऽश्रीयादन्यत्र जगतीपते। मध्वम्बुद्धिसर्पिभ्यस्सक्तुभ्यश्च विवेकवान् ॥८६॥

अश्रीयात्तन्मयो भूत्वा पूर्व तु मधुरं रसम् ।
लवणाम्लौ तथा मध्ये कडुतिक्तादिकांस्ततः॥८७॥
प्राग्द्रवं पुरुषोऽश्रीयान्मध्ये कठिनभोजनः ।
अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलारोग्ये न मुश्चिति ॥८८॥
अनिन्धं मक्षयेदित्थं वाग्यतोऽस्रमकुत्सयन् ।
पश्चप्रासं महामौनं प्राणाद्याप्यां हि तत् ॥८९॥

वृद्धों) को भोजन करा सुन्दर सुगन्धयुक्त उत्तम पुष्प-माला तथा एक ही वस्त्र धारण किये हाथ-पाँव और मुँह धोकर प्रीतिपूर्वक भोजन करे। हे राजन् ! मोजनके समय इधर-उधर न देखे ॥७८-७९॥ मनुष्यको चाहिये कि पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके, अन्यमना न होकर उत्तम और पथ्य अनको प्रोक्षणके लिये रखे हुए मन्त्रपृत जलसे छिड़क कर भोजन करे ॥८०॥ जो अन्न दुराचारी व्यक्तिका लाया हुआ हो, घृणाजनकं हो अथवा वलिवैस्वदेव आदि संस्कारशून्य हो उसको प्रहण न करे। हे द्विज ! गृहस्थ पुरुष अपने खाद्यमेंसे कुछ अंश अपने शिष्य तथा अन्य भुखे-प्यासोंको देकर उत्तम और शुद्ध पात्रमें शान्त-चित्तसे भोजन करे ॥८१-८२॥ हे नरेवर ! किसी वेत आदिके आसन (कुर्सी आदि) पर रखे हुए पात्रमें, अयोग्य स्थानमें, असमय (सन्ध्या आदि काल) में अथवा अत्यन्त संकुचित स्थानमें कभी भोजन न करे। मनुष्यको चाहिये कि [परोसे हुए भोजनका । अग्र-भाग अग्निको देकर भोजन करे ॥८३॥ हे नृप ! जो अन मन्त्रपृत और प्रशस्त हो तथा जो वासी न हो उसीको भोजन करे। परन्तु फल, मूल और सूखी शाखाओंको तथा विना पकाये हुए छेहा (चटनी) आदि और गुड़के पदार्थींके छिये ऐसा नियम नहीं है। हे नरेवर! सारहीन पदार्थींको कभी न खाय ॥८४-८५॥ हे पृथिवीपते ! विवेकी पुरुष मधु, जल, दही, घी और सत्त्व सिवा और किसी पदार्थ-को परा न खाय ॥८६॥

मोजन एकाप्रचित्त होकर करे तथा प्रथम मधुर-रस, फिर छ्वण और अम्छ (खट्टा) रस तथा अन्तमें कटु और तीखे पदार्थोंको खाय ॥८७॥ जो पुरुष पहले द्रव पदार्थोंको, बीचमें कठिन वस्तुओंको तथा अन्तमें फिर द्रव पदार्थोंको ही खाता है वह कमी बल तथा आरोग्यसे हीन नहीं होता ॥८८॥ इस प्रकार वाणीका संयम करके अनिषिद्ध अन्न मोजन करे । अन्नका निन्दा न करे । प्रथम पाँच प्रास अत्यन्त मौन होकर प्रहण करे, उनसे पञ्चप्राणोंकी तृप्ति होती है ॥८९॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

भुक्तवा सम्यगथाचम्य प्राङ्ग्रखोदङ्ग्रखोऽपि वा । यथावत्प्रनराचामेत्पाणी प्रक्षाल्य मूलतः ॥९०॥

खस्यः प्रशान्तचित्तस्त कृतासनपरिग्रहः। अभीष्टदेवतानां तु कुर्वीत सरणं नरः।।९१।। अग्निराप्याययेद्धातुं पार्थिवं पवनेरितः। दत्तावकाशं नभसा जरयत्वस्तु मे सुखम्।।९२॥ अनं बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च । मवत्येतत्परिणतं ममास्त्वच्याहतं सुखम् ॥९३॥ प्राणापानसमानानामुदानच्यानयोस्तथा अनं पुष्टिकरं चास्तु ममाप्यन्याहतं सुखम् ॥९४॥ अगस्तिरप्रिवेडवानलश्र

भुक्तं मयात्रं जरयत्वशेषम्। सुखं च मे तत्परिणामसम्भवं यच्छन्त्वरोगो मम चास्तु देहे ॥९५॥ विष्णुस्समस्तेन्द्रियदेहदेही

प्रधानभूतो भगवान्यथैकः। सत्येन तेनात्तमशेषमन्न-मारोग्यदं मे परिणाममेत् ॥९६॥

विष्णुरत्ता तथैवानं परिणामश्च वै तथा। सत्येन तेन मद्भक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा।।९७॥ इत्युचार्य खहस्तेन परिमृज्य तथोदरम्। अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रतः ॥९८॥ सच्छास्रादिविनोदेन सन्मार्गादविरोधिना । दिनं नयेत्ततस्सन्ध्याग्रुपतिष्ठेत्समाहितः ॥९९॥

दिनान्तसन्ध्यां सूर्येण पूर्वामृक्षेर्युतां बुधः । उपितष्ठेद्यथान्याय्यं सम्यगाचम्य पार्थिव ।।१००।।

मोजनके अनन्तर भली प्रकार आचमन करे और फिर पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके हाथोंको उनके मृह्रदेशतक धोकर विधिपूर्वक आचमन करे ॥ ९०॥

तदनन्तर, खस्य और शान्त-चित्तसे आसनपर वैठ-कर अपने इष्टदेवोंका चिन्तन करे ॥ ९१ ॥ [और इस प्रकार करे-] "[प्राणरूप] पवनसे प्रज्वित हुआ जठरामि आकाशके द्वारा अवकाशयुक्त अनका परिपाक करे और [फिर अन्नरससे] मेरे शरीरके पार्थिव धातओंको पृष्ट करे जिससे मुझे सुख प्राप्त हो ॥९२॥ यह अन मेरे शरीरस्थ पृथिवी, जल, अग्नि और वायुका बल बढ़ानेबाला हो और इन चारों तत्त्वोंके रूपमें परिणत हुआ यह अन ही मुझे निरन्तर सुख देने-वाला हो ॥ ९३॥ यह अन्न मेरे प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानकी पुष्टि करे तथा मुझे भी निर्वाध सुखकी प्राप्ति हो ॥ ९४ ॥ मेरे खाये हुए सम्पूर्ण अन्नका अगस्ति नामक अग्नि और वडवानल परिपाक करें, मुझे उसके परिणामसे होनेवाला सुख प्रदान करें और उससे मेरे शरीरको आरांग्यता प्राप्त हो ॥ ९५ ॥ 'देह और इन्द्रियादिके अधिष्ठाता एकमात्र भगवान् विष्णु ही प्रधान हैं'-इस सत्यके बलसे मेरा खाया हुआ समस्त अन परिपक्त होकर मुझे आरोग्यता प्रदान करे ॥ ९६ ॥ भोजन करनेवाला, मोज्य अन और उसका परिपाक-ये सब विष्णु ही हैं'-इस सत्य भावनाके वल्से मेरा खाया हुआ यह अन पच जाय" ॥ ९७ ॥ ऐसा कहकर अपने उदरपर हाथ पेरे और सावधान होकर अधिक श्रम उत्पन्न न करनेवाले कार्योंमें लग जाय ॥ ९८ ॥ सच्छास्नोंका अवलोकन आदि सन्मार्गके अविरोधी विनोदोंसे शेष दिनको व्यतीत करे और फिर सायंकालके समय सावधानतापूर्वक सन्ध्योपासन करे ॥ ९९ ॥

हे राजन् ! बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि सायं-कालके समय सूर्यके रहते हुए और प्रातःकाल तारा-गणके चमकते हुए ही भली प्रकार आचमनादि करके विधिपूर्वक सन्ध्योपासन करे ॥१००॥ हे पार्थिव ! सर्वकालमुपस्यानं सन्ध्यमोः पार्थिवेष्यते । astri Collection New Della Digitized by edangoli अशुचिता), अशौच

अन्यत्र स्तकाशाँचविश्रमातुरभीतितः ॥१०१॥ स्र्येणाभ्युदितो यश्च त्यक्तः स्र्येण वा खपन्। अन्यत्रातुरभावात्तु प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ॥१०२॥ तसादनुदिते सूर्ये समुत्थाय महीपते। उपतिष्ठेन्नरस्सन्ध्यामस्त्रपंश्च दिनान्तजाम्।।१०३।। उपतिष्ठन्ति वै सन्ध्यां ये न पूर्वां न पश्चिमाम्। व्रजन्ति ते दुरात्मानस्तामिस्रं नरकं नृप ॥१०४॥ पुनः पाकमुपादाय सायमप्यवनीपते । वैश्वदेवनिभित्तं वै पत्न्यमन्त्रं विलं हरेत् ॥१०५॥ तत्रापि श्वपचादिभ्यस्तथैवान्नविसर्जनम् ॥१०६॥ अतिथिं चागतं तत्र खशक्त्या पूजयेद् बुधः। पादशौचासनप्रह्वस्वागतोक्त्या च पूजनम्। ततश्रानप्रदानेन शयनेन च पार्थिव ॥१०७॥ दिवातिथौत विम्रखे गते यत्पातकं नृप । तदेवाष्ट्रगुणं पुंसस्सूर्योढे विम्रुखे गते ॥१०८॥ तसात्स्वशक्त्या राजेन्द्र सूर्योडमतिथिं नरः। पूजयेत्पूजिते तसिन्पूजितास्सर्वदेवताः ॥१०९॥ अन्नशाकाम्बुदानेन खशक्त्या पूजयेत्पुमान्। श्यनप्रस्तरमहीप्रदानैरथवापि तम् ॥११०॥ कृतपादादिशौचस्तु अक्त्वा सायं ततो गृही । ग्च्छेच्छय्यामस्फुटितामपि दारुमयीं नृप।।१११।। नाविशालां न वै भन्नां नासमां मलिनां न च। न च जन्तुमयीं शय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम्।।११२।। प्राच्यां दिशि शिरक्शस्तं याम्यायामथ वा नृप । सदैव खपतः पुंसो विपरीतं तु रोगदम् ॥११३॥

(मृत्युसे होनेवाळी अञ्चिता), उन्माद, रोग और भय आदि कोई वाधा न हो तो प्रतिदिन ही सन्ध्योपासन करना चाहिये ॥ १०१॥ जो पुरुष रुग्णावस्थाको छोड़कर और कभी सूर्यके उदय अथवा अस्तके समय सोता है वह प्रायश्चित्तका भागी होता है ॥ १०२॥ अतः हे महीपते ! गृहस्थ पुरुप सूर्योदयसे पूर्व ही उठकर प्रातःसन्ध्या करे और सायंकाळमें भी तत्काळीन सन्ध्यावन्दन करे; सोवे नहीं ॥ १०२॥ हे नृप ! जो पुरुप प्रातः अथवा सायंकाळीन सन्ध्योपासन नहीं करते वे दुरात्मा अन्धतामिस्न नरकमें पड़ते हैं ॥ १०४॥

तदनन्तर, हे पृथिवीपते ! सायंकालके समय सिद्ध किये हुए अन्नसे गृहपत्नी मन्त्रहीन विख्वैस्वदेव करे; उस समय भी उसी प्रकार स्वपच आदिके लिये अन-दान किया जाता है ॥ १०५-१०६ ॥ बुद्धिमान् पुरुष उस समय आये हुए अतिथिका भी सामर्थ्यानुसार सत्कार करे । हे राजन् ! प्रथम पाँव धुळाने, आसन देने और खागत-सूचक विनम्र वचन कहनेसे, तथा फिर भोजन कराने और शयन करानेसे अतिथिका सत्कार किया जाता है ॥ १०७॥ हे नृप ! दिनके समय अतिथिके छौट जानेसे जितना पाप लगता है उससे आठगुना पाप सूर्यास्तके समय छौटनेसे होता है ॥१०८॥ अतः हे राजेन्द्र ! सूर्यास्तके समय आये हुए अतिथि-का गृहस्थ पुरुष अपनी सामध्यीनुसार अवस्य सत्कार करे क्योंकि उसका पूजन करनेसे ही समस्त देवताओं-का पूजन हो जाता है ॥ १०९ ॥ मनुष्यको चाहिये कि अपनी शक्तिके अनुसार उसे मोजनके लिये अन, शाक या जल देकर तथा सोनेके लिये शप्या या घास-फूसका विछोना अथवा पृथिवी ही देकर उसका सत्कार करे॥११०॥

हे नृप! तदनन्तर, गृहस्थ पुरुष सायंकालका भोजन करके तथा हाथपाँव घोकर छिद्रादिहीन काष्ट्रमय शय्या-पर लेट जाय ॥१११॥ जो काफी बड़ी न हो, टूटी हुई हो, ऊँची-नीची हो, मलिन हो अथवा जिसमें जीव हों या जिसपर कुछ विछा हुआ न हो उस शय्यापर न सोवे ॥११२॥ हे नृप! सोनेके समय सदा पूर्व अथवा दक्षिणकी ओर शिर रखना चाहिये। इनके विपरीत दिशाओंकी ओर शिर रखनेसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है ॥११३॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

ऋताचुपगमक्शस्तस्स्वपत्न्यामवनीपते पुनामर्क्षे ग्रुमे काले ज्येष्ठायुग्मासु रात्रिषु ।।११४॥ √नायूनां तु स्त्रियं गच्छेन्नातुरां न रजस्रलाम्। नानिष्टां न प्रकुपितां न त्रस्तां न च गर्भिणीम् ।११५। नादक्षिणां नान्यकामां नाकामां नान्ययोषितम् । क्षुत्श्वामां नातिश्वक्तां वा खयं चैभिर्गुणैर्युतः ।११६। स्नातस्त्रग्गन्धपृक्त्रीतो नाष्मातः श्रुधितोऽपि वा । सकामस्सानुरागश्च व्यवायं पुरुषो त्रजेत् ॥११७॥ चतुर्दश्यष्टमी चैव तथामा चाथ पूर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ॥११८॥ तैलस्नीमांससम्मोगी सर्वेष्वेतेषु वै पुमान्। विण्मुत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं मृतः ॥११९॥ अशेषपर्वस्वेतेषु तसात्संयमिभिर्वधैः। मार्च्यं सच्छास्रदेवेज्याध्यानजप्यपरैनरैः ॥१२०॥ नान्ययोनावयोनौ वा नोपयुक्तौपधस्तंथा। द्विजदेवगुरूणां च व्यवायी नाश्रमे भवेत् ॥१२१॥ चैत्यचत्वरतीर्थेषु नैव गोष्टे चतुष्पथे। नैव इमञ्चानोपवने सिललेषु महीपते ॥१२२॥ प्रोक्तपर्वस्वशेषेषु नैव भूपाल सन्ध्ययोः। गच्छेद्रचवायं मतिमात्र मुत्रोचारपीडितः।।१२३।। पर्वस्वभिगमोऽधन्यो दिवा पापप्रदो नृप । भ्रवि रोगावहो नृणामप्रशस्तो जलाशये।।१२४।। परदारात्र गच्छेच मनसापि कथश्चन । किम वाचास्थिबन्धोऽपि नास्ति तेषु व्यवायिनाम्।।

हे पृथिवीपते ! ऋतुकालमें अपनी ही खीसे सङ्ग करना उचित है । पुश्चिङ्ग नक्षत्रमें युग्म और उनमें भीपीछेकी रात्रियोंमें शुम समयमें खीप्रसङ्ग करे ॥११४॥ किन्तु यदि खी अप्रसन्ना, रोगिणी, रजस्वल, निरिमलापिणी, कोधिता, दुःखिनी अथवा गर्मिणी हो तो उसका सङ्ग न करे ॥ ११५॥ जो सीधे स्वभावकी न हो, परामिलापिणी अथवा निरिमलापिणी हो, क्षुधार्ता हो, अधिक मोजन किये हुए हो अथवा परखी हो उसके पास न जाय; और यदि अपनेमें ये दोष हों तो भी खीगमन न करे ॥ ११६॥ पुरुषको उचित है कि स्नान करनेके अनन्तर माला और गन्ध धारण कर काम और अनुरागयुक्त होकर खीगमन करे । जिस समय अति मोजन किया हो अथवा क्षुधित हो उस समय उसमें प्रवृत्त न हो ॥ ११७॥

हे राजेन्द्र! चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा और सूर्यकी संक्रान्ति—ये सब पर्वदिन हैं ॥११८॥ इन पर्वदिनोंमें तैळ, स्त्री अथवा मांसका मोग करने-वाळा पुरुष मरनेपर विष्टा और मूत्रसे मरे नरकमें पड़ता है ॥११९॥ संयमी और बुद्धिमान् पुरुषोंको इन समस्त पर्वदिनोंमें सच्छास्त्राबळोकन, देवोपासना, यज्ञानुष्टान, ध्यान और जप आदिमें छगे रहना चाहिये॥१२०॥ गौ-छाग आदि अन्य योनियोंसे, अयोनियोंसे औषध-प्रयोगसे अथवा ब्राह्मण, देवता और गुरुके आश्रमोंमें कभी मैथुन न करे॥१२१॥ हे पृथिवीपते! चैत्यवृक्षके नीचे, ऑगनमें, तीर्थमें, पश्चशाळामें, चौराहे-पर, सम्शानमें, उपवनमें अथवा जळमें भी मैथुन करना उचित नहीं है॥१२२॥ हे राजन्! पूर्वोक्त समस्त पर्वदिनोंमें प्रातःकाळ और सायंकाळमें तथा मळ-मूत्रके वेगके समय बुद्धिमान् पुरुष मैथुनमें प्रवृत्त न हो॥१२३॥

हे नृप ! पर्वदिनोंमें स्त्रीगमन करनेसे धनकी हानि होती है; दिनमें करनेसे पाप होता है, पृथिवी-पर करनेसे रोग होते हैं और जलश्यमें स्त्रीप्रसङ्ग करनेसे अमंगल होता है॥ १२४॥ परस्रीसे तो वाणीसे क्या, मनसे भी प्रसङ्ग न करे, क्योंकि उनसे मैथुन करनेवालोंको अस्थि-बन्धन मी नहीं होता [अर्थात् इन्हें अस्थिन्न कीदादि होना प्रस्ता है]॥१२५॥ मृतो नरकंमभ्येति हीयतेऽत्रापि चायुपः । परदाररतिः पुंसामिह चामुत्र भीतिदा ॥१२६॥ इति मत्वा स्वदारेषु ऋतुमन्सु बुधो ब्रजेत्। यथोक्तदोपहीनेषु

परस्रीकी आसक्ति पुरुपको इहलोक और परलोक देनेवाली है; इहलोकमें भय दोनों जगह उसकी आयु क्षीण हो जाती है और मरनेपर वह नरकमें जाता है ॥ १२६॥ ऐसा जानकर बुद्धिमान् पुरुष उपरोक्त दांषोंसे रहित अपनी स्नीसे ही ऋतुकालमें प्रसङ्ग करे तथा उसकी विशेष अमिलापा सकामेष्वनृताविप ।।१२७।। हो तो विना ऋतुकालके भी गमन करे।। १२७।।

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीयेंऽशे एकादशोऽध्यायः॥११॥

बारहवाँ अध्याय

गृहस्थसम्बन्धी सदाचारका वर्णन ।

और्व उवाच

देवगोत्राह्मणान्सिद्धान्त्रद्धाचार्यास्तथाचेयेत् । द्विकालं च नमेत्सन्ध्यामग्रीतुपचरेत्तथा ॥ १ ॥ सदाऽनुपहते वस्त्रे प्रशस्ताश्च महौपधीः। गारुडानि च रत्नानि विभृयात्प्रयतो नरः ॥ २ ॥ प्रस्निग्धामलकेश्रथ सुगन्धश्रारुवेषधृक् । सितास्सुमनसो हृद्या विभृयाच नरस्सदा ॥ ३॥ किञ्चित्परस्वं न हरेन्नाल्पमप्यप्रियं वदेत् । प्रियं च नानृतं व्रयाचान्यदोषानुदीरयेत् ॥ ४ ॥ नान्यस्त्रियं तथा वैरं रोचयेत्पुरुषर्पभ । न दुष्टं यानमारोहेत्कूलच्छायां न संश्रयेत्॥५॥ विद्विष्टपतितोन्मत्तबहुवैरादिकीटकैः वन्धकी वन्धकीमर्तुः क्षुद्रानृतकथैस्सह।। ६।। तथातिच्ययशीलैश्व परिवादरतैश्शिटैः। बुधो मैत्रीं न कुर्वात नैकः पन्थानमाश्रयेत्।। ७॥ नावगाहे अलौघस्य वेगमग्रे नरेश्वर।

और्व बोले-गृहस्य पुरुषको नित्यप्रति देवता, गौ, ब्राह्मण, सिद्धगण, वयोबृद्ध तथा आचार्यकी पूजा करनी चाहिये और दोनों समय सन्ध्यावन्दन तथा अग्निहोत्रादि कर्म करने चाहिये ॥१॥ गृहस्य पुरुष सदा ही संयमपूर्वक रहकर विना कहींसे कटे हुए दो वस्न, उत्तम ओपिधयाँ और गारुड (मरकत आदि विप नष्ट करनेवाले) रह धारण करे ॥२॥ वह केशोंको खच्छ और चिकना रखे तथा सर्वदा सुगन्धयुक्त सुन्दर वेष और मनोहर स्वेतपुष्प धारण करे॥ ३॥ किसीका थोड़ा-सा भी घन हरण न करे और थोड़ा-सा भी अप्रिय भाषण न करे। जो मिथ्या हो ऐसा प्रिय वचन भी कभी न बोले और न कभी दृसरोंके दोषोंको ही कहे ॥ ४ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! दसरोंकी स्त्री अथवा दूसरोंके साथ वैर करनेमें कभी रुचि न करे, निन्दित सवारीमें कभी न चढ़े और नदीतीरकी छायाका कभी आश्रय न हे ॥ ५ ॥ बुद्धिमान् पुरुष होकविद्विष्ट, पतित, उन्मत्त और जिसके बहुतसे शत्र हों ऐसे परपीडक पुरुषोंके साथ तथा कुलटा, कुलटाके स्वामी, क्षुद्र, मिथ्यावादी अति व्ययशील, निन्दापरायण और दुष्ट पुरुषोंके साथ कमी मित्रता न करें और न कभी मार्गमें अकेला चले ॥ ६-७ ॥ हे नरेस्वर ! जलप्रवाहके वेगमें सामने पड़कर स्नान न करे, जलते हुए घरमें प्रदीप्तं वेरम न विशेषारोहेच्छिखरं तरोः ॥ ८॥ प्रवेश न करे और वृक्षकी चोटीपर न चढ़े ॥ ८॥ -0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

न कुर्याइन्तसङ्घर्षं कुष्णीयाच न नासिकाम् । नासंवृतग्रुखो जुम्भेच्छ्वासकासौ विसर्जयेत्।। ९।। नोचैर्हसेत्सशब्दं च न मुश्चेत्पवनं बुधः। नलान खादयेच्छिन्दान तृणं न महीं लिखेत्।।१०।।

न रमश्रु मक्ष्येछोष्टं न मृद्नीयाद्विचक्षणः । ज्योतींष्यमेध्यशस्तानि नाभिवीक्षेत च प्रभो॥११॥ नम्रां परिवयं चैव सूर्यं चास्तमयोदये। न हुङ्कर्याच्छवं गन्धं शवगन्धो हि सोमजः ॥१२॥ चतुष्पर्थं चैत्यतरुं रमशानोपवनानि च । दुष्टस्त्रीसिक्षकर्षं च वर्जयेकिशि सर्वदा ॥१३॥ पूज्यदेवद्विजज्योतिक्छायां नातिक्रमेद् बुधः। नैकक्कून्याटवीं गच्छेत्तथा क्रून्यगृहे वसेत् ॥१४॥ केशास्त्रिकण्टकामेध्यबलिभस्मतुषांस्त्रथा स्नानार्द्रधरणीं चैव द्रतः परिवर्जयेत् ॥१५॥ नानार्यानाश्रयेत्कांश्रिज जिह्नं रोचयेद ब्रधः। उपसर्पेन वै व्यालं चिरं तिष्ठेन वोत्थितः ॥१६॥ अतीव जागरस्रमे तद्वत्स्नानासने ब्रधः। न सेवेत तथा शय्यां व्यायामं च नरेश्वर ॥१७॥ दंष्ट्रिणक्शृङ्गिणश्चेव प्राज्ञो दरेण वर्जयेत । अवश्यायं च राजेन्द्र पुरोवातातपौ तथा ।।१८।। न स्नायात्र खपेत्रयो न चैवोपस्पृशेद् बुधः। मुक्तकेशश्च नाचामेद्देवाद्यर्ची च वर्जयेत् ॥१९॥ होमदेवार्चनाद्यासु क्रियाखाचमने तथा। नैकवस्तः प्रवर्तेत द्विजवाचनिके जपे ॥२०॥ नासमञ्जसभीलैस्त सहासीत कथश्वन। सद्वृत्तसिक्वर्षो हि क्षणार्द्धमपि शस्यते।।२१।। विरोधं नोत्तमैर्गच्छेन्नाधमैश्र सदा बुधः।

दाँतोंको परस्पर न घिसे, नाकको न कुरेदे तथा मुखको बन्द किये हुए जमुहाई न छे और न बन्द मुखसे खाँसे या श्वास छोड़े ॥९॥ बुद्धिमान् पुरुष जोरसे न हँसे और शब्द करते हुए अधोवायु न छोड़े; तथा नखोंको न चवावे, तिनका न तोड़े और पृथिवीपर भी न लिखे ॥ १०॥

हे प्रभो ! विचक्षण पुरुष मूँछ-दाढ़ीके वालोंको न चवावे, दो ढेळोंको परस्पर न रगड़े और अपवित्र एवं निन्दित नक्षत्रोंको न देखे ॥ ११ ॥ नग्न परस्रीको और उदय अथवा अस्त होते हुए सूर्यको न देखे तथा शव और शब-गन्धसे घृणा न करे क्योंकि शब-गन्ध सोमका अंश है ॥ १२ ॥ चौराहा, चैत्यवृक्ष, इमशान, उपवन और दुष्टा स्त्रीकी समीपता-इन सबका रात्रिके समय सर्वदा त्याग करे ॥ १३ ॥ वुद्धिमान् पुरुष अपने पूजनीय देवता, ब्राह्मण और तेजोमय पदार्थीं-की छायाको कभी न छाँचे तथा शून्य वनखण्डी और शून्य घरमें कभी अकेला न रहे ॥१४॥ केश, अस्थि, कण्टक, अपवित्र वस्तु, बलि, भस्म, तुष तथा स्नान-के कारण भीगी हुई पृथिवीका दूरहीसे त्याग करे ॥ १५॥ प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि अनार्य व्यक्तिका सङ्ग न करे, कुटिल पुरुषमें आसक्त न हो, सप्के पास न जाय और जग पड़नेपर अधिक देरतक छेटा न रहे ॥ १६ ॥ हे नरेश्वर ! बुद्धिमान् पुरुष जागने, सोने, स्नान करने, बैठने, शय्यासेवन करने और व्यायाम करनेमें अधिक समय न लगावे ॥ १७॥ हे राजेन्द्र ! प्राज्ञ पुरुष दाँत और सींगवाले प्राञ्जोंको. ओसको तथा सामनेकी वायु और धूपको सर्वदा परि-त्याग करे ॥ १८ ॥ नग्न होकर स्नान, शयन और आचमन न करे तथा केश खोलकर आचमन और देव-पूजन न करे ॥ १९ ॥ होम तथा देवार्चन आदि क्रियाओंमें, आचमनमें, पुण्याहवाचनमें और जपमें एक वस्त्र धारण करके प्रवृत्त न हो ॥ २०॥ संशय-शील व्यक्तियोंके साथ कभी न रहे । सदाचारी पुरुषों-का तो आधे क्षणका सङ्ग भी. अति प्रशंसनीय होता है ॥ २१ ॥ बुद्धिमान् पुरुष उत्तम अथवा अधम व्यक्तियोंसे विरोध न करे। हे राजन् ! विवाह और विवाहश्च विवादश्च ्तुल्यविकेर्नुपेष्यते।।।२२॥।

नारभेत कलि प्राज्ञ इगुष्कवैरं च वर्जयेत्। अप्यल्पहानिस्सोढव्या वैरेणार्थागमं त्यजेत्।।२३।। स्नातो नाङ्गानि सम्मार्जेत्स्नानशाटचा न पाणिना। न च निर्धृनयेत्केशानाचामेचैव चोत्थितः ॥२४॥ पादेन नाक्रमेत्पादं न पूज्याभिमुखं नयेत् । नोचासनं गुरोरग्रे भजेताविनयान्वितः ॥२५॥ अपसव्यं न गच्छेच देवागारचतुष्पथान् । माङ्गल्यपूज्यांश्र तथा विपरीतात्र दक्षिणम् ॥२६॥ सोमाकीग्न्यम्बुवायूनां पूज्यानां चन सम्मुखम्। क्रुर्यामिष्ठीवविण्सूत्रसमुत्सर्गं च पण्डितः ॥२७॥ तिष्ठन मूत्रयेत्तद्वत्पथिष्वपि न मूत्रयेत्। श्लेष्मविण्सूत्ररक्तानि सर्वदैव न लङ्घयेत्।।२८॥ श्लेष्मशिङ्घाणिकोत्सर्गो नामकाले प्रशस्यते । बलिमङ्गलजप्यादौ न होमे न महाजने ॥२९॥ योषितो नावमन्येत न चासां विश्वसेद् बुधः । न चैवेर्ष्या भवेत्तासु न धिक्यात्कदाचन ॥३०॥ मङ्गल्यपुष्परत्नाज्यपूज्याननभिवाद्य न निष्कमेद् गृहात्प्राज्ञस्सदाचारपरो नरः ॥३१॥ चतुष्पथान्नमस्कुर्यात्काले होमपरो भवेत्। दीनानभ्युद्धरेत्साधूनुपासीत बहुश्रुतान् ॥३२॥ देवर्षिपूजकस्सम्यक्पितृपिण्डोदकप्रदः सत्कर्ता चातिथीनां यः स लोकानुत्तमान्त्रजेत् ३३ हितं मितं प्रियं काले वश्यात्मा योऽभिमापते । स याति लोकानाह्वादहेतुभूतान्नृपाक्षयान्।।३४।। थीमान्हीमान्धमायुक्तो ह्यास्तिको विनयान्वितः। विद्याभिजनवृद्धानां याति लोकाननुत्तमान् ॥३५॥ अकालगर्जितादौ च पर्वस्वाशौचकादिषु । अनध्यायं चुधः कुर्यादुपरागादिके तथा ॥३६॥ समय बुद्धिमान् पुरुष अध्ययन न करे ॥ ३६॥

प्राज्ञ पुरुष कल्रह न बढ़ावे तथा व्यर्थ वैरका भी त्याग करे। थोड़ी-सी हानि सह छे, किन्तु वैरसे कुछ लाम होता हो तो उसे भी छोड़ दे॥ २३॥ स्नान करने-के अनन्तर स्नानसे भीगी हुई घोती अथवा हाथोंसे शरीरको न पोंछे तथा खड़े-खड़े केशोंको न झाड़े और आचमन भी न करे ॥ २४ ॥ पैरके ऊपर पैर न रखे, गुरुजनोंके सामने पैर न फैछात्रे और घृष्टता-पूर्वक उनके सामने कभी उच्चासनपर न वैठे ॥ २५॥

देवालय, चौराहा, माङ्गलिक द्रव्य और पूज्य व्यक्ति— इन सबको बायों ओर रखकर न निकले तथा इनके विपरीत वस्तुओंको दायीं ओर रखकर न जाय ॥ २६॥ चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, वायु और पूज्य व्यक्तियों-के सम्मुख पण्डित पुरुष मळ-मूत्र-त्याग न करे और न थृके ही ॥ २७ ॥ खड़े-खड़े अधवा मार्गमें मूत्र-त्याग न करे तथा इलेप्मा (थूक), विष्ठा, मूत्र और रक्तको कमी न छाँघे॥ २८॥ मोजन, देव-पूजा, माङ्गिलिक कार्य और जप-होमादिके समय तथा महा-पुरुषोंके सामने थृकना और छींकना उचित नहीं है ॥ २९ ॥ वुद्धिमान् पुरुष स्त्रियोंका अपमान न करे, उनका विस्वास भी न करे तथा उनसे ईर्ष्या और उनका तिरस्कार भी कभी न करे ॥ ३०॥ सदाचार-परायण प्राज्ञ पुरुष माङ्गलिक द्रन्य, पुष्प, रत्न, घृत और पूज्य व्यक्तियोंका अभिवादन किये विना कमी अपने घरसे न निकले ॥ ३१ ॥ चौराहोंको नमस्कार करे, यथासमय अग्निहोत्र करे, दीन-दुखियोंका उद्घार करे और बहुश्रुत साधु पुरुपोंका सत्संग करे॥ ३२॥

जो पुरुष देवता और ऋषियोंकी पूजा करता है, पितृगणको पिण्डोदक देता है और अतिथिका सत्कार करता है वह पुण्यलोकोंको जाता है॥ ३३॥ जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर समयानुसार हित, मित और प्रिय मापण करता है, हे राजन् ! वह आनन्द-के हेतुभूत अक्षय छोकोंको प्राप्त होता है ॥ ३४॥ बुद्धिमान्, लजावान्, क्षमाशील, आस्तिक और विनयी पुरुष विद्वान् और कुछीन पुरुषोंके योग्य उत्तम छोकों-में जाता है ॥ ३५॥ अकाल मेघगर्जनके समय, पर्व-दिनोंपर, अशौच कालमें तथा चन्द्र और सूर्यप्रहणके

शमं नयति यः क्रुद्धान्सर्वबन्धुरमत्सरी। भीताश्वासनकृत्साधुस्खर्गस्तस्याल्पकं फलम्।।३७॥ वर्षातपादिषु च्छत्री दण्डी राज्यटवीषु च। शरीरत्राणकामो वै सोपानत्कस्सदा त्रजेत् ॥३८॥ नोर्ध्वं न तिर्यग्दूरं वा न पश्यन्पर्यटेद् बुधः । युगमात्रं महीपृष्ठं नरो गच्छेद्विलोकयन् ॥३९॥ दोषहेतूनशेषांश्र वश्यात्मा यो निरस्यति । तस्य धर्मार्थकामानां हानिर्नाल्पापि जायते।।४०।। सदाचाररतः प्राज्ञो विद्याविनयशिक्षितः। पापेऽप्यपापः परुषे ह्यभिधत्ते प्रियाणि यः। मैत्रीद्रवान्तःकरणस्तंस्य ग्रुक्तिः करे स्थिता ॥४१॥ ये कामक्रोधलोभानां वीतरागा न गोचरे । सदाचारिश्वतास्तेषामनुभावैर्धृता मही ॥४२॥ तसात्सत्यं वदेत्प्राज्ञो यत्परप्रीतिकारणम् । सत्यं यत्परदुः खाय तदा मौनपरो भवेत्।।४३।। प्रियमुक्तं हितं नैतदिति मत्वा न तद्वदेत् । श्रेयस्तत्र हितं वाच्यं यद्यप्यत्यन्तमप्रियम् ॥४४॥ प्राणिनामुपकाराय यथैवेह परत्र च । कर्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान्मजेत् ॥४५॥

जो व्यक्ति क्रोधितको शान्त करता है, सबका बन्धु है, मत्सरशून्य है, मयमीतको सान्त्वना देनेवाला है और साधु-खमाव है उसके लिये खर्ग तो बहुत थोड़ा फल है ॥ ३७ ॥ जिसे शरीर-रक्षाकी इच्छा हो वह पुरुष वर्षा और धूपमें छाता लेकर निकले, रात्रिके समय और वनमें दण्ड लेकर जाय तथा जहाँ कहीं जाना हो, सर्वदा जूते पहनकर जाय ॥ ३८ ॥ बुद्धिमान् पुरुषको ऊपरकी ओर, इधर-उधर अथवा दृरके पदार्थों-को देखते हुए नहीं चलना चाहिये, केवल युगमात्र (चार हाथ) पृथिवीको देखता हुआ चले ॥ ३९ ॥

जो जितेन्द्रिय दोषके समस्त हेतुओंको त्याग देता है उसके धर्म, अर्थ और कामकी थोड़ी-सी भी हानि नहीं होती ॥ ४०॥ जो विद्या-विनय-सम्पन्न, सदा-चारी प्राज्ञ पुरुष पापीके प्रति पापमय व्यवहार नहीं करता, कुटिल पुरुषोंसे प्रिय भाषण करता है तथा जिसका अन्तःकरण मैत्रीसे द्रवीभूत रहता है, मुक्ति उसकी मुद्दोमें रहती है ॥ ४१॥ जो वीतराग-महापुरुष कभी काम, क्रोध और लोभादिके वशीभूत नहीं होते तथा सर्वदा सदाचारमें स्थित रहते हैं उनके प्रभावसे ही पृथिवी टिकी हुई है ॥ ४२ ॥ अतः प्राज्ञ पुरुषको वही सत्य कहना चाहिये जो दूसरों-की प्रसन्ताका कारण हो । यदि किसी सत्य वाक्यके कहनेसे दूसरोंको दुःख होता जाने तो मौन रहे ॥ ४३ ॥ यदि प्रिय वाक्यको भी अहितकर समझे तो उसे न कहे; उस अवस्थामें तो हितकर वाक्य ही कहना अच्छा है, मंछे ही वह अत्यन्त अप्रिय क्यों न हो ॥ ४४ ॥ जो कार्य इहलोक और परलोकमें प्राणियों-के, हितका साधक हो मतिमान् पुरुषं मन, वचन और कर्मसे उसीका आचरण करे ॥ ४५॥

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीयेंऽशे द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

आम्युद्यिक श्राद्ध, प्रेतकर्म तथा श्राद्धादिका विचार।

और्व उवाच

सचैलस पितुः स्नानं जाते पुत्रे विधीयते । जातकर्म तदा कुर्याच्छ्राद्धमस्युद्ये च यत्।। १।। युग्सान्देवांश्च पित्र्यांश्च सम्यक्सव्यक्रमाद् द्विजान् । पूजयेद्भोजयेचैव तन्मना नान्यमानसः॥ २॥ द्ध्यक्षतैस्सवदरैः प्राङ्ग्रखोदङ्ग्रखोऽपि वा । देवतीर्थेन वै पिण्डान्दद्यात्कायेन वा नृप ॥ ३॥ नान्दीमुखः पितृगणस्तेन श्राद्धेन पार्थिव । **प्रीयते तत्तु कर्त्तव्यं पुरुषेस्सर्वदृद्धिषु ॥ ४ ॥** कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशेषु च वेश्मनः। नामकर्मणि वालानां चूंडाकर्मादिके तथा।। ५।। सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने। नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत्प्रयतो गृही ॥ ६ ॥ पितृपूजाक्रमः प्रोक्तो वृद्धावेष सनातनः। प्रेतकर्मित्रयाविधिः ॥ ७॥ श्रृयतामवनीपाल व्रेतदेहं ग्रुभैः स्नानैस्सापितं स्निग्वभूषितम् । दुग्ध्वा ग्रामाद्वहिः स्नात्वा सचैलस्सलिलाशये ॥८॥ यत्र तत्र स्थितायैतद्युकायेति वादिनः। दक्षिणाभिम्रुखा द्युर्वान्धवास्सलिलाञ्जलीन्।।९॥ प्रविष्टाश्र समं गोभिग्रामं नक्षत्रदर्शने । कटकर्म ततः कुर्युर्भूमौ प्रस्तरशायिनः ॥१०॥ दातन्योऽनुदिनं पिण्डः प्रेताय भ्रुवि पार्थिव । दिवा च भक्तं भोक्तव्यममांसं मनुजर्षम ॥११॥ दिनानि तानि चेच्छातः कर्तव्यं विप्रभोजनम् ।

और्व बोले-पुत्रके उत्पन्न होनेपर पिताको सचैल (वस्नोंसहित) स्नान करना चाहिये। उसके पश्चात् जात-कर्म-संस्कार और आम्युदियक श्राद्ध करने चाहिये ॥ १॥ फिर तन्मयभावसे होकर देवता और पितृगणके लिये क्रमशः दायीं और वायीं ओर विठाकर दो-दो ब्राह्मणोंका पूजन करे और उन्हें मोजन करावे ॥ २ ॥ हे राजन् ! पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके द्धि, अक्षत और वदरीफ़ल्से वने हुए पिण्डोंको देव-तीर्थ या प्रजापति-तीर्थसे दान करे ॥ ३॥ हे पृथिवीनाथ ! इसं आभ्युदियक श्राद्वसे नान्दीमुख नामक पितृगण प्रसन्न होते हैं अतः सत्र प्रकारकी अभिवृद्धिके समय पुरुषोंको इसका अनुष्टान करना चाहिये ॥ ४ ॥ कन्या और पुत्रके विवाहमें, गृहप्रवेशमें, वालकोंके नामकरण तथा चूडाकर्म आदि संस्कारोंमें, सीमन्तोन्नयन-संस्कारमें और पुत्र आदिके मुख देखनेके समय गृहस्य पुरुष एकाप्रचित्तसे नान्दीमुख नामक पितृगणका पूजन करे ॥ ५-६॥ हे पृथिवीपाछ ! आम्युद्यिक श्राद्धमें पितृपूजाका यह सनातन क्रम तुमको सुनाया, अब प्रेतिक्रियाकी विधि सुनो ॥ ७॥ वन्धु-त्रान्धवोंको चाहिये कि भली प्रकार स्नान करानेके अनन्तर पुष्प-मालाओंसे विभूषित शवका गाँवके वाहर दाह करें और फिर जलाशयमें वस्रसहित स्नान कर दक्षिण-मुख होकर 'यत्र तत्र स्थितायैतद्मुकाय' * आदि वाक्यका उचारण करते हुए जलाञ्जलि दें ॥ ८-९॥ तदनन्तर, गोघू छिके समय तारा-मण्डलके दीखने लगनेपर प्राममें प्रवेश करें और कटकर्म (अशौच ऋत्य)

सम्पन्न करके पृथिवीपर तृणादिकी शय्यापर शयन करें ॥ १० ॥ हे पृथिवीपते ! मृत पुरुषके छिये नित्य-

प्रति पृथिवीपर पिण्डदान करना चाहिये और हे

पुरुषश्रेष्ठ ! केवल दिनके समय मांसहीन मात खाना चाहिये ॥ ११ ॥ अशौच कालमें, यदि त्राह्मगोंकी

१ अँगुडियोंके अप्रभाग । २ कनिष्ठिकाका सूलभाग ।

अर्थात् इसकोता असूक तास-गोत्रवाले पेतके निमित्त, वे जहाँ कहीं भी हों, यह जल देते हैं।

प्रेता यान्ति तथा तृप्तिं बन्धुवर्गेण भुज्जता ॥१२॥ प्रथमेऽह्वि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा। वस्रत्यागबहिस्साने कृत्वा दद्यात्तिलोदकम्॥१३॥ चत्रथेंऽह्नि च कर्तव्यं तस्यास्थिचयनं नृप। तदृर्घमङ्गसंस्पर्शस्सपिण्डानामपीष्यते 118811 योग्यास्सर्विक्रियाणां तु समानसिललास्तथा । अनुलेपनपुष्पादिभोगादन्यत्र पार्थिव ॥१५॥ शय्यासनोपभोगश्च सपिण्डानामपीष्यते । मसास्थिचयनाद्ध्यं संयोगो न तु योषिताम्।।१६।। बाले देशान्तरस्थे च पतिते च मुनौ मृते। सद्यक्षीचं तथेच्छातो जलाग्न्युद्धन्धनादिषु।।१७।। मृतवन्धोर्दशाहानि कुलसानं न भुज्यते। दानं प्रतिप्रहो होमः खाध्यायश्र निवर्तते ॥१८॥ विप्रस्थेतद् द्वादशाहं राजन्यस्याप्यशौचकम्। अर्घमासं तु वैश्यस्य मासं शूद्रस्य शुद्धये ॥१९॥ अयुजो भोजयेत्कामं द्विजानन्ते ततो दिने । द्द्याइर्मेषु पिण्डं च प्रेतायोच्छिष्टसिन्नधौ ॥२०॥ वार्यायुधप्रतोदास्तु दण्डश्च द्विजभोजनात् । स्प्रष्टच्योऽनन्तरं वर्णैः शुद्धेरन्ते ततः ऋमात् ॥२१॥ ततस्त्ववर्णधर्मा ये वित्रादीनामुदाहृताः। प्रमाञ्जीवेनिजधर्मार्जनैस्तथा ॥२२॥ तान्क्रवींत

इच्छा हो तो उन्हें भोजन कराना चाहिये, क्योंकिं उस समय ब्राह्मण और वन्धुवर्गके भोजन करनेसे मृत जीवकी तृप्ति होती है ॥ १२ ॥ अशौचके पहले-तीसरे, सातवें अथवा नवें दिन वस्न त्यागकर और बहिर्देशमें स्नान करके तिलोदक दे ॥ १३ ॥

हे नृप ! अशोचके चौथे दिन अस्थिचयन करना चाहिये; उसके अनन्तर अपने सपिण्ड वन्धुजनोंका अंग स्पर्श किया जा सकता है॥१४॥ हे राजन्! उस समय-से समानोदक * पुरुष चन्दन और पुष्पधारण आदि कियाओंके सिवा [पञ्चयज्ञादि] और सव कर्म कर सकते हैं॥ १५॥ भस्म और अस्थिचयनके अनन्तर सपिण्ड पुरुषोंद्वारा शय्या और आसनका उपयोग तो किया जा सकता है किन्तु स्त्री-संसर्ग नहीं किया जा सकता ॥१६॥ बालक, देशान्तरस्थित व्यक्ति, पतित और तपस्त्रीके मरनेपर तथा जल, अग्नि और उद्बन्धन (फाँसी लगाने) आदिद्वारा आत्मघात करनेपर शीघ्र ही अशौचकी निवृत्ति हो जाती है † ॥ १७ ॥ मृतकके कुटुम्बका अन्न दश दिनतक न खाना चाहिये तथा अशोच कालमें दान, परिग्रह, होम और स्वाध्याय आदि कर्म भी न करने चाहिये ॥ १८ ॥ यह [दश दिनका] अशौच ब्राह्मणका है; क्षत्रियका अशौच बारह दिन और वैश्यका पन्द्रह दिन रहता है तथा शूद्रको अशौच-गुद्धि एक मासमें होती है ॥ १९॥ अशौचके अन्तमें इच्छानुसार अयुग्म (तीन, पाँच, सात, नौ आदि) ब्राह्मणोंको भोजन करावे तथा उनकी उच्छिष्ट (जूठन) के निकट प्रेतको तृप्तिके लिये कुशापर पिण्डदान करे ॥२०॥ अशौच-शुद्धि हो जानेपर ब्रह्ममोजके अनन्तर ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको क्रमशः जल, शस्त्र, प्रतोद (कोड़ा) और लाठीका स्पर्श करना चाहिये॥२१॥

तदनन्तर, ब्राह्मण आदि वर्णोंके जो-जो जातीय धर्म बतलाये गये हैं उनका आचरण करे; और खधर्मा-नुसार उपार्जित जीविकासे निर्वाह करे॥ २२॥

समानोदक (तर्पणादिमें समान जलाधिकारी अर्थात् सगोन्न) और सिपवड (पियडाधिकारी) की ब्याख्या कूर्मपुरायमें इस प्रकार की है—

'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे बिनिवर्तते । समानोदकमावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ।। श्रयोत्-सातवीं पीड़ीमें पुरुषकी सपिण्डता निवृत्त हो जाती है किन्तु समानोदकभाव उसके जन्म श्रीर नामका पता न रहनेपर दूर होता है ।

† परन्तु माता-पिताके विषयमें यह नियम नहीं हैं। जैसा कि कहा है पत्रों चेन्मृतो स्थाता दूरस्पोऽपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तिहनमारस्य दशाहं सूतकी मनेत् ।। मृताहनि च कर्तव्यमेकोद्दिष्टमतः परम्। आह्वानादिकियादैवनियोगरहितं हि तत्।।२३।। एकोऽर्घ्यस्तत्र दातव्यस्तथैवैकपवित्रकम्। त्रेताय पिण्डो दातव्यो भुक्तवत्सु द्विजातिषु ॥२४॥ तत्राभिरतिर्यजमानैद्विजन्मनाम् । अक्षुरुयमग्रुकस्येति वक्तन्यं विरतौ तथा ॥२५॥ एकोद्दिष्टमयो धर्म इत्थमावत्सरात्स्मृतः। सपिण्डीकरणं तस्मिन्काले राजेन्द्र तच्छृणु ॥२६॥ एकोद्दिष्टविधानेन कार्यं तद्पि पार्थिव। संवत्सरेऽय पष्टे वा मासे वा द्वादशेऽहि तत् ॥२७॥ तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम् ॥२८॥ पात्रं भेतस्य तत्रैकं पैत्रं पात्रत्रयं तथा। सेचयेत्पतृपात्रेषु प्रेतपात्रं ततस्त्रिषु ॥२९॥ ततः पितृत्वमापने तसिन्त्रेते महीपते। तत्पूर्वानर्चयेत्पितृन् ॥३०॥ श्राद्धधर्मेरशेषैस्तु पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा आता वा आतसन्ततिः । सपिण्डसन्ततिर्वापि कियाहीं नृप जायते ॥३१॥ तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः। मातृपक्षसिपण्डेन सम्बद्धा ये जलेन वा ॥३२॥ कुलद्वयेऽपि चोच्छिने स्त्रीभिः कार्याः क्रिया नृप ३३ सङ्घातान्तर्गतैर्वापि कार्याः प्रेतस्य च कियाः । उत्सन्नवन्धुरिक्थाद्वा कारयेदवनीपतिः ॥३४॥ पूर्वाः किया मध्यमाश्र तथा चैवोत्तराः कियाः । त्रिप्रकाराः क्रियाः सर्वोत्तासां भेदं शृणुष्य मे ।३५। आदाहवार्यायुघादिस्पर्शाद्यन्तास्तु याः क्रियाः। ताः पूर्वा मध्यमा मासि मास्येकोहिष्टसंज्ञिताः।३६। मध्यमकमें कहलाता है॥३६॥

फिर प्रतिमास मृत्युतिथिपर एकोदिष्ट-श्राद्ध करे जो आवाहनादि क्रिया और विश्वेदेवसम्बन्धी ब्राह्मणके आमन्त्रण आदिसे रहित होने चाहिये॥२३॥ उस समय एक अर्घ और एक पवित्रक देना चाहिये तथा बहुतसे ब्राह्मणोंके मोजन करनेपर भी मृतकके छिये एक ही पिण्ड-दान करना चाहिये ॥२४॥ तदनन्तर, यज-मानके 'अमिरम्यताम्' ऐसा कहनेपर त्राह्मणगण 'अभि-रताः स्मः' ऐसा कहें और फिर पिण्डदान समाप्त होनेपर 'अमुकस्य अक्षय्यामिदमुपतिष्ठताम्' इस वाक्यका उच्चा-रण करें ॥ २५॥ इस प्रकार एक वर्षतक प्रतिमास एको-दिष्टकर्म करनेका विधान है। हे राजेन्द्र! वर्षके समाप्त होनेपर सपिण्डीकरण करे; उसकी विधि सुनो ॥२६॥

हे पार्थिव ! इस सपिण्डीकरण कर्मको भी एक वर्ष, छः मास अथवा बारह दिनके अनन्तर एकोदिष्ट-श्राद्रकी विधिसे ही करना चाहिये॥ २७॥ इसमें तिल, गन्ध और जलसे युक्त चार पात्र रखे । इनमेंसे एक पात्र मृत-पुरुषका होता है तथा तीन पितृगणके होते हैं। फिर मृत-पुरुषके पात्रस्थित जलादिसे पितृ-गणके पात्रोंका सिद्धन करे ॥२८-२९॥ इस प्रकार मृत-पुरुषको पितृत्व प्राप्त हो जानेपर सम्पूर्ण श्राद्ध-धर्मोंके द्वारा उस मृत-पुरुषसे ही आर्भ्म कर पितृगणका पूजन करे ॥३०॥ हे राजन् ! पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, माई, मतीजा अथवा अपनी सपिण्ड सन्ततिमें उत्पन्न हुआ पुरुष ही श्राद्धादि क्रिया करनेका अधिकारी होता है ॥ ३१ ॥ यदि इन सवका अभाव हो तो समानोदककी सन्तति अथवा मातृपक्षके सपिण्ड अथवा समानोदकको इसका अधिकार है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! मातृकुळ और पितृकुल दोनोंके नष्टहो जानेपर स्त्री ही इस क्रियाको करे; अथवा [यदि ख़ी भी न हो तो] साथियों मेंसे ही कोई करे या वान्धवहीन मृतकके धनसे राजा ही उसके सम्पूर्ण प्रेत-कर्म करे ॥३३-३४॥

सम्पूर्ण प्रेत-कर्म तीन प्रकारके हैं--पूर्वकर्म, मध्यम-कर्म तथा उत्तरकर्म । इनके पृथक्-पृथक् छक्षण सुनो ॥३५॥ दाहसे टेकर जल और शस्त्र आदिके स्पर्शपर्यन्त जितने कर्म हैं उनको पूर्वकर्म कहते हैं तथा प्रत्येक मासमें जो एकोदिष्ट श्राद्ध किया जाता है वह मध्यमकर्म कहलाता है॥३६॥ और हे नृप! सपिण्डी-

प्रेते पितृत्वमापने सपिण्डीकरणाद् । क्रियन्ते याः क्रियाः पित्र्याः प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तराः समानसिललैस्तथा। **पितृमात्**सपिण्डेस्त सङ्घातान्तर्गतैर्वापि राज्ञा तद्धनहारिणा।।३८।। पूर्वाः क्रियाश्र कर्तव्याः पुत्राद्येरेव चोत्तराः । दौहित्रैर्वा नृपश्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयैस्तथा ॥३९॥ ्रमृताहनि च कर्तव्याः स्त्रीणामप्युत्तराः क्रियाः। राजनेकोद्दिष्टविधानतः ॥४०॥ प्रतिसंवत्सरं तस्मादुत्तरसंज्ञायाः क्रियास्ताः शृणु पार्थिव ।

करणके पश्चात् मृतक व्यक्तिके पितृत्वको प्राप्त हो जाने-पर जो पितृकर्म किये जाते हैं वे उत्तरकर्म कहलाते हैं ॥३७॥ माता, पिता, सपिण्ड, समानोदक, सम्हके लोग अयवा उसके धनका अधिकारी राजा पूर्वकर्म कर सकते हैं; किन्तु उत्तरकर्म केवल पुत्र, दौहित्र आदि अथवा उनकी सन्तानको ही करना चाहिये ॥ ३८-३९॥ हे राजन् ! प्रतिवर्ष मरण-दिनपर खियोंका भी उत्तरकर्म एकोदिष्ट श्राद्धकी विधिसे अवस्य करना चाहिये॥४०॥ अतः हे अनघ! उन उत्तरिक्रयाओंको जिस-जिसको यथा यथा च कर्तव्या विधिना येन चानघ ॥४१॥ जिस-जिस विधिसे करना चाहिये, वह सुनो ॥४१॥

-A 37 63 65 FE FA-

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीयेंऽशे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

श्राद्ध-प्रशंसा, श्राद्धमें पात्रापात्रका विचार।

और्व उवाच

ब्रह्मेन्द्ररुद्रनासत्यसूर्याप्रिवसुमारुतान् विक्वेदेवान्पितृगणान्वयांसि मनुजान्पशून् ॥ १ ॥ सरीसुपानृषिगणान्यचान्यद्भृतसंज्ञितम् श्राद्धं श्रद्धान्वितः क्वन्त्रीणयत्यखिलं जगत।। २ ।। मासि मास्यसिते पक्षे पश्चदक्यां नरेश्वर । तथाष्ट्रकासु कुर्वीत काम्यान्कालाञ्छ्रणुष्व मे।। ३ ।। श्राद्धार्हमागतं द्रव्यं विशिष्टमथ वा द्विजम्। श्राद्धं कुर्वीत विज्ञाय व्यतीपातेऽयने तथा ॥ ४ ॥ विष्रवे चापि सम्प्राप्ते ग्रहणे शशिस्र्ययोः । समस्तेष्वेव भूपाल राशिष्वर्के च गच्छति ॥ ५॥ दुष्टसमावलोकने। नक्षत्रग्रहपीडासु इच्छाश्राद्धानि कुर्वीत नवसस्यागमे तथा ॥ ६॥ अमावास्या यदा मैत्रविशास्वास्वातियोगिनी। श्राद्धेः पितृगणस्तृप्ति तथास्रोत्यष्ट्वापिकाम्।। ७ ॥

और्व बोले-हे राजन् ! श्रद्धासहित श्राद्धकर्म करने-से मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि, वसुगण, मरुद्गण, विश्वेदेव, पितृगण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सरीसृप, ऋषिगण तथा भूतगण आदि सम्पूर्ण जगतको प्रसन्न कर देता है ॥१-२॥ हे नरेक्वर ! प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी पश्चदशी (अमावास्या) और अष्टका (हेमन्त और शिशिर ऋतुओंके चार महीनोंकी शुक्ला अष्टमियों) पर श्राद्ध करे । [यह नित्यश्राद्धकाल है] अब काम्यश्राद्धका काल बतलाता हूँ, श्रवण करो ॥ ३ ॥

जिस समय श्राद्धयोग्य पदार्थ या कि.सी विशिष्ट ब्राह्मणको घरमें आया जाने, अथवा जब उत्तरायण या दक्षिणायनका आरम्भ या व्यतीपात हो तब काम्यश्राद्ध-का अनुष्ठान करे ॥४॥ विषुवसंक्रान्तिपर, सूर्य और चन्द्र-प्रहणपर, सूर्यके प्रत्येक राशिमें प्रवेश करते समय, नक्षत्र अथवा प्रहकी पीडा होनेपर, दुःखप्त देखनेपर और घरमें नवीन अन आनेपर भी काम्यश्राद्ध करे ॥ ५-६ ॥ जो अमावास्या अनुराधा, विशाखा या खाति नक्षत्रयुक्ता हो उसमें श्राद्ध करनेसे पितृगण आठ वर्षतक तृप्त रहते हैं ॥ ७ ॥

h

अमावास्या यदा पुष्ये रोंद्रे चर्क्षे पुनर्वसौ ।

द्वादशाब्दं तदा तृप्ति प्रयान्ति पितरोऽर्चिताः ॥८॥
वासवाजैकपादर्श्वे पितृणां तृप्तिमिच्छताम् ।
वारुणे वाप्यमावास्या देवानामपि दुर्लभा ॥ ९ ॥
नवस्वृक्षेष्यमावास्या यदैतेष्ववनीपते ।
तदा हि तृप्तिदं श्राद्धं पितृणां शृणु चापरम् ॥१०॥
गीतं सनत्कुमारेण यथैलाय महात्मने ।
पृच्छते पितृभक्ताय प्रश्रयावनताय च ॥११॥
श्रीसनत्कुमार उवाच

वैशाखमासस्य च या तृतीया नवम्यसौं कार्तिकशुक्कपक्षे । नभस्यमासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पश्चदशी च माघे ॥१२॥ एता युगाद्याः कथिताः पुराणे-ष्वनन्तपुण्यास्तिथयश्रतस्रः चन्द्रमसो खेश्र उपप्रवे च।।१३॥ त्रिष्वष्टकास्वप्ययनद्वये पानीयमप्यत्र तिलैविंमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः। श्राद्धं कृतं तेन समासहस्रं . रहस्यमेतित्पतरो .. वदन्ति ॥१४॥ माघेऽसिते पश्चद्शी कदाचि-दुपैति योगं यदि वारुणेन। ऋक्षेण कालस्स परः पितृणां न ह्यलपुण्येन्य लभ्यतेऽसौ ॥१५॥ काले घनिष्ठा यदि नाम तसि-न्भवेजु भूपाल तदा पितृभ्यः। दुत्तं जलानं प्रद्दाति हरि तत्कुलजैर्मनुष्यैः ॥१६॥

तत्रैंव चेद्भाद्रपदा नु पूर्वा

काले यथावत्क्रियते पितृभ्यः।

तथा जो अमावास्या पुष्प,आर्द्री या पुनर्वसु नक्षत्रयुक्ता हो उसमें पूजित होनेसे पितृगण बारह वर्षतक तृप्त रहते हैं ॥८॥ जो पुरुष पितृगण और देवगणको तृप्त करना चाहते हों उनके छिये धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपदा अथवा शतिमधा नक्षत्रयुक्त अमावास्या अति दुर्छम है ॥९॥ हे पृथिवीपते ! जब अमावास्या इन नौ नक्षत्रोंसे युक्त होती है उस समय किया हुआ श्राद्ध पितृगणको अत्यन्त तृप्तिदायक होता है। इनके अतिरिक्त पितृमक्त इछापुत्र महात्मा पुरूरवाके अति विनीत भावसे पृछने-पर श्रीसनत्कुमारजीने जिनका वर्णन किया था वे अन्य तिथियाँ भी सुनो ॥ १०-११॥

श्रीसनत्कुमारजी बोले—वैशाखमासर्का तृतीया, कार्तिक शुक्रा नवमी, भाइपद कृष्णा त्रयोदशी तथा माघमासकी अमावास्या-इन चार तिथियोंको पुराणोंमें 'युगाबा' कहा है। ये चारों तिथियाँ अनन्त पुण्यदायिनी हैं । चन्द्रमा या सूर्यके प्रहणके समय, तीन अष्टकाओंमें, अथवा उत्तरायण या दक्षिणायनके आरम्भमें जो पुरुष एकाग्रचित्तसे पितृगणको तिल-सहित जल भी दान करता है वह मानो एक सहस्र वर्षके लिये श्राद्ध कर देता है-यह पर्म रहस्य स्तयं पितृगण ही कहते हैं ॥ १२---१४ ॥ यदि कदाचित् माघकी अमावास्याका शतमिषानक्षत्र-से योग हो जाय तो पितृगणकी तृप्तिके लिये यह परम उत्कृष्ट काल होता है। हे राजन् ! अल्प-पुण्यवान् पुरुषोंको ऐसा समय नहीं मिळता ॥१५॥ और यदि उस समय (माघकी अमावास्यामें) धनिष्ठा-नक्षत्रका योग हो तत्र तो अपने ही कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषद्वारा दिये हुए अन्नोदकसे पितृगणको दश सहस्र वर्षतक तृप्ति रहती है ॥१६॥ तथा यदि उसके साथ पूर्वभाद्रपदनक्षत्रका योग हो और उस समय पितृ-गणके लिये श्राद्ध किया जाय तो उन्हें पर्म तृप्ति प्राप्त श्राद्धं परां तृप्तिमुपेत्य तेन
युगं सहस्रं पितरस्त्वपन्ति ॥१७॥
गङ्गां शतद्रं यमुनां निपाशां
सरस्त्वीं नैमिषगोमतीं वा ।
तत्रावगाद्यार्चनमादरेण
कृत्वा पितृणां दुरितानि हन्ति ॥१८॥
गायन्ति चैतत्पितरः कदानु
वर्षामघातृप्तिमवाप्य भूयः ।
माघासितान्ते शुभतीर्थतोयैयास्याम तृप्तिं तनयादिद्तैः ॥१९॥
चित्तं च वित्तं च नृणां विश्चद्धं
शस्त्रथं कालः कथितो विधिश्च ।
पात्रं यथोक्तं परमा च भक्तिर्नृणां प्रयच्छन्त्यभिवाञ्छितानि ॥२०॥

पितृगीतान्तथैवात्र श्लोकांस्ताञ्छ्रणु पार्थिव । श्चत्वा तथैव भवता भाव्यं तत्राद्यतात्मना ॥२१॥ अपि धन्यः कुले जायादस्माकं मतिमानरः । अक्रवन्वित्तवाठयं यः पिण्डाको निर्वपिष्यति॥२२॥ रतं वस्तं महायानं सर्वभोगादिकं वस् । विभवे सति विप्रेभ्यो योऽस्मानुद्दिश्य दास्यति ।२३। अनेन वा यथाशक्त्या कालेऽसिन्मक्तिनम्रधीः। मोजयिष्यति विश्राग्र्यांस्तन्मात्रविभवो नरः॥२४॥ असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यमामं स्ववक्तितः। प्रदास्ति द्विजाग्रेभ्यः खल्पाल्पां वापि दक्षिणाम्॥ तत्राप्यसामध्येयुतः करायायस्थितांस्तिलान् । प्रणम्य द्विजयुख्याय कस्मैचिद्भपदास्यति।।२६॥ विलेस्सप्ताष्ट्रभिर्वापि समवेतं जलाञ्जलिम् । भक्तिनम्रस्समुद्दिश्य भुव्यस्माकं प्रदास्यति ॥२७॥ यतः कुतिश्वत्सम्प्राप्य गोम्यो वापि गवाहिकम् । अमावे प्रीणयनसाञ्च्छायुक्तः अदास्यति।।२८।।

होती है और वे एक सहस्र युगतक शयन करते रहते हैं ॥ १७ ॥ गङ्गा, शतद्रु, यमुना, विपाशा, सरखती और नैमिषारण्यस्थिता गोमतीमें स्नान करके पितृगणका आदरपूर्वक अर्चन करनेसे मनुष्य समस्त पापोंको नष्ट कर देता है ॥१८॥ पितृगण सर्वदा यह गान करते हैं कि वर्षाकाछ (भाद्रपद शुक्का त्रयोदशी) के मधानक्षत्रमें तृप्त होकर फिर माधकी अमावास्याको अपने पुत्र-पौत्रादिद्वारा दी गयी पुण्यतीर्थोंकी जलाञ्जलिसे हम कव तृप्ति लाभ करेंगे' ॥१९॥ विशुद्ध चित्त, शुद्ध धन, प्रशस्त काल, उपर्युक्त विधि, योग्य पात्र और परम भक्ति—ये सब मनुष्यको इच्छित फल देते हैं ॥२०॥

हे पार्थिव ! अव तुम पितृगणके गाये हुए कुछ श्लोकोंका श्रवण करो, उन्हें सुनकर तुम्हें आदरपूर्वक वैसा ही आचरण करना चाहिये ॥ २१ ॥ [पितृ-गण कहते हैं--] 'हमारे कुलमें क्या कोई ऐसा मतिमान् धन्य पुरुष उत्पन्न होगा जो वित्तलोलुपताको लोडकर हमें पिण्डदान देगा ॥२२॥ जो सम्पत्ति होनेपर हमारे उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको रत, वस्त, यान और सम्पूर्ण भोगसामग्री देगा।।२३॥ अथवा अन्न-वस्न-मात्र वैभव होने-से जो श्राद्धकालमें भक्ति-विनम्र चित्तसे उत्तम ब्राह्मणों-को यथाशक्ति अन्नं ही मोजन करायेगा ॥२४॥ या अनदानमें भी असमर्थ होनेपर जो ब्राह्मणश्रेष्ठोंको कचा धान्य और थोंड़ी-सी दक्षिणा ही देगा ।।२५॥ और यदि इसमें भी असमर्थ होगा तो किन्हीं द्विज-श्रेष्ठको प्रणाम कर एक मुट्टी तिल ही देगा ॥२६॥ अथवा हमारे उद्देश्यसे पृथिवीपर भक्ति-विनम्र चित्तसे सात-आठ तिलोंसे युक्त जलाञ्जलि ही देगा ॥ २७ ॥ और यदि इसका भी अभाव होगा तो कहीं-न-कहींसे एक दिनका चारा छाकर प्रीति और श्रदा-ापूर्वक ew हुमारे Dसहेक्यरो y ब्योक्तो ा खिलायेगा ॥ २८॥

सर्वाभावे वनं गत्वा कश्चमूलप्रदर्शकः ।
स्र्योदिलोकपालानामिदमुचैर्वदिष्यति ॥२९॥
न मेऽस्ति वित्तं न धनं च नान्यच्छ्राद्धोपयोग्यं खिपतृत्वतोऽसि ।
तृष्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
कृतौ भ्रजौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥३०॥
और्व जवाच

इत्येतित्पतृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम् । जो पुरुष आचरण करता है वह उस यः करोति कृतं तेन श्राद्धं भवति पार्थिव ॥३१॥ पूर्वक श्राद्ध ही कर देता है ॥३१॥

तथा इन संभी वस्तुओंका अभाव होनेपर जो वनमें जाकर अपने कक्षम्ल (वगल) को दिखाता हुआ सूर्य आदि दिक्पालोंसे उच्चखरसे यह कहेगा—॥२९॥ भेरे पास श्राद्धकर्मके योग्य न वित्त है, न धन है और न कोई अन्य सामग्री है, अतः मैं अपने पितृगणको नमस्कार करता हूँ, वे मेरी भक्तिसे ही तृप्ति लाभ करें। मैंने अपनी दोनों मुजाएँ आकाशमें उठा रखी हैं"॥३०॥

और्च बोले-हे राजन् ! धनके होने अथवा न होनेपर पितृगणने जिस प्रकार वतलाया है वैसा ही जो पुरुष आचरण करता है वह उस आचारसे विधि-पूर्वक श्राद्ध ही कर देता है ॥३१॥

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीयेंऽशे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

श्राद्ध-विधि।

और्व उवाच

ब्राह्मणान्मोजयेच्छाद्धे यद्गुणांस्तानिवोध मे।।१॥ त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णष्यडङ्गवित् वेदविच्छोत्रियो योगी तथा वै ज्येष्ठसामगः॥ २ ॥ ऋत्विक्सस्रेयदौहित्रजामातृश्वशुरास्तथा मातलोऽथ तपोनिष्ठः पश्चाग्न्यभिरतस्तथा । शिष्यास्सम्बन्धिनश्चैव मातापित्रतश्च यः ॥ ३ ॥ एतानियोजयेच्छाद्धे पूर्वोक्तान्प्रथमे नृप । ब्राह्मणान्पितृतुष्ट्यर्थमनुकल्पेष्यनन्तरान् ॥ ४॥ मित्रध्वकुनस्वी क्लीवक्क्यावद्नतस्तथा द्विजः। कन्याद्पयिता विद्ववेदोज्झस्सोमविऋयी ॥ ५॥ अभिशस्तस्तथा स्तेनः पिशुनो ग्रामयाजकः । भृतकाच्यापकस्तद्रद्भृतकाच्यापितश्च यः॥ ६॥ परपूर्वापतिश्रव मातापित्रोस्तथोज्झकः। वृषलीपतिरेव च॥७॥ वृषलीस्रतिपोष्टा च तथा देवलकश्रेव श्राद्धे नाईति केतनम्।। ८।।

ं और्व बोले-हे राजन् ! श्राद्वकालमें जैसे गुण-शील ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये वह बतलाता हूँ, सुनो । त्रिणाचिकेत', त्रिमधु', त्रिसुपर्ण³, छहों वेदाङ्गोंके जाननेवाले, वेदवेत्ता, श्रोत्रिय, योगी और ज्येष्ठसामगः; तथा ऋत्विक्, भानजे, दौहित्र, जामाता, श्वसुर, मामा, तपली, पञ्चाग्नि तपनेवाले, शिष्य, सम्बन्धी और माता-पिताके प्रेमी इन ब्राह्मणोंको श्राद्ध-कर्ममें नियुक्त करे। इनमेंसे [त्रिणाचिकेत आदि] पहले कहे हुओंको पूर्वकालमें नियुक्त करे और [ऋत्विक आदि] पीछे वतलाये हुओंको पितरोंकी तृप्तिके लिये उत्तरकर्ममें मोजन करावे॥१-४॥ मित्रघाती, खभावसे ही विकृत नखींवाला, नपुंसक, काले दाँतोंवाला, कन्या-गामी, अग्नि और वेदका त्याग करनेवाला,सोमरस वेचने-वाला, लोकनिन्दित, चोर, चुगल्खोर, ग्रामपुरोहित, वेतन लेकर पढ़ानेवाला अथवा पढ़नेवाला, पुनर्विवाहिता-का पति, माता-पिताका त्याग करनेवाला, शुद्रकी सन्तानका पालन करनेवाला, शृद्राका पति तथा देवोप-जीवी त्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रण देने योग्य नहीं है॥५-८॥

१-द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तोन अनुवाकोंको 'त्रिणाचिकेत'कहते हैं, उसको पदने-वाला या उसका अनुष्ठान करनेवाला ।

२- मधुवाताः इत्यादि ऋचाका अध्ययन ग्रोर मधुव्रतका आचरण वरनेवाला।

३- 'ब्रह्ममेतु मां' इत्यादि तीन अनुवाकांका अध्ययन और तत्सम्बन्धी यत करनेवाला।

प्रथमेऽह्वि बुधस्यस्ताञ्ल्रोत्रियादीत्रिमन्त्रयेत्। कथयेच तथैवेषां नियोगान्पितृदैविकान् ॥ ९ ॥ ततः क्रोधव्यवायादीनायासं तैर्द्विजैस्सह । यजमानो न कुर्वीत दोषस्तत्र महानयम् ॥१०॥ श्राद्धे नियुक्तो भुक्त्वा वा भोजयित्वा नियुज्य च । च्यवायी रेतसो गर्ते मज्जयत्यात्मनः पितृन् ॥११॥ तसात्प्रथममत्रोक्तं द्विजाप्रचाणां निमन्त्रणम् । अनिमन्त्र्य द्विजानेत्रमागतान्मोजयेद्यतीन् ।।१२।। पादशौचादिना गेहमागतान्यूजयेद् द्विजान् ।।१३॥ पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् पितृणामयुजो युग्मान्देवानामिच्छया द्विजान्।१४। देवानामेकमेकं वा पितृणां च नियोजयेत् ॥१५॥ तथा मातामहश्राद्धं वैश्वदेवसमन्वितम्। कुर्वीत मक्तिसम्पन्नस्तन्त्रं वा वैश्वदैविकस् ॥१६॥ प्राङ्गुखान्भोजयेद्विप्रान्देवानामुभयात्मकान् । पितृमातामहानां च मोजयेचाप्युदङ्गुखान्।।१७।। पृथक्तयोः केचिदाहुः श्राद्धस्य करणं नृप । एकत्रैकेन पाकेन वदन्त्यन्ये महर्षयः ॥१८॥ विष्टरार्थं कुशं दत्त्वा सम्पूज्यार्घ्यं विधानतः। कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां तद्गुज्ञया ॥१९॥ यवाम्बुना च देवानां दद्याद्घ्यं विधानवित । स्रग्गन्धधूपदीपांश्च तेम्यो दद्याद्यथाविधि ॥२०॥ तत्सर्वमेवोपकल्पयेत्। पितृणामपसच्यं

श्राद्धके पहले दिन बुद्धिमान् पुरुष श्रोत्रिय आदि विहित ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और उनसे यह कह दे कि 'आपको पितृ-श्राद्धमें और आपको विक्वेदेव-श्राद्धमें नियुक्त होना है' ॥९॥ उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंके सहित श्राद्ध करनेवाला पुरुष उस दिन क्रोधादि तथा स्त्रीगमन और परिश्रम आदि न करे, क्योंकि श्राद्ध करनेमें यह महान् दोष माना गया है॥१०॥ श्राद्धमें निमन्त्रित होकर या भोजन करके अथवा निमन्त्रण करके या भोजन कराकर जो पुरुष स्त्री-प्रसंग करता है वह अपने पितृ-गणको मानो वीर्यके कुण्डमें डुवोता है॥११॥ अतः श्राद्धके प्रथम दिन पहले तो उपरोक्त गुणविशिष्ट द्विजश्रेष्ठोंको निमन्त्रित करे और यदि उस दिन कोई अनिमन्त्रित तपस्त्री ब्राह्मण घर आ जायँ तो उन्हें भी मोजन करावे॥१२॥

घर आये हुए ब्राह्मणोंका पहले पाद-शुद्धि आदिसे सत्कार करे; फिर हाथ घोकर उन्हें आचमन करानेके अनन्तर आसनपर बिठावे । अपनी सामध्यीनुसार पितृगणके छिये अयुग्म और देवगणके छिये युग्म ब्राह्मण नियुक्त करे अथवा दोनों पक्षोंके छिये एक-एक ब्राह्मणकी ही नियुक्ति करे ॥१३-१५॥ और इसी प्रकार वैस्वदेवके सहित मातामह-श्राद्ध करे अथवा पितृपक्ष और मातामह-पक्ष दोनोंके लिये मक्तिपूर्वक एक ही वैस्वदेव-श्राद्ध करे ॥ १६ ॥ देव-पक्षके ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख विठाकर और पितृ-पक्ष तथा मातामह-पक्षके ब्राह्मणोंको उत्तर-मुख विठाकर मोजन करावे॥ १७॥ हे नृप ! कोई तो पितृ-पक्ष और मातामह-पक्षके श्राद्धों-को अलग-अलग करनेके लिये कहते हैं और कोई महर्षि दोनोंका एक साथ एक पाकमें ही अनुष्ठान करनेके पक्षमें हैं ॥ १८॥ विज्ञ व्यक्ति प्रथम निमन्त्रित ब्राह्मणोंके बैठनेके छिये कुंशा बिछाकर फिर अर्घ्यदान आदिसे विधिपूर्वक पूजा कर उनकी अनुमतिसे देवताओं-का आवाहन करे॥ १९॥ तदनन्तर श्राद्धविधिको जाननेवाळा पुरुष यव-मिश्रित जलसे देवताओंको अर्घ्य-दान करे और उन्हें विधिपूर्वक घूप, दीप, गन्ध तथा माला आदि निवेदन करे॥२०॥ये समस्त उपचार पितृ-गणके लिये अपसन्य मावसे * निवेदन करे; और फिर

अनुज्ञां च ततः प्राप्य दत्त्वा दर्भान्द्रिधाकृतान् २१ मन्त्रपूर्व पितृणां तु कुर्याचावाहनं बुधः । तिलाम्बुना चापसच्यं दद्यादर्घ्यादिकं नृप ॥२२॥ काले तत्रातिथिं प्राप्तमन्नकामं नृपाध्वगम्। ब्राह्मणैरम्यनुज्ञातः कामं तमपि भोजयेत्।।२३।। योगिनो विविधे रूपैर्नराणाग्रुपकारिणः। पृथिवीमेतामविज्ञातस्वरूपिणः ॥२४॥ अमन्ति तसादभ्यचेयेत्प्राप्तं श्राद्धकालेऽतिथिं वुधः । श्राद्धित्रयाफलं हन्ति नरेन्द्रापूजितोऽतिथिः॥२५॥ ततोऽनले । जुहुयाद्वचझनक्षारवर्जमन्नं अनुज्ञातो द्विजैस्तैस्तु त्रिकृत्वः पुरुषर्पम ॥२६॥ अग्नये कञ्यवाहाय खाहेत्यादौ नृपाहुतिः । सोमाय वै पितृमते दातव्या तदनन्तरम्।।२७। वैवस्त्रताय चैवान्या तृतीया दीयते ततः । ततोऽनं मृष्टमत्यर्थमभीष्टमतिसंस्कृतम्

सोमाय वै पितृमते दातव्या तदनन्तरम्।।२७।।
वैवस्तताय चैवान्या तृतीया दीयते ततः ।
हुतावशिष्टमल्पानं विप्रपात्रेषु निर्वपेत्।।२८।।
ततोऽनं मृष्टमत्यर्थमभीष्टमितसंस्कृतम् ।
दस्ता ज्ञषध्विमञ्ज्ञातो वाच्यमेतदिनिष्ठरम्।।२९॥
मोक्तव्यं तैश्र तिचत्तेमौनिभिस्सुमुखैः सुखम् ।
अक्रुद्धचता चात्वरता देयं तेनापि मिक्ततः ।।३०॥
रक्षोप्तमन्त्रपठनं भूमेरास्तरणं तिलैः ।
कृत्वा ध्येयास्स्विपतरस्त एव द्विजसत्तमाः ॥३१॥
पिता पितामहश्रेव तथैव प्रपितामहः ।
मम तृप्ति प्रयान्त्वद्य विप्रदेहेषु संस्थिताः ॥३२॥
पिता पितामहश्रेव तथैव प्रपितामहः ।
मम तृप्ति प्रयान्त्वद्य होमाप्यायितमूर्तयः ॥३३॥
पिता पितामहश्रेव तथैव प्रपितामहः ।
सम तृप्ति प्रयान्त्वद्य होमाप्यायितमूर्तयः ॥३३॥
पिता पितामहश्रेव तथैव प्रपितामहः ।
त्रित्तं प्रयान्त्वद्य होमाप्यायितमूर्तयः ॥३३॥
पिता पितामहश्रेव तथैव प्रपितामहः ।
त्रित्तं प्रयान्त्वद्य होमाप्यायितमूर्तयः ॥३३॥
दित्तं प्रयान्तु पिण्डेन स्या दत्तेन भूतले ॥३४॥

त्राह्मणोंकी अनुमितसे दो भागोंमें बँटे हुए कुशाओंका दान करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक पितृगणका आवाहन करे, तथा हे राजन् ! अपसञ्य-भावसे तिलोदकसे अर्घादि दे ॥२१-२२॥

हे नृप ! उस समय यदि कोई भूखा पथिक अतिथि-रूपसे आ जाय तो निमन्त्रित ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उसे भी यथेच्छ भोजन करावे ॥ २३ ॥ अनेक अज्ञात-खरूप योगिगण मनुष्योंके कल्याणकी कामनासे नाना रूप धारणकर पृथिवीतल्पर विचरते रहते हैं ॥ २४ ॥ अतः विज्ञ पुरुष श्राद्धकाल्में आये हुए अतिथिका अवस्य सत्कार करे । हे नरेन्द्र ! उस समय अतिथिका सत्कार न करनेसे वह श्राद्ध-क्रियाके सम्पूर्ण फलको नष्ट कर देता है ॥ २५ ॥

हे पुरुषश्रेष्ट ! तदनन्तर उन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शाक और लवणहीन अन्नसे अग्निमें तीन वार आहुति दे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! उनमेंसे 'श्रग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' इस मन्त्रसे पहली आहुति, 'सोमाय पितृमते स्वाहा' इससे दूसरी और 'वैवस्वताय स्वाहा' इस मन्त्रसे तीसरी आहुति दे । तदनन्तर आहुतियोंसे बचे हुए अन्नको थोड़ा-थोड़ा सब ब्राह्मणोंके पात्रोंमें परोस दे ॥ २७-२८॥

फिर रुचिके अनुकूछ अति संस्कारयुक्त मधुर अने सवको परोसे और अति मृदुङ वाणीसे कहे कि 'आप भोजन कीजिये' ॥ २९ ॥ त्राह्मणोंको भी तद्गतचित्त और मौन होकर प्रसन्नमुखसे सुखपूर्वक भोजन करना चाहिये तथा यजमानको क्रोध और उतावलेपनको छोड़कर भक्तिपूर्वक परोसते रहना चाहिये ॥३०॥ फिर 'रह्मोन्न' * मन्त्रका पाठ कर श्राह्म मूमिपर तिल छिड़के, तथा अपने पितृरूपसे उन द्विजश्रेष्टोंको ही चिन्तन करे ॥३१॥ [और कहे कि] 'इन ब्राह्मणोंके शरीमें स्थित मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आदि आज तृप्ति लाभ करें ॥३२॥ होमद्वारा सवल होकर मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आज तृप्ति लाभ करें ॥३३॥ मैने जो पृथिवीपर पिण्डदान किया है उससे मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्ति लाभ करें ॥३३॥ मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्ति लाभ करें ॥३३॥ मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्ति लाभ करें ॥३३॥ मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्ति लाभ करें ॥३३॥

^{🐞 &#}x27;ॐ अ पहता असुरा रक्षा ९ सि वेदिवद' इत्यादि ।

पिता पितामहश्रेव तथैव प्रपितामहः। तृप्तिं प्रयान्तु मे भक्त्या मयैतत्समुदाहृतम् ॥३५॥ मातामहस्त्र तिस्रेपेत तस्य तथा पिता तस पिता ततोऽन्यः। विश्वे च देवाः परमां प्रयान्तु े तृप्ति प्रणश्यन्तु च यातुधानाः ॥३६॥ यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्य-मोक्ताच्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र । तत्सिश्रानाद्पयान्तु सद्यो सर्वे ॥३७॥ रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च तृप्तेष्वेतेषु विकिरेदनं विप्रेषु भूतले । दद्यादाचमनार्थाय तेभ्यो वारि सक्रत्सकृत् ॥३८॥ सुरुप्तैस्तैरनुज्ञातस्सर्वेणान्नेन सतिलेन ततः पिण्डान्सम्यग्दद्यात्समाहितः॥३९॥ पितृतीर्थेन सतिलं तथैव सलिलाञ्जलिम् । मातामहेम्यस्तेनेव पिण्डांस्तीर्थेन निर्वपेत् ॥४०॥ दक्षिणात्रेषु दर्भेषु पुष्पधूपादिपूजितम्। खिपत्रे प्रथमं पिण्डं दद्यादुच्छिष्टसिन्नधौ ॥४१॥ पितामहाय चैवान्यं तत्पित्रे च तथापरम् । दर्भमूले प्रीणयेख्ठेपघर्षणैः ॥४२॥ लेपभुज: पिण्डेर्मातामहांस्तद्वद्गन्थमाल्यादिसंयुतैः प्जयित्वा द्विजाप्रयाणां दद्याचाचमनं ततः॥४३॥ पितृस्यः प्रथमं भक्त्या तन्मनस्को नरेश्वरः। सुखधेत्याशिषा युक्तां द्द्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ।। द्रस्वा च दक्षिणां तेम्यो वाचयेद्वैश्वदेविकान्। भीयन्तामिह ये विश्वेदेवास्तेन इतीरयेत् ॥४५॥ तथेति चोक्ते तैविंग्रैः प्रार्थनीयास्तथाशिषः ।

[श्राद्धरूपसे कुछ भी निवेदन न कर सकनेके कारण]
मैंने भक्तिपूर्वक जो कुछ कहा है उस मेरे भक्ति-भावसे ही
मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्ति छाभ करें ॥३५॥
मेरे मातामह (नाना), उनके पिता और उनके भी
पिता तथा विश्वेदेवगण परम तृप्ति छाभ करें तथा
समस्त राक्षसंगण नष्ट हों ॥ ३६॥ यहाँ समस्त हब्यकब्यके भोक्ता यज्ञेश्वर भगवान् हरि विराजमान हैं,
अतः उनकी सन्तिधिके कारण समस्त राक्षस और
असुरगण यहाँसे तुरन्त भाग जायँ ॥ ३७॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंके तृप्त हो जानेपर थोड़ा-सा अन्न पृथिवीपर डाले और आचमनके लिये उन्हें एक-एक बार और जल दे ॥ ३८॥ फिर भलीप्रकार तुप्त हुए उन ब्राह्मणोंकी आज्ञा होनेपर समाहितचित्तसे पृथिवीपर अन और तिलके पिण्ड-दान करे॥ ३९॥ और पितृतीर्थसे तिलयुक्त जलाञ्जलि दे तथा मातामह आदिको भी उस पितृतीर्थसे ही पिण्ड-दान करे ॥ ४०॥ ब्राह्मणोंकी उच्छिष्ट (जूठन) के निकट दक्षिणकी ओर अप्रभाग करके विछाये हुए कुशाओंपर पहले अपने पिताके लिये पुष्प-धूपादिसे पूजित पिण्ड-दान करे ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् एक पिण्ड पितामहके छिये और एक प्रपितामहके छिये दे और फिर कुशाओंके मूलमें हाथमें लगे अन्नको पोंछकर ['लेपमागमुजस्तृप्यन्ताम्' ऐसा उचारण करते हुए] **टेपभोजी पितृगणको तृप्त करे ॥४२॥ इसी प्रकार गन्ध** और मालदियुक्त पिण्डोंसे मातामह आदिका मूजन कर फिर द्विजश्रेष्टोंको आचमन करावे ॥ ४३ ॥ और हे नरेंद्रबर ! इसके पछि भक्तिभावसे तन्मय होकर पहले पितृपक्षीय त्राह्मणोंका 'सुखधा' यह आशीर्वोद प्रहण करता हुआ 'यथाशक्ति दक्षिणा दे ॥ ४४ ॥ फिर निकट जा उन्हें वैस्वदेविक ब्राह्मणोंके दक्षिणासे कहे कि 'इस प्रसन्न हों'ा। ४५॥ . उन ं त्राक्षणोंके 'तथास्तु' कहनेपर उनसे आशीर्वादके छिये प्रार्थना करे और CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पश्चाद्विसर्जयेदेवानपूर्व पित्र्यान्महीपते ॥४६॥ मातामहानामप्येवं सह देवैः क्रमः स्मृतः । मोजने च खशक्त्या च दाने तद्रद्विसर्जने ॥४७॥ कुर्यादेवद्विजनमसु । आपादशौचनात्पूर्व विसर्जनं त प्रथमं पैत्रमातामहेषु वै ॥४८॥ विसर्जयेत्प्रीतिवचस्सम्मान्याभ्यर्थितांस्ततः। निवर्त्तेताभ्यनुज्ञात आद्वारं ताननुत्रजेत् ॥४९॥ ततस्त वैश्वदेवाख्यं क्यां नित्यक्रियां बुधः । भ्रञ्ज्याचैव समं पूज्यभृत्यवन्धुभिरात्मनः ॥५०॥ एवं श्राद्धं ब्रधः क्रयीत्पित्रयं मातामहं तथा । श्राद्धेराप्यायिता दद्यस्सर्वान्कामान्पितामहाः।५१। त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः क्रुतपस्तिलाः । रजतस्य तथा दानं कथासङ्कीर्तनादिकम् ॥५२॥ वर्ज्यानि कुर्वता श्राद्धं क्रोधोऽध्वगमनं त्वरा । मोक्तुरप्यत्र राजेन्द्र त्रयमेतन शसते ॥५३॥ विश्वेदेवास्सपितरस्तथा मातामहा नृप । कुरुं चाप्यायते पुंसां सर्वे श्राद्धं प्रकुर्वताम् ॥५४॥ सोमाधारः पितृगणो योगाधारश्च चन्द्रमाः । श्राद्धे योगिनियोगस्तु तसाङ्ग्रपालं शस्यते ॥५५॥ सहस्रसापि विप्राणां योगी चेत्पुरतःस्थितः । सर्वान्भोक्तृंस्तारयति यजमानं तथा नृप ॥५६॥ सहित उन सबका उद्धार कर देता है ॥ ५६॥

फिर पहले पित्पक्षके और पीछे देवपक्षके ब्राह्मणोंको विदा करे ॥ ४६ ॥ विस्वेदेवगणके सहित मातामह आदिके श्राद्धमें भी ब्राह्मण-भोजन, दान और विसर्जन आदिकी यही विधि वतलायी गयी है ॥ ४७॥ पितृ और मातामह दोनों ही पक्षोंके श्राद्वोंमें पादशौच आदि सभी कर्म पहले देवपक्षके ब्राह्मणोंके करे परन्तु विदा पहले पितृपक्षीय अथवा मातामहपक्षीय ब्राह्मणोंकी ही करे ॥४८॥

तद्नन्तर, प्रीतिवचन और सम्मानपूर्वक ब्राह्मणों-को विदा करे और उनके जानेके समय द्वारतक उनके पीछे-पीछे जाय तथा जब वे आज्ञा दें तो छौट आवे ॥ ४९ ॥ फिर विज्ञ पुरुष वैश्वदेव नामक नित्य-कर्म करे और अपने पूज्य पुरुष, बन्धुजन तथा भृत्यगणके सहित खयं भोजन करे ॥ ५० ॥

बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार पैत्रय और मातामह-श्राद्रका अनुष्टान करे । श्राद्रसे तृप्त होकर पितृगण समस्त कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं ॥ ५१ ॥ दौहित्र (लड्कीका लड्का), कुतप (दिनका आठवाँ मुहुर्त) और तिल्—ये तीन तथा चाँदीका दान और उसकी वातचीत करना—ये सब श्राद्धकालमें पवित्र माने गये हैं ॥ ५२ ॥ हे राजेन्द्र ! श्राद्धकर्ताके छिये क्रोध, मार्गगमन और उतावलापन-ये तीन वार्ते वर्जित हैं; तथा श्राद्धमें भोजन करनेवालोंको भी इन तीनोंका करना उचित नहीं है ॥ ५३॥

हे राजन् ! श्राद्ध करनेवाले पुरुषसे विस्वेदेवगण, पितृगण, मातामह तथा कुट्रम्बीजन-सभी सन्तुष्ट रहते हैं || ५४ || हे भूपाछ ! पितृगणका आधार चन्द्रमा है और चन्द्रमाका आधार योग है, इसिछिये श्राद्धमें योगिजनको नियुक्त करना अति उत्तम है ॥ ५५॥ हे राजन् । यदि श्राद्धमोजी एक सहस्र त्राह्मणोंके सम्मुख एक योगी भी हो तो वह यजमानके

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीर्येऽशे पञ्चदंशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

श्राद्ध-कर्ममें विहित और अविहित वस्तुओंका विचार।

और्व उवाच

हविष्यमत्स्यमांसैस्तु शशस्य नकुलस्य च । सौकरच्छागलैणेयरौरवैर्गवयेन औरभ्रगव्येश्व तथा मासवृद्धचा पितामहाः । प्रयान्ति तृप्तिं मांसैस्तु नित्यं वार्घीणसामिषेः॥२॥ खद्गमांसमतीवात्र कालशाकं तथा मधु। शस्तानि कर्मण्यत्यन्ततृप्तिदानि नरेश्वर ॥ ३॥ गयामुपेत्य यः श्राद्धं करोति पृथिवीपते । सफलं तस्य तज्जन्म जायते पितृतुष्टिदम् ॥ ४ ॥ प्रशान्तिकास्सनीवाराङ्यामाका द्विविधास्तथा। वन्यौषधीप्रधानास्तु श्राद्धार्हाः पुरुषर्पम ॥ ५ ॥ यवाः त्रियङ्गवो मुद्रा गोधूमा त्रीहयस्तिलाः। निष्पावाः कोविदाराश्च सर्वपाश्चात्र शोभनाः॥ ६ ॥ अकृताग्रयणं यच धान्यजातं विसर्जयेत ॥ ७॥ राजमापानण्ंश्रेव मस्रांश्र अलाबं गृञ्जनं चैव पलाण्डं पिण्डमूलकम् । गान्धारककरम्बादिलवणान्यौषराणि आरक्ताश्चेव निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च । वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धे यच वाचा न शखते ॥ ९ ॥ नक्ताहृतमजुच्छिनं तृप्यते न च यत्र गौः। दुर्गन्धि फेनिलं चाम्बु श्राद्धयोग्यं न पार्थिव ।।१०।। जल

श्रीर्घ खोले-हिव, मत्स्य, राशक (खरगोश), नकुल, श्रूकर, छाग, कस्तूरिया मृग, कृष्ण मृग, गवय (वन-गाय) और मेषके मांसोंसे तथा गव्य (गौके दृध-वी आदि) से पितृगण क्रमशः एक-एक मास अधिक तृप्ति छाम करते हैं और वाधीणस पक्षीके मांससे सदा तृप्त रहते हैं ॥ १-२ ॥ हे नरेश्वर ! श्राद्धकर्ममें गेंडेका मांस कालशाक और मधु अत्यन्त प्रशस्त और अत्यन्त तृप्ति-दायक हैं * ॥ १॥ हे पृथिवीपते ! जो पुरुष गयामें जाकर श्राद्ध करता है उसका पितृगणको तृप्ति देनेवाला वह जन्म सफल हो जाता है ॥ १॥ हे पुरुषश्रेष्ट ! देवधान्य, नीवार और स्थाम तथा स्थेत वर्णके स्थामाक (समा) एवं प्रधान-प्रधान वनौषिधयाँ श्राद्धके उपयुक्त द्रव्य हैं ॥ ५॥ जो, काँगर्ना, मूँग, गेहूँ, धान, तिल, मटर, कचनार और सरसों इन सबका श्राद्धमें होना अच्छा है ॥ ६॥

हे राजेश्वर ! जिस अनसे नवान यज्ञ न किया गया हो तथा बड़े उड़द, छोटे उड़द, मसूर, कदू, गाजर, प्याज, शळजम, गान्धारक (शालिविशेष) बिना तुषके गिरे हुए धान्यका आटा, ऊसर भूमिमें उत्पन्न हुआ लवण, हींग आदि कुछ-कुछ लाल रंगकी वस्तुएँ, प्रत्यक्ष लवण और कुछ अन्य वस्तुएँ जिनका शास्त्रमें विधान नहीं है श्राद्धकर्ममें त्याज्य हैं ॥७–९॥ हे राजन् ! जो रात्रिके समय लाया गया हो, अप्रतिष्ठित जलाशयका हो, जिसमें गौ तृप्त न हो सकती हो ऐसे गड़देका अथवा दुर्गन्ध या फेनयुक्त जल श्राद्धके योग्य नहीं होता ॥ १०॥

क्ष इन तीन रहोकोंका मूलके अनुसार अनुवाद कर दिया गया है। समझमें नहीं आता, इस न्यवस्थाका क्या रहस्य है? मालूम होता है, श्रुति-स्मृतिमें जहाँ कहीं मांसका विधान है, वह स्वामाविक मांसभोजी मनुष्योंकी प्रवृत्तिको संकुचित और नियमित करनेके जिये ही है। सभी जगह उत्कृष्ट धर्म तो मांसभक्षणका सर्वथा स्थाग ही माना गया है। मनुस्मृति प्रव ५ में मांसप्रकरणका उपसंहार करते हुए रह्णोक ४४ से ४६ तक मांसभक्षणकी निन्दा और निरामिष आहारकी मृति-भूति प्रशंसा की गयी है। श्राद्धकर्ममें मांस कितना निन्दनीय है, यह श्रीमद्भागवत सप्तमस्कन्ध अध्याय ३५ के इन रह्णोकोंसे स्पष्ट हो जाता है—

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतस्ववित् । मुन्यकैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसमा ॥ ७ ॥ नैतादशः परा घर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् । न्यासा दण्डस्य मूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥ ८ ॥ द्रव्ययद्वैर्यक्ष्यमाणं दृष्टुा भूतानि विभ्यति । एष माऽकदणा हन्यादत्वज्ञो ह्यसुतृप् घ्रुवम् ॥१ ०॥

अर्थ-धर्मके सर्मको समझनेवाला पुरुप श्राहर्मे [सानेके लिये] मांस न दे और न स्वयं ही खाय, क्योंकि पितृ-गणकी तृप्ति जैसी मुनिजनोचित आहारसे होती है वैसी पर्छाईसासे नहीं होती ॥७॥ सन्दर्मकी इच्छावाले पुरुपोंके लिये 'सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति मन, वाणी और शरीरसे द्वडका स्थाग कर देना'—इसके समान और कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है ॥८॥ पुरुपको द्रव्यवज्ञसे यजन करते देखकर जीव ढरते हैं कि यह अपने ही प्रायोंका पोपण करनेवाला निर्द्य सज्जानी मुसे अवस्य मार हालेगा ॥३०॥ vat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

क्षीरमेकशफानां यदौष्ट्रमाविकमेव च। मार्गं च माहिपं चैव वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥११॥ पण्डापविद्धचाण्डालपापिपापण्डिरोगिभिः । वानरग्रामस्करैः ॥१२॥ कुकवाकुश्वनप्रश्र उद्क्यास्तकाशौचिमृतहारैश्र वीक्षिते। श्राद्धे सुरा न पितरो भुज्जते पुरुपर्वम ॥१३॥ तसात्परिश्रिते कुर्याच्छ्राद्धं श्रद्धासमन्वितः । उर्व्यां च तिलविश्वेपाद्यातुधानानिवारयेत् ॥१४॥ नखादिना चोपपनं केशकीटादिभिर्नृप। न चैवाभिषवैर्मिश्रमनं पर्युषितं तथा ॥१५॥ श्रद्धासमन्वितेर्दत्तं पितृभ्यो नामगोत्रतः। यदाहारास्तु ते जातास्तदाहारत्वमेति तत् ॥१६॥ श्रूयते चापि पितृभिगींता गाथा महीपते । इक्ष्त्राकोर्मनुपुत्रस्य कलापोपवने पुरा ॥१७॥ अपि नस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मार्गशीलिनः। ग्याम्रुपेत्य ये पिण्डान्दास्यन्त्यसाकमाद्रात् ।१८। अपि नस्स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्। पायसं मधुसर्पिभ्यां वर्षासु च मघासु च ॥१९॥ गौरीं वाप्युद्धहेत्कन्यां नीलं वा वृषम्रुत्सृजेत् । यजेत वाश्वमेघेन विधिवद्शिणावता।।२०।।

एक ख़ुरवालोंका, ऊँटनीका, भेड़का, मृगीका तथा मैंसका दूध श्राद्धकर्ममें काममें न छे॥ ११॥

हे पुरुवर्षभ ! नपुंसक, अपविद्ध (सत्पुरुषोंद्वारा वहिष्कृत), चाण्डाल, पापी, पापण्डी, रोगी, कुक्कुट, श्वान, नम्न (वैदिककर्मको त्याग देनेवाला पुरुप) वानर, प्राम्यशूकर, रज़खला स्त्री, जन्म अथवा मरणके अशौचसे युक्त व्यक्ति और शव छे जानेवाछे पुरुष -इनमेंसे किसीकी भी दृष्टि पड़ जानेसे देवगण अथवा पितृगण कोई भी श्राद्धमें अपना भाग नहीं छेते ॥ १२-१३॥ अतः किसी घिरे हुए स्थानमें श्रद्धापूर्वक श्राद्धकर्म करे तथा पृथिवीमें तिल छिड़ककर राक्षसोंको निवृत्त कर दे ॥ १४ ॥

हे राजन् ! श्राद्धमें ऐसा अन्न न दे जिसमें नख, केश या कीड़े आदि हों, या जो निचोड़कर निकाले हुए रससे युक्त हो या वासी हो ॥ १५॥ श्रद्धायुक्त व्यक्तियोंद्वारा नाम और गोत्रके उच्चारण-पूर्वक दिया हुआ अन पितृगणको वे जैसे आहारके योग्य होते हैं वैसा ही होकर उन्हें मिलता है॥ १६॥ हे राजन् ! इस सम्बन्धमें एक गाथा सुनी जाती है जो पूर्वकालमें मनुपुत्र महाराज इक्षाकुके प्रति पितृगणने कलाप उपवनमें कही थी।। १७॥

'क्या हमारे कुछमें ऐसे सन्मार्ग-शोछ व्यक्ति होंगे जो गयामें जाकर हमारे छिये आदरपूर्वक पिण्डदान करेंगे ? ॥ १८ ॥ क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष होगा जो वर्षाकालकी मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशीको हमारे उद्देश्यसे मधु और घृतयुक्त पायस (खीर) का दान करेगा ? || १९ || अथवा गौरी कन्यासे विवाह करेगा, नीला चृपम लोड़ेगा या दक्षिणासहित विघि-पूर्वक अख़मेध यज्ञ करेगा ?' ॥ २०॥

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीर्येंऽशे पोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सत्रहवाँ अध्याय

नय्नविषयक प्रश्नः देवताओंका पराजय, उनका भगवान्की शरणमें जाना और भगवान्का मायामोहको प्रकट करना।

श्रीपराशर उवाच भगवानौर्वस्सग्राय महात्मने। सदाचारं पुरा सम्यङ् मैत्रेय परिपृच्छते ॥ १॥ प्रकार गृहस्थके सदाचारका निरूपणिकया था ॥१॥

श्रीपरास्त्री बोले—हे मैत्रेय ! पूर्वकालमें महात्मा सगरसे उनके पूछनेपर भगवान् और्वने इस मयाप्येतदशेपेण कथितं भवतो द्विज। समुल्लङ्घ सदाचारं कश्चित्रामोति शोमनम् ॥ २ ॥

श्रीमैत्रेय उवाच

षण्डापविद्धप्रमुखा विदिता भगवन्मया। उद्क्याद्याश्च मे सम्यङ् नग्नमिच्छामि वेदितुम्।।३।। को नमः किसमाचारो नमसंज्ञां नरो लभेत्। नग्नस्वरूपमिच्छामि यथावत्कथितं त्वया। श्रोतुं धर्मभृतां श्रेष्ठ न ह्यस्त्यविदितं तव ॥ ४॥

श्रीपराशर उवाच ऋग्यजुस्सामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृतिर्द्विज । एतामुज्झति यो मोहात्स नग्नः पातकी द्विजः॥ ५ ॥ त्रयी समस्तवर्णानां द्विज संवरणं यतः। नम्रो भवत्युज्झितायामतस्तस्यां न संशयः ॥ ६ ॥ इदं च श्रूयतामन्यद्यद्भीष्मायं महात्मने । कथयामास धर्मज्ञो वसिष्ठोऽसित्पतामहः॥ ७॥ मयापि तस्य गदतक्श्रुतमेतन्महात्मनः। नप्रसम्बन्धि मैत्रेय यत्पृष्टोऽहमिह त्वया॥८॥ देवासुरमभृद्युद्धं दिव्यमब्दशतं पुरा। तस्मिन्पराजिता देवा दैत्यैर्हाद्परोगमैः॥९॥ क्षीरोदस्थोत्तरं कूलं गत्वातप्यन्त वै तपः। विष्णोराराधनार्थाय जगुश्चेमं स्तवं तदा ॥१०॥

देवा ऊचुः

आराधनाय लोकानां विष्णोरीशस्य यां गिरम्।

हे द्विज ! मैंने भी तुमसे इसका पूर्णतया वर्णन कर दिया । कोई भी पुरुष सदाचारका उछह्वन करके सदृति नहीं पा सकता॥२॥

श्रीमैत्रेयजी बोले--भगवन् ! नपुंसक, अपविद्र और रजख़ला आदिको तो मैं अन्छी तरह जानता जानता कि िकिन्तु यह नहीं किसको कहते हैं] । अतः इस समय मैं नग्नके विषयमें जानना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ नग्न कौन है ? और किस प्रकारके आचरणवाला पुरुष नग्न-संज्ञा प्राप्त करता है ? हे धर्मात्माओं में श्रेष्ट ! मैं आपके द्वारा नम्रके खरूपका यथावत् वर्णन सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आपको कोई भी बात अविदित नहीं है ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विज! ऋक्, साम और यजुः यह वेदत्रयी वर्णीका आवरणखरूप है। जो पुरुष मोहसे इसका त्याग कर देता है वह पापी 'नम्र' कहळाता है ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! समस्त वर्णी-का संवरण (दँकनेवाला वस्र) वेदत्रयी ही है; इसलिये उसका त्याग कर देनेपर पुरुष 'नग्न' हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥६॥ हमारे पितामह धर्मज्ञ वसिष्टजीने इस विषयमें महात्मा भीष्मजीसे जो कुछ कहा था वह श्रवण करो ॥ ७॥ हे मैत्रेय ! तुमने जो मुझसे नग्नके विषयमें पूछा है इस सम्बन्धमें भीष्मके प्रति वर्णन करते समय मैंने भी महात्मा वसिष्ठजीका कथन सुना था ॥ ८॥

पूर्वकालमें किसी समय सौ दिव्यवर्षतक देवता और असुरोंका परस्पर युद्ध हुआ । उसमें हादप्रभृति दैत्योंद्वारा देवगण पराजित हुए || ९ || अतः देव-गणने क्षीरसागरके उत्तरीय तटपर जाकर तपस्या की और मगवान् विष्णुकी आराधनाके लिये उस समय इस स्तवका गान किया ॥ १०॥

देवगण बोले-हमलोग लोकनाथ विष्णुकी आराधनाके लिये जिस वाणीका उचारण करते वक्ष्यामो मगवानाद्यस्त्या विष्णुः प्रसीदत् ॥११॥ हैं उससे वे आद्य-पुरुष श्रीविष्णुभगवान् प्रसन्न हों ॥११॥:

यतो भृतान्यशेपाणि प्रस्तानि महात्मनः । यसिश्व लयमेष्यन्ति कस्तं स्तोतुमिहेश्वरः ॥१२॥ तथाप्यरातिविध्वंसध्वस्तवीर्याभयार्थिनः त्वां स्तोष्यामस्तवोक्तीनां याथार्थ्यं नैव गोचरे १३ त्वयुर्वी सलिलं विद्विर्वायुराकाशमेव च। समस्तमन्तःकरणं प्रधानं तत्परः प्रमान् ।।१४॥ तवैतद्भुतात्मन्मूत्तीमूर्त्तमयं वपुः। एक आव्रह्मस्तम्वपर्यन्तं स्थानकालविभेदवत् ॥१५॥ तत्रेश तव यत्पूर्वं त्वन्नाभिकमलोद्भवम् । रूपं विश्वोपकाराय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥१६॥ शकार्करुद्रवस्वश्विमरुत्सोमादि भेदवत् वयमेकं खरूपं ते तस्मे देवात्मने नमः ॥१७॥ दम्भप्रायमसम्बोधि तितिक्षादमवर्जितम् । यद्र्पं तव गोविन्द तस्मै दैत्यात्मने नमः ॥१८॥ नातिज्ञानवहा यसिनाडचः स्तिमिततेजसि । शब्दादिलोभि यत्तस्मै त्रभ्यं यक्षात्मने नमः॥१९॥ कौर्यमायामयं घोरं यच रूपं तवासितम् । निशाचरात्मने तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तम।।२०।। **खर्गस्थधर्मिसद्धर्मफलोपकरणं** धर्माख्यं च तथा रूपं नमस्तस्मै जनार्दन ॥२१॥ हर्पप्रायमसंसर्गि गतिमद्गमनादिषु । सिद्धाख्यं तव यद्र्पं तस्मै सिद्धात्मने नमः ॥२२॥ अतितिक्षायनं क्रूरमुपभोगसहं हरे।

जिन परमात्मासे सम्पूर्ण भूत उत्पन्न हुए हैं और जिनमें वे सव अन्तमें छीन हो जायँगे संसारमें उनकी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है ? ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! यद्यपि आपका यथार्थ खरूप वाणीका विषय नहीं है, तो भी रात्रुओंके हाथसे विध्वस्त होकर पराक्रमहीन हो जानेके कारण हम अभय-प्राप्तिके लिये आपकी स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तः-करण, मूल-प्रकृति और प्रकृतिसे परे पुरुष-ये सब आप ही हैं ॥ १४ ॥ हे सर्वभूतात्मन् ! त्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त स्थान और कालादि भेदयुक्त यह मूर्त्तामूर्त्त-पदार्थमय सम्पूर्ण प्रपञ्च आपहीका शरीर है ॥ १५॥ आपके नामि-कमल्से विश्वके उपकारार्थ प्रकट हुआ जो आपका प्रथम रूप है, हे ईश्वर ! उस ब्रह्मस्वरूपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ इन्द्र, सूर्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्रण और सोम आदि भेद-युक्त हमछोग भी आपहीका एक रूप हैं; अतः आपके उस देवरूपको नमस्कार है ॥ १७॥ हे गोविन्द ! जो दम्भमयी, अज्ञानमयी तथा तितिक्षा और दमसे शून्य है आपकी उस दैत्य-मूर्तिको नमस्कार है ॥ १८॥ जिस मन्द-सत्त्व खरूपमें हृदयकी नाडियाँ अत्यन्त ज्ञानवाहिनी नहीं होतीं तथा जो शब्दादि विषयोंका छोभी होता है आपके उस यक्षरूपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे पुरुषोत्तम ! आपका जो क्रूरता और मायासे युक्त घोर तमोमय रूप है उस राक्षसस्वरूपको नमस्कार है ॥२०॥ हे जनार्दन ! जो स्वर्गमें रहनेवाले धार्मिक जनोंके यागादि सद्दमोंके फल (सुखादि) की प्राप्ति करानेवाला आपका धर्म नामक रूप है उसे नमस्कार है ॥ २१ ॥ जो जल-अग्नि आदि गमनीय स्थानोंमें जाकर भी सर्वदा निर्छिप्त और प्रसन्नतामय रहता है वह सिद्ध नामक रूप आपहीका है; ऐसे सिद्धस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे हरे ! जो अक्षमाका आश्रय अत्यन्त ऋर और कामोपभोगमें समर्थ आपका द्विजिह्न (दो जीभवाला) रूप है, उन द्विजिह्वं तव यदूपं तस्मे नागात्मने नमः ॥२३॥ नागस्वरूप आपको नमस्कार CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

मयाप्येतदशेपेण कथितं भवतो द्विज। समुल्लङ्घ सदाचारं कश्चित्रामोति शोभनम् ॥ २ ॥

- श्रीमैत्रेय उवाच

षण्ढापविद्धप्रमुखा विदिता भगवन्मया। उदक्याद्याश्च मे सम्यङ् नप्रमिच्छामि वेदितुम्।।३।। को नग्नः किसमाचारो नग्नसंज्ञां नरो लभेत्। नमस्बरूपमिच्छामि यथावत्कथितं त्वया। श्रोतुं धर्मभृतां श्रेष्ठ न ह्यस्त्यविदितं तव ॥ ४॥ श्रीपराशर उवाच

ऋग्यज्ञस्सामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृतिर्द्धिज । एतामुज्झति यो मोहात्स नग्नः पातकी द्विजः॥ ५ ॥ त्रयी समस्तवर्णानां द्विज संवरणं यतः। नम्रो भवत्युज्झितायामतस्तस्यां न संशयः ॥ ६ ॥ इदं च श्रूयतामन्यद्यद्भीष्मायं महात्मने । कथयामास धर्मज्ञो वसिष्ठोऽसात्पितामहः ॥ ७॥ मयापि तस्य गदत्रश्रुतमेतन्महात्मनः। नप्रसम्बन्धि मैत्रेय यत्पृष्टोऽहमिह त्वया।। ८॥ देवासुरमभृद्युद्धं दिन्यमब्दशतं पुरा। तस्मिन्पराजिता देवा दैत्येहिंदपुरोगमैः ॥ ९ ॥ क्षीरोदस्थोत्तरं कूलं गत्वातप्यन्त वै तपः। विष्णोराराधनार्थाय जगुश्रेमं स्तवं तदा ॥१०॥

देवा उत्तुः आराधनाय लोकानां विष्णोरीशस्य यां गिरम्।

हे द्विज ! मैंने भी तुमसे इसका पूर्णतया वर्णन कर दिया । कोई भी पुरुष सदाचारका उल्लाइन करके सदृति नहीं पा सकता ॥ २॥

श्रीमैत्रेयजी बोले--भगवन् ! नपुंसक, अपविद्व और रजखटा आदिको तो मैं अच्छी तरह जानता जानता कि िकिन्त यह नहीं किसको कहते हैं] । अतः इस समय मैं नम्रके विषयमें जानना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ नग्न कौन है ? और किस प्रकारके आचरणवाळा पुरुष नग्न-संज्ञा प्राप्त करता है ? हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ ! मैं आपके द्वारा नम्रके खरूपका यथावत् वर्णन सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आपको कोई भी वात अविदित नहीं है ॥ ४॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! ऋक्, साम और यजुः यह वेदत्रयी वर्णीका आवरणखरूप है। जो पुरुष मोहसे इसका त्याग कर देता है वह पापी 'नग्न' कहलाता है ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! समस्त वर्णी-का संवरण (दँकनेवाला वस्न) वेदत्रयी ही है; इसलिये उसका त्याग कर देनेपर पुरुष 'नम्र' हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ६॥ हमारे पितामह धर्मज्ञ वसिष्ठजीने इस विषयमें महात्मा भीष्मजीसे जो कुछ कहा था वह श्रवण करो ॥ ७॥ हे मैत्रेय ! तुमने जो मुझसे नग्नके विषयमें पूछा है इस सम्बन्धमें भीष्मके प्रति वर्णन करते समय मैंने भी महात्मा वसिष्ठजीका कथन सुना था ।। ८ ॥

पूर्वकालमें किसी समय सौ दिव्यवर्षतक देवता और असुरोंका परस्पर युद्ध हुआ । उसमें हादप्रभृति दैत्योंद्वारा देवगण पराजित हुए ॥ ९ ॥ अतः देव-गणने श्वीरसागरके उत्तरीय तटप्रर जाकर तपस्या की और मगवान् विष्णुकी आराधनाके लिये उस समय इस स्तवका गान किया ॥ १०॥

देवगण बोले—हमलोग लोकनाथ विष्णकी आराधनाके लिये जिस वाणीका उचारण करते वक्ष्यामो भगवानाद्यस्त्या विष्णुः प्रसीदत् ॥११॥ हैं उससे वे आब-पुरुष श्रीविष्णुभगवान् प्रसन्न हों ॥११॥:

यतो भृतान्यशेषाणि प्रस्तानि महात्मनः । यसिश्र लयमेष्यन्ति कस्तं स्तोतुमिहेश्वरः ॥१२॥ तथाप्यरातिविध्वंसध्वस्तवीर्याभयार्थिनः त्वां स्तोष्यामस्तवोक्तीनां याथार्थ्यं नैव गोचरे १३ त्वप्रुवीं सलिलं विद्विवीयुराकाशमेव च। समस्तमन्तःकरणं प्रधानं तत्परः प्रमान् ।।१४॥ तवैतद्भुतात्मन्मूत्तीमूर्त्तमयं वपुः। एकं आब्रह्मस्तम्वपर्यन्तं स्थानकालविभेदवत् ॥१५॥ तत्रेश तव यत्पूर्वं त्वन्नाभिकमलोद्भवम् । रूपं विश्वोपकाराय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥१६॥ शकार्करुद्रवस्वश्विमरुत्सोमादि भेदवत् वयमेकं स्वरूपं ते तस्मे देवात्मने नमः ॥१७॥ दम्भप्रायमसम्बोधि तितिक्षादमवर्जितम् । यद्र्पं तव गोविन्द तस्मै दैत्यात्मने नमः ॥१८॥ नातिज्ञानवहा यसिनाडचः स्तिमिततेजसि । शब्दादिलोभि यत्तस्मै तुभ्यं यक्षात्मने नमः॥१९॥ कौर्यमायामयं घोरं यच रूपं तवासितम् । निशाचरात्मने तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तम ॥२०॥ खर्ग**स्थधर्मिसद्धर्मफलोपकरणं** धर्माख्यं च तथा रूपं नमस्तस्मै जनार्दन ॥२१॥ हर्षप्रायमसंसर्गि गतिमद्गमनादिषु । सिद्धाख्यं तव यद्र्पं तस्मै सिद्धात्मने नमः ॥२२॥ अतितिक्षायनं क्र्रंग्रुपभोगसहं हरे।

परमात्मासे सम्पूर्ण भूत उत्पन्न हुए हैं और जिनमें वे सव अन्तमें छीन हो जायेंगे संसारमें उनकी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है ? ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! यद्यपि आपका यथार्थ खरूप वाणीका विषय नहीं है, तो भी रात्रओंके हाथसे विध्वस्त होकर पराक्रमहीन हो जानेके कारण हम अभय-प्राप्तिके लिये आपकी स्तुति करते हैं ॥ १३॥ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तः-करण, मृल-प्रकृति और प्रकृतिसे परे पुरुष-ये सब आप ही हैं ॥ १४ ॥ हे सर्वभूतात्मन् ! ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त स्थान और कालादि भेदयुक्त यह मूर्त्तामूर्त्त-पदार्थमय सम्पूर्ण प्रपञ्च आपहीका शरीर है ॥ १५॥ आपके नामि-कमल्से विश्वके उपकारार्थ प्रकट हुआ जो आपका प्रथम रूप है, हे ईश्वर ! उस ब्रह्मस्वरूपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ इन्द्र, सूर्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्रण और सोम आदि भेद-युक्त हमलोग भी आपहीका एक रूप हैं; अतः आपके उस देवरूपको नमस्कार है ॥ १७॥ हे गोविन्द ! जो दम्भमयी, अज्ञानमयी तथा तितिक्षा और दमसे शून्य है आपकी उस दैत्य-मूर्तिको नमस्कार है ॥ १८॥ जिस मन्द-सत्त्व खरूपमें हृदयकी नाडियाँ अत्यन्त ज्ञानवाहिनी नहीं होतीं तथा जो शब्दादि विपयोंका लोभी होता है आपके उस यक्षरूपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे पुरुपोत्तम ! आपका जो क्रूरता और मायासे युक्त घोर तमोमय रूप है उस राक्षसस्वरूपको नमस्कार है ॥२०॥ हे जनार्दन ! जो स्वर्गमें रहनेवाले धार्मिक जनोंके यागादि सद्धमोंके फल (सुखादि) की प्राप्ति करानेवाला आपका धर्म नामक रूप है उसे नमस्कार है ॥ २१॥ जो जल-अग्नि आदि गमनीय स्थानोंमें जाकर भी सर्वदा निर्छिप्त और प्रसन्नतामय रहता है वह सिद्ध नामक रूप आपहीका है; ऐसे सिद्धस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे हरे ! जो अक्षमाका आश्रय अत्यन्त क्रूर और कामोपमोगमें समर्थ आपका द्विजिह्न (दो जीभवाला) रूप है, उन द्विजिह्वं तव यद्द्रपं तस्मे नागात्मने नमः ॥२३॥ नागस्वरूप आपको नमस्कार CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अवबोधि च यच्छान्तमदोषमपकलमपम् ।

ऋषिरूपात्मने तस्मै विष्णो रूपाय ते नमः ॥२४॥

मक्षयत्यथ कल्पान्ते भूतानि यदवारितम् ।
त्वद्र्पं पुण्डरीकाक्ष तस्मै काछात्मने नमः ॥२५॥

सम्मक्ष्य सर्वभूतानि देवादीन्यविशेषतः ।
नृत्यत्यन्ते च यद्र्पं तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥२६॥

प्रवृत्त्या रजसो यच कर्मणां करणात्मकम् ।
जनार्दन नमस्तस्मै त्वद्र्पाय नरात्मने ॥२७॥

अष्टाविशद्वधोपेतं यद्र्पं तामसं तव ।
उन्मार्गगामि सर्वात्मंस्तस्मै वश्यात्मने नमः॥२८॥

यज्ञाङ्गभूतं यद्र्पं जगतः स्थितिसाधनम् ।
वृक्षादिमेदैष्यद्मेदि तस्मै मुख्यात्मने नमः॥२९॥

तिर्यक्षमज्ञष्यदेवादिव्योमशब्दादिकं च यत् ।

रूपं तवादेः सर्वस्य तस्मै सर्वात्मने नमः ॥३०॥

प्रधानबुद्धचादिमयादशेषा
द्यद्न्यदसात्परमं परात्मन्।

रूपं तवाद्यं यदनन्यतुल्यं

तस्मै नमः कारणकारणाय।।३१॥

ग्रुक्कादिदीर्घादिघनादिहीन
मगोचरं यच विशेषणानाम्।

ग्रुद्धातिग्रुद्धं परमर्पिद्दश्यं

रूपाय तस्मै भगवन्नताः स्मः॥३२॥

यनः शरीरेषु यदन्यदेहे
ब्वशेषवस्तुष्वजमक्षयं यत्।

तसाच नान्यद्वचतिरिक्तमस्ति

ब्रह्मखरूपाय नताः स तस्मै ॥३३॥

हे विष्णो ! जो ज्ञानमय, शान्त, दोषरहित और कल्मष-हीन है उस आपके मुनिमय स्वरूपको नमस्कार है ॥२४॥ जो कल्पान्तमें अनिवार्यरूपसे समस्त भूतोंका भक्षण कर जाता है, हे पुण्डरीकाक्ष ! आपके उस काळस्वरूपको नमस्कार है ॥२५॥ जो प्रळय-कालमें देवता आदि समस्त प्राणियोंको सामान्य भावसे मक्षण करके नृत्य करता है आपके उस रुद्रस्वरूपको नमस्कार है ॥२६॥ रजोगुणकी प्रवृत्तिके कारण जो कर्मीका करणरूप है, हे जना-र्दन ! आपके उस मनुष्यात्मक स्वरूपको नमस्कार है || २७ || हे सर्वात्मन् ! जो अट्टाईस वध-युक्त* तमोमय और उन्मार्गगामी है आपके उस पशुरूपको नमस्कार है ॥ २८॥ जो जगत्की स्थितिका साधन और यज्ञका अंगभूत है तथा वृक्ष, छता, गुल्म, वीरुघ, तृण और गिरि—इन छः भेदोंसे युक्त हैं उन मुख्य (उद्भिद्) रूप आपको नमस्कार है ॥ २९॥ तिर्यक् मनुष्य तथा देवता आदि प्राणी, आकाशादि पञ्चभूत और शब्दादि उनके गुण-ये सव, सबके आदिभूत आपहीं के रूप हैं; अतः सर्वात्माको नमस्कार है॥ ३०॥

हे परमात्मन् ! प्रधान और महत्तत्वादिरूप इस सम्पूर्ण जगत्से जो परे है, सबका आदि कारण है तथा जिसके समान कोई अन्य रूप नहीं है, आपके उस प्रकृति आदि कारणोंके भी कारण रूपको नमस्कार है ॥ ३१॥ हे मगवन् ! जो ग्रुक्कादि रूपसे, दीर्घता आदि परिमाणसे तथा घनता आदि गुगोंसे रहित है, इस प्रकार जो समस्त विशेषणोंका अविषय है, तथा परमर्षियोंका दर्शनीय एवं ग्रुद्धातिग्रुद्ध है आपके उस खरूपको हम नमस्कार करते हैं ॥३२॥ जो हमारे शरीरोंमें, अन्य प्राणियोंके शरीरोंमें तथा समस्त वस्तुओंमें वर्तमान है, अजन्मा और अविनाशी है तथा जिससे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है, उस बहाखरूपको हम नमस्कार करते हैं ॥३३॥

सकलमिद्मजस्य यस रूपं परमपदात्मवतस्सनातनस्य । तमनिधनमशेपवीजभूतं प्रभुममलं प्रणतास्स वासुदेवम् ॥३४॥ श्रीपराशर उवाच

स्तोत्रस्य चावसाने ते दृहशुः परमेश्वरम् । शङ्खचक्रगदापाणि गरुडस्थं सुरा हरिम्।।३५॥ तमृचुस्सकला देवाः प्रणिपातपुरस्सरम् । प्रसीद नाथ दैत्येभ्यस्ताहि नक्शरणार्थिनः ॥३६॥ त्रैलोक्ययज्ञभागाश्र दैत्यैहीदपुरोगमैः। हता नो ब्रह्मणोऽप्याज्ञामुल्लङ्घच परमेश्वर ॥३७॥ यद्यप्यशेषभूतस्य वयं ते च तवांशजाः। तथाप्यविद्याभेदेन भिन्नं पश्यामहे जगत् ॥३८॥ स्ववर्णधर्माभिरता वेदमार्गानुसारिणः। न शक्यास्तेऽरयो हन्तुमस्माभिस्तपसावृताः ॥३९॥ दातुमईसि । तम्रपायमशेषात्मन्नस्माकं येन तानसुरान्हन्तुं भवेम भगवन्क्षमाः ॥४०॥

इत्युक्तो भगवांस्तेभ्यो मायामोहं शरीरतः । सम्रत्पाद्य ददौ विष्णुः प्राह चेदं सुरोत्तमान् ॥४१॥ मायामोहोऽयमखिलान्दैत्यांस्तान्मोहयिष्यति । ततो वध्या भविष्यन्ति वेदमार्गबहिष्कृताः ॥४२॥ खितौ खितस्य मे वध्या यावन्तः परिपन्थिनः । ब्रह्मणो ह्यधिकारस्य देवदैत्यादिकाः सुराः ॥४३॥ तद्रच्छत न भीः कार्या मायामोहोऽयमग्रतः। गच्छन्द्योपकाराय भवतां भविता सुराः ॥४४॥ श्रीपराशर उवाच

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्ताः प्रणिपत्यैनं ययुर्देवा यथागतम् । मायामोहोऽपि तैस्सार्द्धं ययौ यत्र महासुराः ॥४५॥ वहाँ गया ॥ ४५॥

परम पद ब्रह्म ही जिसका आत्मा है ऐसे जिस सनातन और अजन्मा मगवान्का यह सकल प्रपन्न रूप है, उस सबके बीजभूत, अविनाशी और निर्मल प्रभु वासुदेवको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३४॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! स्तीत्रके समाप्त हो जानेपर देवताओंने परमात्मा श्रीहरिको हाथमें शहु, चक्र और गदा लिये तथा गरुडपर आरूड हुए अपने सम्मुख विराजमान देखा ॥ ३५॥ उन्हें देख-कर समस्त देवताओंने प्रणाम करनेके अनन्तर उनसे कहा-"हे नाथ! प्रसन्न होइये और हम शरणागतोंकी दैत्योंसे रक्षा कीजिये॥ ३६॥ हे परमेश्वर ! हाद-प्रमृति दैत्यगणने ब्रह्माजीकी आज्ञाका भी उज्ज्ञन कर हमारे और त्रिलोकीके यज्ञभागींका अपहरण कर लिया है ॥ ३७ ॥ यद्यपि हम और वे सर्वभूत आपहींके अंशज हैं तथापि अविद्यावश हम जगत्को परस्पर भिन्न-भिन्न देखते हैं॥३८॥ हमारे शत्रुगण अपने वर्णधर्मका पालन करनेवाले, वेदमार्गावलम्बी और तपो-निष्ठ हैं, अतः वे हमसे नहीं मारे जा सकते॥३९॥ अतः हे सर्वात्मन् ! जिससे हम उन असुरोंका वध करनेमें समर्थ हों ऐसा कोई उपाय आप हमें वतलाइये" ॥ १०॥

श्रीपराशरजी बोले-उनके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णाने अपने शरीरसे मायामोहको उत्पन्न किया और उसे देवताओं को देकर कहा-॥ ४१॥ "यह मायामोह उन सम्पूर्ण दैत्यगणको मोहित कर देगा, तब वे वेद-मार्गका उञ्जब्बन करनेसे तुम छोगोंसे मारे जा सर्केंगे ॥ ४२ ॥ हे देवगण ! जो कोई देवता अथवा दैत्य ब्रह्माजीके कार्यमें वाधा डालते हैं वे सृष्टिकी रक्षामें तत्पर मेरे वच्य होते हैं ॥ ४३ ॥ अतः हे देवगण ! अव तुम जाओ । डरो मत । यह मायामोह आगेसे जाकर तुम्हारा उपकार करेगा" ॥ ४४॥

श्रीपराशरजी बोले-भगवान्की ऐसी आज्ञा होने-पर देवगण उन्हें प्रणाम कर जहाँ से आये थे वहाँ चले गये तथा उनके साथ मायामोह भी जहाँ असुरगण थे

--1>+3@ 05+**<**1·-

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीयें ऽशे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥

अठारहवा अध्याय

मायामोह और असुरोंका संवाद तथा राजा शतधनुकी कथा।

श्रीपराशर उवाच

तपस्यभिरतान्सोऽथ मायामोहो महासुरान् । मैत्रेय दृहशे गत्वा नर्मदातीरसंश्रितान् ॥ १ ॥ ततो दिगम्बरो मुण्डो वर्हिपिच्छधरो द्विज । मायामोहोऽसुरान् श्लक्ष्णमिदं वचनमत्रवीत् ॥२॥

मायामोह उवाच

हे दैत्यपतयो ब्रुत यदर्थ तप्यते तपः। ऐहिकं वाथ पारच्यं तपसः फलमिच्छथ ॥ ३॥

असुरा उत्तुः

पारत्र्यफललाभाय तपश्चर्या महामते। असाभिरियमारव्धा किं वा तेऽत्र विवक्षितम् ॥४॥

मायामोह उवाच

कुरुघ्वं मम वाक्यानि यदि मुक्तिमभीप्सथ । अर्हध्वमेनं धर्म च मुक्तिद्वारमसंवृतम् ॥ ५॥ धर्मी विम्रक्तेरहींऽयं नैतसादपरो वरः। अत्रैव संस्थिताः खर्गं विम्रक्तिं वा गमिष्यथ ।। ६ ।। अर्हध्वं धर्ममेतं च सर्वे यूयं महावलाः ॥ ७॥

श्रीपराशर उवाच एवंप्रकारैर्वहुभिर्युक्तिदर्शनचर्चितैः मायामोहेन ते दैत्या वेदमार्गादपाकृताः ॥ ८॥ धर्मायैतदधर्माय सदेतन सदित्यपि। विमुक्तये त्विदं नैतद्विमुक्ति सम्प्रयच्छति ॥ ९ ॥ परमार्थोऽयमत्यर्थं परमार्थो न चाप्ययम् । कार्यमेतदकार्यं च नैतदेवं स्फुटं त्विदम् ॥१०॥ दिग्वाससामयं धर्मो धर्मोऽयं बहुवाससाम् ॥११॥ इत्यनेकान्तवादं च मायामोहेन नैकधा।

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! तदनन्तर माया-मोहने [देवताओंके साथ] जाकर देखा कि असुरगण नर्मदाके तटपर तपस्यामें लगे हुए हैं ॥ १॥ तव उस मयरपिच्छधारी दिगम्बर और मुण्डितकेश माया-मोहने असुरोंसे अति मधुर वाणीमें इस प्रकार कहा ॥ २॥

मायामोह बोला-हे दैत्यपतिगण ! कहिये, आप-लोग किस उद्देश्यसे तपस्या कर रहे हैं, आपको किसी लैकिक फलकी इच्छा है या पारलैकिककी ? ॥३॥

असुरगण बोले-हे महामते ! हमलोगोंने पार-लौकिक फलकी कामनासे तपस्या आरम्भ की है। इस विषयमें तमको हमसे क्या कहना है ? ॥ ४ ॥

मायामोह बोळा-यदि आपलोगोंको मुक्तिकी इच्छा है तो जैसा मैं कहता हूँ वैसा करो। आप-छोग मुक्तिके ख़ुले द्वाररूप इस धर्मका आदर कीजिये ॥ ५॥ यह धर्म मुक्तिमें परमोपयोगी है। इससे श्रेष्ठ अन्य कोई धर्म नहीं है । इसका अनुष्ठान करनेसे आपछोग खर्ग अथवा मुक्ति जिसकी कामना करेंगे प्राप्त कर छेंगे। आप सत्रछोग महाबलवान् हैं, अतः इस धर्मका आदर कीजिये ॥ ६-७॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार नाना प्रकारकी युक्तियोंसे अतिरञ्जित वाक्योंद्वारा मायामोहने दैत्य-गणको वैदिकमार्गसे भ्रष्ट कर दिया ॥८॥ 'यह धर्म-युक्त है और यह धर्मविरुद्ध है, यह सत् है और यह असत् है, यह मुक्तिकारक है और इससे मुक्ति नहीं होती, यह आत्यन्तिक परमार्थ है और यह परमार्थ नहीं है, यह कर्त्तव्य है और यह अकर्त्तव्य है, यह ऐसा नहीं है और यह स्पष्ट ऐसा ही है. यह दिगम्बरोंका धर्म है और यह साम्बरोंका धर्म है'-हे द्विज! ऐसे अनेक प्रकारके अनन्त बादोंको दिखलाकर माया-तेन दर्शयता दैत्यास्स्वधर्म त्याजिता द्विज ॥१२॥ | मोहने उन दैत्यांका खघमस च्युत CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri मोहने उन दैत्योंको खर्घमेसे च्युत कर दिया ॥९-१२॥

अर्हतैतं महाधर्मं मायामोहेन ते यतः। प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममार्हतास्तेन तेऽभवन् ॥१३॥

त्रयीधर्मसम्बद्धत्सर्गं मायामोहेन तेऽसराः। कारितास्तन्मया ह्यासंस्ततोऽन्ये तत्त्रचोदिताः ।१४। तैरप्यन्ये परे तैश्र तैरप्यन्ये परे च तैः। अल्पैरहोभिस्सन्त्यक्ता तेदेंत्यैः प्रायशस्त्रयी॥१५॥ पुनश्च रक्ताम्बरधृङ् मायामोहो जितेन्द्रियः । अन्यानाहासुरान् गत्वा मृद्रल्पमधुराक्षरम् ॥१६॥ खर्गार्थं यदि वो वाञ्छा निर्वाणार्थमथासुराः। पश्चवातादिदृष्टधमैर्निवोधत ॥१७॥ विज्ञानसयसेवैतदशेषसवगच्छत बुध्यध्वं मे वचः सम्यग्बुधैरेविमहोदितम् ॥१८॥ जगदेतदनाधारं आन्तिज्ञानार्थतत्परम्। रागादिद्रष्टमत्यर्थं आम्यते भवसङ्करे।।१९॥ एवं बुध्यत बुध्यध्वं बुध्यतैवमितीरयन्। मायामोहः स दैतेयान्धर्ममत्याजयन्त्रिजम् ॥२०॥ नानाप्रकारवचनं स तेषां युक्तियोजितम्। तथा तथा त्रयीधर्मं तत्यज्ञस्ते यथा यथा ॥२१॥ तेऽप्यन्येषां तथेंवोच्चरन्येरन्ये तथोदिताः। मैत्रेय तत्यजुर्धमं वेदस्मृत्युदितं परम् ॥२२॥ अन्यानप्यन्यपाषण्डप्रकारैर्वेडुभिर्द्धिज दैतेयान्मोहयामास मायामोहोऽतिमोहकृत् ॥२३॥ खल्पेनैव हि कालेन मायामोहेन तेऽसुराः। मोहितास्तत्यज्जस्सर्वो त्रयीमार्गाश्रितां कथाम्॥२४॥ छोड दिया ॥२४॥

मायामोहने दैत्योंसे कहा था कि आपछोग इस महाधर्मको 'अर्हत' अर्थात् इसका आदर कीजिये। अतः उस धर्मका अवलम्बन करनेसे वे 'आर्हत' कहलाये॥१३॥

मायामोहने असुरगणको त्रयीधर्मसे विमुख कर दिया और वे मोहप्रस्त हो गये; तथा पीछे उन्होंने अन्य दैत्योंको भी इसी धर्ममें प्रवृत्त किया ।।१४॥ उन्होंने दूसरे दैत्योंको, दूसरोंने तीसरोंको, तीसरोंने चौथोंको तथा उन्होंने औरों-को इसी धर्ममें प्रवृत्त किया। इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें दैत्यगणने वेदत्रयीका प्रायः त्याग कर दिया ॥१५॥

तदनन्तर जितेन्द्रिय मायामोहने रक्तवस्त्र धारण-कर अन्यान्य असुरोंके पास जा उनसे मृदु, अल्प और मधुर शब्दोंमें कहा-॥१६॥ "हे असुरगण! यदि तुमलोगोंको स्वर्ग अथवा मोक्षकी इच्छा है तो पञ्जिहिंसा आदि दुष्टकर्मोंको त्यागकर बोध प्राप्त करो ॥१७॥ यह सम्पूर्ण जगत् विज्ञानमय है-ऐसा जानो । मेरे वाक्योंपर पूर्णतया ध्यान दो । इस विषयमें वुधजनोंका ऐसा ही मत है कि यह संसार अनाधार है, भ्रमजन्य पदार्थींकी प्रतीतिपर ही स्थिर है तथा रागादि दोषोंसे दृषित है। इस संसार-सङ्घटमें जीव अत्यन्त भटकता रहता है" ॥१८-१९॥ इस प्रकार 'बुच्यत (जानो), बुध्यध्वं (समझो), बुध्यत (जानो)' आदि शब्दोंसे बुद्धधर्मका निर्देश कर मायामोहने दैत्योंसे उनका निजधर्म छुड़ा दिया ॥ २०॥ मायामोहने ऐसे नाना प्रकारके यक्तियक्त वाक्य कहे जिससे उन दैत्यगगने त्रयी-धर्मको त्याग दिया ॥ २१ ॥ उन दैत्यगणने अन्य दैत्योंसे तथा उन्होंने अन्यान्यसे ऐसे ही वाक्य कहे। हे मैत्रेय ! इस प्रकार उन्होंने श्रुतिस्मृतिविहित अपने परम धर्मको त्याग दिया ॥२२॥ हे द्विज ! मोहकारी मायामोहने और भी अनेकानेक दैत्योंको मिन्न-मिन्न प्रकारके विविध पापण्डोंसे मोहित कर दिया ॥२३॥ इस प्रकार थोड़े ही समयमें मायामोहके द्वारा मोहित होकर असुरगणने वैदिकधर्मकी वातचीत करना मी

केचिद्विनिन्दां वेदानां देवानामपरे द्विज । यज्ञकर्मकलापस्य तथान्ये च द्विजन्मनाम् ॥२५॥ नैतद्यक्तिसहं वाक्यं हिंसा धर्माय चेष्यते । हवींष्यनलदग्धानि फलायेत्यर्भकोदितम् ॥२६॥ यज्ञैरनेकैर्देवत्वमवाप्येन्द्रेण भ्रज्यते । शम्यादि यदि चेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक्पशुः ॥२७॥ निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते । स्वपिता यजमानेन किन्तु तसान हन्यते ॥२८॥ त्राये जायते पुंसो भक्तमन्येन चेत्ततः। क्रयीच्छ्राद्धं श्रमायात्रं न वहेयुः प्रवासिनः ॥२९॥ ततोऽत्र वः। जनश्रद्धेयमित्येतदवगम्य उपेक्षा श्रेयसे वाक्यं रोचतां यन्मयेरितम्॥३०॥ न ह्याप्तवादा नभसो निपतन्ति महासुराः । युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं मयान्येश्व भवद्विधैः ॥३१॥

श्रीपराशर उवाच

मायामोहेन ते दैत्याः प्रकारैर्वहुमिस्तथा। च्युत्थापिता यथा नैषां त्रयीं कश्चिदरोचयत्।।३२।। इत्थम्रन्मार्गयातेषु तेषु दैत्येषु तेऽमराः । उद्योगं परमं कृत्वा युद्धाय सम्रुपस्थिताः ॥३३॥ ततो दैवासुरं युद्धं पुनरेवाभवद् द्विज । इताश्र तेऽसुरा देवैः सन्मार्गपरिपन्थिनः ॥३४॥ स्वधर्मकवचं तेषामभूद्यत्प्रथमं द्विज । तेन रक्षामवत्पूर्व नेशुर्नष्टे च तत्र ते ॥३५॥ ततो मैत्रेय तन्मार्गवृत्तिनोऽबोऽक्षसव्यक्तनाः dollection, New Delhi. Digitized by eGangotri मायामोहद्वारा प्रवर्तित

हे द्विज ! उनमेंसे कोई वेदोंकी, कोई देवताओंकी. कोई याज्ञिक कर्म-कलापोंकी तथा कोई ब्राह्मणोंकी निन्दा करने छगे ॥२५॥ [वे कहने छगे—] "हिंसासे भी धर्म होता है-यह बात किसी प्रकार युक्तिसङ्गत नहीं है। अग्निमें हवि जलानेसे फल होगा-यह भी बचोंकी-सी बात है ॥२६॥ अनेकों यज्ञोंके द्वारा देवत्व लाभ करके यदि इन्द्रको शमी आदि काष्ठका ही मोजन करना पड़ता है तो इससे तो पत्ते खानेवाला पशु ही अच्छा है ॥२०॥ यदि यज्ञमें बिछ किये गये पशुको खर्गकी प्राप्ति होती है तो क्यों नहीं मार पिताको ही अपने डाळता ! ॥२८॥ यदि किसी अन्य पुरुषके मोजन करनेसे भी किसी पुरुषकी तृप्ति हो सकती है तो विदेशकी यात्राके समय खाद्यपदार्थ छे जानेका परिश्रम करनेकी क्या आवस्यकता है; पुत्रगण घरपर ही श्राद्ध कर दिया करें ॥२९॥ अतः यह समझकर कि 'यह (श्राद्वादि कर्मकाण्ड) छोगोंकी अन्ध-श्रद्वा ही है' इसके प्रति उपेक्षा करनी चाहिये और अपने श्रेयःसाधनके लिये जो कुछ मैंने कहा है उसमें रुचि करनी चाहिये ॥३०॥ हे असरगण ! श्रुति आदि आप्तवाक्य कुछ आकाशसे नहीं गिरा करते । हम, तुम और अन्य सबको भी युक्तियुक्त वाक्योंको प्रहण कर छेना चाहिये" ।।३१॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार अनेक युक्तियों-से मायामोहने दैत्योंको विचलित कर दिया जिससे उनमेंसे किसीकी भी वेदत्रयीमें रुचि नहीं रही ।।३२॥ इस प्रकार, दैत्योंके विपरीत मार्गमें प्रवृत्त हो जानेपर देवगण खूब तैयारी करके उनके पास युद्धके छिये उपस्थित हुए ॥३३॥

हे द्विज ! तब देवता और असुरोंमें पुनः संप्राम छिडा। उसमें सन्मार्गविरोधी दैत्यगण देवताओंद्वारा मारे गये ॥३१॥ हे द्विज ! पहले दैत्यों के पास जो खधर्मरूप कवच था उसीसे उनकी रक्षा हुई थी । अवकी बार उसके नष्ट हो जानेसे वे भी नष्ट हो गये ॥३५॥ हे नग्नास्ते तैर्यतस्त्यक्तं त्रयीसंवरणं तथा ॥३६॥

त्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थत्तथाश्रमी ।
परित्राद् वा चतुर्थोऽत्र पश्चमो नोपपद्यते ॥३७॥
यस्तु सन्त्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थो न जायते ।
परित्राद् चापि मैत्रेय स नग्नः पापकृत्वरः ॥३८॥
नित्यानां कर्मणां वित्र तस्य हानिरहर्निश्चम् ।
अकुर्वन्विहतं कर्म शक्तः पतित तिद्देने ॥३९॥
प्रायश्चित्तेन महता ग्रुद्धिमामोत्यनापिद् ।
पश्चं नित्यिक्रयाहानेः कर्जा मैत्रेय मानवः ॥४०॥
संवत्सरं क्रियाहानिर्यस्य पुंसोऽभिजायते ।
तस्यावलोकनात्स्ययों निरीक्ष्यस्साधुभिस्सदा॥४१॥
स्पृष्टे स्नानं सचैलस्य श्रुद्धेहेतुर्महामते ।
पुंसो भवति तस्योक्ता न श्रुद्धिः पापकर्मणः ॥४२॥

देविपितृभूतानि यस निःश्वस वेश्मनि ।
प्रयान्त्यनिवतान्यत्र लोके तसान्न पापकृत् ॥४३॥
सम्भाषणानुप्रश्नादि सहास्यां चैव कुर्वतः ।
जायते तुल्यता तस्य तेनैव द्विज वत्सरात् ॥४४॥
देवादिनिःश्वासहतं शरीरं यस्य वेश्म च ।
न तेन सङ्करं कुर्याद् गृहासनपरिच्छदैः ॥४५॥
अथ भ्रङ्के गृहे तस्य करोत्यास्यां तथासने ।
शेते चाप्येकश्यने स सद्यस्तत्समो भवेत् ॥४६॥
देवतापितृभूतानि तथानभ्यर्च्य योऽतिथीन् ।
भृङ्के स पातकं भुङ्के निष्कृतिस्तस्य नेष्यते ।४७।
ब्राह्मणाद्यास्तु ये वणिस्स्वधर्माद्व्यतोष्ठ्याः ।

मार्गका अवलम्बन करनेवाले हुए वे 'नम्न'कहलाये क्योंकि उन्होंने वेदत्रयीरूप वस्नको त्याग दिया था ॥३६॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—ये चार ही आश्रमी हैं। इनके अतिरिक्त पाँचवाँ आश्रमी और कोई नहीं है॥३७॥ हे मैत्रेय! जो पुरुष गृहस्थाश्रमको छोड़नेके अनन्तर वानप्रस्थ या संन्यासी नहीं होता वह पापी भी नग्न ही है॥३८॥

हे विप्र ! सामर्थ्य रहते हुए भी जो विहित कर्म नहीं करता वह उसी दिन पतित हो जाता है और उस एक दिन-रातमें ही उसके सम्पूर्ण नित्यकर्मीका क्षय हो जाता है ॥३९॥ हे मैत्रेय ! आपित्तकाळको छोड़कर और किसी समय एक पक्षतक नित्य-कर्मका त्याग करनेवाळा पुरुष महान् प्रायश्चित्तसे ही शुद्ध हो सकता है ॥४०॥ जो पुरुष एक वर्षतक नित्य-क्रिया नहीं करता उसपर दृष्टि पड़ जानेसे साधु पुरुषको सदा सूर्यका दर्शन करना चाहिये ॥४१॥ हे महामते ! ऐसे पुरुषका स्पर्श होनेपर वस्नसहित स्नान करनेसे शुद्धि हो सकती है और उस पापात्मा-की शुद्धि तो किसी भी प्रकार नहीं हो सकती ॥४२॥

जिस मनुष्यके घरसे देवगण, ऋषिगण, पितृगण और भूतगण विना पृजित हुए निःश्वास छोड़ते अन्यत्र चले जाते हैं, लोकमें उससे बढ़कर और कोई पापी नहीं है ॥ ४३ ॥ हे द्विज ! ऐसे पुरुपके साथ एक वर्षतक सम्भाषण, कुशलप्रश्न और उठने-बैठनेसे मनुष्य उसीके समान पापात्मा हो जाता है ॥ ४४ ॥ जिसका शरीर अथवा गृह देवता आदिके निःश्वाससे निहत है उसके साथ अपने गृह, आसन और बस्न आदिको न मिळावे ॥ ४५॥ जो पुरुष उसके घरमें भोजन करता है, उसका आसन ग्रहण करता है अथवा उसके साथ एक ही शय्यापर शयन करता है वह शीघ्र ही उसीके समान हो जाता है ॥ ४६॥ जो मनुष्य देवता, पितर, भूतगण और अतिथियोंका पुजन किये बिना खयं भोजन करता है वह पापमय भोजन करता है; उसकी शुभगति नहीं हो सकती ॥४७॥ जो ब्राह्मणादि वर्ण स्वधर्मको छोड्कर परधर्मीमें

यान्ति ते नग्नसंज्ञां तु हीनकर्मस्ववस्थिताः ॥४८॥ चतुर्णां यत्र वर्णानां मैत्रेयात्यन्तसङ्करः। तत्रास्या साधुवृत्तीनामुपघाताय जायते ॥४९॥ अनम्यर्च्य ऋषीन्देवान्पितृभूतातिथींस्तथा । यो ग्रुङ्के तस्य सँछापात्पतन्ति नरके नराः ॥५०॥ तसादेतानरो नमांस्रयीसन्त्यागदृषितान् । सर्वदा वर्जयेत्प्राज्ञ आलापस्पर्शनादिषु ॥५१॥ श्रद्धावद्भिः कृतं यत्नादेवान्पितृपितामहान् । न प्रीणयति तच्छ्राई यद्येभिरवलोकितम्।।५२।। श्रुयते च पुरा च्यातो राजा शतधनुर्श्चवि । पत्नी च शैच्या तस्याभृदतिधर्मपरायणा।।५३।। पतित्रता महाभागा सत्यशौचदयान्विता। सर्वेलक्षणसम्पन्ना विनयेन नयेन च ॥५४॥ स तु राजा तया साईं देवदेवं जनार्दनम्। आराधयामास विश्वं परमेण समाधिना ॥५५॥ होमैर्जपैस्तथा दानैरुपवासैश्र भक्तितः। पूजाभिश्रानुदिवसं तन्मना नान्यमानसः ॥५६॥ एकदा तु समं स्नातौ तौ तु भार्यापती जले। भागीरथ्यास्सम्रत्तीणीं कार्त्तिक्यां समुपोषितौ । पाषण्डिनमपश्येतामायान्तं सम्मुखं द्विज ॥५७॥ चापाचार्यस्य तस्यासौ सखा राज्ञो महात्मनः। अतस्तद्गौरवात्तेन संखामावमथाकरोत्।।५८॥ न त सा बाग्यता देवी तस्य पत्नी पतित्रता। उपोषितास्मीति रविं तसिन्दष्टे दद्शे च ॥५९॥ समागम्य यथान्यायं दम्पतीतौ यथाविधि। विष्णोः पूजादिकं सर्वे कृतवन्तौ द्विजोत्तम ॥६०॥ कालेन गच्छता राजा ममारासौ सपत्नजित्।

प्रवृत्त होते हैं अथवा हीनवृत्तिका अवलम्बन करते हैं वे 'नम्न' कहलाते हैं ॥ ४८ ॥ हे मैत्रेय ! जिस स्थानमें चारों वणाँका अत्यन्त मिश्रण हो उसमें रहनेसे पुरुषकी साधुवृत्तियोंका क्षय हो जाता है ॥४९॥ जो पुरुष ऋषि, देव, पित्त, भूत और अतिथिगणका पूजन किये विना मोजन करता है उससे सम्भाषण करनेसे भी लोग नरकमें पड़ते हैं ॥५०॥ अतः वेदत्रयींके त्यागसे दृषित इन नम्नोंके साथ प्राञ्चपुरुष सर्वदा सम्भाषण और स्पर्श आदिका भी त्याग कर दे ॥ ५१॥ यदि इनकी दृष्टि पड़ जाय तो श्रद्धावान् पुरुषोंका यह्मपूर्वक किया हुआ श्राद्ध देवता अथवा पितृ-पितामहगणकी तृप्ति नहीं करता ॥ ५२॥

सुना जाता है, पूर्वकालमें पृथिवीतलपर शतधनु नामसे विख्यात एक राजा था । उसकी पत्नी है। व्या अत्यन्त धर्मपरायणा थी ॥ ५३॥ वह महाभागा पतिव्रता, सत्य शौच और दयासे युक्त तथा विनय और नीति आदि सम्पूर्ण सुलक्षणोंसे सम्पन्ना थी ॥ ५४॥ उस महारानीके साथ राजा शतधनुने परम-समाधि-द्वारा सर्वेन्यापक, देवदेव श्रीजनार्दनकी आराधना की ॥ ५५ ॥ वे प्रतिदिन तन्मय होकर अनन्यभावसे होम, जप, दान, उपवास और पूजन आदिद्वारा भगवान्की भक्तिपूर्वक आराधना करने छगे ॥ ५६ ॥ हे द्विज ! एक दिन कार्तिकी पूर्णिमाको उपवास कर उन दोनों पति-पिक्वयोंने श्रीगंगाजीमें एक साथ ही स्नान करनेके अनन्तर बाहर आनेपर एक पाषण्डीको सामने आता देखा ॥ ५७ ॥ यह ब्राह्मण उस महात्मा राजाके धनुर्वेदाचार्यका मित्र था; अतः आचार्य-के गौरववश राजाने भी उससे मित्रवत् व्यवहार किया ॥ ५८ ॥ किन्तु उसकी पतित्रता पत्नीने उसका कुछ भी आदर नहीं किया; वह मौन रही और यह सोचकर कि मैं उपोषिता (उपवासयुक्त) हूँ उसे देखकर सूर्यका दर्शन किया ॥ ५९ ॥ हे द्विजोत्तम ! फिर उन स्नी-पुरुषोंने यथारीति आकर मगवान् विष्णु-के पूजा आदिक सम्पूर्ण कर्म विधिपूर्वक किये ॥ ६०॥

कालेन गच्छता राजा ममारासौ सपत्नजित्। कालान्तरमें वह रात्रुजित् राजा मर गया । तव, देवी अन्वारुरोह तं देवी चितार्थं भूमति पतिमुक्षि ६१॥ दौब्याने भी चितारूढ महास्वका अनुगमन किया॥६१॥

सर्वविज्ञानसम्पूर्णा सर्वलक्षणपूजिता ॥६३॥ तां पिता दातुकामोऽभृद्वराय विनिवारितः । त्यैव तन्व्या विरतो विवाहारम्भतो नृपः ॥६४॥ ततस्सा दिन्यया दृष्टचा दृष्टा श्वानं निजं पतिम् । विदिशाख्यं पुरं गत्वा तदवस्थं दद्शं तम् ॥६५॥ तं दृष्ट्वेच महाभागं श्वभृतं तु पतिं तदा। ददौ तस्मै वराहारं सत्कारप्रवर्ण ग्रुभा ।।६६॥ श्रुञ्जन्दत्तं तया सोऽन्नमतिमृष्टमभीप्सितम् । खजातिललितं कुर्वन्यहु चाटु चकार वै ॥६७॥ अतीव बीडिता वाला क्वर्वता चाडु तेन सा। प्रणामपूर्वमाहेदं द्यितं तं कुयोनिजम्।।६८॥ .सर्यतां तन्महाराज दाक्षिण्यललितं त्वया । येन श्वयोनिमापनो मम चाडुकरो भवान् ॥६९॥ पाषण्डिनं समाभाष्य तीर्थस्नानादनन्तरम्। प्राप्तोऽसि कुत्सितां योनिं किन स्मरसि तत्प्रभो।७०।

स तु तेनापचारेण श्वा जज्ञे वसुधाधिपः।

सा तु जातिस्मरा जज्ञे काशीराजसुता शुभा।

उपोषितेन पापण्डसँ छापो यत्कृतोऽभवत् ॥६२॥

श्रीपराशर उवाच

तयैवं सारिते तसिन्पूर्वजातिकृते तदा ।
दृष्यौ चिरमथावाप निर्वेदमतिदुर्लभम् ॥७१॥
निर्विण्णचित्तस्स ततो निर्गम्य नगराद्वहिः ।
मरुत्प्रपतनं कृत्वा शार्गालीं योनिमागतः ॥७२॥
सापि द्वितीये सम्प्राप्तेवीक्ष्य दिव्येन चक्षुपा ।
ज्ञात्वा शृगालं तं द्रष्टुं ययौ कोलाहलं गिरिम् ॥७३॥
तत्रापि दृष्ट्वा तं प्राह शार्गालीं योनिमागतम् ।
भर्तारमपि चार्वङ्गी तनया पृथिवीक्षितः ॥७४॥

राजा शतधनुने उपवास-अवस्थामें पाखण्डीसे वार्ताछाप किया था। अतः उस पापके कारण उसने
कुत्तेका जन्म छिया ॥६२॥ तथा वह शुमछक्षणा काशीनरेशकी कन्या हुई, जो सत्र प्रकारके
विज्ञानसे युक्त, सर्वछक्षणसम्पन्ना और जातिस्मरा
(पूर्वजन्मका बृत्तान्त जाननेवाछी) थी ॥६३॥
राजाने उसे किसी वरको देनेकी इच्छा की, किन्तु
उस सुन्दरीके ही रोक देनेपर वह उसके विवाहादिसे
उपरत हो गये॥६४॥

तव उसने दिव्य दृष्टिसे अपने पतिको स्थान हुआ जान विदिशा नामक नगरमें जाकर उसे वहाँ कुत्तेकी अवस्थामें देखा ॥६ ५॥ अपने महाभाग पतिको स्थानरूपमें देखकर उस सुन्दरीने उसे सत्कारपूर्वक अति उत्तम मोजन कराया ॥ ६६ ॥ उसके दिये हुए उस अति मधुर और इच्छित अन्नको खाकर वह अपनी जातिके अनुकूछ नाना प्रकारकी चाट्ता प्रदर्शित करने लगा ॥ ६७ ॥ उसके चाट्ता करनेसे अत्यन्त संकुचित हो उस वालिकाने कुत्सित योनिमें उत्पन्न हुए उस अपने प्रियतमको प्रणाम कर उससे इस प्रकार कहा-।।६८॥ "महाराज ! आप अपनी उस उदारता-का स्मरण कीजिये जिसके कारण आज आप श्वान-योनिको प्राप्त होकर मेरे चाटुकार हुए हैं ॥ ६९॥ हे प्रमो ! क्या आपको यह स्मरण नहीं है कि तीर्थ-स्नानके अनन्तर पाखण्डीसे वार्ताळाप करनेके कारण ही आपको यह कुत्सित ये नि मिली है ?"॥ ७०॥

श्रीपराशरजी बोळे—काशिराजसुताद्वारा इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर उसने बहुत देरतक अपने पूर्वजन्मका चिन्तन किया । तत्र उसे अति दुर्छम निर्वेद प्राप्त हुआ ॥ ७१ ॥ उसने अति उदास चित्तसे नगरके बाहर आ प्राण त्याग दिये और फिर शृगाल-योनिमें जन्म लिया ॥७२॥ तत्र, काशिराज-कन्या दिव्य दृष्टिसे उसे दृसरे जन्ममें शृगाल हुआ जान उसे देखनेके लिये कोलाहल-पर्वतपर गयी ॥७३॥ वहाँ मी अपने पतिको शृगाल-योनिमें उत्पन्न हुआ देख वह सुन्दरी राजकन्या उससे बोली—॥७१॥

अपि सरिस राजेन्द्र श्वयोनिस्थस्य यन्मया । प्रोक्तं ते पूर्वचिरतं पाषण्डालापसंश्रयम्।।७५॥ पुनस्तयोक्तं स ज्ञात्वा सत्यं सत्यवतां वरः । कानने स निराहारस्तत्याज स्वं कलेवरम् ॥७६॥ भूयस्ततो वृको जज्ञे गत्वा तं निर्जने वने । सारयामास भर्तारं पूर्ववृत्तमनिन्दिता ॥७७॥ न त्वं वृको महाभाग राजा शतधनुर्भवान् । श्वा भूत्वा त्वं शृगालोऽभूर्वकत्वं साम्प्रतं गतः।७८। सारितेन यदा त्यक्तस्तेनात्मा गृध्रतां गतः। अपापा सा पुनश्चैनं बोधयामास मामिनी ॥७९॥ नरेन्द्र स्मर्यतामात्मा बलं ते गृध्रचेष्ट्या । पाषण्डालापजातोऽयं दोषो यद्गृश्रतां गतः॥८०॥ ततः काकत्वमापनं समनन्तरजन्मनि। उवाच तन्वी भर्त्तारम्रुपलभ्यात्मयोगतः ॥८१॥ अशेषभूभृतः पूर्व वश्या यस्मै विलं दृदुः। स त्वं काकत्वमापन्नो जातोऽद्य वलिश्चक् प्रभो।८२। एवमेव च काकत्वे सारितस्स पुरातनम्। तत्याज भूपतिः त्राणान्मयूरत्वमवाप च ॥८३॥ मयुरत्वे ततस्सा वै चकाराजुगति शुभा। दत्तैः प्रतिक्षणं मोज्यैर्वाला तज्जातिमोजनैः ॥८४॥ ततस्तु जनको राजा वाजिमेधं महाऋतुम्। चकार तसावभृषे स्नापयामास तं तदा।।८५।। सस्तौ खयं च तन्वङ्गी सारयामास चापितम्। यथासौ श्रमुगालादियोनि जग्राह पार्थिवः ॥८६॥

"हे राजेन्द्र ! झ्वान-योनिमें जन्म छेनेपर मैंने आपसे जो पाखण्डसे वार्ताछापविषयक पूर्वजन्मका वृत्तान्त कहा था क्या वह आपको स्मरण है ?" ॥ ७५ ॥ तव सत्यनिष्ठोंमें श्रेष्ठ राजा शतधनुने उसके इस प्रकार कहनेपर सारा सत्य वृत्तान्त जानकर निराहार रह वनमें अपना शरीर छोड़ दिया॥ ७६॥

फिर वह एक भेड़िया हुआ; उस समय भी अनिन्दिता राजकन्याने उस निर्जन वनमें जाकर अपने पितको उसके पूर्वजन्मका वृत्तान्त समरण कराया ॥७०॥ [उसने कहा—] "हे महाभाग ! तुम भेड़िया नहीं हो, तुम राजा शतधनु हो। तुम [अपने पूर्वजन्मोंमें] कमशः कुक्कुर और शृगाल होकर अब भेड़िया हुए हो"॥ ७८॥ इस प्रकार उसके समरण करानेपर राजाने जब भेड़ियेके शरीरको छोड़ा तो गृध्र-योनिमें जन्म लिया। उस समय भी उसकी निष्पाप मार्याने उसे फिर बोध कराया—॥ ७९॥ 'हे नरेन्द्र ! तुम अपने खरूपका समरण करो; इन गृध्र-चेष्टाओंको छोड़ो। पाखण्डके साथ वार्तालाप करनेके दोषसे ही तुम गृध्र हुए हो'॥ ८०॥

फिर दूसरे जन्ममें काक-योनिको प्राप्त होनेपर भी अपने पतिको योगवलसे पाकर उस मुन्दरीने कहा—॥ ८१॥ "हे प्रमो ! जिनके वशीभूत होकर सम्पूर्ण सामन्तगण नाना प्रकारकी वस्तुएँ मेंट करते थे वही आप आज काक-योनिको प्राप्त होकर बलि-मोजी हुए हैं"॥ ८२॥ इसी प्रकार काक-योनिमें भी पूर्वजन्मका स्मरण कराये जानेपर राजाने अपने प्राण छोड़ दिये और फिर मयूर-योनिमें जन्म लिया॥८३॥

मयूरावस्थामें भी काशिराजकी कन्या उसे क्षण-क्षणमें अति सुन्दर मयूरोचित आहार देती हुई उसकी टहल करने लगी ॥ ८४ ॥ उस समय राजा जनकने अश्वमेध नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया; उस यज्ञमें अवमृथ-स्नानके समय उस मयूरको स्नान कराया ॥ ८५ ॥ तत्र उस सुन्दरीने खर्य भी स्नान कर राजाको यह समरण कराया कि किस प्रकार उसने स्वान और शृगाल आदि योनियाँ प्रहण की थीं ॥ ८६ ॥

स्मृतजन्मक्रमस्सोऽथ तत्याज खकलेवरम् । जज्ञे स जनकस्येव पुत्रोऽसौ सुमहात्मनः ॥८७॥ ततस्सा पितरं तन्त्री विवाहार्थमचोदयत्। स चापि कारयामास तस्याराजा खयंवरम्॥८८॥ ख्यंवरे कृते सा तं सम्प्राप्तं पतिमात्मनः । वरयामास भूयोऽपि भर्त्तृभावेन भामिनी ॥८९॥ बुभ्रजे च तया सार्द्धं सम्भोगान्नृपनन्दनः । पितर्थुपरते राज्यं विदेहेपु चकार सः ॥९०॥ इयाज यज्ञान्सुवहून्ददौ दानानि चार्थिनाम्। पुत्रानुत्पादयामास युयुधे च सहारिभिः॥९१॥ राज्यं अक्त्वा यथान्यायं पालियत्वा वसुन्धराम् । तत्याज स त्रियान्त्राणान्संग्रामे धर्मतो नृपः॥९२॥ ततिश्वतास्थं तं भूयो भत्तीरं सा शुभेक्षणा। अन्वारुरोह विधिवद्यथापूर्व गुदान्विता ॥९३॥ ततोऽवाप तया सार्द्धं राजपुत्र्या स पार्थिवः । ऐन्द्रानतीत्य वै लोकाँह्लोकान्त्राप तदाक्ष्यान्।।९४।। स्तर्गाक्ष्यत्वमतुलं दाम्पत्यमतिदुर्लभम् । प्राप्तं पुण्यफलं प्राप्य संग्रुद्धि तां द्विजोत्तम ॥९५॥ एव पावण्डसम्माषाद्दोषः श्रोक्तो मया द्विज । तथाऽश्वमेघावभृथस्नानमाहात्म्यमेव च ॥९६॥ तसात्पाषण्डिभिः पापैरालापस्पर्शनं त्यजेत्। विशेषतः क्रियाकाले यज्ञादौ चापि दीक्षितः॥९७॥ कियाहानिर्गृहे यस्य मासमेकं प्रजायते। तस्यावलोकनात्स्रर्थं पश्येत मतिमाञ्चरः ॥९८॥ किं पुनर्येस्तु सन्त्यक्ता त्रयी सर्वात्मना द्विज । पाषण्डभोजिभिः

अपनी जन्म-परम्पराका स्मरण होनेपर उसने अपना शरीर त्याग दिया और फिर महात्मा जनकर्जा-के यहाँ ही पुत्ररूपसे जन्म लिया ॥ ८७ ॥

तव उस सुन्दरीने अपने पिताको विवाहके छिय प्रेरित किया । उसकी प्रेरणासे राजाने उसके खयंवर-का आयोजन किया ॥ ८८ ॥ खयंबर होनेपर उस राजकन्याने खयंवरमें आये हुए अपने उस पतिको फिर पतिभावसे वरण कर लिया ॥ ८९ ॥ उस राज-कुमारने काशिराजसुताके साथ नाना प्रकारके भोग भोगे और फिर पिताके परछोकवासी होनेपर विदेह-नगरका राज्य किया ॥ ९०॥ उसने बहुतसे यज्ञ किये, याचकोंको नाना प्रकारसे दान दिये, बहुतसे पुत्र उत्पन्न किये और शत्रुओंके साथ अनेकों युद्ध किये ॥ ९१ ॥ इस प्रकार उस राजाने पृथिवीका न्यायानुकूछ पाछन करते हुए राज्य-भोग किया और अन्तमें अपने प्रिय प्राणोंको धर्मयुद्धमें छोड़ा ॥ ९२ ॥ तव उस सुछोचनाने पहछेके समान फिर अपने चितारूढ पतिका विधिपूर्वक प्रसन्न-मनसे अनुगमन किया ॥ ९३ ॥ इससे वह राजा उस राजकन्याके सहित इन्द्रलोकसे भी उत्कृष्ट अक्षय लोकोंको प्राप्त हुआ ॥ ९४॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार ग्रुद्ध हो जानेपर उसने अतुल्रनीय अक्षय स्वर्ग, अति दुर्लभ दाम्पत्य और अपने पूर्वार्जित सम्पूर्ण पुण्यका फल प्राप्त कर लिया ॥९५॥

होषः प्रोक्तो मया द्विज । हो द्विज ! इस प्रकार मैंने तुमसे पाखण्डांसे सम्भाषण करनेका दोष और अश्वमेध-यश्चमें स्नान करनेका माहात्म्य वर्णन कर दिया ॥ ९६ ॥ इसिट्टिये पाखण्डां और पापाचारियोंसे कभी वार्ताट्याप और स्पर्श न करे; विशेषतः नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके समय और जो यज्ञादि क्रियाओंके ट्रिये दिक्षित हो उसे तो उनका संस्र्ण त्यागना अत्यन्त आवश्यक है ॥ ९७ ॥ जिसके घरमें एक मासतक नित्यकर्मोंका अनुष्टान न हुआ हो उसको देख ट्रेनेपर बुद्धिमान् मनुष्य सूर्यका दर्शन करे ॥ ९८ ॥ फिर जिन्होंने वेदत्रयीका सर्वथा त्याग कर दिया है तथा जो पाखण्डियोंका अन्न खाते और वैदिक-मतका विरोध करते हैं उन पापात्माओंके दर्शनादि करनेपर तो कहना हो क्या है ? ॥ ९९ ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

सहालापस्त संसर्गः सहास्या चातिपापिनी । पाषण्डिभिर्दुराचारैस्तसात्तान्परिवर्जयेत् ॥१००॥ ^१ पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालत्रतिकाञ्छठान् । हैतुकान्वकवृत्तींश्र वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥१०१॥ द्रतस्तैस्तु सम्पर्कस्त्याज्यश्चाप्यतिपापिभिः। पाषण्डिभिर्दुराचारैस्तसात्तान्परिवर्जयेत् ।।१०२।। एते नमास्तवाख्याता दृष्टाः श्राद्धोपघातकाः । येषां सम्भाषणात्पुंसां दिनपुण्यं प्रणक्यति ॥१०३॥ एते पाषण्डिनः पापा न ह्येतानालपेद् बुधः। पुण्ये नश्यति सम्भाषादेतेषां तहिनोद्भवम्।।१०४।। पुंसां जटाधरणमौण्डचवतां वृथेव मोघाशिनामखिलशौचनिराकृतानाम्। तोयप्रदानपितृपिण्डबहिष्कृतानां सम्भाषणाद्पि नरा नरकं प्रयान्ति ॥१०५॥

विष शली की मानन धनरात्र

इन दुराचारी पाखण्डियों साथ वार्ताळाप करने, सम्पर्क रखने और उठने-बैठनेमें महान् पाप होता है; इसलिये इन सब वार्तोका त्याग करे ॥१००॥ पाखण्डी, विकर्मी, विडाळ-ब्रतवाळे, * दुष्ट, स्वार्थी और वगुळा-भक्त छोगोंका वाणीसे भी आदर न करे ॥ १०१॥ इन पाखण्डी, दुराचारी और अति पापियोंका संसर्ग दूरहींसे त्यागने योग्य है । इसलिये इनका सर्वदा त्याग करे ॥ १०२॥

इस प्रकार मैंने तुमसे नग्नोंकी व्याख्या की, जिनके दर्शनमात्रसे श्राद्ध नष्ट हो जाता है और जिनके साथ सम्भाषण करनेसे मनुष्यका एक दिनका पुण्य क्षीण हो जाता है ॥ १०३ ॥ ये पाखण्डी वहे पापी होते हैं, बुद्धिमान् पुरुष इनसे कभी सम्भाषण न करे । इनके साथ सम्भाषण करनेसे उस दिनका पुण्य नष्ट हो जाता है ॥१०४॥ जो विना कारण ही जटा धारण करते अथवा मूँड मुझाते हैं, देवता, अतिथि आदिको मोजन कराये विना खयं ही मोजन कर छेते हैं, सब प्रकारसे शौचहीन हैं तथा जल-दान और पितृ-पिण्ड आदिसे भी बहिष्कृत हैं, उन छोगोंसे वार्तालप करनेसे भी छोग नरकमें जाते हैं ॥१०५॥

इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीयेंऽशे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८॥

इति श्रीपराश्चरम्धनिविरचिते श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायके श्रीमति विष्णुमहापुराणे तृतीयोंऽशः समाप्तः।





श्रीविष्णुपुराण

चतुर्थ अंश



पारं पारापारमपारं परपारं पारावाराधारमधार्यं ह्यविकार्यम् । पूर्णाकारं पूर्णविद्वारं परिपूर्णं वन्दे विष्णुं परमाराध्यं परमार्थम् ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri



भगवान् श्रीरामचन्द्र

श्रीमहारायणाय नमः

श्रीविष्णुपुराण

चतुर्थ अंश

पहला अध्याय

वैवस्वतम्युके वंशका विवरण।

श्रमित्रेय उवाच

मगवन्यनरैः कार्यं साधुकर्मण्यवस्थितैः। तन्मह्यं गुरुणाख्यातं नित्यनैमित्तिकात्मकम्।।१॥ वर्णधर्मास्तथाख्याता धर्मा ये चाश्रमेषु च। श्रोतुमिच्छाम्यहं वंशं राज्ञां तद् ब्रुहि मे गुरो॥ २॥

श्रीपराशर उवाच

मैत्रेय श्र्यतामयमनेकयज्वश्रुरवीरधीरभूपालालङ्कृतो ब्रह्मादिमीनवी वंशः ॥ ३॥ तदस्य
वंशस्यानुपूर्वीमशेषवंशपापप्रणाशनाय मैत्रेयैतां
कथां मृणु ॥ ४॥

तद्यथा संकल्जगतामादिरनादिभृतस्य ऋग्य-जस्सामादिमयो भगवान् विष्णुस्तस्य ब्रह्मणो मूर्तं रूपं हिरण्यगर्भो ब्रह्माण्डभूतो ब्रह्मा भगवान् प्राग्वभूव ॥ ५॥ ब्रह्मणश्च दक्षिणाङ्गुष्ठजन्मा दक्षप्रजापतिः दक्षस्याप्यदितिरदितेर्विवस्तान् विवस्ततो मनुः ॥ ६॥ मनोरिक्ष्वाङ्कनृगश्चष्ट-शर्यातिनरिष्यन्तप्रांशुनामागदिष्टकरूपपृष्ठाख्या दश्च पुत्रा बभूवः ॥ ७॥ श्रीमेत्रेयजी बोळे—हे भगवन् ! सत्कर्ममें प्रवृत्त रहनेवाले पुरुषोंको जो करने चाहिये उन सम्पूर्ण नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका आपने वर्णन कर दिया ॥१॥ हे गुरो ! आपने वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्मोंकी व्याख्या भी कर दी । अब मुझे राजवंशोंका विवरण सुननेकी इच्छा है, अतः उनका वर्णन कीजिये ॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! अत्र तुम अनेकों यज्ञकर्ता, श्र्रवीर और धैर्यशाली मूपालोंसे सुशोमित इस मनुवंशका वर्णन सुनो जिसके आदिपुरुष श्री- ब्रह्माजी हैं ॥ ३ ॥ हे मैत्रेय ! अपने वंशके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेके लिये इस वंश-परम्पराकी कथाका क्रमशः श्रवण करो ॥ ४ ॥

उसका विवरण इस प्रकार है— सकछ संसारके आदिकारण मगवान् विष्णु हैं। वे अनादि तथा ऋक्-साम-यजुःखरूप हैं। उन ब्रह्मखरूप मगवान् विष्णुके मूर्तरूप ब्रह्मण्डमय हिरण्यगर्भ मगवान् ब्रह्माजी सबसे पहले प्रकट हुए ॥ ५ ॥ ब्रह्माजीके दार्ये अंगुठेसे दक्षप्रजापति हुए, दक्षसे अदिति हुई तथा अदितिसे विवस्नान् और विवस्नान्से मनुका जन्म हुआ ॥ ६ ॥ मनुके इक्ष्वाकु, नृग, घृष्ट, शर्याति, निर्ण्यन्त, प्रांगु, नामाग, दिष्ट, करूप और पृषम्न नामक दश पुत्र हुए ॥ ७ ॥

שונו מו שווחם

इप्टिंच मित्रावरुणयोर्मेतुः पुत्रकामश्रकार ।।८।। तत्र ताबदपह्नते होतुरपचारादिला नाम कन्या बभूव ॥ ९ ॥ सैव च मित्रावरुणयोः प्रसादा-त्सुबुम्नो नाम मनोः पुत्रो मैत्रेय आसीत्।।१०।। पुनश्रेश्वरकोपात्स्री सती सा तु सोमस्रनोर्बुध-साश्रमसमीपे बभ्राम ॥ ११॥ सानुरागश्र तस्यां बुधः पुरूरवसमात्मजद्युत्पादयामास ॥१२॥ जातेऽपि तसिन्नमिततेजोभिः परमर्पिभिरिष्टिमय ऋज्ययो यजुर्मयस्साममयोऽथर्वणमयस्सर्ववेदमयो मनोमयो ज्ञानमयो न किञ्चिन्मयोऽनमयो भगवान यज्ञपुरुषस्रूपी सुद्यम्नस्य पुंस्त्वमभिलपद्भिर्यथा-वदिष्टस्तत्प्रसादादिला पुनरपि सुद्युम्रोऽभवत् ॥ १३ ॥ तस्याप्युत्कलगयविनतास्त्रयः वभृतुः।। १४।। सुद्युम्नस्तु स्त्रीपूर्वकत्वाद्राज्यभागं न लेमे ॥ १५॥ तत्पित्रा तु वसिष्ठवचना-त्प्रतिष्ठानं नाम नगरं सुद्युम्नाय दत्तं तचासौ पुरूरवसे प्रादात् ॥ १६ ॥

तदन्वयाश्र क्षत्रियास्सर्वे दिक्ष्वभवन् । पृष्प्रस्तु मंतुपुत्रो गुरुगोवधाच्छूद्रत्वमगमत् ॥ १७॥ मनोः पुत्रः करूपः करूपात्कारूपाः क्षत्रिया महावलपराऋमा वभृदुः ॥ १८ ॥ दिष्ट-प्रत्रस्तु नाभागो वैश्यतामगमत्तसाद्वलन्धनः पुत्रोऽभवत् ॥ १९ ॥ वलन्धनाद्वत्सप्रीतिरुदार-कीर्त्तिः ॥ २० ॥ वत्सप्रीतेः प्रांशुरभवत् ॥२१॥ प्रजापतिश्व प्रांशोरेकोऽभवत् ॥ २२ ॥ ततश्च खनित्रः ॥ २३ ॥ तसाचाक्षुषः ॥ २४ ॥ चाक्षुपा-चातिवलपराक्रमो विंशोऽभवत् ॥ २५॥ ततो विविश्वकः ॥ २६ ॥ तसाच खनिनेत्रः ॥ २७ ॥ तत्रशातिविभृतिः ॥ २८ ॥ अतिविभूतेर-

मनुने पुत्रकी इच्छासे मित्रावरुण नामक दो देवताओंके यज्ञका अनुष्ठान किया ॥ ८ ॥ किन्तु होताके विपरीत सङ्गल्पसे यज्ञमें विपर्यय हो जानेसे उनके 'इला' नामकी कन्या हुई ॥ ९॥ हे मैत्रेय! मित्रावरुणको कृपासे वह इला ही मनुका 'सुद्युम्न' नामक पुत्र हुई ॥ १०॥ फिर महादेवजीके कोप (कोपप्रयुक्त शाप) से वह स्त्री होकर चन्द्रमाके पुत्र बुधके आश्रमके निकट घूमने लगी ॥ ११ ॥ बुधने अनुरक्त होकर उस स्त्रीसे ६ पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥१२॥ पुरूरवाके जन्मके अनन्तर भी परमर्षिगणने सुबुझको पुरुषत्व-लामकी आकांक्षासे ऋतुमय ऋग्यजुःसामाथर्वमय, सर्ववेदमय, मनोमय, ज्ञानमय, अन्नमय परमार्थतः अकिञ्चिन्मय भगवान् यज्ञपुरुषका यथावत् यजन किया। तब उनकी कृपासे इला फिर भी सुबुम्न हो गयी ॥१३॥ उस (सुबुम्न) के भी उत्कल, गय और विनत नामक तीन पुत्र हुए ॥१४॥ पहले स्री होनेके कारण सुबुम्नको राज्याधिकार प्राप्त नहीं हुआ ।।१५॥ वसिष्ठजीके कहनेसे उनके पिताने उन्हें प्रतिष्ठान नामक नगर दे दिया था, वही उन्होंने पुरूरवाको दिया ॥१६॥

पुरूरवाको सन्तान सम्पूर्ण दिशाओंमें फैले हुए क्षत्रियगण हुए। मनुका पृषध्र नामक पुत्र गुरुको गौका वध करनेके कारण शूद्र हो गया ॥१७॥ मनुका पुत्र करूष था। करूषसे कारूष नामक महाबली और पराक्रमी क्षत्रियगण उत्पन्न हुए ॥ १८ ॥ दिष्टका पुत्र नाभाग वैश्य हो गया था; उससे वलन्धन नामका पुत्र हुआ ॥१९॥ बलन्धनसे महान् कीर्तिमान् वत्सप्रीति, वत्सप्रीतिसे प्रांशु और प्रांशुसे प्रजापित नामक इकलोता पुत्र हुआ ॥२०-२२॥ प्रजापतिसे खनित्र, खनित्रसे चाक्षुष तथा चाक्षुषसे अति बल-पराक्रम-सम्पन्न विंश हुआ ॥२३-२५॥ विंशसे विविंशक, खनिनेत्र, खनिनेत्रसे अतिविभृति विविंशकसे और अतिविमूतिसे अति बळवान् और शूरवीर विवलपराक्रमः करन्यमः अनुने इस्त्राह्मस्त्रत्वा धीत्र अद्भागित्व स्त्राह्म Del ना महाराष्ट्रस्त्र eGa इसारा ॥ २६—२९॥

तसाद्प्यविश्वित्।।३०॥ अविश्वितोऽप्यतिवलपराक्रमः पुत्रो मरुत्तो नामाभवत्; यस्येमावद्यापि
श्लोकौ गीयेते ॥ ३१ ॥
मरुत्तस्य यथा यज्ञस्तथा कस्याभवद्भुवि ।
सर्वं हिरण्मयं यस्य यज्ञवस्त्वतिशोभनम् ॥३२॥
अमाद्यदिन्द्रस्सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
मरुतः परिवेष्टारस्सदस्याश्च दिवौकसः ॥३३॥

स सरुतश्रक्षकवर्ती निरुचन्तनामानं पुत्रमवाप ॥ ३४ ॥ तसाच दमः ॥ ३५ ॥ दमस्य पुत्रो राजवर्द्धनो जज्ञे ॥ ३६ ॥ राजवर्द्धनात्सुवृद्धिः ॥ ३७ ॥ सुवृद्धेः केवलः ॥ ३८ ॥ केवलात्सुवृ-तिरभूत् ॥ ३९ ॥ ततश्र नरः ॥ ४० ॥ तसाचन्द्रः ॥ ४१ ॥ ततः केवलोऽभूत् ॥ ४२॥ केवलाद्धन्धु-मान् ॥ ४३ ॥ वन्धुमतो वेगवान् ॥ ४४ ॥ वेगवतो बुधः ॥ ४५ ॥ ततश्र तृणविन्दुः ॥ ४६ ॥ तस्याप्येका कन्या इलविला नाम ॥ ४७ ॥ ततश्रा-लम्बुसा नाम वराप्सरास्तृणविन्दुं मेजे ॥ ४८ ॥ तस्यामप्यस्य विशालो जज्ञे यः पुरीं विशालो निर्ममे ॥ ४९ ॥

हेमचन्द्रश्च विशालस पुत्रोऽभवत् ॥ ५० ॥ ततश्चन्द्रः ॥ ५१ ॥ तत्तनयो धृष्राक्षः ॥ ५२ ॥ तसापि सृद्धयोऽभृत् ॥ ५३ ॥ सृद्धयात्सहदेवः ॥५४॥ ततश्च कृशाश्चा नाम पुत्रोऽभवत् ॥ ५५ ॥ सोमदत्तः कृशाश्चाञ्जञ्चे योऽश्वमेघानां शतमाजहार ॥ ५६ ॥ तत्पुत्रो जनमेजयः ॥ ५७ ॥ जनमेजयात्सुमतिः ॥ ५८ ॥ एते वैशालिका भृभृतः ॥५९॥ श्लोकोऽप्यत्र गीयते ॥ ६० ॥ तृणविन्दोः प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः ।

करन्धमसे अविक्षित् हुआ और अविक्षित्के मरुत्त नामक अति बल-पराक्रमयुक्त पुत्र हुआ, जिसके विषयमें आजकल भी ये दो श्लोक गाये जाते हैं ॥३०-३१॥

'मरुत्तका जैसा यज्ञ हुआ या वैसा इस पृथिवीपर और किसका हुआ है, जिसकी सभी याज्ञिक वस्तुएँ सुवर्णमय और अति सुन्दर धीं ॥३२॥ उस यज्ञमें इन्द्र सोमरससे और ब्राह्मणगण दक्षिणासे परितृप्त हो गये थे, तथा उसमें मरुद्रण परोसनेवाळे और देवगण सदस्य थे'॥ ३३॥

उस चक्रवर्ती मरुत्तके निर्ण्यन्त नामक पुत्र हुआ तथा निर्ण्यन्तके दम और दमके राजवर्द्धन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३४–३६॥ राजवर्द्धनसे सुवृद्धि, सुवृद्धिसे केवल और केवलसे सुवृतिका जन्म हुआ ॥३७–३९॥ सुवृतिसे नर, नरसे चन्द्र और चन्द्रसे केवल हुआ ॥४०–४२॥ केवलसे वन्धुमान, वन्धुमान्से वेगवान्, वेगवान्से बुध, बुधसे तृणविन्दु तथा तृणविन्दुसे पहले तो इलविला नामकी एक कन्या हुई थी, किन्तु पीछे अलम्बुसा नामकी एक सुन्दरी अप्सरा उसपर अनुरक्त हो गयी । उससे तृणविन्दुके विशाल नामक पुत्र हुआ, जिसने विशाल नामकी पुरी वसायी ॥४३–४९॥

विशालका पुत्र हेमचन्द्र हुआ, हेमचन्द्रका चन्द्र, चन्द्रका घूम्राक्ष, घूम्राक्षका सम्भ्रय, सञ्जयका सहदेव और सहदेवका पुत्र कृशाश्व हुआ ॥ ५०—५५॥ कृशाश्वके सोमदत्त नामक पुत्र हुआ, जिसने सौ अश्वमेध-यज्ञ किये थे। उससे जनमेजय हुआ और जनमेजयसे सुमितका जन्म हुआ। ये सब विशालवंशीय राजा हुए। इनके विषयमें यह स्रोक प्रसिद्ध है—॥ ५६—६०॥ 'तृणिविन्दुके प्रसादसे विशालवंशीय समस्त राजालोग दीर्घाय, महात्मा, वीर्यवान्

दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तोऽतिधार्मिकाः १६१। और अति धर्मपरायण हुए ॥६१॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri श्रयातिः कन्या सुकन्या नामाभवत् यास्रपयेमे च्यवनः ॥ ६२ ॥ आनर्त्तनामा परमधार्मिकश्र्याितिपुत्रोऽभवत् ॥ ६३ ॥ आनर्त्तस्यापि रेवतनामा
पुत्रो जज्ञे योऽसावानर्त्तविषयं बुसुजे पुरीं च
कुशस्थलीमध्युवास ॥६४॥

रेवतसापि रैवतः पुत्रः ककुधिनामा धर्मात्मा आतृश्वतस्य ज्येष्ठोऽभवत् ॥६५॥ तस्य रेवती नाम कन्याभवत् ॥६६॥ स तामादाय कस्येयमईतीति भगवन्तमञ्जयोनि प्रष्टुं ब्रह्मलोर्क जगाम ॥६७॥ तावच ब्रह्मणोऽन्तिके हाहाहृहूसंज्ञाभ्यां गन्धवी-भ्यामिततानं नाम दिच्यं गान्धर्वमगीयत ॥६८॥ तच त्रिमार्गपरिवृत्तैरनेकयुगपरिवृत्तिं तिष्ठक्मपि रैवतक्ष्मण्यन्मुहूर्त्तमिव मेने ॥६९॥

गीतावसाने च भगवन्तमञ्जयोनि प्रणम्य रैवतः कन्यायोग्यं वरमपृच्छत् ॥ ७० ॥ ततश्चासौ भगवानकथयत् कथय योऽभिमतस्ते वर इति॥७१॥ पुनश्च प्रणम्य भगवते तस्मै यथाभिमतानात्म-नस्स वरान् कथयामास । क एषां भगवतोऽभिमत इति यस्मै कन्यामिमां प्रयच्छामीति ॥ ७२ ॥

ततः किश्चिद्वनतिश्वरास्ससितं भगवानब्ज-योनिराह।७३।य एते भवतोऽभिमता नैतेषां साम्प्रतं पुत्रपौत्रापत्यापत्यसन्तितरस्त्यवनीतले ॥ ७४॥ बहूनि तवात्रेव गान्धर्वं शृण्वतश्चतुर्युगान्यतीतानि ॥७५॥ साम्प्रतं महीतलेऽष्टाविंशतितममनोश्चतुर्यु-गमतीतप्रायं वर्तते॥७६॥ आसमो हि कलिः॥७०॥

मनुपुत्र शर्यातिके सुकन्या नामवाछी एक कन्या हुई, जिसका विवाह च्यवन ऋषिके साथ हुआ ॥ ६२ ॥ शर्यातिके आनर्त्त नामक एक परम धार्मिक पुत्र हुआ । आनर्त्तके रेवत नामका पुत्र हुआ जिसने कुशस्थळी नामकी पुरीमें रहकर आनर्त्तदेशका राज्य-मोग किया ॥ ६३-६४ ॥

रेवतका भी रैवत ककुद्यी नामक एक अति धर्मात्मा पुत्र था, जो अपने सौ भाइयोंमें सबसे वड़ा था ॥६५॥ उसके रेवती नामकी एक कन्या हुई ॥ ६६ ॥ महा-राज रैवत उसे अपने साथ छेकर ब्रह्माजीसे यह पूछनेके छिये कि 'यह कन्या किस वरके योग्य है' ब्रह्मछोकको गये ॥ ६० ॥ उस समय ब्रह्माजीके समीप हाहा और हूड़ नामक दो गन्धर्व अतितान नामक दिन्य गान गा रहे थे ॥ ६८ ॥ वहाँ [गान-सम्बन्धी चित्रा, दक्षिणा और धात्री नामक] त्रिमार्गके परिवर्तनके साथ उनका विछक्षण गान सुनते हुए अनेकों युगोंके परिवर्तन-काछतक ठहरनेपर भी रैवतजीको केवछ एक मुद्दूर्त ही बीता-सा माछम हुआ ॥ ६९ ॥

गान समाप्त हो जानेपर रैवतने भगवान् कमल-योनिको प्रणाम कर उनसे अपनी कन्याके योग्य वर पूछा ॥ ७० ॥ भगवान् ब्रह्माने कहा—"तुम्हें जो वर अभिमत हों उन्हें वताओ" ॥ ७१ ॥ तव उन्होंने भगवान् ब्रह्माजीको पुनः प्रणाम कर अपने समस्त अभिमत वरोंका वर्णन किया और पूछा कि 'इनमेंसे आपको कौन वर पसन्द है जिसे मैं यह कन्या दूँ १' ॥ ७२ ॥

इसपर भगवान् कमल्योनि कुछ शिर झुकाकर मुसकाते हुए बोले—॥७३॥"तुमको जो-जो बर अभिमत हैं उनमेंसे तो अब पृथिवीपर किसीके पुत्र-पौत्रादिकी सन्तान भी नहीं है ॥ ७४ ॥ क्योंकि यहाँ गन्धवींका गान सुनते हुए तुम्हें कई चतुर्युग बीत चुके हैं ॥ ७५॥ इस समय पृथिवीतलपर अट्टाईसवें मनुका चतुर्युग प्रायः समाप्त हो चुका है ॥ ७६ ॥ जिया किलिसुमका अप्रारम्भ होनेवाला है ॥ ७६ ॥ अन्यसे कन्यारत्मिदं भवतैकाकिनाभिमताय देयम् ॥ ७८ ॥ भवतोऽपि पुत्रमित्रकलत्रः मन्त्रिभृत्यवन्धुवलकोशादयस्समस्ताः काले नैतेनात्यन्तमतीताः ॥ ७९ ॥ ततः पुनरप्यु-प्रणम्य भगवन्तं राजा त्पन्नसाध्वसो पप्रच्छ ॥ ८० ॥ भगवन्नेवमवस्थिते मयेयं कसै देयेति ॥ ८१ ॥ ततस्स भगवान् किञ्चिदवन-म्रकन्धरः कृताञ्जलिर्भृत्वा सर्वलोकगुरुरम्भोज-योनिराह ॥ ८२॥

श्रीब्रह्मोवाच

न ह्यादिमध्यान्तमजस्य यस्य विद्यो वयं सर्वमयस्य धातुः। न च खरूपं न परं खभावं चैव सारं परमेश्वरस्य ॥८३॥ कलामुहूर्तादिमयश्र कालो न यद्विभृतेः परिणामहेतुः। सदैकमूर्ते-

सनातनस्य ॥८४॥ रनामरूपस्य प्रसादादहमच्युतस्**य** यस्य भूतः प्रजासृष्टिकरोऽन्तकारी। क्रोधाच रुद्रः स्थितिहेतुभूतो यसाच मध्ये पुरुषः परसात्।।८५॥

अजन्मनाशस्य

मद्रुपमास्थाय सुजत्यजो यः स्थितौ च योऽसौ पुरुषस्ररूपी। रुद्रसरूपेण च योऽत्ति विश्वं तथानन्तवपुस्समस्तम् ॥८६॥

पाकाय योऽप्रित्वसुपैति लोका-न्विभक्ति पृथ्वीवपुरव्ययात्मा । शकादिरूपी परिपाति विश्व-मर्केन्दुरूपश्च तमो हिनस्ति ॥८७॥

चेष्टारुखसनखरूपी करोति लोकस्य तृप्तिं च जलान्नरूपी। विश्वस्थितिसंस्थितस्तु ददाति

अव तुम [अपने समान] अकेले ही रह गये हो, अतः यह कन्या-रत्न किसी और योग्य वरको दो । इतने समयमें तुम्हारे पुत्र, मित्र, कलत्र, मन्त्रिवर्ग, भृत्यगण, बन्धुगण, सेना और कोशादिका भी सर्वथा अभाव हो चुका है" ॥ ७८-७९ ॥ तव तो राजा रैवतने अत्यन्त भयभीत हो भगवान् ब्रह्माजीको पुनः प्रणाम कर पूछा ॥ ८०॥ 'भगवन् ! ऐसी वात है, तो अब मैं इसे किसको दूँ ?'॥८१॥ तव सर्वलोकरार भगवान् कमलयोनि कुछ शिर झुकाए हाथ जोड़कर बोले ॥ ८२ ॥

श्रीव्रह्माजीने कहा - जिस अजन्मा, सर्वमय, विधाता परमेश्वरका आदि, मध्य, अन्त, खरूप, ख-भाव और सार हम नहीं जान पाते ॥ ८३॥ कला-मुहूर्तादिमय काल भी जिसकी विभूतिके परिणामका कारण नहीं हो सकता, जिसका जन्म और मरण नहीं होता, जो सनातन और सर्वदा एकरूप है तथा जो नाम और रूपसे रहित है ॥ ८४॥ जिस अन्युतकी कृपासे मैं प्रजाका उत्पत्तिकर्ता हूँ, जिसके क्रोधसे उत्पन्न हुआ रुद्र सृष्टिका अन्तकर्ता है तथा जिस परमात्मासे मध्यमें जगत्थितिकारी विष्णुरूप पुरुषका प्रादुर्माव हुआ है ॥ ८५॥ जो अजन्मा मेरा रूप धारणकर संसारकी रचना करता है, स्थितिके समय जो पुरुषक्तप है तथा जो रुद्ररूपसे सम्पूर्ण विश्वका ग्रास कर जाता है एवं अनन्तरूपसे सम्पूर्ण जगत्को धारण करता है ॥ ८६ ॥ जो अन्ययात्मा पाकके लिये अग्निरूप हो जाता है, पृथिवीरूपसे सम्पूर्ण लोकोंको धारण करता है, इन्द्रादिरूपसे विस्वका पालन करता है और सूर्य तथा चन्द्ररूप होकर सम्पूर्ण अन्धकारका नाश करता है ॥८७॥ जो स्वास-प्रस्वासरूपसे जीवोंमें चेष्टा करता है, जल और अन्नरूपसे लोककी तृप्ति करता है तथा विश्वकी स्थितिमें संलग्न रहकर जो सर्वावकार्श च नमस्त्रक्षी ||८८|| आकाशक्ष्यसे सत्रको अवकाश देता है ||८८||

यस्युज्यते सर्गकृदात्मनैव यः पाल्यते पालयिता च देवः । विश्वात्मकस्संहियतेऽन्तकारी पृथक त्रयस्यास्य च योऽव्ययात्मा।।८९।। यसिञ्जगद्यो जगदेतदाद्यो यश्रात्रितोऽसिज्जगति स्वयम्भः। स सर्वभूतप्रभवो धरित्र्यां खांशेन विष्णुर्नृपतेऽवतीर्णः ॥९०॥ कुशस्थली या तव भूप रम्या पुरी पुराभृदमरावतीव । सा द्वारका सम्प्रति तत्र चास्ते स केशवांशो वलदेवनामा ॥९१॥ तस्मै त्वमेनां तनयां नरेन्द्र प्रयच्छ मायामनुजाय जायाम् । श्लाघ्यो वरोऽसौ तनया तवेयं स्रीरतभूता सद्यो हि योगः ॥९२॥ श्रीपराशर उवाच इतीरितोऽसौ कमलोद्धवेन भ्रवं समासाद्य पतिः प्रजानाम् ।

दुद्धी इस्वान् पुरुषान् विरूपा-नल्पौजसस्स्वल्पविवेकवीर्यान् ॥९३॥ कुशस्यलीं तां पुरीमुपेत्य च दृष्ट्वान्यरूपां प्रददौ स कन्याम । सीरायुघाय स्फटिकाचलाभ-वक्षःस्यलायातुलधीर्नरेन्द्रः ॥९४॥ उचप्रमाणामिति तामवेध्य खलाङ्गलाग्रेण च तालकेतः। विनम्रयामास ततश्च सापि वभूव सद्यो वनिता यथान्या ॥९५॥ तां रेवतीं रैवतभूपकन्यां सीरायुघोऽसौ विधिनोपयेमे । दत्त्वाथ कन्यां स नृपो जगाम

जो सृष्टिकर्ता होकर भी विश्वरूपसे आप ही अपनी रचना करता है, जगत्का पालन करनेवाला होकर भी आप ही पालित होता है तथा संहारकारी होकर भी स्वयं ही संहत होता है और जो इन तीनोंसे पृथक इनका अविनाशी आत्मा है ॥ ८९॥ जिसमें यह जगत् स्थित है, जो आदिपुरुष जगत्-स्वरूप है और इस जगत्के ही आश्रित तथा स्वयम्भू है, हे नृपते ! सम्पूर्ण भूतोंका उद्भवस्थान वह विष्णु धरातल-में अपने अंशसे अवतीर्ण हुआ है ॥ ९०॥

. हे राजन् ! पूर्वकालमें तुम्हारी जो अमरावतीके समान कुशस्थली नामकी पुरी थी वह अब द्वारकापुरी हो गयी है। वहीं वे बलदेव नामक भगवान् विष्णुके अंश विराजमान हैं ॥ ९१ ॥ हे नरेन्द्र ! तुम यह कन्या उन मायामानव श्रीबल्देवजीको पत्नीरूपसे दो। ये वल्देवजी संसारमें अति प्रशंसनीय हैं और तुम्हारी कन्या भी श्रियोंमें रत्नस्वरूपा है अतः इनका योग सर्वथा उपयुक्त है ॥ ९२ ॥

श्रीपराशरजी बोले-भगवान् ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर प्रजापित रैवत पृथिवीतलपर आये तो देखा कि समी मनुष्य छोटे-छोटे, कुरूप, अल्पतेजोमय, अल्पवीर्य तथा विवेकहीन हो गये हैं ॥ ९३॥ अतुल्बुद्धि महाराज रैवतने अपनी कुशस्थली नामकी पुरी और ही प्रकारकी देखी तथा स्फटिक-पर्वतके समान जिनका वक्षःस्थल है उन भगवान् हलायुधको अपनी कन्या दे दी ॥ ९४ ॥ भगवान वल्रदेवजीने उसे बहुत ऊँची देखकर अपने हलके अप्रभागसे दबाकर नीची कर छी। तब रेवती भी तत्काछीन अन्य क्रियोंके समान (छोटे शरीरकी) हो गयी ॥ ९५ ॥ तदनन्तर बलरामजीने महाराज रैवतकी कन्या रेवतीसे विधिपूर्वक विवाह किया तथा राजा भी कन्यादान करनेके अनन्तर एकाम्रचित्तसे तपस्या हिमालयं वे तपसे धृतात्मा ॥९६॥ करनेके छिये हिमालयपर चले गये ॥ ९६॥

द्सरा अध्याय

इक्ष्याकुके वंशका वर्णन तथा सौभरिचरित्र।

श्रीपराशर उवाच

यावच ब्रह्मलोकात्स ककुद्यी रैवतो नाभ्येति तावत्पुण्यजनसंज्ञा राक्षसास्तामस्य पुरीं कुशस्थलीं निजघ्तुः ॥ १॥ तचास्य भ्रातृशतं पुण्यजन-त्रासादिको भेजे ॥ २॥ तद्न्वयाश्र क्षत्रिया-स्सर्वदिक्ष्यभवन् ॥ ३॥ धृष्टस्यापि धार्षकं क्षत्रम-भवत् ॥ ४ ॥ नाभागस्यात्मजो नाभागसंज्ञोऽभवत् ॥ ५॥ तस्याप्यम्बरीपः ॥ ६॥ अम्बरीपस्यापि विरूपोऽभवत् ॥ ७॥ विरूपात्पृषद्श्वो जज्ञे ॥८॥ ततश्च रथीतरः ॥ ९ ॥ अत्रायं श्लोकः-एते क्षत्रप्रसता वे पुनश्राङ्गिरसाः स्मृताः। रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।१०। इति

श्चुतवतश्च मनोरिक्ष्वाकुः पुत्रो जज्ञे घ्राणतः ।।११।। तस्य पुत्रशतप्रधाना विकुक्षिनिमिदण्डा-ख्यास्त्रयः पुत्रा वभूवुः ।।१२।। शकुनिप्रमुखाः पश्चाश्चतपुत्रा उत्तरापथरक्षितारो वभूवुः ॥१३॥ चत्वारिंशदृष्टौ च दक्षिणापथभूपालाः ॥१४॥ स चेक्ष्वाकुरष्टकायादश्राद्धमुत्पाद्य श्राद्धार्हं मांसमान-येति विकुक्षिमाज्ञापयामास ॥१५॥ स तथेति गृहीताज्ञो विधृतश्ररासनो वनमभ्येत्यानेकशो मृगान् इत्वा श्रान्तोऽतिश्चत्परीतो विक्वश्चिरेकं शशमभक्षयत् । शेषं च मांसमानीय निवेदयामास ॥१६॥

इक्ष्वाकुकुलाचार्यो वशिष्ठस्तत्त्रोक्षणाय चोदितः प्राह । अलमनेनामेध्येनामिषेण दुरात्मना तव पुत्रेणैतन्मांसम्रपहतं यतोऽनेन शशो मक्षितः ।। १७ ।। ततश्रासौ विकुक्षिर्गुरुणैवम्रुक्तक्शशाद-संज्ञामनाप पित्रा चु परित्यक्तः ॥ १८॥ और पिताने उसको त्याग दिया

श्रीपराशरजी बोले-जिस समय रैवत ककुद्मी ब्रह्मलोकसे लौटकर नहीं आये थे उसी समय पुण्यजन नामक राक्षसोंने उनकी पुरी कुशस्थळीका ध्वंस कर दिया ॥ १॥ उनके सौ भाई पण्यजन राश्वसोंके भयसे दशों दिशाओं में भाग गये ॥ २॥ उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए क्षत्रियगण समस्त दिशाओंमें फैले ॥ ३ ॥ धृष्टके वंशमें धार्ष्टक नामक क्षत्रिय हुए ॥ १॥ नाभागके नाभाग नामक पुत्र हुआ, नाभाग-का अम्बरीय और अम्बरीयका पुत्र विरूप हुआ, विरूपसे पृषदस्वका जन्म हुआ तथा उससे रथीतर हुआ ॥५-९॥ रथीतरके सम्बन्धमें यह इलोक प्रसिद्ध है-- 'र्थातरके वंशज क्षत्रिय सन्तान होते हुए भी आंगिरस कहलाये: अतः वे क्षत्रोपेत ब्राह्मण हुए' ।।१०।।

छींकनेके समय मनुकी प्राणेन्द्रियसे इक्ष्वाकु नामक पुत्रका जन्म हुआ ॥ ११ ॥ उनके सौ पुत्रोंमेंसे विकक्षि. निमि और दण्ड नामक तीन पुत्र प्रधान हुए तथा उनके शकुनि आदि पचास पुत्र उत्तरापथके और शेष अड़तालीस दक्षिणापथके शासक हुए॥१२-१४॥ इक्वाकुने अष्टकाश्राद्धका आरम्भ कर अपने पुत्र विकुक्षिको आज्ञा दी कि श्राद्धके योग्य मांस लाओ ॥ १५॥ उसने 'बहुत अच्छा' कह उनकी आज्ञाको शिरोधार्य किया और धनुप-वाण छेकर वनमें आ अनेकों मृगोंका वध किया, किन्तु अति थका-माँदा और अत्यन्त भूखा होनेके कारण विकुक्षिने उनमेंसे एक शशक (खरगोश) खा छिया और वचा हुआ मांस लाकर अपने पिताको निवेदन किया ॥ १६॥

उस मांसका प्रोक्षण करनेके लिये प्रार्थना किये जानेपर इक्ष्वाकुके कुल-पुरोहित वशिष्ठजीने कहा-"इस अपवित्र मांसकी क्या आवस्यकता है ? तुम्हारे दुरात्मा पुत्रने इसे भ्रष्ट कर दिया है क्योंकि उसने इसमेंसे एक शशक खा लिया है" ॥ १७ ॥ गुरुके ऐसा कहनेपर, तमीसे विकुक्षिका नाम शशाद पडा पितर्श्वपरते चासावखिलामेतां पृथ्वीं धर्मतक्शशास ॥१९॥ शशादस्य तस्य पुरख्जयो नाम पुत्रोऽभवत् ॥ २०॥

तस्येदं चान्यत् ॥२१॥ पुरा हि त्रेतायां देवासुरयुद्धमितभीषणमभवत् ॥२२॥ तत्र चातिविकभिरसुरैरमराः पराजितास्ते भगवन्तं विष्णुमाराघयाश्र्वकुः ॥२३॥ प्रसन्ध्य देवानामनादिनिधनोऽिखळजगत्परायणो नारायणः प्राह ॥ २४॥
ज्ञातमेतन्मया युष्माभिर्यद्भिरुषितं तद्र्थमिदं
श्रूयताम् ॥२५॥ पुरञ्जयो नाम राजर्षेश्यशादस्य
तनयः क्षत्रियवरो यस्तस्य शरीरेऽहमंशेन स्वयमेवावतीर्य तानशेषानसुराचिहनिष्यामि तद्भवद्भिः
पुरञ्जयोऽसुरवधार्थमुद्योगं कार्यतामिति ॥२६॥

एतच श्रुत्वा प्रणम्य मगवन्तं विष्णुममराः पुरद्धयसकाशमाजग्रुरुज्ञुश्चैनम् ॥ २७ ॥ मो मो श्वित्रयवर्यास्माभिरम्यथितेन भवतास्माकमराति-वधोद्यतानां कर्तव्यं साहाय्यमिच्छामः तद्भवता-साकमस्यागतानां प्रणयभङ्गो न कार्य इत्युक्तः पुरद्धयः प्राह ॥२८॥ त्रैलोक्यनाथो योऽयं युष्मा-कमिन्द्रः शतक्रतुरस्य यद्यहं स्कन्धाधिरूढो युष्माकमरातिभिस्सह योत्स्ये तदहं भवतां सहायः स्याम् ॥२९॥

इत्याकण्यं समस्तदेवैरिन्द्रेण च बाढमित्येवं समन्विप्सितम् ॥३०॥ ततश्च शतक्रतोर्व्वषरूप- धारिणः ककुदि स्थितोऽतिरोषसमन्वितो भगवत- श्वराचरगुरोरच्युतस्य तेजसाप्यायितो देवासुर- सङ्घामे समस्तानेवासुरान्निज्ञधान ॥३१॥ यतश्च पृषमककुदि स्थितेन राज्ञा दैतेयवलं निपूदितमतश्चासौ ककुत्स्थसंज्ञामवाप ॥ ३२ ॥ ककुत्स्थस्याप्यनेनाः पुत्रोऽभवत् ॥ ३३ ॥ पृथुरनेनसः ॥ ३४ ॥ पृथोविष्टराश्वः ॥ ३५ ॥ तस्यापि चान्द्रो प्युवमाश्वः ॥ २६ भाष्यान्द्रस्य

पिताके मरनेके अनन्तर उसने इस पृथिवीका धर्मानुसार शासन किया ॥ १९॥ उस शशादके पुरक्षय नामक पुत्र हुआ॥ २०॥

पुरज्जयका भी यह एक दूसरा नाम पड़ा—॥ २१॥ पूर्वकालमें त्रेतायुगमें एक वार अति भीषण देवासुर-संप्राम हुआ ॥ २२ ॥ उसमें महावल्वान् दैत्यगणसे पराजित हुए देवताओंने भगवान् विष्णुकी आराधना की ॥ २३ ॥ तव आदि-अन्त-शृन्य, अशेष जगत्प्रति-पालक, श्रीनारायणने देवताओंसे प्रसन्त होकर कहा—॥२४॥ "आपलोगोंका जो कुल अभीष्ट है वह मैंने जान लिया है । उसके विषयमें यह वात सुनिये—॥ २५ ॥ राजिष शशादका जो पुरज्जय नामक पुत्र है उस श्रित्रयश्रेष्ठके शरीरमें मैं अंशमात्रसे स्वयं अवतीण होकर उन सम्पूर्ण दैत्योंका नाश करूँगा । अतः तुम लोग पुरञ्जयको दैत्योंके वधके लिये तैयार करों" ॥ २६ ॥

यह सुनकर देवताओंने विष्णुमगवान्को प्रणाम किया और पुरञ्जयके पास आकर उससे कहा—॥ २०॥ "हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! हमलोग चाहते हैं कि अपने रात्रुओंके वधमें प्रवृत्त हमलोगोंकी आप सहायता करें। हम अभ्यागत जनोंका आप मानमंग न करें।" यह सुनकर पुरञ्जयने कहा—॥ २८॥ "ये जो त्रैलोक्यनाथ रातकृत आपलोगोंके इन्द्र हैं यदि मैं इनके कन्धेपर चढ़कर आपके रात्रुओंसे युद्ध, कर सक्तूँ तो आपलोगोंका सहायक हो सकता हूँ"॥ २९॥

यह सुनकर समस्त देवंगण और इन्द्रने 'बहुत अच्छा'—ऐसा कहकर उनका कथन खीकार कर छिया ॥ ३० ॥ फिर वृषम-रूपधारी इन्द्रकी पीठपर चढ़कर चराचरगुरु भगवान् अच्युतके तेजसे परिपूर्ण होकर राजा पुरस्त्रयने रोषपूर्वक सभी दैत्योंको मार डाला ॥ ३१ ॥ उस राजाने बैलके ककुद् (कन्धे) पर बैठकर दैत्यसेनाका वध किया था, अतः उसका नाम ककुत्स्थ पड़ा ॥ ३२ ॥ ककुत्स्थके अनेना नामक पुत्र हुआ ॥ ३३ ॥ अनेनाके पृथु, पृथुके विष्टरास्व, असके चीनके चीनके प्राप्त स्वारम्य

तस्य युवनाश्वस्य शावस्तः यः पुरीं शावस्ती निवेशयामास ॥३७॥ शावस्तस्य बृहदश्वः ॥३८॥ तस्यापि क्रवलयाक्वः ॥ ३९ ॥ योऽसाबुदकस्य महर्पेरपकारिणं धुन्धुनामानमसुरं वैष्णवेन तेजसाप्यायितः पुत्रसहस्रैरेकविंशद्भिः परिवृतो जधान धुन्धुमारसंज्ञामवाप ॥ ४० ॥ तस्य च तनयास्समस्तां एव धुन्धुमुखनिः व्वासाग्निना विष्छुष्टा विनेशः ॥ ४१ ॥ दृढाश्चचन्द्राश्च-कपिलाश्वाश्च त्रयः केवलं शेपिताः ॥४२॥

दृढाश्वाद्धर्यथः ॥ ४३॥ तसाच निकुम्भः ॥ ४४ ॥ निकुम्भस्यामिताश्वः ॥ ४५ ॥ ततश्च कृशाधः ॥ ४६॥ तसाच प्रसेनजित् ॥ ४७॥ प्रसेनजितो युवनाश्वोऽभवत् ॥४८॥ तस्य चापुत्र-स्यातिनिर्वेदान्म्यनीनामाश्रममण्डले निवसतो दयाल्रिमर्प्रातिमरपत्योत्पादनायेष्टिः कृता ॥४९॥ तस्यां च मध्यरात्रौ निवृत्तायां मन्त्रपूतजलपूर्णं कलशं वेदिमध्ये निवेश्य ते मुनयः ।।५०।। सुप्तेषु तेषु अतीव तृद्परीतस्स भूपालस्त-माश्रमं विवेश ॥५१॥ सप्तांश्र तानृषीनेवोत्थाप-यामास ॥ ५२ ॥ तच कलशमपरिमेयमाहात्म्य-मन्त्रपूतं पपौ ॥५३॥ प्रबुद्धाश्च ऋषयः पप्रच्छुः केनैतन्मन्त्रपूतं वारि पीतम् ॥५४॥ अत्र हि राज्ञो युवनाश्वस्य पत्नी महावलपराक्रमं पुत्रं जनयिष्यति । इत्याकर्ण्य स राजा अजानता मया पीतमित्याह ॥५५॥ गर्भश्र युवनाश्वस्योदरे अभवत क्रमेण च वबुधे ॥५६॥ प्राप्तसमयश्र दक्षिणं क्रक्षिमवनिपतेर्निभिद्य निश्वकाम ॥५७॥ न चासौ राजा ममार ॥ ५८॥

जातो नामैप कं धास्यतीति ते ग्रुनयः प्रोचुः ॥५९॥ अथागत्य देवराजोऽब्रवीत् मामयं धास्य- क्या पान करके जीवित रहेगा ?"॥ ५९॥ उसी CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

शावस्त नामक पुत्र हुआ जिसने शावस्ती पुरी वसायी थी ॥ ३४–३७॥ शावस्तके बृहदस्व तथा वृहद्द्वके कुवल्यास्वका जन्म हुआ, जिसने वैष्णव-तेजसे पूर्णता लाभ कर अपने इक्कीस सहस्र पुत्रोंके साथ मिळकर महर्षि उदकके अपकारी धुन्धु नामक दैत्यको मारा था; अतः उनका नाम धुन्धुमार हुआ ॥ ३८-४० ॥ उनके सभी पुत्र धुन्धुके मुखसे निकले हुए नि:स्वासाग्निसे जलकर मर गये ॥ ४१ ॥ उनमेंसे केवल दढाइव, चन्द्रास्व और कपिलास्व-ये तीन ही वचे थे॥ ४२॥

दृद्धास्त्रसे हर्यस्त्र, हर्यस्त्रसे निकुम्भ, निकुम्भसे अमितास्वसे कुशास्त्रसे अमितास्व, कृशास्त्र, प्रसेनजित् और प्रसेनजित्से युवनास्वका जन्म हुआ ॥ ४३-४८॥ युवनास्य निःसन्तान होनेके कारण खिन्न चित्तसे मुनीस्वरोंके आश्रमोंमें रहा करता था; उसके दुःखसे द्र्याभूत होकर दयालु मुनि-जनोंने उसके पुत्र उत्पन्न होनेके लिये यज्ञानुष्टान किया ॥ ४९ ॥ आधोरातके समय उस यज्ञके समाप्त होने-पर मुनिजन मन्त्रपृत जलका कलश वेदीमें रखकर सो गये ॥ ५० ॥ उनके सो जानेपर अत्यन्त पिपासा-कुछ होकर राजाने उस स्थानमें प्रवेश किया। और सोये होनेके कारण उन ऋषियोंको उन्होंने नहीं जगाया ॥ ५१-५२ ॥ तथा उस अपरिमित माहात्म्य-शाली कलशके मन्त्रपूत जलको पी लिया ॥ ५३॥ जागनेपर ऋषियोंने पृछा, 'इस मन्त्रपृत जलको किसने पिया है । । ५४ ॥ इसका पान करनेपर ही युवनास्वकी पत्नी महाबलविक्रमशील पुत्र उत्पन करेगी।' यह सुनकर राजाने कहा--"मैंने ही त्रिना जाने यह जल पी लिया है" ॥ ५५ ॥ अतः युवनास्वके उदरमें गर्भ स्थापित हो गया और ऋमशः बढ़ने छगा ॥ ५६ ॥ यथासमय बालक राजाकी दायीं फाइकर निकल आया ॥ ५७॥ किन्तु इससे राजाकी मृत्यु नहीं हुई ॥ ५८ ॥

उसके जन्म छेनेपर मुनियोंने कहा-"यह बालक

तीति ॥६०॥ ततो मान्धातृनामा सोऽभवत् । वक्त्रे चास्य प्रदेशिनी देवेन्द्रेण न्यस्ता तां पपौ ॥६१॥ तां चामृतस्नाविणीमास्नाद्याह्नैव स व्यवर्द्धत ॥६२॥ ततस्तु मान्धाता चऋवतीं सप्तद्वीपां महीं बुभुजे ॥६३॥ तत्रायं श्लोकः ॥६४॥

यावत्सूर्य उदेत्यस्तं यावच प्रतितिष्ठति । सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥६५॥

मान्धाता शतविन्दोर्दुहितरं विन्दुमतीग्रुपयेमे ।।६६॥ पुरुकुत्समम्बरीपं ग्रुचुकुन्दं च तस्यां पुत्रत्रयग्रुत्पाद्यामास ॥ ६७॥ पश्चाशद्दुहितरस्त-स्यामेव तस्य नृपतेर्वभृद्यः ॥६८॥

तसिनन्तरे वद्युचश्र सौभरिनीम महर्पिरन्त-र्जले द्वादशाब्दं कालमुवास ।।६९।। तत्र चान्त-र्जले सम्मदो नामातिबहुप्रजोऽतिमात्रप्रमाणो मीनाधिपतिरासीत् ॥७०॥ तस्य च पुत्रपात्र-दौहित्राः पृष्ठतोऽग्रतः पार्श्वयोः पक्षपुच्छशिरसां चोपरि अमन्तस्तेनैव सदाहर्निशमतिनिर्दृता रेमिरे ॥७१॥ स चापत्यस्पर्शोपचीयमानप्रहर्ष-प्रकर्षी बहुप्रकारं तस्य ऋषेः पश्यतस्तैरात्मज-पुत्रपात्रदौहित्रादिभिः सहाजुदिनं सुतरां रेमे ॥७२॥ अथान्तर्जलावस्थितस्सौभरिरेकाग्रतस्स-माधिमपहायानुदिनं तस्य मत्स्यस्थात्मजपुत्रपौत्र-दौहित्रादिभिस्सहातिरमणीयतामवेक्ष्याचिन्तयत् ॥ ७३ ॥ अहो धन्योऽयमीदशमनभिमतं योन्य-न्तरमवाप्यैभिरात्मजपुत्रपौत्रदौहित्रादिभिस्सह रममाणोऽतीवास्माकं स्पृहाम्रत्पादयति ॥ ७४ ॥ वयमप्येवं पुत्रादिभिस्सह व्यक्ष स्रेसिक के बारा रिसी मिहि

समय देवराज इन्द्रने आकर कहा—"यह मेरे आश्रय जीवित रहेगा" ॥ ६० ॥ अतः उसका नाम मान्धाता हुआ । देवेन्द्रने उसके मुखमें अपनी तर्जनी (अंगूठे-के पासकी) अँगुळी दे दी और वह उसे पीने लगा । उस अमृतमयी अँगुळीका आखादन करनेसे वह एक ही दिनमें बढ़ गया ॥ ६१-६२ ॥ तमीसे चक्रवर्ती मान्धाता सप्तद्वीपा पृथिवीका राज्य भोगने लगा ॥६३॥ इसके विषयमें यह स्ठोक कहा जाता है ॥ ६४॥

'जहाँसे सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है वह सभी क्षेत्र युवनाश्वके पुत्र मान्धाताका है' ॥ ६५ ॥

मान्धाताने शतिबन्दुकी पुत्री विन्दुमतीसे विवाह किया और उससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये तथा उसी (बिन्दुमती) से उनके पचास कन्याएँ हुईं ॥ ६६—६८॥

उसी समय बह्वृच सौमरि नामक महर्षिने बारह वर्षतक जलमें निवास किया ॥ ६९॥ उस जलमें सम्मद नामक एक बहुत-सी सन्तानोंवाला और अति दीर्घ-काय मत्स्यराज था॥७०॥ उसके पुत्र, पोत्र और दौहित्र आदि उसके आगे-पीछे तथा इधर-उधर पक्ष, पुच्छ और शिरके ऊपर घूमते हुए अति आनन्दित होकर रात-दिन उसीके साथ क्रीडा करते रहते थे ॥ ७१ ॥ तथा वह भी अपनी सन्तानके सुकोमछ स्पर्शेसे अत्यन्त हर्षयुक्त होकर उन मुनिवरके देखते-देखते अपने पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ अहर्निश कोडा करता रहता था ॥ ७२ ॥ इस प्रकार जलमें स्थित सौमरि ऋषिने एकाग्रतारूप समाधिको छोड़कर रात-दिन उस मत्स्यराजकी अपने पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ अति रमणीय क्रीडाओंको देखकर विचार किया ॥ ७३॥ 'अहो ! यह धन्य है, जो ऐसी अनिष्ट योनिमें उत्पन्न होकर भी अपने इन पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ निरन्तर रमण करता हुआ हमारे इदयमें डाह उत्पन्न करता है ॥ ७४ ॥ हम भी इसी प्रकार अपने पुत्रादिक साथ अति छिलत कीडाएँ करेंगे।

इत्येवमभिकाङ्कन् सं तस्मादन्तर्जलानिष्कम्य सन्तानाय निवेष्ट्रकामः कन्यार्थं मान्धातारं राजानमगच्छत् ॥७५॥

आगमनश्रवणसमनन्तरं चोत्थाय तेन राजा सम्यगर्घादिना सम्पूजितः कृतासनपरिग्रहः सौभरिरुवाच राजानम् ॥७६॥ सौभरिरुवाच

निवेष्टकामोऽस्मि नरेन्द्र कन्यां प्रयच्छ मे मा प्रणयं विभाङ्कीः। न हार्थिनः कार्यवशादुपेताः ककुत्स्थवंशे विम्रुखाः प्रयान्ति ॥७७॥ अन्येऽपि सन्त्येव नृपाः पृथिव्यां मान्धातरेषां तनयाः प्रस्ताः। कि त्वर्थिनामर्थितदानदीक्षा-कृतव्रतं श्लाध्यमिदं कुलं ते ॥७८॥ ज्ञतार्धसंख्यास्तव सन्ति कन्या-स्तासां ममैकां नृपते प्रयच्छ। यत्प्रार्थनाभङ्गभयाद्वि भेमि राजवरातिदुःखात् ॥७९॥ तसादहं

श्रीपराशर उवाच

इति ऋषिवचनमाकण्ये स राजा जराजर्जरित-देहमृषिमालोक्य प्रत्याख्यानकातरस्तसाच शाप-भीतो बिम्यत्किञ्चिद्घोग्रुखिश्चरं दध्यौ च ॥८०॥ सौभारिखाच

नरेन्द्र कसात्सम्रपेषि चिन्ता-मसद्यमुक्तं न मयात्र कित्रित्। यावश्यदेया तनया तयैव कृतार्थता नो यदि किं न लब्धा ॥८१॥

श्रीपराग्नर उवाच चासौ राजा ॥८२॥_{CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri}

ऐसी अभिलाषा करते हुए वे उस जलके भीतरसे निकल आये और सन्तानार्थ गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी कामनासे कन्या प्रहण करनेके लिये राजा मान्धाताके पास आये ॥ ७५॥

मुनिवरका आगमन सुन राजाने उठकर अर्घ-दानादिसे उनका भली प्रकार पूजन किया। तदनन्तर सौभरि मुनिने आसन प्रहण करके राजासे कहा-॥७६॥

सौभरिजी बोले-हे राजन् ! मैं कन्या-परिग्रह-का अभिलाषी हूँ, अतः तुम मुझे एक कन्या दो; मेरा प्रणय भङ्ग मत करो । ककुत्स्थवंशमें कार्यवश आया दुआ कोई भी प्रार्थी पुरुष कभी खाछी हाथ नहीं छौटता ॥७७॥ हे मान्धाता ! पृथिवीतल्रमें और भी अनेक राजालोग हैं और उनके भी कन्याएँ उत्पन्न हुई हैं; किन्तु याचकोंको माँगी हुई वस्तु दान देनेके नियममें दृढप्रतिज्ञ तो यह तुम्हारा प्रशंसनीय कुल ही है ॥७८॥ हेराजन् ! तुम्हारे पचास कन्याएँ हैं. उनमेंसे तम मुझे केवल एक ही दे दो। हे नपश्रेष्ट ! मैं इस समय प्रार्थनाभङ्गकी आशङ्कासे उत्पन्न अतिशय दुःखसे भयमीत हो रहा हूँ ॥७९॥

श्रीपराशरजी बोले-ऋषिके ऐसे वचन सुनकर राजा उनके जराजीर्ण देहको देखकर शापके भयसे अस्वीकार करनेमें कातर हो उनसे डरते हुए कुछ नीचेको मुख करके मन-ही-मन चिन्ता करने छगे॥ ८०॥

सीमरिजी बोले-हे नरेन्द्र ! तुम चिन्तित क्यों होते हो ? मैंने इसमें कोई असहा बात तो कही नहीं है; जो कत्या एक दिन तुम्हें अवस्य देनी ही है उससे ही यदि हम कृतार्थ हो सकें तो तुम क्या नहीं प्राप्त कर सकते हो ? ॥ ८१ ॥

श्रीपराशरजी बोले तब भगवान् सौभरिके शापसे अथ तस्य भगवतक्कापभीतस्सप्रश्रयस्तमुवा- भयमीत हो राजा मान्धाताने नम्रतापूर्वक उनसे

राजोवाच

भगवन् अस्मत्कुलस्थितिरियं य एव कन्याभि-रुचितोऽभिजनवान्वरस्तस्मै कन्या प्रदीयते भगवद्याच्या चास्मन्मनोरथानामप्यतिगोचर-वर्तिनी कथमप्येषा सञ्जाता तदेवम्रुपस्थिते न विद्यः किं कुर्म इत्येतन्मया चिन्त्यत इत्यभिहिते च तेन भूभुजा मुनिरचिन्तयत्॥८३॥ अयमन्योऽ-स्मत्प्रत्याख्यानोपायो वृद्धोऽयमनभिमतः स्त्रीणां किग्रुत कन्यकानामित्यग्रुना सिश्चन्त्यैतद्भिहि-करिष्यामीति सञ्चिन्त्य तमेवमस्त तथा मान्धातारमुवाच ॥८४॥ यद्येवं तदादिश्यताम-स्मार्क प्रवेशाय कन्यान्तः पुरवर्षवरो यदि कन्यैव काचिन्मामभिलपति तदाहं दारसङ्गहं करिष्यामि अन्यथा चेत्तदलमस्माकमेतेनातीत-कालारम्भणेनेत्युक्त्वा विरराम ॥८५॥

ततश्च मान्धात्रा मुनिशापशङ्कितेन कन्यान्तः-पुरवर्षवरस्समाज्ञप्तः ।।८६।। तेन सह कन्यान्तःपुरं प्रविश्वनेव मगवानिखलिसद्धगन्धर्वेभ्योऽतिश्येन कमनीयं रूपमकरोत् ॥८७॥ प्रवेश्य च तमृषि-मन्तः पुरे वर्षवरस्ताः कन्याः प्राह् ॥ ८८॥ भवतीनां जनयिता महाराजस्समाज्ञापयति।।८९।। अयमस्मान् त्रह्मिः कन्यार्थं समभ्यागतः॥९०॥ मया चास प्रतिज्ञातं यद्यसत्कन्या या काचिद्ध-गवन्तं वरयति तत्कन्यायाञ्चनदे नाहं परिपन्थानं करिष्यामीत्याकर्ण्य सर्वा एव ताः करेणव इवेभयुथपति सानुरागाः सप्रमदाः

राजा बोले-भगवन् ! हमारे कुलकी यह रीति है कि जिस सन्कुलोत्पन्न वरको कन्या पसन्द करती है वह उसीको दी जाती है। आपकी प्रार्थना तो हमारे मनोरथोंसे भी परे है। न जाने, किस प्रकार यह उत्पन्न हुई है ? ऐसी अवस्थामें में नहीं जानता कि क्या करूँ ? वस, मुझे यही चिन्ता है। महाराज मान्धाताके ऐसा कहनेपर मुनिवर सौभरिने विचार किया-॥८३॥ 'मुझको टाल देनेका यह एक और ही उपाय है। 'यह बूढ़ा है, प्रौडा स्त्रियाँ भी इसे पसन्द नहीं कर सकतीं, फिर कन्याओंकी तो बात ही क्या है ?' ऐसा सोचकर ही राजाने यह वात कही है। अच्छा, ऐसा ही सही, मैं भी ऐसा ही उपाय करूँगा।' यह सब सोचकर उन्होंने मान्धातासे कहा--।। ८४ ।। "यदि ऐसी वात है तो कन्याओंके अन्तःपुर-रक्षक नपुंसकको वहाँ मेरा प्रवेश करानेके छिये आज्ञा दो । यदि कोई कन्या ही मेरी इच्छा करेगी तो ही मैं स्त्री-प्रहण करूँगा नहीं तो इस ढळती अवस्थामें मुझे इस व्यर्थ उद्योगका कोई प्रयोजन नहीं है।" ऐसा कहकर वे मौन हो गये॥८५॥

तव मुनिके शापकी आशङ्कासे मान्धाताने कन्याओंके अन्तःपुर-रक्षकको आज्ञा दे दी ॥८६॥ उसके साथ अन्तःपुरमें प्रवेश करते हुए भगवान् सौभरिने अपना रूप सकल सिद्ध और गन्धर्वगणसे भी अतिराय मनोहर बना लिया ॥ ८७॥ उन ऋषिवरको अन्तःपुरमें ले जाकर अन्तःपुर-रक्षकने उन कन्याओंसे कहा-॥८८॥ "तुम्हारे पिता महाराज मान्धाताकी आज्ञा है कि ये ब्रह्मर्षि हमारे पास एक कन्याके लिये पधारे हैं और मैंने इनसे प्रतिज्ञा की है कि मेरी जो कोई कन्या श्रीमान्को वरण करेगी उसकी खच्छन्दतामें मैं किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाल्ट्रेंगा ।" यह सुनकर उन सभी कन्याओंने यूयपति गजराजका वरण करनेवाली हिथिनियोंके समान अनुराग और आनन्दपूर्वक 'अकेली मैं ही-अकेटी मैं ही वरण करती हूँ' ऐसा कहते हुए तमृषिमहमहमिकया वर्याम्बर्भुबुद्धंबुश्च १०९१०॥ १० उन्हें चरने कार विषय विषय करें पर कहने लगी।।८९-९१॥ अलं भगिन्योऽहमिमं वृणोमि
वृणोम्यहं नैप तवानुरूपः।
ममैप भर्ता विधिनैव सृष्टस्सृष्टाहमस्योपश्चमं प्रयाहि॥९२॥
वृतो मयायं प्रथमं मयायं
गृहं विश्वनेव विहन्यसे किम्।
मया मयेति श्वितिपात्मजानां
तद्र्थमत्यर्थकलिर्वभृव॥९३॥

यदा म्रुनिस्ताभिरतीवहार्दाद्-दृतस्स कन्याभिरनिन्द्यकीर्तिः । तदा स कन्याधिकृतो नृपाय यथावदाचष्ट विनम्रमूर्तिः ॥९४॥ श्रीपराशर जवाच

तद्वगमात्किङ्किमेतत्कथमेतित्कं किं करोमि
किं मयाभिहितमित्याकुलमितरिनिच्छन्निप कथमिप राजानुमेने ॥९५॥ कृतानुरूपिववाहश्र
महिपस्तकला एव ताः कन्यास्स्वमाश्रममनयत्॥ ९६॥

तत्र चाशेषशिल्पकल्पप्रणेतारं धातारिमवान्यं विश्वकर्माणमाह्य सकलकन्यानामेकैकस्याः प्रोत्फुल्लपङ्कजाः कूजत्कलहंसकारण्डवादिविहङ्ग-माभिरामजलाशयास्सोपधानाः सावकाशास्साधु-शय्यापरिच्छदाः प्रासादाः क्रियन्तामित्यादि-देश ॥ ९७॥

तच तथैवानुष्ठितमशेषशिल्पविशेषाचार्यस्त्वष्टा दर्शितवान् ॥९८॥ ततः परमर्पिणा सौभरिणाञ्चस-स्तेषु गृहेष्वनिवार्यानन्दनामा महानिधिरासाश्चके ॥९९॥ ततोऽनवरतेन भक्ष्यभोज्यलेह्याद्यपमोगै- 'अरी वहिनो ! व्यर्थ चेष्टा क्यों करती हो ! में इनका वरण करती हूँ, ये तुम्हारे अनुरूप हैं भी नहीं । विधाताने ही इन्हें मेरा भर्ता और मुझे इनकी भार्या वनाया है । अतः तुम शान्त हो जाओ ॥९२॥ अन्तःपुरमें आते ही सबसे पहले मैंने ही इन्हें वरण किया था, तुम क्यों मरी जाती हो !' इस प्रकार 'मैंने वरण किया है — पहले मैंने वरण किया है' ऐसा कह-कहकर उन राजकन्याओं में उनके लिये वड़ा कलह मच गया॥९३॥

जत्र उन समस्त कन्याओंने अतिशय अनुरागवश उन अनिन्द्यकार्ति मुनिवरको वरण कर छिया तो कन्या-रक्षकने नम्नतापूर्वक राजासे सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह सुनाया ॥९४॥

श्रीपराशरजी बोळे—यह जानकर राजाने 'यह क्या कहता है ?' 'यह कैसे हुआ ?' 'मैं क्या करूँ ?' 'मैंने क्यों उन्हें [अन्दर जानेके छिये] कहा था ?' इस प्रकार सोचते हुए अत्यन्त व्याकुळ चित्तसे इच्छा न होते हुए भी जैसे-तैसे अपने वचनका पाळन किया और अपने अनुरूप विवाह-संस्कारके समाप्त होनेपर महर्षि सौमिर उन समस्त कन्याओंको अपने आश्रमपर छे गये ॥९५-९६॥

वहाँ आकर उन्होंने दूसरे विधाताके समान अशेष-शिल्प-कल्प-प्रणेता विश्वकर्माको बुळाकर कहा कि इन समस्त कन्याओंमेंसे प्रत्येकके छिये पृथक्-पृथक् महळ बनाओ, जिनमें खिळे हुए कमळ और कूजते हुए सुन्दर हंस तथा कारण्डव आदि जळ-पिक्षयोंसे स्शोमित जळाशय हों, सुन्दर उपधान (मसनद), शथ्या और परिच्छद (ओढ़नेके वस्र) हों तथा पर्याप्त खुळा हुआ स्थान हो ॥९७॥

तव सम्पूर्ण शिल्प-विद्याने विशेष आचार्य विश्वकर्मा-ने भी उनकी आज्ञानुसार सब कुछ तैयार करके उन्हें दिखळाया ॥९८॥ तदनन्तर महर्षि सौभरिकी आज्ञासे उन महलोंमें अनिवार्यानन्द नामकी महानिधि निवास करने लगी ॥९९॥ तब तो उन सम्पूर्ण महलोंमें नाना प्रकारके मक्ष्य, भोज्य और लेग्र आदि रागतानुगतभृत्यादीनहर्निश्चमशेषगृहेषु ताः श्वितीशदुहितरो भोजयामासुः ॥१००॥

एकदा तु दुहित्रस्नेहाकृष्टहृद्यस्स महीपति-रितदुः खितास्ता उत सुखिता वा इति विचिन्त्य तस्य महर्षेराश्रमसमीपसुपेत्य स्फुरदंशुमालालला-मां स्फिटिकमयप्रासादमालामितरम्योपवनजलाश-यां दुद्शी।१०१॥

प्रविश्य चैकं प्रासादमात्मजां परिष्वज्य कृतासनपरिग्रहः प्रवृद्धस्नेहनयनाम्बुगर्भनयनोऽ-त्रवीत् ॥१०२॥ अप्यत्र वत्से भवत्याः सुखग्रुत किश्चिद्सुखमपि ते महर्पिस्स्नेहवानुत न,स्मर्यतेऽ-स्मद्गृहवास इत्युक्ता तं तनया पितरमाह ॥१०३॥ तातातिरमणीयः प्रासादोऽत्रातिमनोन्नग्रुपवनमेते कलवाक्यविहङ्गमाभिरुताः प्रोत्फुल्लपद्माकर-जलाशयाः मनोऽजुकूलभक्ष्यभोज्याजुलेपनवस्त-भूषणादिभोगो मृद्नि शयनासनानि सर्वसम्पत्स-मेतं मे गाईस्थ्यम् ॥ १०४ ॥ तथापि केन वा जन्मभूमिर्न स्मर्थते ॥१०५॥ त्वत्प्रसादादिदम-शेषमतिशोभनम् ॥१०६॥ किं त्वेकं ममैतद्ःख-कारणं यदसद्गृहान्महर्पिरयम्मद्भत्ती न निष्क्रा-मति ममैव केवलमतिप्रीत्या समीपपरिवर्ती नान्यासामस्मद्भगिनीनाम् ॥१०७॥ एवं च मम सोदर्योऽतिदुः खिता इत्येवमतिदुः खकारणमित्य-क्तस्तया द्वितीयं प्रासाद्यप्रेत्य खतनयां परिष्व-ज्योपविष्टस्तथैव पृष्टवान् ॥१०८॥ तयापि च सर्वमेतत्तत्त्रासादाद्यपुर्भोगुसुर्खं Vrat स्त्रामाज्यातं ...

सामग्रियोंसे वे राजकन्याएँ आये हुए अतिथियों और अपने अनुगत मृत्यवर्गीको तृप्त करने रुगीं ॥१००॥

एक दिन पुत्रियोंके स्नेहसे आकार्षत होकर राजा मान्धाता यह देखनेके छिये कि वे अत्यन्त दुःखी हैं या सुखी ! महर्षि सौमरिके आश्रमके निकट आये, तो उन्होंने वहाँ अति रमणीय उपवन और जलाशयों-से युक्त स्फटिक-शिलाके महलोंकी पंक्ति देखी जो फैलती हुई मयूख-मालाओंसे अत्यन्त मनोहर माल्रम पड़ती थी ॥ १०१॥

तदनन्तर वे एक महलमें जाकर अपनी कन्याका स्नेहपूर्वक आर्छिगन कर आसनपर वैठे और फिर बढते हुए प्रेमके कारण नयनोंमें जल भरकर वोले-॥ १०२ ॥ "बेटी ! तुमलोग यहाँ सुखपूर्वक हो न ! तुम्हें किसी प्रकारका कष्ट तो नहीं है ? महर्षि सौमरि तुमसे स्नेह करते हैं या नहीं ? क्या तुम्हें हमारे घरकी भी याद आती है ?" पिताके ऐसा कहनेपर उस राजपुत्री-ने कहा-॥ १०३॥ "पिताजी! यह महल अति रमणीय है, ये उपवनादि भी अतिशय मनोहर हैं, खिले हुए कमलोंसे युक्त इन जलाशयोंमें जलपक्षिगण सुन्दर बोली बोलते रहते हैं, मक्ष्य, भोज्य आदि खाद्य पदार्थ, उबटन और वस्नाभूषण आदि मोग तथा सुकोमल शय्यासनादि सभी मनके अनुकूल हैं; इस प्रकार हमारा गार्हस्थ्य यद्यपि सर्वसम्पत्तिसम्पन्न है ॥ १०४ ॥ तथापि अपनी जन्मभूमिकी याद भला किसको नहीं आती ? ॥ १०५॥ आपकी कृपासे यद्यपि सब कुछ मंगलमय है ॥ १०६ ॥ तथापि मुझे एक बड़ा दुःख है कि हमारे पति ये महर्षि मेरे घरसे बाहर कभी नहीं जाते । अत्यन्त प्रीतिके कारण ये केवल मेरे ही पास रहते हैं, मेरी अन्य वहिनोंके पास ये जाते ही नहीं हैं ॥ १०७॥ इस कारणसे मेरी बहिनें अति दुःखी होंगी । यही मेरे अति दुःख-का कारण है।" उसके ऐसा कहनेपर राजाने दूसरे महलमें आकर अपनी कन्याका आलिंगन किया और आसनपर बैठनेके अनन्तर उससे भी इसी प्रकार पूछा ॥ १०८ ॥ उसने भी उसी प्रकार महल आदि सस्पूर्ण उपभोगोंके सुख्का वर्णन किया और कहा ममैव केवलमितप्रीत्या पार्क्परिवर्त्तां, नान्या-सामस्मद्भगिनीनामित्येवमादि श्रुत्वा समस्तप्रासा-देखु राजा प्रविवेश तन्यां तन्यां तथैवापृच्छत् ॥१०९॥सर्वाभिश्च ताभिस्तथैवाभिहितः परितोप-विस्मयनिर्भरविवशहृदयो भगवन्तं सौभरिमेका-न्तावस्थितस्रपेत्य कृतपूजोऽत्रवीत् ॥११०॥ दृष्टस्ते भगवन् सुमहानेष सिद्धिप्रभावो नैवंविधमन्यस्य कस्यचिद्साभिविंभूतिभिविंलसितस्रपलक्षितं यदे-तद्भगवतस्तपसः फलमित्यभिपूज्य तसृपिं तत्रैव तेन ऋषिवर्येण सह किञ्चित्कालमभिमतोप-भोगान् बुसुजे स्वपुरं च जगाम ॥१११॥

कालेन गच्छता तस्य तासु राजतनयासु पुत्रशतं सार्धमभवत्।।११२॥ अनुदिनानुरूढस्नेह-प्रसरश्च स तत्रातीव ममताकृष्टहृद्योऽभवत् ॥११३॥ अप्येतेऽसात्पुत्राः कलभापिणः पद्भ्यां गच्छेयुः अप्येते यौवनिनो भवेयुः अपि कृत-दारानेतान् पश्येयमप्येषां पुत्रा भवेयुः अप्येत-त्पुत्रान्पुत्रसमन्वितान्पश्यामीत्यादिमनोरथाननु-दिनं कालसम्पत्तिप्रवृद्धानुपेक्ष्येतिचन्तयामास११४

अहो मे मोहस्यातिविस्तारः ॥११५॥

मनोरथानां न समाप्तिरस्ति

वर्षायुतेनापि तथाब्दलक्षैः ।

पूर्णेषु पूर्णेषु मनोरथाना
ग्रुत्पत्तयस्सन्ति पुनर्नवानाम् ॥११६॥

पद्म्यां गता यौवनिनश्च जाता

दारश्च संयोगमिताः प्रस्ताः ।

दृष्टं पुनर्वाञ्छति मेऽन्तरात्मा ॥११७॥

दृक्ष्यामि तेषामिति चेत्प्रस्तिं

मनोरथो मे भविता ततोऽन्यः।

कि अतिशय प्रीतिके कारण महर्षि केवछ मेरे ही पास रहते हैं और किसी बहिनके पास नहीं जाते । इस प्रकार पूर्ववत् सुनकर राजा एक-एक करके प्रत्येक महल्में गये और प्रत्येक कन्यासे इसी प्रकार पूछा ॥ १०९ ॥ और उन सबने भी बैसा ही उत्तर दिया । अन्तमें आनन्द और विस्मयके भारसे विवशिचत्त होकर उन्होंने एकान्तमें स्थित भगवान् सौभरिकी पूजा करनेके अनन्तर उनसे कहा—॥ ११०॥ "भगवन्! आपकी ही योगसिद्धिका यह महान् प्रभाव देखा है। इस प्रकारके महान् वैभवके साथ और किसीको भी विछास करते हुए हमने नहीं देखा; सो यह सब आपकी तपस्थाका ही फल है।" इस प्रकार उनका अभिवादन कर वे कुछ कालतक उन मुनिवरके साथ ही अभिमत भोग भोगते रहे और अन्तमें अपने नगरको चले आये ॥ १११॥

कालक्रमसे उन राजकन्याओं से सौमरि मुनिके डेढ़ सौ पुत्र हुए ॥११२॥ इस प्रकार दिन-दिन स्नेह-का प्रसार होने से उनका इदय अतिशय ममतामय हो गया ॥११३॥ वे सोचने लगे—'क्या मेरे ये पुत्र मधुर बोली से बोलेंगे ? अपने पाँबों से चलेंगे ? क्या ये युवाबस्थाको प्राप्त होंगे ? उस समय क्या मैं इन्हें सपत्नीक देख सकूँगा ? फिर क्या इनके पुत्र होंगे और मैं इन्हें अपने पुत्र-पौत्रों से युक्त देखूँगा ?' इस प्रकार कालक्रमसे दिनानुदिन बढ़ते हुए इन मनोरथों-की उपेक्षा कर वे सोचने लगे—॥ ११४॥

'अहो! मेरे मोहका कैसा विस्तार है !॥११५॥ इन मनोरथोंकी तो हजारों-छाखों वर्षोंमें भी समाप्ति नहीं हो सकती। उनमेंसे यदि कुछ पूर्ण भी हो जाते हैं तो उनके स्थानपर अन्य नये मनोरयोंकी उत्पत्ति हो जाती है ॥ ११६॥ मेरे पुत्र पैरोंसे चळने छगे, फिर वे युवा हुए, उनका विवाह हुआ तथा उनके सन्तानें हुई—यह सब तो मैं देख चुका; किन्तु अब मेरा चित्त उन पौत्रोंके पुत्र-जन्मको भी देखना चाहता है !॥ ११७॥ यदि उनका जन्म भी मैंने देख छिया तो फिर मेरे चित्तमें दूसरा मनोरथ उठेगा और यदि पूर्णेऽपि तत्राप्यपरस्य जन्म मनोरथस्य ॥११८॥ निवार्यते केन आमृत्युतो नैव मनोरथाना-मन्तोऽस्ति विज्ञातिमदं मयाद्य । मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थसङ्गि ॥११९॥ स मे समाधिर्जलवासिमत्र-मत्स्यस्य सङ्गात्सहसैव नष्टः । परिग्रहस्सङ्गकृतो मयायं परिग्रहोत्था च ममातिलिप्सा ॥१२०॥ दुःखं यदैवैकशरीरजन्म शतार्द्धसंख्याकमिदं प्रस्तम्। परिग्रहेण क्षितिपात्मजानां स्तरनेकैर्बहुलीकृतं तत्।।१२१॥ **सतात्मजैस्तत्तनयैश्र** भूयश्च तेषां च परिग्रहेण । विस्तारमेष्यत्यतिदुः खहेतुः परिग्रहो वै ममताभिधानः ॥१२२॥ चीर्णं तपो यत्तु जलाश्रयेण तस्यद्विरेषा तपसोऽन्तरायः। मत्स्यस्य सङ्गादभवच यो म सुतादिरागो सुषितोऽसि तेन ॥१२३॥ निस्सङ्गता मुक्तिपदं यतीनां सङ्गादशेषाः प्रभवन्ति दोषाः । आरूढयोगो विनिपात्यतेऽघ-स्सङ्गेन योगी किम्रुताल्पबुद्धिः॥१२४॥ अहं चरिष्यामि तदात्मनोऽर्थे परिग्रहग्राहगृहीतबुद्धिः यदा हि भूयः परिहीनदोषो जनस्य दुः सैर्भविता न दुः सी ॥१२५॥ सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-मणोरणीयांसमतिप्रमाणम् । सितासितं चेश्वरमीश्वराणा-

वह भी पूरा हो गया तो अन्य मनोरथकी उत्पत्तिको ही कौन रोक सकता है ? ॥ ११८ ॥ मैंने अब मछी प्रकार समझ लिया है कि मृत्युपर्यन्त मनोर्थोंका अन्त तो होना नहीं है और जिस चित्तमें मनोरथोंकी आसक्ति होती है वह कभी परमार्थमें छग नहीं सकता ॥११९॥ अहो ! मेरी वह समाघि जळवासके साथी मत्स्य-के संगसे अकस्मात् नष्ट हो गयी और उस संगके कारण ही मैंने स्त्री और धन आदिका परिग्रह किया तथा परिप्रहके कारण ही अव मेरी बढ़ गयी है ॥ १२० ॥ एक शरीरका ग्रहण करना ही महान् दु:ख है और मैंने तो इन राजकन्याओंका परिश्रह करके उसे पचास गुना कर दिया है। तथा अनेक पुत्रोंके कारण अब वह बहुत ही बढ़ गया है ॥ १२१ ॥ अब आगे भी पुत्रोंके पुत्र तथा उनके पुत्रोंसे और उनका पुनः-पुनः विवाहसम्बन्ध करनेसे वह और भी बढ़ेगा। यह ममतारूप विवाहसम्बन्ध अवस्य बड़े ही दुःखका कारण है ॥ १२२ ॥ जलाशयमें रहकर मैंने जो तपस्या की थी उसकी फलखरूपा यह सम्पत्ति तपस्याकी बाधक है । मत्स्यके संगसे मेरे चित्तमें जो पुत्र आदिका राग उत्पन्न हुआ था उसीने मुझे ठग लिया ॥ १२३ ॥ निःसंगता ही यतियोंको मुक्ति देनेवाली है, सम्पूर्ण दोष संगसे ही उत्पन्न होते हैं। संगके कारण तो योगारूढ यति भी पतित हो जाते हैं, फिर मन्दमित मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥ १२४ ॥ परिग्रहरूपी ग्राहने मेरी बुद्धिको पकड़ा हुआ है। इस समय मैं ऐसा उपाय करूँगा जिससे दोषोंसे मुक्त होकर फिर अपने कुटुम्बियोंके दु:खसे दु:खी न होऊँ ॥ १२५॥ अब मैं सबके विधाता, अचिन्त्यरूप, अणुसे भी अणु और सबसे महान् सत्त्व एवं तमः खंरूप तथा ईश्वरोंके भी ईश्वर माराघिष्ये तप्रसेत्रya विश्वपुर्शि है।bn, सप्रवान्त्वाविश्वाक्षी तप्रस्तु कार्ये आराधना करूँगा तस्मिन्नशेषौजिस सर्वरूपि-ण्यव्यक्तविस्पष्टतनावनन्ते । चित्तमपेतदोषं समाचलं सदास्तु विष्णावभवाय भूयः ॥१२७॥ समस्तभृतादमलादनन्ता-त्सर्वेश्वरादन्यदनादिमध्यात् । यस्मान किश्चित्तमहं गुरूणां परं गुरुं संश्रयमेमि विष्णुम् ॥१२८॥ श्रीपराशर उवाच

इत्यात्मानमात्मनैवाभिधायासौ सौभरिरपहाय पुत्रगृहासनपरिच्छदादिकमशेपमर्थजातं भार्यासमन्वितो वनं प्रविवेश ॥१२९॥ तत्राप्य-नदिनं वैखानसनिष्पाद्यमशेपित्रयाकलापं निष्पाद्य क्षपितसकलपापः परिपक्कमनोष्ट्रत्तिरात्मन्यग्रीन्स-मारोप्य भिक्षुरभवत् ॥१३०॥ भगवत्यासज्याखिलं कर्मकलापं हित्वानन्तमजमनादिनिधनमविकार-मरणादिधर्ममवाप परमनन्तं परवतामच्युतं पदम् ॥ १३१ ॥

इत्येतन्मान्धातृदुहित्सम्बन्धादाख्यातम् १३२ यश्रैतत्सौभरिचरितमन्त्रस्मरति पठति पाठयति भूणोति आवयति **धरत्यवधारयति** लिखति लेखयति शिक्ष्यत्यध्यापयत्युपदिशति वा तस षद् जन्मानि दुस्सन्ततिरसद्धर्मी वाष्ट्रानसयोरस-न्मार्गाचरणमशेषहेतुषु वा ममत्वं न भवति ॥१३३॥ नहीं होती ॥ १३२-१३३ ॥

॥ १२६ ॥ उन सम्पूर्णतेजोमय, सर्वस्ररूप, अन्यक्त, अनन्त श्रीविष्णुभगवान्में मेरा विस्पष्टशरीर. दोपरहित चित्त सदा निश्चल रहे जिससे मुझे जन्म न हेना पडे ॥ १२७ ॥ सर्वरूप, अमल, अनन्त, सर्वेश्वर और आदि-मध्य-शून्यसे पृथक् और कुछ भी नहीं है उस गुरुजनोंके भी परम गुरु भगवान् विष्णुक्ती मैं शरण छेता हूँ' ॥१२८॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार मन-ही-मन सोचकर सौभरि मुनि पुत्र, गृह, आसन, परिच्छद आदि सम्पूर्ण पदार्थोंको छोड़कर अपनी समस्त स्त्रियोंके सहित वनमें चले गये ॥ १२९ ॥ वहाँ, वानप्रस्थोंके योग्य समस्त क्रियाकछापका अनुष्ठान करते हुए सम्पूर्ण पार्पोका क्षय हो जानेपर तथा मनोवृत्तिके राग-द्वेपहीन हो जानेपर, आहवनीयादि अफ्रियोंको अपनेमें स्थापित कर संन्यासी हो गये॥ १३०॥ फिर भगवान्में आसक्त हो सम्पूर्ण कर्मकलापका त्याग कर परमात्मपरायण पुरुषोंके अच्युतपद (मोक्ष) को प्राप्त किया, जो अजन्मा, अनादि, अविनाशी, विकार और मरणादि धर्मींसे रहित, इन्द्रियादिसे अतीत तथा अनन्त है ॥ १३१ ॥

इस प्रकार मान्धाताकी कन्याओंके सम्बन्धसे मैंने इस चरित्रका वर्णन किया है। जो कोई इस सौभरि-चरित्रका स्मरण करता है, अथवा पढ़ता-पढ़ाता, सुनता-सुनाता, धारण करता-कराता, लिखता-लिखवाता तथा सीखता-सिखाता अथवा उपदेश करता है उसके छः जन्मोंतक दुःसन्तति, असद्धर्म और वाणी अयवा मनकी कुमार्गमें प्रवृत्ति तथा किसी भी पदार्थमें ममता

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्यें ऽशे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Conection, New Delhi. Digitized by eGangotri

तीसरा अध्याय

मान्धाताकी सन्तति, त्रिशङ्कका स्वर्गारोहण तथा सगरकी उत्पत्ति और विजय।

अतश्र मान्धातुः पुत्रसन्ततिरभिधीयते ॥ १॥ अम्बरीषस्य मान्धातृतनयस्य युवनाश्वः पुत्रोऽभूत् ॥२॥ तसाद्धारीतः यतोऽङ्गिरसो हारीताः॥३॥ रसातले मौनेया नाम गन्धर्वा वभूबुष्यद्कोटिसं नागकुलान्यपहृतप्रधान-ख्यातास्तैरशेषाणि रत्नाधिपत्यान्यक्रियन्त ॥ ४ ॥ तैश्र गन्धर्ववीर्या-वधृतैहरगेश्वरैः स्तूयमानो भगवानशेषदेवेशः स्तवच्छ्रवणोन्मीलितोचिद्रपुण्डरीकनयनो जल-श्यनो निद्रावसानात् प्रबुद्धः प्रणिपत्याभिहितः। भगवनसाकमेतेभ्यो गन्धर्वेभ्यो भयग्रत्पन कथमपशममेष्यतीति ॥५॥ आह च भगवान-नादिनिधनपुरुषोत्तमो योऽसौ यौवनाश्वस्य पुत्रस्तमहमनुप्रविश्य मान्धातः पुरुकुत्सनामा तानशेषान् दुष्टगन्धर्वानुपश्चमं नयिष्यामीति।।६॥ तदाकर्ण्य भगवते जलशायिने पुनर्नागलोकमागताः पत्रगाधिपतयो नर्मदां च पुरुकत्सानयनाय चोदयामासुः ॥ ७॥ सा चैनं रसातलं नीतवती ॥ ८॥

रसातलगतश्रासौ भगवत्तेजसाप्यायितात्म-वीर्यस्सकलगन्धर्वाभिजघान ॥ ९॥ पुनश्र स्वपुरमाजगाम ॥ १०॥ सकलपन्नगाधिपतयश्र नर्मदायै वरं ददुः। यस्तेऽज्ञसरणसमवेतं नामग्रहणं करिष्यति न तस्य सर्पविषमयं भविष्यतीति॥११॥ अत्र च श्लोकः॥ १२॥ नर्मदायै नमः प्रातर्नर्भदायै नमो निश्चि।

अब हम मान्धाताके पुत्रोंकी सन्तानका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ मान्धाताके पुत्र अम्बरीयके युवनास्व नामक पुत्र हुआ ॥ २ ॥ उससे हारीत हुआ जिससे अंगिरा-गोत्रीय हारीतगण हुए ॥ ३॥ पूर्वकालमें रसातळमें मौनेय नामक छः करोड़ गन्धर्व रहते थे। उन्होंने समस्त नागकुळोंके प्रधान-प्रधान रह और अधिकार छीन लिये थे ॥ ४ ॥ गन्धर्वोंके पराक्रमसे अपमानित उन नागेश्वरोंद्वारा स्तुति किये जानेपर उसके श्रवण करनेसे जिनको विकसित कमळसदश आँखें खुल गयीं हैं निद्राके अन्तमें जगे हुए उन जलशायी भगवान सर्वदेवेश्वरको प्रणाम कर उनसे नागगणने कहा, ''भगवन् ! इन गन्धर्वोंसे उत्पन्न हुआ हमारा भय किस प्रकार शान्त होगा ?" ॥ ५॥ तब आदि-अन्तरहित भगवान् पुरुषोत्तमने कहा-'युवनास्व-के पुत्र मान्धाताका जो यह पुरुकुत्स नामक पुत्र है उसमें प्रविष्ट होकर मैं उन सम्पूर्ण दुष्ट गन्धवींका नाश कर दुँगा' ॥ ६ ॥ यह सुनकर भगवान् जलशायी-को प्रणाम कर समस्त नागाधिपतिगण नागछोकमें छौट आये और पुरुकुत्सको छानेके छिये [अपनी बहिन एवम् पुरुकुत्सकी भार्यी] नर्मदाको प्रेरित किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर नर्मदा पुरुक्तसको रसातलमें ले आयी ॥ ८॥

रसातलमें पहुँचनेपर पुरुकुत्सने भगवान्के तेजसे अपने शरीरका बल बढ़ जानेसे सम्पूर्ण गन्धवोंको मार डाला और फिर अपने नगरमें लौट आया ॥९-१०॥ उस समय समस्त नागराजोंने नर्मदाको यह वर दिया कि जो कोई तेरा स्मरण करते हुए तेरा नाम लेगा उसको सर्प-विषसे कोई भय न होगा ॥११॥ इस विषयमें यह स्लोक भी है—॥ १२॥

नर्मदाय नमः प्रातर्नर्मदाय नमो निशि । 'नर्मदाको प्रातःकाछ नमस्कार है और रात्रिकाछमें भी नर्मदाको नमस्कार है । हे नर्मदे ! नमोऽस्तु नर्मदे तुम्यं त्राहि मां विषस्पितः ॥१३॥ तुमको बारम्बार नमस्कार है, तुम मेरी विष और सर्पसे रक्षा करों ॥ १३॥ रक्षा करों ॥ १३॥

इत्युचार्याहर्निश्चमन्धकारप्रवेशे वा सपैंनी दश्यते न चापि कृतानुसरणभुजो विषमपि भुक्तमुपघाताय भवति ॥१४॥ पुरुकुत्साय सन्ततिविच्छेदो न भविष्यतीत्युरगपतयो वरं ददुः॥१५॥

पुरुकुत्सो नर्भदायां त्रसहस्युमजीजनत् ।। १६ ।। त्रसहस्युतस्सम्भूतोऽनरण्यः यं रावणो दिग्विजये ज्ञधान ।। १७ ।। अनरण्यस्य पृपदश्यः पृपदश्यस्य हर्यश्यः पुत्रोऽभवत् ।। १८ ।। तस्य च हस्तः पुत्रोऽभवत् ॥१९॥ ततश्च सुमनास्तस्यापि त्रिधन्वा त्रिधन्वनस्रय्यारुणिः ॥२०॥ त्रय्यारुणे-स्सत्यव्रतः योऽसौ त्रिश्रङ्कसंज्ञामवाप ॥ २१ ॥

स चाण्डालतामुपगतश्च ।। २२ ।। द्वादशवार्षि-क्यामनावृष्ट्यां विश्वामित्रकलत्रापत्यपोपणार्थं चाण्डालप्रतिग्रहपरिहरणाय च जाह्ववीतीरन्यग्रोधे मृगमांसमनुदिनं ववन्ध ।।२३।। स तु परितुष्टेन विश्वामित्रेण सश्ररीरस्त्वर्गमारोपितः ।। २४ ।।

तिशक्को हिरिश्चन्द्रस्तसाच रोहिताश्वस्ततश्च हिरतो हिरतस्य चञ्चश्चश्चोविजयवसुदेवौ रुरुको विजयाद्रुरुकस्य वृकः ॥ २५ ॥ ततो वृकस्य बाहुर्योऽसौ हैहयतालजङ्कादिभिः पराजितोऽ-न्तर्वत्न्या महिष्या सह वनं प्रविवेश ॥ २६ ॥ तस्याश्च सपत्न्या गर्भस्तम्भनाय गरो दत्तः ॥ २७ ॥ तेनास्या गर्भस्तम्भनाय गरो दत्तः ॥ २८ ॥ स च बाहुर्वद्धभावादौर्वाश्रमसमीपे ममार ॥ २९ ॥ सा तस्य भार्या चितां कृत्वा तमारोप्यानुमरणकृतनिश्चयाऽभूत् ॥ ३० ॥ अथै-तामतीतानागतवर्त्तमानकालत्रयवेदी भगवा-नौर्वस्स्वाश्रमाक्निर्गत्यात्रवीत् ॥ ३१ ॥

इसका उच्चारण करते हुए दिन अथवा रात्रिमें किसी समय भी अन्धकारमें जानेसे सर्प नहीं काटता तथा इसका स्मरण करके भोजन करनेवालेका खाया हुआ विष भी घातक नहीं होता॥१४॥ पुरुकुत्सको नागपतियोंने यह वर दिया कि तुम्हारी सन्तानका कभी अन्त न होगा॥१५॥

पुरुकुत्सने नर्मदासे त्रसहस्य नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥१६॥ त्रसहस्युसे अनरण्य हुआ, जिसे दिग्विजय- के समय रावणने मारा था ॥१०॥ अनरण्यके पृषदस्व, पृषदस्वके हर्यस्व हस्तके हुमना, सुमनाके त्रिधन्वा, त्रिधन्वाके त्रग्यारुणि और त्रग्यारुणि- के सत्यव्रत नामक पुत्र हुआ, जो पीछे त्रिशंकु कहलाया ॥१८—२१॥

वह त्रिशंकु चाण्डाल हो गया था ॥२२॥ एक वार वारह वर्षतक अनावृष्टि रही । उस समय विस्ता-मित्र मुनिके स्त्री और वाल-वर्चोंके पोपणार्थ तथा अपनी चाण्डालताको छुड़ानेके लिये वह गङ्गाजीके तटपर एक वटके वृक्षपर प्रतिदिन मृगका मांस वाँघ आता था ॥२३॥ इससे प्रसन्न होकर विस्वामित्रजीने उसे सदेह स्वर्ग भेज दिया ॥२४॥

त्रिशंकुसे हरिश्चन्द्र,हरिश्चन्द्रसे रोहिताक्व,रोहिताक्व-से हरित, हरितसे चञ्चु, चञ्चुसे विजय और वसुदेव, विजयसे रुरुक और रुरुकसे वृकका जन्म हुआ ॥२५॥ वृकके बाहु नामक पुत्र हुआ जो हैहय और ताल-जंघ आदि क्षत्रियोंसे पराजित होकर अपनी गर्भवती पटरानीके सहित वनमें चला गया था ॥२६॥ पटरानीकी सौतने उसका गर्भ रोकनेकी इच्छासे उसे विप खिला दिया ॥२७॥ उसके प्रभावसे उसका गर्भ सात वर्षतक गर्भा-शयहीमें रहा ॥ २८॥ अन्तमें, बाहु बृद्धावस्थाके कारण और्व मुनिके आश्रमके समीप मर गया ॥२९॥ तब उसकी उस पटरानीने चिता बनाकर उसपर पतिका शव स्थापित कर उसके साथ सती होनेका निश्चय किया ॥३०॥ उसी समय भूत, भवि-ष्यत् और वर्तमान तीनों कालके जाननेवाले भगवान् और्वने अपने आश्रमसे निकलकर उससे कहा—॥३१॥ अलमलमनेनासद्वाहेणाखिलभूमण्डलपतिरतिवीर्य-पराऋमो नैकयञ्चकृदरातिपक्षश्चयकर्ता तवोदरे चक्रवर्त्ती तिष्ठति ॥ ३२ ॥ नैवमतिसाहसाध्यव-सायिनी भवती भवत्वित्युक्ता सा तसादनुमरण-निर्वन्धाद्विरराम ॥ ३३ ॥ तेनैव च भगवता स्वाश्रममानीता ॥ ३४ ॥

तत्र कतिपयदिनाभ्यन्तरे च सहैव तेन गरेणातितेजस्वी बालको जज्ञे ॥ ३५॥ तस्यौर्वो जातकर्मादिकिया निष्पाद्य सगर इति नाम चकार ॥ ३६॥ कृतोपनयनं चैनमौर्वो वेद-शास्त्राण्यस्तं चाग्नेयं भागवाख्यमध्यापया-मास ॥ ३७॥

उत्पन्नवुद्धिश्च मात्रसन्नवीत् ॥ ३८ ॥ अम्ब-कथमत्र वयं क वा तातोऽसाकमित्येवमादिपृच्छन्तं माता सर्वमेवावोचत् ॥ ३९॥ ततश्च पितृराज्या-पहरणादमर्पितो हैहयतालजङ्गादिवधाय प्रतिज्ञा-मकरोत् ॥ ४०॥ प्रायश्य हैहयतालजङ्गा-ञ्जघान ॥ ४१ ॥ शक्रयवनकाम्बोजपारदपह्नवाः हन्यमानास्तत्कुलगुरुं वसिष्टं शरणं जग्धः ॥४२॥ अथैनान्वसिष्ठो जीवन्मृतकान् कृत्वा सगरमाह ॥ ४३ ॥ वत्सालमेभिर्जीवन्यृतकैरनुसृतैः ॥४४॥ एते च मयैव त्वत्प्रतिज्ञापरिपालनाय निजधर्म-द्विजसङ्गपरित्यागं कारिताः ॥ ४५॥ तथेति तद्गुरुवचनमभिनन्द्य तेषां वेषान्यत्वमकारयत ।।।४६।। यवनान्मुण्डितशिरसोऽर्द्वमुण्डिताञ्च्छकान्। प्रलम्बकेशान् परिदान , अहिं सामुक्त अध्यान

'अयि साध्य ! इस व्यर्थ दुराग्रहको छोड़ । तेरे उदरमें सम्पूर्ण भूमण्डलका स्वामी, अत्यन्त वल-पराक्रमशील, अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला और शत्रुओंका नाश करनेवाला चक्रवर्ती राजा है ॥३२॥ त ऐसे दुस्साहसका उद्योगन कर।' ऐसा कहे जानेपर वह अनुमरण (सती होने) के आग्रहसे विरत हो गयी ॥३३॥ और मगवान् और्व उसे अपने आश्रमपर ले आये ॥३४॥

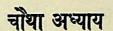
वहाँ कुछ ही दिनोंमें, उसके उस गर (विष) के साथ ही एक अति तेजस्वी बालकने जन्म लिया ॥३५॥ भगवान् और्वने उसके जातकमें आदि संस्कार कर उसका नाम 'सगर' रखा तथा उसका उपनयन-संस्कार होनेपर और्वने ही उसे वेद, शास्त्र एवं मार्गव नामक आग्नेय शस्त्रोंकी शिक्षा दी॥३६-३७॥

बुद्धिका विकास होनेपर उस बालकने अपनी मातासे कहा-।।३८॥ "माँ ! यह तो बता, इस तपोवनमें हम क्यों रहते हैं और हमारे पिता कहाँ हैं ?" इसी प्रकारके और भी प्रश्न पूंछनेपर माताने उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त कह दिया ॥३९॥ तव तो पिताके राज्या-पहरणको सहन न कर सकनेके कारण उसने हैहय और ताळजंघ आदि क्षत्रियोंको मार डाळनेकी प्रतिज्ञा की और प्रायः सभी हैहय एवं तालजंघवंशीय राजाओंको नष्ट कर दिया ॥४०-४१॥ उनके पश्चात शक, यवन, काम्बोज, पारद और पहल्वगण भी हताहत होकर सगरके वु.लगुरु वसिष्ठजीकी शर्णमें गये ॥४२॥ वसिष्ठजीने उन्हें जीवनमृत (जीते हुए ही मरेके समान) करके सगरसे कहा-॥४३॥ "वेटा ! इन जीते-जी मरे हुओंका पीछा करनेसे क्या छाम है ! ॥४४॥ देख. तेरी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके छिये मैंने ही इन्हें स्वधर्म और द्विजातियोंके संसर्गसे बिचत कर दिया है"।।१५॥ राजाने 'जो आज्ञा' कहकर गुरुजीके कथनका अनु-मोदन किया और उनके वेष बदल्वा दिये ॥ ४६॥ उसने यवनोंके शिर मुड़वा दिये, शकोंको अंद्र मुण्डित कर दिया, पारदोंके लम्बे-लम्बे केश रखवा दिये. पहुल्बोंके मूँछ-दाद्वी रखुवा दीं तथा इनको और

निस्खाध्यायवपद्कारानेतानन्यांश्र क्षत्रियांश्रकार ॥ ४७ ॥ एते चात्मधर्मपरित्यागाह्याद्वणैः परि-त्यक्ता म्लेच्छतां ययुः ॥ ४८॥ सगरोऽपि स्वम-धिष्ठानमाग्म्यास्विलतचक्रसप्तद्वीपवतीमिमा-मुर्वी प्रश्रशास ॥ ४९॥

इनके समान अन्यान्य क्षत्रियोंको भी स्वाध्याय और वषट्कारादिसे वहिष्कृत कर दिया ॥४०॥ अपने धर्म-को छोड़ दैनेके कारण ब्राह्मणोंने भी इनका परित्याग कर दिया; अतः ये म्लेच्छ हो गये ॥४८॥ तदनन्तर महाराज सगर अपनी राजधानीमें आकर अप्रतिहत सैन्यसे युक्त हो इस सम्पूर्ण सप्तद्वीपवती पृथिवीका शासन करने छगे ॥४९॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थें ऽशे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



सगर, सौदास खट्वाङ्ग और भगवान् रामके चरित्रका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

काक्यपदुहिता सुमतिर्विदर्भराजतनया केशिनी च द्वे भार्ये सगरस्यास्ताम् ॥१॥ ताभ्यां चाप-त्यार्थमौर्वः परमेण समाधिनाराधितो वरमदात ॥२॥ एका वंशकरमेकं पुत्रमपरा पष्टिं पुत्र-यदभिमतं सहस्राणां जनियम्यतीति यस्या तदिच्छया गृह्यतामित्युक्ते केशिन्येकं वरयामास ॥३॥ सुमतिः पुत्रसहस्राणि पष्टिं वत्रे ॥४॥

तथेत्युक्ते अल्पैरहोभिः केशिनी पुत्रमेकमस-मञ्जसनामानं वंशकरमस्त ॥५॥ काश्यपतनया-यास्तु सुमत्याः षष्टिः पुत्रसहस्राण्यभवन् ॥६॥ तसादसमञ्जसादंशुमानाम कुमारो जज्ञे ॥७॥ स त्वसमञ्जसो वालो बाल्यादेवासद्वृत्तोऽभृत्॥ ८॥ पिता चास्याचिन्तयदयमतीतबाल्यः सुबुद्धिमान् भविष्यतीति ॥९॥ अथ तत्रापि च वयस्रतीते असचरितमेनं पिता तत्याज ॥१ •॥ तान्यपि पष्टिः पुत्रसहस्राण्यसमञ्जसचरितमेवातुचक्रुः ॥ ११ ॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

श्रीपराशरजी बोले-काश्यपसुता सुमति और विदर्भराज-कन्या केशिनी ये राजा सगरकी दो स्त्रियाँ थीं ॥१॥ उनसे सन्तानोत्पत्तिके लिये परम समाधिद्वारा आराधना किये जानेपर भगवान् और्वने यह वर दिया ॥२॥ 'एकसे वंशकी वृद्धि करनेवाला एक पुत्र तथा दूसरीसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे, इनमेंसे जिसको जो अभीष्ट हो वह इच्छापूर्वक उसीको प्रहण कर सकती है।' उनके ऐसा कहनेपर केशिनीने एक तया सुमतिने साठ हजार पुत्रोंका वर माँगा ॥३-४॥

महर्षिके 'तथास्तु' कहनेपर कुछ ही दिनोंमें केशिनी-ने वंशको वढ़ानेवाछे असमञ्जस नामक एक पुत्रको जन्म दिया और काश्यपकुमारी सुमतिसे साठ सहस्र पत्र उत्पन्न हुए ॥५-६॥ राजकुमार असमञ्जसके अंगुमान् नामक पुत्र हुआ ॥७॥ यह असमञ्जस बाल्यावस्थासे ही वड़ा दुराचारी था ॥८॥ पिताने सोचा कि बाल्यावस्थाके बीत जानेपर यह बहुत समझदार होगा ॥९॥ किन्तु यौवनके बीत जानेपर भी जब उसका आचरण न सुघरा ते। पिताने उसे त्याग दिया ॥१०॥ उनके साठ हजार पुत्रोंने भी असमञ्जसको चरित्रका ही अनुकरण किया ॥११॥

ततथासमञ्जसचिरतानुकारिभिस्सागरैरपध्य-स्तयज्ञादिसन्मार्गे जगित देवास्सकलिवद्या-मयमसंस्पृष्टमशेषदोषैर्भगवतः पुरुषोत्तमस्यांशभूतं किपलं प्रणम्य तदर्थमृज्ञः ॥ १२ ॥ भगवनेभि-स्सगरतनयैरसमञ्जसचिरतमनुगम्यते ॥ १३ ॥ कथमेभिरसद्वृत्तमनुसरिक्किगद्भविष्यतीति॥१४॥ अत्यात्तजगत्परित्राणाय च भगवतोऽत्र शरीर-प्रहणमित्याकण्यं भगवानाहाल्पैरव दिनैर्विनङ्क्ष्य-न्तीति ॥ १५ ॥

अत्रान्तरे च सगरो हयमेधमारभत ॥१६॥
तस्य च पुत्रैरिधष्ठितमस्याश्चं कोऽप्यपहृत्य अवो
बिलं प्रविवेश ॥ १७॥ ततस्तत्तनयाश्चाश्चसुरगतिनिर्वन्धेनावनीमेकैको योजनं चच्नुः ॥१८॥
पाताले चाश्चं परिश्रमन्तं तमवनीपतितनयास्ते
दृदशुः ॥१९॥ नातिदृरेऽचस्थितं च भगवन्तमपघने शरत्कालेऽकीमिव तेजोभिरनवरतमूर्ध्वमधश्चाशेषदिशश्चोद्धासयमानं हयहत्तीरं कपिलविमपश्यन्॥२०॥

ततश्रोद्यतायुधा दुरात्मानोऽयमसदपकारी
यज्ञविष्ठकारी हन्यतां हयहर्त्ती हन्यतामित्यवोचन्नभ्यधावंश्र ॥ २१ ॥ ततस्तेनापि मगवता
किश्चिदीपत्परिवर्तितलोचनेनावलोकितास्खश्चरीरसम्रत्थेनाऽप्रिना दह्ममाना विनेशः ॥ २२ ॥
सगरोऽप्यवगम्याधानुसारि तत्पुत्रवलमशेषं
परमर्पिणा कपिलेन तेजसा दग्धं तत्तिंऽश्चमन्तमस-

तव, असमञ्जसके चरित्रका अनुकरण करनेवाले उन सगरपुत्रोंद्वारा संसारमें यज्ञादि सन्मार्गका उच्छेद हो जानेपर सकल-विद्यानिधान, अशेषदोष-हीन, मगवान् पुरुषोत्तमके अंशभूत श्रोकपिलदेवसे देवताओंने प्रणाम करनेके अनन्तर उनके विषयमें कहा—॥ १२ ॥ "भगवन् ! राजा सगरके ये सभी पुत्र असमञ्जसके चरित्रका ही अनुसरण कर रहे हैं ॥ १३ ॥ इन सवके असन्मार्गमें प्रवृत्त रहनेसे संसारकी क्या दशा होगी ? ॥ १४ ॥ प्रमो ! संसारमें दीनजनोंकी रक्षाके लिये ही आपने यह शरीर प्रहण किया है [अतः इस घोर आपत्तिसे संसारकी रक्षा कीजिये] ।" यह सुनकर भगवान् कपिलने कहा, "ये सब थोड़े ही दिनोंमें नष्ट हो जायँगे"॥ १५ ॥

इसी समय सगरने अश्वमेध-यज्ञ आरम्म किया॥१६॥ उसमें उसके पुत्रोंद्वारा सुरक्षित घोड़ेको कोई व्यक्ति चुराकर पृथिवीमें घुस गया॥ १०॥ तब उस घोड़ेके खुरोंके चिह्नोंका अनुसरण करते हुए उनके पुत्रोंमेंसे प्रत्येकने एक-एक योजन पृथिवी खोद डाळी॥ १८॥ तथा पाताळमें पहुँचकर उन राजकुमारोंने अपने घोड़ेको फिरता हुआ देखा॥ १९॥ पासहीमें मेघाव-रणहीन शरकाळके सूर्यके समान अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए घोड़ेको चुरानेवाळे परमर्षि कपिछको शिर झुकाये बैठे देखा॥ २०॥

तव तो वे दुरात्मा अपने अख-शक्षोंको उठाकर 'यही हमारा अपकारी और यज्ञमें विन्न डाळनेवाळा है, इस घोड़ेको चुरानेवाळेको मारो, मारो' ऐसा चिज्ञाते हुए उनकी ओर दौड़े ॥ २१॥ तत्र मगवान् कपिळदेवके कुछ आँख बदळकर देखते ही वे सब अपने ही शरीरसे उत्पन्न हुए अग्निमें जळकर नष्ट हो गये॥ २२॥

सगरोऽप्यवगम्याश्वानुसारि तत्पुत्रबलमञ्चेषं महाराज सगरको जब माछ्म हुआ कि घोड़ेका अनुसरण करनेवाले उसके समस्त पुत्र महर्षि कपिलके तेजसे दग्ध हो गये हैं तो उन्होंने असमञ्जसके पुत्र अं शुसञ्जसपुत्रमश्चानयनीय 0. Pro पुरी जिंदि भाग कि प्रेमिक प्रिका कि घोड़ेका अनुसरण करनेवाले उसके समस्त पुत्र महर्षि कपिलके तेजसे दग्ध हो गये हैं तो उन्होंने असमञ्जसके पुत्र अं शु-

स तु सगरतनयखातमार्गेण कपिलम्रुपगम्य भक्ति-नम्रस्तदा तुष्टाव ॥ २४ ॥ अथैनं भगवानाह ॥२५॥ गच्छैनं पितामहायाथं प्रापय वरं वृणीष्व च पुत्रक पौत्रश्र ते खर्गाद्रङ्गां भ्रवमानेष्यत इति ।। २६ ।। अथांशुमानपि स्वर्यातानां त्रह्म-दण्डहतानामस्रित्पृतृणामस्वर्गयोग्यानां प्राप्तिकरं वरमसाकं प्रयच्छेति प्रत्याह ।। २७ ।। तदाकण्यं तं च भगवानाह उक्तमेवैतन्मयाद्य पौत्रस्ते त्रिदिवाद्गङ्गां अवमानेष्यतीति ॥२८॥ तदम्भसा च संस्पृष्टेष्वस्थिभसासु एते च स्वर्ग-मारोक्ष्यन्ति ॥ २९॥ भगवद्विष्णुपादाङ्गुष्ठ-निर्गतस्य हि जलसैतन्माहात्म्यम् ॥ ३० ॥ यन्न केवलमभिसन्धिपूर्वकं स्नानाद्यपमोगेषूपकारकमन-भि<u>संहितमप्य</u>पेतप्राणस्यास्थिचर्मस्रायुकेशाद्यपस्पृष्टं शरीरजमपि पतितं सद्यश्शरीरिणं खर्गं नयती-त्युक्तः प्रणम्य भगवते अधमादाय पितामहयञ्च-माजगाम ॥ ३१ ॥ सगरोऽप्यश्वमासाद्य तं यज्ञं समापयामास ॥ ३२॥ सागरं चात्मजप्रीत्या पुत्रत्वे कल्पितवान् ।। ३३ ।। तस्यांश्चमतो दिलीपः पुत्रोऽभवत् ॥ ३४ ॥ दिलीपस्य भगीरथः योऽसौ गङ्गां खर्गादिहानीय भागीरथीसंज्ञां चकार ॥३५॥

भगीरथात्सुहोत्रस्सुहोत्राच्छूतः तस्यापि नाभागः ततोऽम्बरीषः तत्पुत्रस्सिन्धुद्वीपः सिन्धु-द्वीपादयुतायुः ॥ ३६ ॥ तत्पुत्रश्च ऋतुपर्णः योऽसौ नलसहायोऽक्षहृद्यज्ञोऽभृत् ॥ ३७॥

ऋतुपर्णपुत्रस्सर्वकामः ॥ ३८॥ तत्तनय-

वह सगर-पुत्रोंद्वारा खोदे हुए मार्गसे कपिछ-पहुँचा और भक्तिविनम्र होकर जीके पास उनकी स्तुति की ॥ २४ ॥ तव भगवान् कपिछने उससे कहा, "वेटा ! जा, इस घोड़ेको छे जाकर अपने दादाको दे और तेरी जो इच्छा हो वही वर माँग छे। तेरा पौत्र गंगाजीको खर्गसे पृथिवीपर ळायेगा" ॥ २५-२६ ॥ इसपर अंशुमान्ने यहीं कहा कि मुझे ऐसा वर दीजिये जो ब्रह्मदण्डसे आहत होकर मरे हुए मेरे अखर्ग्य पितृगणको खर्गकी प्राप्ति कराने-वाला हो ॥ २७ ॥ यह सुनकर भगवान्ने कहा, "मैं तुझसे पहले ही कह चुका हूँ कि तेरा पौत्र गंगाजीको खर्गसे पृथिवीपर छायेगा ॥ २८॥ उनके जलसे इनकी अस्थियोंकी भस्मका स्पर्श होते ही ये सत्र खर्गको चले जायँगे ॥ २९ ॥ भगवान् विष्णुके चरणनखसे निकले हुए उस जलका ऐसा माहात्म्य है कि वह कामनापूर्वक केवल स्नानादि कार्योंमें ही उपयोगी हो—सो नहीं, अपितु, विना कामनाके मृतक पुरुषके अस्थि, चर्म, स्नायु अथवा केश आदिका स्पर्श हो जानेसे या उसके शरीरका कोई अंग गिरनेसे भी वह देहधारीको तुरन्त खर्गमें छे जाता है।" भगवान कपिछके ऐसा कहनेपर वह उन्हें प्रणाम कर घोडेको छेकर अपने पितामहकी यज्ञशालामें आया || ३०-३१ || राजा सगरने भी घोड़ेके मिल जानेपर अपना यञ्च समाप्त किया और [अपने पुत्रोंके खोदे हुए] सागरको ही अपत्य-स्नेहसे अपना पुत्र माना ॥ ३२-३३॥ उस अंग्रुमान्के दिछीप नामक पुत्र हुआ और दिछीप-के भगीरथ हुआ जिसने गंगाजीको खर्गसे पृथिवीपर लाकर उनका नाम भागीरथी कर दिया ॥ ३४-३५॥

भगीरथसे सुहोत्र, सुहोत्रसे श्रुति, श्रुतिसे नाभाग, नाभागसे अम्बरीष, अम्बरीषसे सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीपसे अयुतायु और अयुतायुसे ऋतुपर्ण नामक पुत्र हुआ जो राजा नलका सहायक और चृतक्रीडाका पारदर्शी था ॥ ३६-३७॥

ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम था, उसका सुदास और स्यदासः ॥ ३९ ॥ सदामात्सोदासो नित्रसह- । सदासका पत्र सोदास नित्रसह हुआ ॥ ३८ — १०॥

नामा ॥ ४० ॥ स चाटच्यां मृगयार्थी पर्यटन् व्याघ्रद्वयमपश्यत् ॥ ४१ ॥ ताभ्यां तद्वनमपसृगं कृतं मत्वैकं तयोर्बणिन जवान ॥ ४२ ॥ म्रिय-माणश्रासावतिभीपणाकृतिरतिकरालवदनो राक्षसो **उभूत् ॥ ४३ ॥ द्वितीयोऽपि प्रतिकियां** ते करिष्यामीत्युक्त्वान्तर्धानं जगाम् ॥ ४४ ॥

कालेन गच्छता सौदासो यज्ञमयजत् ॥४५॥ परिनिष्ठितयज्ञे आचार्ये वसिष्ठे निष्कान्ते तद्रक्षो वसिष्ठरूपमास्थाय यज्ञावसाने मम नरमांसभोजनं देयमिति तत्संस्क्रियतां क्षणादागमिष्यामीत्युक्त्वा निष्कान्तः ॥ ४६ ॥ भूयश्र सद्वेषं कृत्वा राजा-ज्ञया माजुपं मांसं संस्कृत्य राज्ञे न्यवेदयत् ॥४७॥ असावपि हिरण्यपात्रे मांसमादाय वसिष्ठागमन-प्रतीक्षकोऽभवत् ॥ ४८॥ आगताय वसिष्ठाय निवेदितवान् ॥ ४९॥

स चाप्यचिन्तयदहो अस्य राज्ञो दौक्शील्यं येनैतन्मांसमसाकं प्रयच्छति किमेतद्द्रव्यजात-मिति ध्यानपरोऽभवत्।। ५०।। अपश्यच तन्मांसं माजुषम् ॥ ५१ ॥ अतः क्रोधकछ्पीकृतचेता राजनि शापम्रत्ससर्ज ॥ ५२ ॥ यसाद्भोज्यमेत-दसद्विधानां तपस्विनामवगच्छन्नपि भवान्महां दुदाति तसात्तवैवात्र लोछपता भविष्यतीति॥५३॥

अनन्तरं च तेनापि भगवतैवाभिहितोऽसी-त्युक्ते किं किं मयाभिहितमिति मुनिः पुनरपि

एक दिन मृगयाके लिये वनमें घूमते-घूमते उसने दो व्याघ्र देखे ॥ ४१ ॥ इन्होंने सम्पूर्ण वनको मृगहीन कर दिया है-ऐसा समझकर उसने उनमेंसे एकको वाणसे मार डाला ॥ ४२ ॥ मरते समय वह अति मसङ्कररूप क्रूर-वदन राक्षस हो गया ॥ ४३ ॥ तथा दूसरा भी 'मैं इसका बदला लूँगा' ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गया ॥ ४४ ॥

काळान्तरमें सौदासने एक यज्ञ किया ॥ ४५॥ यज्ञ समाप्त हो जानेपर जन्न आचार्य वसिष्ठ बाहर चले गये तब वह राक्षस वसिष्ठजीका रूप बनाकर बोला, 'यज्ञके पूर्ण होनेपर मुझे नर-मांसयुक्त मोजन कराना चाहिये; अतः तुम ऐसा अन्न तैयार कराओ, मैं अभी आता हूँ' ऐसा कहकर वह वाहर चला गया ॥ ४६ ॥ फिर रसोइयेका वेष वना-कर राजाकी आज्ञासे उसने मनुष्यका मांस पकाकर उसे निवेदन किया ॥ ४७ ॥ राजा भी उसे सुवर्ण-पात्रमें रखकर वसिष्ठजीके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा और उनके आते ही वह मांस निवेदन कर दिया॥ ४८-४९॥

वसिष्ठजीने सोचा, 'अहो ! इस राजाकी कुटिळता तो देखो जो यह जान-बूझकर भी मुझे खानेके छिये यह मांस देता है।' फिर यह जाननेके छिये कि यह किसका है वे ध्यानस्थ हो गये॥ ५०॥ ध्यानावस्था-में उन्होंने देखा कि वह तो नरमांस है॥ ५१॥ तव तो क्रोधके कारण क्षुव्ध-चित्त होकर उन्होंने राजाको यह शाप दिया ॥ ५२ ॥ 'क्योंकि त्ने जान-बूझकर भी हमारे-जैसे तपिखयोंके छिये अत्यन्त अमक्ष्य यह नरमांस मुझे खानेको दिया है इसिछिये तेरी इसीमें छोलुपता होगी [अर्थात् त् राक्षस हो जायगा] ॥ ५३॥

तदनन्तर राजाके यह कहनेपरं कि भगवन आपहीने ऐसी आज्ञा की थी,' वसिष्ठजी यह कहते हुए कि 'क्या मैंने ही ऐसा कहा था ?' फिर समाधिस्थ हो समाघो तस्यो ॥ ५४ ॥ क्मिमिविद्यामाव गृती कार्ये भाष्ट्री। समाधिद्वार व्यथार्थ वात जानकर उन्होंने

र्थश्वानुग्रहं तसे चकार नात्यन्तिकमेतद्द्वादशाब्दं तव भोजनं भविष्यतीति ॥ ५५॥ असावपि प्रतिगृह्योदकाञ्जलिं म्रनिशापप्रदानायोद्यतो भगवन्नयमसद्धरुनीहिस्येनं कुलदेवताभूतमाचार्य श्रुप्तुमिति मद्यन्त्या खपत्न्या प्रसादितस्सस्या-म्बुद्रक्षणार्थं तच्छापाम्बु नोर्च्या न चाकाशे चिक्षेप किं तु तेनैव खपदौ सिपेच ॥ ५६ ॥ तेन च कोधाश्रितेनाम्बुना दग्धच्छायो तत्पादौ कल्माषताम्रुपगतौ ततस्स कल्मापपादसंज्ञामवाप ।। ५७ ।। वसिष्ठशापाच पष्टे पष्टे काले राक्षस-खभावमेत्याटच्यां पर्यटननेकशो मानुपान-मक्षयत् ॥ ५८॥

एकदा तु कञ्चिन्मुनिमृतुकालें भार्यासङ्गतं ददर्श ॥ ५९ ॥ तयोश्र तमतिभीषणं राक्षस-खरूपमवलोक्य त्रासाहम्पत्योः प्रधावितयोत्रीह्मणं जग्राह ॥ ६०॥ ततस्सा ब्राह्मणी बहुशस्तमिन-याचितवंती ॥ ६१॥ प्रसीदेश्वाकुकुल्विलक-भूतस्त्वं महाराजो मित्रसहो न राक्षसः ॥ ६२ ॥ नाईसि स्त्रीधर्मसुखाभिज्ञो मय्यकृतार्थायामस-द्धर्तारं हन्तुमित्येवं बहुप्रकारं तस्यां विलयन्त्यां व्याघ्रः पशुमिवारण्येऽभिमतं तं ब्राह्मणममक्षयत् ६३

ततश्रातिकोपसमन्विता ब्राह्मणी तं राजानं शशाप ॥ ६४ ॥ यसादेवं मय्यत्प्रायां त्वयायं मःपतिर्भक्षितः तस्मान्वमपि कामोपमोगप्रवृत्तोऽन्तं प्राप्ससीति ॥६५॥ शप्त्वा साग्नि प्रविवेश ।। ६६ ॥

राजापर अनुग्रह करते हुए कहा, "त् अधिक दिन नरमांस मोजन न करेगा, केवल वारह वर्ष ही तुझे ऐसा करना होगा" ॥५५॥ वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर राजा सौदास भी अपनी अञ्जलिमें जल लेकर मुनीश्वरको शाप देनेके लिये उद्यत हुआ । किन्तु अपनी पत्नी मदयन्ती-द्वारा 'भगवन् ! ये हमारे कुळगुरु हैं, इन कुळदेवरूप आचार्यको शाप देना उचित नहीं है'-ऐसा कहे जानेसे शान्त हो गया, तथा अन्न और मेघकी रक्षाके कारण उस शाप-जलको प्रथिवी या आकाशमें नहीं फेंका, विल्क उससे अपने पैरोंको ही भिगो लिया ॥५६॥ उस क्रोधयुक्त जलसे उसके पैर झलसकर कल्मापवर्ण (चितकवरे) हो गये। तभीसे उनका नाम कल्माप-पाद हुआ ॥५७॥ तथा वसिष्ठजीके शापके प्रभावसे छठे कालमें अर्थात् तीसरे दिनके अन्तिम भागमें वह राक्षस-सभाव धारणकर वनमें वृमते हुए अनेकों मनुष्योंको खाने छगा ॥५८॥

एक दिन उसने एक मुनीश्वरको ऋतुकालके समय अपनी भार्यासे सङ्गम करते देखा ॥५९॥ उस अति भीषण राक्षस-रूपको देखकर भयसे भागते हुए उन दम्पतियोंमेंसे उसने ब्राह्मणको पकड़ छिया।।६०॥ तव ब्राह्मणीने उससे नाना प्रकारसे प्रार्थना की और कहा-- "हें राजन् ! प्रसन्न होइये । आप राक्षस नहीं हैं विलेक इक्वाकुकुछतिछक महाराज मित्रसह हैं ॥६१-६२॥ आप स्नी-संयोगके सुखको जाननेवाले हैं; मैं अतृप्त हूँ, मेरे पतिको मारना आपको उचित नहीं है।' इस प्रकार उसके नाना प्रकारसे विछाप करनेपर भी उसने उस ब्राह्मणको इस प्रकार मञ्जूण कर लिया जैसे वाघ अपने अभिमत पशुको वनमें पकड़कर खा जाता है ॥६३॥

तत्र ब्राह्मणीने अत्यन्त क्रोधित होकर राजाको शाप दिया-।।६४॥ 'अरे ! त्ने मेरे अनुप्त रहते हुए भी इस प्रकार मेरे पतिको खा लिया, इसलिये कामोप-भोगर्मे प्रवृत्त होते ही तेरा अन्त हो जायगा' ॥६५॥ इस प्रकार शाप देकर वह अग्निमें प्रविष्ट हो गयी ॥६६॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

ततस्य द्वादशाब्दपर्यये विम्रुक्तशापस्य स्त्री-विषयाभिलापिणो मदयन्ती तं स्मारयामास।।६७।। ततः परमसौ स्त्रीभोगं तत्याज ॥ ६८ ॥ वसिष्ठ-श्रापुत्रेण राज्ञा पुत्रार्थमभ्यर्थितो मदयन्त्यां गर्भा-धानं चकार ॥ ६९ ॥ यदा च सप्तवर्षाण्यसौ गर्भों न जज्ञे ततस्तं गुर्भमुक्मना सा देवी जघान ॥ ७० ॥ पुत्रश्राजायत ॥ ७१ ॥ तस्य चाश्मक इत्येव नामाभवत् ॥७२॥ अश्मकस्य मूलको नाम पुत्रोडभवत् ॥७३॥ योडसौ निःक्षत्रे क्ष्मातलेडसिन् क्रियमाणे स्त्रीमिर्विवस्त्राभिः परिवार्य रक्षितः ततस्तं नारीकवचग्रदाहरन्ति ॥ ७४ ॥

मूलकाइशरथसासादिलिविलसतश्र विश्वसहः ॥७५॥ तस्माच खद्वाङ्गः योऽसौ देवासुरसङ्घामे देवैरम्यर्थितोऽसुराञ्जघान ॥७६॥ स्वर्गे च कृत-प्रियेदेविवरप्रहणाय चोदितः ब्राह ॥ ७७ ॥ यद्यवक्यं वरो प्राह्मः तन्ममायुः कथ्यतामिति ॥ ७८ ॥ अनन्तरं च तैरुक्तं एकम्रहूर्त्तप्रमाणं तवायुरित्युक्तोऽथास्खलितगतिना विमानेन लिय-मगुणो मर्त्यलोकमागम्येदमाह ॥ ७९॥ यथा न ब्राह्मणेम्यस्सकाशादात्मापि मे प्रियतरः न च खधर्मोछङ्घनं मया कदाचिदप्यनुष्ठितं न च सकलदेवमानुषपशुपक्षिष्टक्षादिकेष्वच्युतच्यतिरेक-वती दृष्टिर्ममाभूत् तथा तमेवं म्रुनिजनानुस्मृतं भगवन्तमस्बिलतगतिः प्रापयेयमित्यशेषदेवगुरौ भगवत्यनिर्देश्यवपुषि सत्तामात्रात्मन्यात्मानं परमात्मनि वासुदेवाख्ये युयोज तत्रैव च

तदनन्तर बारह वर्षके अन्तमें शापमुक्त हो जानेपर एक दिन विषय-कामनामें प्रवृत्त होनेपर रानी मदयन्तीने उसे ब्राह्मणीके शापका स्मरण करा दिया ॥६७॥ तमीसे राजाने स्त्री-सम्मोग त्याग दिया ॥६८॥ पीछे पुत्रहीन राजाके प्रार्थना करनेपर वसिष्ठजीने मदयन्ती-के गर्माधान किया ॥६९॥ जब उस गर्भने सात वर्ष व्यतीत होनेपर भी जन्म न लिया तो देवी मद्यन्तीने उसपर पत्थरसे प्रहार किया ॥७०॥ इससे उसी समय पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम अस्मक हुआ ॥ ७१-७२ ॥ अइमकके मूलक नामक पुत्र हुआ ॥७३॥ जत्र परशुरामजीद्वारा यह पृथिवीतल क्षत्रियहीन किया जा रहा था उस समय उस (मूलक) की रक्षा वस्त्रहोना स्त्रियोंने घेरकर की थी, इससे उसे नारीकवच भी कहते हैं ॥७४॥

मूलकके दशर्थ, दशर्थके इलिविल, इलिविलके विश्वसह और विश्वसहके खट्वाङ्ग नामक पुत्र हुआ, जिसने देवासुरसंप्राममें देवताओंके प्रार्थना करनेपर दैत्योंका वध किया था ॥७५-७६॥ इस प्रकार खर्गमें देवताओंका प्रिय करनेसे उनके द्वारा वर माँगनेके लिये प्रेरित किये जानेपर उसने कहा-॥७७॥ "यदि मुझे वर प्रहण करना ही पड़ेगा तो आपछोग आयु वतलाइये" ॥ ७८ ॥ तब देवताओंके यह कहनेपर कि तुम्हारी आयु केवछ मुहूर्त और रही है वह [देवताओं के दिये हुए] अनवरुद्धगति विमानपर वैठकर शीव्रतासे मर्त्यछोकमें आया और कहने छगा-॥७९॥ 'यदि मुझे ब्राह्मणोंकी अपेक्षा कभी अपना आत्मा भी प्रियतर नहीं हुआ, यदि मैंने कभी खधर्मका उञ्जह्नन नहीं किया और सम्पूर्ण देव, मनुष्य, पशु, पक्षी और वृक्षादिमें श्रीअच्युतके अतिरिक्त मेरी अन्य दृष्टि नहीं हुई तो मैं निविधितापूर्वक उन मुनिजनवन्दित प्रभुको प्राप्त होऊँ ।' ऐसा कहते हुए राजा खट्बाङ्गने सम्पूर्ण देवताओंके गुरु, अकथनीयस्वरूप, सत्तामात्र-शरीर, परमात्मा भगवान् वासुदेवमें अपना लयमवाप ।। ६६-१। Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New वित्त क्यांद्रिसा श्रीर हुताइन्होंमें लीन हो गये ॥८०॥ अत्रापि श्रूयते श्लोको गीतस्सप्तिषिभः पुरा । खद्वाङ्गेन समो नान्यः कश्चिदुर्व्या भविष्यति॥८१॥ येन खर्गादिहागम्य ग्रहूर्तं प्राप्य जीवितम् । त्रयोऽभिसंहिता लोका बुद्ध्या सत्येन चैव हि।८२।

खद्वाङ्गाद्दीर्घवाहुः पुत्रोऽभवत् ॥८३॥ ततो रघुरभवत् ॥८४॥ तस्मादप्यजः ॥८५॥ अजाद्दश-रथः ॥८६॥ तस्यापि भगवानव्जनाभो जगतः स्थित्यर्थमात्मांशेन रामलक्ष्मणभरतशत्रुव्वस्त्रपेण चतुर्द्धा पुत्रत्वमायासीत् ॥८७॥

रामोऽपि वाल एव विश्वामित्रयागरक्षणाय
गच्छंस्ताटकां जवान ॥८८॥ यज्ञे च मारीचिमिषुवाताहतं सम्रद्रे चिश्लेप ॥८९॥ सुवाहुप्रमुखांश्र
श्वयमनयत् ॥९०॥ दर्शनमात्रेणाहल्यामपापां
चकार ॥९१॥ जनकगृहे च माहेश्वरं चापमनायासेन बमझ ॥९२॥ सीतामयोनिजां जनकराजतनयां वीर्यग्रल्कां लेमे ॥९३॥ सकलक्षत्रियक्षयकारिणमशेषहृहयकुलधूमकेतुभूतं च परश्चराममपास्तवीर्यवलावलेपं चकार ॥९४॥

पितृवचनाचागणितराज्याभिलाषो आतृभार्या-समेतो वनं प्रविवेश ॥९५॥ विराधखरदृषणादीन् क्वन्धवालिनौ च निजधान ॥९६॥ बद्धा चाम्भोनिधिमशेषराक्षसकुलक्षयं कृत्वा दशानना-पहृतां भार्यां तद्धधादपहृतकलङ्कामप्यनलप्रवेश-गुद्धामशेषदेवसङ्घेः स्तूयमानशीलां जनकराज-कन्यामयोध्यामानिन्ये॥९७॥ तत्रशाभिषेकमङ्गलं इस विषयमें भी पूर्वकालमें सप्तर्पियोंद्वारा कहा हुआ स्रोक सुना जाता है । [उसमें कहा है—] 'खट्वाङ्गके समान पृथिवीतलमें अन्य कोई भी राजा नहीं होगा, जिसने एक मुहूर्तमात्र जीवनके रहते ही खर्गलोकसे भूमण्डलमें आकर अपनी बुद्धिद्वारा तीनों लोकोंको सत्यखरूप मगवान् वासुदेवमय देखा' ॥८१-८२॥

खट्वाङ्गसे दीर्घवाहु नामक पुत्र हुआ । दीर्घवाहुसे रघु, रघुसे अज और अजसे दशरथने जन्म लिया ॥८३—८६॥ दशरथजीके भगवान् कमल्नाम जगत्की स्थितिके लिये अपने अंशोंसे राम, लक्ष्मण, मरत और शत्रुष्ठ इन चार रूपोंसे पुत्र-मावको प्राप्त हुए ॥ ८७ ॥

रामजीने वाल्यावस्थामें ही विश्वामित्रजीकी यज्ञ-रक्षाके लिये जाते हुए मार्गमें ही ताटका राक्षसीको मारा, फिर यज्ञशालामें पहुँचकर मारीचको वाणरूपी वायुसे आहत कर समुद्रमें फेंक दिया और सुवाहु आदि राक्षसों-को नष्ट कर डाला ॥८८—९०॥ उन्होंने अपने दर्शन-मात्रसे अहल्याको निष्पाप किया, जनकजीके राज-मवनमें विना श्रम ही महादेवजीका धनुष तोड़ा और पुरुपार्थसे ही प्राप्त होनेवाली अयोनिजा जनकराज-नन्दिनी श्रीसीताजीको पत्नीरूपसे प्राप्त किया ॥९१— ९३॥ और तदनन्तर सम्पूर्ण क्षत्रियोंको नष्ट करनेवाले, समस्त हैहयकुलके लिये अग्निखरूप परशुरामजीके वल-वीर्यका गर्व नष्ट किया ॥९१॥

फिर पिताके बचनसे राज्यलक्ष्मीको कुछ भी न गिन-कर माई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताके सिंहत बनमें चले गये ॥९५॥ वहाँ विराध, खर, दूषण आदि राक्षस तथा कबन्ध और वालीका वध किया और समुद्रका पुल बाँधकर सम्पूर्ण राक्षसकुलका विध्वंस किया तथा रावणद्वारा हरी हुई और उसके वधसे कल्झ्झहीना होनेपर मी अग्नि-प्रवेशसे खुद्ध हुई समस्त देवगणोंसे प्रशंसित खभाववाली अपनी मार्या जनकराजकन्या सीताको अयोध्यामें ले आये ॥९६-९७॥ हो मैत्रेय! उस समय मैत्रेय वर्षशतेनापि वक्तुं न शक्यते सङ्क्षेपेण श्रृयताम् ॥९८॥

लक्ष्मणभरतशृष्ठभविभीषणसुग्रीवाङ्गद्जाम्ब-वद्धनुमत्त्रभृतिभिस्सग्रत्फुल्लवद्नैश्च्त्रचामरादि-युतैः सेव्यमानो दाशरिथर्बक्षेन्द्राप्तियमनिर्ऋति-वरुणवायुक्कवेरेशानप्रभृतिभिस्सर्वामरैर्वसिष्ठवाम-देववाल्मीिकमार्कण्डेयविश्वामित्रभरद्वाजागस्त्यप्र-भृतिभिर्ग्धनिवरैः ऋग्यज्ञस्सामाथर्वभिस्संस्तूयमानो नृत्यगीतवाद्याद्यस्तिललोकमङ्गलवाद्यैवींणावेणुम्-दङ्गभेरीपटदृशङ्ककाहलगोग्जस्त्रभृतिभिस्सुनादैस्स-मस्तभूभृतां मध्ये सकललोकरक्षार्थं यथोचितमभि-विक्तो दाशरिथः कोसलेन्द्रो रघुकुलतिलको जानकीप्रियो आतृत्रयप्रियस्सिहासनगत एका-दशाब्दसहस्रं राज्यमकरोत् ॥९९॥

भरतोऽपि गन्धर्वविषयसाधनाय गच्छन् संग्रामे गन्धर्वकोटीस्तिस्रो जघान ॥१००॥ शत्रुघ्नेनाप्य-मितवलपराक्रमो मधुपुत्रो लवणो नाम राक्षसो निह्तो मधुरा च निवेशिता ॥ १०१॥ इत्येवमा-द्यतिवलपराक्रमविक्रमणैरतिदुष्टसंहारिणोऽशेषस्य जगतो निष्पादितस्थितयो रामलक्ष्मणभरत-शत्रुघ्नाः पुनरपि दिवमारूढाः ॥१०२॥ येऽपि तेषु भगवदंशेष्यनुरागिणः कोसलनगरजानपदास्तेऽपि तन्मनसस्तत्सालोक्यतामवापुः ॥१०३॥

अतिदुष्टसंहारिणो रामस्य कुश्रलवौ द्रौ पुत्रौ लक्ष्मणस्याङ्गद्चन्द्रकेत् तक्षपुष्कलौ भरतस्य सुवाहुश्रूरसेनौ श्रुष्टुमस्य ॥१०४॥ कुश्रस्यातिथिन

उनके राज्यामिषेकका जैसा मङ्गल हुआ उसका तो सौ वर्षमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता; तथापि संक्षेपसे सुनो ॥९८॥

दशर्थ-नन्दन श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्तवदन छक्ष्मण, भरत, शत्रुष्त, विभीषण, सुग्रीव, अङ्गद, जाम्ववान् और हनुमान् आदिसे छत्र-चामरादिद्वारा सेवित हो, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वायु, कुबेर और ईशान आदि सम्पूर्ण देवगण, वसिष्ठ, वामदेव, वाल्मीकि, मार्कण्डेय, विश्वामित्र, भरद्वाज और अगस्त्य आदि मुनिजन तथा ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेदोंसे स्तुति किये जाते हुए तथा नृत्य, गीत, वाद्य आदि सम्पूर्ण मङ्गल-सामप्रियोंसहित वीणा, वेणु, मृदङ्ग, भेरी, पटह, राङ्ग, और गोमुख आदि वाजोंके घोषके साथ समस्त राजाओंके मध्यमें सम्पूर्ण छोकोंकी रक्षाके छिये विधि-पूर्वक अभिषिक्त हुए । इस प्रकार दशरथकुमार कोसळाघिपति, रघुकुळतिळक, जानकीवञ्चम, तीनों भाताओंके प्रिय श्रीरामचन्द्रजीने सिंहासनारूढ़ होकर ग्यारह हजार वर्ष राज्य-शासन किया ॥९९॥

भरतजीने भी गन्धवं छोकको जीतने के छिये जाकर युद्धमें तीन करोड़ गन्धवोंका वध किया और रात्रुप्तजीने भी अतुछित बळशाळी महापराक्रमी मधुपुत्र ळवण राक्षसका संहार किया और मथुरा नामक नगरकी स्थापना की ॥१००-१०१॥ इस प्रकार अपने अतिशय बळपराक्रमसे महान् दुष्टोंको नष्ट करनेवाळे भगवान् राम, ळक्षमण, भरत और रात्रुप्त सम्पूर्ण जगत्की यथोचित व्यवस्था करनेके अनन्तर फिर स्वर्गळोकको पधारे ॥१०२॥ उनके साथ ही जो अयोध्यानिवासी उन भगवदंशस्कर्पोंके अतिशय अनुरागी थे उन्होंने भी तन्मय होनेके कारण साळोक्य-मुक्ति प्राप्त की ॥१०३॥

ं दुष्ट-दछन भगवान् रामके कुश और छव नामक दो पुत्र हुए । इसी प्रकार छक्ष्मणजीके अङ्गद और चन्द्रकेत् भरतजीके तक्ष और पुष्कछ तथा शत्रुप्तजीके

रतिथेरपि निपधः पुत्रोऽभृत्।।१०५।। निषधस्या-प्यनलस्तस्माद्पि नभाः नभसः पुण्डरीकस्तत्तनयः क्षेमधन्वा तस्य च देवानीकस्तस्याप्यहीनकोऽहीनक-स्यापि रुरुस्तस्य च पारियात्रकः पारियात्रकादेवलो देवलाद्वचलः तस्याप्युत्कः उत्काच वज्रनाभस्त-स्माच्छङ्खणस्तस्माद्यपिताश्वस्ततश्च विश्वसहो जज्ञे ।।१०६।। तस्माद्धिरण्यनाभः यो महायोगीश्वरा-ज्जैमिनेक्शिष्याद्याज्ञवल्क्याद्योगमवाप ॥१०७॥ हिरण्यनाभस्य पुत्रः पुष्यस्तस्माद्ध्रुवसन्धिस्तत-स्युदर्शनस्तस्माद् प्रिवर्णस्ततक्शी घ्रगस्तस्माद्पि मरुः पुत्रोऽभवत् ॥१०८॥ योऽसौ योगमास्थाया-द्यापि कलापग्राममाश्रित्य तिष्ठति सूर्यवंशक्षत्रप्रवर्त्तियता आगामियुगे ष्यति ॥ ११०॥ तस्यात्मजः प्रसुश्रुतस्तस्यापि सुसन्धिसत्रवाप्यमर्पस्तस्य च सहस्रांस्ततश्च विश्व-भवः ॥१११॥ तस्य बृहद्धलः योऽर्जुनतनयेनाभि-मन्युना भारतयुद्धे क्षयमनीयत ॥११२॥

एते इक्ष्वाकुभूपालाः प्राधान्येन मयेरिताः । एतेषां चरितं शृण्यन् सर्वेपापैः प्रमुच्यते ॥११३॥

सुवाहु और शूरसेन नामक पुत्र हुए ॥१०४॥ कुराके अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके अनल, अनलके नम, नमके पुण्डरीक, पुण्डरीकके क्षेमधन्या, क्षेमधन्वाके देवानीक, देवानीकके अहीनक, अहीनकके रुरु, रुरुके पारियात्रक, पारियात्रकके देवल, देवलके वचल, वचलके उत्क, उत्कके वज्रनाम, वज्रनामके राङ्खण, राङ्खणके युषिताश्व और युषिताश्वके विश्वसह नामक पुत्र हुआ ॥१०५-१०६॥ विश्वसहके हिरण्य-नाभ नामक पुत्र हुआ जिसने जैमिनिके शिष्य याज्ञवल्क्यजीसे योगविद्या प्राप्त की महायोगीस्वर थी ॥१०७॥ हिरण्यनामका पुत्र पुष्य था, उसका ध्रवसन्धि, ध्रवसन्धिका सुदर्शन, सुदर्शनका अग्निवर्ण, अद्भिवर्णका शांत्रग तथा शीत्रगका पुत्र मरु हुआ जो इस समय भी योगाभ्यासमें तत्पर हुआ कलापप्राममें स्थित है ॥१०८-१०९॥ आगामी युगमें यह सूर्यवंशीय क्षत्रियोंका प्रवर्त्तक होगा ॥११०॥ मरुका पुत्र प्रसुश्रुत, प्रसुश्रुतका सुसन्धि, सुंसन्धिका अमर्ष, अमर्पका सहस्वान्, सहस्वान्का विश्वमव विश्वभवका पुत्र वृहदूछ हुआ जिसको भारतीय युद्धमें अर्जुनके पुत्र अभिमन्युने मारा था ॥१११-११२॥

इस प्रकार मैंने यह इक्ष्वाकुकुछके प्रधान-प्रधान राजाओंका वर्णन किया। इनका चरित्र धुननेसे मनुष्य सकल पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥११३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थेऽशे चतुर्थोऽच्यायः॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

निमि-चरित्र और निमिवंशका वर्णन ।

श्रीपराशर उवाच

इक्ष्वाकुतनयो योऽसौ निमिनीम सहस्रं वत्सरं सत्रमारेमे ॥१॥ वसिष्ठं च होतारं वरयामास ॥२॥ तमाह वसिष्ठोऽहमिन्द्रेण पश्चवर्षशतयागार्थं प्रथमं श्रीपराशरजी बोले—इक्ष्वाकुका जो निमिनामक पुत्र था उसने एक सहस्रवर्षमें समाप्त होनेवाले यज्ञका आरम्भ किया ॥ १ ॥ उस यज्ञमें उसने वसिष्ठजीको होता वरण किया ॥ २ ॥ वसिष्ठजीने उससे कहा कि पाँच सौ वर्षके यज्ञके लिये इन्द्रने मुझे पहले ही वृतः ॥ ३॥ तदनन्तरं प्रतिपाल्यतामागतस्तवापि ऋत्विग्भविष्यामीत्युक्ते स पृथिवीपतिर्न किञ्चि-दुक्तवान् ॥ ४॥

विषष्ठोऽप्यनेन सम्नेन्यिप्सितमित्यमरपतेर्याग-मकरोत् ॥ ५ ॥ सोऽपि तत्काल एवान्यैगौँतमादि-मिर्यागमकरोत् ॥ ६॥

समाप्ते चामरपतेर्यागे त्वरया वसिष्ठो निमियज्ञं करिष्यामीत्याजगाम ॥ ७॥ तत्कर्मकर्तृत्वं च गौतमस्य दृष्ट्वा स्वपते तस्मै राज्ञे मां प्रत्याख्यायै-तदनेन गौतमाय कर्मान्तरं समर्पितं यस्मात्तस्मा-द्यं विदेहो भविष्यतीति शापं ददौ॥८॥ प्रबुद्धश्चा-साववनिपतिरिप प्राह ॥ ९॥ यस्मान्मामसम्भा-ष्याज्ञानत एव श्यानस्य शापोत्सर्गमसौ दृष्ट-गुरुश्वकार तस्मात्तस्यापि देहः पतिष्यतीति शापं दन्ता देहमत्यजत् ॥ १०॥

तच्छापाच मित्रावरुणयोस्तेजसि वसिष्ठस्य चेतः प्रविष्टम् ॥११॥ उर्वशीदर्शनादुद्भृतबीज-प्रपातयोस्तयोस्सकाशाद्धसिष्ठो देहमपरं लेभे ॥१२॥ निमेरपि तच्छरीरमतिमनोहरगन्धतैला-दिमिरुपसंस्क्रियमाणं नैव क्केदादिकं दोषमवाप सद्यो मृत इव तस्यौ ॥१३॥

यज्ञसमाप्ती भागग्रहणाय देवानागतानृत्विज जञ्जर्यजमानाय वरो दीयतामिति ॥ १४॥ देवैश्व छन्दितोऽसौ निमिराह ॥१५॥ भगवन्तो-ऽिकलसंसारदुःखहन्तारः ॥१६॥ न होताहगन्यद्-दुःखमस्ति यच्छरीरात्मनोर्वियोगे मवति ॥१७॥ वरण कर लिया है ॥ ३ ॥ अतः इतने समय तुम ठहर जाओ, वहाँसे आनेपर मैं तुम्हारा भी ऋत्विक् हो जाऊँगा । उनके ऐसा कहनेपर राजाने उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥ ४ ॥

वसिष्ठजीने यह समझकर कि राजाने उनका कथन स्वीकार कर लिया है इन्द्रका यज्ञ आरम्भ कर दिया।।५।। किन्तु राजा निमि भी उसी समय गौतमादि अन्य होताओं द्वारा अपना यज्ञ करने लगे॥६॥

देवराज इन्द्रका यज्ञ समाप्त होते ही 'मुझे निमिका यज्ञ कराना है' इस विचारसे विसष्टजी भी तुरन्त ही आ गये ॥ ७ ॥ उस यज्ञमें अपना [होताका] कर्म गौतमको करते देख उन्होंने सोते हुए राजा निमिको यह शाप दिया कि 'इसने मेरी अवज्ञा करके सम्पूर्ण कर्मका भार गौतमको सौंपा है इसिल्ये यह देहहीन हो जायगा' ॥ ८ ॥ सोकर उठनेपर राजा निमिने भी कहा—॥९॥ ''इस दुष्ट गुरुने मुझसे विना वातचीत किये अज्ञानतापूर्वक मुझ सोये हुएको शाप दिया है, इसिल्ये इसका देह भी नष्ट हो जायगा।" इस प्रकार शाप देकर राजाने अपना शरीर छोड़ दिया ॥१०॥

राजा निमिके शापसे वसिष्ठजीका लिङ्गदेह मित्रावरुणके वीर्यमें प्रविष्ट हुआ ॥११॥ और उर्वशीके देखनेसे उसका वीर्य स्खलित होनेपर उसीसे उन्होंने दूसरा देह धारण किया ॥१२॥ निमिका शरीर मी अति मनोहर गन्ध और तैल आदिसे सुरक्षित रहनेके कारण गला-सड़ा नहीं, बल्कि तत्काल मरे हुए देहके समान ही रहा ॥१३॥

यज्ञ समाप्त होनेपर जब देवगण अपना भाग ग्रहण करनेके लिये आये तो उनसे ऋत्विगण बोले कि— "यजमानको वर दीजिये" ॥ १४ ॥ देवताओं द्वारा प्रेरणा किये जानेपर राजा निमिने उनसे कहा— ॥ १५ ॥ "भगवन् ! आपलेग सम्पूर्ण संसार-दुःखको दूर करनेवाले हैं ॥ १६ ॥ मेरे विचारमें शरीर और आत्माके वियोग होनेमें जैसा दुःख होता है वैसा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

तदहिमच्छामि सकललोकलोचनेषु वस्तुं न पुनक्शरीरग्रहणं कर्तुमित्येवमुक्तेदेंवैरसावशेषभूता-नां नेत्रेष्ववतारितः ॥१८॥ ततो भूतान्युन्मेष-निमेषं चक्कः ॥१९॥

अपुत्रस्य च भृशुजः शरीरमराजकभीरवो ग्रुनयोऽरण्या ममन्थुः ॥ २० ॥ तत्र च कुमारो जज्ञे ॥२१॥ जननाजनकसंज्ञां चावाप ॥ २२ ॥ अश्रुद्धिदेहोऽस्य पितेति वैदेहः मथनान्मिथिरिति ॥२३॥ तस्योदावसुः पुत्रोऽभवत् ॥२४॥ उदाव-सोर्नन्दिवर्द्धनस्ततस्सुकेतुः तस्मादेवरातस्ततश्र गृहदुक्थः तस्य च महावीर्यस्तस्यापि सुशृतिः ॥२५॥ ततश्र धृष्टकेतुरजायत ॥२६॥ धृष्टकेतोई-यश्वस्तस्य च मनुर्मनोः प्रतिकः तस्मात्कृतरथ-स्तस्य देवमीदः तस्य च विवुधो विवुधस्य महा-धृतिस्ततश्र कृतरातः ततो महारोमा तस्य सुवर्ण-रोमा तत्पुत्रो हस्वरोमा इस्वरोम्णस्सीरध्वजोऽभवत् ॥२७॥ तस्य पुत्रार्थं यजनश्चवं कृषतः सीरे सीता दुहिता सम्रत्पन्ना ॥२८॥

सीरध्वजस्य आता साङ्काश्याधिपतिः कुश्ध्व-जनामासीत् ॥२९॥ सीरध्वजसापत्यं भातुमान् मातुमतश्यतद्युम्नः तस्य तु श्रुचिः तस्माचोर्ज-नामा पुत्रो जज्ञे ॥३०॥ तस्यापि शतध्वजः ततः कृतिः कृतेरङ्जनः तत्पुत्रः कुरुजित् ततोऽ-रिष्टनेमिः तसाच्छ्रतायुः श्रुतायुषः सुपार्श्वः तसात्मुङ्जयः ततः क्षेमावी क्षेमाविनोऽनेनाः तसाद्भीमरथः तस्य सत्यरथः तसादुपगुरुपगो-रुपगुप्तः तत्पुत्रः सागतस्तस्य च सानन्दः तस्माच सुवर्चाः तस्य च सुपार्श्वः तस्यापि सुमाषः

और कोई दुःख नहीं है ॥ १७॥ इसिल्ये मैं अव फिर शरीर प्रहण करना नहीं चाहता, समस्त लोगोंके नेत्रोंमें ही वास करना चाहता हूँ।" राजाके ऐसा कहनेपर देवताओंने उनको समस्त जीवोंके नेत्रोंमें अवस्थित कर दिया ॥ १८॥ तमीसे प्राणी निमेषोन्मेष (पलक खोलना-मूँदना) करने लगे हैं॥१९॥

तदनन्तर अराजकताके भयसे मुनिजनोंने उस पुत्रहीन राजाके शारीरको अरणि (शमीदण्ड) से मँया ॥ २०॥ उससे एक कुमार उत्पन्न हुआ जो जन्म छेनेके कारण 'जनक' कहळाया ॥ २१-२२ ॥ इसके पिता विदेह थे इसिछिये यह 'वैदेह' कहलाता है, और मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण 'मिथि' भी कहा जाता है || २३ || उसके उदावसु नामक पुत्र हुआ ॥ २४ ॥ उदावसुके नन्दिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धनके सुकेतु, सुकेतुके देवरात, देवरातके बृहदुक्य, बृहदुक्यके महावीर्य, महावीर्यके सुधृति, सुधृतिके धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके हर्यश्व, हर्यश्वके मनु, मनुके प्रतिक, प्रतिक-के कृतरथ, कृतरथके देवमीढ, देवमीढके विबुध, विबुधके महाधृति, महाधृतिके कृतरात, कृतरातके महारोमा, महारोमाके सुवर्णरोमा, सुवर्णरोमाके हखरोमा और हखरोमाके सीरध्वज नामक पुत्र हुआ || २५-२७ || वह पुत्रकी कामनासे यज्ञभूमि-को जोत रहा था। इसी समय हलके अग्र भागमें उसके सीता नामकी कन्या उत्पन्न हुई ॥ २८॥

सीरध्वजका भाई सांकाश्यनरेश कुशध्वज था। २९॥ सीरध्वजके भानुमान् नामक पुत्र हुआ। भानुमान्के शतधुम्न, शतधुम्नके शुचि, शुचिके ऊर्जनामा, ऊर्जनामाके शतध्वज, शतध्वजके कृति, कृतिके अञ्चन, अञ्चनके कुरुजित् , कुरुजित्के अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमिके श्रुतायु, श्रुतायुके सुपार्श्व, सुपार्श्वके सुञ्जय, सञ्जयके क्षेमावी, क्षेमावीके अनेना, अनेनाके भोमरथ, मौमरथ-के सत्यरथ, सत्यरथके उपगु, उपगुके उपगुप्त, उपगुप्तके खागत, खागतके खानन्द, खानन्दके सुवर्चा, सुवर्चाके सुपार्श्व, सुपार्श्वके सुमाप,

तस्य सुश्रुतः तस्मात्सुश्रुताज्ञयः तस्य पुत्रो विजयो विजयस्य ऋतः ऋतात्सुनयः सुनया-द्वीतह्वयः तस्माद्धृतिर्धृतेर्वहुलाश्वः तस्य पुत्रः कृतिः ॥३१॥ कृतौ सन्तिष्ठतेऽयं जनकवंशः ॥३२॥ इत्येते मैथिलाः ॥३३॥ प्रायेणैते आत्म-विद्याश्रयिणो भूपाला मवन्ति ॥३४॥ सुमापके सुश्रुत, सुश्रुतके जय, जयके विजय, विजयके ऋत, ऋतके सुनय, सुनयके वीतह्व्य, वीतह्व्यके धृति, धृतिके बहुलाश्व और बहुलाश्वके कृति नामक पुत्र हुआ ॥ ३०-३१॥ कृतिमें ही इस जनकवंशकी समाप्ति हो जाती है॥ ३२॥ ये ही मैथिलभूपाल-गण हैं ॥ ३३॥ प्रायः ये सभी राजालोग आत्म-विद्याको आश्रय देनेवाले होते हैं॥ ३४॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थेंऽशे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५॥

छठा अध्याय

सोमचंशका वर्णनः चन्द्रमा, बुध और पुरूरवाका चरित्र।

श्रीमैत्रेय उवाच

स्र्यस्य वंक्या भगवन्कथिता भवता मम । सोमस्याप्यस्तिलान्वंक्याञ्छ्रोतुमिच्छामि पार्थिवान् कीर्त्यते स्थिरकीर्तीनां येषामद्यापि सन्तितिः। प्रसादसुसुखस्तान्मे ब्रह्मन्नाख्यातुमईसि ॥ २॥

श्रीपराशर उवाच

श्रृयतां मुनिशार्दूल वंशः प्रथिततेजसः । सोमस्यानुक्रमात्व्याता यत्रोवीपतयोऽभवन् ॥३॥ अयं हिंवंशोऽतिवलपराक्रमद्युतिशीलचेष्टा-

वद्भिरतिगुणान्वितैर्नहुषययातिकार्तवीर्यार्जुनादि-मिर्भूपाठैरलङ्कृतस्तमहं कथयामि श्र्यताम्॥४॥ अखिलजगत्स्नन्दुर्भगवतो नारायणस्य नामि-

सरोजसमुद्भवाञ्जयोनेर्ब्रक्षणः पुत्रोऽत्रिः ॥ ५ ॥ अत्रेस्सोमः ॥ ६ ॥ तं च मगवानञ्जयोनिः अशेषौषधिद्विजनक्षत्राणामाधिपत्येऽभ्यपेचयत् । ७। स च राजद्धयमकरोत् ॥ ८ ॥ तत्त्रभावादत्यु-त्कृष्टाधिपत्याधिष्ठातृत्वाचैनं मद् आविवेश ॥ ९॥ मदावलेपाच सकलदेवगुरोर्बृहस्पतेस्तारां नाम

श्रीमैत्रेयजी बोले-भगवन् ! आपने सूर्यवंशीय राजाओंका वर्णन तो कर दिया, अत्र मैं सम्पूर्ण चन्द्र-वंशीय भूपतियोंका वृत्तान्त भी सुनना चाहता हूँ। जिन स्थिरकीर्ति महाराजोंकी सन्ततिका सुयश आज भी गान किया जाता है, हे ब्रह्मन् ! प्रसन्न-मुखसे आप उन्हींका वर्णन मुझसे कीजिये ॥ १-२॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मुनिशार्दूल ! परम तेजस्वी चन्द्रमाके वंशका क्रमशः श्रवण करो जिसमें अनेकों विख्यात राजालोग हुए हैं ॥ ३॥

यह वंश नहुष, ययाति, कार्तवीर्य और अर्जुन आदि अनेकों अति वल-पराक्रमशील, कान्तिमान्, क्रियावान् और सद्गुणसम्पन्न राजाओंसे अलंकृत हुआ है। सुनो, मैं उसका वर्णन करता हूँ ॥ ४॥

सम्पूर्ण जगत्के रचियता भगवान् नारायणके नामि-कमछसे उत्पन्न हुए भगवान् ब्रह्माजीके पुत्र अत्रि प्रजापित थे ॥ ५ ॥ इन अत्रिके पुत्र चन्द्रमा हुए ॥ ६ ॥ कमछ-योनि भगवान् ब्रह्माजीने उन्हें सम्पूर्ण ओषि, द्विजजन और नक्षत्रगणके आधिपत्यपर अमिषिक्त कर दिया था ॥ ७ ॥ चन्द्रमाने राजसूययज्ञ-का अनुष्ठान किया ॥ ८ ॥ अपने प्रमाव और अति उत्कृष्ट आधिपत्यके अधिकारी होनेसे चन्द्रमापर राजमद सवार हुआ ॥ ९ ॥ तब मदोन्मत्त हो जानेके कारण उसने समस्त देवताओंके गुरु भगवान् बृहस्पित-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पत्नीं जहार ।। १० ।। बहुशश्च बृहस्पतिचोदितेन भगवता ब्रह्मणा चोद्यमानः सकलैश्च देविंभियी-च्यमानोऽपि न सुमोच ॥ ११ ॥

तस्य चन्द्रस्य च वृहस्पतेर्द्वेपादुश्चना पार्ष्णि-<u>प्राहोऽभृत्</u> ॥ १२ ॥ अङ्गिरसश्च सकाशादुपलब्ध-विद्यो भगवान्रुद्रो वृहस्पतेः साहाय्यमकरोत् ।१३।

यतश्रोशना ततो जम्मकुम्भाद्याः समस्ता एव दैत्यदानवनिकाया महान्तम्रुद्यमं चक्रुः॥१४॥ दृहस्पतेरिप सकलदेवसैन्ययुतः सहायः शकोऽभवत् ॥१५॥ एवं च तयोरतीवोग्रसंग्रामस्तारानिमित्तस्तारकामयो नामाभृत् ॥१६॥ ततश्र समस्तश्रखाण्यसुरेषु रुद्रपुरोगमा देवा देवेषु चाशेपदानवा ग्रम्रुचः ॥१७॥ एवं देवासुराहवसंक्षोभश्रुब्धहृदयमशेषमेव जगद्रक्षाणं शरणं जगाम ॥१८॥ ततश्र मगवानब्जयोनिरप्युशनसं शङ्करमसुरान्देवांश्र निवार्य वृहस्पतये तारामदापयत् ॥१९॥ तां चान्तः प्रसवामवलोक्य वृहस्पतिरप्याह् ॥२०॥ नैष मम क्षेत्रे भवत्यान्यस्य सुतो धार्यस्सम्रुत्सुजैनमलमलमिष्ठांनेति ॥२१॥

सा च तेनैवयुक्तातिपतित्रता भर्तृवचनानन्तरं तिमधीकास्तम्बे गर्भयुत्ससर्ज ॥२२॥ स चोत्सृष्ट-मात्र एवातितेजसा देवानां तेजांस्याचिश्चेप॥२३॥ बृहस्पतिमिन्दुं च तस्य कुमारस्यातिचारुतया सामिलाषो दृष्टा देवास्सयुत्पनसन्देहास्तारां पत्रच्छुः ॥ २४ ॥ सत्यं कथयासाकमिति सुमगे सोमस्याथ वा बृहस्पतेर्यं पुत्र इति ॥ २५ ॥

जीकी भार्या ताराको हरण कर लिया ॥ १० ॥ तथा बृहस्पतिजीकी प्रेरणासे भगवान् ब्रह्माजीके बहुत कुछ कहने-सुनने और देवर्षियोंके माँगनेपर भी उसे न छोड़ा ॥ ११ ॥

वृहस्पतिजीसे द्वेष करनेके कारण शुक्रजी भी चन्द्रमाके सहायक हो गये और अंगिरासे विद्या-लाभ करनेके कारण भगवान् रुद्रने वृहस्पतिकी सहायता की [क्योंकि वृहस्पतिजी अंगिराके पुत्र हैं]॥ १२-१३॥

जिस पक्षमें शुक्रजी थे उस ओरसे जम्भ और कुम्भ आदि समस्त दैत्य-दानवादिने भी [सहायता देनेमें] बड़ा उद्योग किया ॥ १४ ॥ तथा सकल देव-सेनाके सहित इन्द्र बृहस्पतिजीके सहायक हुए ॥ १५ ॥ इस प्रकार ताराके लिये उनमें तारका-मय नामक अत्यन्त घोर युद्ध छिड् गया ॥ १६॥ तव रुद्र आदि देवगण दानवोंके प्रति और दानव-गण देवताओंके प्रति नाना प्रकारके शस्त्र छोड़ने छगे ॥ १७ ॥ इस प्रकार देवासुर-संप्रामसे क्षुव्य-चित्त हो सम्पूर्ण संसारने ब्रह्माजीकी शरण छी ॥ १८॥ तब भगवान् कमल-योनिने भी शुक्र, रुद्र, दानव और देवगणको युद्धसे निवृत्त कर बृहस्पतिजीको तारा दिल्वा दी ॥ १९ ॥ उसे गर्भिणी देखकर बृहस्पति-जीने कहा-।। २०॥ "मेरे क्षेत्रमें तुझको दूसरेका पुत्र धारण करना उचित नहीं है; इसे दूर कर, अधिक धृष्टता करना ठीक नहीं" ॥ २१॥

बृहस्पतिजीके ऐसा कहनेपर उस पतित्रताने पतिके वचनानुसार वह गर्भ इपीकास्तम्ब (सींककी झाड़ी) में छोड़ं दिया ॥२२॥ उस छोड़े हुए गर्भने अपने तेजसे समस्त देवताओंके तेजको मिलन कर दिया ॥ २३॥ तदनन्तर उस वालककी सुन्दरताके कारण बृहस्पति और चन्द्रमा दोनोंको उसे छेनेके लिये उत्सुक देख देवताओंने सन्देह हो जानेके कारण तारासे पूछा—॥ २४॥ "हे सुमगे! तू हमको सच-सच वता, यह पुत्र बृहस्पतिका है या चन्द्रमाका?"॥ २५॥

एवं तैरुक्ता सा तारा हिया किश्चिकोवाच ।।२६।। बहुशोऽप्यमिहिता यदासौ देवेभ्यो नाचचक्षे ततस्स कुमारस्तां शप्तुमुद्यतः प्राह ।। २७ ।। दुष्टेऽम्ब कसान्मम तातं नाख्यासि ।। २८ ।। अद्यैव ते व्यलीकलञ्जावत्यास्तथा शास्तिमहं करोमि ।। २९ ।। यथा च नैवमद्याप्यतिमन्थर-वचना भविष्यसीति ।। ३० ।।

अथ भगवान् पितामहः तं कुमारं सिन्नवार्ये स्वयमपृच्छत्तां ताराम् ॥ ३१॥ कथय वत्से कस्यायमात्मजः सोमस्य वा बृहस्पतेर्वा इत्युक्ता लज्जमानाह सोमस्येति ॥ ३२॥ ततः प्रस्फुरदु-च्छ्वसितामलकपोलकान्तिर्भगवानुडुपतिः कुमार-मालिङ्गच साधु साधु वत्स प्राज्ञोऽसीति बुध इति तस्य च नाम चक्रे ॥ ३३॥

तदाख्यातमेवैतत् स च यथेलायामात्मजं पुरूरवसम्रत्पादयामास ॥ ३४ ॥ पुरूरवास्त्वति-दानशीलोऽतियज्वातितेजस्वी । यं सत्यवादिन-मित्रस्त्वतं मनस्विनं मित्रावरुणशापान्मानुषे लोके मया वस्तव्यमिति कृतमितरुर्वशी दद्शी ॥ ३५ ॥ दृष्टमात्रे च तसिन्नपद्दाय मानमशेषम-पास्य स्वर्गसुस्तामिलाषं तन्मनस्का भूत्वा तमेवो-पतस्थे ॥ ३६ ॥ सोऽपि च तामितशयितसकल-लोकस्त्रीकान्तिसौकुमार्यलावण्यगतिविलासहासादि-गुणामवलोक्य तदायत्तिचन्नवृत्तिर्वभूव ॥ ३७ ॥ उमयमपि तन्मनस्कमनन्यदृष्टि परित्यक्तस-मस्तान्यप्रयोजनमभृत् ॥ ३८ ॥

राजा तु प्रागल्भ्यात्तामाह ॥ ३९॥ सुभ्रु त्वामहमभिकामोऽस्मि प्रसीदानुरागसुद्रहेत्युक्ता लञ्जावस्वण्डितसुर्वशी तं प्राह ॥ ४०॥

उनके ऐसा कहनेपर ताराने ख्जावश कुछ भी न कहा ॥ २६ ॥ जब बहुत कुछ कहनेपर भी वह देवताओंसे न वोळी तो वह बाळक उसे शाप देनेके ळिये उचत होकर वोळा—॥ २७ ॥ "अरी दुष्टा माँ ! त् मेरे पिता-का नाम क्यों नहीं बतळाती ? तुझ व्यर्थ ळ्जावतीकी मैं अभी ऐसी गति करूँगा जिससे त् आजसे ही इस प्रकार अत्यन्त धीरे-धीरे वोळना भूळ जायगी" ॥ २८—३०॥

तदनन्तर पितामह श्रीव्रह्माजीने उस वालकको रोककर तारासे स्वयं ही पृछा ॥ २१ ॥ "वेटी ! ठीक-ठीक वता यह पुत्र किसका है—वृहस्पितका या चन्द्रमाका ?" इसपर उसने लजापूर्वक कहा, "चन्द्रमाका" ॥ ३२ ॥ तब तो नश्चत्रपित भगवान् चन्द्रने उस वालकको हृदयसे लगाकर कहा—"वहुत ठीक, वहुत ठीक, वेटा ! तुम वहे बुद्धिमान् हो;" और उसका नाम 'बुध' रख दिया। इस समय उनके निर्मल कपोलोंकी कान्ति उच्छ्वसित और देदीप्यमान हो रही थी ॥ ३३ ॥

बुधने जिस प्रकार इलासे अपने पुत्र पुरूरवाको उत्पन्न किया था उसका वर्णन पहले ही कर चुके हैं ॥ ३४ ॥ पुरूरवा अति दानशील, अति याज्ञिक और अति तेजली था । 'मित्रावरुणके शापसे मुझे मर्त्यलोकमें रहना पड़ेगा' ऐसा विचार करते हुए उर्वशी अप्सराकी दृष्ट उस अति सत्यवादी, रूपके धनी और मितमान् राजा पुरूरवापर पड़ी ॥ ३५ ॥ देखते ही वह सम्पूर्ण मान तथा खर्ग-सुखकी इच्छा-को छोड़कर तन्मयमावसे उसीके पास आयी ॥३६॥ राजा पुरूरवाका चित्त भी उसे संसारकी समस्त खियोंमें विशिष्ट तथा कान्ति-सुकुमारता, सुन्दरता, गितिवलास और मुसकान आदि गुणोंसे युक्त देख-कर उसके वशीभूत हो गया ॥ ३० ॥ इस प्रकार वे दोनों ही परस्पर तन्मय और अनन्यचित्त होकर और सब कार्मोंको भूल गये ॥ ३८ ॥

निदान राजाने निःसंकोच होकर कहा-॥ ३९॥ "हे सुस्रु! मैं तुम्हारी इच्छा करता हूँ, तुम प्रसन्न होकर मुझे प्रेम-दान दो।" राजाके ऐसा कहनेपर उर्वशीने भी छज्जावश स्खिलत खरमें कहा-॥ ४०॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

भवत्वेवं यदि मे समयपरिपालनं भवान् करोती-त्याख्याते पुनरिप तामाह ।। ४१ ॥ आख्याहि मे समयमिति ॥ ४२ ॥ अथ पृष्टा पुनरप्य-त्रवीत् ॥ ४३ ॥ श्रयनसमीपे ममोरणकद्वयं पुत्रभूतं नापनेयम् ॥ ४४ ॥ भवांश्च मया न नम्रो द्रष्टच्यः ॥ ४५ ॥ घृतमात्रं च ममाहार इति ॥ ४६ ॥ एवमेवेति भूपतिरप्याह ॥ ४७ ॥

तया सह स चार्यानिपतिरलकायां चैत्ररथादि-वनेष्वमलपद्मस्वण्डेषु मानसादिसरस्स्वतिरमणी-येषु रममाणः पष्टिवर्षसहस्राण्यनुदिनप्रवर्द्धमान-प्रमोदोऽनयत् ॥ ४८॥ उर्वशी च तदुप-भोगात्प्रतिदिनप्रवर्द्धमानानुरागा अमरलोक-वासेऽपि न स्पृहां चकार ॥ ४९॥

विना चोर्वक्या सुरलोकोऽप्सरसां सिद्ध-गन्धर्वाणां च नातिरमणीयोऽभवत् ॥ ५०॥ ततश्रोर्वशीपुरूरवसोस्समयविद्धिश्वावसुर्गन्धर्वसम-वेतो निशि शयनाभ्याशादेकप्ररणकं जहार ॥५१॥ तस्याकाशे नीयमानस्योर्वशी शब्दम-शृणोत् ॥ ५२ ॥ एवम्रवाच च ममानाथायाः पुत्रः केनापहियते कं शरणमुपयामीति ॥ ५३ ॥ तदाकर्ण्य राजा मां नम्नं देवी वीक्ष्यतीति न ययौ ॥ ५४ ॥ अथान्यमप्युरणकमादाय गन्धर्वा ययुः 114411 तस्याप्यपहियमाणस्याकर्ण्य शब्दमाकाशे पुनरप्यनाथास्म्यहमभर्तृका कापुरुषाश्रयेत्यार्त्तराविणी वभूव ॥ ५६ ॥

राजाप्यमर्षवशादन्धकारमेतदिति सहग-

मादाय दुष्ट दुष्ट हतोऽसीति व्याहरन्रभ्यथावत्

"यदि आप मेरी प्रतिज्ञाको निभा सकें तो अवस्य ऐसा ही हो सकता है।" यह सुनकर राजाने कहा— ॥४१॥ अच्छा, तुम अपनी प्रतिज्ञा मुझसे कहो ॥४२॥ इस प्रकार पृछनेपर वह फिर बोळी —॥४३॥ "मेरे पुत्ररूप इन दो मेपों (भेड़ों) को आप कभी मेरी श्रव्यासे दूर न कर सकेंगे ॥४४॥ मैं कभी आपको नग्न न देखने पाऊँ ॥४५॥ और केवल घृत ही मेरा आहार होगा— [यही मेरी तीन प्रतिज्ञाएँ हैं]"॥ ४६॥ तब राजाने कहा—"ऐसा हो होगा।"॥ ४७॥

तदनन्तर राजा पुरूरवाने दिन-दिन वढ़ते हुए आनन्दके साथ कभी अलकापुरीके अन्तर्गत चैत्ररथ आदि वनोंमें और कभी सुन्दर पद्मखण्डोंसे युक्त अति रमणीय मानस आदि सरोवरोंमें विहार करते हुए साठ हजार वर्ष विता दिये ॥ ४८ ॥ उसके उपभोग-सुखसे प्रतिदिन अनुरागके बढ़ते रहनेसे उर्वशीको भी देवलोकमें रहनेकी इच्ला नहीं रही ॥ ४९ ॥

इधर, उर्वशीके विना अप्सराओं, सिद्धों और गन्धर्वी-को खर्गछोक अत्यन्त रमणीय नहीं माछम होता या ॥ ५०॥ अतः उर्वशो और पुरुखाकी प्रतिज्ञाके जाननेवाले विश्वावसुने एक दिनरात्रिके समय गन्धवींके साथ जाकर उसके शयनागारके पाससे एक मेषका हरण कर लिया ॥ ५१ ॥ उसे आकाशमें ले जाते समय उर्वशीने उसका शब्द सुना ॥ ५२ ॥ तव वह वोळी---''मुझ अनाथाके पुत्रको कौन छिये जाता है, अब मैं किसकी शरण जाऊँ ?" ॥ ५३ ॥ किन्तु यह सुनकर भी इस भयसे, कि रानी मुझे नंगा देख छेगी, राजा नहीं उठा ॥५४॥ तदनन्तर् गन्धर्वगण दूसरा भी मेप लेकर चल दिये॥ ५५॥ उसे ले जाते समय उसका शब्द सुनकर भी उर्वशी 'हाय! में अनाथा और मर्तृहीना हूँ तथा एक कायरके अधीन हो गयी हूँ।' इस प्रकार कहती हुई वह आर्त्तखरसे विळाप करने छगी ॥ ५६॥

तव राजा यह सोचकर कि इस समय अन्धकार है [अतः रानी मुझे नम्न न देख सकेगी], क्रोधपूर्वक 'अरे दुष्ट! त् मारा गया' यह कहते हुए तटवार टेकर ॥ ५७॥ तावच गन्धवैरप्यतीवोज्ज्वला विद्यज्ञानिता ॥ ५८ ॥ तत्प्रभया चोर्वशी राजानमपगताम्बरं दृष्ट्यापृत्वत्तसमया तत्क्षणादेवापक्रान्ता
॥ ५९ ॥ परित्यज्य तावप्युरणको गन्धर्वास्मुरलोकम्रुपगताः ॥ ६० ॥ राजापि च तौ
मेपावादायातिदृष्टमनाः स्वशयनमायातो नोर्वशीं
द्दर्श ॥६१॥ तां चापश्यन् व्यपगताम्बर एवोनमत्तरूपो बम्राम ॥६२॥ कुरुक्षेत्रे चाम्भोजसरस्यन्याभिश्रतस्यिभरप्सरोभिस्समवेताम्र्वशीं ददर्श
॥ ६३ ॥ ततश्रोन्मत्तरूपो जाये हे तिष्ठ मनसि
घोरे तिष्ठ वचसि कपिटके तिष्ठेत्येवमनेकप्रकारं
स्क्रमवोचत् ॥ ६४ ॥

आह चोर्वशी ॥ ६५ ॥ महाराजालमनेना-विवेकचेष्टितेन ॥ ६६ ॥ अन्तर्वत्न्यहमब्दान्ते भवतात्रागन्तव्यं कुमारस्ते भविष्यति एकां च निशामहं त्वया सह वत्स्यामीत्युक्तः प्रहृष्टस्स्वपुरं जगाम ॥ ६७ ॥

तासां चाप्सरसामुर्वशी कथयामास ॥ ६८ ॥ अयं स पुरुषोत्कृष्टो येनाहमेतावन्तं काल-मनुरागाकृष्टमानसा सहोषितेति ॥ ६९ ॥ एव-मनुरागाकृष्टमानसा सहोषितेति ॥ ६९ ॥ एव-मनुरागाकृष्टमानसा सहोषितेति ॥ ६९ ॥ एव-मनुरागाकृष्टमानसा सहोषितेति ॥ ६० ॥ साधु साध्वस्य रूपमप्यनेन सहासाकमि सर्वकालमास्या मनेदिति ॥ ७१ ॥

अब्दे च पूर्णे स राजा तत्राजगाम ॥ ७२ ॥ कुमारं चायुषमस्मै चोर्वशी ददौ ॥ ७३ ॥ दस्वा चैकां निशां तेन राज्ञा सहोषित्वा पश्च पुत्रो-त्पचये गर्भमवाप ॥ ७४ ॥ उवाचैनं राजानमस-त्प्रीत्या महाराजाय सर्व एव गन्धर्वा वरदा-स्तंष्ट्रचा व्रियतां च वर इति ॥ ७५ ॥

पीछे दौड़ा ॥ ५७ ॥ इसी समय गन्धवोंने अति उज्ज्वल विद्युत् प्रकट कर दी ॥५८॥ उसके प्रकाशमें राजाको वस्नहीन देखकर प्रतिज्ञा टूट जानेसे उर्वशी तुरन्त ही वहाँसे चली गयी ॥ ५९ ॥ गन्धवंगण भी उन मेषोंको वहीं छोड़कर खर्गलोकमें चले गये ॥६०॥ किन्तु जब राजा उन मेषोंको लिये हुए अति प्रसन्निचसे अपने शयनागारमें आया तो वहाँ उसने उर्वशीको न देखा ॥ ६१ ॥ उसे न देखनेसे वह उस वस्नहीन-अवस्थामें ही पागलके समान घूमने लगा ॥ ६२ ॥ चूमते-घूमते उसने एक दिन कुरुक्षेत्रके कमल-सरोवरमें अन्य चार अप्सराओंके सिहत उर्वशीको देखा ॥ ६३ ॥ उसे देखकर वह उन्मत्तके समान 'हे जाये ! ठहर, अरी हृदयकी निष्ठुरे ! खड़ी हो जा, अरी कपट रखनेवाली ! वार्तालापके लिये तिनक ठहर जा'—ऐसे अनेक वचन कहने लगा ॥ ६४ ॥

उर्वशी बोळी—''महाराज ! इन अज्ञानियोंकी-सी चेष्टाओंसे कोई लाम नहीं ॥ ६५-६६ ॥ इस समय मैं गर्भवती हूँ । एक वर्ष उपरान्त आप यहीं आ जावें, उस समय आपके एक पुत्र होगा और एक रात मैं भी आपके साथ रहूँगी ।" उर्वशीके ऐसा कहनेपर राजा पुरूरवा प्रसन्न-चित्तसे अपने नगरको चला गया ॥ ६७॥

तदनन्तर उर्वशीने अन्य अप्सराओंसे कहा— ॥६८॥ "ये वही पुरुषश्रेष्ठ हैं जिनके साथ मैं इतने दिनोंतक प्रेमाकृष्ट-चित्तसे भूमण्डलमें रही थी॥६९॥ इसपर अन्य अप्सराओंने कहा—॥७०॥ "वाह! वाह! सचमुच इनका रूप बड़ा ही मनोहर है, इनके साथ तो सर्वदा हमारा भी सहवास हो"॥७१॥

वर्ष समाप्त होनेपर राजा पुरूरवा वहाँ आये ।। ७२ ॥ उस समय उर्वशीने उन्हें 'आयु' नामक एक बालक दिया ॥ ७३ ॥ तथा उनके साथ एक रात रहकर पाँच पुत्र उत्पन्न करनेके लिये गर्भ धारण किया ॥ ७४ ॥ और कहा— 'हमारे पारस्परिक स्नेहके कारण सकल गन्धर्वगण महाराजको वरदान देना चाहते हैं अतः आप अमीष्ट वर माँगिये ॥ ७५ ॥

आह च राजा ॥ ७६ ॥ विजितसकलारातिरविहतेन्द्रियसामध्यों वन्धुमानमितवलकोशोऽसि,
नान्यदसाकप्रविशीसालोक्यात्प्राप्तव्यमस्ति तदहमनया सहोर्वश्या कालं नेतुमिनलपामीत्युक्ते
गन्धर्वा राज्ञेऽप्रिस्थालीं ददुः ॥ ७७ ॥ ऊचुश्रैनमग्निमाम्नायानुसारी भूत्वा त्रिधा कृत्वोर्वशीसलोकतामनोरथप्रहिश्य सम्यग्यजेथाः ततोऽवश्यमभिलपितमवाप्स्यसीत्युक्तस्तामग्निस्थालीमादाय जगाम ॥ ७८ ॥

अन्तरटब्यामचिन्तयत् अहो मेऽतीव मूढता किमहमकरवम् ॥ ७९ ॥ विद्वस्थाली मयैपानीता नोर्वशीति ॥ ८० ॥ अथैनामटन्यामेवाग्निस्थालीं तत्याज स्वपुरं च जगाम ॥८१॥ व्यतीतेऽर्द्धरात्रे विनिद्रश्राचिन्तयत् ॥८२॥ ममोर्नशीसालोक्यप्रा-प्त्यर्थमग्निस्थाली गन्धवैर्दत्ता सा च मयाटव्यां परि-त्यक्ता ॥ ८३ ॥ तदहं तत्र तदाहरणाय यास्या-मीत्युत्थाय तत्राप्युपगतो नाग्निस्थालीमपश्यत् चाश्वत्थमप्रिस्थालीस्थाने ॥ ८४ ॥ शमीगर्भ मयात्राप्रिस्थाली दृष्टाचिन्तयत् ॥ ८५ ॥ निश्चिप्ता सा चाश्वत्थवक्यमीगर्भोऽभृत् ॥ ८६॥ तदेनमेवाहमग्रिरूपमादाय स्वपुरमभिगम्यारणीं कृत्वा तदुत्पन्नाग्रेरुपास्ति करिष्यामीति ॥ ८७॥ एवमेव खपुरमिगम्यारणि चकार ॥ ८८ ॥

तत्त्रमाणं चाङ्गुलैः कुर्वन् गायत्रीमपठत् ॥८९॥ पठतश्राक्षरसंख्यान्येवाङ्गुलान्यरण्यभवत्॥९०॥ राजा बोले—''मैंने समस्त रात्रुओंको जीत लिया है, मेरी इन्द्रियोंकी सामर्थ्य नष्ट नहीं हुई है, मैं बन्धुजन, असंख्य सेना और कोशसे भी सम्पन्न हूँ, इस समय उर्वशिके सहवासके अतिरिक्त मुझे और कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है। अतः मैं इस उर्वशिके साथ ही काल-यापन करना चाहता हूँ।'' राजाके ऐसा कहनेपर गन्धवींने उन्हें एक अग्निस्थाली (अग्नियुक्त पात्र) दी और कहा—''इस अग्निके वैदिक विधिसे गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निरूप तीन भाग करके इसमें उर्वशिके सहवासकी कामनासे मलीमाँति यजन करो तो अवस्य ही तुम अपना अभीष्ट प्राप्त कर लोगे।'' गन्धवींके ऐसा कहनेपर राजा उस अग्निस्थालीको लेकर चल दिये॥ ७६—७८॥

[मार्गमें] वनके अन्दर उन्होंने सोचा—'अहो ! मैं कैसा मूर्ख हूँ ? मैंने यह क्या किया जो इस अग्निस्थालीको तो ले आया और उर्वशीको नहीं लाया'।।७९-८०॥ ऐसा सोचकर उस अग्निस्थालीको वनमें ही छोड़कर वे अपने नगरमें चले आये ॥८१॥ आधीरात बीत जानेके बाद निद्रा ट्रटनेपर राजाने सोचा-॥८२॥ 'उर्वशीकी सन्निधि प्राप्त करनेके लिये ही गन्धवींने मुझे वह अग्निस्थाली दी थी और मैंने उसे वनमें ही छोड़ दिया ॥ ८३ ॥ अतः अब मुझे उसे छानेके छिये जाना चाहिये' ऐसा सोच उठकर वे वहाँ गये, किन्तु उन्होंने उस स्थालीको वहाँ न देखा।।८४।। अग्निस्थाछीके स्थानपर राजा पुरूरवाने एक शमीगर्भ पीपलके बृक्षको देखकर सोचा-॥८५॥ 'मैंने यहीं तो वह अग्निस्थाली फैंकी थी। वह स्याली ही रामीगर्भ पीपल हो गयी है ॥८६॥ अतः इस अग्निरूप अरवत्यको ही अपने नगरमें छे जाकर इसकी अरणि बनाकर उससे उत्पन्न हुए अग्निकी ही उपासना कर्हें' ।। ८७ ॥

ऐसा सोचकर राजा उस अख्यत्यको छेकर अपने नगरमें आये और उसकी अरणि बनायी ॥ ८८ ॥ तदनन्तर उन्होंने उस काष्ठको एक-एक अंगुछ करके गायत्री-मन्त्रका पाठ किया ॥ ८९ ॥ उसके पाठसे गायत्रीकी अक्षर-संख्याके बराबर एक-एक अंगुछकी अरणियाँ हो गर्यो ॥ ९० ॥ तत्राप्तिं निर्मथ्याप्तित्रयमाम्नायानुसारी भूत्वा जुहाव ॥ ९१ ॥ उर्वशीसालोक्यं फलमभिसंहि-तवान् ॥ ९२ ॥ तेनैव चाप्तिविधिना बहुविधान् यज्ञानिष्टा गान्धर्वलोकानवाप्योर्वश्या सहा-वियोगमवाप ॥ ९३ ॥ एकोऽप्रिरादावभवत् एकेन त्वत्र मन्वन्तरे त्रेधा प्रवर्तिताः ॥ ९४ ॥ उनके मन्थनसे तीनों प्रकारके अग्नियोंको उत्पन्न कर उनमें वैदिक विधिसे हवन किया ॥९१॥ तथा उर्वशीके सहवासरूप फल्की इच्छा की ॥९२॥ तदनन्तर उसी अग्निसे नाना प्रकारके यज्ञोंका यजन करते हुए उन्होंने गन्धर्व-लोक प्राप्त किया और फिर उर्वशीसे उनका वियोग न हुआ ॥९३॥ पूर्वकालमें एक ही अग्नियांका उस एकहीसे इस मन्वन्तरमें तीन प्रकारके अग्नियांका प्रचार हुआ ॥९४॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थेऽशे षष्टोऽध्यायः ॥६॥

सातवाँ अध्याय

जहु का गङ्गापान तथा जमदिम्न और विश्वामित्रकी उत्पत्ति।

श्रीपराशर उवाच

तस्याप्यायुर्धीमानमावसुर्विश्वावसुःश्रुतायुर्ध्यतायुरयुतायुरितिसंज्ञाः पद् पुत्रा अभवन् ॥१॥
तथामावसोर्भीमनामा पुत्रोऽभवत् ॥२॥ भीमस्य
काश्चनः काश्चनात्सुहोत्रः तस्यापि जह्नुः ॥३॥
योऽसौ यज्ञवाटमिल्छं गङ्गाम्भसा प्रावितमवलोक्य क्रोधसंरक्तलोचनो भगवन्तं यज्ञपुरुषमात्मनि परमेण समाधिना समारोप्याखिलामेव
गङ्गामपिवत् ॥४॥ अथैनं देवर्षयः प्रसादयामासुः ॥५॥ दुहित्तवे चास्य गङ्गामनयन् ॥६॥
जह्नोश्च सुमन्तुर्नाम पुत्रोऽभवत् ॥७॥

जह्नोश्च सुमन्तुर्नाम पुत्रोऽभवत् ॥ ७॥ तस्याप्यजकस्ततो बलाकाश्चस्तस्यात्कुश्वस्तस्यापि कुशाम्बकुशनाभाधूर्तरजसो वसुश्चेति चत्वारः पुत्रा वभूबुः ॥ ८॥ तेषां कुशाम्बः शक्ततुल्यो मे पुत्रो भवेदिति तपश्चकार ॥ ९॥ तं चोग्रतप-समवलोक्य मा भवत्वन्योऽसन्तुल्यवीर्य इत्या-त्मनैवास्येन्द्रः पुत्रत्वमगच्छत् ॥ १०॥ स गाधिर्नाम पुत्रः कौशिकोऽभवत् ॥ ११॥

श्रीपराशरजी बोळे—राजा पुरूरवाके परम बुद्धि-मान् आयु, अमानसु, विस्वावसु, श्रुतायु, शतायु और अयुतायु नामक छः पुत्र हुए ॥ १ ॥ अमावसुके मीम, मीमके काञ्चन, काञ्चनके सुद्दोत्र और सुद्दोत्र-के जह्नु नामक पुत्र हुआ जिसने अपनी सम्पूर्ण यज्ञशालाको गङ्गाजलसे आग्नावित देख क्रोधसे रक्त-नयन हो भगवान् यज्ञपुरुषको परम समाधिके द्वारा अपनेमें स्थापित कर सम्पूर्ण गंगाजीको पी लिया था ॥ २—४ ॥ तब देविषयोंने इन्हें प्रसन्न किया और गङ्गाजीको इनकी पुत्रीरूपसे पाकर ले गये ॥ ५-६ ॥

जहुके सुमन्तु नामक पुत्र हुआ ॥ ७ ॥ सुमन्तुके अजक, अजकके बलाकास्व, बलाकास्वके कुश और वसु नामक चार पुत्र हुए ॥ ८ ॥ उनमेंसे कुशाम्बने इस इच्छासे कि, मेरे इन्द्रके समान पुत्र हो, तपस्या की ॥ ९ ॥ उसके उम्र तपको देखकर 'बलमें कोई अन्य मेरे समान न हो जाय' इस मयसे इन्द्र खर्य ही इनका पुत्र हो गया ॥ १० ॥ वह गाघि नामक पुत्र कौशिक कहलाया ॥ ११ ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

गाधिश्व सत्यवतीं कन्यामजनयत ॥ १२॥ तां च भागव ऋचीको वत्रे ॥ १३॥ गाधिर-प्यतिरोषणायातिवृद्धाय ब्राह्मणाय दातुमनिच्छ-नेकतश्यामकर्णानामिन्दुवर्चसामनिलरंहसाम-थानां सहस्रं कन्याञ्चल्कमयाचत्री। १४ ॥ तेना-प्युपिणा वरुणसकाञादुपलभ्याश्वतीर्थोत्पन्नं तादशमश्रसहस्रं दत्तम् ॥ १५॥

ततस्तामृचीकः कन्याम्रपयेमे ऋचीकश्च तस्याश्ररुमपत्यार्थं चकार ॥ १७॥ तत्त्रसादितश्च तन्मात्रे क्षत्रवरपुत्रोत्पत्तये चरुमपरं साधयामास ॥ १८॥ एष चरुर्भवत्या अयमपर-श्ररुस्त्वन्मात्रा सम्यगुपयोज्य इत्युक्तवा वनं जगाम ॥ १९॥

उपयोगकाले च तां माता सत्यवतीमाह ।। २०।। पुत्रि सर्व एवात्मपुत्रमतिगुणमभिलपति नात्मजायाभ्रात्रुगणेष्वतीवादृतो भवतीति ॥२१॥ अतोऽहिसि ममात्मीयं चरुं दातुं मदीयं चरुमा-त्मनोपयोक्तम् ॥ २२ ॥ मत्पुत्रेण हि सकलभू-मण्डलपरिपालनं कार्यं कियद्वा ब्राह्मणस्य बल-वीर्यसम्पदेत्युक्ता सा खचरुं मात्रे दत्तवती ।।२३।।

वनादागत्य सत्यवतीमृषिरपश्यत ॥ २४ ॥ आह चैनामतिपापे किमिदम-कार्य भवत्या कृतम् अतिरौद्रं ते वपुर्रुक्ष्यते ॥ २५ ॥ नूनं त्वया त्वन्मातृसात्कृतश्ररूपयुक्तो न युक्तमेतत् ॥ २६॥ मया हि तत्र चरौ सकलै-श्वर्यवीर्यशौर्यवलसम्पदारोपिता त्वदीयचरावप्य-खिलञ्जान्तिज्ञानतितिश्चादित्राह्मणगुणसम्पत्।२७। त्रच विपरीतं कुर्वत्यास्तवातिरौद्रास्त्रधारणपालन- कामेमं तत्परं क्षात्रयक समान आ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

गाधिने सत्यवती नामकी कन्याको जन्म दिया ॥१२॥ उसे भृगुपत्र ऋचीकने वरण किया ॥ १३ ॥ गाधिने अति क्रोधी और अति वृद्ध ब्राह्मणको कन्या न देनेकी इच्छासे ऋचीकसे कन्याके मृत्यमें जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् और पवनके तुरुय वेगवान् हों, ऐसे एक सहस्र स्यामकर्ण घोड़े माँगे ॥ १४ ॥ किन्त महर्षि ऋचीकने अश्वतीर्थसे उत्पन्न हुए वैसे एक सहस्र घोड़े उन्हें वरुणसे छेकर दे दिये ॥ १५॥

तव ऋचीकने उस कन्यासे विवाह किया ॥१६॥ तिद्वरान्त एक समय । उन्होंने सन्तानकी कामनासे सत्यवतीके छिये चरु (यज्ञीय खीर्) तैयार किया ॥१०॥ और उसीके द्वारा प्रसन्न किये जानेपर एक क्षत्रियश्रेष्ठ पत्रकी उत्पत्तिके छिये एक और चरु उसकी माताके छिये भी बनाया ॥१८॥ और 'यह चरु तुम्हारे छिये है तथा यह तुम्हारी माताके लिये-इनका तुम यथोचित उपयोग करना'-ऐसा कहकर वे वनको चले गये॥१९॥

उनका उपयोग करते समय सत्यवतीकी माताने उससे कहा-॥२०॥ "वेटी ! समी छोग अपने ही छिये सबसे अधिक गुणवान पत्र चाहते हैं, अपनी प्रतीके भाईके गुणोंमें किसीकी भी विशेष रुचि नहीं होती ॥२१॥ अतः त् अपना चरु तो मुझे दे दे और मेरा तू छे छे; क्योंकि मेरे पुत्रको तो सम्पूर्ण भूमण्डल-का पालन करना होगा और ब्राह्मणकुमारको तो बल, बीर्य तथा सम्पत्ति आदिसे लेना ही क्या है।" ऐसा कहनेपर सत्यवतीने अपना चरु अपनी माताको दे दिया ॥२२-२३॥

वनसे छौटनेपर ऋषिने सत्यवतीको देखकर कहा-''अरी पापिनि ! त्ने ऐसा क्या अकार्य किया है जिससे तेरा शरीर ऐसा भयानक प्रतीत होता हैं ॥२४-२५॥ अवस्य ही त्ने अपनी माताके लिये तैयार किये चरुका उपयोग किया है, सो ठीक नहीं है ॥२६॥ मैंने उसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य, पराक्रम, शूरता और बलकी सम्पत्तिका आरोपण किया था तथा तेरेमें शान्ति, ज्ञान, तितिक्षा आदि सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित गुणोंका समावेश किया था ॥२७॥ उनका विपरीत उपयोग करनेसे तेरे अति भयानक अखशस्त्रधारी पालन कर्ममें तत्पर क्षत्रियके समान आचरणवाला पुत्र होगा निष्ठः क्षत्रियाचारः पुत्रो भविष्यति तस्याश्चोप-शमरुचित्रीक्षणाचार इत्याकण्यैव सा तस्य पादौ जग्राह ॥ २८॥ प्रणिपत्य चैनमाह ॥ २९॥ मगवन्मयैतद्ज्ञानाद् चुष्ठितं प्रसादं मे कुरु मैवं-विधः पुत्रो भवतु काममेवंविधः पौत्रो भवत्वि-त्युक्ते ग्रुनिरप्याह ॥ ३०॥ एवमस्त्वित ॥३१॥

अनन्तरं च सा जमदिश्रमजीजनत् ॥ ३२ ॥ तन्माता च विश्वामित्रं जनयामास ॥ ३३ ॥ सत्यवत्यपि कौशिकी नाम नद्यभवत् ॥ ३४ ॥

जमद्गिरिक्ष्वाकुवंशोद्भवस रेणोस्तनयां रेणुकाम्रुपयेमे ॥ ३५॥ तस्यां चाशेषक्षत्रहन्तारं
परश्चरामसंद्रां भगवतस्सकललोकगुरोर्नारायणस्यांशं जमद्गिरजीजनत् ॥ ३६॥ विश्वामित्रपुत्रस्तु भार्गव एव शुनश्शेपो देवैर्दत्तः ततश्च
देवरातनामाभवत् ॥ ३७॥ ततश्चान्ये मधुच्छन्दोधनञ्जयकृतदेवाष्टककच्छपहारीतकाच्या
विश्वामित्रपुत्रा वभूवः॥ ३८॥ तेषां च वहूनि
कौशिकगोत्राणि ऋष्यन्तरेषु विवाद्यान्यभवन् ॥ ३९॥

और उसके शान्तिप्रिय ब्राह्मणाचारयुक्त पुत्र होगा।"
यह सुनते ही सत्यवतीने उनके चरण पकड़ लिये
और प्रणाम करके कहा—॥२८-२९॥ "मगवन्!
अज्ञानसे ही मैंने ऐसा किया है, अतः प्रसन्न होइये
और ऐसा कीजिये जिससे मेरा पुत्र ऐसा न हो,
मले ही पौत्र ऐसा हो जाय।" इसपर मुनिने
कहा—"ऐसा ही हो।"॥३०-३१॥

तदनन्तर उसने जमदिग्नको जन्म दिया और उसकी माताने विश्वामित्रको उत्पन्न किया तथा सत्यवती कौशिकी नामकी नदी हो गयी ॥३२—३४॥

जमदिग्निने इक्ष्वाकुकुछोद्भव रेणुकी क्रन्या रेणुका-से विवाह किया ॥३५॥ उससे जमदिग्निके सम्पूर्ण क्षत्रियोंका घ्वंस करनेवाछे भगवान् परशुरामजी उत्पन्न हुए जो सक्छ छोक-गुरु भगवान् नारायणके अंश थे ॥३६॥ देवताओंने विक्वामित्रजीको भृगुवंशीय शुनःशेप पुत्ररूपसे दिया था। उसके पीछे उनके देवरात नामक एक पुत्र हुआ और फिर मधुच्छन्द, धनञ्जय, कृतदेव, अष्टक, कच्छप एवं हारीतक नामक और भी पुत्र हुए ॥३७-३८॥ उनसे अन्यान्य ऋषिवंशोंमें विवाहने योग्य बहुत-से कौशिकगोत्रीय पुत्र-पौत्रादि हुए ॥३९॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थेऽशे सप्तमोऽप्यायः ॥७॥

आठवाँ अध्याय

काश्यवंशका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

पुरुत्वसो ज्येष्ठः पुत्रो यस्त्वायुर्नामा स राहो-दुहितरग्रुपयेमे ॥१॥ तस्यां च पश्च पुत्रातु-त्यादयामास ॥२॥ नहुषक्षत्रवृद्धरम्मराजिसंज्ञा-त्यादयामास ॥२॥ नहुषक्षत्रवृद्धरम्मराजिसंज्ञा-त्यादयामास ॥२॥ नहुषक्षत्रवृद्धरम्मराजिसंज्ञा-त्यादयामास ॥२॥ नहुषक्षत्रवृद्धरम्मराजिसंज्ञा-त्यादयामास ॥२॥ नहुषक्षत्रवृद्धरम्मराजिसंज्ञा-त्याद्वयामास ॥२॥ काञ्चयाकाश्चगुत्सम-दास्वयत्त्यस पुत्रा वभूवुः॥५॥ गृत्समदस्य श्वीनकश्चातुर्वण्यप्रवृत्तियताभूत ॥६॥ इंआ ॥४–६॥

श्रीपराशरजी बोळे-आयु नामक जो पुरूरवाका ज्येष्ठ पुत्र था उसने राहुकी कन्यासे विवाह किया॥१॥ उससे उसके पाँच पुत्र हुए जिनके नाम क्रमशः नहुष, क्षत्रवृद्ध, रम्भ, रिज और अनेना थे॥२-३॥ क्षत्रवृद्धके सुद्दोत्र नामक पुत्र हुआ और सुद्दोत्रके कास्य, काश तथा गृत्समद नामक तीन पुत्र हुए। गृत्समदका पुत्र शोनक चातुर्वर्णका प्रवर्तक हुआ॥४-६॥ काश्यस्य काशेयः काशिराजः तसाद्राष्ट्रः राष्ट्रस्य दीर्घतपाः पुत्रोऽभवत् ॥७॥ धन्वन्तरिस्तु दीर्घतपसः पुत्रोऽभवत् ॥८॥ स हि संसिद्ध-कार्यकरणस्सकलसम्भृतिष्वशेपज्ञानवित् भगवता नारायणेन चातीतसम्भृतौ तसै वरो दत्तः॥९॥ काशिराजगोत्रेऽवतीर्य त्वमष्टथा सम्यगायुर्वेदं करिष्यसि यज्ञभागभ्रुग्भविष्यसीति ॥ १०॥

तस्य च धन्वन्तरेः पुत्रः केतुमान् केतुमतो भीमरथस्तस्यापि दिवोदासस्तस्यापि प्रतर्दनः ॥ ११ ॥ स च मद्रश्रेण्यवंशविनाशनादशेषशत्र- वोऽनेन जिता इति शत्रुजिदभवत् ॥१२॥ तेन च प्रीतिमतात्मपुत्रो वत्सवत्सेत्यभिहितो वत्सो- ऽभवत् ॥ १३ ॥ सत्यपरतया ऋतध्वजसंज्ञामवाप ॥ १४ ॥ ततश्र कुवलयनामानमश्रं लेभे ततः कुवलयाश्य इत्यस्यां पृथिच्यां प्रथितः ॥ १५ ॥ तस्य च वत्सस्य पुत्रोऽलर्कनामाभवत् यस्यायम- द्यापि श्लोको गीयते ॥ १६ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि पष्टिवर्षशतानि च।
अलर्काद्परो नान्यो बुग्रुजे मेदिनीं युवा ॥१७॥
तस्याप्यलर्कस्य सन्नतिनामाभवदात्मजः
॥१८॥ सन्नतेः सुनीथस्तस्यापि सुकेतुस्तसाच
धर्मकेतुर्जञ्जे ॥१९॥ ततश्र सत्यकेतुस्तसादिश्चसत्तन्यस्सुविश्वस्ततश्र सुकुमारस्तस्यापि धृष्टकेतुस्ततश्र वीतिहोत्रस्तसाद्भागीं भार्गस्य मार्गभूमिस्ततश्रातुर्वण्यप्रवृत्तिरित्येते काश्यभूशृतः
कथिताः॥२०॥रजेस्तु सन्ततिः श्र्यताम् ॥२१॥

कास्यका पुत्र काशिराज काशेय हुआ । उसके राष्ट्र, राष्ट्रके दीर्घतपा और दीर्घतपाके धन्वन्तिर नामक पुत्र हुआ ॥७-८॥ इस धन्वन्तिरके शरीर और इन्द्रियाँ जरा आदि विकारोंसे रहित थे तथा सभी जन्मोंमें यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाटा या । पूर्वजन्ममें भगवान् नारायणने उसे यह वर दिया था कि 'काशिराजके बंशमें उत्पन्न होकर तुम सम्पूर्ण आयुर्वेदको आठ भागोंमें विभक्त करोगे और यज्ञ-भागके भोक्ता होगे'॥९-१०॥

धन्वन्तरिका पुत्र केतुमान्, केतुमान्का मीमरथ, मीमरथका दिवोदास तथा दिवोदासका पुत्र प्रतर्दन हुआ ॥११॥ उसने मद्रश्रेण्यवंशका नाश करके समस्त शत्रुओंपर विजय प्राप्त की थी, इसिट्टिये उसका नाम 'शत्रुजित्' हुआ ॥१२॥ दिवोदासने अपने इस पुत्र (प्रतर्दन) से अत्यन्त प्रेमवश 'वत्स, वत्स' कहा था, इसिट्टिये इसका नाम 'वत्स' हुआ ॥१३॥ अत्यन्त सत्यपरायण होनेके कारण इसका नाम 'ऋतध्वज' हुआ ॥१४॥ तदनन्तर इसने कुवट्य नामक अपूर्व अश्व प्राप्त किया । इसिट्टिये यह इस पृथिवीतट्यर 'कुवट्याश्व' नामसे विख्यात हुआ ॥१५॥ इस वत्सके अर्ट्य नामक पुत्र हुआ जिसके विषयमें यह श्लोक आजतक गाया जाता है ॥१६॥

'पूर्वकालमें अल्कंके अतिरिक्त और किसीने मी छासठ सहस्र वर्षतक युवावस्थामें रहकर पृथिवीका भोग नहीं किया' ॥१७॥

उस अरुर्कके भी सन्नति नामक पुत्र हुआ; सन्नतिके सुनीय, सुनीयके सुकेतु, सुकेतुके धर्मकेतु, धर्मकेतुके सत्यकेतु, सत्यकेतुके विमु, विमुके सुविमु, सुविमुके सुकुमार, सुकुमारके धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके वीतिहोत्र, वीतिहोत्रके मार्ग और भार्गके मार्गभूमि नामक पुत्र हुआ; भार्गभूमिसे चातुर्वर्ण्यका प्रचार हुआ। इस प्रकार काश्यवंशके राजाओंका वर्णन हो चुका अव रजिकी सन्तानका विवरण सुनो॥१८—२१॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्येंऽशे अष्टमोऽघ्यायः ॥८॥

नवाँ अध्याय

महाराज रजि और उनके पुत्रोंका चरित्र।

श्रीपराशर उवाच

रजेस्तु पश्च पुत्रश्चतान्यतुलवलपराक्रमसारा-ण्यासन् ॥ १ ॥ देवासुरसंग्रामारम्भे च परस्पर-वधेप्सवो देवाश्चासुराश्च ब्रह्माणस्रुपेत्य पत्रच्छुः ॥ २ ॥ भगवन्नसाकमत्र विरोधे कतरः पक्षो जेता भविष्यतीति ॥३॥ अथाह भगवान् ॥४॥ येषामर्थे रजिरात्तायुधो योतस्यति तत्पक्षो जेतेति ॥ ५ ॥

अथ दैत्यैरुपेत्य रिजरात्मसाहाय्यदानाया-म्यर्थितः प्राह ॥६॥ योत्स्येऽहं भवतामर्थे यद्यहममरजयाद्भवतामिन्द्रो भविष्यामीत्याकण्यें-तत्तैरिमहितम् ॥७॥ न वयमन्यथा वदिष्या-मोऽन्यथा करिष्यामोऽसाकमिन्द्रः प्रह्लादस्त-दर्थमेवायम्रद्यम इत्युक्त्वा गतेष्वसुरेषु देवैरप्य-साववनिपतिरेवमेवोक्तस्तेनापि च तथैवोक्ते देवैरिन्द्रस्त्वं भविष्यसीति समंज्वीप्सतम् ॥८॥

रजिनापि देवसैन्यसहायेनानेकैर्महास्नैस्तद-शेषमहासुरवर्छं निष्ट्रितम् ॥९॥ अथ जिता-रिपक्षश्च देवेन्द्रो रजिचरणयुगलमात्मनः शिरसा निपीड्याह ॥१०॥ भयत्राणादन्नदानाद्भवान-स्मत्पिताऽशेषलोकानासुत्तमोत्तमो भवान् यस्याहं पुत्रस्निलोकेन्द्रः ॥११॥

स चापि राजा प्रहस्याह ॥ १२॥ एवम-स्त्वेवमस्त्वनतिक्रमणीया हि वैरिपश्चाद्प्यनेक-विघचादुवाक्यगर्भा प्रणतिरित्युक्त्वा स्वपुरं जगाम॥ १३॥ श्रीपराशरजी बोले-रजिके अतुलित बल-पराक्रम-शाली पाँच सौ पुत्र थे ॥१॥ एक बार देवासुर-संग्रामके आरम्भमें एक दूसरेको मारनेकी इच्छावाले देवता और दैत्योंने ब्रह्माजीके पास जाकर पूछा— "भगवन् ! हम दोनोंके पारस्परिक कल्हमें कौन-सा पक्ष जीतेगा ?" ॥२-३॥ तब भगवान् ब्रह्माजी बोले— "जिस पक्षकी ओरसे राजा रजि शस्त्र धारणकर युद्ध करेगा उसी पक्षकी विजय होगी" ॥४-५॥

तत्र दैत्योंने जाकर रजिसे अपनी सहायताके लिये प्रार्थना की, इसपर रजि बोले—॥६॥ "यदि देवताओं-को जीतनेपर मैं आपलोगोंका इन्द्र हो सलूँ तो आपके पक्षमें लड़ सकता हूँ॥०॥ यह सुनकर दैत्योंने कहा—"हमलोग एक बात कहकर उसके विरुद्ध दूसरी तरहका आचरण नहीं करते। हमारे इन्द्र तो प्रह्लादजी हैं और उन्हींके लिये हमारा यह सम्पूर्ण उद्योग है" ऐसा कहकर जब दैत्यगण चले गये तो देवताओंने भी आकर राजासे उसी प्रकार प्रार्थना की और उसने भी उनसे वही बात कही। तब देवताओंने यह कहकर कि 'आप ही हमारे इन्द्र होंगे' उसकी बात खीकार कर ली।।८॥

अतः रिजने देव-सेनाकी सहायता करते हुए अनेक महान् अस्त्रोंसे दैत्योंकी सम्पूर्ण सेना नष्ट कर दी ॥९॥ तदनन्तर शत्रु-पक्षको जीत चुकनेपर देवराज इन्द्रने रिजके दोनों चरणोंको अपने मस्तक-पर रखकर कहा—॥१०॥ 'मयसे रक्षा करने और अन-दान देनेके कारण आप हमारे पिता हैं, आप सम्पूर्ण छोकोंमें सर्वोत्तम हैं क्योंकि मैं त्रिछोकेन्द्र आपका पुत्र हूँ'॥११॥

इसपर राजाने हँसकर कहा—'अच्छा, ऐसा ही सही। रात्रुपक्षकी भी नाना प्रकारकी चाटुवाक्ययुक्त अनुनय-विनयका अतिक्रमण करना उचित नहीं होता, [फिर खपक्षकी तो बात ही क्या है]।' ऐसा कहकर वे अपनी राजधानीको चले गये॥१२-१३॥

शतऋतुरपीन्द्रत्वं चकार ॥ १४ ॥ स्वर्थाते तु रजौ नारदर्पिचोदिता रजिपुत्राक्शतऋतुमात्म-पितृपुत्रं समाचाराद्राज्यं याचितवन्तः ॥ १५ ॥ अप्रदानेन च विजित्येन्द्रमितविलनः स्वयमि-न्द्रत्वं चक्रः ॥ १६ ॥

ततश्च वहुतिथे काले ह्यतीते वृहस्पतिमेकान्ते वृद्धा अपहृतत्रेलोक्ययज्ञभागः शतकृतुरुवाच ॥ १७ ॥ वद्रीफलमात्रमप्यद्देसि ममाप्यायनाय पुराडाश्चलण्डं दातुमित्युक्तो वृहस्पतिरुवाच ॥ १८ ॥ यद्येवं त्वयाहं पूर्वमेव चोदितस्स्यां तन्मया त्वदर्शं किमकर्त्तव्यमित्यल्पेरेवाहोभिस्त्वां निजं पदं प्रापयिष्यामीत्यभिधाय तेपामनुदिन-माभिचारिकं बुद्धिमोहाय शकस्य तेजोऽभिवृद्धये जुहाव ॥ १९ ॥ ते चापि तेन बुद्धिमोहेनामि-भूयमाना ब्रह्मद्विपो धर्मत्यागिनो वेदवाद-पराङ्मुखा वभूवुः॥ २० ॥ ततस्तानपेतधर्मा-चारानिन्द्रो जधान ॥ २१ ॥ पुराहिताप्यायितनेत्राश्च शको दिवमाक्रमत् ॥ २२ ॥

एतदिन्द्रस्य स्वपदच्यवनादारोहणं श्रुत्वा पुरुषः स्वपदभ्रंशं दौरात्म्यं च नामोति ॥२३॥

रम्भस्त्वनपत्योऽभवत् ॥ २४ ॥ क्षत्रवृद्धसुतः प्रतिक्षत्रोऽभवत् ॥२५॥ तत्पुत्रः सञ्जयस्तस्यापि जयस्तस्यापि विजयस्तस्याच जज्ञे कृतः ॥२६॥ तस्य च हर्यधनो हर्यधनसुतस्सहदेवस्तसाददी-नस्तस्य जयत्सेनस्ततश्च संस्कृतिस्तत्पुत्रः क्षत्रधर्मा इत्येते क्षत्रवृद्धस्य वंद्याः॥ २७॥ ततो नहुष-वंद्यो प्रवृद्ध्यामि ॥ २८॥

इस प्रकार शतकतु ही इन्द्र-पदपर स्थित हुआ । पीछे, रिजके स्वर्गवासी होनेपर देविष नारदर्जाकी प्रेरणासे रिजके पुत्रोंने अपने पिताके पुत्रभावको प्राप्त हुए शतकतुसे व्यवहारके अनुसार अपने पिताका राज्य माँगा ॥१४-१५॥ किन्तु जब उसने न दिया, तो उन महाबळवान् रिज-पुत्रोंने इन्द्रको जीतकर स्वयं ही इन्द्र-पदका भोग किया॥१६॥

फिर वहुत-सा समय वीत जानेपर एक दिन बृहस्पतिजीको एकान्तमें वैठे देख त्रिलोकोको यज्ञमाग-से बिश्चत हुए शतऋतुने उनसे कहा—॥ १७॥ क्या 'आप मेरी तृप्तिके ल्यि एक वेरके वरावर भी पुरोडाश-खण्ड मुझे दे सकते हैं ?' उनके ऐसा कहनेपर वृहस्पतिजी बोछे---।।१८।। 'यदि ऐसा है, तो पहले ही तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा ? तुम्हारे लिये भला मैं क्या नहीं कर सकता ? अच्छा, अब थोड़े ही दिनोंमें मैं तुम्हें अपने पदपर स्थित कर दूँगा।' ऐसा कह बृहस्पतिजी रजि-पुत्रोंकी वुद्धिको मोहित करनेके लिये अभिचार और इन्द्रकी तेजोवृद्धिके लिये हवन करने छगे ॥१९॥ बुद्धिको मोहित करनेवाछे उस अभिचार-कर्मसे अभिभूत हो जानेके कारण रजि-पुत्र त्राह्मण-विरोधी, धर्म-त्यागी और वेद-विमुख हो गये ॥२०॥ तव धर्माचारहीन हो जानेसे इन्द्रने उन्हें मार डाला ॥२१॥ और पुरोहितजीके द्वारा तेजोन्द्र होकर खर्गपर अपना अधिकार जमा छिया ॥२२॥

इस प्रकार इन्द्रके अपने पदसे गिरकर उसपर फिर आरूढ़ होनेके इस प्रसङ्गको सुननेसे पुरुष अपने पदसे पतित नहीं होता और उसमें कमी दुष्टता नहीं आती ॥२३॥

[आयुका दूसरा पुत्र] रम्भ सन्तानहीन हुआ ॥२४॥ क्षत्रवृद्धका पुत्र प्रतिक्षत्र हुआ, प्रतिक्षत्रका सञ्जय, सञ्जयका जय, जयका विजय, विजयका कृत, कृतका हर्यधन, हर्यधनका सहदेव, सहदेवका अदीन, अदीनका जयत्सेन, जयत्सेनका संस्कृति और संस्कृतिका पुत्र क्षत्रधमी हुआ। ये सब क्षत्रवृद्धके वंशज हुए ॥२५—२७॥ अब मैं नहुषवंशका वर्णन करूँगा ॥२८॥

दशवाँ अध्याय

ययातिका चरित्र।

श्रीपराशर उवाच

यतिययातिसंयात्यायातिवियातिकृतिसंज्ञा नहुषस्य पद् पुत्रा महाबलपराक्रमा वभूवुः ॥१॥ यतिस्तु राज्यं नैच्छत् ॥ २॥ ययातिस्त भ्रभूद-भवत् ॥ ३॥ उशनसश्च दृहितरं देवयानीं वार्षपर्वणीं च शर्मिष्ठाम्रपयेमे ॥ ४॥ अत्रानुवंश-क्लोको सवति ॥ ५॥

त्र्विश्रव्यदं च दुर्वसं चैव देवयानी व्यजायत । इह्यं चातुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ६॥

> काञ्यशापाचाकालेनैव ययातिर्जगमवाप ॥७॥ प्रसन्नशुक्रवचनाच खजरां सङ्क्रामयितुं ज्येष्ठं पुत्रं यदुग्रुवाच ॥८॥ वत्स त्वन्मातामह्यापादि-यमकालेनैव जरा ममोपस्थिता तामहं तस्यैवानु-प्रहाद्भवतस्सश्चारयामि ॥ ९ ॥ एकं वर्षसहस्रम-तृप्तोऽस्मि विषयेषु त्वद्वयसा विषयानहं भोक्तु-मिच्छामि ॥ १०॥ नात्र भवता प्रत्याख्यानं कर्तव्यमित्युक्तस्स यदुर्नेच्छत्तां जरामादात्रम ॥ ११॥ तं च पिता शशाप त्वत्प्रस्रतिर्न राज्याही भविष्यतीति ॥ १२॥

अनन्तरं च दुर्वसुं दुह्यमतुं च पृथिवीपति-र्जराग्रहणार्थ स्वयौवनप्रदानाय चाम्यर्थयामास ॥ १३ ॥ तैरप्येकैकेन प्रत्याख्यातस्ताञ्छशाप ॥ १४ ॥ अथ शर्मिष्ठातनयमशेपकनीयांसं पूरुं तथैवाह ॥ १५ ॥ स चातिप्रवणमतिः सबहुमानं पितरं प्रणम्य महाप्रसादोऽयमसाकमित्युदारम-मिधाय जरां जग्राह ॥ १६ ॥ स्वकीयं च यौवनं स्विषित्रे द्दौ ॥ १७ ॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

श्रीपराशरजी बोले-नहुषके यति. संयाति. आयाति. वियाति और कृति नामक छः महावछविक्रमशाछी पुत्र हुए ॥१॥ यतिने राज्यकी इच्छा नहीं की, इसलिये ययाति ही राजा हुआ ॥२-३॥ ययातिने अकाचार्यजीकी पत्री देवयानी और वषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठासे विवाह किया था ॥५॥ उनके धंशके सम्बन्धमें यह श्लोक प्रसिद्ध है--।।५।।

'देवयानीने यदु और दुर्वसुको जन्म दिया तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रह्म, अनु और पुरुको उत्पन्न किया' ॥६॥

ययातिको ग्रुकाचार्यजीके शापसे बृद्धावस्थाने असमय ही घेर लिया था ॥७॥ पीछे शुक्रजीके प्रसन्न होकर कहनेपर उन्होंने अपनी बृद्धावस्थाको प्रहण करनेके लिये बड़े पुत्र यदुसे कहा--।।८।। 'वत्स! तुम्हारे नानाजीके शापसे मुझे असमयमें ही वृद्धावस्थाने घेर लिया है, अब उन्हींकी कृपासे मैं उसे तुमको देना चाहता हूँ ॥९॥ मैं अभी विषय-मोगोंसे तृप्त नहीं हुआ हूँ, इसलिये एक सहस्र वर्षतक मैं तुम्हारी युवावस्था-से उन्हें भोगना चाहता हूँ ॥१०॥ इस विषयमें तुन्हें किसी प्रकारकी आनाकानी नहीं करनी चाहिये।' किन्तु पिताके ऐसा कहनेपर भी यदुने वृद्धावस्थाको प्रहण करना न चाहा ॥११॥ तब पिताने उसे शाप दिया कि तेरी सन्तान राज्य-पदके योग्य न होगी॥१२॥

फिर राजा ययातिने दुर्वसु, दुह्य और अनुसे भी अपना यौवन देकर वृद्धावस्था प्रहण करनेके छिये कहा: तथा उनमेंसे प्रत्येकके अखीकार करनेपर उन्होंने उन समीको शाप दे दिया ॥१३-१४॥ अन्तमें सबसे छोटे शर्मिष्ठाके पुत्र पूरुसे भी वहीं बात कहीं तो उसने अति नम्रता और आदरके साथ पिताको प्रणाम करके उदारता-पूर्वक कहा- 'यह तो हमारे ऊपर आपका महान् अनुग्रह है।' ऐसा कहकर प्रुने अपने पिताकी वृद्धा-वस्था ग्रहण कर उन्हें अपना यौवन दे दिया ॥१५-१७॥

सोऽपि पौरवं यौवनमासाद्य धर्माविरोधेन यथाकामं यथाकालोपपनं यथोत्साहं विषयांश्र-चार ॥ १८॥ सम्यक् च प्रजापालनमकरोत् ।। १९ ॥ विश्वाच्या देवयान्या च सहोपभोगं भुक्त्वा कामानामन्तं प्राप्स्यामीत्यनुदिनं उन्म-नस्को बभुव ॥ २०॥ अनुदिनं चोपभोगतः कामानतिरम्यान्मेने 11 38 11 ततश्चैवम-गायत ॥ २२ ॥ न जातु कामः कामानाम्यभोगेन शास्यति । हविषा कृष्णवर्सेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥२३॥ यत्पृथिच्यां त्रीहियवं हिरण्यं पश्चः स्त्रियः । एकसापि न पर्याप्तं तसात्तृष्णां परित्यजेत् ॥२४॥ यदा न कुरुते भावं सर्वभृतेषु पापकम्। समदृष्टेसादा पुंसः सर्वास्सुखमया दिशः॥२५॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभियां न जीर्यति जीर्यतः। तां तृष्णां सन्त्यजेत्प्राज्ञस्सुखेनैवाभिपूर्यते ॥२६॥ जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः। धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यतः ।२७। पूर्ण वर्षसहस्रं मे विषयासक्तचेतसः। तथाप्यजुदिनं तृष्णा मम तेषूपजायते ॥२८॥ तसादेतामहं त्यक्त्वा त्रह्मण्याधाय मानसम् । निर्द्धन्द्रो निर्ममो भृत्वा चरिष्यामि मृगैस्सह ॥२९॥

श्रीपराशर उवाच
पूरोस्सकाशादादाय जरां दत्त्वा च यौवनम् ।
राज्येऽभिषिच्य पूरुं च प्रययौ तपसे वनम् ॥३०॥
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां दुर्वसुं च समादिशत् ।
प्रतीच्यां च तथा दुसुं दक्षिणायां ततो यदुम् ॥३१॥
उदीच्यां च तथवानुं कृत्वा मण्डलिनो नृपान् ।
सर्वपृथ्वीपतिं पूरुं सोऽभिषिच्य वनं ययौ ॥३२॥

राजा ययातिने पृरुका योवन छेकर समयानुसार प्राप्त हुए यथेच्छ विषयोंको अपने उत्साहके अनुसार धर्मपूर्वक मोगा और अपनी प्रजाका मछी प्रकार पाछन किया॥१८-१९॥ फिर विश्वाची और देवयानीके साथ विविध मोगोंको भोगते हुए 'मैं कामनाओंका अन्त कर दूँगा'—ऐसे सोचते-सोचते वे प्रतिदिन [भोगोंके छिये] उत्कण्ठित रहने छगे॥२०॥ और निरन्तर भोगते रहनेसे उन कामनाओंको अत्यन्त प्रिय मानने छगे; तदुपरान्त उन्होंने इस प्रकार अपना उद्गार प्रकट किया॥२१-२२॥

'मोगोंको तृष्णा उनके मोगनेसे कभी शान्त नहीं होती, वल्कि घृताहुतिसे अग्निके समान वह बढ़ती ही जाती है ॥२३॥ सम्पूर्ण पृथिवीमें जितने भी घान्य, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं वे सव एक मनुष्य-के लिये भी सन्तोपजनक नहीं हैं, इसलिये तृष्णाको सर्वधा त्याग देना चाहिये॥२४॥ जिस समय कोई पुरुष किसी भी प्राणीके छिये पापमयी भावना नहीं करता उस समय उस समदर्शीके छिये सभी दिशाएँ सुखमयी हो जाती हैं ॥२५॥ दुर्मतियोंक छिये जो अत्यन्त दुस्त्यज है तथा वृद्धावस्थामें भी जो शिथिल नहीं होती, बुद्धिमान् पुरुष उस तृष्णाको त्यागकर सुखसे परिपूर्ण हो जाता है ॥२६॥ अवस्थाके जीर्ण होनेपर केश और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं किन्तु जीवन और धनकी आशाएँ उसके जीर्ण होनेपर भी नहों जीर्ण होतीं ॥२०॥ विषयोंमें आसक्त रहते हुए मुझे एक सहस्र वर्ष वीत गये, फिर भी नित्य ही उनमें मेरी कामना होती है। (२८॥ अतः अव मैं इसे छोड़कर और अपने चित्तको भगवान्में ही स्थिरकर निर्दृन्द्व और निर्मम होकर [वनमें] मुगोंके साथ विचरूँ गा' ॥ २९॥

श्रीपराशरजी बोले-तदनन्तर राजा ययातिने प्रसे अपनी बृद्धावस्था लेकर उसका यौवन दे दिया और उसे राज्य-पदपर अभिषिक्त कर बनको चले गये॥३०॥ उन्होंने दक्षिण-पूर्व दिशामें दुर्वसुको, पिचममें दुर्बुको, दक्षिणमें यदुको और उत्तरमें अनुको माण्डलिकपदपर नियुक्त किया; तथा प्रको सम्पूर्ण भूमण्डलके राज्यपर अमिषिक्तकर स्वयं बनको चले गये॥३१-३२॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्येंऽशे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

यदुवंशका वर्णन और सहस्रार्ज्जनका चरित्र।

श्रीपराशर उवाच

अतः परं ययातेः प्रथमपुत्रस्य यदोर्वश्च महं कथयामि ॥१॥ यत्राशेपलोकनिवासो मजुष्यसिद्ध-गन्धर्वयक्षराक्षसगुद्धकार्कपुरुषाप्सरउरगविहग-दैत्यदानवादित्यरुद्रवस्थिमरुद्देविभिर्ग्रुग्रुक्षभि-धर्मार्थकाममोक्षार्थिभिश्च तत्तत्फललाभाय सदा-भिष्टुतोऽपरिच्छेद्यमाहात्म्यांशेन भगवाननादि-निधनो विष्णुरवततार॥ २॥ अत्र श्लोकः॥३॥ यदोर्वशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परं ब्रह्म निराकृति ॥४॥ यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परं ब्रह्म निराकृति ॥४॥

सहस्रजित्क्रोष्टुनलनहुषसंज्ञाश्रत्वारो यदुपुत्रा बभूवः ॥५॥ सहस्रजित्पुत्रक्शतजित् ॥६॥ तस्य हैहयहेहयवेणुहयास्त्रयः पुत्रा वभूवः॥७॥ हैहयपुत्रो धर्मस्तस्यापि धर्मनेत्रस्ततः कुन्तिः कुन्तेः सहजित् ॥८॥ तत्तनयो महिष्मान् यो-ऽसौ माहिष्मतीं पुरीं निवासयामास ॥९॥ तस्माद्भद्रश्रेण्यस्ततो दुर्दमस्तस्माद्धनको धनकस्य कृतवीर्यकृताप्रिकृतधर्मकृतौजसश्रत्वारः पुत्रा वभूवः ॥१०॥

कृतवीर्यादर्जनस्सप्तद्वीपाधिपतिर्वाहुसहस्रो जङ्गे ।।११॥ योऽसौ भगवदंशमित्रकुलप्रस्तं दत्ता-त्रेयाख्यमाराध्य वाहुसहस्रमधर्मसेवानिवारणं स्वधर्मसेवित्वं रणे पृथिवीजयं धर्मतश्रानुपालन-मरातिभ्योऽपराजयमिललजगत्प्रख्यातपुरुषाच मृत्युमित्येतान्वरानमिलिववाँ छोमे च ।।१२॥ तेनेयमशेषद्वीपवती पृथिवी सम्यक्परिपालिता ।।१३॥ दशयइसहस्राण्यसावयजत् ।।१४॥ तस्य च श्लोकोऽद्यापि गीयते ।।१५॥

श्रीपराशरजी बोले-अव मैं ययातिके प्रथम पुत्र यदुके वंशका वर्णन करता हूँ, जिसमें कि मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गुग्रक, किंपुरुष, अप्सरा, सर्प, पक्षी, दैत्य, दानव, आदित्य, रुद्ध, वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, देवर्षि, मुमुश्च तथा धर्म, अर्थ, कामऔर मोक्ष-के अभिलाषी पुरुषोंद्वारा सर्वदा स्तुति किये जानेवाले, अखिल्लोक-विश्राम आद्यन्तहीन भगवान् विष्णुने अपने अपरिमित महत्त्वशाली अंशसे अवतार लिया था। इस विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है। ११ — ३।।

'जिसमें श्रीकृष्ण नामक निराकार परब्रह्मने अवतार लिया था उस यदुवंशका श्रवण करनेसे मजुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है' ॥ ४॥

यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टु, नल और नहुष नामक चार पुत्र हुए । सहस्रजित्के शतजित्और शतजित्-के हैहय, हेहय तथा वेणुहय नामक तीन पुत्र हुए ॥५—७॥ हैहयका पुत्र धर्म, धर्मका धर्मनेत्र, धर्मनेत्रका कुन्ति, कुन्तिका सहजित् तथा सहजित्का पुत्र महि-ष्मान् हुआ, जिसने माहिष्मतीपुरीको बसाया ॥८-९॥ महिष्मान्के भद्रश्रेण्य, भद्रश्रेण्यके दुर्दम, दुर्दमके धनक तथा धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतधर्म और कृतौजा नामक चार पुत्र हुए॥१०॥

कृतवीर्यके सहस्र मुजाओंबाले सप्तद्वीपाधिपति अर्जुनका जन्म हुआ ॥११॥ सहस्रार्जुनने अत्रिकुल्में उत्पन्न भगवदंशरूप श्रीदत्तात्रेयजीकी उपासनाकर 'सहस्र मुजाएँ, अधर्माचरणका निवारण, स्वधर्मका सेवन, युद्धके द्वारा सम्पूर्ण पृथिवीमण्डलकी विजय, धर्मानुसार प्रजा-पालन, शत्रुओंसे अपराजय तथा त्रिलोकप्रसिद्ध पुरुषसे मृत्यु'—ऐसे कई वर माँगे और प्राप्त किये थे ॥१२॥ अर्जुनने इस सम्पूर्ण सप्तद्वीपवती पृथिवीका पालन तथा दश हजार यहाँका अनुष्ठान किया था॥१३-१४॥ उसके विषयमें यह श्लोक आजतक कहा जाता है—॥१५॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं याखनित पार्थिवाः । यज्ञैदीनैस्तपोभिर्वा प्रश्रयेण श्वतेन च ॥१६॥ अनष्टद्रव्यता च तस्य राज्येऽभवत्।।१७॥ एवं च पञ्चाशीतिवर्पसहस्राण्यच्याहतारोग्यश्रीवल-पराऋमो राज्यमकरोत् ॥१८॥ माहिष्मत्यां दिग्विजयाभ्यागतो नर्मदाजलावगाहनक्रीडाति-पानमदाक्कलेनायत्नेनैव तेनाशेपदेवदैत्यग्नधर्वे-शजयोद्भृतमद्गिलेपोऽपि रावणः पश्चरिव बङ्घा खनगरैकान्ते स्थापितः ॥१९॥ यथ पश्चाशीति-वर्षसहस्रोपलक्षणकालावसाने भगवन्नारायणांशेन परशुरामेणोपसंहतः ॥२०॥ तस्य च पुत्रशत-प्रधानाः पश्च पुत्रा वभूतुः शूरशूरसेनवृपसेन-मधुजयध्वजसंज्ञाः ॥२१॥

जयध्वजात्तालजङ्घः पुत्रोऽभवत् ॥२२॥ तालजङ्घस तालजङ्घाख्यं पुत्रशतमासीत् ॥ २३ ॥ एषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रस्तथान्यो भरतः ॥२४॥ भरताद्वृषः ॥२५॥ वृषस्य पुत्रो मधुरभवत् ॥२६॥ तस्यापि वृष्णि-प्रमुखं पुत्रशतमासीत् ॥२७॥ यतो वृष्णिसंज्ञा-मेतद्गोत्रमवाप ॥२८॥ मधुसंज्ञाहेतुश्र मधुरमवत् ।।२९।। यादवाश्च यदुनामोपलक्षणादिति ।।३०।।

'यज्ञ, दान, तप, विनय और विद्यामें कार्तवीर्य-सह-सार्जुनकी समता कोई भी राजा नहीं कर सकता'॥१६॥

उसके राज्यमें कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता था ।।१७।। इस प्रकार उसने वल, पराक्रम, आरोग्य और सम्पत्तिको सर्वथा सुरक्षित रखते हुए पचास हजार वर्प राज्य किया ॥१८॥ एक दिन जव वह अतिशय मद्य-पानसे व्याकुल हुआ नर्मदा नदीमें जल-क्रीडा कर रहा था, उसकी राजधानी माहिप्मतीपुरीपर दिग्विजयके लिये आये हुए सम्पूर्ण देव, दानव, गन्धर्व और राजाओंके विजय-मदसे उन्मत्त रावणने आक्रमण किया, उस समय उसने अनायास ही रावणको पशुके समान वाँधकर अपने नगरके एक निर्जन स्थानमें रख दिया ॥१९॥ इस सहस्रार्जुनका पचासी हजार वर्ष ब्यतीत होनेपर भगवान् नारायणके अंशावतार पर्शु-रामजीने वध किया था॥२०॥ इसके सौ पुत्रोंमेंसे शूर, शूरसेन, वृपसेन, मधु और जयम्बज—ये पाँच प्रधान थे ॥२१॥

जयध्वजका पुत्र तालजंघ हुआ और तालजंघके तालजंघ नामक सौ पुत्र हुए इनमें सबसे बड़ा वीतिहोत्र तथा दूसरा भरत था॥२२-२४॥ भरतके वृष, वृषके मधु और मधुके वृष्णि आदि सौ पुत्र हुए॥२५–२०॥ वृष्णिके कारण यह वंश वृष्णि कहळाया ॥२८॥ मधुके कारण इसकी मधु-संज्ञा हुई ॥२९॥ और यदुके नामानुसार इस वंशके छोग यादव कहलाये ॥३०॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्यें उरो एकादशोऽध्यायः ॥११॥

~\$~€≫~\$~

बारहवाँ अध्याय

यदुपुत्र कोप्रुका वंश ।

श्रीपराशर उवाच कोष्टोस्त यदुपुत्रस्यात्मजो ध्वजिनीवान् ॥ १॥ ततश्र स्वातिस्ततो रुशङ्क रुशङ्कोश्रित्र-रथः ॥ २॥ तत्तनयक्क्षित्रिक्टुश्रुत्रदेशमुहारुत्ते । एशंकुके जित्रस्य और जित्रस्थके अशिविन्दु नामक पुत्र

श्रीपराशरजी बोले-यदुपुत्र क्रोष्ट्रके व्वजिनीवान् नामक पुत्र हुआ ॥ १॥ उसके स्वाति, स्वातिके रुशंकु,

शश्रकवर्त्यभवत् ॥ ३॥ तस्य च शतसहस्रं पत्नीनामभवत् ॥ ४॥ दशलक्षसंख्याश्र पुत्राः ॥ ५॥
तेषां च पृथुश्रवाः पृथुकर्मा पृथुकीर्तिः पृथुयशाः
पृथुजयः पृथुदानः पद् पुत्राः प्रधानाः ॥ ६॥
पृथुश्रवसश्र पुत्रः पृथुतमः ॥ ७॥ तस्मादुश्चना
यो वाजिमेधानां शतमाजहार ॥ ८॥ तस्यापि रुक्मकवचस्ततः पराष्ट्रत् ॥ १०॥ तस्यापि रुक्मकवचस्ततः पराष्ट्रत् ॥ १०॥ पराष्ट्रतो
रुक्मेषुपृथुज्यामधवलितहरितसंज्ञास्तस्य पश्चात्मजा वभूवुः ॥ ११॥ तस्यायमद्यापि ज्यामघस्य श्लोको गीयते ॥ १२॥

भार्यावक्यास्तु ये केचिद्भविष्यन्त्यथ वा मृताः । तेषां तु ज्यामघः श्रेष्ठक्शैच्यापतिरभून्तृपः ॥१३॥ अपुत्रा तस्य सा पत्नी शैच्या नाम तथाप्यसौ । अपत्यकामोऽपि भयाकान्यां भार्यामविन्दत ।१४॥

स त्वेकदा प्रभूतरथतुरगगजसम्मद्गितदारुणे महाहवे युद्धचमानः सकलमेवारिचक्रमजयत् ॥ १५॥ तच्चारिचक्रमपास्तपुत्रकलत्रवन्धुबल्लकोशं स्वमधिष्ठानं परित्यज्य दिशः प्रति विद्वतम् ॥१६॥ तस्मिश्र विद्वतेऽतित्रासलोलायत-लोचनयुगलं त्राहि त्राहि मां ताताम्य भ्रातरित्या-कुलविलापविधुरं स राजकन्यारत्नमद्राक्षीत् ॥१०॥ तद्दर्शनाच्च तस्यामनुरागानुगतान्तरात्मा स नृपोऽचिन्तयत् ॥१८॥ साध्वदं ममापत्यरहितस्य वन्ध्याभर्तुः साम्प्रतं विधिनापत्यकारणं कन्याः

हुआ जो चौदहों महारहोंका * स्वामी तथा चक्कवर्ती सम्राट् था ॥२-३॥ शशिविन्दुके एक लाख क्षियाँ और दश लाख पुत्र थे ॥४-५॥ उनमें पृथुश्रवा, पृथुकर्मा, पृथुकर्मीर्त, पृथुयशा, पृथुजय और पृथुदान—ये छः प्रधान थे ॥६॥ पृथुश्रवाका पुत्र पृथुतम और उसका पुत्र उशना हुआ जिसने सौ अश्वमेध-यज्ञ किया था॥७-८॥ उशनाके शितपु नामक पुत्र हुआ ॥९॥ शितपुके रुक्मकवच, रुक्मकवचके परावृत् तथा परावृत्के रुक्मेषु, पृथु, ज्यामघ, विलत और हरित नामक पाँच पुत्र हुए ॥१०-११ इनमेंसे ज्यामघके विषयमें अब भी यह श्लोक गाया जाता है ॥१२॥

संसारमें श्लीके वशीभूत जो-जो छोग होंगे और जो-जो पहछे हो चुके हैं उनमें शैब्याका पति राजा ज्यामघ ही सर्वश्रेष्ठ है ॥१२॥ उसकी श्ली शैब्या यद्यपि निःसन्तान थी तथापि सन्तानकी इच्छा रहते हुए भी उसने उसके भयसे दूसरी श्लीसे विवाह नहीं किया॥१४॥

एक दिन बहुत-से रथ, घोड़े और हाथियोंके संघट्टसे अत्यन्त भयानक महायुद्धमें छड़ते हुए उसने अपने समस्त रात्रुओंको जीत छिया ॥१५॥ उस समय वे समस्त रात्रुगण पुत्र,मित्र, खी, सेना और कोशादिसे हीन होकर अपने-अपने स्थानोंको छोड़कर दिशा-विदिशाओंमें भाग गये ॥१६॥ उनके भाग जानेपर उसने एक राजकन्या-को देखा जो अत्यन्त भयसे कातर हुई विशाल आँखों-से [देखती हुई] 'हे तात, हे मातः, हे भातः! मेरी रक्षा करो,रक्षा करो' इस प्रकार व्याकुलतापूर्वक विलाप कर रही थी ॥१०॥ उसको देखते ही उसमें अनुरक्त-चित्त हो जानेसे राजाने विचार किया ॥१८॥ 'यह अच्छा ही हुआ; मैं पुत्रहीन और वन्थ्याका पति हूँ; ऐसा मालूम होता है कि सन्तानकी कारणरूपा इस कन्या-

धर्मसंहितामें चौदह रहींका उन्नेख इस प्रकार किया है-

चकं रयो मिणः खन्नश्चर्मं रकंच पश्चमम् । केतुर्निधिश्च सप्तैव प्राणहीनानि चक्षते ॥ भार्यो पुरोहितश्चेव सेनानी रथकच यः । परयश्वककमाश्चेति प्राणिनः सप्त कीर्तिताः ॥ चतुर्वशेति रक्षानि सर्वेषां चक्रवर्त्तिनाम् ।

अर्थात् चक्र, रथ, मणि, खन्न, चर्म (ढाळ), ध्वजा और निधि (खजाना) ये सात प्राणहीन तथा औ, पुरोहित, सेनापति, रथी, पदाति, अश्वारोही और गजारोही—ये सात प्राणयुक्त इस प्रकार कुछ चौदह रान सन् चक्रवर्त्तियोंके यहाँ रहते हैं। CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri रत्नम्रुपपादितम् ॥१९॥ तदेतत्समुद्रहामीति ॥२०॥ अथवैनां स्यन्दनमारोप्य स्वमधिष्ठानं नयामि ॥२१॥ तथैव देव्या शैव्ययाहमनुज्ञात-स्समुद्रहामीति ॥२२॥

अथैनां रथमारोप्य स्ननगरमगच्छत् ॥२३॥
विजयिनं च राजानमशेषपौरभृत्यपरिजनामात्यसमेता शैच्या द्रष्टुमधिष्ठानद्वारमागता ॥२४॥
सा चावलोक्य राज्ञः सच्यपार्श्ववर्त्तिनीं कन्यामीषदुद्भुतामर्षस्फुरद्धरपछ्ठवा राजानमवोचत्
॥२५॥ अतिचपलचित्तात्र स्यन्दने केयमारोपितेति ॥२६॥ असावप्यनालोचितोत्तरवचनोऽतिभयात्तामाह स्नुषा ममेयमिति ॥२७॥ अथैनं
शैच्योवाच ॥२८॥

नाहं प्रस्ता पुत्रेण नान्या पत्न्यभवत्तव ।

स्तुपासम्बन्धता ह्येपा कतमेन सुतेन ते ॥२९॥ श्रीपराशर उवाच

इत्यात्मेर्ष्याकोपकछपितवचनमुपितविवेको मया-दुरुक्तपरिहारार्थिमिदमवनीपतिराह ॥३०॥ यस्ते जनिष्यत आत्मजस्तस्येयमनागतस्येव भार्या निरूपितेत्याकर्ण्योद्भतमृदुहासा तथेत्याह ॥३१॥ प्रविवेश च राज्ञा सहाधिष्ठानम् ॥३२॥

अनन्तरं चातिशुद्धलप्रहोरांशकावयवोक्तकृत-पुत्रजन्मलाभगुणाद्धयसः परिणामस्रुपगतापि शैव्या खल्पैरेवाहोभिर्गर्भमवाप ॥ ३३॥ कालेन च कुमारमजीजनत् ॥ ३४॥ तस्य च विदर्भ इति पिता नाम चके ॥ ३५॥ स च तां स्तुषास्रुपयेमे ॥ ३६॥ तस्यां चासो कथकेशिकसंज्ञौ पुत्राव-जनयत् ॥ ३७॥ पुनश्च तृतीयं रोमपादसंज्ञं पुत्रमजीजनद्यो नारदादवासज्ञानवान्यवत् रत्नको विधाताने ही इस समय यहाँ भेजा है ॥१९॥
तो फिर मुझे इससे विवाह कर छेना चाहिये ॥२०॥
अथवा इसे अपने रथपर वैठाकर अपने निवासस्थानको छिये चछता हूँ, वहाँ देवी शैन्याकी आज्ञा छेकर
ही इससे विवाह कर छूँगा'॥२१-२२॥

तदनन्तर वे उसे रथपर चढ़ाकर अपने नगरको छे चछे॥२३॥ वहाँ विजयी राजाके दर्शनके छिये सम्पूर्ण पुरवासी, सेवक, कुटुम्बीजन और मिन्त्रिवर्गके सिहित महारानी शैव्या नगरके द्वारपर आयी हुई थी॥२४॥ उसने राजाके वाममागमें बैठी हुई राजकन्याको देखकर कोधके कारण कुछ काँपते हुए होठोंसे कहा—॥२५॥ "हे अति चपछचित्त ! तुमने रथमें यह कीन बैठा रखी है ?"॥२६॥ राजाको भी जब कोई उत्तर न सुझा तो अत्यन्त डरते-डरते कहा—"यह मेरी पुत्रवधू है।"॥२७॥ तब शैव्या वोळी—॥२८॥

"मेरे तो कोई पुत्र हुआ नहीं है और आपके दृसरी कोई स्त्री भी नहीं है, फिर किस पुत्रके कारण आप-का इससे पुत्रवधूका सम्बन्ध हुआ ?" ॥२९॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार, शैव्याके ईर्ष्या और क्रोध-कलुषित वचनोंसे विवेकहीन होकर भयके कारण कही हुई असंबद्ध वातके सन्देहको दृर करने-के लिये राजाने कहा-॥३०॥ "तुम्हारे जो पुत्र होने-वाला है उस मावी शिशुकी मैंने यह पहलेसे ही मार्या निश्चित कर दी है।" यह सुनकर रानीने मधुर मुसुकानके साथ कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो' और राजाके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥३१-३२॥

तदनन्तर पुत्र-लामके गुणोंसे युक्त उस अति विशुद्ध लग्न होरांशक अवयवके समय हुए पुत्रजनमविषयक वार्तालापके प्रमावसे गर्भधारणके योग्य अवस्था न रहने-पर भी थोड़े ही दिनोंमें शैन्याके गर्भ रह गया और यथासमय एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३३-३४॥ पिताने उसका नाम विदर्भ रखा ॥३५॥ और उसीके साथ उस पुत्रवधूका पाणिग्रहण हुआ ॥३६॥ उससे विदर्भने कथ और कैशिक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥३०॥ फिर रोमपाद नामक एक तीसरे पुत्रको जन्म दिया जो नारदज्ञिक उपदेशसे इक्षान-विक्रान-सम्पन्न हो गया

॥ ३८ ॥ रोमपादाद्धभ्रविभ्रोष्ट्रितिर्धृतेः कैशिकः कैशिकस्यापि चेदिः पुत्रोऽभवत् यस्य सन्ततौ चैद्या भ्रपालाः ॥ ३९॥

क्रथस स्तुषापुत्रस्य कुन्तिरभवत् ॥ ४०॥ क्रन्तेर्धृष्टिर्धृष्टेनिंधृतिर्निधृतेर्दशाहस्तत्र्य व्योमा तस्यापि जीमृतस्ततश्र विकृतिस्ततश्र भीमरथ: तसान्नवरथस्तस्यापि दशरथस्ततश्च शक्रानिः तत्तनयः करम्भिः करम्भेर्देवरातोऽभवत् ॥४१॥ तसादेवक्षत्रस्तस्यापि मधर्मधोः क्रमारवंशः कुमारवंशाद् जुरनोः पुरुमित्रः पृथिवीपतिरभवत ॥४२॥ ततश्रांशुस्तसाच सत्वतः ॥४३॥ सत्वता-देते सात्वताः ॥४४॥ इत्येतां ज्यामघस्य सन्तितं सम्यक्छूद्धासमन्वितः श्रुत्वा पुमान् मैत्रेय खपापैः प्रमुच्यते ॥ ४५ ॥

था ॥ ३८ ॥ रोमपादके बस्रु, बस्रुके घृति, घृतिके कैशिक और कैशिकके चेदि नामक पुत्र हुआ जिसकी सन्ततिमें चैद्य राजाओंने जन्म छिया ॥ ३९॥

ज्यामघकी पुत्रवधूके पुत्र क्रथके कुन्ति नामक पुत्र हुआ ॥ १०॥ कुन्तिके घृष्टि, घृष्टिके निघृति, निघृति-के दशार्ह, दशार्हके व्योमा, व्योमाके जीमृत, जीमृतके विकृति, विकृतिके भीमरथ, भीमरथके नवर्थ, नवर्थके दशरथ, दशरथके शकुनि, शकुनिके करम्मि, करम्मिके देवरात, देवरातके देवक्षत्र, देवक्षत्रके मधु, मधुके कुमारवंश, कुमारवंशके अनु, अनुके राजा पुरुमित्र, पुरुमित्रके अंशु और अंशुके सत्वत नामक पुत्र हुआ तथा सत्वतसे सात्वत-वंशका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ४१-॥ ४४ ॥ हे मैत्रेय ! इस प्रकार ज्यामघकी सन्तान-का श्रद्धापूर्वक मली प्रकार श्रवण करनेसे मनुष्य अपने समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४५॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थें ऽशे द्वाद्शोऽध्यायः ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

सत्वतकी सन्ततिका वर्णन और स्यमन्तकमणिकी कथा।

श्रीपराशर उवाच

मजनभजमानदिच्यान्धकदेवावृधमहामोजवृष्णि_ संज्ञास्सत्वतस्य पुत्रा वभूवः ॥ १॥ भजमानस्य निमिक्ककणवृष्णयस्तथान्ये द्वैमात्राः शतजित्सहस्र-जिद्युतजित्संज्ञास्त्रयः ॥ २ ॥ देवाद्यधसापि बस्रः पुत्रोऽभवत् ॥ ३॥ तयोश्रायं श्लोको गीयते 11811

यथैव शृणुमो दूरात्सम्पक्यामस्तथान्तिकात्। वम्रः श्रेष्टो मजुष्याणां देवैर्देवावृधस्समः ॥ ५ ॥ पुरुषाः पद्च पष्टिश्च पद् सहस्राणि चाष्ट च ।

तेऽसृतत्वमनुप्राप्ता

श्रीपराशरजी घोळे-सत्वतके भजन, भजमान, दिव्य, अन्धक, देवावृध, महामोज और वृष्णि नामक पुत्र हुए ॥ १ ॥ भजमानके निमि, कृकण और वृष्णि तथा इनके तीन सौतेले माई शतजित्, सहस्रजित् और अयुतजित्—ये छः पुत्र हुए ॥ २ ॥ देवावृधके बभु नामक पुत्र हुआ ॥ ३॥ इन दोनों (पिता-पुत्रों) के विषयमें यह स्लोक प्रसिद्ध है—॥ ४॥

'जैसा हमने दूरसे सुना था वैसा ही पास जाकर भी देखा; वास्तवमें, बभु मनुष्योंमें श्रेष्ठ है और देवावृध तो देवताओंके समान है ॥ ५ ॥ वभ्रु और देवावृध [के उपदेश किये हुए मार्गका अवलम्बन करने] से क्रमशः छः हजार चौहत्तर (६०७४) मनुष्येनि अमरपद विश्रोर्देवाद्यधाद्पि ॥ ६॥ प्राप्त किया था' ॥ ६॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

महाभोजस्त्वतिधर्मात्मा तस्यान्वये भोजा मृत्तिकावरपुरनिवासिनो मार्त्तिकावरा वभृतुः ॥ ७॥ वृष्णेः सुमित्रो युधाजिच पुत्रावभूताम् ।। ८ ।। ततश्चानमित्रस्तथानमित्रानिष्ठः ॥ ९ ॥ निमस्य प्रसेनसत्राजितौ ॥ १०॥

तस्य च सत्राजितो भगवानादित्यः सखा-भवत् ॥ ११ ॥ एकदा त्वम्मोनिधितीरसंश्रयः स्र्यं सत्राजित्तुष्टाव तन्मनस्कतया च भास्वान-भिष्ट्यमानोऽग्रतस्तस्यौ ॥ १२ ॥ ततस्त्वस्पष्ट-सूर्तिधरं चैनमालोक्य सत्राजित्स्र्यमाह ॥१३॥ यथैव न्योम्नि वह्निपिण्डोपमं त्वामहमपत्रयं तथैवा-द्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चित्र प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्षयामीत्येवमुक्ते भगवता सूर्येण निज-कण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्यें-कान्ते न्यस्तम् ॥ १४ ॥

ततस्तमाताम्रोज्ज्वलं हस्ववपुषमीपदापिङ्गलन-यनमादित्यमद्राक्षीत् ॥ १५॥ कृतप्रणिपातस्त-वादिकं च सत्राजितमाह भगवानादित्यस्सहस्र-दीधितिर्वरमसत्तोऽभिमतं वृणीष्वेति ॥ १६ ॥ स च तदेव मणिरत्नमयाचत ॥ १७॥ स चापि तसौ तद्दन्या दीघितिपतिर्वियति खघिष्ण्यमारुरोह 113811

सत्राजिद्प्यमलमणिरत्तसनाथकण्ठतया सूर्य इव तेजोभिरशेषदिगन्तराण्युद्धासयन् द्वारकां विवेश ॥ १९ ॥ द्वारकावासी जनस्तु तमायान्त-मंबेक्ष्य भगवन्तमादिपुरुषं पुरुषोत्तममवनिभारा-वतरणायांशेन मानुषरूपधारिणं प्रणिपत्याह ।। २०।। भगवन् भवन्तं द्रष्टुं नूनमयमा-

महाभोज वड़ा धर्मात्मा था, उसकी सन्तानमें भोज-वंशी तथा मृत्तिकावरपुरनिवासी मार्त्तिकावर नृपति-गण हुए ॥ ।। वृष्णिके दो पुत्र सुमित्र और युधाजित् हुए, उनमेंसे सुमित्रके अनमित्र, अनमित्रके निष्ठ तथा निम्नसे प्रसेन और सत्राजित्का जन्म हुआ ॥८-१०॥

उस सत्राजित्के मित्र भगवान् आदित्य हुए ॥११॥ एक दिन समुद्र-तटपर वैठे हुए सत्राजित्ने सूर्य-भगवान्की स्तुति की । उसके तन्मय होकर स्तुति करनेसे भगवान् भास्कर उसके सम्मुख प्रकट हुए ॥१२॥ उस समय उनको अस्पष्ट मूर्ति धारण किये हुए देखकर सत्राजित्ने सूर्यसे कहा—॥ १३॥ "आकारामें अग्नि-पिण्डके समान आपको जैसा मैंने देखा है वैसा ही सम्मुख आनेपर भी देख रहा हूँ । यहाँ आपकी प्रसादस्तरूप कुछ विशेषता मुझे नहीं दीखती।" सत्राजित्के ऐसा कहनेपर भगवान् सूर्यने अपने गलेसे स्यमन्तक-नामकी उत्तम महामणि उतारकर अलग रख दी ॥ १४ ॥

तब सत्राजित्ने भगवान् सूर्यको देखा—उनका शरीर किञ्चित् ताम्रवर्ण, अति उज्ज्वल और लघु या तथा उनके नेत्र कुछ पिंगछवर्ण थे ॥ १५ ॥ तदनन्तर सत्राजित्के प्रणाम तथा स्तुति आदि कर चुकनेपर सहस्रांशु मगवान् आदित्यने उससे कहा—"तुम अपना अभीष्ट वर माँगो" ॥ १६ ॥ सत्राजित्ने उस स्यमन्तकमणिको ही माँगा ॥१७॥ तव सगवान् सूर्य उसे वह मणि देकर अन्तरिक्षमें अपने स्थानको चले गये ॥ १८॥

फिर सत्राजित्ने उस निर्मेळ मणिरतसे अपना कण्ठ सुशोमित होनेके कारण तेजसे सूर्यके समान समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए द्वारकामें प्रवेश किया ॥ १९॥ द्वारकावासी छोगोंने उसे आते देख, पृथिवीका मार उतारनेके छिये अंशरूपसे अवतीर्ण हुए मनुष्यरूपधारी आदिपुरुष मगवान् पुरुषोत्तमसे प्रणाम करके कहा-॥ २०॥ "भगवन् ! आपके दर्शनोंके लिये निश्चय ही ये मगवान् सूर्यदेव दित्य आयातीत्युक्तो त्यावानुवाक्त ॥ दर्शका । अधारहे हैं अनका ऐसा स्वक्षाय कहने पर्धा भगवान् ने उनसे

भगवानायमादित्यः सत्राजिदयमादित्यदत्तस्य-महामणिरतं मन्तका ख्यं विभ्रदत्रोपयाति ॥२२॥ तदेनं विश्रब्धाः पश्यतेत्युक्तास्ते तथैव दद्यः ॥ २३॥

स च तं स्यमन्तकमणिमात्मनिवेशने चक्रे ॥ २४ ॥ प्रतिदिनं तन्मणिरत्नमष्टौ कनकभारा-न्स्रवति ॥ २५ ॥ तत्प्रभावाच सकलस्यैव राष्ट-स्योपसर्गानावृष्टिच्यालाग्निचोरदुर्भिक्षादिभयं भवति ॥ २६ ॥ अच्युतोऽपि तद्दिव्यं रह्मग्रुग्रसे-नस्य भूपतेयोंग्यमेतदिति लिप्सां चक्रे ॥ २७॥ गोत्रमेदमयाच्छक्तोऽपि न जहार ॥ २८॥

सत्राजिद्प्यच्युतो मामेतद्याचयिष्यतीत्यव-गम्य रत्नलोभाद्भात्रे प्रसेनाय तद्रत्नमदात् ॥२९॥ तच शुचिना घ्रियमाणमशेषमेव सुवर्णस्रवादिकं गुणजातम्रत्पादयति अन्यथा धारयन्तमेव हन्ती-त्यजानन्मसावपि प्रसेनस्तेन कण्ठसक्तेन स्यमन्तक-केनाश्वमारुह्याटच्यां मृग्यामगच्छत्।।३०।। तत्र च सिंहाद्रधमवाप ॥३१॥ सार्थं च तं निहत्य सिंहो-ऽप्यमलमणिरत्नमास्याग्रेणादाय गन्तुमम्युद्यतः ऋक्षाधिपतिना जाम्बवता दृष्टो घातितश्र ॥३२॥ जाम्बवानप्यमलमणिरत्नमादाय स्वविले प्रविवेश ।।३३।। सुकुमारसंज्ञाय वालकाय च क्रीडनकम करोत ॥३४॥

अनागच्छति तस्मिन्प्रसेने कृष्णो मणिरत्नमभि-लिपतवान्स च प्राप्तवान्न् मेतद्स्य कर्मेत्यखिल एव यदुलोकः परस्परं कर्णाकर्ण्यकथयत् ॥३५॥

विदितलोकापवादवृत्तान्तश्च भगवान् सर्व-यदुसैन्यपरिवारप्रिवृतः प्रसेनाश्वपद्वीमनुससार कहा-॥ २१॥ "ये भगवान् सूर्य नहीं हैं; सत्राजित है। यह सूर्यभगवान्से प्राप्त हुई स्यमन्तक-नामकी महामणिको धारणकर यहाँ आ रहा है॥२२॥ तुम छोग अब विश्वस्त होकर इसे देखो ।" भगवान्के ऐसा कहने-पर द्वारकावासी उसे उसी प्रकार देखने छगे ॥२३॥

सत्राजित्ने वह स्यमन्तकमणि अपने घरमें रख दी ॥ २४ ॥ वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी ॥ २५ ॥ उसके प्रभावसे सम्पूर्ण राष्ट्रमें रोग, अनावृष्टि तथा सर्प, अग्नि, चोर या दुर्भिक्ष आदिका मय नहीं रहता था ॥ २६ ॥ भगवान् अच्युतको भी ऐसी इच्छा हुई कि यह दिव्य रत तो राजा उप्रसेनके योग्य है ॥ २७॥ किन्त जातीय विद्रोहके भयसे समर्थ होते हुए भी उन्होंने उसे छीना नहीं ॥ २८॥

सत्राजित्को जब यह माछम हुआ कि भगवान् मुझसे यह रत माँगनेवाले हैं तो उसने लोमवश उसे अपने भाई प्रसेनको दे दिया ॥ २९॥ किन्तु इस वातको न जानते द्वए कि पवित्रतापूर्वक धारण करने-से तो यह मणि सुवर्ण-दान आदि अनेक गुण प्रकट करती है और अञ्चद्धावस्थामें धारण करनेसे घातक हो जाती है, प्रसेन उसे अपने गलेमें बाँधे हुए घोड़े-पर चढ़कर मृगयाके छिये वनको चला गया ॥ ३०॥ वहाँ उसे एक सिंहने मार डाला ॥ ३१॥ जब वह सिंह घोड़ेके सिहत उसे मारकर उस निर्मल मणिको अपने मुँहमें छेकर चछनेको तैयार हुआ तो उसी समय ऋक्षराज जाम्बवान्ने उसे देखकर मार डाला ॥३२॥ तदनन्तर उस निर्मेळ मणिरतको छेकर जाम्बवान् अपनी गुफामें आया ॥३३॥ और उसे सुकुमार नामक अपने वालकके लिये खिलौना बना लिया ॥ ३४॥

प्रसेनके न छोटनेपर सब यादवोंमें आपसमें यह कानाफ़र्सी होने लगी कि "कृष्ण इस मणिरलको लेना चाहते थे, अवस्य ही इन्हींने उसे ले लिया है-निश्चय यह इन्हींका काम है" ॥ ३५॥

इस छोकापवादका पता छगनेपर सम्पूर्ण यादव-सेनाके सहित भगवान्ने प्रसेनके घोड़ेके चरण-चिह्नों-का अनुसरण किया और आगे जाकर देखा कि ||3६|| दुद्र्श चाश्चसमवेतं प्रसेनं सिंहेन विनिह- प्रसेनको घोडेसहित सिंहने मार डाला है || ३६-

तम् ॥३७॥ अखिलजनमध्ये सिंहपददर्शनकृत-परिश्चद्धिः सिंहपदमनुससार ॥ ३८॥ ऋक्षपति-निहतं च सिंहमप्यल्पे भूमिभागे दृष्ट्वा ततश्र तद्रलगौरवाद्यस्यापि पदान्यनुययौ ॥ ३९ ॥ गिरितटे च सकलमेव तद्यदुसैन्यमवस्थाप्य तत्पदानुसारी ऋक्षविलं प्रविवेश ॥४०॥

अन्तः प्रविष्टश्च धात्र्याः सुकुमारकमुळाल-यन्त्या वाणीं शुश्राव ॥४१॥

सिंहः प्रसेनमवधीरिंसहो जाम्बवता हतः। सुकुमारक मा रोदीस्तव होष स्यमन्तकः ॥४२॥

इत्याकण्योपलब्धस्यमन्तकोऽन्तः प्रविष्टः कुमार-क्रीडनकीकृतं च घात्र्या हस्ते तेजोभिर्जाज्वल्य-मानं स्यमन्तकं दुद्र्श ॥४३॥ तं च स्यमन्तकामि-लपितचक्षुपमपूर्वपुरुपमागतं समवेक्ष्य घात्री त्राहि त्राहीति व्याजहार ॥४४॥

तदार्त्तरवश्रवणानन्तरं चामर्षपूर्णहृद्यः स जाम्बनानाजगाम ॥४५॥ तयोश्र परस्परमुद्धता-मर्षयोर्धुद्धमेकविंशतिदिनान्यभवत् ॥ ४६ ॥ ते च यदुसैनिकास्तत्र सप्ताष्टिदनानि तनिष्क्रान्ति-मुदीक्षमाणास्तस्थुः ॥ ४०॥ अनिष्क्रमणे च मञ्जरिपुरसाववश्यमत्र विलेऽत्यन्तं नाशमवाप्तो भविष्यत्यन्यथा तस्य जीवतः कथमेतावन्ति दिनानि शत्रुजये व्याक्षेपो भविष्यतीति कृताध्य-वसाया द्वारकामागम्य हतः कृष्ण इति कथया-मासुः ॥४८॥ तद्धान्धवाश्च तत्कालोचितमखिल-मुत्तरिकयाकलापं चक्रुः ॥४९॥

ततश्रास्य युद्धचमानस्यातिश्रद्धादत्तविशिष्टोप-श्रीकृष्णस्य वलप्राण-पात्रयुक्तान्नतोयादिना पुष्टिरभूत् ॥५०॥

३७॥ फिर सब छोगोंके बीच सिंहके चरण-चिह्न देख लिये जानेसे अपनी सफाई हो जानेपर भी भगवानूने उन चिह्नोंका अनुसरण किया और थोड़ी हीं दूरीपर ऋक्षराजद्वारा मारे हुए सिंहको देखा; किन्तु उस रतके महत्त्वके कारण उन्होंने जाम्बवान्के पद-चिह्नों-का भी अनुसरण किया ॥ ३८-३९॥ और सम्पूर्ण यादव-सेनाको पर्वतके तटपर छोड़कर ऋक्षराजके चरणोंका अनुसरण करते हुए खयं उनकी गुफामें घुस गये ॥ ४०॥

भीतर जानेपर भगवान्ने सुकुमारको वहलाती हुई धात्रीकी यह वाणी सुनी-॥ ४१॥

सिंहने प्रसेनको मारा और सिंहको जाम्बवान्ने; हे सुकुमार ! तू रो मत यह स्यमन्तकमणि तेरी हो है ॥४२॥

यह सुननेसे स्यमन्तकका पता लगनेपर भगवान्ने भीतर जाकर देखा कि सुकुमारके छिये खिछौना वनी हुई स्यमन्तकमणि धात्रीके हाथपर अपने तेजसे देदीप्यमान हो रही है ॥ ४३ ॥ स्यमन्तकमणिकी ओर अमिछाया-पूर्ण दृष्टिसे देखते हुए एक विलक्षण पुरुषको वहाँ आया देख धात्री 'त्राहि-त्राहि' करके चिञ्जाने छगी ॥४४॥

उसकी आर्त्त-वाणीको सुनकर जाम्बवान् कोध-पूर्ण हृदयसे वहाँ आया ॥ ४५ ॥ फिर परस्पर रोष वढ़ जानेसे उन दोनोंका इक्कीस दिनतक घोर युद्ध हुआ ॥ ४६॥ पर्वतके पास मगवान्की प्रतीक्षा करनेवाले यादव-सैनिक सात-आठ दिनतक उनके गुफासे बाहर आनेकी बाट देखते रहे ॥ १७॥ किन्तु जब इतने दिनोंतक वे उसमेंसे न निकले तो उन्होंने समझा कि 'अवस्य ही, श्रीमधुसूदन इस गुफार्मे मारे गये, नहीं तो जीवित रहनेपर शत्रुके जीतनेमें उन्हें इतने दिन क्यों लगते ?' ऐसा निश्चय कर वे द्वारकामें चले आये और वहाँ कह दिया कि श्रीकृष्ण मारे गये ॥ ४८॥ उनके बन्धुओंने यह सुनकर समयोचित सम्पूर्ण और्घदैहिक कर्म कर दिये ॥ ४९॥

इधर, अति श्रद्धापूर्वक दिये हुए विशिष्ट पात्रों सहित इनके अन्न और जल्से युद्धं करते समय श्रीकृष्णचन्द्रके इतरस्याउदिनम् तिगुरुपुरुष- वल और प्राणकी पृष्टि हो गयी ॥५०॥ तथा अति महान्

(अतानी दिना नी त्यत्यत्मसंभोत्र दितीया। त्याहेको विकामः।

अतिनिष्ठुरप्रहारपातपीडिताखिला-वयवस्य निराहारतया वलहानिरभूत्।।५१।। निर्जितश्र भगवता जाम्बवान्प्रणिपत्य व्याजहार ॥५२॥ सुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसादिभिरप्यक्तिलै-र्भवात्र जेतुं शक्यः किसुतावनिगोचरैरलपवीर्यंनरैर्न-रावयवभृतैश्व तिर्यग्योन्यनुसृतिभिः किं पुनरस्मद्धि-वैरवइयं भवताऽस्मत्स्वामिना रामेणेव नारायणस्य सकलजगत्परायणस्यांशेन मगवता भवितच्य-मित्युक्तस्तसै भगवानिखलावनिभारावतरणार्थ-मवतरणमाचचक्षे ॥ ५३ ॥ प्रीत्यभिव्यञ्जितकर-तलस्पर्शनेन चैनमपगतयुद्धखेदं चकार ॥५४॥

स च प्रणिपत्य पुनरप्येनं प्रसाद्य जाम्बवतीं नाम कन्यां गृहांगतायाध्येभूतां ग्राह्यामास ॥ ५५॥ स्यमन्तकमणिरत्नमपि प्रणिपत्य तस्मै प्रद्दौ ॥५६॥ अच्युतोऽप्यतिप्रणतात्तरमाद्ग्राह्य-मपि तन्मणिरत्नमात्मसंशोधनाय जग्राह ॥५७॥ सह जाम्बवत्या स द्वारकामाजगाम ॥५८॥

भगवदागमनोद्भतहर्षोत्कर्षस्य द्वारकावासिजन-स्य कृष्णावलोकनात्तत्क्षणमेवातिपरिणतवयसोऽपि नवयौवनमिवाभवत् ॥ ५९ ॥ दिष्टचा दिष्टचेति सकलयादवाः स्त्रियश्च सभाजयामासुः॥ ६०॥ भगवानिप यथानुभूतमशेषं यादवसमाजे यथा-वदाचचक्षे ॥६१॥ स्यमन्तकं च सत्राजिते दस्वा मिथ्याभिशस्तिपरिश्चद्धिमवाप।।६२॥ जाम्ब-वर्ती चान्तः पुरे निवेशयामास ॥६३॥

सत्राजिद्ि मयास्याभृतमिलनमारोपित-

पुरुषके द्वारा मर्दित होते हुए उनके अत्यन्त निष्ठुर प्रहारोंके आघातसे पीडित शरीरवाले जाम्ववान्का बल निराहार रहनेसे क्षीण हो गया॥ ५१॥ भगवान्से पराजित होकर जाम्बवानने अन्तमें उन्हें प्रणाम करके कहा-॥ ५२॥ "मगवन्! आपको तो देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि कोई भी नहीं जीत सकते, फिर पृथिवीतलपर रहने-वाले अल्पवीर्य मनुष्य अथवा मनुष्योंके अवयवभूत हम-जैसे तिर्यक् योनिगत जीवोंकी तो बात ही क्या है ? अवस्य ही आप हमारे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके समान सकल लोक-प्रतिपालक भगवान् नारायणके ही अंशसे प्रकट हुए हैं।" जाम्बवान्के ऐसा कहने-पर भगवान्ने पृथिवीका भार उतारनेके लिये अपने अवतार टेनेका सम्पूर्ण वृत्तान्त उससे कह दिया और उसे प्रीतिपूर्वक अपने हाथसे छूकर युद्धके श्रमसे रहित कर दिया ॥ ५३-५४ ॥

तदनन्तर जाम्बवान्ने पुनः प्रणाम करके उन्हें प्रसन्न किया और घरपर आये हुए भगवान्के लिये अर्घ-खरूप अपनी जाम्बवती नामकी कन्या दे दी तथा उन्हें प्रणाम करके मणिरत स्यमन्तक भी दे दिया ॥ ५५-५६॥ भगवान् अच्युतने भी उस अति विनीत-से छेने योग्य न होनेपर भी अपने कळङ्क-शोधनके लिये वह मणिरत ले लियां और जाम्बवतीके सहित द्वारकामें आये ॥ ५७-५८॥

उसं समय भगवान् कृष्णचन्द्रके आगमनसे जिनके हर्षका वेग अत्यन्त वढ़ गया है उन द्वारका-वासियोंमेंसे बहुत ढळी हुई अवस्थावाळोंमें उनके दर्शनके प्रभावसे तत्काल ही मानो नवयौवन का संद्रार हो गया ॥ ५९ ॥ तथा सम्पूर्ण यादवगण और उनकी स्त्रियाँ 'अहोभाग्य ! अहोभाग्य !!" ऐसा कहकर उनका अभिवादन करने छगीं ॥ ६०॥ भगवान्ने भी जो-जो वात जैसे-जैसे हुई थी वह ज्यों-को स्यों यादव-समाजमें सुना दी और सत्राजित्को स्यमन्तकमणि देकर मिथ्या कलंकसे छुटकारा पा लिया । फिर जाम्बवतीको अपने अन्तःपुरमें पहुँचा दिया ॥ ६१--६३॥

सत्राजित्ने मी यह सोचकर कि, मैंने ही कृष्ण-मिति जातसन्त्रासात्खस्तां सत्यभामां भगवते चन्द्रको मिथ्या कङंक छगाया था, डरते-डरते उन्हें

भार्यार्थं ददौ ॥६४॥ तां चाक्र्रकृतवर्मशतधन्व-प्रमुखा यादवाः प्राग्वरयाम्बभूवुः ॥६५॥ ततस्त-त्प्रदानाद्वज्ञातमेवात्मानं मन्यमानाः सत्राजिति वैरानुबन्धं चक्रुः ॥६६॥

अक्र्रकृतवर्मप्रमुखाश्र शतधन्यानमृचुः॥६७॥ अयमतीव दुरात्मा सत्राजिद् योऽस्माभिर्भवता च प्रार्थितोऽप्यात्मजामस्मान् भवन्तं चावि-गणय्य कृष्णाय दत्तवान् ॥ ६८॥ तद्लमनेन जीवता घातयित्वैनं तन्महारत्नं स्यमन्तकाख्यं त्वया किं न गृह्यते वयमभ्युपपत्स्यामो यद्यच्यु-तस्तवोपरि वैराजुबन्धं करिष्यतीत्येवग्रुक्तस्तथेत्य-सावप्याह ॥ ६९ ॥

जतुगृहद्ग्धानां पाण्डतनयानां विदितपरमा-र्थोऽपि भगवान् दुर्योधनप्रयत्तशैथिल्यकरणार्थं कुल्यकरणाय वारणावतं गतः ॥७०॥

गते च तसिन् सुप्तमेव सत्राजितं शतधन्या जघान मणिरत्नं चाददात् ॥७१॥ पितृवधामर्ष-पूर्णी च सत्यभामा शीघ्रं स्यन्दनमारूढा वार-णावतं गत्वा भगवते इं प्रतिपादितेत्यक्षान्तिमता शतधन्वनास्मित्पता व्यापादितसञ्च स्यमन्तक-मणिरत्नमपहृतं . यस्यावभासनेनापहृततिमिरं त्रैलोक्यं भविष्यति ॥७२॥ तदियं त्वदीयापृहा-सना तदालोच्य यदत्र युक्तं तत्क्रियतामिति कृष्णमाह ॥ ७३॥

तया चैवमुक्तः परितुष्टान्तःकरणोऽपि कृष्णः सत्यभामाममर्पताम्रनयनः प्राह ॥ ७४ ॥ सत्ये सत्यं ममैवेषापहासना नाहमेतां तस्य दुरात्मन-

पत्नीरूपसे अपनी कन्या सत्यभामा विवाह दी॥ ६४॥ उस कन्याको अक्रूर, कृतवर्मा और रातधन्वा आदि यादवोंने पहले वरण किया था ॥६५॥ अतः श्रीकृष्ण-चन्द्रके साथ उसे विवाह देनेसे उन्होंने अपना अपमान समझकर सत्राजित्से वैर वाँघ लिया ॥ ६६॥

तदनन्तर अक्रूर और कृतवर्मा आदिने रातधन्वासे कहा—॥ ६७॥ "यह सत्राजित् वड़ा ही दुष्ट है, देखो, इसने हमारे और आपके माँगनेपर भी हम-छोगोंको कुछ भी न समझकर अपनी कन्या कृष्ण-चन्द्रको दे दी ॥ ६८ ॥ अतः अव इसके जीवनका प्रयोजन ही क्या है; इसको मारकर आप स्यमन्तक महामणि क्यों नहीं छे छेते हैं ? पीछे, यदि अच्युत आपसे किसी प्रकारका विरोध करेंगे तो हमलोग भी आपका साथ देंगे।" उनके ऐसा कहनेपर शतधन्वा-ने कहा—"बहुत अच्छा, ऐसा ही करेंगे" ॥ ६९ ॥

इसी समय पाण्डवोंके लाक्षागृहमें जलनेपर, यथार्थ वातको जानते हुए भी, भगवान् कृष्णचन्द्र दुर्योधनके प्रयत्नको शिथिल करनेके उद्देश्यसे कुलोचित कर्म करनेके लिये वारणावत नगरको गये ॥ ७० ॥

उनके चले जानेपर शतधन्वाने सोते सत्राजित्को मारकर वह मणिरत छे छिया ॥ ७१॥ पिताके वधसे क्रोधित हुई सत्यभामा तुरन्त ही रथपर चढ़कर वारणावत नगरमें पहुँची और भगवान कृष्णसे बोळी, "भगवन् ! पिताजीने मुझे आपके करकमछोंमें सौंप दिया—इस बातको सहन न कर सकनेके कारण शतधन्वाने मेरे पिताजीको मार दिया है और उस स्यमन्तक नामक मणिरतको छे छिया है जिसके प्रकाशसे सम्पूर्ण त्रिलोको भी अन्धकारशून्य हो जायगी ॥ ७२ ॥ इसमें आपहीकी हँसी है इसलिये सव वार्तोका विचार करके जैसा उचित समझें, करें" ॥ ७३॥

सत्यभामाके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने मन-हो-मन प्रसन्न होनेपर मी उनसे क्रोघसे आँखें **टाट करके कहा—॥ ७४॥ "सत्ये! अवस्य इसमें** मेरी ही हैंसी है, उस दुरात्माके इस कुकर्मको मैं स्साहिष्ये ।।७५।। न हानुस्रकृत्य अस्याद्र पंतत्कृतनी ना सहत वहीं कार सकतान क्योंकि अदि ऊँचे वृक्षका

डाश्रयिणो विहङ्गमा वध्यन्ते तदलमग्रनास्मत्पुरतः शोकप्रेरितवाक्यपरिकरेणेत्युक्त्वा द्वारकामभ्ये-त्यैकान्ते बलदेवं वासुदेवः प्राह ॥७६॥ मृगया-गतं प्रसेनमटच्यां मृगपतिर्जघान ॥ ७७॥ सत्राजिद्प्यधुना शतधन्त्रना निधनं प्रापितः 11 30 11 तदुभयविनाशात्तन्मणिरत्नमावाभ्यां सामान्यं भविष्यति ॥ ७९ ॥ तदुत्तिष्ठारुह्यतां रथः शतधन्वनिधनायोद्यमं कुर्वित्यभिहितस्तथेति समन्वीप्सितवान् ॥८०॥

कृतोद्यमौ च ताबुभाबुपलभ्य शतधन्वा कृतवर्माणमुपेत्य पार्ष्णिपूरणकर्मनिमित्तमचोद्यत् ॥८१॥ आह चैनं कृतवर्मा॥८२॥ नाहं बलद्वेववासुद्वेवाभ्यां सह विरोधायालमित्युक्तश्चा-क्रमचोदयत् ॥८३॥ असावप्याह ॥८४॥ न हि कश्चिद्धगवता पादप्रहारपरिकम्पितंजगत्त्रयेण सुरिपुवनितावैधव्यकारिणा प्रबलरिप्रचका-प्रतिहतचक्रेण चक्रिणा मद्युदितनयनाव लोकिता-खिलनिशातनेनातिगुरुवैरिवारणापकर्पणाविकृत-महिमोरुसीरेण सीरिणा च सह सकलजगद्दन्दा-नाममरवराणामपि योद्धं समर्थः किस्रताहम्।।८५॥ तद्न्यक्शरणमभिलष्यतामित्युक्तक्शतभनुराह ॥ ८६ ॥ यद्यसत्परित्राणासमर्थं भवानात्मानम-विगच्छति तद्यमस्मत्तस्तावन्मणिः संगृह्य रक्ष्य-त्तामिति ॥८७॥ एवयुक्तः सोऽप्याह ॥८८॥

उञ्जब्दन न किया जा सके तो उसपर घोंसळा बनाकर रहनेवाले पक्षियोंको नहीं मार दिया जाता [अर्थात बड़े आदमियोंसे पार न पानेपर उनके आश्रितोंको नहीं दबाना चाहिये ।] इसिछये अब तुम्हें हमारे सामने इन शोक-प्रेरित वाक्योंके कहनेकी और आवस्यकता नहीं है। [तुम शोक छोड़ दो, मैं इसका मली प्रकार वदला चुका दूँगा।]" सत्यमामासे इस प्रकार कह भगवान् वासुदेवने द्वारकामें आकर श्रीबलदेवजीसे एकान्तमें कहा—॥ ७५-७६॥ 'वनमें आखेटके लिये गये हुए प्रसेनको तो सिंहने मार दिया था ॥ ७७ ॥ अब शतधन्वाने सत्राजित्को भी मार दिया है॥ ७८॥ इस प्रकार उन दोनोंके मारे जानेपर मणिरत स्यमन्तकपर हम दोनोंका समान अधिकार होगा ॥७९॥ इसिंख्ये उठिये और रथपर चढ़कर शतधन्वाके मारनेका प्रयत्न कीजिये।' कृष्णचन्द्रके ऐसा कहने-पर बळदेवजीने भी 'बहुत अच्छा' कह उसे स्वीकार किया ॥ ८०॥

कृष्ण और बलदेवको [अपने वधके लिये] उद्यत जान शतधन्याने कृतवर्मीके पास जाकर सहायताके लिये प्रार्थना की ॥८१॥ तब कृतवर्माने इससे कहा-॥८२॥ 'मैं बल्देव और वासुदेवसे विरोध करनेमें समर्थ नहीं हूँ ।' उसके ऐसा कहनेपर रातधन्वाने अक्रूरसे सहायता माँगी, तो अक्रूरने भी कहा-॥ ८३-८४॥ 'जो अपने पाद-प्रहारसे त्रिलोकीको कम्पायमान कर देते हैं, देवरात्रु असुरगणकी स्नियोंको वैधन्यदान देते हैं तथा अति प्रबल रात्रु-सेनासे भी जिनका चक्र अप्रतिहत रहता है उन चक्रधारी भगवान् वासुदेवसे तथा जो अपने मदोन्मत्त नयनोंकी चितवनसे सब-का दमन करनेवाले और भयङ्कर शत्रुसम्हरूप हाथियोंको खींचनेके छिये अखण्ड महिमाशाली प्रचण्ड हल धारण करनेवाले हैं उन श्रीहलधरसे युद्ध करनेमें तो निखिल-लोक-वन्दंनीय देवगणमें भी कोई समर्थ नहीं है फिर मेरी तो बात ही क्या है ?॥ ८५॥ इसिंख्ये तुम दूसरेकी शरण छो' अक्रूरके ऐसा कहने-पर शतधन्याने कहा-॥ ८६ ॥ 'अच्छा, यदि मेरी रक्षा करनेमें आप अपनेको सर्वथा असमर्थ समझते हैं तो मैं आपको यह मणि देता हूँ इसे छेकर इसीकी रक्षा विश्वकः सोडप्याह् ||८८|| कीजिये' || ८७ || इसपर अक्रूरने कहा-|| ८८ ||

यद्यन्त्यायामप्यवस्थायां न कस्मैचिद्भवान् कथ-यिष्यति तदहमेतं ग्रहीष्यामीति।।८९॥ तथेत्युक्ते चाऋरत्तन्मणिरतं जग्राह ॥ ९०॥

शतधनुरप्यतुलवेगां शतयोजनवाहिनीं वडवामारुह्यापक्रान्तः ॥ ९१ ॥ शैव्यसुग्रीवमेघ-पुष्पवलाहकाश्वचतुष्टययुक्तरथस्थितौ वलदेववास-देवो तमनुप्रयातौ ॥९२॥ सा च वडवा शतयो-जनप्रमाणमार्गमतीता पुनरपि वाह्यमाना मिथिला-वनोद्देशे प्राणाजुत्ससर्ज ॥९३॥ शतधनुरि तां परित्यज्य पदातिरेवाद्रवत् ॥ ९४ ॥ कृष्णोऽपि वलभद्रमाह ।। ९५ ॥ तावदत्र स्यन्दने भवता स्थेयमहमेनमधमाचारं पदातिरेव पदातिम्तुगम्य यावद्वातयामि अत्र हि भूभागे दृष्टदोपास्सभया अतो नैतेऽश्वा भवतेमं भूमिभागमुल्रङ्घनीयाः ॥ ९६ ॥ तथेत्युक्त्वा वलदेवो रथ तस्थौ ॥ ९७॥

कृष्णोऽपि द्विक्रोशमात्रं भूमिभागमनुसुत्य दूरस्थितस्यैव चक्रं क्षिप्त्वा शतधनुषश्चिरारश्चिच्छेद ।।९८।। तच्छरीराम्बरादिषु च वहुप्रकारमन्विच्छ-न्नपि स्यमन्तकमणि नावाप यदा तदोपगम्य बलमद्रमाह ॥९९॥ वृथैवास्माभिः शतधनुर्घा-वितो न प्राप्तमखिलजगत्सारभृतं तन्महारतं स्यमन्तका ख्यमित्याक ण्यों द्भुतकोपो वलदेवो वासदेवमाह ॥१००॥ धिक्त्वां यस्त्वमेवमर्थ-लिप्सुरेतच ते आतृत्वान्मया क्षान्तं तद्यं पन्था-स्स्वेच्छया गम्यतां न मे द्वारकया न त्वया न चाशेषवन्धुभिः कार्य्यमलमलमेभिर्ममाप्रतो-

'मैं इसे तमी छे सकता हूँ जब कि अन्तकाछ उपस्थित होनेपर भी तुम किसीसे भी यह बात न कहो ॥८९॥ शतधन्वाने कहा-'ऐसा ही होगा।' इसपर अक्रूरने वह मणिरत अपने पास रख लिया ॥ ९०॥

तदनन्तर, शतधन्वा सौ योजनतक जानेवाछी एक अत्यन्त वेगवती घोड़ीपर चढ़कर भागा ॥ ९१ ॥ और शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प तथा वलाहक नामक चार घोड़ोंवाले रथपर चढ़कर वलदेव और वासुदेवने मी उसका पीछा किया ॥ ९२ ॥ सौ योजन मार्ग पार कर जानेपर पुनः आगे हे जानेसे उस घोड़ीने मिथिहा देशके वनमें प्राण छोड़ दिये ॥ ९३ ॥ तब शतधन्वा उसे छोड़कर पैदल ही भागा ॥ ९४ ॥ उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने वलमद्रजीसे कहा-॥९५॥ 'आप अमी रथमें ही रहिये मैं इस पैदल दौड़ते हुए दुराचारीको पैदल जाकर ही. मारे डालता हूँ। यहाँ घोड़ीके मरने आदि] दोषोंको देखनेसे घोड़े मयमीत हो रहे हैं. इसलिये आप इन्हें और आगे न बढाइयेगा ॥ ९६ ॥ तव वलदेव जी 'अच्छा' ऐसा कहकर रथमें ही बैठे रहे ॥ ९७॥

कृष्णचन्द्रने केवल दो ही कोशतक पीछाकर अपना चक्र फेंक दूर होनेपर भी शतधन्वाका सिर काटडाला ॥ ९८ ॥ किन्तु उसके शरीर और वस्त्र आदिमें बहुत कुछ हुँढ्नेपर भी जब स्यमन्तकमणिको न पाया तो वलभद्रजीके पास जाकर उनसे कहा॥ ९९॥ "हमने शतधन्वाको व्यर्थ ही मारा क्योंकि उसके पास सम्पूर्ण संसारकी सारभूत स्यमन्तकमणि तो मिछी ही नहीं।" यह सनकर वलदेवजीने [यह समझकर कि कृष्णचन्द्र उस मणिको छिपानेके लिये ही ऐसी बातें बना रहे हैं 1 क्रोधपूर्वक भगवान् वासुदेवसे कहा-॥ १००॥ 'तुमको धिकार है, तुम बड़े ही अर्थछोल्प हो: मार्ड होनेके कारण ही मैं तुम्हें क्षमा किये देता हूँ। तुम्हारा मार्ग खुटा हुआ है, तुम ख़ुशीसे जा सकते हो । अव मुझे तो द्वारकासे, तुमसे अथवा और सव सगे-सम्बन्धियोंसे कोई काम नहीं है। बस, मेरे आगे Sलीकशपथैरित्याक्षिप्य तत्कथां कथित्रित्रसाद्य- । इन थोथी शपथोंका अब कोई प्र CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri इन थोथी शपथोंका अब कोई प्रयोजन नहीं।'

मानोऽपि न तस्थौ ।।१०१॥ स विदेहपुरीं प्रवि-वेश ॥ १०२ ॥

जनकराजश्रार्घ्यपूर्वकमेनं गृहं प्रवेशयामास ॥१०३॥ स तत्रैव च तस्थौ ॥१०४॥ वासुदेवो-ऽपि द्वारकामाजगाम ॥१०५॥ यावच जनक-राजगृहे वलमद्रोऽवतस्थे तावद्धार्त्तराष्ट्रो दुर्योधन-स्तत्सकाशाद्भदाशिक्षामशिक्षयत् ॥१०६॥ वर्षत्र-वभ्रमसेनप्रभृतिभिर्यादवैर्न तद्रलं कृष्णेनापहृतमिति कृतावगतिभिविदेहनगरीं गत्वा वलदेवस्सम्प्रत्याय्य द्वारकामानीतः ॥ १०७॥

अक्रूरोऽप्युत्तममणिसमुद्भृतसुवर्णेन भगवद्भचा-नपरोऽनवरतं यज्ञानियाज ॥१०८॥ सवनगतौ हि क्षत्रियवैक्यौ निम्नन्त्रह्महा भवतीत्येवम्प्रकारं दीक्षाकवचं प्रविष्ट एव तस्थौ ॥१०९॥ द्विपष्टि-वर्षाण्येवं तन्मणिप्रभावात्तत्रोपसर्गदुर्भिक्षमारिका-मरणादिकं नाभूत् ॥११०॥ अथाकूरपक्षीयैमीं-जैश्शत्रुमे सात्वतस्य प्रपौत्रे व्यापादिते मोजैस्स-हाक्रूरो द्वारकामपहायापक्रान्तः ॥१११॥ तद्प-क्रान्तिदिनादारभ्य तत्रोपसर्गदुर्भिक्षच्यालानावृ-ष्टिमारिकाद्यपद्रवा वभूवुः ।।११२॥

याद्ववलभद्रोग्रसेनसमवेतो मन्त्रयद् भगवानुरगारिकेतनः ॥११३॥ किमिद-मेकदैव प्रचुरोपद्रवागमनमेतदालोच्यतामित्युक्ते-ऽन्धकनामा यदुवृद्धः प्राह ॥११४॥ अस्याक्र्रस्य पिता श्वफलको यत्र यत्राभूत्तत्र तत्र दुर्भिक्षमारिका-नाष्ट्रध्यादिकं नाभृत् ॥११५॥ काशिराजस्य विषये त्वनाष्ट्रष्टया च श्वफल्को नीतः ततश्र तत्क्षणादेवो ववर्ष ॥११६॥

काशिराजपत्न्याश्च गर्मे कन्यारतं पूर्वमासीत्

इस प्रकार उनकी बातको काटकर बहुत कुछ मनाने-पर भी वे वहाँ न रुके और विदेहनगरको चले गये ॥ १०१-१०२॥

विदेहनगरमें पहुँचनेपर राजा जनक उन्हें अर्घ देकर अपने घर छे आये और वे वहीं रहने छगे॥ १०३-१०४॥ इघर, भगवान् वासुदेव द्वारकामें चले आये ॥ १०५ ॥ जितने दिनोंतक वलदेवजी राजा जनकके यहाँ रहे उतने दिनतक भृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन उनसे गदायुद्ध सीखता रहा ॥१०६॥ अनन्तर, वभु और उप्रसेन आदि यादवोंके, जिन्हें यह ठीक माछ्म था कि 'कृष्णने स्यमन्तकमणि नहीं छी है', विदेहनगरमें जाकर शपथपूर्वक विश्वास दिलानेपर वलदेवजी तीन वर्ष पश्चात् द्वारकामें चले आये ॥ १०७॥

अक्रूरजी भी भगवद्धयान-परायण रहते हुए उस मणि-रत्नसे प्राप्त सुवर्णके द्वारा निरन्तर यज्ञानुष्ठान करने छगे ॥१०८॥ यज्ञ-दीक्षित क्षत्रिय और वैश्योंके मारनेसे ब्रह्महत्या होती है इसलिये अक्रूरजी सदा यज्ञदीक्षारूप कवच धारण ही किये रहते थे ॥१०९॥ उस मणिके प्रमावसे बासठ वर्षतक द्वारकामें रोग, दुर्मिक्ष, महामारी या मृत्यु आदि नहीं हुए ॥११०॥ फिर अक्रूर-पक्षीय भोजवंशियोंद्वारा सात्वतके प्रपौत्र शत्रुष्ठके मारे जानेपर भोजोंके साथ अक्रूर भी द्वारका-को छोड़कर चंछे गये ॥१११॥ उनके जाते ही, उसी दिनसे द्वारकामें रोग, दुर्मिक्ष, सर्प, अनावृष्टि और मरी आदि उपद्रव होने छगे॥११२॥

तव गरुडध्वज भगवान् कृष्ण वलमद्र और उग्र-सेन आदि यदुवंशियोंके साथ मिलकर सलाह करने छगे ॥११३॥ 'इसका क्या कारण है जो एक साथ ही इतने उपद्रवोंका आगमन हुआ, इसपर विचार करना चाहिये।' उनके ऐसा कहनेपर अन्धक नामक एक वृद्ध यादवने कहा ॥११४॥ अक्रूरके पिता स्वफल्क जहाँ-जहाँ रहते थे वहाँ-वहाँ दुर्भिक्ष, महामारी और अनावृष्टि आदि उपद्रव कमी नहीं होते थे ॥११५॥ एक बार काशिराजके देशमें अनावृष्टि हुई थी। तब स्वफल्क-को वहाँ छे जाते ही तत्काल वर्षा होने लगी ॥११६॥

उस समय काशिराजकी रानीके गर्भमें एक कन्यारत थी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

ा ११७॥ सा च कन्या पूर्णेऽपि प्रस्तिकाले नैव निश्रकाम ॥ ११८॥ एवं च तस्य गर्भस्य द्वादश्चर्याण्यनिष्कामतो ययुः ॥ ११९॥ काशि-राजश्च तामात्मजां गर्भस्थामाह ॥ १२०॥ पुत्रि कसान्न जायसे निष्कम्यतामास्यं ते द्रष्टुमि-च्छामि एतां च मातरं किमिति चिरं क्लेश-यसीत्युक्ता गर्भस्थैव व्याजहार ॥ १२१॥ तात यद्येकैकां गां दिने दिने ब्राह्मणाय प्रयच्छिस तदाहमन्ये सिर्मिवपैरसाद्गर्भा चावदवश्यं निष्क-मिष्यामीत्ये द्वचनमाकण्ये राजा दिने दिने ब्राह्मणाय गां प्रादात् ॥ १२२॥ सापि तावता कालेन जाता ॥ १२३॥

ततस्त्याः पिता गान्दिनीति नाम चकार ।। १२४ ।। तां च गान्दिनीं कन्यां श्वफल्कायोपकारिणे गृहमागतायार्घ्यभूतां प्रादात् ।। १२५ ।।
तस्यामयमक्र्रः श्वफल्काञ्ज्ञे ।। १२६ ।। तस्यैवङ्गणमिथुनादुत्पत्तिः ।। १२७ ।। तत्कथमिसव्यन्ति ।। १२८ ।। तद्यमत्रानीयतामलमितगुणवत्यपराधान्वेषणेनेति यदुवृद्धस्यान्धकस्यैतद्वचनमाकर्ण्य केश्वोग्रसेनवलभद्रपुरोगमैर्यदुभिः
कृतापराधितितिश्चमिरमयं दत्त्वा श्वफल्कपुत्रः
स्वपुरमानीतः ।। १२९ ।। तत्र चागतमात्र एव
तस्य स्यमन्तकमणेः प्रभावादनावृष्टिमारिकादुभिक्षव्यालाद्यपद्ववोपश्चमा वभूवः ।। १३० ।।

कृष्णश्चिन्तयामास ॥ १३१ ॥ खल्पमेत-त्कारणं यदयं गान्दिन्यां श्वफल्केनाक्रूरो जनितः ॥ १३२ ॥ सुमहांश्चायमनावृष्टिदुर्मिक्षमारिकाद्यु-पद्रवप्रतिषेधकारी प्रभावः ॥ १३३ ॥ तन्नूनमस्य सकाशे स महामणिः स्यमन्तकाख्यस्तिष्ठति ॥ १३४ ॥ तस्य ह्येविधाः प्रभावाः श्रूयन्ते ॥ ११७॥ वह कन्या प्रस्तिकालके समाप्त होनेपर भी गर्भसे वाहर न आयी ॥ ११८॥ इस
प्रकार उस गर्भको प्रसव हुए विना वारह वर्ष
व्यतीत हो गये ॥११९॥ तव काशिराजने अपनी
उस गर्भस्थिता पुत्रीसे कहा—॥१२०॥ वेटी! त उत्पन्न
क्यों नहीं होती १ वाहर आ, मैं तेरा मुख देखना
चाहता हूँ ॥१२१॥ अपनी इस माताको त इतने
दिनोंसे क्यों कष्ट दे रही है १ राजाके ऐसा कहनेपर उसने गर्भमें रहते हुए ही कहा—'पिताजी! यदि
आप प्रतिदिन एक गौ ब्राह्मणको दान देंगे तो
अगले तीन वर्ष वीतनेपर मैं अवस्य गर्भसे वाहर आ
जाऊँगी। इस वातको सुनकर राजा प्रतिदिन
ब्राह्मणको एक गौ देने लगे॥१२२॥ तव उतने समय
(तीन वर्ष) वीतनेपर वह उत्पन्न हुई॥१२३॥

पिताने उसका नाम गान्दिनी रखा ॥ १२४॥ और उसे अपने उपकारंक स्वफल्कको, घर आनेपर अर्घ्यरूपसे दे दिया ॥ १२५॥ उसीसे स्वफल्कको द्वारा इन अक्रूरजीका जन्म हुआ है ॥ १२६॥ इनको ऐसी गुणवान् माता-पितासे उत्पत्ति है तो फिर उनके चल्ले जानेसे यहाँ दुर्मिक्ष और महामारी आदि उपद्रव क्यों न होंगे १॥ १२७-१२८॥ अतः उनको यहाँ ले आना चाहिये, अति गुणवान्के अपराधकी अधिक जाँच-परताल करना ठीक नहीं है। यादवबृद्ध अन्धक ऐसे वचन सुनकर कृष्ण, उप्रसेन और वल्मद्र आदि यादव स्वफल्कपुत्र अक्रूरके अपराधको मुलाकर उन्हें अभयदान देकर अपने नगरमें ले आये ॥ १२९॥ उनके वहाँ आते ही स्यमन्तकमणिके प्रभावसे अनावृष्टि, महामारी, दुर्मिक्ष और सर्पमय आदि समी उपद्रव शान्त हो गये॥ १३०॥

तव श्रीकृष्णचन्द्रने विचार किया—॥ १३१॥ 'अक्रूरका जन्म गान्दिनीसे स्वफल्कके द्वारा हुआ है यह तो वृह्वत सामान्य कारण है॥ १३२॥ किन्तु अनावृष्टि, दुर्मिक्ष, महामारी आदि उपद्रवोंको शान्त कर देनेवाळा इसका प्रमाव तो अति महान् है॥ १३३॥ अवस्य ही इसके पास वह स्यमन्तक नाम महामणि है॥ १३४॥ उसीका ऐसा प्रमाव सुना

॥ १३५॥ अयमपि च यज्ञादनन्तरमन्यत्कत्वन्तरं तस्यानन्तरमन्यद्यज्ञान्तरं चाजस्रमविचिछनं यजतीति ॥ १३६॥ अल्पोपादानं
चास्यासंशयमत्रासौ मणिवरस्तिष्ठतीति कृताध्यवसायोऽन्यत्प्रयोजनम्रह्दिश्य सकल्याद्वसमाजमात्मगृह एवाचीकरत् ॥ १३७॥

तत्र चोपविष्टेष्वितिलेषु यदुषु पूर्व प्रयोजन-मुपन्यस्य पर्यवसिते च तसिन् प्रसङ्गान्तरपरिहा-सकथामक्रुरेण कुत्वा जनार्दनस्तमक्ररमाह ॥ १३८ ॥ दानपते जानीम एव वयं यथा श्रतधन्वना तदिदमिललजगत्सारभूतं स्थमन्तकं रतं भवतः समर्पितं तदशेषराष्ट्रोपकारकं भवत्स-काशे तिष्ठति तिष्ठतु सर्व एव वयं तत्प्रभावफल-भुजः किं त्वेष बलमद्रोऽसानाशङ्कितवांस्तद्स-त्य्रीतये दर्शयस्वेत्यभिधाय जोषं स्थिते भगवति वासुदेवे सरत्नस्सोऽचिन्तयत् ॥ १३९ ॥ किमत्रा-नुष्टेयमन्यथा चेद्रवीम्यहं तत्केवलाम्बरतिरोधान-मन्विष्यन्तो रत्नमेते द्रक्ष्यन्ति अतिविरोधो न क्षेम इति सिञ्चन्त्य तमिललजगत्कारणभृतं नारायणमाहाक्र्रः ॥ १४० ॥ भगवन्ममैतत्स्यम-न्तकरतं शतधनुषा समर्पितमपगते च तसिन्नद्य थः परश्चो वा भगवान् याचयिष्यतीति कृतमति-रतिकुच्छ्रेणैतावन्तं कालमधारयम् ॥ १४१॥ तस्य च घारणक्केशेनाहमशेषोपमोगेष्वसङ्गिमानसो न वेद्रि खसुखकलामपि ॥ १४२ ॥ एतावन्मात्र-मप्यशेषराष्ट्रोपकारि धारियतुं न शक्रोति भवान्म-न्यत इत्यात्मना न चोदितवान् ॥ १४३॥

जाता है ॥ १३५ ॥ इसे भी हम देखते हैं कि एक यज्ञके पीछे दूसरा और दूसरेके पीछे तीसरा इस प्रकार निरन्तर अखण्ड यज्ञानुष्ठान करता रहता है ॥ १३६ ॥ और इसके पास यज्ञके साधन [धन आदि] भी बहुत कम हैं; इसिंख्ये इसमें सन्देह नहीं कि इसके पास स्यमन्तकमणि अवस्य है ।' ऐसा निश्चयकर किसी और प्रयोजनके उद्देश्यसे उन्होंने सम्पूर्ण यादवोंको अपने महल्में एकत्रित किया ॥ १३७ ॥

समस्त यदुवंशियोंके वहाँ आकर बैठ जानेके वाद प्रथम प्रयोजन वताकर उसका उपसंहार होनेपर प्रसंगान्तरसे अक्रूरके साथ परिहास करते हुए भगवान् कृष्णने उनसे कहा-॥१३८॥ "हे दानपते! जिस प्रकार शतधन्वाने तुम्हें सम्पूर्ण संसारकी सारभूत वह स्यमन्तक-नामकी महामणि सौंपी थी वह हमें सब माछूम है। वह सम्पूर्ण राष्ट्रका उपकार करती हुई तुम्हारे पास है तो रहे, उसके प्रभावका फल तो हम सभी भोगते हैं, किन्तु ये बलमद्रजी हमारे ऊपर सन्देह करते थे, इसलिये हमारी प्रसन्नताके छिये आप एक बार उसे दिखला दीजिये।" भगवान् वासुदेवके ऐसा कहकर चुप हो जाने-पर रत साथ ही लिये रहनेके कारण अकूरजी सोचने लगे-- ॥ १३९ ॥ "अंत्र मुझे क्या करना चाहिये, यदि और किसी प्रकार कहता हूँ तो केवल वस्त्रोंके ओटमें टटोळनेपर ये उसे देख ही छेंगे इनसे अत्यन्त विरोध करनेमें हमारा नहीं है।" ऐसा सोचकर निखिल संसारके कारण-खरूप श्रीनारायणसे अक्रूरजी बोले-॥ १४०॥ "भगवन् ! शतधन्वाने मुझे वह मणि सौंप दी थी । उसके मर जानेपर मैंने यह सोचते हुए वड़ी ही कठिनतासे इसे इतने दिन अपने पास रखा है कि भगवान् आज, कल या परसों इसे माँगेंगे ॥ १४१ ॥ इसकी चौकसीके क्लेशसे सम्पूर्ण मोगोंमें अनासक्तचित्त होनेके कारण मुझे मुखका छेशमात्र भी नहीं मिळा ॥ १४२ ॥ भगवान् ये विचार करते कि. यह सम्पूर्ण राष्ट्रके उपकारक इतने-से भारको भी नहीं उठा सकता,इसिंखये खर्य मैंने आपसे कहा नहीं ॥१४३॥

तदिदं स्यमन्तकरतं गृह्यतामिच्छया यसाभिमतं तस्य समर्प्यताम् ॥ १४४॥

ततः स्रोद्रवस्त्रनिगोपितमतिलघुकनकसम्रद्ग-कगतं प्रकटीकृतवान् ॥ १४५ ॥ ततश्च निष्काम्य स्यमन्तकमणि तस्मिन्यदुकुलसमाजे म्रुमोच॥ १४६ ॥ मुक्तमात्रे च तस्मिन्नतिकान्त्या तद्खिलमास्थानमुद्योतितम् ॥ १४७ ॥ अथाहा-क्रूरः स एप मणिः श्रतधन्त्रनासाकं समपितः यस्यायं स एनं गृह्णातु इति ॥ १४८ ॥

सर्वयादवानां साधुसाध्विति तमालोक्य विसितमनसां वाचोऽश्रयन्त ॥१४९॥ तमालो-क्यातीव वलभद्रो ममायमच्युतेनैव सामान्यस्स-मन्वीप्सित इति कृतस्पृहोऽभृत् ॥ १५०॥ ममैवायं पितृधनमित्यतीव .च सत्यभामापि स्पृहयाञ्चकार ॥ १५१॥ वलसत्यावलोकना-त्कृष्णोऽप्यात्मानं गोचक्रान्तरावस्थितमिव मेने ।। १५२।। सकलयाद्वसमक्षं चाक्रुरमाह ।।१५३॥ एतद्धि मणिरत्नमात्मसंशोधनाय एतेषां यद्नां मया दिशतम् एतच मम वलभद्रस्य च सामान्यं पितृधनं चैतत्सत्यभामाया नान्यस्यैतत् ॥१५४॥ एतच सर्वकालं अचिना ब्रह्मचर्यादिगुणवता श्रियमाणमशेषराष्ट्रस्योपकारकमश्चचिना श्रियमा-णमाधारमेव इन्ति ॥ १५५ ॥ अतोऽहमस्य पोड-ग्रस्नीसहस्रपरिग्रहादसमर्थी धारणे कथमेतत्स-त्यभामा स्वीकरोति ॥ १५६॥ आर्यवलमद्रे-णापि मदिराप।नाद्यशेषोपभोगपरित्यागः कार्यः ॥ १५७ ॥ तदलं यदुलोकोऽयं वलमद्रः अहं च

अव, छीजिये आपकी वह स्यमन्तकमणि यह रही, आपकी जिसे इच्छा हो उसे ही इसे दे दीजिये" || १४४ ||

तव अक्रूरजीने अपने किट-वस्तमें छिपाई हुई एक छोटी-सी सोनेकी पिटारीमें स्थित वह स्यमन्तक-मणि प्रकट की और उस पिटारीसे निकालकर यादव-समाजमें रखदी ॥ १४५-१४६ ॥ उसके रखते ही वह सम्पूर्ण स्थान उसकी तीव्र कान्तिसे देदीप्यमान होने लगा ॥ १४७ ॥ तब अक्रूरजीने कहा, "मुझे यह मणि शतधन्वाने दी थी, यह जिसकी हो वह ले ले ॥ १४८ ॥

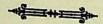
उसको देखनेपर सभी यादवोंका विसमयपूर्वक 'साध, साधु' यह वचन सुना गया ॥ १४९॥ उसे देखकर बलमद्रजीने 'अच्यतके ही समान इसपर मेरा भी अधिकार है' इस प्रकार अपनी अधिक स्पृहा दिखलाई ॥१५०॥ तथा 'यह मेरी ही पैतृक सम्पत्ति है' इस तरह सत्यभामाने भी उसके छिये अपनी उत्कट अभिछापा प्रकट की ||१५१|| वलमद्र और सत्यमामाको देखकर कृष्ण-चन्द्रने अपनेको बैछ और पहियेके बीचमें पड़े हुए जीवके समान दोनों ओरसे संकटप्रस्त देखा ॥ १५२ ॥ और समस्त यादवींके सामने वे अक्रूरजीसे वोछे॥ १५३॥ ''इस मणिरत्नको मैंने अपनी सफाई देनेके छिये ही इन यादवोंको दिखवाया था । इस मणिपर मेरा और वलभद्रजीका तो समान अधिकार है और सत्यभामा-की यह पैतृक सम्पत्ति है; और किसीका इसपर कोई अधिकार नहीं है ॥ १५४ ॥ यह मणि सदा शुद्ध और ब्रह्मचर्य आदि गुणयुक्त रहकर धारण करनेसे सम्पूर्ण राष्ट्रका हित करती है और अशुद्धावस्थामें धारण करनेसे अपने आश्रयदाताको भी मार डालती है ॥ १५५ ॥ मेरे सोल्ह हजार खियाँ हैं, इसल्यि में इसके धारण करनेमें समर्थ नहीं हूँ, इसीटिये सत्यभामा भी इसको कैसे घारण कर सकती है ? ॥ १५६ ॥ आर्य वलमद्रको भी इसके कारणसे मदिरा-पान आदि सम्पूर्ण भोगोंको त्यागना पड़ेगा ॥ १५७॥ इसिंखे हे दानपते ! ये यादवगण, बलमद्रजी, मैं

सत्या च त्वां दानपते प्रार्थयामः ॥ १५८॥ तद्भृतं व्यास्य राष्ट्रस्योपकारकं तद्भवानशेषराष्ट्रनिमित्तमेतत्पूर्ववद्धारयत्वन्यन्न वक्तव्यमित्युक्तो दानपतिस्वथेत्याह जग्राह च तन्महारत्नम् ॥ १६०॥
ततःप्रमृत्यक्र्रः प्रकटेनैव तेनातिजाज्वल्यमानेनात्मकण्ठावसक्तेनादित्य इवांश्चमाली
चचार ॥ १६१॥

इत्येतद्भगवतो मिथ्याभिश्वस्तिक्षालनं यः सरित न तस्य कदाचिदल्पापि मिथ्याभिश-स्तिर्भवति अन्याहतास्तिलेन्द्रियश्चास्तिलपापमोक्ष-मवामोति ॥ १६२॥ और सत्यभामा सब मिळकर आपसे प्रार्थना करते हैं कि इसे धारण करनेमें आप ही समर्थ हैं ॥१५८-१५९॥ आपके धारण करनेसे यह सम्पूर्ण राष्ट्रका हित करेगी इसळिये सम्पूर्ण राष्ट्रके मंगळके ळिये आप ही इसे पूर्ववत् धारण कीजिये; इस विषयमें आप और कुछ मी न कहें ।" भगवान्के ऐसा कहनेपर दानपित अक्रूरने 'जो आज्ञा' कह वह महारत्न छे लिया। तब से अक्रूरजी सबके सामने उस अति देदीप्यमान मणिको अपने गळेमें धारणकर सूर्यके समान किरण-जाळसे युक्त होकर विचरने छगे॥ १६०-१६१॥

भगवान्के मिथ्या-कल्ड्झ-शोधनरूप इस प्रसंगका जो कोई स्मरण करेगा उसे कभी थोड़ा-सा भी मिथ्या कलंक न लगेगा, उसकी समस्त इन्द्रियाँ समर्थ रहेंगी तथा वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ १६२॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थेऽशे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥



चौदहवाँ अध्याय

अनमित्र और अन्धकके वंशका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

अनिमत्रस्य पुत्रः शिनिर्नामाभवत् ॥ १ ॥ तस्यापि सत्यकः सत्यकात्सात्यिकर्युयुधाना-परनामा ॥ २ ॥ तसाद्पि सञ्जयः तत्पुत्रश्र कुणिः कुणेर्युगन्धरः ॥ ३ ॥ इत्येते शैनेयाः॥ ४ ॥

अनिमत्रसान्वये पृश्चिस्तसात् श्वफल्कः तत्त्रभावः कथित एव ॥५॥ श्वफल्कस्यान्यः कनीयांश्चित्रको नाम आता ॥६॥ श्वफल्कादकूरो गान्दिन्यामभवत् ॥७॥ तथोपमद्भुमृदामृद्विश्चा-रिमेजयगिरिश्चत्रोपश्चत्रशत्वारिमर्दनधर्महण्डम-र्मगन्धमोजवाहप्रतिवाहाल्याः पुत्राः ॥ ८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—अनिमन्नके शिनि नामक पुत्र हुआ; शिनिके सत्यक और सत्यकसे सात्यिकका जन्म हुआ जिसका दूसरा नाम युयुधान था॥ १-२॥ तदनन्तर सात्यिकके सञ्जय, सञ्जयके कृणि और कृणिसे युगन्धरका जन्म हुआ। ये सब शैनेय नामसे विख्यात हुए॥ ३-४॥

अनिमत्रके वंशमें ही पृश्निका जन्म हुआ और पृश्निसे स्वफल्ककी उत्पत्ति हुई जिसका प्रमाव पहले वर्णन कर चुके हैं । स्वफल्कका चित्रक नामक एक छोटा भाई और था ॥ ५-६ ॥ स्वफल्कके गान्दिनीसे अक्रूरका जन्म हुआ ॥ ७ ॥ तथा [एक दूसरी स्त्रीसे] उपमद्ग, मृदामृद, विस्वारि, मेजय, गिरिक्षत्र, उपक्षत्र, शतन्न, अरिमर्दन, धर्मदक्, दृष्टधर्म, गन्धमोज, वाह सुताराख्या कन्या च ॥ ९ ॥ देववातुपदेवश्चाक्र्र-पुत्रौ ॥ १० ॥ पृथुविष्टथुप्रमुखाश्चित्रकस्य पुत्रा बहवो वभूवः ॥ ११ ॥

कुकुरभजमानशुचिकम्बलबहिँपाख्यास्त्र्यान्धकस्य चत्वारः पुत्राः ॥ १२ ॥ कुकुराद्धृष्टः
तस्माच कपोतरोमा ततश्च विलोमा तस्मादिप
तुम्बुरुसस्वोऽभवदनुसंज्ञश्च ॥ १३ ॥ अनोरानकदुन्दुभिः ततश्चाभिजित् अभिजितः पुनर्वसुः
॥ १४ ॥ तस्याप्याहुकं आहुकी च कन्या ॥१५॥
आहुकस्य देवकोग्रसेनौ द्रौ पुत्रौ ॥ १६ ॥ देववानुपदेवः सहदेवो देवरिक्षतो च देवकस्य
चत्वारः पुत्राः ॥ १७ ॥ तेपां चृकदेवोपदेवा
देवरिक्षता श्रीदेवा शान्तिदेवा सहदेवा देवकी
च सप्त भगिन्यः॥ १८ ॥ ताश्च सर्वा वसुदेव
उपयेमे ॥ १९ ॥ उग्रसेनस्यापि कंसन्यग्रोधसुनामानकाह्वशङ्कसुभूमिराष्ट्रपालयुद्धतुष्टिसुतुष्टिमत्संज्ञाः
पुत्रा वभूवुः ॥ २० ॥ कंसाकंसवतीसुतनुराष्ट्रपालिकाह्वाश्रोग्रसेनस्य तन्जाः कन्याः ॥ २१ ॥

भजमानाच विद्रथः पुत्रोऽभवत् ॥ २२ ॥ विद्रथाच्छरः श्रूराच्छमी शिमनः प्रतिक्षत्रः तसात्स्वयंभोजसत् इदिकः ॥ २३ ॥ तसापि कृतवर्मशत्रधनुर्देवाईदेवगर्भाद्याः पुत्रा वभूवः ॥ २४ ॥ देवगर्भसापि श्रूरः ॥ २५ ॥ श्रूरसापि मारिषा नाम पत्न्यभवत् ॥ २६ ॥ तसां चासौ दश्पुत्रानजनयद्वसुदेवपूर्वान् ॥ २७ ॥ वसुदेवस्य जातमात्रस्येव तद्गृहे भगवदंशावतारमञ्याह-तदृष्ट्या पश्यद्भिर्देवैदिंज्यानकदुन्दुभयो वादिताः ॥२८॥ तत्रश्वासावानकदुन्दुभिसंज्ञामवाप ॥२९॥ तस्य च देवभागदेवश्रवोऽष्टकककुचकवत्सधारक-सृक्षयश्यामश्मिकगण्डूपसंज्ञा नव श्रातरोऽभवन्

और प्रतिवाह नामक पुत्र तथा सुतारानाम्नी कन्या-का जन्म हुआ ॥ ८-९ ॥ देववान् और उपदेव ये दो अक्रूरके पुत्र थे ॥ १० ॥ तथा चित्रकके पृथु, विपृथु आदि अनेक पुत्र थे ॥ ११ ॥

कुकुर, भजमान, अचिकम्बल और वर्हिष ये चार अन्यकके पुत्र हुए ॥१२॥ इनमेंसे कुकुरसे घृष्ट, घृष्ट-से कपोतरोमा, कपोतरोमासे विछोमा तथा विछोमासे तुम्बुरुके मित्र अनुका जन्म हुआ ॥ १३ ॥ अनुसे आनकदुन्दुमि, उससे अमिजित्, अमिजित्से पुनर्वेसु और पुनर्वेसुसे आहुक नामक पुत्र और आहुकीनाम्नी कन्याका जन्म हुआ ॥१४-१५॥ आहुकके देवक और उप्रसेन नामक दो पुत्र हुए ॥१६॥ उनमेंसे देवकके देववान्, उपदेव, सहदेव और देवरक्षित नामक चार पुत्र हुए।।१७॥ इन चारोंकी वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी ये सात भगिनियाँ थीं ॥१८॥ ये सत्र वसुदेवजीको विवाही गयी थीं ॥१९॥ उप्र-सेनके भी कंस, न्यप्रोध, सुनाम, आनकाह, शङ्क, सुभूमि, राष्ट्रपाल, युद्धतुष्टि और सुतुष्टिमान् नामक पुत्र तथा कंसा, कंसवती, सुतनु और राष्ट्रपालिका नामकी कन्याएँ हुई ॥२०-२१॥

मजमानका पुत्र विदूर्य हुआ; विदूर्यके शूर, शूरके शमी, शमीके प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रके खयंभोज, खयंभोजके हृदिक तथा हृदिकके कृतवर्मा, शतधन्या, देवाई और देवगर्म आदि पुत्र हुए। देवगर्मके पुत्र शूरसेन थे॥२२—२५॥ शूरसेनकी मारिषा नामकी पत्नी थी। उससे उन्होंने वसुदेव आदि दश पुत्र उत्पन्न किये॥२६-२७॥ बसुदेवके जन्म छेते ही देवताओंने अपनी अव्याहत दृष्टिसे यह देखकर कि इनके घरमें भगवान् अंशावतार छेंगे, आनक और दुन्दुमि आदि बाजे बजाये थे॥२८॥ इसीछिये इनका नाम आनक-दुन्दुमि भी हुआ ॥२९॥ इनके देवभाग, देवश्रवा, अष्टक, ककुच्चक, वत्सधारक, सृख्य, स्याम, शमिक और गण्डूष नामक नौ माई थे॥३०॥ तथा इन

॥ ३०॥ पृथा श्वतदेवा श्वतकीर्तिः श्वतश्रवा राजाधिदेवी च वसुदेवादीनां पश्च भगिन्यो-ऽभवन् ॥ ३१॥

श्रूरस कुन्तिनीम सखाभवत् ॥ ३२ ॥ तसे चापुत्राय पृथामात्मजां विधिना श्रूरो दत्तवान् ॥ ३३ ॥ तां च पाण्डुरुवाह ॥ ३४ ॥ तस्यां च धर्मानिलेन्द्रैर्युधिष्ठिरमीमसेनार्जुनारूयास्त्रयः पुत्रा-स्सम्रत्पादिताः ॥ ३५ ॥ पूर्वमेवान्द्रायाश्च भगवता मास्तता कानीनः कर्णो नाम पुत्रोऽजन्यत ॥३६॥ तस्यां च नासत्यदस्राभ्यां नकुलसहदेवौ पाण्डोः पुत्रौ जनितौ ॥ ३८ ॥

श्रुतदेवां तु वृद्धधर्मा नाम कारूश उपयेमे ॥ ३९ ॥ तस्यां च दन्तवक्रो नाम महासुरो जज्ञे ॥ ४०॥ अतकीर्तिमपि केकयराजः उपयेमे ॥४१॥ तसां च सन्तर्दनादयः कैकेयाः पश्च पुत्रा वभूवुः ॥ ४२ ॥ राजाधिदेच्यामावन्त्यौ विन्दानुविन्दौ ॥ ४३ ॥ श्रुतश्रवसमपि चेदिराजो दमघोषनामोपयेमे ॥ ४४ ॥ तस्यां च शिशुपा-लम्रुत्पाद्यामांस ॥ ४५ ॥ स वा पूर्वमप्युदार-विक्रमो दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुरभवत् ॥ ४६॥ यश्र भगवता सकललोकगुरुणा नरसिंहेन घातितः ॥ ४७ ॥ पुनरपि अक्षयवीर्य-शौर्यसम्पत्पराक्रम्गुणस्समाकान्तसकलत्रैलोक्षेश्वर-प्रभावो द्शाननो नामाभृत् ॥ ४८ ॥ वहुकालोप-**ग्रक्तमगवत्सकाञ्चावाप्तशरीरपातोद्भवपुण्यफलो** भगवता राघवरूपिणा सोऽपि निधनग्रुपपादितः ॥ ४९ ॥ पुनश्रेदिराजस्य दमघोषस्यात्मजिकशञ्च-पालनामामवत्।। ५०॥ शिशुपालत्वेऽपि भगवतो भूमारावतारणायावतीर्णाशस्य पुण्डरीकनयना-

वसुदेव आदि दश भाइयोंकी पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकार्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी ये पाँच वहिनें थीं ।।३१।।

श्र्रसेनके कुन्ति नामक एक मित्र थे ॥३२॥ वे निःसन्तान थे अतः श्र्रसेनने दत्तक-विधिसे उन्हें अपनी पृथा नामकी कन्या दे दी थी ॥३३॥ उसके धर्म, वायु और इन्द्रके द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, मीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र हुए ॥३५॥ इनके पहले इसके अविवाहितावस्थामें ही मगवान् सूर्यके द्वारा कर्ण नामक एक कानीन पुत्र और हुआ था ॥३६॥ इसकी माद्री नामकी एक सपत्नी थी ॥३०॥ उसके अश्विनीकुमारोंद्वारा नकुल और सहदेव नामक पाण्डुके दो पुत्र हुए ॥३८॥

श्र्रसेनकी दूसरी कन्या श्रुतदेवाका कारूश-नरेश वृद्धधर्मासे विवाह हुआ था ॥३९॥ उससे दन्तवक्र नामक महादैत्य उत्पन्न हुआ ।।४०।। श्रुतकीर्तिको केकयराजने विवाहा था ॥४१॥ उससे केकय-नरेश-के सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र हुए ।।४२॥ राजाधि-देवीसे अवन्तिदेशीय विन्द और अनुविन्दका जन्म हुआ ॥ ४३ ॥ श्रुतश्रवाका भी चेदिराज दमघोषने पाणिप्रहण किया ॥४४॥ उससे शिशुपालका जन्म हुआ ॥ ४५ ॥ पूर्वजन्ममें यह अतिशय पराक्रमी हिरण्यकशिपु नामक दैत्योंका मूळ पुरुष हुआ था जिसे सकल लोकगुरु मगवान् नृसिंहने मारा था ॥४६-४७॥ तदनन्तर यह अक्षय, वीर्य, शौर्य, सम्पत्ति और पराक्रम आदि गुणोंसे सम्पन्न तथा समस्त त्रिमुवनके खामी इन्द्रके भी प्रभावको दबानेवाला दशानन हुआ ॥४८॥ खयं मगवान्के हाथसे ही मारे जानेके पुण्यसे प्राप्त हुए नाना भोगोंको वह वहुत समयतक भोगते हुए अन्तमें राघवरूपधारी भगवान्के ही द्वारा मारा गया ॥४९॥ उसके पीछे यह चेदिराज दमघोषका पुत्र शिशुपाल हुआ ॥५०॥ शिञ्जपाल होनेपर मी वह मू-भार-हरणके लिये अवतीर्ण हुए भगवदंशखरूप भगवान्

अविवाहिता कन्याके गर्मते उत्पन्न हुए पुत्रको कानीन कहते हैं।

ख्यस्योपिर द्वेषानुबन्धमिततराश्चकार ॥ ५१॥
भगवता च स निधनम्रपनीतस्तत्रैव परमात्मभूते
मनस एकाम्रतया सायुज्यमवाप ॥ ५२॥
भगवान् यदि प्रसन्तो यथाभिलपितं ददाति तथा
अप्रसन्तोऽपि निम्नन् दिन्यमनुपमं स्थानं प्रयच्छति
॥ ५३॥

पुण्डरीकाक्षमें अत्यन्त द्वेप-बुद्धि करने छगा ॥५१॥ अन्तमें भगवान्के हाथसे ही मारे जानेपर उन परमात्मामें ही मन छगे रहनेके कारण सायुज्य-मोक्ष प्राप्त किया ॥५२॥ भगवान् यदि प्रसन्न होते हैं तत्र जिस प्रकार यथेच्छ फल देते हैं, उसी प्रकार अप्रसन्न होकर मारनेपर भी वे अनुपम दिन्यलोककी प्राप्ति कराते हैं ॥५३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्येऽशे चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

शिशुपालके पूर्व-जन्मान्तरोंका तथा वस्रदेवजीकी सन्ततिका वर्णन ।

श्रीमैत्रेय उवाच

हिरण्यकशिपुत्वे च रावणत्वे च विष्णुना ।
अवाप निहतो भोगानप्राप्यानमरैरिप ॥ १ ॥
न लयं तत्र तेनैव निहतः स कथं पुनः ।
सम्प्राप्तः शिश्चपालत्वे सायुज्यं शाश्वते हरौ ॥ २ ॥
एतिद्च्छाम्यहं श्रोतुं सर्वधर्मभृतां वर ।
कौतूहलपरेणैतत्पृष्टो मे वक्तमहिसि ॥ ३ ॥

श्रीपराशर उवाच

दैत्येश्वरस्य वधायासिललोकोत्पितिस्थितिविनाशकारिणा पूर्व तनुग्रहणं कुर्वता नृसिंहरूपमाविष्कृतम् ॥४॥ तत्र च हिरण्यकशिपोर्विष्णुरयमित्येतन्न मनस्यभृत् ॥५॥ निरतिशयपुण्यसम्रद्भुतमेतत्सच्चजातमिति ॥६॥ रजउद्रेकप्रेरितैकाग्रमतिस्तद्भावनायोगाचतोऽवाप्तवधहैतुकीं निरितशयामेवासिलल्प्रैलोक्याधिक्यधारिणीं दशाननत्वे मोगसम्पद्मवाप ॥७॥ न तु स तिसन्न-

श्रीमें त्रेयजी बोले—भगवन् ! पूर्वजनमों में हिरण्य-किशपु और रावण होनेपर इस शिशुपालने भगवान् विष्णुके द्वारा मारे जानेसे देव-दुर्लभ मोगोंको तो प्राप्त किया, किन्तु यह उनमें लीन नहीं हुआ; फिर इस जन्ममें ही उनके द्वारा मारे जानेपर इसने सनातन पुरुष श्रीहरिमें सायुज्य-मोक्ष कैसे प्राप्त किया ? ॥१-२॥ हे समस्त धर्मात्माओं में श्रेष्ठ मुनिवर ! यह बात सुनने-की मुझे बड़ी ही इच्छा है। मैंने अत्यन्त कुत्हल्वश होकर आपसे यह प्रश्न किया है, कृपया इसका निरूपण कीजिये ॥३॥

श्रीपराशरजी बोले—प्रथम जन्ममें दैत्यराज हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश करनेवाले मगवान्ने शरीर प्रहण करते समय नृसिंहरूप प्रकट किया था ॥१॥ उस समय हिरण्यकशिपुके चित्तमें यह भाव नहीं हुआ था कि ये विष्णुमगवान् हैं ॥५॥ केवल इतना ही विचार हुआ कि यह कोई निरितशय पुण्य-समृहसे उत्पन्न हुआ प्राणी है ॥६॥ रजोगुणके उत्कर्षसे प्रेरित हो उसकी मित [उस विपरीत मावनाके अनुसार] हृद हो गयी। अतः उसके मीतर ईश्वरीय मावनाका योग न होनेसे मगवान्के द्वारा मारे जानेके कारण ही रावणका जन्म लेनेपर उसने सम्पूर्ण त्रिलोकोंमें सर्वाधिक मोग-सम्पत्ति प्राप्त की ॥७॥

नादिनिधने परब्रह्मभूते भगवत्यनालम्बिनि कृते मनसस्तस्रथमवाप ॥ ८॥

एवं दशाननत्वेऽप्यनङ्गपराधीनतया जानकीसमासक्तचेतसा भगवता दाशरिथरूपधारिणा
हतस्य तद्र्पदर्शनमेवासीत् नायमच्युत इत्यासक्तिर्विपद्यतोऽन्तःकरणे मानुपबुद्धिरेव केवलमस्याभृत् ॥ ९॥

पुनरप्यच्युतविनिपातमात्रफलमखिलभूमण्डल-स्राघ्यचेदिराजकुले जन्म अव्याहतैश्वर्य शिशु-पालत्वेऽप्यवाप॥ १०॥ तत्र त्वखिलानामेव स भगवनाम्नां त्वङ्कारकारणमभवत् ॥ ११॥ ततश्च तत्कालकृतानां तेषामशेषाणामेवाच्युत-नाम्नामनवरतमनेकजन्मसु वर्द्धितविद्वेषानुवन्धि-विनिन्दनसन्तर्जनादिषुचारणमकरोत् ।।१२।। तच रूपमुत्फुल्लपबद्लामलाक्षमत्युज्ज्वल-पीतवस्त्रधार्यमलकिरीटकेयूरहारकटकादिशोमित-मुदारचतुर्वाहुशङ्खचक्रगदाधरमतिप्ररूढवैरानुभा-वादटनभोजनस्नानासनशयनादिष्वशेषावस्थान्त-रेषु नान्यत्रोपययावस्य चेतसः ॥ १३ ॥ ततस्त-. मेवाक्रोशेषुचारयंस्तमेव हृदयेन धारयन्नात्मवधाय यावद्भगवद्धस्तचक्रांशुमालोज्ज्वलमक्ष्यतेजस्त्वरूपं त्र**बाभूतमपगतद्वेषादिदो**पं भगवन्तमद्राक्षीत् ॥ १४ ॥ तावच भगवचक्रेणाञ्च व्यापादितस्त-त्सरणद्ग्याखिलाघसश्चयो मगवतान्तम्रुपनीत-स्तसिनेत लयमुपययौ ॥ १५॥ एतत्तवाखिलं मयामिहितम् ॥ १६ ॥ अयं हि भगवान् कीर्ति-तश्र संस्मृतश्र द्वेषानुबन्धेनापि अखिलसुरासुरा-

उन अनादि-निधन, परब्रह्मखरूप, निराधार भगवान्में चित्त न लगानेके कारण वह उन्हींमें लीन नहीं हुआ ।।८॥

इसी प्रकार रावण होनेपर भी कामवश जानकीजीमें चित्त छग जानेसे भगवान् दशरथनन्दन रामके द्वारा मारे जानेपर केवछ उनके रूपका ही दर्शन हुआ था; 'ये अच्युत हैं' ऐसी आसक्ति नहीं हुई, बल्कि मरते समय इसके अन्तःकरणमें केवछ मनुष्यबुद्धि ही रही।।९॥

फिर श्रीअच्युतके द्वारा मारे जानेके फलस्क्ष इसने सम्पूर्ण भूमण्डलमें प्रशंसित चेदिराजके कुलमें शिशुपाल्रूपसे जन्म लेकर भी अक्षय ऐस्वर्य प्राप्त किया ॥१०॥ उस जन्ममें वह भगवान्के प्रत्येक नामोंमें तुच्छताकी भावना करने छगा ॥११॥ उसका हृदय अनेक जनमके द्वेषानुवन्धसे युक्त था, अतः वह उनकी निन्दा और तिरस्कार आदि करते हुए मगवान्के सम्पूर्ण समया-नुसार लीलाकृत नामोंका निरन्तर उच्चारण करता था ॥१२॥ खिले हुए कमलदलके समान जिसकी निर्मल आँखें हैं, जो उज्ज्वल पीताम्बर तथा निर्मल किरीट, केयूर, हार और कटकादि धारण किये हुए है तथा जिस-की लम्बी-लम्बी चार मुजाएँ हैं और जो राङ्क, चक्र, गदा और पद्मधारण किये हुए है, भगवान्का वह दिव्य रूप अत्यन्त वैरानुवन्धके कारण भ्रमण, भोजन, स्नान, आसन और शयन आदि सम्पूर्ण अवस्थाओंमें कमी उसके चित्तसे दूर न होता था ॥ १३॥ फिर गाछी देते समय उन्हींका नामोचारण करते हुए और हृदयमें भी उन्हींका घ्यान धरते हुए जिस समय वह अपने वधके लिये हाथमें धारण किये चक्रके उज्ज्वल किरण-जालसे सुशोभित, अक्षय तेजखरूप द्वेषादि सम्पूर्ण दोषोंसे रहित ब्रह्मभूत मगवान्को देख रहा था॥१४॥ उसी समय तुरन्त भगवचक्रसे मारा गया; भगवत्-कारण सम्पूर्ण पापराशिके जानेसे भगवान्के द्वारा उसका अन्त हुआ और वह उन्होंमें लीन हो गया॥ १५॥ इस प्रकार इस सम्पूर्ण रहस्यका मैंने तुमसे वर्णन किया॥ १६॥ अहो ! वे भंगवान् तो द्वेषानुवन्धके कारण भी कीर्तन और स्मरण करनेसे सम्पूर्ण देवता और असुरोंको

दिदुर्लभं फलं प्रयच्छति किस्रुत सम्यग्मिक्तमता-मिति ॥ १७॥

वसुदेवस्य त्वानकदुन्दुभेः पौरवीरोहिणीमदिराभद्रादेवकीप्रमुखा बह्वचः पत्न्योऽभवन्
॥ १८ ॥ बलभद्रश्रठसारणदुर्मदादीन्पुत्रात्रोहिण्यामानकदुन्दुभिरुत्पादयामास ॥ १९ ॥ बलदेवे।ऽपि रेवत्यां विश्रठोल्मुकौ पुत्रावजनयत्॥२०॥
सार्ष्टिमार्ष्टिशिश्चसत्यधृतिप्रमुखाः सारणात्मजाः
॥ २१ ॥ भद्राश्वभद्रवाहुदुर्दमभूताद्या रोहिण्याः
कुलजाः ॥ २२ ॥ नन्दोपनन्दकृतकाद्या मदिरायास्तनयाः ॥ २३ ॥ भद्रायाश्चोपनिधिगदाद्याः
।२४। वैशाल्यां च कौशिकमेकमेवाजनयत्।२५।

अानकदुन्दु भेर्देवक्यामपि कीर्तिमत्सुपेणोदा-युभद्रसेनऋजुदासभद्रदेवाख्याः पद् पुत्रा जिन्नरे ।।२६।। तांश्र सर्वानेव कंसो घातितवान् ।।२७।। अनन्तरं च सप्तमं गर्भमर्द्धरात्रे भगवत्प्रहिता योगनिद्रा रोहिण्या जठरमाकृष्य नीतवती ।।२८।। कर्षणाचासावपि सङ्कर्षणाख्यामगमत् ॥ २९ ॥ ततश्च सकलजगन्महातरुमूलभूतो भूतभविष्यदा-दिसकलसुरासुरम्रुनिजनमनसामप्यगोचरोऽब्जभ-वश्रमुखैरनलमुखैः प्रणम्यावनिभारहरणाय प्रसा-दितो भगवाननादिमध्यनिधनो देवकीगर्भमव-ततार वासदेवः ॥ ३० ॥ तत्त्रसादविवर्द्धमानो-रुमहिमा च योगनिद्रा नन्दगोपपत्न्या यशोदाया गर्भमधिष्ठितवती ॥ ३१ ॥ सप्रसन्नादित्य-चन्द्रादिग्रहमच्यालादिभयं खस्यमानसमिखल-मेवैतज्जगदपास्ताधर्ममभवत्तासिश्च पुण्डरीकनयने जायमाने ॥ ३२ ॥ जातेन च तेनाखिलमेवैतत्स-न्मार्गवर्त्ति जगदिक्रयत ॥ ३३ ॥

दुर्लभ परमफल देते हैं, फिर सम्यक् मिक्त-सम्पन्न पुरुषोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ १७ ॥

आनकतुन्दुमि वसुदेवजीके पौरवी, रोहिणी,
मदिरा, भद्रा और देवकी आदि वहुत-सी स्त्रियाँ थीं
॥ १८॥ उनमें रोहिणीसे वसुदेवजीने वल्मद्र, राठ,
सारण और दुर्मद आदि कई पुत्र उत्पन्न किये॥ १९॥
तथा वल्मद्रजीके रेवतीसे विशठ और उत्सुक नामक
दो पुत्र हुए॥ २०॥ सार्ष्ट, मार्ष्ट, सत्य और धृति
आदि सारणके पुत्र थे॥ २१॥ इनके अतिरिक्त
मद्रास्व, मद्रवाहु, दुर्दम और भूत आदि भी रोहिणीहीकी सन्तानमें थे॥२२॥ नन्द, उपनन्द और कृतक
आदि मदिराके तथा उपनिधि और गद आदि मद्राके
पुत्र थे॥२३-२४॥ वैशालीके गर्मसे कौशिक नामक
केवल एक ही पुत्र हुआ॥ २५॥

आनकदुन्दुभिके देवकीसे कीर्तिमान्, सुषेण, उदायु, भद्रसेन, ऋजुदास तथा भद्रदेव नामक छः पुत्र हुए ॥ २६ ॥ इन सबको कंसने मार डाला था ॥ २०॥ पीछे भगवानकी प्रेरणासे योगमायाने देवकीके सातर्वे गर्मको आधी रातके समय खींच कर रोहिणी-की कुक्षिमें स्थापित कर दिया ॥ २८॥ आकर्षण करनेसे इस गर्भका नाम संकर्षण हुआ ॥ २९॥ तदनन्तर सम्पूर्ण संसाररूप महावृक्षके मूळखरूप, भूत, भविष्यत् और वर्तमानकाछीन सम्पूर्ण देव, असुर और मुनिजनकी बुद्धिके अगम्य तथा ब्रह्मा और अग्नि आदि देवताओंद्वारा प्रणाम करके भूभार-हरणके लिये प्रसन्न किये गये आदि, मध्य और अन्त-हीन भगवान् वासुदेवने देवकीके गर्भसे अवतार छिया तया उन्हींकी कृपासे बढ़ी हुई महिमावाली योगनिद्रा भी नन्दगोपकी पत्नी यशोदाके गर्भमें स्थित हुई ॥ ३०-३१॥ उन कमल्नयन भगवान्के प्रकट होनेपर यह सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न हुए सूर्य, चन्द्र आदि प्रहोंसे सम्पन्न सर्पादिके भयसे शून्य, अधर्मादिसे रहित तथा स्वस्यचित्त हो गया ॥ ३२ ॥ उन्होंने प्रकट होकर इस सम्पूर्ण संसारको सन्मार्गावलम्बी कर दिया ॥३३॥

भगवतोऽप्यत्र मर्त्यलोकेऽवतीर्णस्य <u>षोडश</u>-सहस्राण्येकोत्तरशताधिकानि भार्याणामभवन् ॥ ३४ ॥ तासां च रुक्मिणीसत्यभामाजाम्बवती-चारुहासिनीप्रमुखा ह्यष्टौ पत्न्यः प्रधाना बभूवुः ॥ ३५॥ तासु चाष्टावयुतानि लक्षं च पुत्राणां भगवानिखलमृतिंरनादिमानजनयत् ॥ ३६॥ तेषां च प्रद्युम्नचारुदेष्णसाम्वाद्यः त्रयोदश प्रधानाः ॥ ३७॥ प्रद्युम्नोऽपि रुक्मिणस्तनयां रुक्मवर्ती नामोपयेमे ॥ ३८॥ तस्यामनिरुद्धो जज्ञे ॥ ३९ ॥ अनिरुद्धोऽपि रुक्मिण एव पौत्रीं सुमद्रां नामोपयेमे ॥ ४०॥ तस्यामस्य वज्रो जज्ञे ॥ ४१ ॥ वज्रस्य प्रतिवाहुस्तस्यापि सुचारुः ॥ ४२॥ एवमनेकशतसहस्रपुरुषसंख्यस्य यदु-कुलस पुत्रसंख्या वर्षशतैरिप वक्तं न शक्यते॥४३॥ यतो हि स्होकाविमावत्र चरितार्थौ ॥ ४४॥ तिस्रः कोट्यस्सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च । कुमाराणां गृहाचार्याश्रापयोगेषु ये रताः ॥४५॥ संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् । यत्रायुतानामयुत्तलक्षेणास्ते सदाहुकः ॥४६॥ देवासुरे हता ये तु दैतेयास्सुमहावलाः। उत्पन्नास्ते मजुष्येषु जनोपद्रवकारिणः ॥४७॥ तेपामुत्सादनार्थाय भ्रवि देवा यदोः कुले। अवतीर्णाः कुलशतं यत्रैकाम्यधिकं द्विज ॥४८॥ विष्णुस्तेषां प्रमाणे च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः । निदेशस्थायिनस्तस्य वबृधुस्सर्वयाद्वाः ॥४९॥ इति प्रस्तिं वृष्णीनां यक्ष्मुणोति नरः सदा । स सर्वेः पातकेर्मुक्तो विष्णुलोकं प्रपद्यते ॥५०॥

इस मर्त्यलोकमें अवतीर्ण हुए मगवान्की सीव्ह हजार एक सौ एक रानियाँ थीं ॥ ३४ ॥ उनमें रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती और चारुहासिनी आदि आठ मुख्य थीं ॥ ३५ ॥ अनादि भगवान् अखिलम् तिने उनसे एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३६ ॥ उनमेंसे प्रद्युम्न, चारुदेण और साम्ब आदि तेरह पुत्र प्रधान थे ॥ ३० ॥ प्रद्युम्ने भी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीसे विवाह किया था ॥३८॥ उससे अनिरुद्धका जन्म हुआ ॥ ३९ ॥ अनिरुद्धने भी रुक्मीकी पौत्री सुमद्रासे विवाह किया था ॥ ४० ॥ उससे वज्र उत्पन्न हुआ ॥ ४१ ॥ वज्रका पुत्र प्रतिवाहु तथा प्रतिवाहुका सुचारु था ॥ ४२ ॥ इस प्रकार सैकड़ों हजार पुरुषोंकी संख्यावाले यदुकुलकी सन्तानों-की गणना सौ वर्षमें भी नहीं की जा सकती ॥४३॥ क्योंकि इस विषयमें ये दो इलोक चितार्थ हैं—॥४४॥

जो गृहाचार्य यादवकुमारोंको धनुर्विद्याकी शिक्षा देनेमें तत्पर रहते थे उनकी संख्या तीन करोड़ अड़ासी छाख थी फिर उन महात्मा यादवोंकी गणना तो कर ही कौन सकता है ? जहाँ हजारों और छाखोंकी संख्यामें सर्वदा यदुराज उप्रसेन रहते थे॥ ४५-४६॥

देवासुर-संप्राममें जो महावली दैत्यगण मारे गये ये वे मनुष्यलोकमें उपद्रव करनेवाले राजालोग होकर उत्पन्न हुए ॥ ४७ ॥ उनका नाश करनेके लिये देवताओंने यदुवंशमें जन्म लिया जिसमें कि एक सौ एक कुल थे ॥ ४८ ॥ उनका 'नियन्त्रण और स्वामित्व भगवान् विष्णुने ही किया । वे समस्त यादवगण उनको आज्ञानुसार ही वृद्धिको प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥ इस प्रकार जो पुरुष इस वृष्णिवंशकी उत्पत्तिके विवरण-को सुनता है वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-लोकको प्राप्त कर लेता है ॥ ५० ॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थेऽशे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

दुर्वसुके वंशका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

इत्येष समासतस्ते यदोर्वशः कथितः ॥ १ ॥ अथ दुर्वसोर्वशमवधारय ॥ २ ॥ दुर्वसोर्विह्वरात्मजः वहेर्भार्गो भार्गाद्धानुस्ततश्च त्रयीसानुस्तसाच करन्दमस्तस्यापि मरुत्तः ॥३॥ सोऽनपत्योऽभवत् ॥ ४ ॥ ततश्च पौरवं दुष्यन्तं पुत्रमकल्पयत् ॥५॥ एवं ययातिशापात्तद्वंशः पौरवमेव वंशं समाश्रित-वान् ॥ ६ ॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेप-से यदुके वंशका वर्णन किया ॥१॥ अब दुर्व सुके वंश-का वर्णन सुनो ॥२॥ दुर्व सुका पुत्र विह्न था, विह्न-का भाग, भागका भानु, भानुका त्रयीसानु, त्रयीसानु-का करन्दम और करन्दमका पुत्र मरुत्त था॥३॥ मरुत्त निस्सन्तान था॥ ४॥ इसल्यि उसने पुरुवंशीय दुष्यन्तको पुत्ररूपसे स्वीकार कर ल्या॥५॥ इस प्रकार ययातिके शापसे दुर्व सुके वंशने पुरुवंशका ही आश्रय लिया॥६॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थेंऽशे षोडशोऽध्यायः ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

दुह्यु-वंश।

श्रीपराशर उवाच

दुद्योस्तु तनयो वष्टुः ॥१॥ बश्रोस्सेतुः ॥२॥ सेतुपुत्र आरब्धनामा ॥ ३॥ आरब्धस्यात्मजो गान्धारो गान्धारस्य धर्मो धर्माद् घृतः घृताद् दुर्दमस्ततः प्रचेताः ॥ ४॥ प्रचेतसः पुत्रक्शत-धर्मो बहुलानां म्लेक्ट्रानाग्रदीच्यानामाधिपत्यम-करोत् ॥ ५॥

श्रीपराशंरजी बोले-दुशुका पुत्र वश्रु था, वश्रुका सेतु, सेतुका आरव्य, आरव्यका गान्धार, गान्धारका धर्म, धर्मका घृत, घृतका दुर्दम, दुर्दमका प्रचेता तथा प्रचेताका पुत्र शतधर्म था। इसने उत्तरवर्ती बहुत-से म्हेच्छोंका आधिपत्य किया॥ १-५॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चृतुर्थेऽशे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

अनुवंश ।

श्रीपराशर उवाच

ययातेश्रतुर्थपुत्रस्यानोस्सभानलचश्चःपरमेषु-संज्ञास्त्रयः पुत्रा बभूवः ॥१॥समानलपुत्रः कालानलः ॥२॥ कालानलात्सृद्धयः॥३॥ श्रीपराशरजी बोले-ययातिके चौथे पुत्र अनुके संमानल, चक्षु और परमेषु नामकतीन पुत्र थे। समा-नलका पुत्र कालानल हुआ तथा कालानलके सुन्नय, सुञ्जयात् पुरञ्जयः ॥ ४॥ पुरञ्जयाञ्जनमेजयः ॥ ५॥ तसान्महाञ्चालः॥ ६॥ तसाच महामनाः ॥ ७॥ तसादुशीनरतितिक्षू द्वौ पुत्रावुत्पन्नौ॥ ८॥

उशीनरस्यापि शिविनृगनरकृमिवर्माख्याः पश्च पुत्रा वभूवुः ॥ ९ ॥ पृषद्रमसुवीरकेकयमद्र-काश्चत्वारिश्चिवपुत्राः ॥ १० ॥ तितिक्षोरपि रुशद्रथः पुत्रोऽभृत् ॥ ११ ॥ तस्यापि हेमो हेम-स्यापि सुतपाः सुतपसश्च बिलः ॥ १२ ॥ यस्य क्षेत्रे दीर्घतमसाङ्गवङ्गकलिङ्गसुद्धपौण्दाख्यं वालेयं क्षत्रमजन्यत ॥ १३ ॥ तन्नामसन्ततिसंज्ञाश्च पश्च-विषया वभूवुः ॥ १४ ॥ अङ्गादनपानस्ततो दिविरथस्तसाद्धर्मरथः ॥ १५ ॥ ततिश्चत्ररथो रोमपादसंज्ञः ॥ १६ ॥ यस्य दशरथो मित्रं जज्ञे ॥ १७ ॥ यस्य दशरथो नित्रं जज्ञे ॥ १७ ॥ यस्य दशरथो नित्रं

रोमपादाचतुरङ्गस्तसात्पृथुलाक्षः ॥ १९॥ ततश्रम्पो यश्रम्पां निवेशयामास।२०।चम्पस्य हर्य- ङ्गोनामात्मजोऽभृत् ।२१।हर्यङ्गाद्भद्ररथोभद्ररथाद्- इहद्रथो बृहद्रथाद्बृहत्कर्मा बृहत्कर्मणश्र बृहद्भातु- स्तसाच वृहन्मना बृहन्मनसो जयद्रथः॥ २२॥ जयद्रथो ब्रह्मक्षत्रान्तरालसम्भृत्यां पत्न्यां विजयं नाम पुत्रमजीजनत् ॥ २३॥ विजयश्र धृति पुत्रमवाप ॥ २४॥ तस्यापि धृतव्रतः पुत्रोऽभृत् ॥ २५॥ धृतव्रतात्सत्यकर्मा॥ २६॥ सत्यकर्मण- स्त्वतिरथः॥ २०॥ यो गङ्गाङ्गतो मञ्जूषागतं पृथापविद्धं कर्णं पुत्रमवाप ॥ २८॥ कर्णाद्वृषसेनः इत्येतदन्ता अङ्गवंश्याः॥ २९॥ अतश्र पुरुवंशं श्रोतुमहिसि ॥ ३०॥

स्ख्रयके पुरक्षय, पुरख्रयके जनमेजय, जनमेजयके महाशाल, महाशालके महामना और महामनाके उशीनर तथा तितिक्षु नामक दो पुत्र हुए ॥ १-८ ॥

उशीनरके शिवि, तृग, नर, कृमि और वर्म नामक पाँच पुत्र हुए ॥ ९ ॥ उनमेंसे शिविके पृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक—ये चार पुत्र थे ॥ १० ॥ तितिक्षुका पुत्र रुशद्रथ हुआ । उसके हेम, हेमके सुतपा तथा सुतपाके बिल नामक पुत्र हुआ ॥११-१२ ॥ इस बिल के क्षेत्र (रानी) में दीर्घतमा नामक मुनिने अङ्ग, बङ्ग, किल्झ, सुद्धा और पौण्ड् नामक पाँच वालेय क्षत्रिय उत्पन्न किये ॥ १३ ॥ इन बिल पुत्रोंकी सन्ततिके नामानुसार पाँच देशोंके भी ये ही नाम पड़े ॥ १४ ॥ इनमेंसे अंगसे अनपान, अनपानसे दिविरथ, दिविरथसे धर्मरथ और धर्मरथसे चित्ररथका जन्म हुआ जिसका दूसरा नाम रोमपाद था। इस रोमपादको सन्तानहीन देखकर उन्हें पुत्रीरूपसे अपनी शान्ता नामकी कन्या गोद दे दी थी ॥ १५–१८ ॥

रोमपादका पुत्र चतुरंग था। चतुरंगके पृथुलक्ष तथा पृथुलक्षिके चम्प नामक पुत्र हुआ जिसने चम्पा नामकी पुरी बसायी थी॥ १९-२०॥ चम्पके हर्यङ्ग नामक पुत्र हुआ, हर्यङ्गसे मद्ररथ, मद्ररथसे बृहद्भथ, बृहद्भयसे बृहद्भमी, बृहत्कमीसे बृहद्भानु, बृहद्भानुसे बृहद्भाना, बृहन्मनासे जयद्भथका जन्म हुआ॥ २१-२२॥ जयद्भथकी ब्राह्मण और श्वत्रियके संसर्गसे उत्पन्न हुई पत्नीके गर्मसे विजय नामक पुत्रका जन्म हुआ॥ २३॥ विजयके धृति नामक पुत्र हुआ, धृतिके धृतव्रत, धृतव्रतके सत्यकर्मी और सत्यकर्माके अतिरथका जन्म हुआ जिसने कि [स्नानके लिये] गंगाजीमें जानेपर पिटारीमें रखकर पृथाद्वारा वहाये हुए कर्णको पुत्ररूपसे पाया था। इस कर्णका पुत्र वृषसेन था। बस, अंगवंश इतना ही है॥ २४—२९॥ इसके आगे पुरुवंशका वर्णन सुनो॥ ३०॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्येऽशे अष्टादशोऽप्यायः ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

पुरुवंश।

श्रीपराशर उवाच

पुरोर्जनमेजयस्तस्यापि प्रचिन्वान् प्रचिन्वतः प्रवीरः प्रवीरान्मनस्युर्भनस्योश्वाभयदस्तस्यापि संयातिस्संयातेरहं-यातिस्ततो रोद्राश्वः ॥ १॥

ऋतेपुकक्षेपुस्रण्डिलेपुकृतेपुजलेपुधर्मेपुधृतेपु-

स्थलेषुसन्नतेषुवनेषुनामानो रौद्राश्वस्य दश पुत्रा

वभूतुः ॥ २ ॥ ऋतेषोरिन्तनारः पुत्रोऽभूत् ॥३॥ सुमितमप्रतिरथं ध्रुवं चाप्यन्तिनारः पुत्रानवाप ॥ ४ ॥ अप्रतिरथस्य कण्वः पुत्रोऽभृत् ॥ ५ ॥ तस्यापि मेधातिथिः ॥ ६ ॥ यतः काण्वायना द्विजा वभूतुः ॥ ७ ॥ अप्रतिरथस्यापरः पुत्रो-ऽभूदैलीनः ॥ ८ ॥ ऐलीनस्य दुष्यन्ताद्याश्रत्वारः पुत्रा वभूतुः ॥ ९ ॥ दुष्यन्ताचक्रवर्ता मरतो-ऽभूत् ॥१०॥ यन्नामहेतुर्देवैदक्षोको गीयते ॥११॥ माता भस्ना पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः । भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थादशक्रन्तलाम् ॥१२॥ रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ।

भरतस्य पत्नीत्रये नव पुत्रा वभूवः ॥ १४ ॥ नैते ममाजुरूपा इत्यभिहितास्तन्मातरः परित्यागमयात्तत्पुत्राञ्जघ्तुः ॥ १५ ॥ ततोऽस्य वितथे
पुत्रजन्मनि पुत्रार्थिनो मरुत्सोमयाजिनो दीर्धतमसः पाष्ण्यपास्ताद्बृहस्पतिवीर्याद्दतथ्यपत्न्यां

त्वं चास्य घाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ।।१३।।

श्रीपराशरजी बोले-पुरुका पुत्र जनमेजय था। जनमेजयका प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान्का प्रवीर, प्रवीरका मनस्यु, मनस्युका अभयद, अभयदका सुद्यु, सुद्युका बहुगत, बहुगतका संयाति, संयातिका अहंयाति तथा अहंयातिका पुत्र रौद्रास्व या॥ १॥

रौद्राश्वके ऋतेषु, कक्षेषु, स्यण्डिल्रेषु, कृतेषु, जलेषु, धर्मेषु, धृतेषु, स्थलेषु, सन्नतेषु और वनेषु नामक दश पुत्र थे।। २ ।। ऋतेषुका पुत्र अन्तिनार हुआ तथा अन्तिनारके सुमित, अप्रतिरथ और ध्रुव नामक तीन पुत्रोंने जन्म लिया ।। ३-४ ।। इनमेंसे अप्रतिरथका पुत्र कण्य और कण्यका मेधातिथि हुआ जिसकी सन्तान काण्यायन ब्राह्मण हुए ।। ५—७ ॥ अप्रतिरथका दूसरा पुत्र ऐलीन था।। ८ ।। इस ऐलीनके दुष्यन्त आदि चार पुत्र हुए ।। ९ ।। दुष्यन्तके यहाँ चक्रवर्ती सम्नाट् मरतका जन्म हुआ जिसके नामके विषयमें देवगणने इस श्लोकका गान किया था—॥ १०-११ ॥

"माता तो केवल चमड़ेकी घोंकनीके समान है, पुत्रपर अधिकार तो पिताका ही है, पुत्र जिसके द्वारा जन्म ग्रहण करता है उसीका खरूप होता है। हे दुष्यन्त! त् इस पुत्रका पालन-पोषण कर, शकुन्तलाका अपमान न कर। हे नरदेव! अपने ही वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र अपने पिताको यमलोकसे [उद्धार कर स्वर्गलोकको] ले जाता है। 'इस पुत्रके आधान करनेवाले तुम्हों हो'—शकुन्तलाने यह वात ठीक ही कही है'।। १२-१३॥

भरतके तीन क्षियाँ थीं जिनसे उनके नौ पुत्र हुए ।। १४ ।। भरतके यह कहनेपर कि, 'ये मेरे अनुरूप नहीं हैं', उनकी माताओंने इस भयसे कि, राजा हमको त्याग न दें, उन पुत्रोंको मार डाला ।। १५ ॥ इस प्रकार पुत्र-जन्मके विफल हो जानेसे भरतने पुत्र-की कामनासे मरुत्सोम नामक यज्ञ किया। उस यज्ञके अन्तमें मरुद्रणने उन्हें भरद्वाज नामक एक ममतायां सम्रत्यन्तो भरद्वाजाख्यः पुत्रो मरुद्धि-र्दत्तः ॥ १६॥ तस्यापि नामनिर्वचनश्लोकः पट्यते ॥ १७॥

मूढे भर द्वाजिममं भर द्वाजं वृहस्पते । यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥१८॥

भरद्वाजस्स वितथे पुत्रजन्मनि मरुद्धिर्द्तः ततो वितथसंज्ञामवाप ॥ १९ ॥ वितथस्यापि मन्युः पुत्रोऽभवत् ॥ २० ॥ बृहत्क्ष्वतमहावीर्य-नरगर्गा अभवन्मन्युपुत्राः ॥ २१ ॥ नरस्य सङ्कृतिस्सङ्कृतेर्गुरुप्रीतिरन्तिदेवौ ॥ २२ ॥ गर्गाच्छिनिः ततश्च गार्ग्याद्योन्याः क्षत्रोपेता द्विजातयो वभुवुः ॥ २३ ॥ महावीर्याच दुरुक्षयो नाम पुत्रोऽभवत् ॥ २४ ॥ तस्य त्रय्यारुणिः पुष्करिण्यो कपिश्च पुत्रत्रयमभूत् ॥ २५ ॥ तच्च पुत्रत्रित्यमपि पश्चाद्विप्रताम्रपज्ञगाम ॥ २६ ॥ बृहत्क्षत्रस्य सुहोत्रः ॥ २७ ॥ सुहोत्राद्वस्ती य इदं हिस्तिनापुरमावासयामास् ॥ २८ ॥

अजमीढद्विजमीढपुरुमीढास्त्रयो हस्तिनस्तनयाः
॥ २९ ॥ अजमीढात्कण्वः ॥ ३० ॥ कण्वान्मेघातिथिः ॥ ३१ ॥ यतः काण्वायना द्विजाः ॥३२॥
अजमीढस्यान्यः पुत्रो बृहदिषुः ॥ ३३ ॥ बृहदिषोर्ष्वेहद्वजुर्वृहद्वजुपश्च बृहत्कर्मा ततश्च जयद्रथस्तसादिष विश्वजित् ॥ ३४ ॥ ततश्च सेनजित्
॥ ३५ ॥ रुचिराश्वकाश्यद्वहज्जवत्सहजुसंज्ञास्सेनजितः पुत्राः ॥ ३६ ॥ रुचिराश्वपुत्रः पृथुसेनः

बालक पुत्ररूपसे दिया जो उतथ्यपत्नी ममताके गर्भमें स्थित दीर्घतमा मुनिके पाद-प्रहारसे स्खलित हुए बृहस्पतिजीके वीर्यसे उत्पन्न हुआ था ॥ १६॥ उसके नामकरणके विषयमें भी यह श्लोक कहा जाता है—॥ १७॥

"पुत्रोत्पत्तिके अनन्तर बृहस्पतिने ममतासे कहा— 'हे मूढ़े ! यह पुत्र द्वाज (हम दोनोंसे उत्पन्न हुआ) है त इसका भरण कर।' तब ममताने भी कहा— 'हे बृहस्पते ! यह पुत्र द्वाज (हम दोनोंसे उत्पन्न हुआ) है अतः तुम इसका भरण करो।' इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए उसके माता-पिता चल्ने गये, इसल्पिये उसका नाम 'भरद्वाज' पड़ा" ।। १८॥

पुत्र-जन्म वितथ (विफल) होनेपर मरुद्रणने राजा भरतको भरद्वाज दिया था, इसलिये उसका नाम 'वितथ' भी हुआ ॥१९॥ वितथका पुत्र मन्यु हुआ और मन्युके बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर और गर्ग आदि कई पुत्र हुए ॥ २०-२१ ॥ नरका पुत्र संकृति और संकृतिके गुरुप्रीति एवं रन्तिदेव नामक दो पुत्र हुए ॥ २२ ॥ गर्गसे शिनिका जन्म हुआ जिससे कि गार्ग्य और शैन्य नामसे विख्यात क्षत्रोपेत ब्राह्मण उत्पन्न हुए ॥ २३ ॥ महावीर्यका पुत्र दुरुक्षय हुआ ॥ २४ ॥ उसके त्रय्यारुणि, पुष्करिण्य और किप नामक तीन पुत्र हुए ॥ २५ ॥ ये तीनों पुत्र पीछे ब्राह्मण हो गये थे ॥ २६ ॥ बृहत्क्षत्रका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रका पुत्र हस्ती था जिसने यह हस्तिनापुर नामक नगर वसाया था ॥ २७-२८ ॥

हस्तीके तीन पुत्र अजमीट, द्विजमीट और पुरु-मीट थे । अजमीटके कण्य और कण्यके मेघातिथि नामक पुत्र हुआ जिससे कि काण्यायन ब्राह्मण उत्पन्न हुए ॥२९—३२॥ अजमीटका दूसरा पुत्र बृहदिषु था ॥३३॥ उसके बृहद्भनु, बृहद्भनुके बृहत्कर्मा, बृहत्कर्माके जयद्रथ, जयद्रथके विश्वजित् तथा विश्वजित्के सेनजित्का जन्म हुआ। सेनजित्के रुचिरास्व, कास्य, दृदहनु और वत्सहनु नामक चार पुत्र हुए ॥३४-३६॥ रुचिराश्वके पृथुसेन, पृथुसेनके पृथुसेनात्पारः ॥ ३७॥ पारात्रीलः ॥ ३८॥ तस्यैकशतं पुत्राणाम् ॥ ३९॥ तेषां प्रधानः काम्पिल्याधिपतिस्समरः ॥४०॥ समरस्यापि पारसुपारसद्धास्त्रयः पुत्राः ॥४१॥ सुपारात्पृथुः पृथोस्सुकृतिस्ततो विभ्राजः ॥४२॥ तसाचाणुहः ॥४३॥ यश्युकदुहितरं कीर्ति नामोपयेमे ॥४४॥ अणुहाह्रस्रद्भाः ॥ ४५॥ तत्रश्च विष्वकसेनस्त-सादुद्कसेनः ॥ ४६॥ भह्णाभस्तस्य चा-त्मजः॥ ४७॥

द्विजमीदस्य तु यवीनरसंज्ञः पुत्रः ॥४८॥ तस्यापि धृतिमांस्तसाच सत्यधृतिस्ततश्च दृदनेमिस्तसाच सुपार्श्वस्ततस्सुमितस्ततश्च सन्नतिमान् ॥४९॥
सन्नतिमतः कृतः पुत्रोऽभृत् ॥ ५०॥ यं हिरण्यनामो योगमध्यापयामास ॥ ५१॥ यश्चतुर्विंशति प्राच्यसामगानां संहिताश्चकार ॥ ५२॥ कृताचोप्रायुधः ॥ ५३॥ येन प्राचुर्येण नीपक्षयः
कृतः ॥ ५४॥ उप्रायुधात्क्षेम्यः क्षेम्यात्सुधीरस्तसाद्रिपुञ्जयस्तसाच बहुर्थ इत्येते पौरवाः ॥५५॥

अजमीढस्य निलनी नाम पत्नी तस्यां नील-संज्ञः पुत्रोऽभवत् ॥ ५६ ॥ तस्यादिष शान्तिः शान्तेस्सुशान्तिस्सुशान्तेः पुरञ्जयस्तस्याच ऋक्षः ॥ ५७ ॥ ततश्च हर्यश्चः ॥ ५८ ॥ तस्या-न्सुद्गलसञ्जयबृहदिषुयवीनरकाम्पिल्यसंज्ञाः पञ्चा-नामेव तेषां विषयाणां रक्षणायालमेते मत्पुत्रा इति पित्राभिहिताः पाञ्चालाः ॥ ५९ ॥

मुद्रलाच मौद्रल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयो वभूवुः ॥६०॥ मुद्रलाद्बृहद्श्वः ॥६१॥ बृहद्-श्वाद्दिवोदासोऽहल्या च मिथुनमभूत् ॥६२॥ शरद्वतश्वाहल्यायां शतानन्दोऽभवत् ॥६३॥ शतानन्दात्सत्यधृतिर्धतुर्वेदान्तगो जन्ने ॥६४॥ सत्यधृतेर्वराप्सरसम्र्वशीं दृष्ट्वा रेतस्कनं शरसम्बे पार और पारके नीलका जन्म हुआ। इस नीलके सौ पुत्र थे, जिनमें काम्पिल्यनरेश समर प्रधान था ॥३०-४०॥ समरके पार, सुपार और सदस्य नामक तीन पुत्र थे ॥४१॥ सुपारके पृथु, पृथुके सुकृति, सुकृतिके विभाज और विभाजके अणृह नामक पुत्र हुआ, जिसने शुक्रकन्या कीर्तिसे विवाह किया था ॥४२-४४॥ अणृहसे ब्रह्मदत्तका जन्म हुआ। ब्रह्मदत्तसे विप्यक्सेन, विष्यक्सेनसे उदक्सेन तया उदक्सेनसे मलाक पुत्र उत्पन्न हुआ॥४५-४७॥

द्विजमीडका पुत्र यवीनर था ॥४८॥ उसका धृतिमान्, धृतिमान्का सत्यधृति, सत्यधृतिका दृढनेमि, दृढनेमिका सुपार्श्व, सुपार्श्वका सुमित, सुमितका सन्नतिमान् तथा सन्नतिमान्का पुत्र कृत हुआ जिसे हिरण्यनामने योगविद्याकी शिक्षा दी थी तथा जिसने प्राच्य सामग श्रुतियोंकी चौवीस संहिताएँ रची थीं ॥४९—५२॥ कृतका पुत्र उप्रायुध था जिसने अनेकों नीपवंशीय क्षत्रियोंका नाश किया ॥५३-५॥ उप्रायुधके क्षेम्य, क्षेम्यके सुधीर, सुधीरके रिपुक्षय और रिपुक्षयसे बहुरथने जन्म लिया । ये सब पुरुवंशीय राजागण हुए ॥५५॥

अजमीटकी निलनीनाम्नी एक मार्या थी । उसके नील नामक एक पुत्र हुआ ॥ ५६॥ नीलके शान्ति, शान्तिके सुशान्ति, सुशान्तिके पुरस्रय, पुरस्रयके ऋक्ष और ऋक्षके हर्यस्व नामक पुत्र हुआ ॥ ५७-५८॥ हर्यस्वके मुद्गल, सुस्रय, बृहदिषु, यवीनर और काम्पिल्य नामक पाँच पुत्र हुए । पिताने कहा था कि मेरे ये पुत्र मेरे आश्रित पाँचों देशोंकी रक्षा करने-में समर्थ हैं, इसल्ये वे पाञ्चाल कहलाये ॥ ५९॥

मुद्रलसे मौद्रल्य नामक क्षत्रोपेत ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई ॥६०॥ मुद्रलसे बृहदस्व और बृहदस्वसे दिवोदास नामक पुत्र एवं अहल्या नामकी एक कन्याका जन्म हुआ ॥६१-६२॥ अहल्यासे महर्षि गौतमके द्वारा शतानन्दका जन्म हुआ ॥६३॥ शतानन्दसे धनुर्वेदका पारदर्शी सत्यधृति उत्पन्न हुआ ॥६४॥ एक बार अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीको देखनेसे सत्यधृतिका वीर्य

पपात ॥ ६५ ॥ तच द्विधागतमपत्यद्वयं कुमारः कन्या चाभवत् ॥ ६६ ॥ तौ च मृगयामुपयात-क्शान्ततुर्देष्ट्वा कृपया जब्राह ॥ ६७॥ ततः कुमारः कृपः कन्या चाश्वत्थास्रो जननी कृपी द्रोणाचार्यस्य पत्न्यभवत् ॥ ६८ ॥

दिवोदासस्य पुत्रो मित्रायुः ॥ ६९ ॥ मित्रा-योक्च्यवनो नाम राजा ॥७०॥ च्यवनात्सुदासः सुदासात्सौदासः सौदासात्सहदेवस्तस्थापि सो-मकः ॥ ७१ ॥ सोमकाजन्तुः पुत्रशतज्येष्ठो-ऽभवत् ॥ ७२ ॥ तेषां यवीयान् पृषतः पृपताद्-द्वपदस्तसाच धृष्टद्युम्नस्ततो धृष्टकेतुः ॥ ७३ ॥

अजमीढस्थान्यं. ऋक्षनामा पुत्रोऽभवत् ॥७४॥ तस्य संवरणः ॥ ७५ ॥ संवरणात्कुरुः ॥ ७६ ॥ य इदं धर्मक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं चकार ॥ ७७ ॥ सुधनु-र्जह्वपरीक्षित्प्रमुखाः कुरोः पुत्रा वभूवः ॥ ७८॥ पुत्रस्सुहोत्रस्तसाच्च्यवनश्चचवनात् कृतकः ॥ ७९ ॥ ततश्रोपरिचरो वसुः ॥ ८० ॥ **बृहद्रथप्रत्यप्रक्रुशाम्बकुचेलमात्स्यप्रमुखा** पुत्रास्सप्ताजायन्त ॥ ८१ ॥ वृहद्रथात्कुशाग्रः कुशात्राद्व्यभो वृषभात् पुष्पवान् तसात्सत्य-हितस्तसात्सुधन्वा तस्य च जतुः ॥ ८२ ॥ **बृहद्रथा**चान्यश्यकलद्वयजन्मा जरया संहितो जरासन्धनामा ॥ ८३ ॥ तसात्सहदेवस्सहदेवा-त्सोमपस्ततश्र श्रुतिश्रवाः ॥ ८४ ॥ इत्येते मया मागधा भूपालाः कथिताः ॥ ८५ ॥

स्खिलत होकर शरस्तम्ब (सरकण्डे) पर पड़ा ॥६५॥ उससे दो भागोंमें बँट जानेके कारण पुत्र और पुत्रीरूप दो सन्तानें उत्पन्न हुईं ॥६६॥ उन्हें मृगयाके लिये गये हुए राजा शान्तनु कृपावश ले आये ॥६७॥ तदनन्तर पुत्रका नाम कृप हुआ और कन्या अख्रत्थामाकी माता द्रोणाचार्यकी पत्नी कृपी हुई॥६८॥

दिवोदासका पुत्र मित्रायु हुआ ।।६९॥ मित्रायुका पुत्र च्यवन नामक राजा हुआ, च्यवनका सुदास, सुदास-का सौदास, सौदासका सहदेव, सहदेवका सोमक और सोमकके सौ पुत्र हुए जिनमें जन्तु सबसे बड़ा और पृषत सबसे छोटा था। पृषतका पुत्र दुपद, दुपदका घृष्टग्रुम और घृष्टग्रुमका पुत्र घृष्टकेतु था।।७०—७३॥

अजमीदका ऋक्ष नामक एक पुत्र और या॥७४॥ उसका पुत्र संवरण हुआ तथा संवरणका पुत्र कुरु था जिसने कि धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रकी स्थापना की ॥७५-७७॥ कुरुके पुत्र सुधनु, जहु और परीक्षित् आदि हुए ॥७८॥ सुधनुका पुत्र सुहोत्र या, सुहोत्रका च्यवन, च्यवनका कृतक और कृतकका पुत्र उपरिचर वसु हुआ ॥७९-८०॥ वसुके बृहद्रथ, प्रत्यप्र, कुशाम्बु, कुचेळ और मात्स्य आदि सात पुत्र थे ॥८१॥ इनमेंसे बृहद्रथके कुशाप्र, कुशाप्रके वृषम, वृषमके पुष्पवान्, पुष्पवान्के सत्यहित, सत्यहितके सुधन्वा और सुधन्वाके जतुका जन्म हुआ ॥८२॥ बृहद्रथके दो खण्डोंमें विभक्त एक पुत्र और हुआ था जो कि जरा-के द्वारा जोड़ दिये जानेपर जरासन्ध कहलाया।८३। उससे सहदेवका जन्म हुआ तथा सहदेवसे सोमप और सोमपसे श्रुतिश्रवाकी उत्पत्ति हुई ॥८४॥ इस प्रकार मैंने तुमसे यह मागध भूपाळोंका वर्णन कर दिया है ॥८५॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थेंऽशे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

कुरुके वंशका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

परीक्षितो जनमेजयश्चतसेनोग्रसेनभीमसेनाश्च-त्वारः पुत्राः ॥ १ ॥ जह्वोस्तु सुरथो नामात्मजो वभूव ।। र ।। तस्यापि विद्र्यः ।। ३ ।। तसा-त्सार्वभौमस्सार्वभौमाञ्जयत्सेनस्तसादाराधितस्तत-श्रायुतायुरयुतायोरक्रोधनः ॥ ४॥ तसाद्देवा-तिथिः ॥ ५ ॥ तत्रथ ऋक्षोऽन्योऽभवत् ॥ ६ ॥ ऋक्षाद्भीमसेनस्ततश्र दिलीपः ॥ ७॥ दिलीपात् प्रतीपः ॥ ८॥

तस्यापि देवापिशान्तज्ञवाह्लीकसंज्ञास्त्रयः पुत्रा वभूवुः ॥ ९॥ देवापिर्वाल एवारण्यं विवेश ।। १० ।। शान्तनुस्तु महीपालोऽभृत् ।। ११ ।। अयं च तस्य श्लोकः पृथिव्यां गीयते ॥ १२ ॥ यं यं कराम्यां स्प्रशति जीर्णं यौवनमेति सः। शान्ति चामोति येनाग्रचां कर्मणा तेन शान्तद्यः १३

तस्य च शान्तनो राष्ट्रे द्वादशवर्षाणि देवो न ववर्ष ।। १४ ।। ततश्राशेषराष्ट्रविनाशमवेक्ष्यासौ राजा ब्राह्मणानपृच्छत् कसादसाकं राष्ट्रे देवो न वर्षति को ममापराध इति ॥ १५॥

ततश्र तमूचुर्वाक्षणाः ॥ १६ ॥ अग्रजस्य ते हीयमवनिस्त्वया सम्भ्रज्यते अतः परिवेत्ता त्वमित्युक्तस्स राजा पुनस्तानपृच्छत् ॥ १७॥ किं मयात्र विधेयमिति ॥ १८ ॥

ततस्ते पुनरप्युचुः ॥ १९ ॥ याबद्देवापिर्न

श्रीपराशरजी बोले-[कुरुपुत्र] परीक्षितके जनमेजय,श्रुतसेन, उप्रसेन और भीमसेननामक चार पुत्र हुए, तथा जह्नुके सुरथ नामक एक पुत्र हुआ ॥१-२॥ सुरथके विदूरथका जन्म हुआ । विदूरथके सार्वभौम, सार्वभौमके जयत्सेन, जयत्सेनके आराधित, आराधित-के अयुताय, अयुतायुके अक्रोधन, अक्रोधनके देवातिथि तथा देवातिथिके अजमीदके पुत्र ऋक्ष-से मिन्न] दूसरे ऋक्षका जन्म हुआ ॥३-६॥ ऋक्षसे भीमसेन, भीमसेनसे दिलीप और दिलीपसे प्रतीप-नामक पुत्र हुआ ॥७-८॥

प्रतीपके देवापि, शान्तनु और वाह्नीक नामक तीन पुत्र हुए ॥९॥ इनमेंसे देवापि वाल्यावस्थामें ही वनमें चला गया था अतः शान्तन ही राजा हुआ ॥१०-११॥ उसके विषयमें पृथिवीतलपर यह श्लोक कहा जाता है ॥१२॥

"[राजा शान्तन् जिसको-जिसको अपने हाथसे स्पर्श कर देते थे वे वृद्ध पुरुष भी युवावस्था प्राप्त कर छेते ये तथा उनके स्पर्शेस सम्पूर्ण जीव अत्युत्तम शान्ति-लाम करते थे, इसीलिये वे शान्तनु कहलाते थे"॥१३॥

एक बार महाराज शान्तनुके राज्यमें वारह वर्षतक वर्षा न हुई ॥१४॥ उस समय सम्पूर्ण देशको नष्ट होता देखकर राजाने ब्राह्मणोंसे पृछा, 'हमारे राज्यमें वर्षा क्यों नहीं हुई ? इसमें मेरा क्या अपराध है ? ॥१५॥

तब ब्राह्मणोंने उससे कहा- 'यह राज्य तुम्हारे बड़े माईका है किन्तु इसे तुम भोग रहे हो; इसलिये तुम परिवेत्ता हो ।' उनके ऐसा कहनेपर राजा शान्तनुने उनसे फिर पृछा, 'तो इस सम्बन्धमें मुझे अब क्या करना चाहिये ?' ॥१६-१८॥

इसपर वे ब्राह्मण फिर बोले-- 'जवतक तुम्हारा बड़ा पतनादिभिदें पिरिभभूयते तावदेतत्तस्याई राज्यम् । माई देवापि किसी प्रकार पतित न हो तवतक यह ॥२०॥ तदलमेतेन तु तसौ दीयतामित्युक्ते तस्य मन्त्रिप्रवरेणा<u>रुमसारिणा</u> तत्रारण्ये तपस्विनो वेदवादविरोधवक्तारः प्रयुक्ताः ॥ २१॥ तैरस्या-प्यतिऋजुमतेर्महीपतिपुत्रस्य बुद्धिर्वेदवादविरोध-मार्गानुसारिण्यिक्रयत ॥ २२॥ राजा च शान्त-नुद्धिजवचनोत्पन्नपरिदेवनशोकस्तान् ब्राह्मणान-प्रतः कृत्वाप्रजस्य प्रदानायारण्यं जगाम ॥२३॥

तदाश्रमम्रपगताश्र तमवनतमवनीपतिपुत्रं देवापिम्रपतस्थुः ॥ २४ ॥ ते ब्राह्मणा वेदवादानु-वन्धीनि वचांसि राज्यमग्रजेन कर्त्तव्यमित्यर्थवन्ति तम्चुः ॥ २५ ॥ असावपि देवापिर्वेदवाद-विरोधयुक्तिद्पितमनेकप्रकारं तानाइ ॥ २६ ॥ ततस्ते ब्राह्मणाक्शान्तनुम्चुः ॥ २७ ॥ आगच्छ हे राजन्नलमत्रातिनिर्वन्थेन प्रशान्त एवासावना-वृष्टिदोपः पतितोऽयमनादिकालमहितवेदवचन-द्पणोचारणात् ॥ २८ ॥ पतिते चाग्रजे नैव ते परिवेदत्वं भवतीत्युक्तक्शान्तनुस्खपुरमागम्य राज्यमकरोत् ॥ २९ ॥ वेदवादिवरोधवचनोचारण-द्पिते च तस्निन्देवापौ तिष्ठत्यपि ज्येष्ठभ्रातर्य-सिलसस्यनिष्यत्तये ववर्ष भगवान्पर्जन्यः ॥ ३० ॥

वाह्नीकात्सोमदत्तः पुत्रोऽभृत् ॥ ३१॥ सोम-दत्तस्यापि भूरिभूरिश्रवः शल्यसं ज्ञाह्मयः पुत्रा वभृतुः ॥ ३२॥ शान्तनोरप्यमरनद्यां जाह्मच्या-मुदारकीर्तिरशेपशास्त्रार्थविद्भीष्मः पुत्रोऽभूत् ॥ ३३॥ सत्यवत्यां च चित्राङ्गदविचित्रवीयों द्वौ पुत्रानुत्पादयामास शान्तनुः ॥ ३४॥ चित्राङ्ग-दस्तु वाल एव चित्राङ्गदेनैव गन्धर्वेणाहवे निहतः राज्य उसीके योग्य है ॥ १९-२०॥ अतः तुम इसे उसीको दे डालो, तुम्हारा इससे कोई प्रयोजन नहीं ?' ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर शान्तनुके मन्त्री अश्मसारीने वेदबादके विरुद्ध बोलनेवाले तपिखयोंको वनमें नियुक्त किया ॥२१॥ उन्होंने अतिशय सरलमित राजकुमार देवापिकी बुद्धिको वेदबादके विरुद्ध मार्गमें प्रवृत्त कर दिया ॥२२॥ उधर राजा शान्तनु ब्राह्मणों-के कथनानुसार दुःख और शोकयुक्त होकर ब्राह्मणों-को आगेकर अपने बड़े माईको राज्य देनेके लिये वनमें गये ॥२३॥

वनमें पहुँचनेपर वे ब्राह्मणगण परम विनीत राजकुमार देवापिके आश्रमपर उपस्थित हुए; और उससे 'ज्येष्ठ भाताको ही राज्य करना चाहिये'—इस अर्थके समर्थक अनेक वेदानुकूल वाक्य कहने लगे ।।२४-२५॥ किन्तु उस समय देवापिने वेदवादके विरुद्ध नाना प्रकारकी युक्तियोंसे दृषित वार्ते कीं ॥२६॥ तव उन ब्राह्मणोंने शान्तनुसे कहा—॥२०॥ ''हे राजन् ! चलो, अव यहाँ अधिक आग्रह करनेकी आवस्यकता नहीं । अव अना-वृष्टिका दोष शान्त हो गया। अनादिकालसे पृजित वेद-वाक्योंमें दोष वतलानेके कारण देवापि पतित हो गया है ॥२८॥ ज्येष्ठ भ्राताके पतित हो जानेसे अव तुम परिवेत्ता नहीं रहे।" उनके ऐसा कहनेपर शान्तनु अपनी राजधानीको चले आये और राज्य-शासन करने छगे ॥२९॥ वेदवादके विरुद्ध वचन बोलनेके कारण देवापिके पतित हो जानेसे, बड़े भाईके रहते हुए भी सम्पूर्ण धान्योंकी उत्पत्तिके लिये पर्जन्यदेव (मेघ) वरसने छगे ।।३०॥

वाह्नीकके सोमदत्त नामक पुत्र हुआ तथा सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा और शल्य नामक तीन पुत्र हुए।।३१-३२॥ शान्तनुके गङ्गाजीसे अतिशय कीर्तिमान् तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला भीष्म नामक पुत्र हुआ।।३३॥ शान्तनुने सत्यवतीसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र और भी उत्पन्न किये॥३४॥ उनमेंसे चित्राङ्गदको तो वाल्यावस्थामें ही चित्राङ्गद नामक गन्धर्वने युद्धमें मार डाला॥३५॥ विचित्र-

॥ ३५॥ विचित्रवीर्योऽपि काशिराजतनये अम्विकाम्बालिके उपयेमे ॥ ६॥ तदुपमोगातिखेदाच यक्ष्मणा गृहीतः स पश्चत्वमगमत्॥ ३७॥
सत्यवतीनियोगाच मत्पुत्रः कृष्णद्वैपायनो मातुर्वचनमनतिक्रमणीयमिति कृत्वा विचित्रवीर्यक्षेत्रे
धृतराष्ट्रपाण्ड् तत्प्रहित्रभुजिष्यायां विदुरं चोत्पादयामास ॥ ३८॥

धतराष्ट्रोऽपि गान्धार्यां दुर्योधनदुक्शासनप्रधानं पुत्रशतम्रत्यादयामास ॥ ३९॥ पाण्डोरप्यरण्ये सृगयायासृषिशापोपहतप्रजाजननसामर्थ्यस्य धर्म-वायुशकैर्युधिष्ठिरभीमसेनार्जुनाः कुन्त्यां नक्कल्सहदेवौ चाधिम्यां माद्र्यां पश्चपुत्रास्सम्रत्पादिताः ॥ ४०॥ तेषां च द्रौपद्यां पश्चेव पुत्रा वभूवः ॥ ४१॥ युधिष्ठिरात्प्रतिविन्ध्यः भीमसेनाच्छ्रतसेनः श्रुतकीर्त्तिरर्जुनाच्छ्रुतानीको नक्कलाच्छ्रुतकर्मा सहदेवात् ॥ ४२॥

अन्ये च पाण्डवानामात्मजास्तद्यथा ॥ ४३ ॥
यौधेयी युधिष्ठिराद्देवकं पुत्रमवाप ॥ ४४ ॥
हिडिम्बा घटोत्कचं भीमसेनात्पुत्रं लेभे ॥ ४५ ॥
काशी च भीमसेनादेव सर्वगं सुतमवाप ॥ ४६ ॥
सहदेवाच विजया सुहोत्रं पुत्रमवाप ॥ ४७ ॥
रेणुमत्यां च नकुलोऽपि निरमित्रमजीजनत् ॥४८॥
अर्जुनस्याप्युख्प्यां नागकन्यायामिरावान्नाम
पुत्रोऽभवत् ॥ ४९ ॥ मणिपुरपतिपुत्र्यां पुत्रिकाधर्मेण बश्चवाहनं नाम पुत्रमर्जुनोऽजनयत् ॥ ५० ॥
सुभद्रायां चार्मकत्वेऽपि योऽसावतिवलपराक्रमस्समस्तारातिरथजेता सोऽभिमन्युरजायत ॥ ५१ ॥
अभिमन्योरुत्तरायां परिक्षीणेषु कुरुष्वश्वत्थाम-

वीर्यने काशिराजकी पुत्री अभ्विका और अभ्वालिकासे विवाह किया ॥३६॥ उनमें अत्यन्त मोगासक्त रहनेके कारण अतिशय खिल रहनेसे वह यक्ष्माके वशीभूत होकर [अकालहीमें] मर गया ॥३७॥ तदनन्तर मेरे पुत्र कृष्णहैपायनने सत्यवतीके नियुक्त करनेसे माताका वचन टालना उचित न जान विचित्रवीर्यकी पित्रयोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये और उनकी भेजी हुई दासीसे विदुर नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥३८॥

धृतराष्ट्रने भी गान्धारीसे दुर्योधन और दुःशासन आदि सो पुत्रोंको जन्म दिया ॥३९॥ पाण्डु वनमें आखेट करते समय ऋषिके शापसे सन्तानोत्पादनमें असमर्थ हो गये थे अतः उनकी खी कुन्तीसे धर्म, वायु और इन्द्रने क्रमशः युधिष्टिर, भीम और अर्जु न नामक तीन पुत्र तथा माद्रीसे दोनों अश्विनीकुमारोंने नकुछ और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार उनके पाँच पुत्र हुए ॥४०॥ उन पाँचोंके द्रोपदीसे पाँच ही पुत्र हुए ॥४१॥ उनमेंसे युधिष्टिर-से प्रतिविन्ध्य, भीमसेनसे श्रुतसेन, अर्जु नसे श्रुतकारिं, नकुछसे श्रुतानीक तथा सहदेवसे श्रुतकर्माका जन्म हुआ था॥४२॥

इनके अतिरिक्त पाण्डवोंके और भी कई पुत्र
हुए ॥१३॥ जैसे—युधिष्ठिरसे यौधेयीके देवक नामक
पुत्र हुआ, भीमसेनसे हिडिम्त्राके घटोत्कच और
काशीसे सर्वग नामक पुत्र हुआ, सहदेवसे विजयाके
सुहोत्रका जन्म हुआ, नकुछने रेणुमनीसे निरमित्रको
उत्पन्न किया ॥१४९-४८॥ अर्जुनके नागकन्या
उछ्पीसे इरावान् नामक पुत्र हुआ ॥४९॥ मणिपुर
नरेशकी पुत्रीसे अर्जुनने पुत्रिका-धर्मानुसार वश्चवाहन
नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥५०॥ तथा उसके
सुभद्रासे अभिमन्युका जन्म हुआ जो कि वाल्यावस्थामें
ही बड़ा बछ-पराक्रम-सम्पन्न तथा अपने सम्पूर्ण
शत्रुओंको जीतनेवाछा था॥५१॥तदनन्तर, कुरुकुछके
क्षीण हो जानेपर जो अश्वत्थामाके प्रहार किये हुए
ब्रह्माखद्वारा गर्ममें ही भस्मीभृत हो चुका था किन्तु फिर,

प्रयुक्तत्रह्मास्त्रेण गर्भ एव मसीकृतो भगवत-स्सकलसुरासुरवन्दितचरणयुगलस्यात्मेच्छया कारणमानुषरूपधारिणोऽनुभावात्पुनर्जीवितमवाप्य परीक्षिजज्ञे ॥ ५२ ॥ योऽयं साम्प्रतमेतद्भूमण्डल-मखण्डितांयतिधर्मेण पालयतीति ॥ ५३ ॥

जिन्होंने अपनी इच्छासे ही माया-मानव-देह घारण किया है उन सकल सुरासुरवन्दितचरणारविन्द श्री- कृष्णचन्द्रके प्रमावसे पुनः जीवित हो गया; उस परीक्षित्ने अभिमन्युके द्वारा उत्तराके गर्भसे जन्म लिया जो कि इस समय इस प्रकार धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भूमण्डलका शासन कर रहा है कि जिससे भविष्यमें मी उसकी सम्पत्ति क्षीण न हो ॥५२-५३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थेऽशे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

इकीसवाँ अध्याय

भविष्यमें होनेवाले राजाओंका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

अतः परं भविष्यानहं भूपालान्कीर्तियिष्यामि
॥ १॥ योऽयं साम्प्रतमवनीपतिः परीक्षित्तस्यापि
जनमेजयश्रुतसेनोप्रसेनभीमसेनाश्रत्वारः पुत्रा
भविष्यन्ति ॥ २ ॥ जनमेजयस्यापि शतानीको
भविष्यति ॥ ३ ॥ योऽसौ याज्ञवल्क्याद्वेदमधीत्य
कृपादस्राण्यवाप्य विषमविषयविरक्तचित्तशृत्तिश्र शौनकोपदेशादात्मज्ञानप्रवीणः परं निर्वाणमवाप्रयति ॥ ४ ॥ शतानीकादश्वमेधद्त्तो भविता
॥ ५ ॥ तसादप्यधिसीमकृष्णः ॥ ६ ॥ अधिसीमकृष्णान्निचक्तुः ॥ ७ ॥ यो गङ्गयापहृते हित्तनापुरे कौशाम्व्यां निवत्स्यति ॥ ८ ॥

तस्याप्युष्णः पुत्रो भविता ॥ ९ ॥ उष्णाद्वि-चित्ररथः ॥ १० ॥ ततः श्चचिरथः ॥ ११ ॥ तस्माद्वृष्णिमांस्ततस्सुपेणस्तस्यापि सुनीथस्सुनी-थान्नृपचश्चस्तस्यादि सुस्तावलस्तस्य च पारिष्ठव-स्ततश्च सुनयस्तस्यापि मेघावी ॥ १२ ॥ मेघाविनो रिपुञ्जयस्ततो मृदुस्तसाच तिग्मस्त-साद्वृहद्रथो वृहद्रथाद्वसुदानः ॥ १३ ॥ ततोऽपरश्यतानीकः ॥१४॥ तसाचोदयन उद्य-नाद्दीनरस्ततश्च दण्डपाणिस्ततो निरमित्रः ॥१५॥

श्रीपराशरजी बोले-अव मैं भविष्यमें होनेवाले राजाओंका वर्णन करता हूँ ॥१॥ इस समय जो परीक्षित् नामक महाराज हैं इनके जनमेजय, श्रुतसेन, उप्रसेन और भीमसेन नामक चार पुत्र होंगे ॥२॥ जनमेजयका पुत्र शतानीक होगा जो याज्ञवल्क्यसे वेदाध्ययनकर, कृपसे रास्त्रविद्या प्राप्तकर विषम विषयोंसे विरक्तचित्त हो महर्षि शौनकके उपदेशसे आत्म-ज्ञानमें निपुण होकर परमनिर्वाण-पद प्राप्त करेगा ॥३-४॥ शतानीकका पुत्र अश्वमेधदत्त होगा ॥५॥ उसके अधिसीमकृष्ण तथा अधिसीमकृष्णके निचक्तु नामक पुत्र होगा जो कि गङ्गाजीद्वारा हस्तिनापुर-के बहा छे जानेपर कौशाम्बीपुरीमें करेगा ॥६-८॥

निचक्तुका पुत्र उष्ण होगा, उष्णका विचित्ररथ, विचित्ररथका ग्रुचिर्थ, ग्रुचिरथका वृष्णिमान्, वृष्णिमान्का सुषेण, सुषेणका सुनीथ, सुनीथका नृप, तृपका चक्षु, चक्षुका सुखावल, सुखावलका पारिष्ठव, पारिष्ठवका सुनय, सुनयका मेधावी, मेधावीका रिपुञ्जय, रिपुञ्जयका मृदु, मृदुका तिग्म, तिग्मका बृहद्रथ, बृहद्रथका वसुदान, वसुदानका दूसरा शतानीक, शतानीकका उदयन, उदयनका अहीनर, अहीनरका दण्डपाणि, दण्डपाणिका निरमित्र तथा

तसाच क्षेमकः ॥ १६ ॥ अत्रायं श्लोकः ॥१७॥

ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वशो राजर्षिसत्कृतः । क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थानं प्राप्स्यते कलौ ॥१८॥ निरमित्रका पुत्र क्षेमक होगा ! इस विषयमें यह स्रोक प्रसिद्ध है—॥९-१७

'जो वंश ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी उत्पत्तिका कारण-रूप तथा नाना राजिपयोंसे समाजित है वह कल्यिगमें राजा क्षेमकके उत्पन्न होनेपर समाप्त हो जायगा'॥१८॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्येंऽशे एकविंशोऽष्यायः ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

भविष्यमें होनेवाले इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

अतश्रेक्ष्वाकवो भविष्याः पार्थिवाः कथ्यन्ते ॥ १॥ बृहद्गरूलस्य प्रतो बृहत्क्षणः ॥ २॥ तसादुरुक्षयस्त्रसाच वत्सच्यूहस्ततश्र प्रतिच्योमस्त्रसाद् पि दिवाकरः ॥ ३॥ तसात्सहदेवः सहदेवाद्बृहद्श्वस्तत्त्र्युर्मानुरथस्तस्य च प्रतीताश्वस्तस्यापि
सुप्रतीकस्ततश्र मरुदेवस्ततः सुनक्षत्रस्तसात्क्रियाः
॥ ४॥ किन्नरादन्तिरक्षस्तसात्सुपर्णस्ततश्रामित्रजित् ॥ ५॥ ततश्र बृहद्गाजस्तस्यापि धर्मी
धर्मिणः कृतञ्जयः ॥६॥ कृतञ्जयाद्रणञ्जयः ॥७॥
रणञ्जयात्सञ्जयस्तसाच्छाक्यश्याक्याच्छुद्धोदनस्तसाद्राहुलस्ततः प्रसेनजित्॥ ८॥ तत्प्रत्रश्र
सुमित्रः ॥ १०॥ इत्येते चेक्ष्वाकवो बृहद्वलान्वयाः ॥ ११॥

अत्रातुवंश्रश्लोकः ॥ १२ ॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशस्सुमित्रान्तो भविष्यति ।

यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ।१३।

श्रीपराशरजी बोले—अब मैं भविष्यमें होनेवाले इक्वाकुवंशीय राजाओंका वर्णन करता हूँ ॥१॥
वृहद्गल्का पुत्र वृहत्क्षण होगा, उसका उरुक्षय, उरुक्षयका वत्सन्यृह, वत्सन्यृहका प्रतिव्योम, प्रतिव्योमका
दिवाकर, दिवाकरका सहदेव, सहदेवका वृहदस्य,
वृहदस्यका भानुरथ, भानुरथका प्रतीतास्त्र, प्रतीतास्त्रका
सुप्रतीक, सुप्रतीकका मरुदेव, मरुदेवका सुनक्षत्र, सुनक्षत्रका किचर, किचरका अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षका सुपर्ण,
सुपर्णका अमित्रजित्, अमित्रजित्का वृहद्राज, वृहद्राजका धर्मी, धर्मीका कृतस्त्रय, कृतस्त्रयका रणस्त्रय,
रणझयका सम्त्रय, सम्रयका शाक्य, शाक्यका रणस्त्रय,
रणझयका सम्त्रय, सम्रयका शाक्य, शाक्यका सुर्यजित्का क्षुद्रक, क्षुद्रकका ज्ञण्डक, कुण्डकका सुर्यऔर सुर्यका सुमित्र नामक पुत्र होगा। ये सव
इक्ष्वाकुके वंशमें वृहद्गलकी सन्तान होंगे॥२—११॥

'यह इक्ष्वाकुवंश राजा धुमित्रतक रहेगा, क्योंकि कल्यियगर्मे राजा धुमित्रके होनेपर फिर यह समाप्त हो जायगा'।।१३॥

इस वंशके सम्बन्धमें यह क्लोक प्रसिद्ध है-॥१२॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थेऽशे द्वाविशोऽध्यायः ॥२२॥

तेईसवाँ अध्याय

मगधवंशका वर्णन ।

श्रीपराशर उवाच

मागधानां बाईद्रथानां भाविनामनुक्रमं कथ-यिष्यामि ॥ १॥ अत्र हि वंशे महाबलपराक्रमा जरासन्धप्रधाना वभूबुः ॥ २॥

जरासन्धस पुत्रः सहदेवः ।३। सहदेवात्सोमापिस्तस्य श्रुतश्रवास्तस्याप्ययुतायुस्ततश्र निरिमत्रस्तत्तन्यस्युनेत्रस्तस्यादिप बृहत्कर्मा ॥ ४ ॥ ततश्र
सेनजित्ततश्र श्रुतञ्जयस्ततो विप्रस्तस्य च पुत्रक्युचिनामा भविष्यति ॥ ५ ॥ तस्यापि श्लेम्यस्ततश्र सुत्रतस्युत्रताद्धर्मस्ततस्युश्रवाः ॥ ६ ॥ ततो दृहसेनः
॥ ७ ॥ तसात्सुवलः ॥ ८ ॥ सुवलात्सुनीतो
भविता ॥ ९ ॥ ततस्सत्यजित् ॥ १० ॥ तसाद्विश्वजित् ॥ ११ ॥ तस्यापि रिपुञ्जयः ॥ १२ ॥
इत्येते बाईद्रथा भूपतयो वर्षसहस्रमेकं
भविष्यन्ति ॥ १३ ॥ श्रीपराशरजी बोले — अब मैं मगधदेशीय बृह-द्रथकी भावी सन्तानका अनुक्रमसे वर्णन करूँ गा ॥१॥ इस वंशमें महाबल्यान् और पराक्रमी जरासन्ध आदि राजागण प्रधान थे ॥२॥

जरासन्धका पुत्र सहदेव है ।।३।। सहदेवके सोमापि
नामक पुत्र होगा, सोमापिके श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवाके
अयुतायु, अयुतायुके निरिमत्र, निरिमत्रके सुनेत्र,
सुनेत्रके बृहत्कर्मा, बृहत्कर्माके सेनजित, सेनजित्के
श्रुतख्रय, श्रुतख्रयके विप्र तथा विप्रके श्रुचिनामक
एक पुत्र होगा ।।४-५।। श्रुचिके क्षेग्य, क्षेग्यके सुत्रत,
सुत्रतके धर्म, धर्मके सुश्रवा, सुश्रवाके दृदसेन, दृदुसेनके सुत्रल, सुबलके सुनीत, सुनीतके सत्यजित्,
सत्यजित्के विश्वजित् और विश्वजित्के रिपुख्रयका
जन्म होगा ॥६—१२॥ इस प्रकारसे बृहद्रथवंशीय
राजागण एक सहस्र वर्षपर्यन्त मगधमें शासन
करेंगे॥१३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्थेंऽशे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चौबीसवाँ अध्याय

किं खुगी राजाओं और किंछधर्मीका वर्णन तथा राजवंश-वर्णनका उपसंहार।

श्रीपराशर उवाच

योऽयं रिपुञ्जयो नाम बाईद्रथोऽन्त्यस्तस्या-मात्यो सुनिको नाम भविष्यति ॥ १ ॥ स चैनं खामिनं हत्वा खपुत्रं प्रद्योतनामानमभिषेक्ष्यति ॥ २ ॥ तस्यापि बलाकनामा पुत्रो भविता ॥३॥ ततश्च विशाखयूपः ॥ ४ ॥ तत्पुत्रो जनकः ॥ ५ ॥ तस्य च नन्दिवर्द्धनः ॥ ६ ॥ ततो नन्दी ॥ ७ ॥ इत्येतेऽष्टत्रिंशदुत्तरमब्द्शतं पश्च प्रद्योताः पृथिवीं मोक्ष्यन्ति ॥ ८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—बृहद्रथवंशका रिपुश्चय नामक जो अन्तिम राजा होगा उसका धुनिक नामक एक मन्त्री होगा। वह अपने खामी रिपुश्चयको मार-कर अपने पुत्र प्रचोतका राज्यामिषेक करेगा। उसका पुत्र बलाक होगा, बलाकका विशाखयूप, विशाखयूपका जनक, जनकका नन्दिबर्द्धन तथा नन्दिबर्द्धनका पुत्र नन्दी होगा। ये पाँच प्रचोतवंशीय नृपतिगण एक सौ अइतीस वर्ष पृथिवीका पालन करेंगे।।१—८॥ ततश्च शिशुनाभः ॥ ९ ॥ तत्पुत्रः काकवर्णो भिवता ॥ १० ॥ तस्य च पुत्रः क्षेमधर्मा ॥११॥ तस्यापि क्षतौजाः ॥ १२ ॥ तत्पुत्रो विधिसारः ॥ १३ ॥ तत्थाजातशत्रुः ॥ १४ ॥ तसादर्भकः ॥ १५ ॥ तसादर्भकः ॥ १५ ॥ तसादपि निद्वर्द्धनः ॥ १७ ॥ ततो महानन्दी ॥ १८ ॥ इत्येते शैशनाभा भूपालास्त्रीणि वर्पशतानि द्विपष्टचिधकानि भविष्यन्ति ॥ १९ ॥

महानन्दिनस्ततश्यूद्रागर्भोद्भवोऽतिलुब्धोऽति-बलो महापद्मनामा नन्दः परश्चराम इवापरोऽलिल-श्वत्रान्तकारी भविष्यति ॥२०॥ ततः प्रभृति शूद्रा भूपाला भविष्यन्ति ॥ २१ ॥ स चैकच्छत्राम-जुल्लक्षितशासनो महापद्मः पृथिवीं मोक्ष्यते ॥ २२ ॥ तस्याप्यष्टौ सुतास्सुमाल्याद्या भवितारः ॥ २३ ॥ तस्य महापद्मस्याजु पृथिवीं मोक्ष्यन्ति ॥ २३ ॥ तस्य महापद्मस्याजु पृथिवीं मोक्ष्यन्ति ॥ २५ ॥ ततश्च नव चैतान्नन्दान् कौटिल्यो त्राह्मणस्तम्रद्धरिष्यति ॥ २६ ॥ तेषा-मभावे मौर्याः पृथिवीं मोक्ष्यन्ति ॥ १६ ॥ तेषा-प्रमावे मौर्याः पृथिवीं मोक्ष्यन्ति ॥ १८ ॥ कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्पनं राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ १८॥

तस्यापि पुत्रो विन्दुसारो भविष्यति ॥ २९ ॥ तस्याप्यशोकवर्द्धनस्ततस्युयशास्ततश्र संयुतस्ततक्शालिशूकस्तसात्सोमशर्मा तस्यापि सोमग्रमणक्यतधन्वा ॥ ३०॥ तस्या-पि बृहद्रथनामा भविता ॥३१॥ एवमेते मौर्या दश भूपतयो भविष्यन्ति अब्दशतं सप्तत्रिंशदुत्तरम् ॥ ३२ ॥ तेपामन्ते पृथिवीं दश शुङ्गा भोक्ष्यन्ति पुष्यमित्रस्सेनापतिस्खामिनं राज्यं करिष्यति तस्यात्मजोऽग्निमित्रः ॥ ३४ ॥ तसात्सुज्येष्ठसतो वसुमित्रस्तसाद्प्युदङ्कस्ततः पुलिन्दकसतो घोषवसुस्तसादपि वज्रमित्रस्ततो भागवतः ॥ ३५॥ तसाद्देवभूतिः ॥ ३६॥ इत्येते ग्रुङ्गा द्वादशोत्तरं वर्षशतं पृथिवीं मोक्ष्यन्ति ॥ ३७॥

नन्दीका पुत्र शिशुनाम होगा, शिशुनामका काक-वर्ण, काकवर्णका क्षेमधर्मा, क्षेमधर्माका क्षतौजा, इतौजाका विधिसार, विधिसारका अजातशत्रु, अजात-शत्रुका अर्भक, अर्भकका उदयन, उदयनका नन्दि-वर्द्धन और नन्दिवर्द्धनका पुत्र महानन्दी होगा। ये शिशुनामवंशीय नृपतिगण तीन सौ वासठ वर्ष पृथिवी-का शासन करेंगे।।९—१९॥

महानन्दिके शृद्धाके गर्भसे उत्पन्न महापद्म नामक नन्द दूसरे परशुरामके समान सम्पूर्ण क्षत्रियोंका नाश करनेवाछा होगा। तवसे शृद्धजातीय राजा राज्य करेंगे। राजा महापद्म सम्पूर्ण पृथिवीका एक-च्छत्र और अनुञ्जिह्दत राज्य-शासन करेगा। उसके सुमाछी आदि आठ पुत्र होंगे जो महापद्म के पीछे पृथिवीका राज्य भोगेंगे॥२०—२४॥ महापद्म और उसके पुत्र सौ वर्षतक पृथिवीका शासन करेंगे। तदनन्तर इन नवों नन्दोंको कौटिल्यनामक एक ब्राह्मण नष्ट करेगा, उनका अन्त होनेपर मौर्य नृपति-गण पृथिवीको भोगेंगे। कौटिल्य ही [सुरा नामकी दासीसे नन्दद्वारा] उत्पन्न हुए चन्द्रगुप्तको राज्या-मिषिक्त करेगा॥२५—२८॥

चन्द्रगुप्तका पुत्र विन्दुसार, विन्दुसारका अशोक-वर्द्धन, अशोकवर्द्धनंका सुयशा, सुयशाका दशरथ, दशरथका संयुत, संयुतका शाल्धिश्क, शाल्धिश्कका सोमशर्मा, सोमशर्माका शतधन्वा, तथा शतधन्वाका पुत्रं बृहद्दय होगा । इस प्रकार एक सौ तिहत्तर वर्ध-तक ये दश मौर्यवंशी राजा राज्य करेंगे ॥२२-३२॥ इनके अनन्तर पृथिवीमें दश शुद्धवंशीय राजागण होंगे ॥ ३३ ॥ उनमें पहला पुष्यमित्र नामक सेनापित अपने खामीको मारकर खयं राज्य करेगा, उसका पुत्र अग्नि-मित्र होगा॥३४॥ अग्निमित्रका पुत्र सुज्येष्ट, सुज्येष्टका बसुमित्र,वसुमित्रका उदंक, उदंकका पुल्टिन्दक, पुल्टिन्दक-का घोषवसु, घोषवसुका वज्रमित्र, वज्ञमित्रका भागवत और भागवतका पुत्र देवभूति होगा ॥३५-३६॥ ये शुंगनरेश एक सौ बारह वर्ष पृथिवीका भोग करेंगे॥३०॥

ततः कष्वानेषा भूर्यास्यति ॥ ३८ ॥ देवभूति तु शुक्तराजानं व्यसनिनं तस्यैवामात्यः काण्वो वसुदेवनामा तं निहत्य खयमवनीं भोक्ष्यति ॥ ३९॥ तस्य पुत्रो भूमित्रस्तस्यापि नारायणः ॥ ४० ॥ नारायणात्मजस्सुशर्मा ॥ ४१ ॥ एते काण्वायनाश्रत्वारः पश्चचत्वारिंशद्वर्षाणि भूपतयो भविष्यन्ति ॥ ४२ ॥

३५२

सुशर्माणं तु काण्वं तद्भृत्यो बलिपुच्छकनामा हत्वान्ध्रजातीयो वसुधां भोक्ष्यति ॥ ४३ ॥ तत्रश्र कृष्णनामा तद्भाता पृथिवीपतिर्भविष्यति ॥४४॥ तस्यापि पुत्रः शान्तकणिस्तस्यापि पूर्णोत्सङ्गस्त-त्पुत्रक्शातकर्णिस्तसाच लम्बोद्रस्तसाच पिलक-स्ततो मेघस्वातिस्ततः पडुमान् ॥ ४५ ॥ ततश्रा-रिष्टकर्मा ततो हालाहलः ॥ ४६॥ हालाहलात्प-ललकत्ताः पुलिन्दसेनस्ततः सुन्दरस्ततक्शातक-र्णिस्ततिश्चवस्वातिस्ततश्च गोमतिपुत्रस्तत्पुत्रोऽलि-मान् ॥ ४७ ॥ तस्यापि शान्तकणिस्ततः शिव-श्रितस्ततश्र शिवस्कन्धस्तस्माद्पि यज्ञश्रीस्ततो द्वियज्ञस्तस्माचन्द्रश्रीः ॥४८॥ तस्मात्पुलोमाचिः ॥ ४९ ॥ एवमेते त्रिशचत्वार्यब्दशतानि पद्पश्चा श्रद्धिकानि पृथिवीं मोक्ष्यन्ति आन्ध्रमृत्याः ॥५०॥ सप्ताभीरप्रभृतयो दश गर्दभिलाश्च भूभुजो मविष्यन्ति ॥ ५१॥ ततष्पोडश शका भूपतयो भवितारः ॥ ५२ ॥ ततश्राष्टौ यवनाश्रतुर्दश तुरुष्कारा मुण्डाश्च त्रयोदश एकादश मौना एते वै पृथिवीपतयः पृथिवीं दश्चवर्पशतानि नवत्य-विकानि भोक्ष्यन्ति ॥ ५३ ॥

ततश्च एकाद्श भूपतयोऽब्द्शतानि त्रीणि पृथिवीं मोक्ष्यन्ति ॥ ५४ ॥ तेषुत्सनेषु कैङ्किला यवना भूपतयो भविष्यन्त्यमूर्द्धाभिषिक्ताः ॥५५॥ तेपामपत्यं विन्ध्यशक्तिस्ततः पुरख्जयस्तसाद्राम-चन्द्रसासाद्धर्मवर्मा ततो वङ्गसातोऽभूनन्दनसात-स्मुनन्दी तद्भाता नन्दियशाश्युकः प्रवीर एते

इसके अनन्तर यह पृथिवी कण्व भूपालोंके अधिकार-में चली जायगी ॥ ३८॥ शुंगवंशीय अति व्यसनशील राजा देवभूतिको कण्यवंशीय वसुदेवनामक उसका मन्त्री मारकर खयं राज्य भोगेगा ॥ ३९॥ उसका पुत्र भूमित्र, भूमित्रका नारायण तथा नारायणका पुत्र सुशर्मा होगा ॥ ४०-४१ ॥ ये चार काण्व भूपति-गण पैंताळीस वर्ष पृथिवीके अधिपति रहेंगे॥ ४२॥

कण्ववंशीय सुशर्माको उसका बलिपुच्छक नामवाला आन्ध्रजातीय सेवक मारकर खयं पृथिवीका भोग करेगा ॥ ४३ ॥ उसके पीछे उसका भाई कृष्ण पृथिवीका खामी होगा ॥ ४४ ॥ उसका पुत्र शान्तकर्णि होगा। शान्तकर्णिका पुत्र पूर्णोत्संग, पूर्णोत्संगका शातकर्णि, शातकर्णिका लम्बोदर, लम्बोदरका पिलक, पिलकका मेघखाति, मेघखातिका पटुमान्, पटुमान्का अरिष्टकर्मा, अरिष्टकर्माका हालाहल, हालाहलका पललक, पललक-का पुलिन्दसेन, पुलिन्दसेनका सुन्दर, सुन्दरका शात-कर्णि, [दूसरा] शातकर्णिका शिवस्वाति, शिवस्वातिका गोमतिपुत्र, गोमतिपुत्रका अलिमान्, अलिमान्का शान्त-कार्ण [द्सरा], शान्तकार्णिका शिवश्रित, शिवश्रितका शिवस्कन्ध, शिवस्कन्धका यज्ञश्री, यज्ञश्रीका द्वियज्ञ, द्वियज्ञका चन्द्रश्री, तथा चन्द्रश्रीका पुत्र पुछोमाचि होगा ॥ ४५-४९ ॥ इस प्रकार ये तीस आन्ध्रभृत्य राजागण चार सौ छप्पन वर्ष पृथिवीको भोगेंगे॥ ५०॥ इनके पीछे सात आमीर और दश गर्दमिल राजा होंगे ॥ ५१ ॥ फिर सोल्ह शक राजा होंगे ॥ ५२ ॥ उनके पीछे आठ यवन, चौदह तुर्क, तेरह मुण्ड (गुरुण्ड) और ग्यारह मौनजातीय राजालोग एक हजार नब्बे वर्ष पृथिवीका शासन करेंगे ॥ ५३ ॥

इनमेंसे भी ग्यारह मौन राजा पृथिवीको तीन सौ वर्ष-तक भोगेंगे ॥ ५४ ॥ इनके उच्छित्र होनेपर कैंकिल नामक यवनजातीय अभिषेकरहित राजा होंगे ॥५५॥ उनका वंशधर विन्ध्यशक्ति होगा । विन्ध्यशक्तिका पुत्र पुरञ्जय होगा । पुरञ्जयका रामचन्द्र, रामचन्द्रका धर्मवर्मा, धर्मवर्माका वंग, वंगका नन्दन तथा नन्दनका पुत्र सुनन्दी होगा । सुनन्दीके नन्दियशा, शुक्र और

वर्षशतं पद्वर्षाणि भूपतयो भविष्यन्ति ॥ ५६ ॥ ततस्तत्पुत्रास्त्रयोदशैते वाह्निकाश्च त्रयः ॥ ५७ ॥ ततः पुष्पमित्राः पद्धमित्रास्त्रयोदशैकलाश्च सप्तान्ध्राः ॥ ५८ ॥ ततश्च कोशलायां तु नव चैव भूपतयो भविष्यन्ति ॥ ५९ ॥ नैप्रधास्तु त एव ॥ ६० ॥

मगधायां तु विश्वस्फिटिकसंज्ञोऽन्यान्वर्णान्करिष्यति ॥ ६१ ॥ कैवर्त्तवदुपुलिन्दब्राह्मणात्राज्ये
स्थापयिष्यति ॥ ६२ ॥ उत्साद्याखिलक्षत्रजातिं
नव नागाः पद्मावत्यां नाम पुर्यामनुगङ्गाप्रयागं
गयायाश्च मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति ॥६३॥ कोशलान्ध्रपुण्ड्रताम्रलिप्तसम्रद्भतटपुरीं च देवरिक्षतो
रिक्षता ॥ ६४ ॥ कलिङ्गमाहिषमहेन्द्रभौमान् गुहा
भोक्ष्यन्ति ॥६५ ॥ नैषधनैमिषककालकोशकाञ्चनपदान्मणिधान्यकवंशा भोक्ष्यन्ति ॥६६ ॥
त्रैराज्यम्रपिकजनपदान्कनकाह्वयो भोक्ष्यति॥६७॥
सौराष्ट्रावन्तिश्चद्राभीराज्ञमदामरुभूविषयांश्च व्रात्यदिजाभीरश्चद्राद्या भोक्ष्यन्ति ॥६८ ॥ सिन्धुतटदाविकोर्वीचन्द्रभागाकाश्मीरविषयांश्च व्रात्यक्लेच्छश्चद्राद्यो भोक्ष्यन्ति ॥६९ ॥

एते च तुल्यकालाससर्वे पृथिव्यां भूभुजो भविष्यन्ति ।।७०॥ अल्पप्रसादा बृहत्कोपास्सर्व-कालमनृताधर्मरुचयः स्त्रीबालगोवधकर्तारः पर-स्वादानरुचयोऽल्पसारास्त्रमिस्रप्राया उदितास्त-मितप्राया अल्पायुषो महेच्छा द्यल्पधर्मा छुन्धाश्च मविष्यन्ति ।।७१॥ तैश्च विमिश्रा जनपदास्तच्छी-लाजुवर्तिनो राजाश्रयशुष्मिणो म्लेच्छाश्चार्याश्च विपर्ययेण वर्त्तमानाः प्रजाः श्वपयिष्यन्ति ।।७२॥

प्रवीर ये तीन माई होंगे। ये सब एक सौ छः वर्ष राज्य करेंगे॥ ५६॥ इसके पीछे तेरह इनके वंशके और तीन बाह्विक राजा होंगे.॥५०॥ उनके बाद तेरह पुष्पित्र और पटुमित्र आदि तथा सात आन्ध्र माण्डलिक भूपितगण होंगे॥ ५८॥ तथा नौ राजा क्रमशः कोशल्देशमें राज्य करेंगे॥ ५९॥ निपधदेशके स्वामी भी ये ही होंगे॥ ६०॥

मगधदेशमें विस्वरफटिकनामक राजा अन्य वर्णीको प्रवृत्त करेगा ॥ ६१ ॥ वह कैवर्त्त, वटु, पुलिन्द और ब्राह्मणोंको राज्यमें नियुक्त करेगा ॥ ६२ ॥ सम्पूर्ण क्षत्रिय-जातिको उच्छिन कर पद्मावतीपरीमें नागगण तथा गंगाके निकटवर्ती प्रयाग और गयामें मागध और गुप्त राजालोग राज्य मोग करेंगे ॥ ६३ ॥ कोशल. आन्ध्र, पुण्डू, ताम्रलिस और समुद्रतटवर्तिनी पुरीकी देवरक्षितनामक एक राजा रक्षा करेगा ॥६४॥ कलिङ्ग, माहिष, महेन्द्र और भौम आदि देशोंको गुह नरेश भोगेंगे ॥ ६५ ॥ नैषय, नैमिषक और कालकोशक आदि जनपदोंको मणि-धान्यक-वंशीय राजा भोगेंगे ॥ ६६ ॥ त्रैराज्य और मुषिक देशोंपर कनकनामक राजाका राज्य होगा ॥ ६७ ॥ सौराष्ट्र, अवन्ति, शृद्र, आभीर तथा नर्मदा-तटवर्ती मरुभूमिपर ब्रात्य द्विज, आभीर और शृद्ध आदिका आधिपत्य होगा ॥ ६८॥ समुद्रतट, दाविकोवीं, चन्द्रभागा और काश्मीर आदि देशोंका ब्रात्य, म्लेच्छ और शृद्ध आदि राजागण भोग करेंगे॥६९॥

ये सम्पूर्ण राजालोग पृथिवीमें एक ही समयमें होंगे ॥ ७० ॥ ये थोड़ी प्रसन्नतावाले, अत्यन्त कोधी, सर्वदा अधर्म और मिध्या मापणमें रुचि रखनेवाले, खी-वालक और गौओंकी हत्या करनेवाले, पर-धन-हरणमें रुचि रखनेवाले, अल्पशक्ति तमःप्रधान उत्यानके साय ही पतनशील, अल्पायु, महती कामनावाले, अल्पपुण्य और अत्यन्त लोमी होंगे ॥ ७१ ॥ ये सम्पूर्ण देशोंको परस्पर मिला देंगे तथा उन राजाओंके आश्रयसे ही बल्बान् और उन्हींके स्वभावका अनुकरण करनेवाले म्लेच्छ तथा आर्यविपरीत आचरण करते हुए सारी प्रजाको नष्ट-स्रष्ट कर देंगे ॥ ७२ ॥

ततश्रानुदिनमल्पाल्पह्वासच्यवच्छेदाद्धर्मार्थ-योर्जगतस्सङ्ख्यो भविष्यति ॥ ७३॥ ततश्रार्थ एवाभिजनहेतुः ॥ ७४॥ बलमेवाशेषधर्महेतुः ॥ ७५ ॥ अभिरुचिरेव दाम्पत्यसम्बन्धहेतुः ॥ ७६ ॥ स्नीत्वमेवोपभोगहेतुः ॥ ७७ ॥ अनृत-मेव व्यवहारजयहेतुः ॥ ७८॥ उन्नताम्बुतैव पृथिवीहेतुः ॥ ७९॥ ब्रह्मसूत्रमेव विप्रत्वहेतुः ॥ ८० ॥ रत्नधातुतैव श्लाघ्यताहेतुः ॥ ८१ ॥ लिङ्गधारणमेवाश्रमहेतुः ॥ ८२ ॥ अन्याय एव - वृत्तिहेतुः ॥ ८३ ॥ दौर्बल्यमेवावृत्तिहेतुः ॥ ८४॥ अभ्यप्रगल्भोचारणमेव पाण्डित्यहेतुः ॥ ८५ ॥ अनाढ्यतेव साधुत्वहेतुः ॥ ८६ ॥ स्नानमेव प्रसाधनहेतुः ॥ ८७ ॥ दानमेव धर्महेतुः ॥८८॥ स्वीकरणमेव विवाहहेतुः ॥ ८९ ॥ सद्वेषधार्येव पात्रम् ॥९०॥ दूरायतनोदकमेव तीर्थहेतुः॥९१॥ कपटवेषधारणमेव महत्त्वहेतुः ॥ ९२ ॥ इत्येवम-नेकदोषोत्तरे तु भूमण्डले सर्ववर्णेष्वेव यो यो बलवान्स स भूपतिर्भविष्यति ॥ ९३ ॥

एवं चातिलुब्धकराजासहाइशैलानामन्तर-द्रोणीः प्रजास्संश्रयिष्यन्ति ॥ ९४ ॥ मधुशाक-मूलफलपत्रपुष्पाद्याहाराश्र भविष्यन्ति ॥ ९५ ॥ तरुवल्कलपर्णचीरप्रावरणाश्रातिबहुप्रजाइशीतवा-तातपवर्षसहाश्र भविष्यन्ति ॥ ९६ ॥ न च कश्रित्त्रयोविंशतिवर्षाणि जीविष्यति अनवरतं चात्र कलियुगे क्षयमायात्यिलल एवेष जनः

तब दिन-दिन धर्म और अर्थका थोड़ा-थोड़ा हास तथा क्षय होनेके कारण संसारका क्षय हो जायगा ॥ ७३॥ उस समय अर्थ ही कुलीनताका हेतु होगाः बल ही सम्पूर्ण धर्मका हेतु होगा; पारस्परिक रुचि ही दाम्पत्य-सम्बन्धकी हेतु होगी, स्नीत्व ही उपमोगका हेतु होगा [अर्थात् स्त्रीकी जाति-कुछ आदिका विचार न होगा]; मिथ्या भाषण ही व्यवहारमें सफलता प्राप्त करनेका हेतु होगा; जलकी सुलमता और सुगमता ही पृथिवीकी खीकृतिका हेतु होगा [अर्थात् पुण्यक्षेत्रादि-का कोई विचार न होगा। जहाँकी जलवायु उत्तम होगी वहीं भूमि उत्तम मानी जायगी]; यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणत्वका हेतु होगा; रत्नादि धारण करना ही प्रशंसाका हेतु होगा; वाह्य चिह्न ही आश्रमोंके हेतु होंगे; अन्याय ही आजीविकाका हेतु होगा; दुर्बलता ही वेकारीका हेतु होगा; निर्भयतापूर्वक धृष्टताके साथ बोलना ही पाण्डित्यका हेतु होगा, निर्धनता ही साधुल-का हेतु होगी; स्नान ही साधनका हेतु होगा; दान ही धर्मका हेतु होगा; स्वीकार कर छेना ही विवाहका हेतु होगा [अर्थात् संस्कार आदिकी अपेक्षा न कर पारस्परिक स्नेहबन्धनसे ही दाम्पत्य-सम्बन्ध स्थापित हो जायगा]; भली प्रकार वन-ठनकर रहनेवाला ही सुपात्र समझा जायगा; दूरदेशका जल ही तीर्थी-दकत्वका हेतु होगा तथा छत्रवेश धारण ही गौरवका कारण होगा ॥ ७४-९२ ॥ इस प्रकार पृथिवीमण्डलमें विविध दोषोंके फैल जानेसे सभी वर्णोंमें जो-जो वलवान् होगा वही-वही राजा बन बैठेगा ॥९३॥

इस प्रकार अतिलोलुप राजाओं के कर-भारको सहन न कर सकने के कारण प्रजा पर्वत-कन्दराओं का आश्रय लेगी तथा मधु, शाक, मूल, फल, पत्र और पुष्प आदि खाकर दिन काटेगी ॥ ९४-९५॥ वृक्षों के पत्र और बल्कल ही उनके पहनने तथा ओढ़ने के कपड़े होंगे। अधिक सन्तानें होंगी। सब लोग शीत, बायु, घाम और वर्षा आदिके कष्ट सहेंगे॥ ९६॥ कोई भी तेईस वर्षतक जीवित न रह सकेगा। इस प्रकार किल्युगमें यह सम्पूर्ण जनसमुदाय निरन्तर

।। ९७ ।। श्रौते सार्चे च धर्मे विष्ठवमत्यन्तप्रुपगते क्षीणप्राये चं कलावशेषजगत्स्रष्ट्रश्वराचरगुरोरा-दिमध्यान्तरहितस्य ब्रह्ममयस्यात्मरूपिणो भग-वतो वासुदेवस्यांशक्शम्वलग्रामप्रधानब्राह्मणस्य विष्णुयश्वसो गृहेऽष्टगुणद्विंसमन्त्रितः कल्किरूपी जगत्यत्रावतीर्ये सकलम्लेच्छद्स्युदुष्टाचरणचेत-सामशेपाणामपरिच्छित्रशक्तिमाहात्म्यः करिष्यति स्वधर्मेषु चाखिलमेव संस्थापयिष्यति ॥९८॥ अनन्तरं चाशेपकलेखसाने निशावसाने विद्युद्धानामिव तेपामेव जनपदानाममलस्फटिक-विश्रद्धा मतयो भविष्यन्ति ॥ ९९ ॥ तेपां च वीजभूतानामशेषमनुष्याणां परिणतानामपि तत्कालकृतापत्यप्रस्तिभविष्यति ॥१००॥ तानि तदपत्यानि कृतयुगानुसारीण्येव भवि-ष्यन्ति ॥ १०१ ॥

अत्रोच्यते

यदा चन्द्रश्च सर्यश्च तथा तिष्यो बृहस्पतिः । एकराशौ समेष्यन्ति तदा भवति वै कृतम् ॥१०२॥

अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये। एते वंशेषु भूपालाः कथिता मुनिसत्तम ॥१०३॥

यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।

एतद्वर्षसहस्रं तु न्नेयं पश्चाशदुत्तरम्।।१०४।।

सप्तर्पाणां तु यौ पूर्वी दृश्येते ह्यदितौ दिवि ।

तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्येते यत्समं निश्चि ।।१०५॥

तेन सप्तर्पयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम्।

तेतु पारीक्षिते काले मघाखासन्द्रिजोत्तम।।१०६॥

तदा प्रवृत्तश्च कलिद्वीदशाब्दशतात्मकः ।।१०७॥

यदैव भगवान्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज ।

वसुदेवकुलोद्भृतस्तदैवात्रागतः कलिः ।।१०८॥

क्षीण होता रहेगा ॥९७॥ इस प्रकार श्रोत और स्मार्त-धर्मका अत्यन्त हास हो जाने तथा कल्यिगके प्रायः बीत जानेपर शम्बल (सम्भल) ग्रामनिवासी ब्राह्मणश्रेष्ट विष्णुयशाके घर सम्पूर्ण संसारके रचयिता, चराचर गुरू, आदिमध्यान्तरान्य, ब्रह्ममय, आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेव अपने अंशसे अष्टैश्वर्ययुक्त कल्किरूपसे संसारमें अवतार लेकर असीम शक्ति और माहात्म्यसे सम्पन्न हो सकल म्लेच्छ, दस्यु, दुष्टाचारी तथा दुष्ट चित्तोंका क्षय करेंगे और समस्त प्रजाको अपने-अपने धर्ममें नियुक्त करेंगे ॥ ९८ ॥ इसके पश्चात् समस्त कलियुगके समाप्त हो जानेपर रात्रिके अन्तमें जागे हुओंके समान तत्कालीन लोगोंकी बुद्धि स्वच्छ, स्फटिकमणिके समान निर्मल हो जायगी॥ ९९॥ उन बीजभूत समस्त मनुष्यों-से उनकी अधिक अवस्था होनेपर मी उस समय सन्तान उत्पन्न हो सकेगी॥ १००॥ उनकी वे सन्तानें सत्ययुगके ही धर्मोंका अनुसरण करनेवाली होंगी ॥१०१॥

इस विषयमें ऐसा कहा जाता है कि जिस समय चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति पुष्यनक्षत्रमें स्थित होकर एक राशिपर एक साथ आवेंगे उसी समय सत्ययुगका आरम्म हो जायगा ॥१०२॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! तुमसे मैंने यह समस्त वंशोंके भूत, मविष्यत् और वर्तमान सम्पूर्ण राजाओंका वर्णन कर दिया ॥१०३॥

परीक्षित्के जन्मसे नन्दके अभिषेकतक एक हजार पचास वर्षका समय जानना चाहिये॥१०४॥ सप्तिर्धियोंमें से जो [पुछस्त्य और ऋतु] दो नक्षत्र आकाशमें पहछे दिखायी देते हैं, उनके बीचमें रात्रिके समय जो [दक्षिणोत्तर रेखापर] समदेशमें स्थित [अश्विनी आदि] नक्षत्र हैं, उनमेंसे प्रत्येक नक्षत्रपर सप्तिर्धिगण एक-एक सौ वर्ष रहते हैं। हे द्विजोत्तम! परीक्षित्के समयमं वे सप्तिर्धिगण मघानक्षत्रपर थे। उसी समय वारह सौ वर्ष प्रमाणवाछा कछिगुग आरम्भ हुआ था॥१०५—१००॥ हे द्विज! जिस समय भगवान् विष्णुके अंशावतार भगवान् वासुदेव निजधामको पधारे थे उसी समय प्रिवीपर कछिगुगका आगमन हुआ था॥१०८॥

अ बद्यपि प्रति बारइवें वर्ष जब बृहस्पित कर्कराशिपर जाते हैं तो अमावास्यातिथिको पुष्यनक्षत्रपर इन तीनों प्रहोंका योग होता है, तथापि 'समेक्यन्ति' पदसे एक साथ आनेपर सत्ययुगका आरम्भ कहा है; इसिख्ये उक्त समयपर अतिक्यासिदोप नहीं हैं । यावत्स पादपद्माभ्यां पस्पर्शेमां वसुन्धराम्। तावतपृथ्वीपरिष्वङ्गे समर्थी नाभवत्किः।।१०९।।

गते सनातनस्यांशे विष्णोस्तत्र भुवो दिवम्। तत्याज सानुजो राज्यं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।।११०।। विपरीतानि दृष्ट्रा च निमित्तानि हि पाण्डवः। याते कृष्णे चकाराथ सोऽभिषेकं परीक्षितः ।१११। प्रयास्यन्ति यदा चैते पूर्वाषाढां महर्षयः । तदा नन्दात्प्रभृत्येष गतिवृद्धिं गमिष्यति ॥११२॥ यसिन् कृष्णो दिवं यातस्तसिन्नेव तदाहनि । प्रतिपन्नं कलियुगं तस्य संख्यां निबोध मे ॥११३॥ त्रीणि लक्षाणि वर्षाणां द्विज मानुष्यसंख्यया । षष्टिश्चेव सहस्राणि भविष्यत्येप वै कलिः ॥११४॥ शतानि तानि दिच्यानां सप्त पश्च च संख्यया। निक्शेषेण गते तसिन् मनिष्यति पुनः कृतस्।११५। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्युद्राश्च द्विजसत्तम्। युगे युगे महात्मानः समतीतास्सहस्रशः ॥११६॥ बहुत्वानामधेयानां परिसंख्या कले कले। पौनरुक्त्याद्धि साम्याच न मया परिकीर्त्तिता।११७।

देवापिः पौरवो राजा पुरुश्रेक्ष्वाकुवंशजः । कलापग्रामसंश्रितौ ॥११८॥ महायोगवलोपेतौ कृते युगे त्विहागम्य क्षत्रप्रवर्तकौ हि तौ। भविष्यतो मनोर्वशवीजभूतौ व्यवस्थितौ ॥११९॥ एतेन ऋमयोगेन मनुपुत्रैर्वसुन्धरा। कृतत्रेताद्वापराणि युगानि त्रीणि शुज्यते ॥१२०॥ कलो ते बीजभूता वै केचित्तिष्ठन्ति वे मुने। यथैव देवापिपुरू साम्प्रतं समिष्ठितौ ॥१२१॥ एप तुद्देशतो वंशस्तवोक्तो भूधजां मया।

जबतक भगवान् अपने चरणकमलोंसे इस पृथिवी-का स्पर्श करते रहे तबतक पृथिवीसे संसर्ग करनेकी कलियुगकी हिम्मत न पड़ी ॥१०९॥

सनातन पुरुष भगवान् विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णचन्द्रके स्वर्गछोक पधारनेपर भाइयोंके सहित धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरने अपने राज्यको छोड दिया ।।११०।। कृष्णचन्द्रके अन्तर्धान हो जानेपर विपरीत लक्षणोंको देखकर पाण्डवोंने परीक्षितको राज्यपदपर अमिषिक्त कर दिया ।।१११॥ जिस समय ये सप्तर्षिगण पूर्वाषाढानक्षत्रपर जायँगे उसी समय राजा नन्दके समयसे कलियुगका प्रभाव बढ़ेगा ।।११२॥ जिस दिन भगवान् कृष्णचन्द्र परम-धामको गये थे उसी दिन कलियुग उपस्थित हो गया था। अत्र तुम कल्यिगकी वर्ष-संख्या सुनो—॥११३॥

हे द्विज ! मानवी वर्षगणनाके अनुसार कल्रियुग तीन लाख साठ हजार वर्ष रहेगा ॥११४॥ इसके पश्चात् बारह सौ दिव्य वर्षपर्यन्त कृतयुगरहेगा ॥११५॥ हें द्विजश्रेष्ठ ! प्रत्येक युगमें हजारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शृद्ध महात्मागण हो गये हैं।।११६॥ उनके बहुत अधिक संख्यामें होनेसे तथा समानता होनेके कारण कुळोंमें पुनरुक्ति हो जानेके भयसे मैंने उन सबके नाम नहीं बतलाये हैं ॥११७॥

पुरुवंशीय राजा देवापि तथा इक्ष्वाकुलुलोत्पन राजा पुरु-ये दोनों अत्यन्त योगवलसम्पन्न हैं और कळापग्राममें रहते हैं ।।११८॥ सत्ययुगका आरम्म होनेपर ये पुनः मर्त्यछोकमें आकर क्षत्रिय-कुलके प्रवर्त्तक होंगे। वे आगामी मनुवंशके बीजरूप हैं ॥११९॥ सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इन तीनों युगोंमें इसी क्रमसे मनुपुत्र पृथिवीका भोग करते हैं ॥१२०॥ फिर कल्यिगमें उन्हींमेंसे कोई-कोई आगामी मनुसन्तानके बीजरूपसे स्थित रहते हैं जिस प्रकार कि आजकर देवापि और पुरु हैं ॥१२१॥

इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण राजवंशोंका यह

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

निखिलो गदितुं शक्यो नैप वर्षशतैरिप ॥१२२॥

एते चान्ये च भूपाला यैरत्र क्षितिमण्डले ।

कृतं ममत्वं मोहान्धेनित्यं हेयकलेवरे ॥१२३॥
कथं ममेयमचला मत्पुत्रस्य कथं मही ।

मद्वंशस्येति चिन्तार्चा जग्मुरन्तिममे नृपाः॥१२४॥
तेम्यः पूर्वतराश्चान्ये तेम्यस्तेम्यस्तथा परे ।

भविष्याश्चेव यास्यन्ति तेषामन्ये च येडप्यतु ।१२५॥

विलोक्यात्मजयोद्योगं यात्राच्यम्राक्तराधिपान् ।

पुष्पप्रहासैद्रशरि हसन्तीव वसुन्धरा ॥१२६॥

हस्तिच्याः

मैत्रेय पृथिवीगीताञ्चलोकांश्चात्र निवोध मे ।

यानाह धर्मध्विजने जनकायासितो मुनिः॥१२७॥

पृथिव्युवाच

कथमेष नरेन्द्राणां मोहो बुद्धिमतामि ।
येन फेनसधर्माणोऽप्यतिविश्वस्तचेतसः ॥१२८॥
पूर्वमात्मजयं कृत्वा जेतुमिच्छन्ति मन्त्रिणः ।
ततो भृत्यांश्र पौरांश्र जिगीपन्ते तथा रिप्त्।१२९॥
कमेणानेन जेष्यामो वयं पृथ्वीं ससागराम् ।
इत्यासक्तिधयो मृत्युं न पश्यन्त्यविद्रगम्॥१३०॥
सम्रद्रावरणं याति भूमण्डलमथो वश्रम् ।
कियदात्मजयस्यतन्म्रक्तिरात्मजये फलम् ॥१३१॥
उत्सृज्य पूर्वजा याता यां नादाय गतः पिता ।
तां मामतीवमृद्धत्वाजेतुमिच्छन्ति पार्थिवाः।१३२।
मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः ।
जायतेऽत्यन्तमोहेन ममत्वाद्धतचेतसाम् ॥१३३॥

सौ वर्षमें भी नहीं किया जा सकता ॥१२२॥ इस
हेय शरीरके मोहसे अन्धे हुए ये तथा और भी ऐसे
अनेक भूपतिगण हो गये हैं जिन्होंने इस पृथिवीमण्डलको अपना-अपना माना है ॥१२३॥ 'यह पृथिवी किस
प्रकार अचलमावसे मेरी, मेरे पुत्रकी अथवा मेरे
वंशकी होगी ?' इसी चिन्तामें व्याकुल हुए इन
सभी राजाओंका अन्त हो गया ॥१२४॥ इसी चिन्तामें
इवे रहकर इन सम्पूर्ण राजाओंके पूर्व-पूर्वतरवर्ती राजालोग चले गये और इसीमें मग्न रहकर आगामी भूपतिगण भी मृत्यु-मुखमें चले जायँगे ॥१२५॥ इस
प्रकार अपनेको जीतनेके लिये राजाओंको अथक अपनानि
उद्योग करते देखकर वसुन्धरा शरकालीन पृथ्पोंके

हे मैत्रेय ! अत्र तुम पृथिवीके कहे हुए कुछ इलोकोंको सुनो । पूर्वकालमें इन्हें असित मुनिने धर्मध्वजी राजा जनकको सुनाया था ॥१२७॥

पृथिची कहती है-अहो ! बुद्धिमान् होते हुए भी इन राजाओंको यह कैसा मोह हो रहा है जिसके कारण ये वुळवुळेके समान क्षणस्थायी होते हुए भी अपनी स्थिरतामें इतना विश्वास रखते हैं ॥ १२८॥ ये छोग प्रथम अपनेको जीतते हैं और फिर अपने मन्त्रियोंको तथा इसके अनन्तर ये क्रमशः के अन्त अपने भृत्य, पुरवासी एवं शत्रुओंको जीतना चाहते हैं ॥ १२९॥ 'इसी क्रमसे हम समुद्रपर्यन्त इस सम्पूर्ण प्रथिवीको जीत लेंगे' ऐसी बुद्धिसे मोहित हुए ये लोग अपनी निकटवर्तिनी मृत्युको नहीं देखते॥ १३०॥ यदि समुद्रसे विरा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल अपने वशमें हो ही जाय तो भी मनोजयकी अपेक्षा इसका मृल्य ही क्या है ? क्योंकि मोक्ष तो मनोजयसे ही प्राप्त होता है ॥१३१॥ जिसे छोड़कर इनके पूर्वज चले गये तथा जिसे अपने साथ छेकर इनके पिता भी नहीं गये उसी मुझको अत्यन्त मूर्खताके कारण ये राजाछोग जीतना चाहते हैं ॥ १३२ ॥ जिनका चित्त ममतामय है उन पिता-पुत्र और भाइयोंमें अत्यन्त मोहके कारण मेरे ही छिये परस्पर कल्ह होता है ॥ १३३ ॥ जो-जो राजालोग

/ पृथ्वी ममेयं सकला ममेषा मदन्वयस्यापि च शाश्वतीयम्। यो यो मृतो ह्यत्र वभूव राजा कुबुद्धिरासीदिति तस्य तस्य ॥१३४॥ ममत्वादतचित्तमेकं द्या विहाय मां मृत्युवशं व्रजन्तम् । तस्यानु यस्तस्य कथं ममत्वं हृद्यास्पदं मत्प्रभवं करोति ॥१३५॥ पृथ्वी परित्यजैनां ममैषाशु वद्नित ये दृत्रभुखैस्ख्रात्रून्। ममातिहासः नराधिपास्तेषु पुनश्च मृहेषु दयाभ्युपति ॥१३६॥ श्रीपराशर उवाच

इत्येते घरणीगीताक्श्लोका मैत्रेय यैक्श्रुताः। ममत्वं विलयं याति तपत्यकें यथा हिमस् ।।१३७।। इत्येष कथितः सम्यञ्जनोर्वेशो मया तव । यत्र स्थितिप्रवृत्तस्य विष्णोरंशांशका नृपाः।।१३८।। शृणोति य इमं भक्त्या मनोर्वशमजुक्रमात्। तस्य पापमशेषं वै प्रणक्यत्यमलात्मनः ॥१३९॥ धनधान्यर्द्धिमतुलां प्रामोत्यव्याहतेन्द्रियः। श्रुत्वैवमिखलं वंशं प्रशस्तं शशिस्र्ययोः ॥१४०॥ इक्ष्वाकुजह्नमान्धात्सगराविक्षितात्रघृन् । ययातिनहुषाद्यांश्च ज्ञात्वा निष्ठामुपागतान्।।१४१।। महाबलान्महावीर्याननन्तधनसञ्चयान् कुतान्कालेन वलिना कथाशेपान्रराधिपान्।।१४२।। श्रुत्वा न प्रत्रदारादौ गृहक्षेत्रादिके तथा । द्रव्यादौ वा कृतप्रज्ञो ममत्वं कुरुते नरः ॥१४३॥ तसं तपो यै: पुरुषप्रवीरै-

रुद्धाहुभिर्वर्षगणाननेकान्। सुयज्ञैर्बलिनोऽतिवीर्याः

इष्ट्रा

कृता नु कालेन कथावशेषाः ॥१४४॥

पृथुस्समस्तान्विचचार लोका-नव्याहतो यो विजितारिचकः।

यहाँ हो चुके हैं उन समीकी ऐसी कुवुद्धि रही है कि यह सम्पूर्ण पृथिवी मेरी ही है और मेरे पीछे यह सदा मेरी सन्तानकी ही रहेगी ॥ १३४॥ इस प्रकार मेरेमें ममता करनेवाछे एक राजाको, सुझे छोड़कर मृत्युके मुखमें जाते हुए देखकर भी न जाने कैसे उसका उत्तराधिकारी अपने हृदयमें मेरे लिये ममताको स्थान देता है ! ॥ १३५ ॥ जो राजालोग दूतोंके द्वारा अपने शत्रुओंसे इस प्रकार कहलाते हैं कि 'यह पृथिवी मेरी है तुमलोग इसे तुरन्त छोड़कर चले जाओ' उनपर मुझे बड़ी हँसी आती है और फिर उन मूढोंपर मुझे दया भी आ जाती है ॥१३६॥

श्रीपराशरजी बोली-हे मैत्रेय ! पृथिवीके कहे हुए इन श्लोकोंको जो पुरुष सुनेगा उसकी ममता इसी प्रकार छीन हो जायगी जैसे सूर्यके तपते समय बर्फ पिघल जाता है॥ १३७॥ इस प्रकार मैंने तुमसे भली प्रकार मनुके वंशका वर्णन कर दिया जिस वंशके राजागण स्थितिकारक भगवान् विष्णुके अंश-के-अंश थे ॥ १३८ ॥ जो पुरुष इस मनुवंशका क्रमशः श्रवण करता है उस शुद्धात्माके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१३९॥ जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर सूर्य और चन्द्रमाके इन प्रशंसनीय वंशोंका सम्पूर्ण वर्णन सुनृता है, वह अतुलित धन-धान्य और सम्पत्ति प्राप्त करता है ॥१४०॥ महाबख्वान्, महावीर्यशाली, अनन्त धन सन्नय करनेवाछे तथा परम निष्ठावान् इक्ष्वाकु, जहू, मान्धाता, सगर, अविक्षित, रघुवंशीय राजागण तथा नहुष और ययाति आदिके चरित्रोंको सुनकर, जिन्हें कि कालने आज क्यामात्र ही शेष रखा है, प्रज्ञावान् मनुष्य पुत्र, स्त्री, गृह, क्षेत्र और धन आदिमें ममता न करेगा ॥१४१-१४३॥

जिन पुरुषश्रेष्ठोंने ऊर्घ्यबाहु होकर अनेक वर्ष-पर्यन्त कठिन तपस्या की थी तथा विविध प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था, आज उन अति बल्वान् और वीर्यशाली राजाओंकी कालने केवल कथामात्र ही छोड़ दी है ॥१४४॥ जो पृथु अपने शत्रुसमूह-जीतकर खच्छन्द-गतिसे समस्त विचरता था आज वही काल-वायुक्ती प्रेरणासे अग्निमें

कालवाताभिहतः स प्रणष्टः क्षिप्तं यथा शाल्मलित्लमग्रौ ॥१४५॥ यः कार्तवीयों बुभ्रजे समस्ता-न्द्वीपान्समाक्रम्य हतारिचकः। कथाप्रसङ्गेष्वभिधीयमान-स्स एव सङ्कल्पविकल्पहेतुः ॥१४६॥ दशाननाविक्षितराघवाणा-मैश्वर्यमुद्धासितदिङ्मुखानाम् । भसापि शिष्टं न कथं क्षणेन भ्रमङ्गपातेन धिगन्तकस्य ॥१४७॥ कथाशरीरत्वमवाप यद्वै मान्धातृनामा भ्रुवि चऋवतीं। श्रुत्वापि तत्को हि करोति साधु-र्ममत्वमात्मन्यपि मन्दचेताः ॥१४८॥ भगीरथाद्यास्सगरः ककुत्स्थो दशाननो राघवलक्ष्मणौ च। युधिष्ठिराद्याश्र वभृबुरेते सत्यं न मिथ्या क नु ते न विद्यः॥ १४९॥

ये साम्प्रतं ये च नृपा भविष्याः
प्रोक्ता मया विश्रवरोग्रवीर्याः ।
एते तथान्ये च तथाभिधेयाः
सर्वे भविष्यन्ति यथैव पूर्वे ॥१५०॥
एतद्विदित्वा न नरेण कार्ये
ममत्वमात्मन्यपि पण्डितेन ।
तिष्ठन्तु तावत्तनयात्मजाद्याः
क्षेत्रादयो ये च शरीरिणोऽन्ये ॥१५१॥
करनी चाहिये ॥१५१॥

र्फेंके हुए सेमरकी रूईके ढेरके समान नष्ट-भ्रष्ट हो गया है ॥ १४५ ॥ जो कार्तवीर्य अपने रात्र-मण्डलका संहारकर समस्त द्वीपोंको वशीभृतकर उन्हें भोगता था वही आज क्या-प्रसंगसे वर्णन करते समय उलटा संकल्प-विकल्पका हेतु होता है । अर्थात उसका वर्णन करते समय यह सन्देह होता है कि वास्तवमें वह हुआ था या नहीं ।] ॥१४६॥ समस्त दिशाओंको देदीप्यमान करनेवाले रावण, अविक्षित और रामचन्द्र आदिके [क्षणभङ्गर] ऐश्वर्यको धिकार है। अन्यया कालके क्षणिक कटाक्षपातके कारण आज उसका भस्ममात्र भी क्यों नहीं वच सका ! ॥१४७॥ जो मान्याता सम्पूर्ण भूमण्डलका चक्रवर्ती सम्राट था आज उसका केवल कथामें ही पता चलता है। ऐसा कौन मन्दवृद्धि होगा जो यह सुनकर अपने शरीरमें भी ममता करेगा ? [फिर पृथिवी आदिमें ममता करनेकी तो बात ही क्या है ?] ॥१४८॥ मगीरथ, सगर, ककुत्स्थ, रावण, रामचन्द्र, लक्ष्मण और युधिष्ठिर आदि पहले हो गये हैं यह बात सर्वथा सत्य है, किसी प्रकार भी मिथ्या नहीं है; किन्तु अब वे कहाँ हैं इसका हमें पता नहीं ॥१४९॥

हे विप्रवर ! वर्तमान और भविष्यत्काळीन जिन-जिन महावीर्यशाळी राजाओंका मैंने वर्णन किया है ये तथा अन्य छोग भी पूर्वोक्त राजाओंकी भाँति कथा-मात्र शेष रहेंगे ॥१५०॥ ऐसा जानकर पुत्र, पुत्री और क्षेत्र आदि तथा अन्य प्राणी तो अलग रहें, बुद्धिमान् मनुष्यको अपने शरीरमें भी ममता नहीं करनी चाहिये॥१५१॥

इति श्रीविष्णुपुराणे चतुर्येऽशे चतुर्विशोऽध्यायः॥ २४॥

◆◆€≫◆

इति श्रीपराशरम्धनिविरचिते श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायके श्रीमित विष्णुमहापुराणे चतुर्थोंऽश्वः समाप्तः ।

-





श्रीविष्णुपुराण



पडचम अंश



कालातीतं कालकरालं करुणाद्रं कालाकाल्यं केल्किकलाढ्यं कमनीयम् । कामाधारं कामकुठारं कमलाक्षं वन्दे विष्णुं कामविलासं कमलेशम् ॥



त्रज-नव-युवराज

श्रीमन्नारायणाय नमः

श्रीविष्णुपुराण

प्रचम अंश

पहला अध्याय

वसुदेव-देवकीका विवाह, भारपीडिता पृथिवीका देवताओंके सहित श्रीरसमुद्रपर जाना और भगवान्-का प्रकट होकर उसे धेर्य वैधाना, कृष्णावतारका उपक्रम ।

. श्रीमैत्रेय उवाच

नृपाणां कथितस्सर्वो भवता वंशविस्तरः । वंशानुचरितं चैव यथावदनुवर्णितम् ॥ १ ॥ अंशावतारो ब्रह्मर्षे योऽयं यदुकुलोद्भवः । विष्णोस्तं विस्तरेणाद्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ २ ॥ चकार यानि कर्माणि भगवान्पुरुषोत्तमः । अंशांशेनावतीर्योव्यां तत्र तानि मुने वद ॥ ३ ॥

श्रीपराशर उवाच

मैत्रेय श्रूयतामेतद्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।

विष्णोरंशांशसम्भूतिचरितं जगतो हितम् ॥ ४ ॥
देवकस्य सुतां पूर्वं वसुदेवो महासुने ।
उपयेमे महाभागां देवकीं देवतोपमाम् ॥ ५ ॥
कंसस्तयोर्वररथं चोदयामास सारथिः ।
वसुदेवस्य देवक्याः संयोगे मोजनन्दनः ॥ ६ ॥
अथान्तरिक्षे वागुचैः कंसमाभाष्य सादरम् ।
मेघगम्भीरिनिषीं समाभाष्यदमत्रवीत् ॥ ७ ॥
यामेतां वहसे मृद सह मर्त्रा रथे स्थिताम् ।
अस्यास्तवाष्ट्मो गर्भः प्राणानपहरिष्यति ॥ ८ ॥

श्रीमेंत्रेयजी बोले-मगवन् ! आपने राजाओं के सम्पूर्ण वंशोंका विस्तार तथा उनके चरित्रोंका क्रमशः यथावत् वर्णन किया ॥ १॥ अव, हे ब्रह्मर्षे ! यदुकुल्में जो भगवान् विष्णुका अंशावतार हुआ था, उसे में तत्त्वतः और विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ २॥ हे मुने ! मगवान् पुरुषोत्तमने अपने अंशांशसे पृथिवीपर अवतीर्ण होकर जो-जो कर्म किये थे उन सबका आप मुझसे वर्णन कीजिये॥ ३॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय! तुमने मुझसे जो पृछा है वह संसारमें परम मङ्गलकारी मगवान् विष्णुके अंशावतारका चरित्र सुनो ॥ १ ॥ हे महामुने! पूर्वकालमें देवककी महामाग्यशालिनी पुत्री देवीखरूपा देवकीके साथ वसुदेवजीने विवाह किया॥ ५ ॥ वसुदेव और देवकीके वैवाहिक सम्बन्ध होनेके अनन्तर [विदा होते समय] मोजनन्दन कंस सारिय वनकर उन दोनोंका माङ्गलिक रथ हाँकने लगा॥ ६ ॥ उसी समय मेघके समान गम्भीर घोष करती हुई आकाशवाणी कंसको ऊँचे खरसे सम्वोधन करके यों बोली—॥ आ 'अरे मृढ़! पतिके साथ रथपर बैठी हुई जिस देवकीको द लिये जा रहा है इसका आठवाँ गर्म तेरे प्राण हर लेगा"॥ ८ ॥

श्रीपराशर उवाच

इत्याकर्ण्य सम्रत्पाटच खड्जं कंसो महाबलः । देवकीं हन्तुमारब्धो वसुदेवोऽत्रवीदिदम् ॥ ९॥ न हन्तच्या महाभाग देवकी भवतानघ। समर्पयिष्ये सकलान्गर्भानस्योदरोद्भवान् ॥१०॥

श्रीपराशर उवाच

तथेत्याह ततः कंसो वसुदेवं द्विजोत्तम । न घातयामास च तां देवकीं सत्यगौरवात् ।।११।। एतस्मिनेव काले तु भूरिभारावपीडिता। जगाम घरणी मेरौ समाजं त्रिदिवौकसाम् ॥१२॥ सत्रक्षकान्सुरान्सर्वान्प्रणिपत्याथ मेदिनी । कथयामास तत्सर्व खेदात्करुणभाषिणी ॥१३॥

मुमिरुवाच

अग्निस्सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्यः परो गुरुः। ममाप्यखिललोकानां गुरुर्नारायणो गुरुः ॥१४॥ प्रजापतिपतिर्बह्मा पूर्वेषामपि पूर्वजः । कलाकाष्ठानिमेषात्मा कालश्राच्यक्तमूर्त्तिमान्।१५। तदंशभूतस्सर्वेषां समृहो वस्सुरोत्तमाः ॥१६॥ आदित्या मरुतस्साध्या रुद्रा वस्वश्विवह्नयः। पितरो ये च लोकानां स्रष्टारोऽत्रिपुरोगमाः॥१७॥ एते तस्याप्रमेयस्य विष्णो रूपं महात्मनः ॥१८॥ यक्षराक्षसदैतेयपिशाचोरगदानवाः गन्धर्वाप्सरसञ्जैव रूपं विष्णोर्महात्मनः ॥१९॥ ग्रहर्श्वतारकाचित्रगगनाग्रिजलानिलाः अहं च विषयाश्रेव सर्वं विष्णुमयं जगत्।।२०।। तथाप्यनेकरूपस्य तस्य रूपाण्यहर्निशम्। बाध्यवाधकतां यान्ति कछोला इव सागरे।।२१।। तत्साम्प्रतममी दैत्याः कालनेमिपुरोगमाः। मर्त्यलोकं समाक्रम्य बाधन्तेऽहर्निशं प्रजाः॥२२॥ कालनेमिईतो योऽसौ विष्णुना प्रमविष्णुना।

श्रीपराशरजी बोले-यह सुनते ही महावली कंस खड्ग निकालकर देवकीको मारनेके [म्यानसे] लिये उद्यत हुआ । तब वसुदेवजी यों कहने लगे-॥ ९॥ "हे महाभाग ! हे अनघ ! आप देवकीका वध न करें; मैं इसके गर्भसे उत्पन्न हुए सभी वालक आपको सौंप दूँगा"॥ १०॥

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विजोत्तम! तब सत्यके गौरवसे कंसने वसुदेवजीसे 'बहुत अच्छा' कह देवकी-का वध नहीं किया ॥ ११ ॥ इसी समय अत्यन्त भारसे पीडित होकर पृथिवी [गौका रूप धारणकर] सुमेरुपर्वतपर देवताओंके दलमें गयी ॥ १२ ॥ वहाँ उसने ब्रह्माजीके सहित समस्त देवताओंको प्रणामकर खेदपूर्वक करुणखरसे बोळती हुई अपना सारा वृत्तान्त कहा ॥ १३॥

पृथिवी बोली-जिस प्रकार अग्नि सुवर्णका तथा सूर्य गो (किरण) समूहका परमगुरु है उसी प्रकार सम्पूर्ण लोकोंके गुरु श्रीनारायण मेरे गुरु हैं॥ १४॥ वे प्रजापतियोंके पति और पूर्वजोंके पूर्वज ब्रह्माजी हैं तथा वे ही कला-काष्ठा-निमेष-खरूप अव्यक्त मृर्तिमान् काल हैं । हे देवश्रेष्ठगण ! आप सब लोगोंका समूह भी उन्हींका अंशखरूप है ॥ १५-१६॥ आदित्य, मरुद्गण, साध्यगण, रुद्र, वसु, अग्नि, पितृगण और अत्रि आदि प्रजापतिगण-ये सब अप्रमेय महात्मा विष्णुके ही रूप हैं ॥ १७-१८ ॥ यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, सर्प, दानव, गन्धर्व और अप्सरा आदि भी महात्मा विष्णुके ही रूप हैं ॥ १९ ॥ प्रह, नक्षत्र तथा तारागणोंसे चित्रित आकाश, अग्नि, जल, वायु, मैं और इन्द्रियोंके सम्पूर्ण विषय—यह सारा जगत् विष्णुमय ही है ॥ २०॥ तथापि उन अनेकरूपधारी विष्णुके ये रूप समुद्रकी तरङ्गोंके समान रात-दिन एक-दूसरेके बाध्य-बाधक होते रहते हैं ॥ २ं१ ॥

इस समय काल्नेमि आदि दैत्यगण मर्त्यलोकपर अधिकार जमाकर अहर्निश जनताको क्लेशित कर रहे हैं ॥ २२ ॥ जिस कालनेमिको सामर्थ्यवान् विष्णुना प्रभविष्णुना। भगवान् विष्णुने मारा था, इस समय वही उग्रसेनके पुत्र CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

उग्रसेनसुतः कंसस्सम्भूतस्स महासुरः॥२३॥ अरिष्टो घेनुकः केशी प्रलम्बो नरकस्तथा। सुन्दोऽसुरस्तथात्युग्रो वाणश्चापि वलेस्सुतः॥२४॥ तथान्ये च महावीर्या नृपाणां भवनेषु ये। सम्रत्पन्ना दुरात्मानस्तान्न संख्यातुम्रुत्सहे॥२५॥ अक्षौहिण्योऽत्र वहुला दिव्यमुर्तिधरास्सुराः। महावलानां द्यानां दैत्येन्द्राणां ममोपरि॥२६॥ तद्भरिमारपीडार्चा न शकोम्यमरेश्वराः। विभर्त्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि वः॥२०॥ कियतां तन्महाभागा मम भारावतारणम्। यथा रसातलं नाहं गच्छेयमतिविद्धला॥२८॥ इत्याकण्यं धरावाक्यमशेषेस्निद्शेश्वरैः। भ्रवो भारावतारार्थं ब्रह्मा प्राह प्रचोदितः॥२९॥ भ्रवो भारावतारार्थं ब्रह्मा प्राह प्रचोदितः॥२९॥

त्रह्मोवाच

यथाह वसुधा सर्व सत्यमेव दिवाकसः ।
अहं भवो भवन्तश्च सर्वे नारायणात्मकाः ॥३०॥
विभूतयश्च यास्तस्य तासामेव परस्परम् ।
आधिक्यं न्यूनता वाध्यवाधकत्वेन वर्तते ॥३१॥
तदागच्छत गच्छाम क्षीराब्धेस्तटम्रुत्तमम् ।
तत्राराध्य हरिं तस्म सर्वे विज्ञापयाम वै ॥३२॥
सर्वथैव जगत्यथें स सर्वात्मा जगन्मयः ।
सत्त्वांशेनावतीयोंव्यां धर्मस्य क्रुरुते स्थितिम् ॥३३॥

श्रीपराशर उवाच इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र सह देवैः पितामहः। समाहितमनाश्रैवं तुष्टाव गरुडध्वजम्॥३४॥ ब्रह्मोवाच

द्वे विद्ये त्वमनाम्नाय परा चैवापरा तथा। और अपरा—ये दोनों विद्याएँ आप ही हैं। हे नाय! त एव भवतो रूपे मूर्तामूर्तात्मिके प्रभो।।३५॥ व दोनों आपहीके मूर्त और अमूर्त रूप हैं॥ ३५॥

महान् असुर कंसके रूपमें उत्पन्न हुआ है ॥ २३॥ अरिष्ठ, घेनुका, केशी, प्रलम्ब, नरका, सुन्द, बलिका पुत्र अति भयंकर वाणासुर तथा और भी जो महाबल्वान् दुरात्मा राक्षस राजाओं के घरमें उत्पन्न हो गये हैं उनकी मैं गणना नहीं कर सकती ॥ २४-२५॥ हे दिव्यम् र्तिधारी देवगण ! इस समय मेरे ऊपर महाबल्वान् और गर्वाले दैत्य-राजोंकी अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ हैं ॥ २६॥ हे अमरेश्वरो ! मैं आपलोगोंको यह बतलाये देती हूँ कि अब मैं उनके अत्यन्त भारसे पीडित होकर अपनेको धारण करनेमें सर्वधा असमर्थ हूँ ॥ २०॥ अतः हे महाभाग-गण ! आपलोग मेरे भार उतारनेका अब कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे मैं अत्यन्त व्याकुल होकर रसातलको न चली जाऊँ ॥ २८॥

पृथिवीके इन वाक्योंको सुनकर उसके भार उतारने-के विषयमें समस्त देवताओंकी प्रेरणासे मगवान् ब्रह्माजीने कहना आरम्भ किया ॥ २९॥

ब्रह्माजी बोले-हे देवगण ! पृथिवीने जो कुछ कहा है वह सर्वथा सत्य ही है, वास्तवमें, मैं, शंकर और आप सब लोग नारायणस्र ही हैं ॥ ३०॥ उनकी जो-जो विमूतियाँ हैं, उनकी परस्पर न्यूनता और अधिकता ही वाध्य तथा वाधकरूपसे रहा करती है ॥ ३१॥ इसल्ये आओ, अब हमलोग क्षीरसागरके पित्र तटपर चलें, वहाँ श्रीहरिकी आराधनाकर यह सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे निवेदन कर दें ॥ ३२॥ वे विश्वरूप सर्वात्मा सर्वथा संसारके हितके लिये ही अपने शुद्ध सप्वांशसे अवतीर्ण होकर पृथिवीमें धर्मकी स्थापना करते हैं ॥ ३३॥

श्रीपराशरजी बोले-ऐसा कहकर देवताओं के सहित पितामह ब्रह्माजी वहाँ गये और एका प्रचित्तसे श्रीगरुड-ध्वज मगवान्की इस प्रकार स्तुति करने टगे ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजी बोले-हे वेदवाणीके अगोचर प्रभो ! परा और अपरा—ये दोनों विद्याएँ आप ही हैं। हे नाथ ! वे दोनों आपहीके मूर्त और अमूर्त रूप हैं॥ ३५॥

द्वे ब्रह्मणी त्वणीयोऽतिस्थूलात्मन्सर्व सर्ववित् । शब्दब्रह्म परं चैव ब्रह्म ब्रह्ममयस्य यत्।।३६॥ ऋग्वेदस्त्वं यज्ञवेदस्सामवेदस्त्वथर्वणः। शिक्षा कल्पो निरुक्तं चच्छन्दो ज्यौतिषमेव च३७ इतिहासपुराणे च तथा व्याकरणं प्रभो । मीमांसा न्यायशास्त्रं च धर्मशास्त्राण्यधाक्षज॥३८॥

आत्मात्मदेहगुणवद्विचाराचारि यद्वचः। तद्प्याद्यपते नान्यद्ध्यात्मात्मस्वरूपवत् ॥३९॥ त्वमञ्यक्तमनिर्देश्यमचिन्त्यानामवर्णवत अपाणिपादरूपं च शुद्धं नित्यं परात्परम् ॥४०॥ शृणोष्यकर्णः परिपञ्यसि त्व-मचक्षरेको बहुरूपरूपः। अपादहस्तो जवनो ग्रहीता त्वं वेतिस सर्वं न च सर्ववेद्यः ॥४१॥ अणोरणीयांसमसत्स्वरूपं त्वां पश्यतोऽज्ञाननिवृत्तिरम्रचा । धीरस्य घीरस्य विभक्तिं नान्य-द्वरेण्यरूपात्परतः परात्मन् ॥४२॥ विश्वनाभिर्भुवनस्य गोप्ता सर्वाणि भूतानि तवान्तराणि। यद्भुतभव्यं यदणोरणीयः प्रमांस्त्वमेकः प्रकृतेः परस्तात् ॥४३॥ एकश्रुतुद्धी भगवान्ह्रताशो वचीविभृतिं जगतो ददासि । त्वं विश्वतश्रभुरनन्तमूर्ते त्रेघा पदं त्वं निद्धासि धातः ॥४४॥ यथाग्निरेको बहुधा समिध्यते विकारभेदैरविकाररूपः।

भवान्सर्वगतैकरूपी

रूपाण्यशेषाण्यनुपुष्यतीश ॥४५॥

तथा

हे अत्यन्त सूक्ष्म ! हे विराट्खरूप ! हे सर्व ! हे सर्वज्ञ ! शब्दब्रह्म और परब्रह्म—ये दोनों आप ब्रह्ममयके ही रूप हैं || ३६ || आप ही ऋग्वेद. यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं तथा आप ही शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष्शास्त्र हैं ॥ ३७॥ हे प्रमो ! हे अधोक्षज ! इतिहास, पुराण, व्याकरण, मीमांसा, न्याय और धर्मशास्त्र—ये सब भी आप ही हैं॥ ३८॥

हे आद्यपते ! जीवात्मा, परमात्मा, स्थूल-सूक्ष्म-देह तथा उनका कारण अन्यक्त-इन सबके विचारसे युक्त जो अन्तरात्मां और परमात्माके खरूपका बोधक [तत्त्वमिस] वाक्य है, वह भी आपसे भिन्न नहीं है ॥ ३९॥ आप अन्यक्त, अनिर्वाच्य, अचिन्त्य, नाम-वर्णसे रहित, हाथ-पाँव तथा रूपसे हीन, शुद्ध, सनातन और परसे भी पर हैं ॥ ४०॥ आप कर्ण-हीन होकर भी सुनते हैं, नेत्रहीन होकर भी देखते. हैं, एक होकर भी अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं, इस्तपादादिसे रहित होकर भी बड़े वेगशाली और प्रहण करनेवाले हैं तथा सबके अवेच होकर भी सब-को जाननेवाले हैं ॥ ४१ ॥ हे परात्मन् ! जिस धीर पुरुषकी बुद्धि आपके श्रेष्ठतम रूपसे पृथक् और कुछ भी नहीं देखती, आपके अणुसे भी अणु और दृश्य-बरूपको देखनेवाछे उस पुरुषकी आत्यन्तिक अज्ञान-निवृत्ति हो जाती है ॥ ४२ ॥ आप विश्वके केन्द्र और त्रिमुवनके रक्षक हैं; सम्पूर्ण भूत आपहींमें स्थित हैं तथा जो कुछ भूत,भविष्यत् और अणुसे भी अणु है वह सब आप प्रकृतिसे परे एकमात्र परमपुरुष ही हैं ॥ ४३ ॥ आप ही चार प्रकारका अग्नि होकर संसारको तेज और विमूति दान करते हैं। हे अनन्तम्तें ! आपके नेत्र सब ओर हैं । हे धातः ! आप ही [त्रिविक्रमावतारमें] तीनों छोकमें अपने तीन पग रखते हैं ॥ ४४॥ हे ईश ! जिस प्रकार एक ही अविकारी अग्नि विकृत होकर नाना प्रकारसे प्रज्वलित होता है उसी प्रकार सर्वगतरूप एक आप ही रिट-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्कं त्वमग्रघं परमं पदं य
त्पञ्यन्ति त्वां स्ररयो ज्ञानदृश्यम् ।

त्वत्तो नान्यत्किश्चिद्रस्ति खरूपं

यद्वा भूतं यच भव्यं परात्मन् ॥४६॥

व्यक्ताव्यक्तस्वरूपस्त्वं समष्टिव्यष्टिरूपवान् ।
सर्वज्ञस्सर्ववित्सर्वशक्तिज्ञानवर्लाद्विमान् ॥४७॥
अन्यूनश्राप्यवृद्धिश्र स्वाधीनो नादिमान्वशी ।
क्रुमतन्द्राभयकोधकामादिभिरसंयुतः ॥४८॥
निरवद्यः परः प्राप्तेनिरिधष्ठोऽक्षरः क्रमः ।
सर्वेश्वरः पराधारो धाम्नां धामात्मकोऽक्षयः ॥४९॥
सकलावरणातीत निरालम्बनभावन ।
महाविश्वतिसंस्थान नमस्ते पुरुषोत्तम ॥५०॥
नाकारणात्कारणाद्वा कारणाकारणात्र च ।
श्वरीरग्रहणं वापि धर्मत्राणाय केवलम् ॥५१॥

श्रीपराशर उवाच

इत्येवं संस्तवं श्रुत्वा मनसा भगवानजः। ब्रह्माणमाह प्रीतेन विश्वरूपं प्रकाशयन्॥५२॥

श्रीमगवानुवाच

भो भो ब्रह्मंस्त्वया मत्तस्सह देवैर्यदिष्यते । तदुच्यतामशेषं च सिद्धमेवावधार्यताम् ॥५३॥ श्रीपराशर उवाच

ततो ब्रह्मा हरेर्दिच्यं विश्वरूपमवेक्ष्य तत् । तुष्टाव भूयो देवेषु साध्वसावनतात्मसु ॥५४॥ ब्रह्मोवाच

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः सहस्रवाहो बहुवक्त्रपाद । नमो नमस्ते जगतः प्रश्वति-विनाशसंस्थानकराप्रमेय ॥५५॥ स्रक्ष्मातिस्रक्ष्मातिवृहत्त्रमाण गरीयसामप्यतिगौरवात्मन ।

एकमात्र जो श्रेष्ठ परमपद है; वह आप ही हैं, ज्ञानी पुरुष ज्ञानदृष्टिसे देखे जाने योग्य आपको ही करते हैं। हे परात्मन्! भूत देखा मविष्यत् जो कुछ खरूप है वह आपसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ॥ ४६ ॥ आप व्यक्त और अन्यक्तस्ररूप हैं, समष्टि और न्यष्टिरूप हैं तथा आप ही सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी, सर्वशक्तिमान् एवं सम्पूर्ण ज्ञान, वल और ऐश्वर्यसे युक्त हैं ॥ ४७ ॥ आप हास और वृद्धिसे रहित, खाधीन, अनादि और जितेन्द्रिय हैं तथा आपके अन्दर श्रम, तन्द्रा, मय, क्रोध और काम आदि नहीं हैं॥ ४८॥ आप अनिन्य, अप्राप्य, निराधार और अन्याहत गति हैं, आप सबके लामी, अन्य ब्रह्मादिके आश्रय तथा सूर्यादि तेजोंके तेज एवं अविनाशी हैं ॥ ४९ ॥ आप समस्त आवरण-रून्य, असहायोंके पालक और सम्पूर्ण महाविमृतियोंके आधार हैं, हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है ॥ ५०॥ आप किसी कारण, अकारण अयवा कारणाकारणसे शरीर-प्रहण नहीं करते, वल्कि केवल धर्म-रक्षाके लिये ही करते हैं ॥ ५१ ॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार स्तुति सुनकर भगवान् अज अपना विश्वरूप प्रकट करते हुए ब्रह्माजीसे प्रसन्नचित्तसे कहने लगे ॥ ५२॥

श्रीभगवान् बोले-हे ब्रह्मन् ! देवताओं के सहित तुमको मुझसे जिस वस्तुकी इच्छा हो वह सब कहो और उसे सिद्ध हुआ ही समझो ॥५३॥

श्रीपराशरजी बोल्ले-तत्र श्रीहरिके उस दिव्य विश्वरूपको देखकर समस्त देवताओंके भयसे विनीत हो जानेपर ब्रह्माजी पुनः स्तुति करने ल्ले॥ ५४॥

ब्रह्माजी बोले—हे सहस्रवाहो ! हे अनन्तमुख एवं चरणवाले ! आपको हजारों वार नमस्कार हो । हे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करनेवाले ! हे अप्रमेय ! आपको वारम्वार नमस्कार हो ॥५५॥ हे भगवन् ! आप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, गुरुसे भी गुरु और अति बृहत् प्रमाण हैं, तथा प्रधान (प्रकृति) महत्त्व

प्रधानबद्धीन्द्रियवत्प्रधान-मुलात्परात्मन्भगवन्त्रसीद् ॥५६॥ महीप्रस्तै-मही एषा महासरै: पीडितशैलबन्धा । परायणं जगताम्रपैति भारावताराथेमपारसार ॥५७॥ एते वयं वृत्ररिपुस्तथायं वरुणस्तथैव । नासत्यदस्रो इमे वसवस्सद्धर्या-स्समीरणाग्निप्रग्रुखास्तथान्ये ।।५८॥ सुरास्समस्तास्सुरनाथ कार्य-मेभिर्मया यच तदीश सर्वम् । परिपालयन्त-आज्ञापयाज्ञा स्तवैव तिष्ठाम सदास्तदोषाः ॥५९॥

श्रीपराशर उवाच संस्त्यमानस्त भगवान्परमेश्वरः । उजहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महासुने ॥६०॥ उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले। अवतीर्य भ्रुवो भारक्केशहानिं करिष्यतः ॥६१॥ सकलास्त्वांशैरवतीर्य महीतले। कुर्वन्तु युद्धग्रुन्मत्तेः पूर्वोत्पन्नेर्महासुरैः ॥६२॥ क्षयमशेषास्ते दैतेया धरणीतले। प्रयाखन्ति न सन्देहो मद्दद्भातिवचूर्णिताः॥६३॥ वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा। तत्रायमष्टमो गर्मो मत्केशो भविता सुराः ॥६४॥ अवतीर्य च तत्रायं कंसं घातियता भ्रुवि । कालनेमिं सम्रद्भतमित्युक्तवान्तर्देघे हरिः।।६५।। अद्दश्याय ततस्तसै प्रणिपत्य महामुने। मेरुपृष्ठं सुरा जग्मुरवतेरुश्च भृतले ॥६६॥ कंसाय चाष्टमो गर्भी देवक्या घरणीधरः। भविष्यतीत्याचचक्षे भगवान्नारदो मुनिः ॥६७॥ कंसोञ्पि तदुपश्चत्य नारदात्क्वपितस्ततः। देवकीं वसुदेवं च गृहे गुप्तावधारयत्।।६८।। वसुदेवेन कंसाय तेनैवोक्तं यथा पुरा।

और अहंकारादिमें प्रधानभूत मूळ पुरुषसे भी परे हैं; हे भगवन् ! आप हमपर प्रसन्न होइये॥५६॥ हे देव ! इस पृथिवीके पर्वतरूपी मूळवन्ध इसपर उत्पन्न हुए महान् असुरोंके उत्पातसे शिथिळ हो गये हैं । अतः हे अप-रिमितवीर्य ! यह संसारका भार उतारनेके ळिये आपकी शरणमें आयी है ॥५७॥ हे सुरनाथ ! हम और यह इन्द्र, अखिनीकुमार तथा वरुण, ये रुद्रगण, वसुगण, सूर्य, वायु और अग्नि आदि अन्य समस्त देवगण यहाँ उपस्थित हैं; इन्हें अथवा मुझे जो कुछ करना उचित हो उन सब बातोंके ळिये आज्ञा कीजिये । हे ईश ! आपहीकी आज्ञाका पाळन करते हुए हम सम्पूर्ण दोपोंसे मुक्त हो सकोंगे ॥५८-५९॥

श्रीपराशरजी बोले-हे महामुने ! इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् परमेश्वरने अपने इयाम और स्वेत दो केश उखाड़े ॥६०॥ और देवताओंसे वोले-'मेरे ये दोनों केश पृथिवीपर अवतार छेकर पृथिवीके भाररूप कष्टको दूर करेंगे ॥६१॥ सब देवगण अपने-अपने अंशोंसे पृथिवीपर अवतार छेकर अपनेसे पूर्व उत्पन हुए उन्मत्त दैत्योंके साथ युद्ध करें ॥६२॥ तब निः-सन्देह पृथिवीतलपर सम्पूर्ण दैत्यगण मेरे दृष्टिपातसे दिलत होकरक्षीण हो जायँगे ॥६३॥ वसुदेवजीकी जो देवीके समान देवकी नामकी भागी है उसके आठवें गर्भ-से मेरा यह (श्याम) केश अवतार छेगा ॥६४॥ और इस प्रकार वहाँ अवतार छेकर यह काछनेमिके अवतार कंसका वंध करेगा।' ऐसा कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये ॥६५॥ हे महामुने ! भगवान्के अदृश्य हो जानेपर उन्हें प्रणाम करके देवगण सुमेरुपर्वतपर चले गये और फिर पृथिबीपर अवतीर्ण हुए ॥६६॥

कसाय चाष्टमा गर्मा देवक्या घरणीघर: ।

मिविष्यतीत्याचचक्षे भगवान्नारदो मुनि: ॥६७॥

कंसोऽिं तदुपश्चत्य नारदात्कुपितस्ततः ।

देवकीं वसुदेवं च गृहे गुप्तावधारयत् ॥६८॥

वसुदेवेन कंसाय तेनैवोक्तं यथा पुरा ।

तथैव वसुदेवोऽिं पुत्रमर्पितदानिद्वज्ञः॥६९॥

दियाधाः, अपने प्रत्येक पुत्रको कंसको सौंपते रहे ॥६९॥

हिरण्यकशिपोः पुत्राष्यद्गर्मा इति विश्वताः । विष्णुप्रयुक्ता तान्निद्रा क्रमाद्गर्भानयोजयत् ॥७०॥ योगनिद्रा महामाया वैष्णवी मोहितं यया । अविद्यया जगत्सर्वे तामाह भगवान्हरिः ॥७१॥

श्रीभगवानुवाच

निद्रे गच्छ ममादेशात्पातालतलसंश्रयान् ।

एकैकत्वेन पड्गर्भान्देवकीलठरं नय ॥७२॥

हतेषु तेषु कंसेन शेषाख्यांऽशस्ततो मम ।

अंशांशेनोदरे तस्यास्सप्तमः सम्भविष्यति ॥७३॥

गोकुले वसुदेवस्य मार्यान्या रोहिणी स्थिता ।

तस्यास्स सम्भूतिसमं देवि नेयस्त्वयोदरम् ॥७४॥

सप्तमो भोजराजस्य भयाद्रोधोपरोधतः ।

देवक्याः पतितो गर्भ इति लोको वदिष्यति ॥७५॥

गर्भसङ्कर्षणात्सोऽथ लोके सङ्कर्षणेति वै ।

संज्ञामवाप्सते वीरक्श्वेताद्रिशिखरोपमः ॥७६॥

ततोऽहं सम्भविष्यामि देवकीजठरे शुमे ।
गर्भे त्वया यशोदाया गन्तव्यमविल्लिम्बतम् ॥७७॥
प्राष्ट्रद्काले च न्मसि कृष्णाष्ट्रम्यामहं निशि ।
उत्पत्सामि नवम्यां तु प्रस्ति त्वमवाप्सि ॥७८॥
यशोदाशयने मां तु देवक्यास्त्वामनिन्दिते ।
मच्छक्तिप्रेरितमितर्वसुदेवो नियष्यति ॥७९॥
कंसश्च त्वासुपादाय देवि शैलशिलातले ।
प्रक्षेप्सत्यन्तरिक्षे च संस्थानं त्वमवाप्स्यसि ॥८०॥
ततस्त्वां शतदृक्छक्रः प्रणम्य मम गौरवात् ।
प्रिणपातानतशिरा भगिनीत्वे प्रहीष्यति ॥८१॥
त्वं च शुम्भनिशुम्भादीन्हत्वा दैत्यान्सहस्रशः ।

ऐसा सुना जाता है कि पहले छः गर्भ हिरण्यकशिपु-के पुत्र थे। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे योगनिद्रा उन्हें क्रमशः गर्भमें स्थित करती रही ॥ ७०॥ जिस अविद्या-रूपिणीसे सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है, वह योगनिद्रा भगवान् विष्णुकी महामाया है उससे भगवान् श्रीहरिने कहा—॥७१॥

श्रीभगवान् बोले-हे निद्रे! जा, मेरी आज्ञासे त् पातालमें स्थित छः गर्मोंको एक-एक करके देवकी-की कुक्षिमें स्थापित कर दे ॥७२॥ कंसद्वारा उन सव-के मारे जानेपर शेषनामक मेरा अंश अपने अंशांश-से देवकीके सातवें गर्ममें स्थित होगा॥७३॥ हे देवि! गोकुलमें वसुदेवजीकी जो रोहिणी नामकी दूसरी मार्या रहती है उसके उदरमें उस सातवें गर्मको छे जाकर त् इस प्रकार स्थापित कर देना जिससे वह उसीके जठरसे उत्पन्न हुएके समान जान पड़े ॥७४॥ उसके विषयमें संसार यही कहेगा कि कारागारमें वन्द होनेके कारण मोजराज कंसके भयसे देवकीका सातवाँ गर्म गिर गया॥७५॥ वह स्वेत शैलशिखरके समान वीर पुरुष गर्मसे आकर्षण किये जानेके कारण संसारमें 'संकर्षण' नामसे प्रसिद्ध होगा॥७६॥

तदनन्तर, हे शुभे ! देवकीके आठवें गर्भमें मैं स्थित होऊँगा । उस समय त् भी तुरन्त ही यशोदाके गर्भमें चली जाना ॥७०॥ वर्षाऋतुमें माद्रपद कृष्ण अष्टमीको रात्रिके समय मैं जन्म लूँगा और त्नवमीको उत्पन्न होगी ॥७८॥ हे अनिन्दिते ! उस समय मेरी शक्तिसे अपनी मति किर जानेके कारण वसुदेवजी मुझे तो यशोदाके और तुझे देवकीके शयनगृहमें ले जायँगे॥७९॥ तब हे देवि ! कंस तुझे पकड़कर पर्वत-शिलापर पटक देगा; उसके पटकते ही त्आकाशमें स्थित हो जायगी ॥८०॥

उस समय मेरे गौरवसे सहस्रनयन इन्द्र शिर झुका-कर प्रणाम करनेके अनन्तर तुझे भगिनीरूपसे खी-कार करेगा ॥८१॥ त भी शुम्भ, निशुम्भ आदि सहस्रों

क्ष ये वालक पूर्वजन्ममें हिरचयकशिपुके भाई कालनेमिके पुत्र थे; इसीसे इन्हें उसका पुत्र कहा गया है। इन राक्षसकुमारोंने हिरण्यकशिपुका अनादरकर भगवान्की भक्ति की थी; अतः उसने कुपित होकर इन्हें शाप दिया कि तुम लोग अपने पिताके हायसे ही मारे जाओगे। यह प्रसंग हरिवंशमें आया है। स्थानैरनेकैः पृथिवीमशेषां मण्डियष्यसि ॥८२॥ त्वं भूतिः सन्नतिः क्षान्तिः कान्तिद्यौः पृथिवी पृतिः लज्जा पृष्टिरुषा या तु काचिद्न्या त्वमेव सा ॥८३॥

ये त्वामार्थेति दुर्गेति वेदगर्भाम्बिकेति च ।

भद्रेति भद्रकालीति क्षेमदा माग्यदेति च ॥८४॥

प्रातश्रेवापराक्षे च स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्त्तयः ।

तेषां हि प्रार्थितं सर्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥८५॥

सुरामांसोपहारश्र मक्ष्यभोज्येश्र पूजिता ।

नृणामशेषकामांस्त्वं प्रसन्ना सम्प्रदास्यसि ॥८६॥

ते सर्वे सर्वदा भद्रे मत्प्रसादादसंश्यम् ।

असन्दिग्धा भविष्यन्ति गच्छ देवि यथोदितम् ८७

दैत्योंको मारकर अपने अनेक स्थानोंसे समस्त पृथिवीको सुशोमित करेगी।।८२।। त् हां भूति, संन्नति, क्षान्ति और कान्ति है; त् ही आकाश, पृथिवी, घृति, लजा, पृष्टि और उपा है; इनके अतिरिक्त संसारमें और भी जो कोई शक्ति है वह सब त् ही है।।८३।।

जो छोग प्रातःकाछ और सायंकाछमें अत्यन्त नम्रतापूर्वक तुझे आर्या, दुर्गा, वेदगर्मा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाछी, क्षेमदा और भाग्यदा आदि कहकर तेरी स्तुति करेंगे उनकी समस्त कामनाएँ मेरी कृपासे पूर्ण हो जायँगी ॥८४-८५॥ मदिरा और मांसकी मेंट चढ़ानेसे तथा मक्ष्य और मोज्य पदार्थोद्वारा पूजा करनेसे प्रसन्न होकर तू मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओं-को पूर्ण कर देगी ॥८६॥ तेरेद्वारा दी हुई वे समस्त कामनाएँ मेरी कृपासे निस्सन्देह पूर्ण होंगी। हे देवि! अव तू मेरे बतछाये हुए स्थानको जा॥८॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

दूसरा अध्याय

भगवान्का गर्भ-प्रवेश तथा देवगणद्वारा देवकीकी स्तुति।

श्रीपराशर उवाच

यथोक्तं सा जगद्धात्री देवदेवेन वै तथा।
पद्गर्भगर्भविन्यासं चक्रे चान्यस्य कर्षणम्।।१।।
सप्तमे रोहिणीं गर्भे प्राप्ते गर्भे ततो हरिः।
लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश ह।।२।।
योगनिद्रा यशोदायास्तसिक्षेव तथा दिने।
सम्भूता जठरे तद्वद्यथोक्तं परमेष्ठिना।।३।।
ततो प्रहगणस्सम्यक्प्रचचार दिवि द्विज।
विष्णोरंशे भुवं याते ऋतवश्रावभुक्शुभाः।।४।।
न सेहे देवकीं द्रष्टुं कश्रिद्प्यतितेजसा।
जाज्वल्यमानां तां दृष्ट्वा मनांसि क्षोममाययुः।।५।।
अदृष्टाः पुरुषेस्स्तीभिर्देवकीं देवतागणाः।

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! देवदेव श्रीविष्णु-भगवान्ने जैसा कहा था उसके अनुसार जगद्रात्री योगमायाने छः गर्भोंको देवकीके उदरमें स्थित किया और सातवेंको उसमेंसे निकाल लिया ॥ १ ॥ इस प्रकार सातवें गर्भके रोहिणीके उदरमें पहुँच जानेपर श्रीहरिने तीनों छोकोंका उद्धार करनेकी इच्छासे देवकीके गर्भमें प्रवेश किया ॥ २ ॥ भगवान् परमेश्वरकी आज्ञानुसार योगमाया भी उसी दिन यशोदाके गर्भमें स्थित हुई ॥३॥ हे द्विज ! विष्णु-अंशके पृथित्रीमें पधारनेपर आकाशमें प्रहगण ठीक ठीक गतिसे चलने लगे और ऋतुगण भी मंगलमय होकर शोभा पाने छगे ॥ ४ ॥ उस समय अत्यन्त तेजसे देदीप्यमाना देवकीजीको कोई मी देख न सकता था। उन्हें देखकर [दर्शकोंके] चित्त यकित हो जाते थे || ५ || तब देवतागण अन्य पुरुष तथा क्षियोंको दिखायी न देते हुए, अपने शरीरमें [गर्भरूप-

विश्राणां वपुपा विष्णुं तुष्टुवुस्तामहर्निशम् ॥ ६ ॥

देवता उचुः

प्रकृतिस्त्व परा सूक्ष्मा ब्रह्मगर्भाभवः पुरा ।

ततो वाणी जगद्धातुर्वेदगर्भासि शोमने ॥ ७॥ सृज्यस्वरूपगर्भासि सृष्टिभूता सनातने । वीजभृता तु सर्वस्य यज्ञभृताभवस्रयी।। ८।। फलगर्भा त्वमेवेज्या विह्नगर्भा तथारणिः। अदितिर्देवगर्भी त्वं दैत्यगर्भी तथा दितिः ॥ ९ ॥ ज्योत्स्ना वासरगर्भा त्वं ज्ञानगर्भासि सन्नतिः। नयगर्भा परा नीतिर्लेजा त्वं प्रश्रयोद्वहा ॥१०॥ कामगर्भा तथेच्छा त्वं तुष्टिः सन्तोपगर्भिणी । मेघा च वोधगर्भासि धैर्यगर्भोद्वहा धृतिः ॥११॥ ग्रहर्भतारकागर्भा द्यौरसाखिलहैतुकी। एता विभूतयो देवि तथान्याश्र सहस्रशः। तथासंख्या जगद्धात्रि साम्प्रतं जठरे तव ॥१२॥ समुद्राद्रिनदीद्वीपवनपत्तनभूषणा ग्रामखर्वटखेटाढचा समस्ता पृथिवी शुभे ॥१३॥ समस्तवह्वयोऽम्भांसि सकलाश्च समीरणाः। विमानशतसंकुलम् ॥१४॥ ग्रहर्श्वतारकाचित्रं अवकाशमशेपस्य यहदाति नभःस्थलम् । भूलोंकश्र भुवलोंकस्खर्लीकोऽथ महर्जनः ॥१५॥ तपश्च ब्रह्मलोकश्च ब्रह्माण्डमितलं शुभे। तदन्तरे स्थिता देवा दैत्यगन्धर्वचारणाः ॥१६॥ महोरगास्तथा यक्षा राक्षसाः प्रेतगुद्धकाः। मनुष्याः पश्वश्रान्ये ये च जीवा यशस्त्रिनि ॥१७॥ तैरन्तःस्यैरनन्तोऽसौ सर्वगः सर्वभावनः ॥१८॥ परिच्छेदगोचरे। रूपकर्मखरूपाणि न यस्याखिलप्रमाणानि स विष्णुर्गर्भगस्तव ॥१९॥ त्वं खाहा त्वं खघा विद्या सुघा त्वं ज्योतिरम्बरे ।

से] भगवान् विष्णुको धारण करनेवाली देवकीजीकी अहर्निश स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥

देवता घोले-हे शोभने ! त पहले ब्रह्म-प्रतिविम्ब-धारिणी मृल्प्रकृति हुई थी और फिर जगद्विधाताकी वेदगर्भा वाणी हुई ॥ ७॥ हे सनातने ! तू ही सुज्य पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाली और तू ही सृष्टिरूपा है; तू ही सबकी वीज-खरूपा यज्ञमयी वेदत्रयी हुई है ॥ ८ ॥ तु ही फलमयी यज्ञित्रया अग्निमयी अरिण है तथा त ही देवमाता अदिति और दैत्यप्रस् दिति है ॥ ९ ॥ त् ही दिनकरी प्रभा और ज्ञानगर्भा गुरुशुश्रवा है तथा त् ही न्यायमयी परमनीति और विनयसम्पन्ना लजा है ॥ १०॥ त् हा काममयी इच्छा, सन्तोपमयी तुष्टि, बोधगर्भा प्रज्ञा और धैर्य-धारिणी धृति है ॥ ११ ॥ प्रह, नक्षत्र और तारागणको धारण करनेवाला तथा [वृष्टि आदिके द्वारा इस अखिल विश्वका] कारणखरूप आकाश त् ही है। हे जगद्धात्रि ! हे देवि ! ये सत्र तथा और भी सहस्रों और असंख्य विभूतियाँ इस समय तेरे उदरमें स्थित हैं ॥१२॥

हे शुमे ! समुद्र, पर्वत, नदी, द्वीप, वन और नगरोंसे सुशोभित तथा प्राम, खर्वट और खेटादिसे सम्पन्न समस्त पृथिवी, सम्पूर्ण अग्नि और जल तथा समस्त वायु, ग्रह, नक्षत्र एवं तारागणोंसे चित्रित तथा सैकड़ों विमानोंसे पूर्ण सबको अवकाश देनेवाला आकाश, भूळोंक, मुवर्ळोक, खळोंक तथा मह, जन, तप और त्रस-छोकपर्यन्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तथा उसके अन्तर्वर्ती देव, असर, गन्धर्व, चारण, नाग, यक्ष, राक्षस, प्रेत, गुह्यक, मनुष्य, पशु और जो अन्यान्य जीव हैं, हे यशिविनि ! वे सभी अपने अन्तर्गत होनेके कारण जो श्रीअनन्त सर्वगामी और सर्वमावन हैं तथा जिनके रूप, कर्म, खमाव तथा [बाछत्व महत्त्व आदि] समस्त परिमाण परिच्छेद (विचार) के विषय नहीं हो सकते वे ही श्रीविष्णुभगवान् तेरे गर्भमें स्थित हैं ॥ १३-१९ ॥ त् ही खाहा, खधा, विद्या, सुधा और आकाशस्थिता ज्योति है। सम्पूर्ण छोकोंकी त्वं सर्वलोकरक्षार्थमवतीर्णा महीतले ॥२०॥ प्रसीद देवि सर्वस्य जगतक्कां ग्रुमे कुरु । प्रीत्या तं घारयेशानं धृतं येनाखिलं जगत् ॥२१॥

रक्षाके लिये ही त्ने पृथिवीमें अवतार लिया है ॥ २०॥ हे देवि ! त् प्रसन्न हो । हे शुमे ! त् सम्पूर्ण जगत्का कल्याण कर । जिसने इस सम्पूर्ण जगत्को धारण किया है उस प्रभुको त् प्रीतिपूर्वक अपने गर्भमें धारण कर ॥ २१॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पश्चमेंऽशे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान्का आविर्माव तथा योगमायाद्वारा कंसकी वञ्चना।

श्रीपराशर उवाच

एवं संस्त्यमाना सा देवैदेवमधारयत्। गर्भेण पुण्डरीकाक्षं जगतस्त्राणकारणम्।। १।। ततोऽखिलजगत्पद्मवोधायाच्युतभाजुना देवकीपूर्वसन्ध्यायामाविर्भूतं महात्मना ॥ २ ॥ तजनमदिनमत्यर्थमाह्यामलदिङ्ग्रुखम् वभूव सर्वलोकस्यं कौम्रदी शशिनो यथा ॥ ३॥ सन्तस्सन्तोषमधिकं प्रश्नमं चण्डमारुताः। त्रसादं निम्नगा याता जायमाने जनाद्ने ॥ ४॥ सिन्धवो निजशब्देन वाद्यं चक्रुर्मनोहरम्। जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५ ॥ ससुजुः पुष्पवर्षाणि देवा भुव्यन्तरिक्षगाः। जज्बद्धश्राप्रयश्यान्ता जायमाने जनार्दने ॥ ६ ॥ मन्दं जगर्जुर्जलदाः पुष्पवृष्टिमुचो द्विज । अर्द्धरात्रेऽखिलाघारे जायमाने जनार्दने ॥ ७॥ फुछेन्दीवरपत्रामं .चतुर्वाहुमुदीक्ष्य तम् । श्रीवत्सवक्षसं जातं तुष्टावानकदुन्दुभिः॥८॥ अभिष्ट्य च तं वाग्मिः प्रसन्नाभिर्महामतिः।

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय! देवताओंसे इस प्रकार स्तुति की जाती हुई देवकीजीने संसारकी रक्षाके कारण भगवान् पुण्डरीकाक्षको गर्भमें धारण किया॥१॥ तदनन्तर सम्पूर्ण संसाररूप कमलको विकसित करने-के लिये देवकीरूप पूर्व सन्ध्यामें महात्मा अन्युतरूप सूर्यदेवका आविभीव हुआ ॥२॥ चन्द्रमाकी चाँदनीके समान भगवान्का जन्म-दिन सम्पूर्ण जगत्-को आह्वादित करनेवाला हुआ और उस दिन सभी दिशाएँ अत्यन्त निर्मल हो गयों॥३॥

श्रीजनार्दनके जन्म छेनेपर सन्तजनोंको परम सन्तोष हुआ, प्रचण्ड वायु शान्त हो गया तथा निद्याँ अत्यन्त खच्छ हो गयों ॥ ४ ॥ समुद्रगण अपने घोषसे मनोहर वाजे वजाने छो, गन्धर्वराज गान करने छो और अप्सराएँ नाचने छगीं ॥ ५ ॥ श्रीजनार्दनके प्रकट होनेपर आकाशगामी देवगण पृथिवीपर पुष्प बरसाने छो तथा शान्त हुए यज्ञाग्नि फिर प्रज्विछत हो गये ॥ ६ ॥ हे द्विज ! अर्द्धरात्रिके समय सर्वाधार भगवान् जनार्दनके आविर्मृत होनेपर पुष्पवर्षा करते हुए मेघगण मन्द-मन्द गर्जना करने छो ॥ ७ ॥

उन्हें खिले हुए कमल्दलकी-सी आमावाले, चतुर्मुज और वक्षःखलमें श्रीवत्स चिह्नसहित उत्पन्न हुए देख आनकदुन्दुमि वसुदेवजी स्तुति करने लगे॥८॥ हे द्विजोत्तम। महामति वसुदेवजीने प्रसादयुक्त वचनों- विज्ञापयामास तदा कंसाङ्गीतो द्विजोत्तम ॥ ९ ॥

वसुदेव उवाच

जातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधरम् । दिव्यरूपिमदं देव प्रसादेनोपसंहर ॥१०॥ अद्यैव देव कंसोऽयं क्रुरुते मम घातनम् । अवतीर्ण इति ज्ञात्वा त्वमस्मिन्मम मन्दिरे ॥११॥

देवक्युवाच

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो
गर्भेऽपिलोकान्वपुषा विभर्ति ।
प्रसीदतामेष स देवदेवो
यो माययाविष्कृतवालरूपः ॥१२॥
उपसंहर सर्वात्मत्रूपमेतचतुर्भुजम् ।
जानातु मायतारं ते कंसोऽयं दितिजन्मजः ॥१३॥
श्रीमगवानुवाच

स्तुतोऽहं यत्त्वया पूर्वं पुत्रार्थिन्या तदद्य ते । सफलं देवि सञ्जातं जातोऽहं यत्तवोदरात् ॥१४॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तवा भगवांस्त्र्णीं वभूव ग्रुनिसत्तम ।
वसुदेवोऽपि तं रात्रावादाय प्रययो वहिः ॥१५॥
मोहिताश्राभवंस्तत्र रक्षिणो योगनिद्रया ।
मथुराद्वारपालाश्र व्रजत्यानकदुन्दुभौ ॥१६॥
वर्षतां जलदानां च तोयमत्युल्वणं निश्चि ।
संवृत्याज्ञययो शेषः फणैरानकदुन्दुभिम् ॥१७॥
यग्रुनां चातिगम्भीरां नानावर्त्तशताकुलाम् ।
वसुदेवो वहन्विष्णुं जानुमात्रवहां ययो ॥१८॥
कंसस्य करदानाय तत्रैवाम्यागतांस्तटे ।
नन्दादीन् गोपवृद्धांश्र यग्रुनाया ददर्श सः॥१९॥

से भगवान्की स्तुति कर कंससे भयभीत रहनेके कारण इस प्रकार निवेदन किया ॥ ९ ॥

वसुदेवजी बोले-हे देवदेवेश्वर ! यद्यपि आप [साक्षात् परमेश्वर] प्रकट हुए हैं, तथापि हे देव ! मुझपर कृपा करके अव अपने इस शंख-चक्र-गदाधारी दिन्य रूपका उपसंहार कीजिये ॥ १०॥ हे देव ! यह पता लगते ही कि आप मेरे इस गृहमें अवतीर्ण हुए हैं, कंस इसी समय मेरा सर्वनाश कर देगा ॥११॥

देवकीजी बोळीं-जो अनन्तरूप और अखिल-विश्वसरूप हैं, जो गर्भमें स्थित होकर भी अपने शरीरसे सम्पूर्ण छोकोंको धारण करते हैं तथा जिन्होंने अपनी मायासे ही बाळरूप धारण किया है वे देवदेव हमपर प्रसन्न हों ॥ १२ ॥ हे सर्वात्मन् ! आप अपने इस चतुर्मुज रूपका उपसंहार कीजिये। भगवन् ! यह राक्षसके अंशसे उत्पन्न * कंस आपके इस अवतारका वृत्तान्त न जानने पावे॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले-हे देवि ! पूर्व-जन्ममें त्ने जो पुत्रकी कामनासे मुझसे [पुत्ररूपसे उत्पन्न होनेके लिये] प्रार्थना की थी । आज मैंने तेरे गर्भसे जन्म लिया है—इससे तेरी वह कामना पूर्ण हो गयी ॥ १४ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मुनिश्रेष्ट! ऐसा कहकर मगवान् मौन हो गये तथा वसुदेवजी भी उन्हें उस रात्रिमें ही लेकर वाहर निकले ॥ १५ ॥ वसुदेवजीके वाहर जाते समय कारागृहरक्षक और मथुराके द्वारपाल योगनिद्राके प्रभावसे अचेत हो गये ॥ १६ ॥ उस रात्रिके समय वर्षा करते हुए मेघोंकी जलराशिको अपने फणोंसे रोककर श्रीशेषजी आनकदुन्दुमिके पीले-पीले चले ॥ १० ॥ मगवान् विष्णुको ले जाते हुए वसुदेवजी नाना प्रकारके सैकड़ों में वरोंसे मरी हुई अत्यन्त गम्भीर यसुनाजीको घुटनोंतक रखकर ही पार कर गये ॥ १८ ॥ उन्होंने वहाँ यसुनाजीके तटपर ही कंसको कर देनेके लिये आये हुए नन्द आदि वृद्ध गोपोंको भी देखा ॥ १९ ॥

हुमिछनामक राक्षसने राजा उप्रसेनका रूप घारण कर उनकी प्रतीसे संसर्ग किया था । उसीसे कंसका ज न्मर हुआ । यह कथा हरिवंशमें आयी है ।

तसिन्काले यशोदापि मोहिता योगनिद्रया। तामेव कन्यां मैत्रेय प्रस्ता मोहिते जने।।२०।।

वसुदेवोऽपि विन्यस्य बालमादाय दारिकाम् । यशोदाशयनात्त्र्णमाजगामामितद्यतिः ॥२१॥ दद्दशे च प्रद्युद्धा सा यशोदा जातमात्मजम् । नीलोत्पलदलश्यामं ततोऽत्यर्थं सुदं ययौ ॥२२॥ आदाय वसुदेवोऽपि दारिकां निजमन्दिरे । देवकीशयने न्यस्य यथापूर्वमतिष्ठत ॥२३॥

ततो बालध्वनि श्रुत्वा रक्षिणस्सहसोत्थिताः ।
कंसायतिद्यामासुर्देवकीप्रसर्व द्विज ॥२४॥
कंसस्तूर्णस्रेपत्यैनां ततो जग्राह वालिकाम् ।
सुश्च सुश्चेति देवक्या स्<u>त्रकण्ठ</u>ण निवारितः॥२५॥
चिश्चेप च शिलापृष्ठे सा क्षिप्ता वियति स्थिता ।
अवाप रूपं सुमहत्सायुधाष्टमहाञ्चजम् ॥२६॥

प्रजहास तथैवोचैः कंसं च रुपितात्रवीत्।

किं मया क्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां विधिष्यति २७

सर्वस्वभूतो देवानामासीन्मृत्युः पुरा स ते।

तदेतत्सम्प्रधार्याश्च क्रियतां हितमात्मनः ॥२८॥

इत्युक्तवा प्रययौ देवी दिव्यसम्गन्धभूषणा।

पञ्यतो मोजराजस्य स्तुता सिद्धैविंहायसा ॥२९॥

हे मैत्रेय ! इसी समय योगनिद्राके प्रभावसे सब मनुष्योंके मोहित हो जानेपर मोहित हुई यशोदाने भी उसी कन्याको जन्म दिया ॥ २०॥

तव अतिशय कान्तिमान् वसुदेवजी भी उस वालक-को सुलाकर और कन्याको लेकर तुरन्त यशोदाके शयन-गृहसे चले आये ॥२१॥ जब यशोदाने जागने-पर देखा कि उसके एक नीलकमलदलके समान श्याम-वर्ण पुत्र उत्पन्न हुआ है तो उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई ॥ २२॥ इधर, वसुदेवजीने कन्याको ले जाकर अपने महलमें देवकीके शयन-गृहमें सुला दिया और पूर्ववत् स्थित हो गये॥ २३॥

हे द्विज ! तदनन्तर वालकके रोनेका शब्द सुनकर कारागृह-रक्षक सहसा उठ खड़े हुए और देवकीके सन्तान उत्पन्न होनेका वृत्तान्त कंसको सुना दिया ॥ २४ ॥ यह सुनते ही कंसने तुरन्त जाकर देवकीके रूँ थे हुए कण्ठसे 'छोड़, छोड़'—ऐसां कहकर रोकनेपर भी उस बालिकाको पकड़ लिया और उसे एक शिलापर पटक दिया । उसके पटकते ही वह आकाशमें स्थित हो गयी और उसने शख्युक्त एक महान् अष्टमुजकूप धारण कर लिया ॥ २५-२६॥

तब उसने ऊँचे खरसे अदृहास किया और कंससे रोषपूर्वक कहा—'अरे कंस! मुझे पटकनेसे तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ! जो तेरा वध करेगा उसने तो [पहले ही] जन्म ले लिया है; देवताओं के सर्वस्व वे हिर ही तुम्हारे [कालनेमिक्सप] पूर्वजन्ममें भी काल थे। अतः ऐसा जानकर त्र शीघ्र ही अपने हित-का उपाय कर'॥ २७-२८॥ ऐसा कह, वह दिल्य माला और चन्दनादिसे विभूषिता तथा सिद्धगणद्वारा स्तुति की जाती हुई देवी मोजराज कंसके देखते-देखते आकाशमार्गसे चली गयी॥ २९॥



चौथा अध्याय

वसुदेव-देवकीका कारागारसे मोक्ष।

श्रीपराशर उवाच कंसस्तदोद्विग्रमनाः प्राह सर्वान्महासुरान् । प्रलम्बकेशिप्रमुखानाहूयासुरपुङ्गवान् ॥१॥ कंस उवाच

हे प्रलम्ब महावाहो केशिन् घेनुक पूतने ।

आरिष्टाद्यास्तथैवान्ये श्रूयतां वचनं मम ॥ २ ॥

मां इन्तुममरैर्यत्नः कृतः किल दुरात्मिभः ।

मद्वीर्यतापितान्वीरो न त्वेतान्गणयाम्यहम् ॥ ३ ॥

किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण किं हरेणुकचारिणा ।

हरिणा वापि किं साध्यं छिद्रेष्वसुरघातिना ॥ ४ ॥

किमादित्यैः किं वसुभिरल्पवीर्यैः किमिप्निभः ।

किं, वान्यैरमरैः सर्वैर्मद्वाहुवलनिर्जितैः ॥ ५ ॥

किं न दृष्टोऽमरपितर्मया संयुगमेत्य सः ।

पृष्ठेनैव वहन्वाणानपागच्छन्न वक्षसा ॥ ६ ॥

मद्राष्ट्रे वारिता वृष्टिर्यदा शक्रेण किं तदा ।

मद्राणभिन्नेर्जलदैर्नापो सुक्ता यथेप्सिताः ॥ ७ ॥

किम्रुर्व्यामवनीपाला मद्राहुवलभीरवः ।

न सर्वे सन्नितं याता जरासन्धमृते गुरुष् ॥ ८ ॥

न सर्वे सन्नितं याता जरासन्धमृते गुरुष् ॥ ८ ॥

अमरेषु ममावज्ञा जायते दैत्यपुद्भवाः।
हास्यं मे जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्विप ॥ ९ ॥
तथापि खळु दुष्टानां तेषामप्यधिकं मया।
अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम् ॥१०॥
तद्ये यश्चितः केचित्पृथिन्यां ये च याजकाः।
कार्यो देवापकाराय तेषां सर्वात्मना बधः॥११॥

श्रीपराशरजो बोले-तव कंसने खिन्न-चित्तसे प्रलम्ब और केशी आदि समस्त मुख्य-मुख्य असुरोंको बुलाकर कहा ॥ १॥

कंस बोला-हे प्रलम्ब ! हे महावाहो केशिन् ! हे घेनुक ! हे प्तने ! तथा हे अरिष्ट आदि अन्य असुरगण ! मेरा वचन सुनो—॥ २ ॥ यह वात प्रसिद्ध हो रही है कि दुरात्मा देवताओंने मेरे मारनेके लिये कोई यह किया है; किन्तु मैं बीर पुरुष अपने वीर्यसे सताये हुए इन लोगोंको कुल भी नहीं गिनता हूँ ॥ ३ ॥ अल्पवीर्य इन्द्र, अकेले घूमनेवाले महादेव अथवा लिद्र (असावधानीका समय) हूँ इकर दैत्योंका वध करनेवाले विष्णुसे उनका क्या कार्य सिद्ध हो सकता है ! ॥ ४ ॥ मेरे वाहुवलसे दिलत आदित्यों, अल्पवीर्य वसुगणों, अग्नियों अयवा अन्य समस्त देवताओंसे भी मेरा क्या अनिष्ट हो सकता है ! ॥ ५ ॥

आपलोगोंने क्या देखा नहीं या कि मेरे साथ युद्धभूमिमें आकर देवराज इन्द्र, वक्षःस्थल्में नहीं, अपनी पीठपर वाणोंकी बौछार सहता हुआ भाग गया या ॥ ६॥ जिस समय इन्द्रने मेरे राज्यमें वर्षाका होना बन्द कर दिया था उस समय क्या मेघोंने मेरे वाणोंसे विंघकर ही यथेष्ट जल नहीं वरसाया १॥ ७॥ हमारे गुरु (इबसुर) जरासन्धको छोड़कर क्या पृथिवीके और समी नृपतिगण मेरे वाहुवल्से भयमीत होकर मेरे सामने शिर नहीं झुकाते १॥ ८॥

हे दैत्यश्रेष्ठगण ! देवताओं के प्रति मेरे चित्तमें अवज्ञा होती है और हे वीरगण ! उन्हें अपने (मेरे) वधका यत्न करते देखकर तो मुझे हँसी आती है ॥ ९ ॥ तथापि हे दैत्येन्द्रो ! उन दुष्ट और दुरात्माओं- के अपकारके लिये मुझे और भी अधिक प्रयत्न करना चाहिये ॥ १० ॥ अतः पृथिवीमें जो कोई यशस्वी और यज्ञकर्ता हों उनका देवताओं के अपकारके लिये सर्वथा वध कर देना चाहिये ॥ ११ ॥

उत्पन्नश्रापि मे मृत्युर्भृतपूर्वस्स वै किल । इत्येतदारिका प्राह देवकीगर्भसम्भवा ।।१२।। तसाद्वालेषु च परो यतः कार्यो महीतले। यत्रोद्रिक्तं बलं बाले स हन्तव्यः प्रयत्नतः ॥१३॥ इत्याज्ञाप्यासुरान्कंसः प्रविश्याशु गृहं ततः । म्रामेच वसुदेवं च देवकीं च निरोधतः ॥१४॥

३७६

कंस उवाच

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवैते मयाधुना । कोऽप्यन्य एव नाञ्चाय बालो मम समुद्रतः ।।१५॥ तदलं परितापेन नूनं तद्भाविनो हि ते। अर्भका युवयोर्दोपाचायुषो यद्वियोजिताः ॥१६॥

श्रीपराशर उवाच

इत्याश्वास्य विम्रुक्त्वा च कंसत्तौ परिशङ्कितः ।

देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुई वालिकाने यह भी कहा है कि, वह मेरा भूतपूर्व (प्रथम जन्मका) काल निश्चय ही उत्पन्न हो चुका है ॥ १२ ॥ अतः आजकल पृथिवीपर उत्पन्न हुए बालकोंके विषयमें विशेष सावधानी रखनी चाहिये और जिस बालकमें विशेष वलका उद्देक हो उसे यत्नपूर्वक मार डाल्ना चाहिये ॥ १३॥ असुरों-को इस प्रकार आज्ञा दे कंसने कारागृहमें जाकर तुरन्त ही वसुदेव और देवकीको वन्धनसे मुक्त कर दिया॥ १४॥

कंस बोळा-मैंने अवतक आप दोनोंके वालकोंकी तो वृथा ही हत्या की, मेरा नाश करनेके छिये तो कोई और ही वालक उत्पन्न हो गया है ॥ १५॥ परन्तु आपछोग इसका कुछ दुःख न मानें क्योंकि उन बालकोंकी होनहार ऐसी ही थी। आपलोगोंके प्रारव्ध-दोषसे ही उन वालकोंको अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ा है।। १६॥

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विजश्रेष्ठ! उन्हें इस प्रकार ढाँढ्स बँघा और वन्धनसे मुक्तकर कंसने शङ्कित अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठ प्रविवेश ततः स्वक्रम् ॥१७॥ चित्तसे अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥ १०॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पश्चमेंऽशे चतुर्थोऽच्यायः ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

पूतना-वध।

श्रीपराशर उवाच

विद्युक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शकटं गतः। प्रहृष्टं दृष्टवात्रन्दं पुत्रो जातो ममेति वै ॥ १ ॥ वसुदेवोऽपि तं प्राह दिष्टचा दिष्टचेति सादरम्। वार्द्धकेऽपि सम्रत्पन्नस्तनयोऽयं तवाधुना ॥ २ ॥ दत्तो हि वार्षिकस्सर्वो भवद्भिर्नृपतेः करः। यद्रथमागतास्तसानात्र स्थेयं महाधनैः ॥ ३॥ यद्र्थमागताः कार्यं तिक्रप्यकं किमास्यते ।

श्रीपराशरजी बोले-बन्दीगृहसे छूटते ही वसुदेव-जी नन्दजीके छकड़ेके पास गये तो उन्हें इस समाचारसे अत्यन्त प्रसन्न देखा कि 'मेरे पुत्रका जन्म हुआ है' ॥ १॥ तव वसुदेवजीने भी उनसे आदरपूर्वक कहा-अब बृद्धावस्थामें भी आपने पुत्रका मुख देख लिया यह वड़े ही सौभाग्यकी बात है ॥२॥ आपलोग जिसलिये यहाँ आये ये वह राजाका सारा वार्षिक कर दे ही चुके हैं। यहाँ धनवान् पुरुषोंको और अधिक न ठहरना चाहिये ॥ ३॥ आपछोग जिसछिये यहाँ आये ये वह कार्य पूरा हो चुका, अब और अधिक किसलिये ठहरे हुए हैं ? [यहाँ देरतक ठहरना ठीक नहीं है] अतः

भवद्भिर्गम्यतां नन्द तच्छीघं निजगोक्कलम् ॥ ४ ॥ ममापि वालकस्तत्र रोहिणीप्रभवो हि यः। स रक्षणीयो भवता यथायं तनयो निजः॥५॥ इत्युक्ताः प्रययुर्गोपा नन्दगोपपुरोगमाः। शकटारोपितैर्भाण्डैः करं दत्त्वा महावलाः ॥ ६ ॥ वसतां गोकुले तेषां पूतना वालघातिनी। सुप्तं कृष्णग्रुपादाय रात्रौ तस्मै स्तनं ददौ ॥ ७ ॥ यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना सम्प्रयच्छति । तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं वालकस्योपहन्यते ॥ ८॥ कृष्णस्तु तत्स्तनं गाढं कराभ्यामतिपीडितम् । गृहीत्वा प्राणसहितं पपौ क्रोधसमन्वितः ॥ ९ ॥ सातिम्रक्तमहारावा विच्छित्रस्रायुवन्धना। पपात पूतना भूमा अियमाणातिभीपणा ।।१०।। तन्नादश्रुतिसन्त्रस्ताः प्रबुद्धास्ते त्रजौकसः । दृहशुः पूतनोत्सङ्गे कृष्णं तां च निपातिताम्।।११।। आदाय कृष्णं सन्त्रस्ता यशोदापि द्विजोत्तम। गोपुच्छभ्रामणेनाथ वालदोषमपाकरोत् ॥१२॥ गोकरीपम्रपादाय नन्दगोपोऽपि मस्तके। कृष्णस्य प्रददो रक्षां कुर्वश्रेतदुदीरयन् ॥१३॥ नन्दगोप उवाच

रक्षतु त्वामशेषाणां भृतानां प्रभवो हरिः ।

यस्य नाभिसमुद्भृतपङ्कजादभवज्जगत् ॥१४॥

येन दंष्ट्राप्रविष्टता धारयत्यवनिर्जगत् ।

वराहरूपधृग्देवस्स त्वां रक्षतु केशवः ॥१५॥

नखाङ्करिविनिर्मिन्नवैरिवक्षस्थलो विभ्रः ।

नृसिंहरूपी सर्वत्र रक्षतु त्वां जनार्दनः ॥१६॥

वामनो रक्षतु सदा भवन्तं यः क्षणादभूत् ।

त्रिविक्रमः क्रमाकान्तवैलोक्यः स्फुरदायुषः॥१७॥

हे नन्दजी ! आपलोग शीघ्र ही अपने गोकुलको जाइये ॥ ४ ॥ वहाँपर रोहिणीसे उत्पन्न हुआ जो मेरा पुत्र है उसकी भी आप उसी तरह रक्षा कीजियेगा जैसे अपने इस वालककी ॥ ५ ॥

वसुदेवजीं ऐसा कहनेपर नन्द आदि महा-तळवान् गोपगण छकड़ों में रखकर छाये हुए भाण्डों से कर चुकाकर चल्ने गये ॥ ६ ॥ उनके गोकुलमें रहते समय वाल्र्घातिनी पूतनाने रात्रिके समय सोये हुए कृष्णको गोदमें लेकर उसके मुखमें अपना स्तन दे दिया ॥ ७ ॥ रात्रिके समय पूतना जिस-जिस वाल्र्क-के मुखमें अपना स्तन दे देती थी उसीका शरीर तत्काल नष्ट हो जाता था ॥ ८ ॥ कृष्णचन्द्रने क्रोध-पूर्वक उसके स्तनको अपने हार्थोंसे खूब दबाकर पकड़ ल्या और उसे उसके प्राणोंके सहित पीने लगे ॥ ९ ॥ तब स्नायु-वन्धनोंके शियिल हो जानेसे पूतना घोर शब्द करती हुई मरते समय महामयङ्कररूप धारणकर पृथिवीपर गिर पड़ी ॥१०॥ उसके घोर नादको सुनकर भयभीत हुए ब्रजवासीगण जाग उठे और देखा कि कृष्ण पूत्नाकी गोदमें हैं और वह मारी गयी है ॥११॥

हे द्विजोत्तम! तब भयभीता यशोदाने कृष्णको गोदमें छेकर उन्हें गौकी पूँछसे झाड़कर वाछकका प्रह-दोष निवारण किया ॥१२॥ नन्दगोपने भी आगे-के वाक्य कहकर विधिपूर्वक रक्षा करते हुए कृष्णके मस्तकपर गोवरका चूर्ण छगाया ॥१३॥

नन्दगोप बोले-जिनकी नामिसे प्रकट हुए कमल-से सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है वे सम्पूर्ण भूतोंके आदिस्थान श्रीहरि तेरी रक्षा करें ॥१४॥ जिनकी दाढ़ोंके अग्रमागपर स्थापित होकर भूमि सम्पूर्ण जगत्को धारण करती है वे वराह-रूप-धारी श्रीकेशव तेरी रक्षा करें ॥१५॥ जिन विमुने अपने नखाग्रोंसे शत्रुके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर दिया था वे नृसिंह-रूपी जनार्दन तेरी सर्वत्र रक्षा करें ॥१६॥ जिन्होंने क्षणमात्रमें सशस्त्र त्रिविक्रमरूप धारण करके अपने तीन पर्गोसे त्रिलोकीको नाप लिया था वे वामन-मगवान् तेरी सर्वदा रक्षा करें ॥१७॥ गोविन्द तेरे शिरस्ते पातु गोविन्दः कण्ठं रक्षतु केशवः ।

गुद्धं च जठरं विष्णुर्जङ्के पादौ जनार्दनः ॥१८॥

गुद्धं बाहू प्रवाहू च मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।

रक्षत्वच्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽच्ययः ॥१९॥

शार्कचक्रगदापाणेश्शङ्खनादहताः क्षयम् ।

गच्छन्तु प्रेतकूष्माण्डराक्षसा ये तवाहिताः ॥२०॥

त्वां पातु दिक्षु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुद्धदनः ।

ह्वीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वां महीघरः ॥२१॥

श्रीपराशर उवाच

एवं कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन वालकः। नन्दगोपने वालक कृ शायितश्चकटस्याधो बालपर्यङ्किकातले ॥२२॥ पर सुला दिया ॥२२ ते च गोपा महद्दष्ट्वा पूतनायाः कलेवरम्। वरको देखकर उन स्मृतायाः परमं त्रासं विस्मयं च तदा ययुः ॥२३॥ विस्मय हुआ ॥२३॥

शिरकी, केशव कण्ठकी, विष्णु गुह्यस्थान और जठरकी तथा जनार्दन जंघा और चरणोंकी रक्षा करें ॥१८॥ तेरे मुख,वाहु, प्रवाहु, मन और सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी अखण्ड-ऐस्वर्यसे सम्पन्न अविनाशी श्रीनारायण रक्षा करें ॥१९॥ तेरे अनिष्ट करनेवाले जो प्रेत, कृष्माण्ड और राक्षस हों वे शार्क्न धनुष, चक्र और गदा धारण करनेवाले विष्णुमगवान्की शङ्ख-ध्वनिसे नष्ट हो जायँ ॥२०॥ मगवान् वैकुण्ठ दिशाओंमें, मधुसूदन विदिशाओं (कोणों)में, हृषीकेश आकाशमें तथा पृथिवीको धारण करनेवाले श्रीशेषजी पृथिवीपर तेरी रक्षा करें ॥२१॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार स्वस्तिवाचन कर नन्दगोपने वालक कृष्णको छकड़ेके नीचे एक खटोले-पर सुला दिया ॥२२॥ मरी हुई पूतनाके महान् कले-वरको देखकर उन सभी गोपोंको अत्यन्त मय और विस्मय हुआ ॥२३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमें ऽशे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५॥

छठा अध्याय

शकटमञ्जन, यमलार्ज्जन-उद्धार, वजवासियोंका गोकुलसे वृन्दावनमें जाना और वर्षा-वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

कदाचिच्छकटसाधदशयानो मधुस्रदनः।
चिक्षेप चरणावृर्ध्वं स्तन्यार्था प्ररुरोद ह॥१॥
तस्य पादप्रहारेण शकटं परिवर्तितम्।
विध्वस्तकुम्भभाण्डं तद्विपरीतं पपात वै॥२॥
ततो हाहाकृतं सर्वो गोपगोपीजनो द्विज ।
आजगामाथ दृदशे वालग्रुत्तानशायिनम्॥३॥
गोपाः केनेति केनेदं शकटं परिवर्तितम्।
तत्रैव वालकाः प्रोचुर्वालेनानेन पातितम्॥४॥
रदता दृष्टमसाभिः पादिविश्वेपपातितम्।
शकटं परिवृत्तं वै नैतदन्यस्य चेष्टितम्॥५॥

श्रीपराशरजी बोले-एक दिन छकड़ेके नीचे सोये हुए मधुसूदनने दूधके लिये रोते-रोते जपरको छात मारी ॥ १ ॥ उनकी छात लगते ही वह छकड़ा छोट गया, उसमें रखे हुए कुम्भ और माण्ड आदि फूट गये और वह उलटा जा पड़ा ॥ २ ॥ हे द्विज ! उस समय हाहाकार मच गया, समस्त गोप-गोपीगण वहाँ आ पहुँचे और उस वालकको उतान सोये हुए देखा ॥ ३ ॥ तब गोपगण पूछने लगे कि 'इस छकड़े-को किसने उलट दिया !' तो वहाँपर खेलते हुए बालकोंने कहा—''इस कृष्णने ही गिराया है ॥ १ ॥ हमने अपनी आँखोंसे देखा है कि रोते-रोते इसकी छात लगनेसे ही यह छकड़ा गिरकर उलट गया है । यह और किसीका काम नहीं है" ॥ ५॥

१ शुरनोंके नीचेका भाग।

ततः पुनरतीवासन्गोपा विस्मयचेतसः। नन्दगोपोऽपि जग्राह वालमत्यन्तविसितः ॥ ६ ॥ यशोदा शकटारूढभग्रभाण्डकपालिकाः। शकटं चार्चयामास दिधपुष्पफलाक्षतैः॥ ७॥ गर्गश्र गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदितः। प्रच्छन एव गोपानां संस्कारानकरोत्त्रयोः ॥ ८॥ ज्येष्ठं च राममित्याह कृष्णं चैव तथावरम् । गर्गी मतिमतां श्रेष्ठो नाम क्वन्महामतिः॥ ९॥ खल्पेनैव त कालेन रिक्निणौ तौ तदा बजे । घृष्टजानुकरौ विप्र वभूवतुरुभावपि ॥१०॥ करीपमस्पदिग्धाङ्गौ अममाणावितस्ततः। न निवारियतं शेके यशोदा तौ न रोहिणी ।।११।। गोवाटमध्ये क्रीडन्तौ वत्सवाटं गतौ पुनः । तदहर्जातगोवत्सप्रच्छाकर्पणतत्परौ 118311 यदा यशोदा तौ वालावेकस्थानचरावुभौ। श्रशाक नो वारियतं क्रीडन्तावतिचश्रलौ ॥१३॥ दाम्रा मध्ये ततो बद्धा ववन्ध तमुळ्खले। कृष्णमक्रिष्टकर्माणमाह चेदममर्पिता ॥१४॥ यदि शक्रोपि गच्छ त्वमतिचश्चलचेष्टित । इत्युक्त्वाथ निजं कर्म सा चकार कुटुम्बिनी ॥१५॥ व्यग्रायामथ तस्यां स कर्षमाण उल्रुखलम् । यमलार्जनमध्येन जगाम कमलेक्षणः ॥१६॥ कर्पता वृक्षयोर्मध्ये तिर्यग्गतम्बद्धसलम्। भग्रावुतुङ्गशाखाग्रौ तेन तौ यमलार्जुनौ ॥१७॥ कटकटाशब्दसमाकर्णनतत्परः ततः आजगाम व्रजजनो ददर्श च महाद्वमौ ॥१८॥ नवोद्गताल्पदन्तांशुसितहासं च बालकम्। तयोर्मध्यगतं दाम्ना वद्धं गाढं तथोद्ररे ॥१९॥

यह सुनकर गोपगणके चित्तमें अत्यन्त विस्मय हुआ तथा नन्दगोपने अत्यन्त चिक्तत होकर वालक-को उठा लिया ॥ ६ ॥ फिर यशोदाने भी छकड़ेमें रखे हुए फ़टे भाण्डोंके टुकड़ोंकी और उस छकड़ेकी दही, पुष्प, अक्षत और फल आदिसे पृजा की ॥ ७॥

इसी समय वसुदेवजीके कहनेसे गर्गाचार्यने गोपोंसे छिपे-छिपे, गोकुलमें आकर उन दोनों वालकोंके [द्विजोचित] संस्कार किये॥ ८॥ उन दोनोंके नाम-करण-संस्कार करते हुए महामित गर्गजीने वड़ेका नाम राम और छोटेका कृष्ण वतलाया॥ ९॥ हे विप्र! वे दोनों वालक थोड़े ही दिनोंमें गौओंके गोष्टमें रेंगते-रेंगते हाथ और घुटनोंके वल चलनेवाले हो गये॥ १०॥ गोवर और राख-मरे शरीरसे इथर-उधर चूमते हुए उन वालकोंको यशोदा और रोहिणी रोक नहीं सकती थीं॥११॥ कमी वे गौओंके घोषमें खेलते और कभी वलड़ोंके मध्यमें चले जाते तथा कमी उसी दिन जन्मे हुए वलड़ोंकी पूँछ पकड़कर खींचने लगते॥१२॥

एक दिन जब यशोदा, सदा एक ही स्थानपर साथ-साथ खेळनेवाळे उन दोनों अत्यन्त चञ्चळ बाळकोंको न रोक सकी तो उसने अनायास ही सब कर्म करनेवाळे कृष्णको रस्सीसे कटिमागमें कसकर ऊखळमें बाँघ दिया और रोषपूर्वक इस प्रकार कहने छगी—॥१३-१४॥ "अरे चञ्चळ! अब तुझमें सामर्घ्य हो तो चळा जा।" ऐसा कहकर कुटुम्बिनी यशोदा अपने घरके घन्धेमें छग गयी॥१५॥

उसके गृहकार्यमें व्यप्न हो जानेपर कमलनयन कृष्ण ऊखलको खींचते-खींचते यमलार्जु नके बीचमें गये॥१६॥ और उन दोनों वृक्षोंके बीचमें तिरली पृश्ची हुई ऊखलको खींचते हुए उन्होंने ऊँची शाखाओंबाले यमलार्जु न-वृक्षको उखाइ डाला॥१०॥ तब उनके उखड़नेका कट-कट शब्द सुनकर वहाँ ब्रजवासीलोग दौड़ आये और उन दोनों महावृक्षोंको तथा उनके बीचमें कमरमें रस्सीसे कसकर बँघे हुए बालक-को नन्हें-नन्हें अल्प दाँतोंकी स्वेत किरणोंसे ततश्र दामोदरतां स यथौ दामबन्धनात्।।२०।।

गोपद्यद्धास्ततः सर्वे नन्दगोपपुरोगमाः ।
मन्त्रयामासुरुद्धिमा महोत्पातातिभीरवः ॥२१॥
स्थानेनेह न नः कार्यं त्रजामोऽन्यन्महावनम् ।
उत्पाता बहवो ह्यत्र दश्यन्ते नाशहेतवः ॥२२॥
पूतनाया विनाशश्र शकटस्य विपर्ययः ।
विना वातादिदोषेण द्रुमयोः पतनं तथा ॥२३॥
वृन्दावनमितः स्थानात्तस्माद्गच्छाम मा चिरम् ।
यावद्भौममहोत्पातदोषो नाभिभवेद्रजम् ॥२४॥

इति कृत्वा मतिं सर्वे गमने ते वजौकसः । ऊचुस्खं खं कुलं शीघं गम्यतां मा विलम्बंथ।।२५॥ ततः क्षणेन प्रययुः शकटैर्गोधनैस्तथा। युथशो वत्सपालाश्च कालयन्तो व्रजीकसः ॥२६॥ द्रव्यावयवनिर्द्धतं क्षणमात्रेण तत्तथा। काकभाससमाकीर्णं व्रजस्थानमभूद्द्रिज ॥२७॥ वृन्दावनं भगवता कृष्णेनाक्किष्टकर्मणा। श्रुमेन मनसा ध्यातं गवां सिद्धिमभीप्सता।।२८।। ततस्तत्रातिरूक्षेऽपि घर्मकाले द्विजोत्तम । प्रावृद्काल इवोद्भृतं नवशृष्पं समन्ततः ॥२९॥ स समावासितः सर्वो व्रजो वृन्दावने ततः । शकटीवाटपर्यन्तश्रन्द्राद्धीकारसंस्थितिः वत्सपालौं च संवृत्तौ रामदामोदरौ ततः। एकस्थानस्थितौ गोष्ठे चेरतुर्वाललीलया।।३१।। वर्हिपत्रकृतापीडौ वन्यपुष्पावतंसको । गोपवेणुकृतातोद्यपत्रवाद्यकृतस्वनौ ॥३२॥ काकपक्षधरौ बालौ कुमाराविव पावकी।

शुभ्र हास करते देखा। तभीसे रस्सीसे वॅथनेके कारण उनका नाम दामोदर पड़ा ॥१८-२०॥

तब नन्दगोप आदि समस्त वृद्ध गोपोंने महान् उत्पातोंके कारण अत्यन्त भयभीत होकर आपसमें यह सलाह की:—॥२१॥ 'अब इस स्थानपर रहनेका हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, हमें किसी और महावनको चलना चाहिये। क्योंकि यहाँ नाराके कारणखरूप, पूतना-वध, छकड़ेका लोट जाना तथा आँघी आदि किसी दोषके बिना ही वृक्षोंका गिर पड़ना इत्यादि बहुत-से उत्पात दिखायी देने लगे हैं॥२२-२३॥अतः जबतक कोई भूमिसम्बन्धी महान् उत्पात त्रजको नष्ट न करे तवतक शीघ्र ही हमलोग इस स्थानसे वृन्दावनको चल दे॥२४॥

इस प्रकार वे समस्त व्रजवासी चलनेका विचारकर अपने-अपने कुदुम्बके लोगोंसे कहने लगे—'शीप्र ही चलो, देरी मत करो'॥२५॥ तव वे व्रजवासी बरसपाल दल वाँधकर एक क्षणमें ही लकड़ों और गौओंके साथ उन्हें हाँकते हुए चल दिये॥२६॥ हे द्विज ! बस्तुओंके अवशिष्टांशोंसे युक्त वह व्रजभूमि क्षणमरमें ही काक तथा मास आदि पक्षियोंसे व्याप्त हो गयी॥२७॥

तब छीछाविहारी भगवान् कृष्णने गौओंकी अभिवृद्धि-की इच्छासे अपने गुद्धचित्तसे वृन्दावन (नित्यवृन्दावन-धाम) का चिन्तन किया ॥२८॥ इससे, हे द्विजोत्तम ! अत्यन्त रुक्ष ग्रीष्मकाछमें भी वहाँ वर्षाऋतुके समान सब ओर नवीन दृब उत्पन्न हो गयी ॥२९॥ तब चारों ओर अर्द्धचन्द्राकारसे छकडोंकी बाड़ छगाकर वे समस्त ब्रजवासी वृन्दावनमें रहने छगे ॥३०॥

तदनन्तर राम और कृष्ण भी वछडोंके रक्षक हो गये और एक स्थानपर रहकर गोष्ठमें बाल्लीला करते हुए विचरने लगे ॥३१॥ वे काकपक्षधारी दोनों बालक शिरपर मयूर-पिच्लका मुकुट धारणकर तथा बन्यपुष्पोंके कर्णभूषण पहन ग्वालोचित वंशी आदिसे सब प्रकारके वार्जोकी ध्वनि करते तथा पत्तोंके बाजेसे ही नाना प्रकारकी ध्वनि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

हसन्तौ च रमन्तौ च चेरतुः स महावनम् ॥३३॥ क्रिचद्रहन्तावन्योन्यं क्रीडमानौ तथा परैः। गोपपुत्रेस्समं वत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः॥३४॥ कालेन गच्छता तौ तु सप्तवपौं महाव्रजे। सर्वस्य जगतः पालौ वत्सपालौ वभृवतुः॥३५॥

प्रावृट्कालस्ततोऽतीवमेघौषस्यगिताम्बरः । वभूव वारिधाराभिरैक्यं कुर्वन्दिशामिव।।३६॥ शक्रगोपाचितामही। प्ररूढनवशष्पाढचा मारकतीवासीत्पद्मरागविभूषिता ॥३७॥ ऊहरून्मार्गवाहीनि निम्नगाम्भांसि सर्वतः । मनांसि दुर्विनीतानां प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव।।३८।। न रेजेऽन्तरितश्चन्द्रो निर्मलो मलिनैर्घनैः। सद्वादिवादो मूर्खाणां प्रगल्भाभिरिवोक्तिभिः।३९। निर्शुणेनापि चापेन शक्रस्य गगने पदम्। अवाप्यताविवेकस्य नपस्येव परिग्रहे ॥४०॥ मेघपृष्ठे वलाकानां रराज विमला ततिः। कुलीनस्यातिशोभना ॥४१॥ दुर्वते वृत्तचेष्टेव न बवन्धाम्बरे स्थैर्यं विद्युदत्यन्तचश्रका। मैत्रीव प्रवरे प्रंसि दुर्जनेन प्रयोजिता ॥४२॥ वभृबुरस्पष्टास्तृणशब्पचयावृताः । अर्थान्तरमनुप्राप्ताः प्रजडानामिवोक्तयः ॥४३॥ उन्मत्तशिखिसारङ्गे तिसन्काले महावने।) कृष्णरामौ मुदा युक्तौ गोपालैश्वेरतुस्सह ॥४४॥ कचिद्गोभिस्समं रम्यं गेयतानरतावुभौ। चेरतुः क्वचिद्त्यर्थं शीतवृक्षतलाश्रितौ ॥४५॥

निकालते, स्कन्दके अंशभूत शाख-विशाख कुमारोंके समान हँसते और खेळते हुए उस महावनमें विचरने लगे ॥३२-३३॥ कभी एक-दूसरेको अपने पीठपर ले जाते तथा कभी अन्य ग्वालवालोंके साथ खेळते हुए वे वल्लाेको चराते साथ-साथ घूमते रहते ॥३४॥ इस प्रकार उस महावजमें रहते-रहते कुळ समय बीतनेपर वे निखिळ्लोकपालक बत्सपाल सात वर्षके हो गये ॥३५॥

तत्र मेघसमृहसे आकाशको आच्छादित करता हुआ तथा अतिशय वारिधाराओंसे दिशाओंको एकरूप करता हुआ वर्षाकाल आया ।।३६॥ उस समय नवीन द्वींके बढ़ जाने और वीरवइटियोंसे * व्याप्त हो जानेके कारण पृथिवी पद्मरागविभूषिता मर्कतमयी-सी जान पड्ने लगी ।।३७॥ जिस प्रकार नया धन पाकर दष्ट पुरुषोंका चित्त उच्छुङ्खल हो जाता है उसी प्रकार नदियोंका जल सब ओर अपना निर्दिष्ट मार्ग छोड़कर वहने लगा ॥ ३८ ॥ जैसे मूर्ख मनुष्योंकी भृष्टतापूर्ण उक्तियोंसे अच्छे वक्ताकी वाणी भी मिलन पड़ जाती है वैसे ही मिलन मेघोंसे आच्छादित रहनेके कारण निर्मल चन्द्रमा भी शोमाहीन हो गया ॥३९॥ जिस प्रकार विवेकहीन राजाके संगमें गुणहीन मनुष्य भी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार आकाशमण्डलमें गुणरहित इन्द्र-धनुष स्थित हो गया ॥४०॥ दुराचारी पुरुषमें कुळीन पुरुषकी निष्कपट शुभ चेष्टाके समान मेघ-मण्डलमें बगुलोंकी निर्मल पंक्ति सुशोभित होने लगी ॥४१॥ श्रेष्ठ पुरुषके साथ दुर्जनकी मित्रताके समान अत्यन्त चञ्चला विद्युत् आकाशमें स्थिर न रह सकी ॥४२॥ महामूर्ख मनुष्योंकी अन्यार्थिका उक्तियों-के समान मार्ग तृण और दूबसमृहसे आच्छादित होकर अस्पष्ट हो गये ॥४३॥

उस संमय उन्मत्त मयूर और चातकगणसे सुशोमित महावनमें कृष्ण और राम प्रसन्नतापूर्वक गोपकुमारोंके साथ विचरने छगे ॥४४॥ वे दोनों कमी गौओंके साथ मनोहर गान और तान छेड़ते तथा कभी अत्यन्त शीतछ वृक्षतछका आश्रय छेते हुए विचरते

[#] एक प्रकारके लाल कीहे, जो वर्षा-कालमें उत्पन्न होते हैं, उन्हें शक्रगोप और वीरवहूटी कहते हैं।

क्वचित्कद्म्बस्नक्चित्रौ मयुरस्रग्विराजितौ । विलिप्तौ कचिदासातां विविधैर्गिरिधातुभिः॥४६॥ पर्णश्चयासु संसुप्तौ कचित्रिद्रान्तरैषिणौ। कचिद्रजीत जीमृते हाहाकारखाकुलौ ॥४०॥ गायतामन्यगोपानां प्रशंसापरमौ कचित्। मयूरकेकानुगतौ गोपवेणप्रवादकौ ॥४८॥

नानाविधैर्भावैरुत्तमप्रीतिसंयुतौ । क्रीडन्तौ तौ वने तसिश्रेरतुस्तुष्टमानसौ ॥४९॥ विकाले च समं गोभिगीपवृन्दसमन्वितौ । विद्वत्याथ यथायोगं त्रजमेत्य महाबलौ ॥५०॥ गोपैस्समानैस्सहितौ क्रीडन्तावमराविव। एवं तावृषतुस्तत्र रामकृष्णौ महाद्युती ॥५१॥

रहते थे॥४५॥ वे कभी तो कदम्ब-पुष्पोंके हारसे विचित्र वेष बना छेते, कभी मयूर-पिच्छकी मालासे सुशोमित होते और कमी नाना प्रकारकी पर्वतीय धातुओंसे अपने शरीरको लिस कर लेते॥४६॥ कमी कुछ अपकी छेनेकी इच्छासे पत्तोंकी शय्यापर छेट जाते और कमी मेंघके गर्जनेपर 'हा हा' करके कोलाहल मचाने लगते ॥४७॥ कमी दूसरे गोपोंके गानेपर आप दोनों उसकी प्रशंसा करते और कभी ग्वालोंकी-सी बाँसुरी बजाते हुए मयूरकी बोलीका अनुकरण करने लगते ॥४८॥

इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त प्रीतिके साथ नाना प्रकारके भावोंसे परस्पर खेळते हुए प्रसन्नचित्तसे उस वनमें विचरने लगे ॥४९॥ सायङ्गालके समय वे महाबली बालक वनमें यथायोग्य विहार करनेके अनन्तर गौ और ग्वालबालोंके साथ व्रजमें लौट आते थे । । ५०।। इस तरह अपने समवयस्क गोपगणके साथ देवताओं के समान क्रीडा करते हुए वे महा-तेजस्वी राम और कृष्ण वहाँ रहने छगे ॥५१॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चर्में ऽशे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

कालिय-द्मन।

श्रीपराशर उवाच

एकदा तु विना रामं कृष्णो वृन्दावनं ययौ । विचचार वृतो गोपैर्वन्यपुष्पस्रगुज्ज्वलः ॥ १॥ स जगामाथ कालिन्दीं लोलक्छोलशालिनीम्। तीरसंलयफेनौंघैईसन्तीमिव सर्वतः तस्याञ्चातिमहाभीमं विपामिश्रितवारिकम्। इदं कालियनागस्य ददर्शातिविभीषणम् ॥ ३॥ विषामिना प्रसरता दग्धतीरमहीरुहम्। वाताहताम्बुविश्वेपस्पर्शद्ग्धविहङ्गमम् तमतीव महारौद्रं मृत्युवक्त्रमिवापरम् । विलोक्य चिन्तयामास भगवान्मधुद्धद्वः ॥ ५ ॥

श्रीपराशरजी बोले-एक दिन रामको विना साथ लिये कृष्ण अकेले ही वृन्दावनको गये और वहाँ वन्य पुष्पोंकी मालाओंसे सुशोमित हो गोपगणसे घिरे हुए विचरने छगे ॥ १ ॥ घूमते-घूमते वे चञ्चल तरङ्गोंसे शोभित यमुनाके तटपर जा पहुँचे जो किनारों-पर फेनके इकट्ठे हो जानेसे मानो सत्र ओरसे हँस रही थी ॥ २ ॥ यमुनाजीमें उन्होंने विषाग्निसे सन्तप्त जलवाला कालियनागका महाभयंकर कुण्ड देखा ॥ ३॥ उसकी विषाग्निके प्रसारसे किनारेके वृक्ष जल गये थे और वायुके थपेड़ोंसे उछलते हुए जलकणोंका स्पर्श होनेसे पक्षिगण दग्ध हो जाते थे ॥ ४ ॥

मृत्युके अपर मुखके समान उस महाभयंकर कुण्ड-मास भगवान्मधुद्धद्नः ॥ ५॥ को देखकर भगवान् मधुसूदनने विचार किया—॥ ५॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

असिन्यसित दुष्टात्मा कालियोऽसौ विषायुधः ।
यो मया निर्जितस्त्यक्त्वा दुष्टो नष्टः पयोनिधिम् ।६।
तेनेयं दृषिता सर्वा यम्रना सागरङ्गमा ।
न नरैगोंधनैश्वापि तृपार्तिरुपभुज्यते ॥ ७॥
तदस्य नागराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया ।
निस्त्रासास्तु सुखं येन चरेयुर्वजवासिनः ॥ ८॥
एतद्र्थं तु लोकेऽसिन्नवृतारः कृतो मया ।
यदेपामुत्पथस्थानां कार्या शान्तिदुरात्मनाम्॥ ९॥
तदेतं नातिदृरस्यं कदम्वमुरुशास्त्रिनम् ।
अधिरुद्ध पतिष्यामि दृदेऽसिन्ननिलाशिनः॥१०॥

श्रीपराशर उवाच

इत्थं विचिन्त्य बद्धां च गाढं परिकरं ततः । निपपात हुदे तत्र नागराजस्य वेगतः ॥११॥ तेनातिपतता तत्र श्लोभितस्स महादृदः। अत्यर्थं द्रजातांस्तु समसिश्चन्महीरुहान् ॥१२॥ तेऽहिदुष्टविषज्वालातप्ताम्बुपवनोक्षिताः जज्बद्धः पादपास्सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तराः १३ आस्फोटयामास तदा कृष्णो नागहदे भुजम् । तच्छब्दश्रवणाचाशु नागराजोऽभ्युपागमत् ॥१४॥ आताम्रनयनः कोपाद्विषज्वालाकुलैर्ध्वः। महाविषेश्वान्येरुरगैरनिलाशनैः ॥१५॥ नागपत्न्यश्च शतशो हारिहारोपशोभिताः। प्रकम्पिततनुक्षेपचलत्कुण्डलकान्तयः 118811 ततः प्रवेष्टितस्सर्पेस्स कृष्णो मोगवन्धनैः। द्दंशुस्तेऽपि तं कृष्णं विषज्वालाकुलैर्सुखैः ॥१७॥ तं तत्र पतितं दृष्ट्वा सर्पभोगैनिपीडितम्। गोपा व्रजमुपागम्य चुक्रुग्धः शोकलालसाः ॥१८॥ |

'इसमें दुष्टात्मा काल्यिनाग रहता है जिसका विष ही शक्त है और जो दुष्ट मुझ [अर्थात् मेरी विभूति गरुड] से पराजित हो समुद्रको छोड़कर भाग आया है ॥ ६ ॥ इसने इस समुद्रगामिनी सम्पूर्ण यमुनाको द्षित कर दिया है, अब इसका जल प्यासे मनुष्यों और गौओंके भी काममें नहीं आता है ॥ ७ ॥ अतः मुझे इस नागराजका दमन करना चाहिये, जिससे बजवासी छोग निर्मय होकर सुखपूर्वक रह सकें ॥८॥ 'इन कुमार्गगामी दुरात्माओंको शान्त करना चाहिये, इसिल्ये ही तो मैंने इस लोकमें अवतार लिया है ॥ ९ ॥ अतः अब मैं इस ऊँची-ऊँची शाखाओं-वाले पासहींके कदम्बवृक्षपर चढ़कर वायुमक्षी नागराजके कुण्डमें कृदता हूँ'॥ १०॥

श्रीपराशरजी बोले हे मैत्रेय ! ऐसा विचारकर भगवान् अपनी कमर कसकर वेगपूर्वक नागराजके कुण्डमें कूद पड़े ॥ ११ ॥ उनके कूदनेसे उस महा-हदने अत्यन्त क्षोमित होकर दूरस्थित वृक्षोंको भी भिगो दिया ॥ १२ ॥ उस सर्पके विषम विषकी ज्वालासे तपे हुए जलसे भीगनेके कारण वे वृक्ष तुरन्त ही जल उठे और उनकी ज्वालाओंसे सम्पूर्ण दिशाएँ व्याप्त हो गयों ॥ १३ ॥

तब कृष्णचन्द्रने उस नागकुण्डमें अपनी मुजाओंको ठोंका; उनका शब्द सुनते ही वह नागराज
तुरन्त उनके सम्मुख आ गया ॥ १४ ॥ उसके नेत्र
कोधसे कुछ ताम्रवर्ण हो रहे थे, मुखोंसे अग्निकी छपटें
निकल रही थीं और वह महाविपेले अन्य वायुमश्री
सपोंसे विरा हुआ या ॥ १५ ॥ उसके साथमें मनोहर
हारोंसे भूषिता और शरीर-कम्पनसे हिलते हुए कुण्डलोंकी कान्तिसे सुशोमिता सैकड़ों नागपित्तयाँ थीं ॥१६॥
तब सपोंने कुण्डलाकार होकर कृष्णचन्द्रको अपने
शरीरसे बाँध लिया और अपने विपाग्नि-सन्तप्त मुखोंसे
काटने लगे ॥ १७ ॥

तदनन्तर गोपगण कृष्णचन्द्रको नागकुण्डमें गिरा हुआ और सर्पोंके फणोंसे पीडित होता देख त्रजमें चले आये और शोकसे व्याकुल होकर रोने लगे॥१८॥ गोपा उचुः

प्य मोहं गतः कृष्णो मश्<u>त</u> वै कालियद्दे ।

सक्ष्यते नागराजेन तमागच्छत पश्यत ॥१९॥

तच्छुत्वा तत्र ते गोपा वज्रपातोपमं वचः ।

गोप्यश्र त्वरिता जग्ध्र्यशोदाप्रमुखा द्रम् ॥२०॥

हा हा कासाविति जनो गोपीनामतिविद्धलः ।

यशोदया समं भ्रान्तो द्वतप्रस्वलितं ययौ ॥२१॥

नन्दगोपश्र गोपाश्र रामश्राद्धतिकमः ।

त्वरितं यम्धनां जग्धः कृष्णदर्शनलालसाः ॥२२॥

दद्दश्रशापि ते तत्र सर्पराजवशङ्गतम् ।

निष्प्रयत्नीकृतं कृष्णं सर्पभोगविवेष्टितम् ॥२३॥

नन्दगोपोऽपि निश्रेष्टो न्यस्य पुत्रमुखे दशम् ।

यशोदा च महाभागा वभ्व म्रुनिसत्तम् ॥२४॥

गोप्यस्त्वन्या रुदन्त्यश्र दद्दश्रः शोककातराः ।

प्रोचुश्र केशवं प्रीत्या भयकातर्यगद्भदम् ॥२५॥

गोप्य उत्तुः

सर्वा यशोदया सार्ड विशामोऽत्र महाद्रदम् ।
सर्पराजस्य नो गन्तुमसाभिर्युज्यते व्रजम् ॥२६॥
दिवसः को विना सर्य विना चन्द्रेण का निशा ।
विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को व्रजः ॥२०॥
विनाकृता न यास्यामः कृष्णेनानेन गोकुलम् ।
अरम्यं नातिसेव्यं च वारिहीनं यथा सरः ॥२८॥
यत्र नेन्दीवरदलक्यामकान्तिरयं हरिः ।
तेनापि मातुर्वासेन रितरस्तीति विस्मयः ॥२९॥
उत्पुल्लपङ्कजदलस्पष्टकान्तिविलोचनम् ।
अपक्यन्त्यो हरिं दीनाः कथं गोष्ठे मविष्यथ ।३०॥
अत्यन्तमधुरालापहृताशेषमनोर्थम् ।

गोपगण बोले-आओ, आओ, देखो ! यह कृष्ण कालीदहमें हूबकर मृध्लित हो गया है, देखो इसे नागराज खाये जाता है ! ॥ १९ ॥ वज्रपातके समान उनके इन अमङ्गल वाक्योंको सुनकर गोपगण और यशोदा आदि गोपियाँ तुरन्त ही कालीदहपर दौड़ आयों ॥२०॥ 'हाय ! हाय ! वे कृष्ण कहाँ गये ?' इस प्रकार अत्यन्त व्याकुलतापूर्वक रोती हुई गोपियाँ यशोदाके साथ शीव्रतासे गिरती-पड़ती चलीं ॥ २१ ॥ नन्दजी तथा अन्यान्य गोपगण और अद्भुत-विक्रमशाली बलरामजी भी कृष्णदर्शनकी लालसासे शीव्रतापूर्वक यमुना-तट-पर आये ॥ २२ ॥

वहाँ आकर उन्होंने देखा कि कृष्णचन्द्र सर्पराजके चंगुलमें पँसे हुए हैं और उसने उन्हें अपने शरीरसे लपेटकर निरुपाय कर दिया है ॥ २३ ॥ हे मुनिसत्तम! महाभागा यशोदा और नन्दगोप भी पुत्रके मुखपर टकटकी लगाकर चेष्टाशून्य हो गये ॥ २४ ॥ अन्य गोपियोंने भी जब कृष्णचन्द्रको इस दशामें देखा तो वे शोकाकुल होकर रोने लगीं और भय तथा व्याकुलताके कारण गद्गदवाणीसे उनसे प्रीतिपूर्वक कहने लगीं ॥ २५ ॥

गोपियाँ बोलीं-अब हम सब भी यशोदाके साथ इस सर्पराजके महाकुण्डमें ही इबी जाती हैं, अब हमें ब्रजमें जाना उचित नहीं है ॥ २६ ॥ सूर्यके विना दिन कैसा ? चन्द्रमाके बिना रात्रि कैसी ? साँडके बिना गोएँ क्या ? ऐसे ही कृष्णके बिना व्रजमें भी क्या रक्खा है ? ॥ २७ ॥ कृष्णको बिना साथ लिये अब हम गोकुल नहीं जायँगी; क्योंकि इनके बिना वह जलहीन सरोवरके समान अत्यन्त अभव्य और असेव्य है ॥ २८ ॥ जहाँ नीलकमलदलकी-सी आभावाले ये स्यामसुन्दर हिर नहीं हैं उस मातृ-मन्दिरसे भी प्रीति होना अत्यन्त आश्चर्य ही है ॥ २९ ॥ अरी ! खिले हुए कमलदलके सहश कान्तियुक्त नेत्रोंवाले श्रीहरिको देखे बिना अत्यन्त दीन हुई तुम किस प्रकार वजमें रह सकोगी ? ॥ ३० ॥ जिन्होंने अपनी अत्यन्त मनोहर बोलीसे हमारे सम्पूर्ण मनोरथोंको

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

न विना पुण्डरीकाक्षं यास्यामो नन्दगोकुलम्।।३१।। भोगेनावेष्टितस्थापि सर्पराजस्य पश्यत । स्मितशोभि मुखं गोप्यः कृष्णस्यासद्विलोकने।३२।

श्रीपराशर उवाच

इति गोपीवचः श्रुत्वा रौहिणेयो महावलः । गोपांश्र त्रासविधुरान्विलोक्य स्तिमितेक्षणान्।।३३।। नन्दं च दीनमत्यर्थं न्यस्तदृष्टिं सतानने । मुच्छांकुलां यशोदां च कृष्णमाहात्मसंज्ञया ॥३४॥ किमिदं देवदेवेश भावोऽयं मानुपस्त्वया । व्यज्यतेऽत्यन्तमात्मानं किमनन्तं न वेत्सि यत्।३५। त्वमेव जगतो नाभिरराणामिव संश्रयः। कर्त्तापहर्त्ता पाता च त्रैलोक्यं त्वं त्रयीमयः ॥३६॥ सेन्द्रै रुद्राग्रिवसुभिरादित्यैर्मरुदश्चिभिः चिन्त्यसे त्वमचिन्त्यात्मन् समस्तैश्रव योगिभिः३७ जगत्यर्थं जगन्नाथ भारावतरणेच्छया। अवतीर्णोऽसि मर्त्येषु तवांशश्राहमग्रजः ॥३८॥ मनुष्यलीलां भगवन् भजता भवता सुराः। विडम्बयन्तस्त्वल्लीलां सर्व एव सहासते ॥३९॥ अवतार्य भवान्पूर्व गोकुले तु सुराङ्गनाः । क्रीडार्थमात्मनः पश्चादवतीर्णोऽसि शाश्वत ॥४०॥ अत्रावतीर्णयोः कृष्ण गोपा एव हि बान्धवाः। गोप्यश्र सीदतः कसादेतान्वन्धृतुपेक्षसे ॥४१॥ दर्शितो मानुषो भावो दर्शितं वालचापलम् । तद्यं दम्यतां कृष्ण दुष्टात्मा दश्चनायुधः ॥४२॥

श्रीपराशर उनाच इति संस्मारितः कृष्णः सितभिन्नोष्टसम्पुटः । अपने वशीभूत कर लिया है उन कमलनयन कृष्णचन्द्रके विना हम नन्दर्जाके गोवुलको नहीं जायँगी ॥ ३१ ॥ अरी गोपियो ! देखो, सर्पराजके फणसे आवृत होकर भी श्रीकृष्णका मुख हमें देखकर मधुर मुसकानसे सुशोभित हो रहा है ॥ ३२ ॥

श्रीपराशरजी बोछे - गोपियोंके ऐसे वचन सुनकर तथा त्रासविद्वल चित्रतनेत्र गोपोंको, पुत्रके मुखपर दृष्टि लगाये अत्यन्त दीन नन्दजीको और मुर्च्छाकुल यशोदाको देखकर महावछी रोहिणीनन्दन वछरामजीने अपने सङ्केतमें कृष्णजीसे कहा-॥३३-३४॥ 'हे देवदेवेश्वर ! क्या आप अपनेको अनन्त नहीं जानते ? फिर किसल्यि यह अत्यन्त मानव-भाव व्यक्त कर रहे हैं ॥३५॥ पहियोंकी नामि जिस प्रकार अरोंका आश्रयं होती है उसी प्रकार आप ही जगत्के आश्रय, कत्ती, हत्ती और रक्षक हैं तथा आप ही त्रैछोक्य-खरूप और वेदत्रयीमय हैं ॥३६॥ हे अचिन्त्यात्मन् ! इन्द्र, रुद्र, अग्नि वसु, आदित्य, मरुद्रण और अश्विनीकुमार तथा समस्त योगिजन आपहीका चिन्तन करते हैं ॥३०॥ हे जगनाथ ! संसारके हितके लिये पृथिवीका भार उतारनेकी इच्छासे ही आपने मर्त्यलोकमें अवतार लिया है; आपका अग्रज में भी आपहीका अंश हूँ ||३८|| हे भगवन् ! आपके मनुष्य-छीछा करनेपर ये गोपवेषधारी समस्त देवगण भी आपकी छीछाओंका अनुकरण करते हुए आपहीके साथ रहते हैं ॥३९॥ हे शाश्वत ! पहले अपने विहारार्थ देवाङ्गनाओंको गोपीरूपसे गोकुलमें अवतीर्णकर पीछे आपने अवतार लिया है ॥४०॥ हे कृष्ण ! यहाँ अवतीर्ण होनेपर हम दोनोंके तो ये गोप और गोपियाँ ही वान्धव हैं: फिर अपने इन दुखी वान्धवोंकी आप क्यों उपेक्षा करते हैं ॥४१॥ हे कृष्ण ! यह मनुष्यमाव और वालचापल्य तो आप बहुत दिखा चुके, अब तो शीव्र ही इस दुष्टात्माका जिसके शक्ष दाँत ही हैं, दमन कीजिये"॥४२॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर, मधुर मुसकानसे अपने ओष्टसम्पुटको आस्फोट्य मोचयामास खदेहं मोगिबन्धनात्।।४३।। आनम्य चापि हस्ताभ्याग्रभाभ्यां मध्यमं शिरः। आरुह्याग्रप्रशिरसः प्रणनत्तोंरुविक्रमः।।४४॥

प्राणाः फणेऽभवंश्वास्य कृष्णस्याङ्घ्रिनिकुट्टनैः।
यत्रोन्नति च क्रुरुते ननामास्य ततिक्ष्यरः ॥४५॥
मूर्च्छाग्रपाययौ भ्रान्त्या नागः कृष्णस्य रेचकैः।
दण्डपातिनपातेन ववाम रुधिरं वहु ॥४६॥
तं विग्रप्रशिरोग्रीवमास्येभ्यस्स्नुतशोणितम्।
विलोक्य करुणं जग्गुस्तत्पत्न्यो मधुस्रदनम् ॥४७॥

नागपत्न्य ऊचुः

श्वातोऽसि देवदेवेश सर्वश्वस्त्वमनुत्तमः।
परं ज्योतिरचिन्त्यं यत्तदंशः परमेश्वरः॥४८॥
न समर्थाः सुरास्तोतुं यमनन्यभवं विश्वम्।
स्वरूपवर्णनं तस्य कथं योषित्करिष्यति॥४९॥
यसाखिलमहीन्योमजलाग्निपवनात्मकम् ।
श्रक्षाण्डमल्पकाल्पांशः स्तोष्यामस्तं कथं वयम्॥५०॥
यतन्तो न विदुर्नित्यं यत्स्वरूपं हि योगिनः।
परमार्थमणोरल्पं स्थूलात्स्थूलं नताः सातम्॥५१॥
न यस्य जन्मने धाता यस्य चान्ताय नान्तकः।
स्थितिकर्त्ता न चान्योऽस्ति यस्य तसौ नमस्सदा।५२॥
कोपः खल्पोऽपि ते नास्ति स्थितिपालनमेव ते।
कारणं कालियस्यास्य दमने श्रूयतां वचः॥५३॥
स्थियोऽज्ञकम्प्यास्साध्नां मृदा दीनाश्व जन्तवः।
यतस्ततोऽस्य दीनस्य श्वम्यतां श्वमतां वर ॥५४॥।

खोलते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने उछलकर अपने शरीरको सर्पके वन्धनसे छुड़ा लिया ॥४३॥ और फिर अपने दोनों हाथोंसे उसका बीचका फण झुकाकर उस नतमस्तक सर्पके ऊपर चढ़कर बड़े बेगसे नाचने लगे ॥४४॥

कृष्णचन्द्रके चरणोंकी धमकसे उसके प्राण मुख्में आ गये, वह अपने जिस मस्तकको उठाता उसीपर कूदकर मगवान् उसे झुका देते ॥४५॥ श्रीकृष्णचन्द्र-जीकी भ्रान्ति (भ्रम), रेचक तथा दण्डपात नामकी [नृत्यसम्बन्धिनी] गतियोंके ताडनसे वह महास्प्रमृष्टित हो गया और उसने बहुत-सा रुधिर वमन किया ॥४६॥ इस प्रकार उसके सिर और ग्रीवाओंको झुके हुए तथा मुखोंसे रुधिर वहता देख उसकी पहियाँ करुणासे मरकर श्रीकृष्णचन्द्रके पास आयीं ॥४७॥

नागपितयाँ बोलीं—हे देवदेवेश्वर! हमने आप-को पहचान लिया; आप सर्वज्ञ और सर्वश्रेष्ठ हैं, जो अचिन्त्य और परम ज्योति है आप उसीके अंश परमेश्वर हैं ॥४८॥ जिन स्वयम्भू और व्यापक प्रमुकी स्तुति करनेमें देवगण भी समर्थ नहीं हैं उन्हीं आपके स्वरूपका हम स्नियाँ किस प्रकार वर्णन कर सकती हैं ? ॥४९॥ पृथिवी, आकाश, जल, अग्नि और वायुस्वरूप यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनका छोटे-से-छोटा अंश है, उसकी स्तुति हम किस प्रकार कर सर्केंगी ॥ ५०॥ योगिजन जिनके नित्यखरूप-को यह करनेपर भी नहीं जान पाते तथा जो परमार्थरूप अणुसे भी अणु और स्थूल्से भी स्थूल है उसे हम नमस्कार करती हैं ॥५१॥ जिनके जन्ममें विधाता और अन्तमें काल हेतु नहीं हैं तथा जिनका स्थितिकर्ता मी कोई अन्य नहीं है उन्हें सर्वदा नमस्कार करती हैं ॥५२॥ इस काल्यिनागके दमनमें आपको थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं है, केवल छोकरक्षा ही इसका हेतु है; अतः हमारा निवेदन सुनिये ॥५३॥ हे क्षमाशीलोंमें श्रेष्ठ ! साधु पुरुषोंको क्षियों तथा मूढ और दीन जन्तुओंपर सदा ही कृपा करनी चाहिये; अतः आप इस दीनका अपराध क्षमा

समस्तजगदाधारो भवानल्पवलः फणी। त्वत्पादपीडितो जह्यान्मुहूर्त्तार्द्धेन जीवितम् ॥५५॥

क पन्नगोऽल्पवीयोंऽयं क भवान्भवनाश्रयः। प्रीतिद्वेपौ समोत्कृष्टगोचरौ भवतोऽच्यय ॥५६॥ ततः कुरु जगत्स्वामिन्त्रसादमवसीदतः। प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तृभिक्षा प्रदीयताम् ।५७। भ्रवनेश जगनाथ महापुरुष पूर्वज । प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तृभिक्षां प्रयच्छ नः।५८। वेदान्तवेद्य देवेश दुष्टदैत्यनिवर्हण। प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तृभिक्षा प्रदीयताम्।५९।

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्ते ताभिराश्वस्य क्लान्तदेहोऽपि पन्नगः। प्रसीद देवदेवेति प्राह वाक्यं शनैः शनैः ॥६०॥ कालिय उवाच

तवाष्ट्रगुणमैश्वर्य नाथ खाभाविकं परम्। निरत्तातिशयं यस तस स्तोष्यामि किन्न्वहम् ।६१। त्वं परस्त्वं परस्याद्यः परं त्वत्तः परात्मक । परसात्परमो यस्त्वं तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम्।६२। यसाह्रह्मा च रुद्रश्च चन्द्रेन्द्रमरुदश्चिनः। वसवश्च सहादित्यैस्तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम् ॥६३॥ एकावयवस्रक्षमांशो यसैतद्खिलं जगत्। कल्पनावयवस्यांशस्तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम्।।६४॥ सदसद्रपिणो यस्य ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः।

कोजिये ॥५४॥ प्रभो आप सम्पूर्ण संसारके अधिष्ठान हैं और यह सर्प तो [आपकी अपेक्षा] अत्यन्त बल्हीन है। आपके चरणोंसे पीडित होकर तो यह आधे मुद्रुतमें ही अपने प्राण छोड़ देगा ॥५५॥

हे अन्यय ! प्रीति समानसे और द्वेष उत्कृष्टसे देखे जाते हैं; फिर कहाँ तो यह अल्पवीर्य सर्प और फहाँ अखिलमुवनाश्रय आप ? [इसके साथ आपका द्रेष कैसा ?] ॥५६॥ अतः हे जगत्स्वामिन ! इस दीनपर दया कीजिये। हे प्रमो ! अब यह नाग अपने प्राण छोड़ने ही चाहता है; कृपया हमें पतिकी मिक्षा दीजिये ॥ ५७ ॥ हे भुवनेश्वर ! हे जगन्नाथ ! हे महापुरुष ! हे पूर्वज ! यह नाग अव अपने प्राण छोड़ना ही चाहता है; कृपया आप हमें पतिकी भिक्षा दीजिये ॥ ५८॥ हे वेदान्तवेद्य देवेश्वर ! हे दुष्ट-दैत्य-दल्लन !! अत्र यह नाग अपने प्राण छोड़ना ही चाहता है; आप हमें पतिकी मिक्षा दीजिये ॥ ५९॥

श्रीपराशरजी बोले-नागपहियोंके ऐसा कहने-पर थका-माँदा होनेपर भी नागराज कुछ ढाँढस वाँध-कर धीरे-धीरे कहने छगा "हे देवदेव ! प्रसन्न होइये" ॥ ६०॥

कालियनाग बोला-हे नाथ ! आपका खामाविक अष्टगुणविशिष्ट परम ऐश्वर्य निरतिशय है । अर्थात् आपसे बढ़कर किसीका भी ऐश्वर्य नहीं है], अतः मैं किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकूँगा ? ॥६१॥ आप पर हैं, आप पर (मूलप्रकृति) के भी आदिकारण हैं, हे प्रात्मक ! परकी प्रवृत्ति मी आपहींसे हुई है, अतः आप परसे भी पर हैं फिर मैं किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकूँगा ?।।६२॥ जिनसे ब्रह्मा. रुद्र, चन्द्र, इन्द्र, मरुद्रण, अश्विनीकुमार, बसुगण और आदित्य आदि सभी उत्पन्न हुए हैं उन आपकी मैं किस प्रकार स्तुति कर सकुँगा ? ॥६३॥ यह सम्पूर्ण जगत् जिनके काल्पनिक अवयवका एक सूक्स अवयवांशमात्र है, उन आपकी मैं किस प्रकार स्तुति कर सकूँगा ? ॥६॥ जिन सदसत् (कार्य-कारण) खरूपके वास्तविक रूपको ब्रह्मा आदि देवेस्वर्गण भी परमार्थं न जानन्ति तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम्।६५। नहीं जानते उन आपकी मैं किस प्रकार स्तुति

ब्रह्माद्यैरचिंतो यस्तु गन्धपुष्पाजुलेपनैः ।
नन्दनादिसमुद्धतैस्सोऽर्च्यते वा कथं मया ।६६।
यस्यावताररूपाणि देवराजस्सदार्चिते ।
न वेत्ति परमं रूपं सोऽर्च्यते वा कथं मया ।।६७।।
विषयेम्यस्समाद्वत्य सर्वाक्षाणि च योगिनः ।
यमर्चयन्ति ध्यानेन सोऽर्च्यते वा कथं मया ।।६८।।
हृदि सङ्कल्प्य यहूपं ध्यानेनार्चन्ति योगिनः ।
मावपुष्पादिना नाथः सोऽर्च्यते वा कथं मया।।६९॥

सोऽहं ते देवदेवेश नार्चनादौ स्तुतौ न च ।
सामध्यवान् कृपामात्रमनोष्टत्तिः प्रसीद मे ॥७०॥
सर्पजातिरियं कृरा यसां जातोऽसि केशव ।
तत्स्वभावोऽयमत्रास्ति नापराधो ममाच्युत ॥७१॥
सृज्यते भवता सर्वं तथा संहियते जगत् ।
जातिरूपस्वभावाश्च सृज्यन्ते सृजता त्वया ॥७२॥

यथाहं भवता सृष्टो जात्या रूपेण चेश्वर ।
स्वभावेन च संयुक्तस्तथेदं चेष्टितं मया ॥७३॥
यद्यन्यथा प्रवर्तेयं देवदेव ततो मिय ।
न्याय्यो दण्डिनपातो व तवैव वचनं यथा ॥७४॥
तथाप्यक्ते जगत्स्वामिन्दण्डं पातितवान्मिय ।
स श्लाघ्योऽयं परो दण्डस्त्वत्तो मे नान्यतो वरः॥७५॥
हतवीर्यो हतिवयो दमितोऽहं त्वयाच्युत ।
जीवितं दीयतामेकमाज्ञापय करोमि किम्॥७६॥

कर सकूँगा ? ॥६५॥ जिनकी पृजा ब्रह्मा आदि देनाण नन्दनवनके पुष्प, गन्ध और अनुलेपन आदिसे करते हैं उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ ॥६६॥ देवराज इन्द्र जिनके अवताररूपोंकी सर्वदा पूजा करते हैं तथापि यथार्थ रूपको नहीं जान पाते, उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ ? ॥६७॥ योगिगण अपनी समस्त इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे खींचकर जिनका ध्यानद्वारा पूजन करते हैं उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ ॥६८॥ जिन प्रमुक्ते खरूपकी चित्तमें भावना करके योगिजन भावमय पुष्प आदिसे ध्यानद्वारा उपासना करते हैं उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ १॥ ६९॥

हे देवदेवेश्वर ! आपकी पूजा अथवा स्तुति करनेमें में सर्वथा असमर्थ हूँ, मेरी चित्तवृत्ति तो केवल आपकी कृपाकी ओर ही लगी हुई है, अतः आप मुझपर प्रसल होइये ॥ ७० ॥ हे केशव ! मेरा जिसमें जन्म हुआ है वह सर्पजाति अत्यन्त करूर होती है, यह मेरा जातीय खमाव है । हे अच्युत ! इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है ॥ ७१ ॥ इस सम्पूर्ण जगत्की रचना और संहार आप ही करते हैं । संसारकी रचनाके साथ उसके जाति, रूप और खमावोंको मी आप ही बनाते हैं ॥ ७२ ॥

हे ईश्वर ! आपने मुझे जाति, रूप और खमाबसे युक्त करके जैसा बनाया है उसीके अनुसार मैंने यह चेष्टा मी की है ॥ ७३ ॥ हे देवदेव ! यदि मेरा आचरण विपरीत हो तब तो अवस्य आपके कथनानुसार मुझे दण्ड देना उचित है ॥ ७४ ॥ तथापि हे जगत्सामिन् ! आपने मुझ अज्ञको जो दण्ड दिया है वह आपसे मिला हुआ दण्ड मेरेलिये कहीं अच्छा है, किन्तु दूसरेका वर मी अच्छा नहीं ॥ ७५ ॥ हे अच्युत ! आपने मेरे पुरुषार्थ और विषको नष्ट करके मेरा मली प्रकार मानमर्दन कर दिया है । अब केवल मुझे प्राणदान दीजिये और आज्ञा कीजिये कि मैं क्या कहाँ ! ॥ ७६ ॥

श्रीभगवानुवा्च

नात्र स्थेयं त्वया सर्प कदाचिद्यग्रनाजले । सपुत्रपरिवारस्त्वं सग्रुद्रसलिलं व्रज ॥७७॥ मत्पदानि च ते सर्प दृष्ट्वा मूर्द्धनि सागरे । गरुडः पन्नगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति ॥७८॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्त्वा सर्पराजं तं ग्रुमोच भगवान्हिरः।
प्रणम्य सोऽपि कृष्णाय जगाम पयसां विधिम्।७९।
पश्यतां सर्वभूतानां समृत्यसुतवान्धवः।
समस्तभार्यासहितः परित्यज्य खकं हृदम्॥८०॥
गते सर्पे परिष्वज्य मृतं पुनिरवागतम्।
गोपा मूर्द्धिन हार्देन सिपिचुर्नेत्रजैर्जलैः॥८१॥
कृष्णमक्षिष्टकर्माणमन्ये विस्मितचेतसः।
तुष्टुवुर्ग्रदिता गोपा दृष्ट्या शिवजलां नदीम्॥८२॥
गीयमानः स गोपीमिश्ररितैस्साधुचेष्टितैः।
संस्त्यमानो गोपैश्र कृष्णो व्रजग्रपागमत्॥८३॥

श्रीभगवान् बोले-हे सर्प ! अव तुझे इस यमुना-जलमें नहीं रहना चाहिये । त् शीप्र ही अपने पुत्र और परिवारके सहित समुद्रके जलमें चला जा ॥७७॥ तेरे मस्तकपर मेरे चरण चिह्नोंको देखकर समुद्रमें रहते हुए भी सर्पोंका शत्रु गरुड तुझपर प्रहार नहीं करेगा ॥ ७८॥

श्रीपराशरजी बोळे-सर्पराज काल्यिसे ऐसा कह भगवान् हरिने उसे छोड़ दिया और वह उन्हें प्रणाम करके समस्त प्राणियोंके देखते-देखते अपने सेवक, पुत्र, वन्धु और क्रियोंके सहित अपने उस कुण्डको छोड़कर समुद्रको चला गया ॥ ७९-८०॥ सर्पके चले जानेपर गोपगण, लौटे हुए मृत पुरुषके समान कृष्णचन्द्रको आलिङ्गनकर प्रीतिपूर्वक उनके मस्तक-को नेत्रजलसे मिगोने लगे ॥ ८१॥ कुल अन्य गोपगण यमुनाको खच्छ जल्बाली देख प्रसन्न होकर लीलाविहारी कृष्णचन्द्रकी विस्मित-चित्तसे स्तुति करने लगे॥ ८२॥ तदनन्तर अपने उत्तम चरित्रोंके कारण गोपियोंसे गीयमान और गोपोंसे प्रशंसित होते हुए कृष्णचन्द्र वजमें चले आये॥ ८३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमें ऽशे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

धेनुकासुर-वध।

श्रीपराशर उवाच

गाः पालयन्तौ च पुनः सहितौ वलकेशवौ ।
अममाणौ वने तसिन्नम्यं तालवनं गतौ ॥ १ ॥
तत्तु तालवनं दिव्यं घेतुको नाम दानवः ।
मृगमांसकृताहारः सदाध्यास्ते खराकृतिः ॥ २ ॥
तत्तु तालवनं पक्कफलसम्पत्समन्वितम् ।
दृष्ट्वा स्पृहान्विता गोपाः फलादानेऽब्रुवन्यचः॥ ३ ॥

गोपा जनुः

हे राम हे कृष्ण सदा - घेनुकेनैय रक्ष्यते । भूप्रदेशो यतस्तसात्पक्कानीमानि सन्ति वै ॥ ४॥ श्रीपराशरजी बोल्ले-एक दिन वल्राम और कृष्ण साथ-साथ गौ चराते अति रमणीय ताल्यनमें आये ॥१॥ उस दिन्य ताल्यनमें धेनुकनामक एक गधेके आकार-वाला दैत्य मृगमांसका आहार करता हुआ सदा रहा करता था ॥२॥ उस ताल्यनको पके फलेंकी सम्पत्तिसे सम्पन्न देखकर उन्हें तोड़नेकी इच्छासे गोपगण बोले ॥३॥

गोपोंने कहा-भैया राम और कृष्ण ! इस मूमि-प्रदेशकी रक्षा सदा घेनुकासुर करता है, इसीलिये यहाँ ऐसे पके-पके फल लगे हुए हैं ॥ ४॥ अपनी फलानि पश्य तालानां गन्धामोदितदींशि वै। वयमेतान्यभीप्सामः पात्यन्तां यदि रोचते ॥ ५॥

श्रीपराशर उवाच

इति गोपकुमाराणां श्रुत्वा सङ्कर्षणो वचः । एतत्कर्त्तव्यमित्युक्त्वा पातयामास तानि वै। कृष्णश्र पात्यामास अवि तानि फलानि वै।। ६।। फलानां पततां शब्दमाकर्ण्य सदरासदः। आजगाम स दुष्टात्मा कोपाइतेयगर्दभः॥ ७॥ पद्भ्यामुभाभ्यां स तदा पश्चिमाभ्यां वलं बली। जवानोरसि ताभ्यां च स च तेनाभ्यगृह्यत ॥ ८॥ गृहीत्वा भ्रामयामास सोऽम्बरे गतजीवितम् । तसिनेव स चिश्लेप वेगेन तृणराजनि ॥ ९॥ ततः फलान्यनेकानि तालाग्रान्निपतन्त्वरः। पृथिच्यां पातयामास महावातो घनानिव ॥१०॥ अन्यानथ सजातीयानागतान्दैत्यगर्दभान् । कुष्णश्चिक्षेप तालाग्रे बलभद्रश्च लीलया ॥११॥ क्षणेनालङ्कता पृथ्वी पकैस्तालफलैसदा। दैत्यगर्दभॅदेहैश्र मैत्रेय ग्रुग्रुमेऽधिकम् ॥१२॥ ततो गावो निरावाधास्तसिंस्तालवने द्विज । नवशब्पं सुखं चेरुर्यन्न सुक्तमभृत्पुरा ॥१३॥ गन्धसे सम्पूर्ण दिशाओंको आमोदित करनेवाले ये ताल-फल तो देखो; हमें इन्हें खानेकी इच्छा है; यदि आपको अच्छा लगे तो [थोड़े-से] झाड़ दीजिये॥ ५॥

श्रीपराशरजी बोले-गोपकुमारोंके ये वचन सुन-कर बळरामजीने 'ऐसा ही करना चाहिये' यह कह-कर फल गिरा दिये और पीछे कुछ फल कृष्णचन्द्रने भी पृथिवीपर गिराये ॥६॥ गिरते हुए फलोंका शब्द सुनकर वह दुईर्ष और दुरात्मा गर्दमासुर क्रोधपूर्वक दौड़ आया और उस महाबलवान् असुरने अपने पिछले दो पैरोंसे बलरामजीकी छातीमें लात मारी। बलरामजीने उसके उन पैरोंको पकड़ लिया और आकाशमें घुमाने लगे। जब वह निर्जीव हो गया तो उसे अत्यन्त वेगसे उस ताल-बृक्षपर ही दे मारा ॥ ७-९ ॥ उस गधेने गिरते-गिरते उस ताल्वक्षसे बहुत-से फल इस प्रकार गिरा दिये जैसे प्रचण्ड वायु वादलोंको गिरा दे ॥ १०॥ उसके सजातीय अन्य गर्दमासुरोंके आनेपर मी कृष्ण और रामने उन्हें अनायास ही ताल-वृक्षोंपर पटक दिया ॥ ११ ॥ हे मैत्रेय ! इस प्रकार एक क्षणमें ही पके हुए ताळफळों और गर्दमा-सुरोंके देहोंसे विभूषिता होकर पृथिवी अत्यन्त सुशोमित होने लगी ॥ १२ ॥ हे द्विज ! तबसे उस तालवनमें गौएँ निर्विघ्न होकर सुखपूर्वक नवीन तृण चरने लगीं जो उन्हें पहले कभी चरनेको नसीव नहीं हुआ था ॥ १३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पश्चमें ऽशे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८॥

नवाँ अध्याय

प्रलम्ब-बध

श्रीपराशर उवाच

तसित्रासमदैतेये साजुगे विनिपातिते। सौम्यं तद्गोपगोपीनां रम्यं तालवनं वभौ॥१॥ ततस्तौ जातहर्षी तु वसुदेवसुताबुभौ। हत्वा घेजुकदैतेयं भाण्डीरवटमागतौ॥२॥ श्रीपराशरजी बोले-अपने अनुचरोंसहित उस गर्दमासुरके मारे जानेपर वह सुरम्य तालवन गोप और गोपियोंके लिये सुखदायक हो गया॥१॥ तदनन्तर धेनुकासुरको मारकर वे दोनों वसुदेवपुत्र प्रसन्न-मनसे भाण्डीर नामक वटवृक्षके तले आये॥२॥

क्ष्वेलमानौ प्रगायन्तौ विचिन्वन्तौ च पादपान्। चारयन्तौ च गा दूरे व्याहरन्तौ च नामभिः॥ ३॥ निर्योगपाशस्कन्धौ तौ वनमालाविभूपितौ । ग्रुग्रुभाते महात्मानौ वालशृङ्गाविवर्पमौ॥४॥ सुवर्णाञ्जनचूर्णाभ्यां तौ तदा रूषिताम्बरौ । महेन्द्रायुधसंयुक्तौ श्वेतकृष्णाविवाम्बुदौ ॥ ५ ॥ चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरितरेतरम् । समस्तलोकनाथानां नाथभूतौ भ्रवं गतौ।। ६। मजुष्यधर्माभिरतौ मानयन्तौ मजुष्यताम् । तञ्जातिगुणयुक्ताभिः क्रीडाभिश्रेरतुर्वनम् ॥ ७॥ ततस्त्वान्दोलिकाभिश्र नियुद्धैश्र महावलौ। व्यायामं चक्रतुस्तत्र क्षेपणीयैस्तथाइमिनः ॥ ८॥ तिल्रिप्सुरस्रस्तत्र ह्यभयो रममाणयोः। आजगाम प्रलम्बाख्यो गोपवेषतिरोहितः ॥ ९ ॥ सोऽवगाहत निक्शङ्कस्तेषां मध्यममानुषः। मानुषं वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥१०॥ तयो िक द्वान्तरप्रेप्सरविषद्यममन्यत कृष्णं ततो रौहिणेयं हन्तुं चक्रे मनोरथम् ॥११॥ हरिणाक्रीडनं नाम बालक्रीडनकं ततः। प्रकुर्वन्तो हि ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्थितौ ॥१२॥ श्रीदाम्ना सह गोविन्दः प्रलम्बेन तथा बलः । गोपालैरपरैश्वान्ये गोपालाः पुप्छबुस्ततः ॥१३॥ श्रीदामानं ततः कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसतः। जितवान्कष्णपक्षीयैर्गोपैरन्ये पराजिताः ॥१४॥

कन्धेपर गौ वाँघनेकी रस्सी डाले और वनमालासे विभूषित हुए वे दोनों महात्मा वालक सिंहनाद करते, गाते, बृक्षोंपर चढ़ते, दूरतक गौएँ चराते तथा उनका नाम छे-छेकर पुकारते हुए नये सींगोंबाछे बछड़ोंके समान सुशोमित हो रहे थे॥ ३-४॥ उन दोनोंके वस्र [क्रमशः] सुनहरी और स्याम रंगसे रँगे हुए थे अतः वे इन्द्रधनुपयुक्त श्वेत और स्याम मेघके समान जान पड़ते ये ॥ ५ ॥ वे समस्त छोकपाछोंके प्रभु पृथिवीपर अवतीर्ण होकर नाना प्रकारकी छौकिक छीछाओंसे परस्पर खेल रहे थे ॥ ६ ॥ मनुष्य-धर्ममें तत्पर रहकर मनुष्यताका सम्मान करते हुए वे मनुष्यजातिके गुणों-की क्रीडाएँ करते हुए वनमें विचर रहे थे॥ ७॥ वे दोनों महावली वालक कभी झूलामें झूलकर, कभी परस्पर मळ्ळयुद्धकर और कभी पत्थर फेंककर नाना प्रकारसे व्यायाम कर रहे थे ॥ ८ ॥ इसी समय उन दोनों खेखते हुए वाख्कोंको उठा छ जानेकी इच्छासे प्रलम्ब नामक दैत्य गोपवेषमें अपनेको छिपाकर वहाँ आया ॥ ९ ॥ दानवश्रेष्ठ प्रलम्व मनुष्य न होनेपर भी मनुष्यरूप धारणकर निरशङ्कभावसे उन बालकोंके वीच घुस गया ॥ १०॥ उन दोनोंकी असावधानताका अवसर देखनेवाछे उस दैत्यने कृष्णको तो सर्वया अजेय समझा; अतः उसने बळरामजीको मारनेका निश्चय किया ॥ ११ ॥

तदनन्तर वे समस्त ग्वाछवाछ हरिणाक्रीडन क्ष्मां समस्त खेळ खेळते हुए आपसमें एक साथ दो-दो वाछक उठे ॥ १२ ॥ तव श्रीदामाके साथ कृष्णाचन्द्र, प्रळम्बके साथ वळराम और इसी प्रकार अन्यान्य गोपोंके साथ और-और ग्वाछवाछ [होड बदकर] उछळते हुए चळने छगे ॥ १३ ॥ अन्तमें, कृष्णचन्द्रने श्रीदामाको, वळरामजीने प्रळम्बको तथा अन्यान्य कृष्णपक्षीय गोपोंने अपने प्रतिपक्षियोंको हरा दिया ॥ १४ ॥

क्ष एक निश्चित छह्यके पास दो दो बालक एक-एक साथ हिरनकी भाँति उञ्चलते हुए जाते हैं । जो दोनों में पहले पहुँच जाता है वह विजयी होता है, हारा हुआ बालक जीते हुएको अपनी पीठपर चड़ाकर सुख्य स्थानतक ले आता है। यही हरिणाक्रीदन है।

ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं भाण्डीरं वटमेत्य वै। पुनर्निववृत्तस्सर्वे ये ये तत्र पराजिताः ॥१५॥ सङ्कर्षणं तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानवः। नभस्थलं जगामाश्च सचन्द्र इव वारिदः ॥१६॥ असहत्रौहिणेयस्य स भारं दानवोत्तमः। वद्यघे स महाकायः प्रादृषीव वलाहकः ॥१७॥ सङ्कर्षणस्तु तं दृष्ट्वा द्ग्धशैलोपमाकृतिम्। स्रग्दामलम्बाभरणं मुकुटाटोपमस्तकम् ॥१८॥ रौद्रं शकटचकाक्षं पादन्यासचलिक्षतिम्। अभीतमनसा तेन रक्षसा रोहिणीसुतः। हियमाणस्ततः कृष्णमिदं वचनमत्रवीत् ॥१९॥ कृष्ण कृष्ण द्विये ह्येष पर्वतोद्रप्रमृतिना। केनापि पक्य दैत्येन गोपालच्छद्मरूपिणा ॥२०॥ यदत्र साम्प्रतं कार्यं मया मधुनिषूदन। तत्कथ्यतां प्रयात्येष दुरात्मातित्वरान्वितः।।२१।

श्रीपराशर उवाच

तमाह रामं गोविन्दः सितभिन्नोष्ठसम्पुटः। महात्मा रौहिणेयस्य बलवीर्यप्रमाणवित्।।२२।।

श्रीकृष्ण उवाच

किमयं मानुषो भावो व्यक्तमेवावलम्ब्यते। सर्वात्मन् सर्वगुद्धानां गुह्मगुद्धात्मना त्वया।।२३।। स्मराशेपजगद्गीजकारणं कारणाग्रजम्। आत्मानमेकं तद्वच जगत्येकार्णवे चयत्।।२४॥ किं न वेत्सि यथाईं च त्वं चैकं कारणं भ्रवः। भारावतारणार्थाय मर्त्यलोकसुपागतौ ॥२५॥ नभिश्चरस्तेऽम्बुवहाश्च केशाः पादौ श्वितिर्वक्त्रमनन्त विहाः। सोमो मनस्ते श्वासितं समीरणो दिशश्रतस्रोऽन्यय बाहवस्ते ॥२६॥

उस खेलमें जो-जो वालक हारे थे वे सत्र जीतने-वालोंको अपने-अपने कन्धोंपर चढ़ाकर भाण्डीरवट-तक छे जाकर वहाँसे फिर छोट आये ॥ १५॥ किन्तु प्रलम्बासुर अपने कन्धेपर वलरामजीको चढ़ाकर चन्द्रमाके सहित मेघके समान अत्यन्त वेगसे आकाश-मण्डलको चल दिया ॥ १६ ॥ वह दानवश्रेष्ठ रोहिणी-नन्दन श्रीवलमद्रजीके भारको सहन न कर सकनेके कारण वर्षाकालीन मेघके समान वढ़कर अत्यन्त स्थूल शरीरवाळा हो गया ॥ १७ ॥ तव माळा और आभूषण धारण किये, शिरपर मुकुट पहने, गाड़ीके पहियोंके समान भयानक नेत्रोंवाले, अपने पादप्रहारसे पृथिवी-को कम्पायमान करते हुए तथा दग्धपर्वतके समान आकारवाछे उस दैत्यको देखकर उस निर्भय राक्षसके द्वारा छे जाये जाते हुए वलमद्रजीने कृष्णचन्द्रसे कहा-॥ १८-१९॥ "मैया कृष्ण! देखों, छद्मपूर्वक गोपवेष धारण करनेवाला कोई पर्वतके समान महाकाय दैत्य मुझे हरे लिये जाता है ॥ २०॥ हे मधुसूदन ! अब मुझे क्या करना चाहिये, यह वतलाओ । देखों, यह दुरात्मा बड़ी शीघ्रतासे दौड़ा जा रहा है"॥२१॥

श्रीपराशरजी बोले-तव रोहिणीनन्दनके वल-बीर्यको जाननेवाले महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने मधुर-मुसकानसे अपने ओष्ठसम्पुटको खोळते हुए उन बळरामजीसे कहा ॥ २२॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले-हे सर्वात्मन् ! आप सम्पूर्ण गुद्य पदार्थोंमें अत्यन्त गुद्धस्क्रप होकर भी यह स्पष्ट मानव-भाव क्यों अवलम्बन कर रहे हैं ? ॥ २३॥ आप अपने उस खरूपका स्मरण कीजिये जो समदा संसारका कारण तथा कारणका भी पूर्व-वर्ती है और प्रलयकालमें भी स्थित रहनेवाला है ॥ २४ ॥ क्या आपको माछम नहीं है कि आप और मैं दोनों ही इस संसारके एकमात्र कारण हैं और पृथिवीका भार उतारनेके छिये ही मर्त्यछोकमें आये हैं ॥ २५॥ हे अनन्त ! आकाश आपका शिर है, मेघ केश हैं, पृथिवी चरण हैं, अग्नि मुख है, स्नाञ्चय बाह्बस्त ॥२६॥ चन्द्रमा मन है, वायु खास-प्रश्वास हैं और चारों

सहस्रवक्त्रो भगवन्महात्मा सहस्रहस्ताङ्घिशरीरभेदः। सहस्रपद्मोद्भवयोनिराद्य-स्सहस्रशस्त्वां ग्रुनयो गृणन्ति ॥२७॥ दिव्यं हि रूपं तव वेत्ति नान्यो देवैरशेपैरवताररूपम् । वेत्सि न किं यदन्ते त्वय्येव विक्वं लयमभ्युपैति ॥२८॥ त्वया धृतेयं धरणी विभाति चराचरं विश्वमनन्तमूर्ते । कृतादि भेदैरज कालरूपो निमेषपूर्वी जगदेतदत्सि ॥२९॥ अत्तं यथा वाडवविह्ननाम्य हिमखरूपं परिगृह्य कास्तम् । हिमाचले भाजुमतोंऽशुसङ्गा-जलत्वमभ्येति पुनस्तदेव ॥३०॥ एवं त्वया संहरणेऽत्तमेत-जगत्समस्तं त्वद्धीनकं पुनः। तवैव सर्गाय समुद्यतस्य जगत्त्वमभ्येत्यनुकल्पमीश ॥३१॥ भवानहं च विश्वात्मनेकमेव च कारणम्। जगतोऽस्य जगत्यर्थे भेदेनावां व्यवस्थितौ ॥३२॥ तत्सर्यताममेयात्मंस्त्वयात्मा जहि दानवम्। मानुष्यमेवावलम्ब्य बन्धूनां कियतां हितम्।।३३।।

श्रीपराशर उवाच

इति संस्मारितो वित्र कृष्णेन सुमहात्मना ।
विहस्य पीडयामास प्रलम्बं बलवान्बलः ॥३४॥
सुष्टिना सोऽहनन्मूर्झि कोपसंरक्तलोचनः ।
तेन चास्य प्रहारेण बहिर्याते विलोचने ॥३५॥
स निष्कासितमस्तिष्को सुलाच्छोणितसुद्धमन् ।
निपपात महीपृष्ठे दैत्यवर्यो ममार च ॥३६॥

दिशाएँ वाहु हैं ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! आप महाकाय हैं, आपके सहस्र मुख हैं तथा सहस्रों हाय, पाँव आदि शरीरके भेद हैं। आप सहस्रों ब्रह्माओंके आदिकारण हैं, मुनिजन आपका सहस्रों प्रकार वर्णन करते हैं ॥२७॥ आपके दिव्य रूपको [आपके अतिरिक्त] और कोई नहीं जानता, अतः समस्त देवगण आपके अवताररूपकी ही उपासना करते हैं। क्या आपको विदित नहीं है कि अन्तमें यह सम्पूर्ण विश्व आपहींमें ळीन हो जाता है ॥ २८ ॥ हे अनन्तमूर्ते ! आपहीसे धारण की हुई यह पृथिवी सम्पूर्ण चराचर विश्वको धारण करती है । हे अज ! निमेषादि कालस्वरूप आप ही कृतयुग आदि भेदोंसे इस जगत्का ग्रास करते हैं।।२२॥ जिस प्रकार वडवानलसे पीया हुआ जल वायुद्वारा हिमाल्यतक पहुँचाये जानेपर हिमका रूप धारण कर लेता है और फिर सूर्य-िकरणोंका संयोग होनेसे जल्ह्य हो जाता है उसी प्रकार हे ईश ! यह समस्त जगत् [रुद्रादिरूपसे] आपहीके द्वारा विनष्ट होकर आप [परमेश्वर] के ही अधीन रहता है और फिर प्रत्येक कल्पमें आपके [हिरण्यगर्भरूपसे] सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त होनेपर यह [विराटरूपसे] स्थूल जगद्रप हो जाता है ॥ ३०-३१ ॥ हे विश्वात्मन् ! आप और मैं दोनों ही इस जगत्के एकमात्र कारण हैं। संसारके हितके छिये ही हमने भिन्न-भिन्न रूप धारण किये हैं ॥ ३२ ॥ अतः हे अमेयात्मन् ! आप अपने खरूप-को स्मरण कीजिये और मनुष्यभावका ही अवलम्बन-कर इस दैत्यको मारकर बन्धुजनोंका हित-साधन कीजिये ॥ ३३॥

श्रीपराशरजी बोले-हे विप्र ! महात्मा कृष्णचन्द्र-द्वारा इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर महाबल्बान् बल्रामजी हँसते हुए प्रलम्बासुरको पीडित करने लगे ॥ ३४ ॥ उन्होंने कोधसे नेत्र लाल करके उसके मस्तकपर एक घूँसा मारा, जिसकी चोटसे उस दैत्यके दोनों नेत्र वाहर निकल आये॥३५॥ तदनन्तर बह दैत्यश्रेष्ठ मगज फट जानेपर मुखसे रक्त वमन करता हुआ पृथिवीपर गिर पड़ा और मर गया ॥३६॥

प्रलम्बं निहतं दृष्ट्वा बलेनाद्भुतकर्मणा। प्रहृष्टास्तुष्दुवुर्गोपास्साधुसाध्विति चाब्रुवन्।।३७।। संस्त्यमानो गोपैस्तु रामो दैत्ये निपातिते।

अद्भतकर्मा वलरामजीद्वारा प्रलम्वासुरको मरा हुआ देखकर गोपगण प्रसन्न होकर 'साधु, साधु' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने छगे ॥ ३७॥ प्रलम्बासुरके मारे जानेपर बळरामजी गोपोंद्वारा प्रशंसित होते प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययौ ॥३८॥ हुए कृष्णचन्द्रके साथ गोकुलमें लीट आये ॥ ३८॥

- 3 XOZZZYKE

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमें उशे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशवाँ अध्याय

शरद्वर्णन तथा गोवर्धनकी पूजा।

श्रीपराशर उवाच

तयोविंहरतोरेवं रामकेशवयोर्वजे । प्रावृद् च्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत्।। १।। अवापुस्तापमत्यर्थं शफर्यः पल्वलोदके। पुत्रक्षेत्रादिसक्तेन ममत्वेन यथा गृही।। २।। मयूरा मौनमातस्थुः परित्यक्तमदा वने । असारतां परिज्ञाय संसारस्येव योगिनः ॥ ३ ॥ उत्सृज्य जलसर्वस्वं विमलास्सितमूर्त्तयः। तत्यजुश्चाम्बरं मेघा गृहं विज्ञानिनो यथा।। ४।। शरत्स्यां अतप्तानि ययुक्शोपं सरांसि च। बह्वालम्बममत्वेन हृदयानीव देहिनाम् ॥ ५॥ क्रमुदैश्शरदम्भांसि योग्यतालक्षणं ययः। अवबोधैर्मनांसीव समत्वममलात्मनाम् ॥ ६ ॥ तारकाविमले व्योम्नि रराजाखण्डमण्डलः। चन्द्रश्ररमदेहात्मा योगी साधुकुले यथा॥७॥ जनकैश्चनकैस्तीरं तत्यज्ञश्च जलाशयाः। ममत्वं क्षेत्रपुत्रादिरूढमुचैर्यथा बुधाः ॥ ८॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार उन राम और कृष्णके त्रजमें विहार करते-करते वर्षाकाल वीत गया और प्रफुछित कमलोंसे युक्त शरद्-ऋतु आ गयी ॥ १ ॥ जैसे गृहस्थ पुरुष पुत्र और क्षेत्र आदिमें लगी हुई ममतासे सन्ताप पाते हैं उसी प्रकार मछिछयाँ गड्ढोंके जलमें अत्यन्त ताप पाने लगीं ॥ २ ॥ संसार-की असारताको जानकर जिस प्रकार योगिजन शान्त हो जाते हैं उसी प्रकार मयूरगण मदहीन होकर मौन हो गये ॥३॥विज्ञानिगण [सत्र प्रकारकी ममता छोड़कर] जैसे घरका त्याग कर देते हैं वैसे ही निर्मछ स्रोत मेघोंने अपना जलक्ष्प सर्वस्व छोड्कर आकाश-मण्डलका परित्याग कर दिया ॥ ४ ॥ विविध पदार्थों में ममता करनेसे जैसे देहधारियोंके हृदय सारहीन हो जाते हैं वैसे ही शरकाछीन सूर्यके तापसे सरोवर स्ख गये॥ ५॥ निर्मछचित्त पुरुषोंके मन जिस प्रकार ज्ञानद्वारा समता प्राप्त कर छेते हैं उसी प्रकार शरकाळीन जळोंको [खच्छताके कारण] कुमुदोंसे योग्य सम्बन्ध प्राप्त हो गया ॥ ६ ॥ जिस प्रकार साधु-कुछमें चरम-देह-धारी योगी सुशोभित होता है उसी प्रकार तारका-मण्डल-मण्डित निर्मल आकाशमें पूर्णचन्द्र विराजमान हुआ ॥ ७॥

जिस प्रकार क्षेत्र और पुत्र आदिमें बढ़ी हुई ममताको विवेक्तीजन रानै:-रानै: त्याग देते हैं वैसे ही जलारायों-का जल धीरे-धीरे अपने तटको छोड़ने लगा ॥ ८॥

पूर्वं त्यक्तैस्सरोऽम्मोभिर्दंसा योगं पुनर्ययुः ।
क्रेशैः क्रयोगिनोऽशेपैरन्तरायहता इव ॥ ९ ॥
निभृतोऽभवदत्यर्थं सम्रद्रः स्तिमितोद्कः ।
क्रमावाप्तमहायोगो निश्वलात्मा यथा यतिः॥१०॥
सर्वत्रातिप्रसन्नानि सलिलानि तथाभवन् ।
ज्ञाते सर्वगते विष्णौ मनांसीव सुमेधसाम् ॥११॥

वभूव निर्मलं व्योम शरदा ध्वस्ततोयदम् । योगाप्तिदग्धक्केशौधं योगिनामिव मानसम् ॥१२॥ स्वर्याश्चजनितं तापं निन्ये तारापितः शमम् । अहंमानोद्भवं दुःखं विवेकः सुमहानिव ॥१३॥ नभसोऽव्दं श्चवः पङ्कं कालुष्यं चाम्भसक्शरत् । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेम्यः प्रत्याहार इवाहरत्॥१४॥ प्राणायाम इवाम्भोभिस्सरसां कृतपूरकः । अभ्यस्यतेऽजुदिवसं रेचकाक्चम्भकादिभिः॥१५॥

विमलाम्बरनक्षत्रे काले चाम्यागते त्रजे । ददर्शेन्द्रमहारम्भायोद्यतांस्तान्त्रजौकसः ॥१६॥ कृष्णस्तानुत्सुकान्द्रष्ट्वा गोपानुत्सवलालसान् । कौत्हलादिदं वाक्यं प्राह चृद्धान्महामितः ॥१७॥ जिस प्रकार अन्तरायों (विशों) से विचित्रत हुए कुयोगियों का क्लेशों † से पुनः संयोग हो जाता है उसी प्रकार पहले छोड़े हुए सरोवरके जलसे हंसका पुनः संयोग हो गया ॥ ९ ॥ क्रमशः महायोग (सम्प्रज्ञातसमाधि) प्राप्त कर लेनेपर जैसे यित निश्चलात्मा हो जाता है वैसे ही जलके स्थिर हो जानेसे समुद्र निश्चल हो गया ॥ १०॥ जिस प्रकार सर्वगत मगवान् विष्णुको जान लेनेपर मेथावी पुरुषों के चित्त शान्त हो जाते हैं वैसे ही समस्त जलाशयोंका जल खच्छ हो गया ॥ ११॥

योगाग्निद्वारा क्रशसम्हके नष्ट हो जानेपर जैसे
योगियोंके चित्त खच्छ हो जाते हैं उसी प्रकार शीतके कारण मेघोंके छीन हो जानेसे आकाश निर्मछ हो
गया ॥ १२ ॥ जिस प्रकार अहंकार-जनित महान्
दुःखको विवेक शान्त कर देता है उसी प्रकार सूर्यकिरणोंसे उत्पन्न हुए तापको चन्द्रमाने शान्त कर
दिया ॥ १३ ॥ प्रत्याहार जैसे इन्द्रियोंको उनके
विषयोंसे खींच छेता है वैसे ही शरक्ताछने आकाशसे
मेघोंको, पृथिवीसे धूछिको और जलसे मछको दूर कर
दिया ॥ १४ ॥ [पानीसे भर जानेके कारण] मानो
तालावोंके जल पूरक कर चुकनेपर अव [स्थिर रहने
और सूखनेसे] रात-दिन कुम्मक एवं रेचक क्रियाद्वारा
प्राणायामका अम्यास कर रहे हैं ॥ १५ ॥

इस प्रकार ब्रजमण्डलमें निर्मल आकाश और नक्षत्र-मय शरत्कालके आनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने समस्त ब्रजवासियोंको इन्द्रका उत्सव मनानेके लिये तैयारी करते देखा ॥ १६ ॥ महामित कृष्णने उन गोपोंको उत्सवकी उमक्कसे अत्यन्त उत्साहपूर्ण देखकर कुन्हल-वश अपने बड़े-बूढ़ोंसे पूछा—॥ १७ ॥ "आपलोग

[#]अन्तराय नी हैं—

^{&#}x27;व्याधिस्त्यानसंश्यप्रमादालस्याविरतिम्रान्तिदर्शनालन्यमूमिकत्वानविश्वितत्वानि चित्तिविश्वेपास्तेऽन्तरायाः । (यो० द० १।३०) अर्थात् व्याधि, स्त्यान (साधनमें अप्रष्टुत्ति), संशय, प्रमाद, आखत्य, प्रविरति (वैराग्यहीनता), भ्रान्तिदर्शन, अखन्धभूमिकत्व (कश्यको उपकव्धि न होना) ग्रीर अनवस्थितत्व (कश्यमें स्थिर न होना) ये नौ अन्तराय हैं। कश्चित्र पाँच हैं; जैसे—

अविद्यासितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्रेशाः । (यो॰ द० २ । ३)

अर्थात् अविद्या, अस्मिता (बहंकार), राग, द्रेष और ब्रिमिनिवेश (मरखन्नास) ये पाँच होश हैं।

३९६

कोऽयं शक्रमखो नाम येन वो हर्षे आगतः । प्राह तं नन्दगोपश्च पृच्छन्तमतिसादरम्।।१८।।

नन्दगोप उवाच

मेघानां पयसां चेशो देवराजक्शतऋतुः। तेन सश्चोदिता मेवा वर्षन्त्यम्बुमयं रसम् ॥१९॥ तद्वृष्टिजनितं सस्यं वयमन्ये च देहिनः। वर्त्तयामोपयुङ्जानास्तर्पयामश्र देवताः ॥२०॥ क्षीरवत्य इमा गावो वत्सवत्यश्च निर्वृताः । तेन संवर्द्धितैस्सस्यैस्तुष्टाः पुष्टा भवन्ति वै ॥२१॥ नासस्या नातृणा भूमिर्न बुभुक्षार्दितो जनः। दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो वलाहकाः ॥२२॥ भौममेतत्पयो दुग्धं गोभिः सूर्यस्य वारिदैः। पर्जन्यस्सर्वलोकस्योद्भवाय अवि वर्षति ॥२३॥ तस्मात्त्रावृषि राजानस्सर्वे शकं मुदा युताः। मखैस्सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च मानवाः ॥२४॥

श्रीपराशर उवाच

नन्दगोपस्य वचनं श्रुत्वेत्थं शक्रपूजने। रोपाय त्रिदशेन्द्रस्य प्राह दामोदरस्तदा ॥२५॥ न वयं कृषिकर्त्तारो वाणिज्याजीविनो न च। गावोऽस्मद्देवतं तात वयं वनचरा यतः॥२६॥ आन्त्रीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिस्तथा परा। विद्या चतुष्टयं चैतद्वार्त्तामात्रं शृणुष्व मे ॥२०॥ कृषिर्वणिज्या तद्रच तृतीयं पशुपालनम् । विद्या ह्येका महाभाग वार्त्ता दृत्तित्रयाश्रया ।।२८।। कर्षकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम् । अस्माकं गौः परा वृत्तिर्वार्त्ताभेदैरियं त्रिभिः ॥२९॥ विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं महत् । सैव पूज्यार्चनीया च सैव तस्योपकारिका।।३०।। यो यस्य फलमश्रन्वे पूजयत्यपरं नरः। इह च प्रेत्य चैवासौ न तदामोति शोभनम् ॥३१॥

जिसके लिये फूले नहीं समाते वह इन्द्र-यज्ञ क्या है !" इस प्रकार अत्यन्त आदरपूर्वक पूछनेपर उनसे नन्द-गोपने कहा-॥ १८॥

नन्दगोप बोले-मेघ और जलका खामी देवराज इन्द्र है । उसकी प्रेरणासे ही मेघगण जलक्रप रसकी वर्षा करते हैं ॥ १९ ॥ हम और अन्य समस्त देहधारी उस वर्षासे उत्पन्न हुए अनको ही बर्तते हैं तथा उसीको उपयोगमें छाते हुए देवताओंको भी तृप्त करते हैं ॥२०॥ उस (वर्षा) से बढ़े हुए अनसे ही तृप्त होकर ये गौएँ तुष्ट और पुष्ट होकर बत्सवती एवं दूध देनेवाछी होती हैं ॥ २१ ॥ जिस भूमिपर वरसनेवाले मेघ दिखायी देते हैं उसपर कभी अन और तृणका अमाव नहीं होता और न कभी वहाँ के छोग भूखे रहते ही देखे जाते हैं ॥२२॥ यह पर्जन्यदेव (इन्द्र) पृथिवीके जलको सूर्यिकरणोंद्वारा खींचकर सम्पूर्ण प्राणियोंकी वृद्धिके लिये उसे मेघोंद्वारा पृथिवीपर वरसा देते हैं। इसिंछिये वर्षाऋतुमें समस्त राजाछोग, हम और अन्य मनुष्यगण देवराज इन्द्रकी यज्ञोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक पूजा किया करते हैं॥ २३-२४॥

श्रीपराशरजी बोले-इन्द्रकी पूजाके विषयमें नन्दजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीदामोदर देवराजको कुपित करनेके लिये ही इस प्रकार कहने लगे-॥२५॥ "हे तात ! हम न तो कृषक हैं और न .**व्यापारी**, हमारे देवता तो गौएँ ही हैं; क्योंकि हमलोग वनचर हैं ॥ २६ ॥ आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र), त्रयी (कर्म-काण्ड), दण्डनीति और वार्ता—ये चार विद्याएँ हैं, इनमेंसे केवछ वार्ताका विवरण सुनो ॥ २७॥ हे महाभाग ! वार्ता नामकी विद्या कृषि, वाणिज्य और पञ्जपालन इन तीन वृत्तियोंकी आश्रयभूता है ॥२८॥ वार्ताके इन तीनों भेदोंमेंसे कृषि किसानोंकी, वाणिज्य व्यापारियोंकी और गोपालन हमलोगोंकी उत्तम वृत्ति है ॥ २९॥ जो व्यक्ति जिस विद्यासे युक्त है उसकी वही इष्टदेवता है, वही पूजा-अचिके योग्य है और वहीं पर्म उपकारिणी है ॥ ३०॥ जो पुरुष एक व्यक्तिसे फल लाम करके अन्यकी पूजा ा न तद्राभाति शासनम् ॥३१॥। करता है उसका इहलोक अथवा परलोकमें कहीं भी

कृष्यान्ता प्रथिता सीमा सीमान्तं च पुनर्वनम् । वनान्ता गिरयस्सर्वे ते चास्माकं परा गतिः॥३२॥ न द्वारवन्धावरणा न गृहक्षेत्रिणस्तथा । सुखिनस्त्वखिले लोके यथा वै चक्रचारिणः॥३३॥

श्रूयन्ते गिरयश्रेव वनेऽसिन्कामरूपिणः। तत्तद्रपं समास्थाय रमन्ते स्वेषु सानुपु ॥३४॥ यदा चैतै: प्रवाध्यन्ते तेषां ये काननौक्रमः । तदा सिंहादिरूपैस्तान्यातयन्ति महीधराः ॥३५॥ गिरियज्ञस्त्वयं तसाद्गोयज्ञश्च प्रवर्त्यताम् । किमसाकं महेन्द्रेण गावश्शैलाश्च देवताः ॥३६॥ मन्त्रयज्ञपरा विप्रास्सीरयज्ञाश्च कर्षकाः। , गिरिगोयज्ञशीलाश्र वयमद्विवनाश्रयाः ॥३७॥ तसाद्गोवर्धनक्यौलो भवद्भिर्विविधाईणैः। अर्च्यतां पूज्यतां मेध्यान्पश्चन्हत्वा विधानतः ३८ सर्वघोषस्य सन्दोहो गृह्यतां मा विचार्यताम्। भोज्यन्तां तेन वै विद्रास्तथा ये चाभिवाञ्छकाः ॥ तत्राचिते कते होमे भोजितेष दिजातिष । श्ररत्पुष्पकृतापीडाः परिगच्छन्तु गोगणाः॥४०॥ एतन्मम मतं गोपास्सम्प्रीत्या क्रियते यदि । ततः कृता भवेत्त्रीतिर्गवामद्रेस्तथा मम ॥४१॥ होगी"॥ ४१॥

शुभ नहीं होता ॥ ३१ ॥ खेतोंके अन्तमें सीमा है तथा सीमाके अन्तमें वन हैं और वनोंके अन्तमें समस्त पर्वत हैं; वे पर्वत ही हमारी परमगित हैं ॥३२॥ हमछोग न तो किवाड़े तथा मित्तिके अन्दर रहनेवाछे हैं और न निश्चित गृह अथवा खेतवाछे किसान ही हैं, बिल्क [वन-पर्वतादिमें खच्छन्द विचरनेवाछे] हम-छोग चक्रचारी मुनियोंकी माँति समस्त जनसमुदायमें सुखी हैं [अतः गृहस्थ किसानोंकी माँति हमें इन्द्रकी पृजा करनेका कोई काम नहीं]" ॥ ३३ ॥

"सुना जाता है कि इस वनके पर्वतगण कामरूपी (इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले) हैं । वे मनोवाञ्छित रूप धारण करके अपने-अपने शिखरेंपर विहार किया करते हैं ॥ ३४ ॥ जब कमी बनवासी-गण इन गिरिदेवोंको किसी तरहकी वाधा पहुँचाते हैं तो वे सिंहादि रूप धारणकर उन्हें मार डालते हैं ॥ ३५ ॥ अतः आजसे [इस इन्द्रयज्ञके स्थानमें] गिरियज्ञ अथवा गोयज्ञका प्रचार होना चाहिये। हमें इन्द्रसे क्या प्रयोजन है ? हमारे देवता तो गौएँ और पर्वत ही हैं ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणलोग मन्त्र-यज्ञ तथा कृषकगण सीरयज्ञ (हलका पूजन) करते हैं, अतः पर्वत और वनोंमें रहनेवाले हमलोगोंको गिरियज्ञ और गोयज्ञ करने चाहिये॥ ३७॥

"अतएव आपलोग विधिपूर्वक मेध्य पशुओं की बिखे देकर विविध सामग्रियों से गोवर्धनपर्वतकी पूजा करें ॥ ३८ ॥ आज सम्पूर्ण व्रजका दृध एकत्रित कर लो और उससे व्राह्मणों तथा अन्यान्य याचकों को भोजन कराओ; इस विषयमें और अधिक सोच-विचार मत करो ॥ ३९ ॥ गोवर्धनकी पूजा, होम और ब्राह्मण-मोजन समाप्त होनेपर शरद्-ऋतुके पुष्पेंस सजे हुए मस्तकवाली गोएँ गिरिराजकी प्रदक्षिणा करें ॥ ४० ॥ हो गोपगण ! आपलोग यदि प्रीतिपूर्वक मेरी इस सम्मतिके अनुसार कार्य करेंगे तो इससे गोओंको, गिरिराज और मुझको अत्यन्त प्रसन्नता होगी"॥ ४१ ॥

चक्रचारी मुनि वे हैं जो शकट आदिसे सर्वत्र अमण किया करते हैं और जिनका कोई खास निवास नहीं होता। जहाँ शाम हो जाती है वहीं रह जाते हैं। अतः उन्हें 'सायंगृह' भी कहते हैं।

श्रीपराशर उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा नन्दाद्यास्ते त्रजौकसः। **प्रीत्युत्फ्र**ल्लमुखा गोपास्साधुसाध्वित्यथाब्रुवन् ४२ शोभनं ते मतं वत्स यदेतद्भवतोदितम्। तत्करिष्यामहे सर्वं गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ॥४३॥ तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञं व्रजीकसः। द्धिपायसमांसाद्येर्दुकीलंबलि ततः ॥४४॥ द्विजांश्र भोजयामासुरशतशोऽथ सहस्रशः ॥४५॥ गावक्शैलं ततश्रकुरर्चितास्ताः प्रदक्षिणम्। वृषभाश्रातिनर्दन्तस्सतोया जलदा इव ॥४६॥ गिरिमुर्द्धनि कृष्णोऽपि शैलोऽहमिति मुर्तिमान्। बुभुजेऽन्नं बहुतरं गोपवर्याहृतं द्विज ॥४७॥ स्वेनैव कृष्णो रूपेण गोपैस्सह गिरेविशरः। अधिरुह्यार्चयामास द्वितीयामात्मनस्ततुम् ॥४८॥ अन्तर्द्धानं गते तसिन्गोपा लब्ध्वा ततो वरान् । कृत्वा गिरिमलं गोष्टं निजमभ्याययुः पुनः॥४९॥

श्रीपराशरजी बोले-कृष्णचन्द्रके इन वाक्योंको सुनकर नन्द आदि व्रजवासी गोपोंने व्रसन्नतासे खिले हुए मुखसे 'साधु, साधु' कहा ॥ ४२॥ और बोले-हे वत्स ! तुमने अपना जो विचार प्रकट किया है वह वड़ा ही सुन्दर है; हम सब ऐसा ही करेंगे; आज गिरियज्ञ किया जाय ॥ ४३॥

तदनन्तर उन त्रजवासियोंने गिरियज्ञका अनुष्टान किया तथा दहीं, खीर और मांस आदिसे पर्वतराज-को बिं दी ॥ ४४॥ सैकड़ों, हजारों ब्राह्मणोंको मोजन कराया तथा पुष्पार्चित गोओं और सजल जलघरके समान गर्जनेवाले साँडोंने गोवर्धनकी परिक्रमा की ॥ ४५-४६ ॥ हे द्विज ! उस समय कृष्ण-चन्द्रने पर्वतके शिखरपर अन्यरूपसे प्रकट होकर यह दिखलाते हुए कि मैं मूर्तिमान् गिरिराज हूँ, उन गोपश्रेष्टोंके चढ़ाये हुए विविध व्यक्षनोंको प्रहण किया ॥ ४७ ॥ कृष्णचन्द्रने अपने निजरूपसे गोपों-के साथ पर्वतराजके शिखरपर चढ़कर अपने ही दूसरे खरूपका पूजन किया ॥ ४८॥ तदनन्तर उनके अन्तर्धान होनेपर गोपगण अपने अमीष्ट वर पाकर गिरियज्ञ समाप्त करके फिर अपने-अपने गोष्ठों-में चले आये ॥ ४९॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे दशमोऽघ्यायः ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

इन्द्रका कोप और श्रीकृष्णका गोवर्धन-धारण।

श्रीपराशर उवाच

मखे प्रतिहते शको मैत्रेयातिरुपान्वितः। संवर्तकं नाम गणं तोयदानामथात्रवीत्।। १।। मो मो मेघा निशम्यैतद्वचनं गदतो मम। आज्ञानन्तरमेवाशु क्रियतामविचारितम् ॥ २ ॥ नन्दगोपस्सुदुर्बुद्धिर्गोपैरन्यैस्सहायवान् मखभङ्गमचीकरत्॥३॥ कृष्णाश्रयवलाष्मातो

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! अपने यज्ञके रुक जानेसे इन्द्रने अत्यन्त रोषपूर्वक संवर्तकनामक मेघोंके दलसे इस प्रकार कहा-॥ १॥ "अरे मेघो ! मेरा यह वचन सुनो और मैं जो कुछ कहूँ उसे मेरी आज्ञा सुनते ही, विना कुछ सोचे-विचारे, तुरन्त पूरा करो ॥ २ ॥ देखो अन्य गोपोंके सहित दुर्बुद्धि नन्दगोपने कृष्णकी सहायताके बळसे अन्धा होकर प्लभङ्गमचीकरत् ॥ ३॥ मेरा यज्ञ भंग कर दिया है ॥ ३॥ अतः, जो उनकी

आजीवो याः परस्तेषां गावस्तस्य च कारणम् । ता गावो वृष्टिवातेन पीड्यन्तां वचनान्मम ॥ ४ ॥ अहमप्यद्रिशृङ्गाभं तुङ्गमारुद्य वारणम् । साहाय्यं वः करिष्यामि वाय्वम्बृत्सर्गयोजितम्॥५॥

श्रीपराशर उवाच

इत्याज्ञप्तास्ततस्तेन ग्रुग्रुचुस्ते वलाहकाः।
वातवर्षं महाभीममभावाय गवां द्विज ॥ ६ ॥
ततः क्षणेन पृथिवी ककुभोऽम्बरमेव च ।
एकं धारामहासारपूरणेनाभवन्ग्रुने ॥ ७ ॥
विग्रुक्षताकशाघातत्रस्तैरिव घनैर्घनम् ।
नादापूरितदिक्चकैर्धारासारमपात्यत ॥ ८ ॥
अन्धकारीकृते लेकि वर्षद्भिरनिशं घनैः ।
अधश्रोर्ध्वं च तिर्यक् च जगदाप्यमिवाभवत् ॥ ९ ॥

गावस्तु तेन पतता वर्षवातेन वेगिना।
धूताः प्राणाञ्जहुस्सन्नत्रिकसिक्थिशिरोधराः॥१०॥
क्रोडेन वत्सानाक्रम्य तस्थुरन्या महामुने।
गावो विवत्साश्च कृता वारिपूरेण चापराः॥११॥
वत्साश्च दीनवदना वातकम्पितकन्धराः।
त्राहि त्राहीत्यल्पशब्दाः कृष्णमूचुरिवातुराः॥१२॥

ततस्तद्गोकुलं सर्वे गोगोपीगोपसङ्कलम् ।
अतीवार्त्तं हरिर्देष्ट्रा मैत्रेयाचिन्तयत्तदा ॥१३॥
एतत्कृतं महेन्द्रेण मस्त्रभङ्गविरोधिना ।
तदेतद्खिलं गोष्ठं त्रातव्यमधुना मया ॥१४॥
इममद्रिमहं धैर्यादुत्पात्वोक्शिलाधनम् ।
धारयिष्यामि गोष्ठस्य पृथुच्छत्रमिनोपरि ॥१५॥

परम जीविका और उनके गोपत्वका कारण है उन गौओंको तुम मेरी आज्ञासे वर्षा और वायुके द्वारा पीडित कर दो ॥ ४ ॥ मैं भी पर्वत-शिखरके समान अत्यन्त ऊँचे अपने ऐरावत हाथीपर चढ़कर वायु और जल छोड़नेके समय तुम्हारी सहायता करूँगा" ॥ ५ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विज! इन्द्रकी ऐसी आज्ञा होनेपर गौओंको नष्ट करनेके लिये मेघोंने अति प्रचण्ड वायु और वर्षा छोड़ दी ॥ ६॥ हे मुने! उस समय एक क्षणमें ही मेघोंकी छोड़ी हुई महान् जलधाराओंसे पृथिवी, दिशाएँ और आकाश एकरूप हो गये॥ ०॥ मेघगण मानो विद्युक्ठतारूप दण्डाघातसे भयभीत होकर महान् शब्दसे दिशाओंको ज्याप्त करते हुए मृसलाधार पानी वरसाने लगे॥ ८॥ इस प्रकार मेघोंके अहानिश वरसनेसे संसारके अन्धकारपूर्ण हो जानेपर ऊपर-नीचे और सव ओरसे समस्त लोक जलमय-सा हो गया॥९॥

वर्षा और वायुक वेगपूर्वक चलते रहनेसे गोओं-के किट, जंघा और ग्रीवा आदि सुन्न हो गये और काँपते-काँपते अपने प्राण छोड़ने लगीं [अर्थात् मूर्च्छित हो गयीं] ॥१०॥ हे महासुने! कोई गोएँ तो अपने वछड़ोंको अपने नीचे छिपाये खड़ी रहीं और कोई जलके वेगसे वत्सहीना हो गयीं ॥११॥ वायुसे काँपते हुए दीनवदन वछड़े मानो ज्याकुल होकर मन्द-खरसे कृष्णचन्द्रसे रक्षा करो, रक्षा करों' ऐसा कहने लगे॥१२॥

हे मैत्रेय ! उस समय गो, गोपी और गोपगणके सिहत सम्पूर्ण गोकुळको अत्यन्त व्याकुळ देखकर श्रीहरिने विचारा—॥१३॥ यज्ञ-भंगके कारण विरोध मानकर यह सब करत्त इन्द्र ही कर रहा है; अतः अब मुझे सम्पूर्ण ब्रजकी रक्षा करनी चाहिये॥१४॥ अब मैं धैर्यपूर्वक बड़ी-बड़ी शिळाओंसे घनीभूत इस पर्वतको उखाड़कर इसे एक बड़े छत्रके समान ब्रजके ऊपर धारण कहाँगा॥१५॥

श्रीपराशर उवाच

इति कृत्वा मितं कृष्णो गोवर्धनमहीधरम् । उत्पाद्यैककरेणैव धारयामास लीलया ॥१६॥ गोपांश्वाह इसञ्छोरिस्सम्रत्पाटितभूधरः । विश्वष्वमत्र त्वरिताः कृतं वर्षनिवारणम् ॥१७॥ सुनिवातेषु देशेषु यथा जोषमिहास्यताम् । प्रविश्यतां न भेतव्यं गिरिपाताच्च निर्भयैः ॥१८॥

इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविधुर्गोधनैस्सह ।

शकटारोपितैर्माण्डैर्गोप्यश्वासारपीडिताः ॥१९॥

कृष्णोऽपि तं दधारैव शैलमत्यन्तिनश्वलम् ।

व्रज्जेकवासिभिर्हर्षविस्तिताक्षैनिरीक्षितः ॥२०॥

गोपगोपीजनैर्हृष्टैः प्रीतिविस्तारितेक्षणैः ।

संस्तूयमानचरितः कृष्णक्शैलमधारयत्॥२१॥

सप्तरात्रं महामेघा ववर्षुर्नन्दगोकुले।
इन्द्रेण चोदिता विप्र गोपानां नाशकारिणा।।२२॥
ततो धृते महाशैले परित्राते च गोकुले।
मिथ्याप्रतिक्को वलिमद्वारयामास तान्धनान्॥२३॥
व्यन्ने नमसि देवेन्द्रे वितथात्मवचस्थथ।
निष्कम्य गोकुलं हृष्टं खस्थानं पुनरागमत्॥२४॥
सुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहाचलम्।
स्वस्थाने विस्तितस्रसैर्देष्टस्तैस्त व्रजीकसैः॥२५॥

श्रीपराशरजी बोले-श्रीकृष्णचन्द्रने ऐसा विचार-कर गोवर्धनपर्वतको उखाड़ लिया और उसे लीला-से ही अपने एक हाथपर उठा लिया ॥ १६॥ पर्वतको उखाड़ लेनेपर श्रूरनन्दन श्रीक्यामसुन्दरने गोपोंसे हँसकर कहा—"आओ, शीघ्र ही इस पर्वत-के नीचे आ जाओ, मैंने वर्षासे बचनेका प्रबन्ध कर दिया है॥ १७॥ यहाँ वायुहीन स्थानोंमें आकर सुखपूर्वक वैठ जाओ; निर्मय होकर प्रवेश करो, पर्वतके गिरने आदिका भय मत करो"॥ १८॥

श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर जलकी धाराओंसे पीडित गोप और गोपी अपने वर्तन-भाँडोंको छकड़ों- में रखकर गौओंके साथ पर्वतके नीचे चले गये ॥ १९॥ त्रज-वासियोंद्वारा हर्ष और विस्मयपूर्वक टकटकी लगाकर देखे जाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र भी गिरिराजको अत्यन्त निश्चलतापूर्वक धारण किये रहे ॥ २०॥ जो प्रीतिपूर्वक आँखें फाड़कर देख रहे थे उन हर्षित-चित्त गोप और गोपियोंसे अपने चरितोंका स्तवन होते हुए श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतको धारण किये रहे ॥ २१॥

हे विप्र ! गोपोंके नाशकर्ता इन्द्रकी प्रेरणासे नन्दजीके गोकुळमें सात रात्रितक महाभयंकर मेध वरसते रहे ॥ २२ ॥ किन्तु जब श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वत धारणकर गोकुळकी रक्षा की तो अपनी प्रतिज्ञा व्यर्थ हो जानेसे इन्द्रने मेघोंको रोक दिया ॥ २३ ॥ आकाशके मेघहीन हो जानेसे इन्द्रकी प्रतिज्ञा मंग हो जानेपर समस्त गोकुळवासी वहाँसे निकळकर प्रसन्नतापूर्वक फिर अपने-अपने स्थानोंपर आ गये ॥ २४ ॥ और कृष्णचन्द्रने भी उन व्रजवासियोंके विसमयपूर्वक देखते-देखते गिरिराज गोवर्धनको अपने स्थानपर रख दिया ॥ २५ ॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पश्चमेंऽशे एकादशोऽध्यायः ॥ ११॥

वारहवाँ अध्याय

शक्र-कृष्ण-संवाद, कृष्ण-स्तुति।

श्रीपराशर उवाच

धृते गोवर्धने शैले परित्राते च गोकुले।
रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनः॥१॥
सोऽधिरुद्य महानागमैरावतमित्रजित्।
गोवर्धनगिरौ कृष्णं दद्शं त्रिदशेश्वरः॥२॥
चारयन्तं महावीर्यं गास्तु गोपवपुर्धरम्।
कृत्स्वस्य जगतो गोपं वृतं गोपकुमारकैः॥३॥
गरुडं च दद्शोंचैरन्तर्द्धानगतं द्विज।
कृतच्छायं हरेर्मूभ्रिं पक्षाम्यां पक्षिपुक्तवम्॥४॥
अवरुद्ध स नागेन्द्रादेकान्ते मधुस्दनम्।
शक्तस्सितमाहेदं प्रीतिविस्तारितेश्वणः॥५॥
इन्द्र उवाच

कृष्ण कृष्ण शृणुष्वेदं यदर्थमहमागतः। त्वत्समीपं महाबाह्ये नैतिचिन्त्यं त्वयान्यथा।।६॥ भारावतारणार्थीय पृथिव्याः पृथिवीतले । अवतीर्णोऽखिलाधार त्वमेव परमेश्वर ॥ ७ ॥ मखमङ्गविरोधेन मया गोकुलनाशकाः। समादिष्टा महामेघास्तैश्रेदं कदनं कृतम्।।८॥ त्रातास्ताश्च त्वया गावस्सम्रुत्पाट्य महीघरम्। तेनाहं तोषितो वीरकर्मणात्यद्भुतेन ते ॥ ९॥ साधितं कृष्ण देवानामहं मन्ये प्रयोजनम् । करेणैकेन यद्धृतः ॥१०॥ त्वयायमद्रिप्रवरः गोभिश्र चोदितः कृष्ण त्वत्सकाशमिहागतः। त्वया त्राताभिरत्यर्थं युष्मत्सत्कारकारणात् ॥११॥ स त्वां कृष्णाभिषेक्ष्यामि गवां वाक्यप्रचोदितः। उपेन्द्रत्वे ग्वामिन्द्रो गोविन्दस्त्वं भविष्यसि ।१२। श्रीपराशर उवाच

घण्टामैरावताद्गजात्।

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार गोवर्धनपर्वतका धारण और गोवुलकी रक्षा हो जानेपर देवराज इन्द्रको श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेकी इच्छा हुई ॥१॥ अतः शत्रुजित् देवराज गजराज ऐरावतपर चढ़कर गोवर्धन-पर्वतपर आये और वहाँ सम्पूर्ण जगत्के रक्षक गोपवेष-धारी महावल्यान् श्रीकृष्णचन्द्रको ग्वालवालोंके साथ गोएँ चराते देखा ॥२-३॥ हे द्विज ! उन्होंने यह भी देखा कि पश्चिश्रेष्ठ गरुड अदृश्यभावसे उनके ऊपर रहकर अपने पङ्कांसे उनकी छाया कर रहे हैं ॥ ४ ॥ तत्र वे ऐरावतसे उतर पड़े और एकान्तमें श्रीमधुसूदनकी ओर प्रीतिपूर्वक दृष्टि पैलाते हुए मुसकाकर बोले ॥५॥

इन्द्रने कहा-हे श्रीकृष्णचन्द्र ! में जिसलिये आपके पास आया हूँ, वह सुनिये—हे महावाहो ! आप इसे अन्यया न समझें ॥ ६ ॥ हे अखिलाधार परमेश्वर ! आपने पृथिवीका भार उतारनेके छिये ही पृथिवीपर अवतार लिया है.॥ ७॥ यज्ञमंगसे विरोध मानकर ही मैंने गोकुलको नष्ट करनेके लिये महामेघों-को आज्ञा दी थी, उन्हींने यह संहार मचाया था।।८॥ किन्तु आपने पर्वतको उखाइकर गौओंको बचा लिया । हे बीर ! आपके इस अद्भृत कर्मसे मैं अति प्रसन्न हूँ ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! आपने जो अपने एक हाथपर गोवर्धन धारण किया है इससे में देवताओंका प्रयोजन [आपके द्वारा] सिद्ध हुआ ही समझता हूँ ॥ १० ॥ [गोवंशकी रक्षाद्वारा] आपसे रक्षित [कामधेनु आदि] गौओंसे प्रेरित होकर ही मैं आपका विशेष सत्कार करनेके लिये यहाँ आपके पास आया हूँ ॥ ११ ॥ हे कृष्ण ! अव मैं गौओंके वाक्यानुसार ही आपका उपेन्द्र-पदपर अभिषेक कहरा तथा आप गौओंके इन्द्र (खामी) हैं इस-लिये आपका नाम 'गोविन्द' भी होगा ॥ १२ ॥

श्रीपराशरजी बोले-तदनन्तर इन्द्रने अपने वाहन गजराज ऐरावतका घण्टा लिया और उसमें पवित्र जल अभिषेकं तया चके पवित्रजलपूर्णया।।१३॥
क्रियमाणेऽभिषेके तु गावः कृष्णस्य तत्क्षणात्।
प्रस्नवोद्ध्यतदुग्धाद्रां सद्यश्चकुर्वसुन्धराम् ॥१४॥
अभिषिच्य गवां वाक्यादुपेन्द्रं वै जनार्दनम् ।
प्रीत्या सप्रश्नयं वाक्यं पुनराह श्चीपितः ॥१५॥
गवामेतत्कृतं वाक्यं तथान्यदिप मे शृणु ।
यद्भवीमि महाभाग भारावतरणेच्छया॥१६॥
ममांशः पुरुषच्याघ्र पृथिच्यां पृथिवीधरः ।
अवतीर्णोऽर्जुनों नाम संरक्ष्यो भवता सदा॥१७॥
भारावतरणे साद्धं स ते वीरः करिष्यति ।
संरक्षणीयो भवता यथात्मा मधुस्रदन ॥१८॥

श्रीमगवानुवाच

जानामि भारते वंशे जातं पार्थं तवांशतः ।
तमहं पालियेष्यामि यावत्स्थास्यामि भूतले ॥१९॥
यावन्महीतले शक्र स्थास्याम्यहमितन्दम ।
न तावदर्जनं किश्वदेवेन्द्र युधि जेष्यति ॥२०॥
कंसो नाम महावाहुदैंत्योऽिरष्टस्तथासुरः ।
केशी कुवलयापीडो नरकाद्यास्तथा परे ॥२१॥
हतेषु तेषु देवेन्द्र भविष्यति महाहवः ।
तत्र विद्धि सहस्राक्ष भारावतरणं कृतम् ॥२२॥
स त्वं गच्छ न सन्तापं पुत्रार्थे कर्तुमर्हसि ।
नार्जुनस्य रिपुः किश्वन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥२३॥
अर्जुनार्थे त्वहं सर्वान्युधिष्ठिरपुरोगमान् ।
निवृत्ते भारते युद्धे कुन्त्यै दास्याम्यविश्वतान् ॥२४॥
श्रीपराशर जवान

इत्युक्तः सम्परिष्वज्य देवराजो जनार्दनम् । आरुद्धेरावतं नागं पुनरेव दिवं ययौ ॥२५॥ कृष्णो हि सहितो गोभिर्गोपालैश्च पुनर्वजम् । आजगामाथ गोपीनां दृष्टिपूतेन वर्त्मना ॥२६॥ भरकर उससे कृष्णचन्द्रका अभिषेक किया ॥ १३॥ श्रीकृष्णचन्द्रका अभिषेक होते समय गौओंने तुरन्त ही अपने स्तर्नोंसे टपकते हुए दुग्धसे पृथिवीको भिगो दिया ॥ १४ ॥

इस प्रकार गौओंके कथनानुसार श्रीजनाद नकी उपेन्द्र-पदपर अभिषिक्तकर शचीपित इन्द्रने पुनः प्रीति और विनयपूर्वक कहा-॥ १५॥ "हे महामाग! यह तो मैंने गौओंका वचन पूरा किया, अब पृथिवी-के भार उतारनेकी इच्छासे मैं आपसे जो कुछ और निवेदन करता हूँ वह भी सुनिये॥ १६॥ हे पृथिवीधर! हे पुरुषसिंह! अर्जु ननामक मेरे अंशने पृथिवीपर अवतार लिया है; आप कृपा करके उसकी सर्वदा रक्षा करें॥ १७॥ हे मधुसूदन! वह वीर पृथिवीका भार उतारनेमें आपका साथ देगा, अतः आप उसकी अपने शरीरके समान ही रक्षा करें"॥ १८॥

श्रीभगवान् बोले-भरतवंशमें पृथाके पुत्र अर्जुनने तुम्हारे अंशसे अवतार लिया है—यह मैं जानता हूँ। मैं जबतक पृथिवीपर रहूँगा, उसकी रक्षा करूँगा ॥१९॥ हे रात्रुसद्दन देवेन्द्र ! जबतक महीतलपर रहूँगा तबतक अर्जुनको युद्धमें कोई भी न जीत सकेगा ॥२०॥ हे देवेन्द्र ! विशाल मुजाओंवाला कंसनामक दैत्य, अरिष्टासुर, केशी, कुबलयापीड और नरकासुर आदि अन्यान्य दैत्योंका नाश होनेपर यहाँ महाभारत-युद्ध होगा । हे सहस्राक्ष ! उसी समय पृथिवीका भार उतरा हुआ समझना ॥ २१-२२ ॥ अब तुम प्रसन्तता-पूर्वक जाओ, अपने पुत्र अर्जुनके लिये तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो; मेरे रहते हुए अर्जुनका कोई भी शत्रु सफल न हो सकेगा ॥ २३ ॥ अर्जुनके लिये ही मैं महाभारतके अन्तमें युधिष्ठिर आदि समस्त पाण्डवोंको अक्षत-शरीरसे कुन्तीको दूँगा ॥२॥॥

श्रीपरांशरजी बोले-कृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर देवराज इन्द्र उनका आलिङ्गन कर ऐरावत हाथीपर आरूढ हो खर्गको चले गये ॥२५॥ तदनन्तर कृष्ण-चन्द्र भी गोपियोंके दृष्टिपातसे पवित्र हुए मार्गद्वारा गोपकुमारों और गौओंके साथ व्रजको लौट आये॥२६॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पश्चमेंऽशे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

गोपेंद्वारा भगवान्का प्रभाववर्णन तथा भगवान्का गोपियोंके साथ रासकीडा करना।

श्रीपराशर उवाच

गते शके तु गोपालाः कृष्णमक्किष्टकारिणम् । ऊचुः प्रीत्या धृतं दृष्ट्वा तेन गोवर्धनाचलम् ॥ १ ॥ वयमसान्महाभाग भगवन्महतो भयात । गावश्च भवता त्राता गिरिधारणकर्मणा।। २।। वालकीडेयमतुला गोपालत्वं जुगुप्सितम्। दि्च्यं च भवतः कर्म किमेतत्तात कथ्यताम्।। ३।। कालियो दमितस्तोये धेनुको विनिपातितः। धृतो गोवर्धनश्रायं शङ्कितानि मनांसि नः ॥ ४॥ सत्यं सत्यं हरेः पादौ श्रपामो अमितविक्रम । यथावद्वीर्यमालोक्य न त्वां मन्यामहे नरम् ॥ ५ ॥ प्रीतिः सस्त्रीक्रमारस्य व्रजस्य त्विय केशव । कर्म चेदमशक्यं यत्समस्तैस्त्रिदशैरपि ॥ ६ ॥ बालत्वं चातिवीर्यत्वं जन्म चासासक्शोभनम् । चिन्त्यमानममेयात्मञ्छङ्कां कृष्ण प्रयच्छति ॥७॥ देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा। किमसाकं विचारेण बान्धवोऽसि नमोऽस्तु ते॥८॥

श्रीपराशर उनाच क्षणं भूत्वा त्वसौ तृष्णीं किश्चित्प्रणयकोपवान् । इत्येवमुक्तस्तैगोंपैः कृष्णोऽप्याह महामतिः ॥ ९॥

श्रीभगवानुवाच मत्सम्बन्धेन वो गोपा यदि लङ्गा न जायते ।

श्रीपराशरजी बोले-इन्द्रके चले जानेपर लीला-विहारी श्रीकृष्णचन्द्रको विना प्रयास ही गोवर्धन-पर्वत धारण करते देख गोपगण उनसे प्रीतिपर्वक बोले-- ।। १ ।। हे भगवन् ! हे महाभाग ! आपने गिरिराजको धारण कर हमारी और गौओंकी इस महान् भयसे रक्षा की है ॥२॥ हे तात! कहाँ आपकी यह अनुपम बाल्लीला, कहाँ निन्दित गोप-जाति और कहाँ ये दिव्य कर्म ? यह सत्र क्या है. कृपया हमें वतलाइये ॥ ३ ॥ आपने यमुना-जलमें कालियनागका दमन किया, धेनुकासुरको मारा और फिर यह गोवर्धनपर्वत धारण किया: आपके इन अद्भुत कर्मोंसे हमारे चित्तमें बड़ी शंका हो रही है ॥ ४ ॥ हे अमितविक्रम ! हम भगवान् हरिके चरणोंकी शपथ करके आपसे सच-सच कहते हैं कि आपके ऐसे वल-वीर्यको देखकर हम आपको मनुष्य नहीं मान सकते ॥ ५ ॥ हे केशव ! स्त्री और वालकोंके सहित सभी व्रजवासियोंकी आप-पर अत्यन्त प्रीति है । आपका यह कर्म तो देवताओं-के लिये भी दुष्कर है ॥ ६ ॥ हे कृष्ण ! आपकी यह वाल्यावस्था, विचित्र वल-वीर्य और हम-जैसे नीच पुरुषोंमें जन्म छेना—हे अमेयात्मन् ! ये सव बातें विचार करनेपर हमें शंकामें डाल देती हैं ॥ ७॥ आप देवता हों, दानव हों, यक्ष हों अथवा गन्धर्व हों; इन बातोंका विचार करनेसे हमें क्या प्रयोजन है ? हमारे तो आप वन्धु ही हैं, अतः आपको नमस्कार है ॥ ८॥

श्रीपराशरजी बोले-गोपगणके ऐसा कहनेपर महामति कृष्णचन्द्र कुछ देरतक चुप रहे और फिर कुछ प्रणयजन्य कोपपूर्वक इस प्रकार कहने छगे—॥ ९॥

श्रीभगवान्ने कहा-हे गोपगण! यदि आप-छोगोंको मेरे सम्बन्धसे किसी प्रकारकी रूजा न हो, श्लाघ्यो वाहं ततः किं वो विचारेण प्रयोजनम्।१०१ यदि वोऽितः मिय प्रीतिः श्लाघ्योऽहं भवतां यदि । तदात्मबन्धुसद्दशी बुद्धिर्वः क्रियतां मिय ॥११॥ नाहं देवो न गन्धर्वो न यक्षो न च दानवः । अहं वो बान्धवो जातो नैतिचिन्त्यमितोऽन्यथा१२

श्रीपराशर उवाच इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं वद्धमौनास्ततो वनम् । ययुर्गोपा महाभाग तस्मिन्प्रणयकोपिनि ॥१३॥ कृष्णस्तु विमलं व्योम शरचन्द्रस्य चन्द्रिकाम्। तदा कुमुदिनीं फुल्लामामोदितदिगन्तराम् ॥१४॥ वनराजि तथा क्जद्भृङ्गमालामनोहराम्। विलोक्य सह गोपीभिर्मनश्रके रति प्रति ॥१५॥ विना रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम्। जगौ कलपदं शौरिस्तारमन्द्रकृतकमम्।।१६॥ रम्यं गीतघ्वनिं श्रुत्वा सन्त्यज्यावसथांस्तदा। आजग्मस्त्वरिता गोप्यो यत्रास्ते मधुस्रद्रनः ॥१७॥ शनैक्शनैर्जगौ गोपी काचित्तस लयानुगम्। द्त्तावधाना काचिच तमेव मनसासरत्।।१८॥ काचित्कुष्णेति कृष्णेति प्रोच्य लञ्जाम्रपाययौ। ययौ च काचित्रेमान्धा तत्पार्श्वमविलम्बितम्।१९। काचिचावसथस्थान्ते स्थित्वा दृष्ट्वा बहिर्गुरुम्। तन्मयत्वेन गोविन्दं दच्यौ मीलितलोचना ॥२०॥ तिचत्रविमलाह्लादश्लीणपुण्यचया |तदप्राप्तिमहादुःखविलीनाशेषपातका 113811

चिन्तयन्ती जगत्स्रतिं परब्रह्मस्वरूपिणम्।

तो मैं आपछोगोंसे प्रशंसनीय हूँ इस वातका विचार करनेकी भी क्या आवश्यकता है ? ॥१०॥ यदि मुझमें आपकी प्रशंसाका पात्र हूँ तो आपछोग मुझमें वान्धव-बुद्धि ही करें ॥ ११॥ मैं न देव हूँ, न गन्धर्व हूँ, न यक्ष हूँ और न दानव हूँ । मैं तो आपके वान्धवरूपसे ही उत्पन्न हुआ हूँ; आपछोगोंको इस विषयमें और कुछ विचार न करना चाहिये ॥ १२॥

श्रीपराशरजी बोले-हे महाभाग ! श्रीहरिके प्रणयकोपयुक्त होकर कहे हुए इन वाक्योंको सुनकर वे समस्त गोपगण चुपचाप वनको चले गये॥ १३॥

तव श्रीकृष्णचन्द्रने निर्मल आकाश, शरचन्द्रकी चिन्द्रका और दिशाओंको सुरमित करनेवाली विकसित कुमुदिनी तथा वन-खण्डीको मुखर मधुकरोंसे मनोहर देखकर गोपियोंके साथ रमण करनेकी इच्छा की ॥ १४-१५॥ उस समय वलराम-जीके विना ही श्रीमुरलीमनोहर स्त्रियोंको प्रिय लगनेवाला अत्यन्त मधुर, अस्फुट एवं मृदुल पद ऊँचे और धीमे खरसे गाने लगे ॥ १६॥ उनकी उस सुरम्य गीतध्वनिको सुनकर गोपियाँ अपने-अपने घरोंको छोड़कर तत्काल जहाँ श्रीमधुसूदन थे वहाँ चली आयीं॥ १७॥

वहाँ आकर कोई गोपी तो उनके खर-में-खर मिलाकर धीरे-धीरे गाने लगी और कोई मन-ही-मन उन्हींका स्मरण करने लगी ॥ १८॥ कोई 'हे कृष्ण, हे कृष्ण' ऐसा कहती हुई लजावश संकुचित हो गयी और कोई प्रेमोन्मादिनी होकर तुरन्त उनके पास जा खड़ी हुई ॥ १९॥ कोई गोपी बाहर गुरुजनोंको देखकर अपने घरमें ही रहकर आँख मूँदकर तन्मयमावसे श्रीगोविन्दका ध्यान करने लगी ॥ २०॥ तथा कोई गोपकुमारी जगत्के कारण परब्रह्मखरूप श्रीकृष्णचन्द्रका चिन्तन करते-करते [मूर्च्छीवस्थामें] प्राणापानके रुक जानेसे मुक्त हो गयी, क्योंकि मगवद्धधानके विमल आह्रादसे उसकी समस्त पुण्यराशि क्षीण हो गयी और मगवान्की अप्राप्तिके

निरुच्छ्वासतया मुर्तिः गतान्या गोपकन्यका ॥२२॥ गोपीपरिवृतो रात्रिं शरचन्द्रमनोरमाम् । मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः ॥२३॥

गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टास्वायत्तमूर्त्तयः ।
अन्यदेशं गते कृष्णे चेरुर्वन्दावनान्तरम् ॥२४॥
कृष्णे निवद्धहृदया इदमूजः परस्परम् ॥२५॥
कृष्णोऽहमेप लिलतं त्रजाम्यालोक्यतां गतिः ।
अन्या त्रवीति कृष्णस्य मम गीतिनिश्चम्यताम् ।२६।
दृष्टकालिय तिष्ठात्र कृष्णोऽहमिति चापरा ।
वाहुमास्फोट्य कृष्णस्य लीलया सर्वमाददे ॥२७॥
अन्या त्रवीति भो गोपा निक्शक्कैः स्वीयतामिति ।
अलं वृष्टिभयेनात्र धतो गोवर्धनो मया ॥२८॥
धेतुकोऽयं मया क्षिप्तो विचरन्तु यथेच्छया ।
गावो त्रवीति चैवान्या कृष्णलीलानुसारिणी ।२९।

एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तासदा।
गोप्या व्यग्राः समं चेरू रम्यं वृन्दावनान्तरम्।३०॥
विलोक्येका सुवं प्राह गोपी गोपवराङ्गना।
पुलकाश्चितसर्वाङ्गी विकासिनयनोत्पला॥३१॥
ध्वजवज्राङ्क्याव्जाङ्करेखावन्त्यालि पश्चत।
पदान्येतानि कृष्णस्य लीलाललितगामिनः॥३२॥
कापि तेन समायाता कृतपुण्या मदालसा।
पदानि तस्याश्चेतानि घनान्यस्पतन्ति च॥३३॥
पुष्पाप्चयमत्रोश्चेश्वके दामोदरो ध्रुवम्।
येनाग्राकान्तमात्राणि पदान्यत्र महात्मनः॥३४॥

महान् दुःखसे उसके समस्त पाप छीन हो गये ये ॥ २१-२२ ॥ गोपियोंसे चिरे हुए रासारम्भरूप रसके छिये उत्कण्ठित श्रीगोविन्दने उस शरचन्द्र-सुशोमिता रात्रिको [रास करके] सम्मानित किया ॥ २३ ॥

उस समय भगवान् कृष्णके अन्यत्र चले जानेपर कृष्णचेष्टाके अधीन हुई गोपियाँ यूथ वनाकर बृन्दावनके अन्दर विचरने लगीं ॥२४॥ कृष्णमें निवद-चित्त हुई वे त्रजाङ्गनाएँ परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने टगीं-[उसमेंसे एक गोपी कहती थी-] "मैं ही कृष्ण हूँ; देखो, कैसी सुन्दर चालसे चलता हूँ; तनिक मेरी गति तो देखो।" दूसरी कहती-"कृष्ण तो मैं हूँ, अहा ! मेरा गाना तो सुनो"॥ २५-२६॥ कोई अन्य गोपी मुजाएँ ठोंककर वोल उठती-"अरे दुष्ट कालिय ! मैं कृष्ण हूँ, तनिक ठहर तो जा" ऐसा कहकर वह कृष्णके सारे चरित्रोंका बीलापूर्वक अनुकरण करने लगती ॥ २७॥ कोई और गोपी कहने लगती-"अरे गोपगण! मैंने गोवर्धन धारण कर लिया है, तुम वर्षासे मत डरो. निरशंक होकर इसके नीचे आकर बैठ जाओ" ॥ २८ ॥ कोई दूसरी गोपी कृष्णलीलाओंका अनुकरण करती हुई बोल्ने लगती -''मैंने धेनुकासुरको मार दिया है, अब यहाँ गौएँ खच्छन्द होकर विचरें" ॥२९॥

इस प्रकार समस्त गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रकी नाना प्रकारकी चेष्टाओं में न्यप्र होकर साथ-साथ अति प्रुरम्य वृन्दावनके अन्दर विचरने छगीं ॥३०॥ खिले हुए कमल्ड से नेत्रोंवाली एक सुन्दरी गोपांगना सर्वागमें पुलकित हो पृथिवीकी ओर देखकर कहने छगी—॥३१॥ अरी आली ! ये लीलालितगामी कृष्णचन्द्रके घ्वजा, वज, अंकुश और कमल आदिकी रेखाओंसे सुशोमित पदचिह्न तो देखो ॥ ३२॥ और देखो, उनके साथ कोई पुण्यवती मदमाती युवती भी गयी है, उसके ये घने छोटे-छोटे और पतले चरण-चिह्न दिखायी दे रहे हैं ॥ ३३॥ यहाँ निश्चय ही दामोदरने ऊँचे होकर पुष्पचयन किये हैं; इसी कारण यहाँ उन महात्माके चर्णोंके केवल अप्रमाग ही अङ्गित हुए हैं ॥ ३२॥

अत्रोपविश्य वै तेन काचित्पुष्पैरलङ्कृता । अन्यजन्मनि सर्वात्मा विष्णुरम्यर्चितस्तया।।३५॥ पुष्पवन्धनसम्मानकृतमानामपास्य ताम्। नन्दगोपसुतो यातो मार्गेणानेन पश्यत ॥ ३६॥ अनुयातैनमत्रान्या नितम्बभरमन्थरा। या गन्तव्ये द्वतं याति निम्नपादात्रसंस्थितिः।।३७।। इस्तन्यसाग्रहस्तेयं तेन याति तथा सखी। अनायत्तपदन्यासा लक्ष्यते पदपद्धतिः ॥३८॥ इस्तसंस्पर्शमात्रेण धृतेनेषा विमानिता। नैराक्यान्मन्दगामिन्या निवृत्तं लक्ष्यते पदम्।।३९। नूनमुक्ता त्वरामीति पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम्। तेन कृष्णेन येनैपा त्वरिता पद्पद्धतिः ॥४०॥ प्रविष्टो गहनं कृष्णः पदमत्र न लक्ष्यते । निवर्तध्वं ग्राशाङ्कस्य नैतदीधितिगोचरे ॥४१॥

निश्चतास्तास्तदा गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने ।

यग्रनातीरमासाद्य जगुस्तचरितं तथा ॥४२॥

ततो दद्दशुरायान्तं विकासिग्रस्वपङ्कजम् ।

गोप्यस्नैलोक्यगोप्तारं कृष्णमिक्कष्टचेष्टितम् ॥४३॥

काचिदालोक्य गोविन्दमायान्तमितहर्षिता ।

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्राह नान्यदुदीरयत् ॥४४॥

काचिद्श्रूमङ्गरं कृत्वा ललाटफलकं हरिम् ।

विलोक्य नेत्रभृङ्गाम्यां प्रमौ तन्यस्वपङ्कजम्॥४५॥

यहाँ वैठकर उन्होंने निश्चय ही किसी वड्भागिनीका पुष्पोंसे शृङ्गार किया है; अवश्य ही उसने अपने पूर्वजन्ममें सर्वात्मा श्रीविष्णुभगवान्की उपासना की होगी ॥ ३५॥ और यह देखो, पुष्पबन्धनके सम्मानसे गर्विता होकर उसके मान करनेपर श्री-नन्दनन्दन उसे छोड़कर इस मार्गसे चले गये हैं ॥ ३६ ॥ अरी सिखयो ! देखो, यहाँ कोई नितम्ब-भारके कारण मन्दगामिनी गोपी कृष्णचन्द्रके पीछे-पीछे गयी है। वह अपने गन्तव्य स्थानको तीव्रगतिसे गयी है, इसीसे उसके चरणचिह्नोंके अग्रभाग कुछ नीचे दिखायी देते हैं ॥ ३७॥ यहाँ वह सखी उनके हाथमें अपना पाणिपछव देकर चली है इसीसे उसके चरणचिह्न पराधीन-से दिखलायी देते हैं ॥ ३८ ॥ देखो, यहाँसे उस मन्दगामिनीके निराश होकर छौटनेके चरणचिह्न दीख रहे हैं, माछम होता है उस धूर्तने [उसकी अन्य आन्तरिक अमिलाषाओंको पूर्ण किये विना ही] केवल कर-स्पर्श करके उसका अपमान किया है ॥ ३९॥ यहाँ कृष्णने अवस्य उस गोपीसे कहा है '[त् यहीं वैठ] मैं शीघ्र ही जाता हूँ [इस वनमें रहनेवाले राक्षसको मारकर] पुनः तेरे पास छौट आऊँगा । इसीछिये यहाँ उनके चरणोंके चिह्न शीघ्र गतिके-से दीख रहे हैं' ॥ ४० ॥ यहाँसे कृष्णचन्द्र गहन वनमें चले गये हैं, इसीसे उनके चरण-चिह्न दिखलायी नहीं देते; अब सव छौट चछो; इस स्थानपर चन्द्रमाकी किरणें नहीं पहुँच सकतीं ॥ ४१ ॥

तदनन्तर वे गोपियाँ कृष्ण-दर्शनसे निराश होकर छौट आयीं और यमुनातटपर आकर उनके चिरतों-को गाने छगीं ॥ ४२ ॥ तब गोपियोंने प्रसन्तमुखार-विन्द त्रिमुवनरक्षक छौछाविहारी श्रीकृष्णचन्द्रको वहाँ आते देखा ॥ ४३॥ उस समय कोई गोपी तो श्री-गोविन्दको आते देखकर अति हिर्वत हो केवछ कृष्ण । कृष्ण !! कृष्ण !!!" इतना ही कहती रह गयी और कुछ न बोछ सकी ॥ ४४ ॥ कोई [प्रणयकोप-वश] अपनी भू मंगीसे छछाट सिकोड़ कर श्री-हिरको देखते हुए अपने नेत्ररूप भ्रमरोहारा उसके मुखकमछका मकरन्द पान करने छगी ॥ ४५ ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

काचिदालोक्य गोविन्दं निमीलितविलोचना।
तस्यैव रूपं ध्यायन्ती योगारूढेव सा बमौ ॥४६॥
ततः काञ्चित्प्रियालापैः काञ्चिद्ध्र्भङ्गवीक्षितैः।
निन्येऽज्ञनयमन्यां च करस्पर्शेन माधवः॥४७॥
ताभिः प्रसन्नचित्ताभिगोपीभिस्सह सादरम्।
रास रासगोष्ठीभिक्दारचितो हरिः ॥४८॥
रासमण्डलवन्धोऽपि कृष्णपार्श्वमजुञ्झता।
गोपीजनेन नैवाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥४९॥
इस्तेन गृह्य चैकैकां गोपीनां रासमण्डलम्।
चकार तत्करस्पर्शनिमीलितदृशं हरिः॥५०॥

ततः प्रवद्यते रासश्रलद्वलयनिखनः।
अनुयातशरत्काच्यगेयगीतिरनुक्रमात् ॥५१॥
कृष्णक्शरचन्द्रमसं कौम्रदीं कुम्रदाकरम्।
जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः पुनः॥५२॥
परिवृत्तिश्रमणैका चलद्वलयलापिनीम्।
ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी मधुनिवातिनः॥५३॥
काचित्प्रविलसद्वाहुः परिरम्य चुचुम्व तम्।
गोपी गीतस्तुतिच्याजान्निपुणा मधुम्रदनम्॥५४॥
गोपीकपोलसंश्लेषमभिगम्य हरेर्भुजौ।
पुलकोद्वमसस्याय खेदाम्बुधनतां गतौ॥५५॥

रासगेयं जगौ कृष्णो यावत्तारतरध्विनः ।
साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत्ता द्विगुणं जगुः॥५६॥
गतेऽजुगमनं चक्रुर्वलुने सम्मुखं ययुः ।
प्रतिलोमानुलोमाभ्यां मेजुर्गोपाङ्गना हरिम्॥५७॥
स तथा सह गोपीभी ररास मधुसदनः ।

कोई गोपी गोविन्दको देख नेत्र म्ँदकर उन्हीं-के रूपका ध्यान करती हुई योगारूढ-सी भासित होने लगी॥ ४६॥

तब श्रीमाधव किसीसे प्रिय भाषण करके, किसीकी ओर श्रूमंगीसे देखकर और किसीका हाथ पकड़कर उन्हें मनाने छगे ॥ ४७ ॥ फिर उदारचरित श्रीहरिने उन प्रसन्नचित्त गोपियोंके साथ रासमण्डळ बनाकर आदरपूर्वक रमण किया ॥ ४८ ॥ किन्तु उस समय कोई भी गोपी कृष्णचन्द्रकी सिनिधिको न छोड़ना चाहती थी; इसिछये एक ही स्थानपर स्थिर रहनेके कारण रासोचित मण्डळ न बन सका ॥ ४९ ॥ तब उन गोपियोंमेंसे एक-एकका हाथ पकड़कर श्रीहरिने रासमण्डळकी रचना की । उस समय उनके करस्पर्शसे प्रत्येक गोपीकी आँखें आनन्दसे मुँद जाती थीं ॥५०॥

तदनन्तर रासक्रीडा आरम्भ हुई । उसमें गोपियोंके
चञ्चल कंकणोंकी झनकार होने लगी और फिर क्रमशः
शरहर्णन-सम्बन्धी गीत होने लगे ॥ ५१ ॥ उस समय
कृष्णचन्द्र चन्द्रमा, चन्द्रिका और कुमुदवन-सम्बन्धी
गान करने लगे; किन्तु गोपियोंने तो वारम्वार केवल
कृष्णनामका ही गान किया ॥ ५२ ॥ फिर एक
गोपीने चृत्य करते-करते यककर चञ्चल कंकणकी
झनकारसे युक्त अपनी वाहुलता श्रीमधुसूदनके गलेमें
डाल दी ॥५३॥ किसी निपुण गोपीने मगवान्के गानकी
प्रशंसा करनेके बहाने मुजा फैलाकर श्रीमधुसूदनको आलिङ्गन करके चूम लिया ॥ ५९ ॥ श्रीहरिकी
मुजाएँ गोपियोंके कपोलेंका चुम्बन पाकर उन
(क्पोलें) में पुलकावलिक्षप धान्यकी उत्पत्तिके लिये
स्वेदक्षप जलके मेघ बन गयीं ॥ ५५ ॥ स्वेदक्ष्य है।

कृष्णचन्द्र जितने उच्चखरसे रासोचित गान गाते थे उससे दूने शब्दसे गोपियाँ "धन्य कृष्ण ! धन्य कृष्ण !!" की ही ध्वनि छगा रही थीं ॥ ५६ ॥ भगवान्के आगे जानेपर गोपियाँ उनके पीछे जातीं और छौटनेपर सामने चछतीं, इस प्रकार वे अनुछोम और प्रतिछोम-गतिसे श्रीहरिका साथ देती थीं ॥५७॥ श्रीमधुसूदन भी गोपियोंके साथ इस प्रकार रासकीडा यथाब्दकोटिप्रतिमः क्षणस्तेन विनाभवत् ॥५८॥
ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्प्रातृभिरत्तथा ।
कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः॥५९॥
सोऽपि कैशोरकवयो मानयन्मधुद्धद्दनः ।
रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः ॥६०॥
तद्भर्तेषु तथा तासु सर्वभृतेषु चेश्वरः ।
आत्मस्वरूपरूपोऽसौ व्यापी वायुरिव स्थितः॥६१॥
यथा समस्तभृतेषु नभोऽप्रिः पृथिवी जलम् ।
वायुश्वात्मा तथैवासौ व्याप्य सर्वमवस्थितः ॥६२॥

कर रहे थे कि उनके बिना एक क्षण भी गोपियोंको करोड़ों वर्षोंके समान बीतता था॥ ५८॥ वे रास-रिस गोपांगनाएँ पित, माता-पिता और स्नाता आदिके रोकनेपर भी रात्रिमें श्रीक्यामसुन्दरके साथ विहार करती थीं ॥ ५९॥ शत्रुहन्ता अमेयात्मा श्रीमधुसूदन भी अपनी किशोरावस्थाका मान करते हुए रात्रिके समय उनके साथ रमण करते थे॥ ६०॥ वे सर्वव्यापी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंमें, उनके पितयोंमें तथा समस्त प्राणियोंमें आत्मस्वरूपसे वायुके समान व्याप्त थे॥ ६१॥ जिस प्रकार आकाश, अग्नि, पृथिवी, जल, वायु और आत्मा समस्त प्राणियोंमें व्याप्त हैं उसी प्रकार वे भी सब पदार्थोंमें व्यापक हैं ॥ ६२॥

इति श्रोविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

वृषभासुर-वध ।

श्रीपराशर उवाच

प्रदोषाग्रे कदाचित्तु रासासक्ते जनार्दने।

त्रासयन्समदो गोष्ठमरिष्टस्सम्रपागमत्॥१॥

सतोयतोयदच्छायस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः।

खुराग्रपातैरत्यर्थं दारयन्धरणीतलम्॥२॥

लेलिहानस्सनिष्पेषं जिह्नयोष्ठौ पुनः पुनः।

संरम्भाविद्धलाङ्गूलः कठिनस्कन्धवन्धनः॥३॥

उदप्रककुदाभोगप्रमाणो दुरतिक्रमः।

विण्मूत्रलिप्तपृष्ठाङ्गो गवामुद्धेगकारकः॥४॥

प्रलम्बकण्ठोऽतिम्रुखस्तरुखाताङ्किताननः।

पातयन्स गवां गर्भान्दैत्यो वृषभरूपधृक्॥५॥

सद्यंस्तापसानुग्रो वनानदि यस्सदा॥६॥

श्रीपराशरजी बोले-एक दिन सायंकालके समय जब श्रीकृष्णचन्द्र रासक्रीडामें आसक्त थे, अरिष्टनामक एक मदोन्मत्त असुर [वृषमरूप धारणकर] सबको भयभीत करता व्रजमें आया ॥ १ ॥ इस अरिष्टासुरकी कान्ति सजल जलधरके समान कृष्णवर्ण थी, सींग अत्यन्त तीक्ष्ण थे, नेत्र सूर्यके समान तेजस्वी थे और अपने खुरोंकी चोटसे वह मानो पृथिवीको फाड़े डाछता था ॥ २ ॥ वह दाँत पीसता हुआ पुनः-पुनः अपनी जिह्नासे ओठोंको चाट रहा था, उसने क्रोधवश अपनी प्रुँछ उठा रखी थी तथा उसके स्कन्धबन्धन कठोर ये ॥ ३॥ उसके ककुद (कुहान) और रारीरका प्रमाण अत्यन्त ऊँचा एवं दुर्छङ्घ्य था, पृष्ठ-भाग गोबर और मूत्रसे लियड़ा हुआ था तथा वह समस्त गौओंको भयभीत कर रहा या ॥ ४ ॥ उसकी प्रीवा अत्यन्त लम्बी और मुख वृक्षके खोंखलेके समान अति गम्भीर था । वह वृषमरूपधारी दैत्य गौओंके गर्मोंको गिराता हुआ और तपखियोंको मारता हुआ सदा वनमें विचरा करता या ॥ ५-६ ॥.

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

ततस्तमतिघोराक्षमवेक्ष्यातिभयातुराः गोपा गोपस्त्रियश्रेव कृष्ण कृष्णेति चुक्रुग्रः ॥ ७॥ सिंहनादं ततश्रके तलशब्दं च केशवः। तच्छब्दश्रवणाचासौ दामोदरम्रपाययौ ॥ ८ ॥ अग्रन्यस्तविपाणाग्रः कृष्णकुक्षिकृतेक्षणः। अभ्यधावत दुष्टात्मा कृष्णं वृपभदानवः ॥ ९॥ आयान्तं दैत्यवृपभं दृष्टा कृष्णो महावलः । न चचाल तदा स्थानादवज्ञासितलीलया ॥१०॥ आसन्नं चैव जग्राह ग्राहवन्मधुद्धद्नः। जघान जानुना कुक्षौ विपाणग्रहणाचलम् ॥११॥ तस्य दुर्पवलं भङ्कत्वा गृहीतस्य विपाणयोः। अपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्विन्नमिवाम्वरम् ॥१२॥ शृङ्गमेकं त तेनैवाताइयत्ततः। ममार स महादैत्यो मुखाच्छोणितमुद्रमन् ॥१३॥ तुष्ट्रवृनिंहते तसिन्दैत्ये गोपा जनार्दनम् । जम्मे हते सहस्राक्षं पुरा देवगणा यथा ॥ १४ ॥

तव उस अति भयानक नेत्रोंवाछे दैत्यको देखकर गोप और गोपाङ्गनाएँ भयभीत होकर 'कृष्ण, कृष्ण' पुकारने छगीं ॥ ७ ॥ उनका शब्द सुनकर श्रीकेशवने घोर सिंहनाद किया और ताळी वजायी । उसे सुनते ही वह श्रीदामोदरकी ओर फिरा ॥ ८ ॥ दुरात्मा वृपमासुर आगेको सींग करके तथा कृष्णचन्द्र-की कुक्षिमें दृष्टि छगाकर उनकी ओर दोड़ा ॥ ९ ॥ किन्तु महावळी कृष्ण वृपमासुरको अपनी ओर आता देख अवहेळनासे छोळापूर्वक मुसकराते हुए उस स्थानसे विचळित न हुए ॥ १० ॥ निकट आनेपर श्रीमधुसूदनने उसे इस प्रकार पकड़ छिया जैसे प्राह किसी क्षुद्र जीवको पकड़ छेता है; तथा सींग पकड़नेसे अचळ हुए उस दैत्यकी कोखमें घुटनेसे प्रहार किया ॥११॥ इस प्रकार सींग पकड़े हुए उस दैत्यका दर्प

इस प्रकार सींग पकड़े हुए उस दैत्यका दर्प मंगकर भगवान्ने अरिष्टासुरकी प्रीवाको गीले वस्नके समान मरोड़ दिया ॥ १२ ॥ तदनन्तर उसका एक सींग उखाड़कर उसीसे उसपर आघात किया जिससे वह महादैत्य मुखसे रक्त वमन करता हुआ मर गया ॥ १३ ॥ जम्भके मरनेपर जैसे देवताओंने इंन्द्रकी स्तुति की थी उसी प्रकार अरिष्टासुरके मरनेपर गोपगण श्रीजनार्दनकी प्रशंसा करने छगे ॥ १४ ॥

-349-

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

कंसका श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरको भेजना।

श्रीपराशर उवाच

ककुबाति हतेऽरिष्टे घेनुके विनिपातिते।
प्रलम्बे निधनं नीते धृते गावर्धनाचले॥१॥
दमिते कालिये नागे भये तुङ्गद्धमद्धये।
हतायां पूतनायां च शकटे परिवर्तिते॥२॥
कंसाय नारदः प्राह यथावृत्तमनुक्रमात्।
यशोदादेवकीगर्भपरिष्टन्याद्यशेपतः॥३॥

श्रीपराशरजी बोले-वृषमरूपधारी अरिष्टासुर घेनुक और प्रलम्ब आदिका वध, गोवर्धनपर्वतका, धारण करना, काल्यिनागका दमन, दो विशाल वृक्षोंका उखाड़ना, पूतनावध तथा शकटका उल्ट देना आदि अनेक लीलाएँ हो जानेपर एक दिन नारदजीने कंसको, यशोदा और देवकीके गर्भ-परिवर्तन-से लेकर जैसा-जैसा हुआ था, वह सब वृत्तान्त कमशः सुना दिया ॥ १-३॥

श्चत्वा तत्सकलं कंसो नारदाइवदर्शनात्। वसुदेवं प्रति तदा कोपं चक्रे सुदुर्मतिः॥ ४॥ सोऽतिकोपादुपालभ्यं सर्वयादवसंसदि। जगर्ह यादवांश्रव कार्य चैतद्चिन्तयत् ॥ ५॥ यावन वलमारूढी रामकृष्णी सुवालकौ । ताबदेव मया वध्यावसाध्यो रूढयौवनौ ॥ ६ ॥ चाणूरोऽत्र महावीर्यो मुष्टिकश्च महावलः। एताम्यां मल्लयुद्धेन मारयिष्यामि दुर्मती ॥ ७ ॥ धर्जुमहमहायोगच्याजेनानीय तौ व्रजात । तथा तथा यतिष्यामि यास्येते सङ्घन्यं यथा।। ८।। श्वफल्कतनयं शूरमक्रूरं यदुपुङ्गवम् । तयोरानयनार्थाय प्रेषयिष्यामि गोकुलम् ॥ ९॥ वृन्दावनचरं घोरमादेश्यामि च केशिनम्। तत्रैवासावतिवलस्तावुभौ घातयिष्यति ॥१०॥ गजः कुवलयापीडो मत्सकाशमिहागतौ । घातयिष्यति वा गोपौ वसुदेवसुतावुमौ ॥११॥ श्रीपराशर उवाच

इत्यालोच्य स दुष्टात्मा कंसो रामजनार्दनौ । हन्तुं कृतमतिर्वीरावक्र्रं वाक्यमत्रवीत् ॥१२॥

कंस उवाच

भो भो दानपते वाक्यं कियतां प्रीतये मम ।
इतः स्वन्दनमारुद्ध गम्यतां नन्दगोकुलम् ॥१३॥
वसुदेवसुतौ तत्र विष्णोरंशसमुद्भवौ ।
नाशाय किल सम्भूतौ मम दुष्टौ प्रवर्द्धतः ॥१४॥
धनुर्महो ममाप्यत्र चतुर्दश्यां भविष्यति ।
आनेयौ भवता गत्वा मळुयुद्धाय तत्र तौ ॥१५॥
चाण्रमुष्टिकौ मळौ नियुद्धकुश्यलौ मम ।
ताभ्यां सहानयोर्थुद्धं सर्वलोकोऽत्र पश्यतु ॥१६॥
गजः कुवलयापीद्धो महामात्रप्रचोदितः ।

देवदर्शन नारदजीसे ये सब बातें सुनकर दुर्बुद्धि कंसने वसुदेवजीके प्रति अत्यन्त क्रोध प्रकट किया ॥ १ ॥ उसने अत्यन्त कोपसे वसुदेवजीको सम्पूर्ण यादवोंकी सभामें डाँटा तथा समस्त यादवोंकी भी निन्दा की और यह कार्य विचारने छगा-- 'ये अत्यन्त बालक राम और कृष्ण जवतक पूर्ण वल प्राप्त नहीं करते हैं तभीतक मुझे इन्हें मार देना चाहिये क्योंकि युवावस्था प्राप्त होनेपर तो ये अजेय हो जायँगे ॥ ५-६ ॥ मेरे यहाँ महावीर्यशाली चाणूर और महावली मुष्टिक-जैसे मळ हैं। मैं इनके साथ मञ्जयुद्ध कराकर उन दोनों दुर्बुद्धियोंको मरवा डाहुँगा ॥७॥ उन्हें महान् धनुर्यज्ञके मिससे व्रजसे बुलाकर ऐसे-ऐसे उपाय करूँगा जिससे वे नष्ट हो जायँ ॥८॥ उन्हें लानेके लियें मैं खफल्कके पुत्र यादवश्रेष्ठ श्र्वीर अक्रूरको गोकुल भेजूँगा ॥ ९॥ साथ ही वृन्दावनमें विचरनेवाले घोर असुर केशीको भी आज्ञा दूँगा जिससे वह महात्रली दैत्य उन्हें वहीं नष्ट कर देगा ॥१०॥ अथवा [यदि किसी प्रकार वचकर] वे दोनों वसुदेव-पुत्र गोप मेरे पास आ भी गये तो उन्हें मेरा कुवलयापीड हाथी मार डालेगा' ॥ ११॥

श्रीपराशरजी बोले-ऐसा सोचकर उस दुष्टात्मा कंसने वीरवर राम और कृष्णको मारनेका निश्चय कर अक्रूरजीसे कहा ॥ १२॥

कंस बोला-हे दानपते ! मेरी प्रसन्नताके लिये आप मेरी एक बात खीकार कर लीजिये । यहाँ से रथपर चढ़कर आप नन्दके गोकुलको जाइये ॥१३॥ वहाँ वसुदेवके विष्णुअंशसे उत्पन्न दो पुत्र हैं। मेरे नाशके लिये उत्पन्न हुए वे दुष्ट बालक वहाँ पोषित हो रहे हैं ॥१४॥ मेरे यहाँ चतुर्दशीको धनुषयझ होनेवाल है; अतः आप वहाँ जाकर उन्हें मल्लयुद्धके लिये ले आइये ॥१५॥ मेरे चाणूर और मुष्टिकनामक मल्ल युग्म-युद्धमें अति कुशल हैं, [उस धनुर्यझके दिन] उन दोनोंके साथ मेरे इन पहल्वानोंका दन्द्वयुद्ध यहाँ सबलोग देखें ॥१६॥ अथवा महावत-से प्रेरित हुआ कुवल्यापीडनामक गजराज उन दोनों

स वा हनिष्यते पापौ वसुदेवात्मजौ शिश्र ॥१७॥
तौ हत्वा वसुदेवं च नन्दगोपं च दुर्मतिम् ॥
हनिष्ये पितरं चैनसुप्रसेनं सुदुर्मतिम् ॥१८॥
ततस्समस्तगोपानां गोधनान्यिकलान्यहम् ।
वित्तं चापहरिष्यामि दुष्टानां मद्वधैषणाम् ॥१९॥
त्वामृते यादवाश्चैते द्विपो दानपते मम ।
एतेषां च वधायाहं यतिष्येऽनुक्रमात्ततः ॥२०॥
तदा निष्कण्टकं सर्व राज्यमेतदयादवम् ।
प्रसाधिष्ये त्वया तसान्मत्प्रीत्यै वीर गम्यताम् २१
यथा च माहिषं सर्पिदेधि चाप्युपहार्य वै ।
गोपास्समानयन्त्वाश्च तथा वाच्यास्त्वया च ते २२

श्रीपराशर उवाच

इत्याज्ञप्तस्तदाकूरो महाभागवतो द्विज । प्रीतिमानभवत्कृष्णं श्वो द्रक्ष्यामीति सत्वरः॥२३॥ तथेत्युक्त्या च राजानं रथमारुह्य शोभनम् । निश्वकाम ततः पुर्या मथुराया मधुप्रियः ॥२४॥ दुष्ट वसुदेव-पुत्र वालकोंको नष्ट कर देगा ॥ १७ ॥ इस प्रकार उन्हें मारकर में दुर्मित वसुदेव, नन्दगोप और इस अपने मन्दमित पिता उप्रसेनको भी मार डाल्डॅंगा ॥ १८ ॥ तदनन्तर, मेरे वधकी इच्छा-वाले इन समस्त दुष्ट गोपोंके सम्पूर्ण गोधन तथा धनको में छीन ल्डॅंगा ॥ १९ ॥ हे दानपते ! आपके अतिरिक्त ये सभी यादवगण मुझसे द्वेष करते हैं, अतः मैं कमशः इन समीको नष्ट करनेका प्रयत्न कल्डॅंगा ॥ २० ॥ फिर में आपके साथ मिलकर इस यादवहीन राज्यको निर्विन्नतापूर्वक मोगूँगा, अतः हे वीर ! मेरी प्रसन्नताके लिये आप शीघ्र ही जाइये ॥ २१ ॥ आप गोकुलमें पहुँचकर गोपगणोंसे इस प्रकार कहें जिससे वे माहिष्य (मैंसके) घृत और दिघ आदि उपहारोंके सहित शीघ्र ही यहाँ आ जायँ ॥ २२ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विज ! कंससे ऐसी आजा पा महाभागवत अक्रूरजी 'कल में शीव्र ही श्रीकृष्णचन्द्र-को देखूँगा'—यह सोचकर अति प्रसन्न हुए ॥ २३ ॥ माधविष्रय अक्रूरजी राजा कंससे 'जो आजा' कह एक अति सुन्दर रथपर चढ़े और मथुरापुरीसे बाहर निकल आये ॥ २४ ॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

केशि-चध्र।

श्रीपराशर उनाच

केशी चापि वलोदग्रः कंसद्तप्रचोदितः ।
कृष्णस्य निधनाकाङ्की वृन्दावनग्रुपागमत् ॥ १ ॥
स खुरक्षतभूपृष्ठस्सटाक्षेपधृताम्बदः ।
द्रुतविक्रान्तचन्द्रार्कमार्गी गोपानुपाद्रवत् ॥ २ ॥
तस्य हेपितशब्देन गोपाला दैत्यवाजिनः ।
गोप्यश्र भयसंविग्रा गोविन्दं श्ररणं ययुः ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! इधर कंसके दृत-द्वारा भेजा हुआ महावली केशी भी कृष्णचन्द्रके वध-की इच्छासे [घोड़ेका रूप धारणकर] वृन्दावनमें आया ॥ १ ॥ वह अपने खुरोंसे पृथिवीतलको खोदता, ग्रीवाके बालोंसे वादलोंको लिल-मिन्न करता तथा वेगसे चन्द्रमा और सूर्यके मार्गको भी पार करता गोपोंकी ओर दौड़ा ॥ २ ॥ उस अस्र ए दैत्यके हिनहिनानेके शब्दसे भयभीत होकर समस्त गोप और गोपियाँ श्रीगोविन्दकी शरणमें आये ॥ ३ ॥

त्राहि त्राहीति गोविन्दः श्रुत्वा तेषां ततो वचः । सतोयजलदध्वानगम्भीरमिदम्रक्तवान् ॥ ४॥ अलं त्रासेन गोपालाः केशिनः किं भयातुरैः। भवद्भिर्गोपजातीयैर्वीरवीर्यं विलोप्यते ॥ ५ ॥ किमनेनाल्पसारेण हेपिताटोपकारिणा। दैतेयवलवाह्येन वस्गता दुष्टवाजिना ॥ ६॥

एहोहि दुष्ट कृष्णोऽहं पूष्णस्त्विव पिनाकध्क । पातियव्यामि दशनान्वदनादिखलांस्तव ॥ ७॥ इत्युक्त्वास्फोट्य गोविन्दः केशिनस्सम्मुखं ययौ। विद्यतास्थ सोऽप्येनं दैतेयाश्व उपाद्रवत् ॥ ८ ॥ बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे तस्य जनार्दनः। प्रवेशयामास तदा केशिनो दुष्टवाजिनः ॥ ९॥ केशिनो वदने तेन विश्वता कृष्णवाहुना। शातिता दशनाः पेतुः सिताभ्रावयवा इव ॥१०॥

कृष्णस्य वष्ट्रधे बाहुः केशिदेहगतो द्विज। विनाशाय यथा व्याधिरासम्भूतेरुपेक्षितः ॥११॥ विपाटितोष्टो बहुलं सफेनं रुधिरं वमन्। सोऽक्षिणी विवृते चक्रे विशिष्टे मुक्तवन्धने ॥१२॥ जघान घरणीं पादेश्शक्रन्मूत्रं समुत्सृजन् । स्वेदार्द्रगात्रक्शान्तश्च निर्यत्नस्सोऽभवत्तदा ॥१३॥ व्यादितास्यमहारन्ध्रस्सोऽसुरः कृष्णबाहुना । निपातितो द्विधा भूमौ वैद्युतेन यथा द्वमः ॥१४॥ द्विपादे पृष्ठपुच्छार्द्धे श्रवणैकाक्षिनासिके। केशिनस्ते द्विधाभृते शकले द्वे विरेजतुः ॥१५॥

इत्वा तु केशिनं कृष्णो गोपालैप्रीदितैर्द्यतः।

तव उनके त्राहि-त्राहि शन्दको सुनकर मगवान् कृष्णचन्द्र सजल मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर वाणीसे बोळे-॥४॥ ''हे गोपालगण! आपलोग केशी (केशधारी अश्व) से न डरें, आप तो गोप-जातिके हैं, फिर इस प्रकार भयमीत होकर आप अपने वीरोचित पुरुषार्थका लोप क्यों करते हैं ? ॥ ५॥ यह अल्प-वीर्य, हिनहिनानेसे आतङ्क फैलानेवाळा और नाचने-वाला दुष्ट अस्व जिसपर राक्षसगण वलपूर्वक चढ़ा करते हैं, आपलोगोंका क्या त्रिगाड़ सकता है ?" ॥ ६॥

[इस प्रकार गोपोंको धैर्य बँधाकर वे केशीसे कहने लगे-] ''अरे दुष्ट ! इधर आ, पिनाकधारी वीरभद्रने जिस प्रकार पूपाके दाँत उखाड़े थे उसी प्रकार मैं कृष्ण तेरे मुखसे सारे दाँत गिरा दूँगा" ॥७॥ ऐसा कहकर श्रीगोविन्द उछलकर केशीके सामने आये और वह अश्वरूपधारी दैत्य भी मुँह खोळकर उनकी ओर दौड़ा ॥ ८॥ तब जनार्दनने अपनी बाँह फैलाकर उस अश्वरूपधारी दृष्ट दैत्यके मुखमें डाल दी ॥ ९॥ केशीके मुखमें घुसी हुई भगवान कृष्णकी बाहुसे टकराकर उसके समस्त दाँत ग्रुम्न मेघखण्डोंके समान टूटकर वाहर गिर पड़े ॥ १०॥

हे द्विज ! उत्पत्तिके समयसे ही उपेक्षा की गयी व्याधि जिस प्रकार नाश करनेके छिये बढ़ने छगती है उसी प्रकार केशीके देहमें प्रविष्ट हुई कृष्णचन्द्रकी मुजा बढ़ने छगी ॥ ११ ॥ अन्तमें ओठोंके फट जानेसे वह फेनसहित रुधिर वमन करने छगा और उसकी आँखें स्नायुबन्धनके ढीछे हो जानेसे फूट गयीं ॥ १२ ॥ तब वह मल-मूत्र छोड़ता हुआ पृथिवीपर पैर पटकने लगा, उसका शरीर पत्तीनेसे भरकर ठण्डा पड़ गया और वह निश्चेष्ट हो गया ॥ १३ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र-की मुजासे जिसके मुखका विशाल रन्ध्र फैलाया गया है वह महान् असुर मरकर वज्रपातसे गिरे हुए वृक्षके समान दो खण्ड होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ १४ ॥ केशीके शरीरके वे दोनों खण्ड दो पाँव, आधी पीठ, आधी पूँछ तथा एक-एक कान-आँख और नासिका-रन्ध्रके सहित सुशोभित हुए ॥ १५॥

केशिनं कृष्णो गोपालेंग्रेदितेष्ट्रेतः। इस प्रकार केशीको मारकर प्रसन्नचित्त ग्वालवालों-CC-0. Prof. Şatya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri दुद्धान्ते क्रुयमाणा परं प्रत्ये कमा मसम्बद्धात इति एका चे पुच्छ। चे इत्यर्थः।

अनायस्ततनुस्खस्थो इसंस्तत्रैव तस्थिवान् ॥१६॥ ततो गोप्यश्च गोपाश्च हते केशिनि विस्निताः। तुष्डवुः पुण्डरीकाक्षमनुरागमनोरमम् ॥१७॥

अथाहान्तर्हितो वित्र नारदो जलदे स्थितः। केशिनं निहतं दृष्टा हर्पनिर्भरमानसः।।१८॥ साधु साधु जगन्नाथ लीलयैव यदच्युत । निहतोऽयं त्वया केशी क्वेशदिखदिवौकसाम्।।१९।। युद्धोत्सुकोऽहमत्यर्थं नरवाजिमहाहवम् । अभृतपूर्वमन्यत्र द्रष्टुं खर्गादिहागतः ॥२०॥ कर्माण्यत्रावतारे ते कृतानि मधुसद्न। यानि तैविंसितं चेतस्तोपमेतेन मे गतम् ॥२१॥ तुरङ्गसास शकोऽपि कृष्ण देवाश्र विभ्यति । धुतकेसरजालस हेपतोऽश्रावलोकिनः ॥२२॥ यसास्वयेप दुष्टात्मा हतः केशी जनार्दन । तसात्केशवनामा त्वं लोके ख्यातो भविष्यसि २३ खस्त्यस्तु ते गमिष्यामि कंसयुद्धे ऽधुना पुनः। परश्वोऽहं समेष्यामि त्वया केशिनिषृदन ॥२४॥ उप्रसेनसुते कंसे सानुगे विनिपातिते। भारावतारकर्ता त्वं पृथिव्याः पृथिवीघर ॥२५॥ तत्रानेकप्रकाराणि युद्धानि पृथिवीक्षिताम् । द्रष्टव्यानि मयायुष्मत्त्रणीतानि जनार्दन।।२६।। सोऽहं यास्यामि गोविन्द देवकार्यं महत्कृतम्। त्वयैव विदितं सर्वं खास्ति तेऽस्तु त्रजाम्यहम्।।२७॥ नारदे तु गते कृष्णस्सह गोपैस्सभाजितः ।

से घिरे हुए श्रीकृष्णचन्द्र विना श्रमके खर्थिचित्तसे हँसते हुए वहीं खड़े रहे ॥ १६ ॥ केशीके मारे जानेसे विस्मित हुए गोप और गोपियोंने अनुरागवश अत्यन्त मनोहर लगनेवाले कमलनयन श्रीश्यामसुन्दरकी स्तुति की ॥ १७ ॥

हे विप्र ! उसे मरा देख मेघपटलमें छिपे . हुए श्रीनारदजी हर्पितचित्तसे कहने लगे-॥ १८॥ ''हे जगन्नाथ ! हे अच्युत !! आप धन्य हैं, धन्य हैं । अहा ! आपने देवताओंको दुःख देनेवाले इस केशी-को छीछासे ही मार डाछा ॥ १९॥ मैं मनुष्य और अश्वके इस पहले और कहीं न होनेवाले युद्धको देखनेके लिये ही अत्यन्त उत्कण्ठित होकर सर्गसे यहाँ आया था ॥ २० ॥ हे मधुसृदन ! आपने अपने इस अवतारमें जो-जो कर्म किये हैं उनसे मेरा चित्त अत्यन्त विस्मित और सन्तुष्ट हो रहा है ॥ २१ ॥ हे कृष्ण ! जिस समय यह अश्व अपनी सटाओंको हिलाता और हींसता हुआ आकाशकी ओर देखता या तो इससे सम्पूर्ण देवगण और इन्द्र भी डर जाते थे ॥ २२ ॥ हे जनार्दन ! आपने इस दुष्टात्मा केशी-को मारा है; इसिक्टिये आप लोकमें 'केशव' नामसे विख्यात होंगे ॥ २३ ॥ हे केशिनिषृदन ! आपका कल्याण हो, अत्र मैं जाता हूँ । परसों कंसके साय आपका युद्ध होनेके समय मैं फिर आऊँगा ॥ २४॥ हे पृथिबीधर ! अनुगामियोंसहित उप्रसेनके पुत्र कंसके मारे जानेपर आप पृथिवीका भार उतार देंगे ॥ २५॥ हे जनार्दन ! उस समय मैं अनेक राजाओंके साथ आप आयुष्मान् पुरुपके किये हुए अनेक प्रकारके युद्ध देखूँगा ॥ २६ ॥ हे गोविन्द ! अव मैं जाना चाहता हूँ। आपने देवताओंका बहुत बड़ा कार्य किया है। आप सभी कुछ जानते हैं [मैं अधिक क्या कहूँ ?] आपका मंगल हो, मैं जाता हूँ" ॥ २०॥

नारदे तु गते कृष्णस्सह गोपैस्सभाजितः । तदनन्तर नारदजीके चले जानेपर गोपगणसे सम्मानित गोपियोंके नेत्रोंके एकमात्र दश्य श्रीकृष्णचन्द्र-विवेश गोकुलं गोपीनेत्रपानैकभाजनम् ॥२८॥ ने म्वाडवालोंके साथ गोकुलमें प्रवेश किया ॥ २८॥

> इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ —•>>३००५०€

सत्रहवाँ अध्याय

अक्रूरजीकी गोकुलयात्रा।

श्रीपराशर उवाच

अक्ररोऽपि विनिष्कम्य स्यन्दनेनाञ्चगामिना। कृष्णसंदर्शनाकाङ्गी प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥ चिन्तयामास चाक्रुरो नास्ति धन्यतरो मया। योऽहमंशावतीर्णस्य मुखं द्रक्ष्यामि चक्रिणः ॥ २ ॥ अद्य मे सफलं जन्म सुप्रभाताभवन्निशा। यदुन्निद्राभपत्राक्षं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥ ३॥ पापं हरति यत्पुंसां स्मृतं सङ्कल्पनामयम् । तत्पुण्डरीकनयनं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥ ४ ॥ विनिर्जग्मर्यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च । द्रक्ष्यामि तत्परं धाम धाम्नां भगवतो मुखम् ॥ ५ ॥ पुरुषैः पुरुषोत्तमः। यज्ञपुरुषः इज्यते योऽखिलाधारस्तं द्रक्ष्यामि जगत्पतिम् ॥६॥ इष्ट्रा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम्। अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ॥ ७॥ न ब्रह्मा नेन्द्ररुद्राश्चिवस्वादित्यमरुद्रणाः । थस्य खरूपं जानन्ति प्रत्यक्षं याति मे हरिः ॥ ८॥ सर्वात्मा सर्ववित्सर्वस्तर्वभृतेष्ववस्थितः। यो ह्यचिन्त्योऽव्ययो व्यापी स वक्ष्यति मया सह ९ मत्सकूर्मवराहाश्वसिंहरूपादिभिः स्थितिम्। चकार जगतो योऽजः सोऽद्य मां प्रलपिष्यति ॥१०॥ साम्प्रतं च जगत्स्वामी कार्यमात्महृदि स्थितम्।

श्रीपराशरजी बोले-अकर्जी भी तुरन्त ही मथुरापुरीसे निकलकर श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे तुरन्त ही एक शीव्रगामी रथद्वारा नन्दजीके गोकलको चले ॥ १ ॥ अक्र रजी सोचने लगे 'आज मुझ-जैसा बड़भागी और कोई नहीं है, क्योंकि अपने अ शसे अवतीर्ण चक्रधारी श्रीविष्णुभगवान्का मुख मैं अपने नेत्रोंसे देखूँगा ॥ २ ॥ आज मेरा जन्म सफल हो गया; आजकी रात्रि [अवस्य] सुन्दर प्रभातवाली थी, जिससे कि मैं आज खिले हुए कमलके समान नेत्रवाछे श्रीविष्णुभगवान्के मुखका दर्शन कल्गा ॥ ३॥ प्रमुका जो संकल्पमय मुखारविन्द स्मरण-मात्रसे पुरुषोंके पापोंको दूर कर देता है आज मैं विष्णुभगवान्के उसी कमलनयन मुखको देखूँगा ॥ ४॥ जिससे सम्पूर्ण वेद और वेदांगोंकी उत्पत्ति हुई है आज मैं सम्पूर्ण तेजिखयोंके परम आश्रय उसी भगवत्-मुखारविन्दका दर्शन करूँगा ॥ ५॥ समस्त पुरुषोंके द्वारा यज्ञोंमें जिन अखिल विश्वके आधारभूत पुरुषोत्तमका यज्ञपुरुष-रूपसे यजन (पूजन) किया जाता है आज मैं उन्हीं जगत्पतिका दर्शन करूँगा ॥६॥ जिनका सौ यज्ञोंसे यजन करके इन्द्रने देक्राज-पदवी प्राप्त की है आज मैं उन्हीं अनादि और अनन्त केशवका दर्शन करूँगा ॥ ७॥ जिनके सरूपको ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसुगण, आदित्य और मरुद्रण आदि कोई भी नहीं जानते आज वे ही हिर मेरे नेत्रोंके विषय होंगे ॥ ८॥ जो सर्वात्मा, सर्वज्ञ, सर्वखरूप और सत्र भूतोंमें अवस्थित हैं तथा जो अचिन्त्य, अन्यय और सर्वन्यापक हैं, अहो ! आज खयं वे ही मेरे साथ बातें करेंगे ॥ ९॥ जिन अजन्माने मत्स्य, कूर्म, वराह, हयग्रीव और नृसिंह आदि रूप धारणकर जगत्की रक्षा की है आज वे ही मुझसे वार्ताछाप करेंगे ॥ १०॥

'इस समय उन अन्ययात्मा जगत्प्रंभुने अपने मनमें सोचा हुआ कार्य करनेके छिये अपनी ही इच्छासे मतुष्य-देह धारण किया है ॥११॥

कर्तुं मनुष्यतां प्राप्तस्त्वेच्छादेहधूगच्ययः ॥११॥ इच्छासे मनुष्य-देह धारण CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri योऽनन्तः पृथिवीं धत्ते शेलरस्थितिसंस्थिताम् ।
सोऽवतीर्णो जगत्यर्थे मामक्र्रेति वक्ष्यित ॥१२॥
पित्रपुत्रसुद्ध्यात्मात्वन्धुमयीमिमाम् ।
यन्मायां नालस्रुत्ते जगत्तस्मै नमो नमः ॥१३॥
तरत्यिवद्यां विततां हृदि यसिन्निवेशिते ।
योगमायाममेयाय तस्मै विद्यात्मने नमः ॥ १४॥
यज्विभर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च सात्वतैः ।
वेदान्तवेदिभिर्विष्णुः प्रोच्यते यो नतोऽसि तम् १५
यथा यत्र जगद्धाम्नि धातर्येतत्प्रतिष्ठितम् ।
सदसत्तेन सत्येन मय्यसौ यातु सौम्यताम् ॥१६॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते ।
पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि श्वरणं हृरिम् ॥१७॥
श्रीपराशर उवाच

इत्थं सिश्चन्तयन्विष्णुं भिक्तनम्रात्ममानसः।
अकृरो गोकुलं प्राप्तः किश्चित्स्ये विराजित ॥१८॥
स ददर्श तदा कृष्णमादावादोहने गवाम्।
वत्समध्यगतं फुल्लनीलोत्पलदलच्छिवम् ॥१९॥
प्रफुल्लपन्नपत्राक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।
प्रलम्बबाहुमायामतुङ्गोरःस्थलम्रुक्तसम् ॥२०॥
सिविलासिसताधारं विभ्राणं मुखपङ्कजम्।
तुङ्गरक्तनखं पद्भ्यां धरण्यां सुप्रतिष्ठितम् ॥२१॥
विभ्राणं वाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम्।
सेन्दुनील।चलाभं तं सिताम्भोजावतंसकम् ॥२२॥
हंसकुन्देन्दुधवलं नीलाम्बरधरं द्विज।
तस्यानु बलभद्रं च ददर्श यदुनन्दनम् ॥२३॥

जो अनन्त (शेपजी) अपने मस्तकपर रखी हुई पृथिवी-को धारण करते हैं, संसारके हितके छिये अवतीर्ण हुए वे ही आज मुझसे 'अक्रूर' कहकर वोछेंगे ॥१२॥

'जिनकी इस पिता, पुत्र, सुहृद्, श्राता, माता और वन्धुरूपिणी मायाको पार करनेमें संसार सर्वथा असमर्थ है उन मायापितको वारम्वार नमस्कार है ॥ १३॥ जिनमें हृदयको छगा देनेसे पुरुप इस योग-मायारूप विस्तृत अविद्याको पार कर जाता है उन विद्यास्कर्प श्रीहरिको नमस्कार है ॥ १४॥ जिन्हें याज्ञिकछोग 'यज्ञपुरुप', सात्वत (यादव अथवा मगवद्भक्त) गण 'वासुदेव' और वेदान्तवेत्ता 'विष्णु' कहते हैं उन्हें वारम्वार नमस्कार है ॥ १५॥ जिस (सत्य) से यह सदसद्रूप जगत् उस जगदाधार विधातामें ही स्थित है उस सत्यवछसे ही वे प्रभु मुझपर प्रसन्न हों ॥ १६॥ जिनके स्मरणमात्रसे पुरुष सर्वथा कल्याणपात्र हो जाता है, मैं सर्वदा उन अजन्मा हरिकी शरणमें प्राप्त होता हूँ'॥ १७॥

श्रीपराशरजी बोळे-हे मैत्रेय ! मक्तिविनम्रचित्त अकर्जी इस प्रकार श्रीविष्णुभगवान्का चिन्तन करते कुछ-कुछ सूर्य रहते ही गोकुछमें पहुँच गये॥ १८॥ वहाँ पहुँचनेपर पहले उन्होंने खिले हुए नीलकमल-की-सी कान्तिवाले श्रीकृष्णचन्द्रको गौओंके दोहन-स्थानमें वछड़ोंके बीच विराजमान देखा ॥ १९॥ जिनके नेत्र खिले हुए कमलके समान थे. वक्षः स्थलमें श्रीवत्स-चिह्न सुशोमित था, मुजाएँ लम्बी-लम्बी थीं, वक्षःस्थल विशाल और ऊँचा था तथा नासिका उन्नत थी॥ २०॥ जो सविलास हासयुक्त मनोहर मुखारविन्दसे सुरां।मित थे तथा उन्नत और रक्तनखयुक्तं चरणोंसे पृथिवीपर विराज-मान थे।। २१॥ जो दो पीताम्त्रर घारण किये थे, वन्यपुष्पोंसे विभूषित ये तथा जिनका स्वेत कमलके आभूषणोंसे युक्त स्थाम शरीर सचन्द्र नीलाचलके समान सुशोभित था ॥ २२ ॥

हे द्विज ! श्रीव्रजचन्द्रके पीछे उन्होंने हंस, कुन्द और चन्द्रमाके समान गौरवर्ण नीलाम्बरधारी यदुनन्दन श्रीवलमद्रजीको देखा ॥ २३॥ प्रांशुमुत्तुङ्गबाह्वंसं विकासिमुखपङ्कजम् । मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिमिवापरम् ॥२४॥

तौ दृष्ट्वा विकसद्वक्त्रसरोजः स महामितः ।
पुलकाश्चितसर्वाङ्गस्तदाक्र्राऽभवन्मुने ॥२५॥
तदेतत्परमं धाम तदेतत्परमं पदम् ।
भगवद्वासुदेवांशो द्विधा योऽयं व्यवस्थितः ॥२६॥
साफल्यमक्ष्णोर्युगमेतदत्र

दृष्टे जगद्धातरि यातमुचैः। अप्यङ्गमेतद्भगवत्त्रसादा-

त्तदङ्गसङ्गे फलवन्मम स्यात् ॥२७॥ अप्येष पृष्ठे मम हस्तपद्यं करिष्यति श्रीमदनन्तमूर्तिः । यस्याङ्गुलिस्पर्शहताखिलाधे-

रवाप्यते सिद्धिरपास्तदोषा ॥२८॥ येनाग्निविद्युद्रविरिक्षममाला-

करालमत्युग्रमपेतचक्रम् । चकं व्रता दैत्यपतेईतानि दैत्याङ्गनानां नयनाञ्जनानि ॥२९॥ यत्राम्यु विन्यस्य बलिर्मनोज्ञा-

नवाप भोगान्त्रसुधातलस्थः । तथामरत्वं त्रिदशाधिपत्वं मन्वन्तरं पूर्णमपेतशत्रम ॥

मन्वन्तरं पूर्णमपेतशत्रुम् ॥३०॥ अप्येष मां कंसपरिग्रहेण दोषास्पदीभृतमदोषदुष्टम् ।

कर्तावमानोपहर्त घिगस्तु तज्जन्म यत्साधुबहिष्कृतस्य ॥३१॥ ज्ञानात्मकस्यामळसत्त्वराशे-

रपेतदोषस्य सदा स्फुटस्य। किं वा जगत्यत्र समस्तपुंसा-मज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य॥३२॥ तसादहं भक्तिविन्छ्रचेता

तसाद्ह भाक्तावनम्रचता त्रजामि सर्वेश्वरमीश्वराणाम् । अंशावतारं पुरुषोत्तमस्य

ह्यनादिमध्यान्तमजस्य विष्णोः ३३

विशाल मुजदण्ड, उन्नत स्कन्ध और विकसित-मुखार-विन्द श्रीवलमद्रजी मेघमालासे घिरे हुए दूसरे कैलास-पर्वतके समान जान पड़ते थे॥ २४॥

हे मुने ! उन दोनों बालकोंको देखकर महा-मित अक्र रजीका मुखकमल प्रफुक्तित हो गया तथा उनके सर्वांगमें पुलकावली छा गयी ॥ २५॥ [और वे मन-ही-मन कहने छगे—] इन दो रूपोंमें जो यह भगवान वासदेवका अंश स्थित है वहीं परमधाम है और वहीं परमपद है।। २६॥ इन जगिंद्धधाताके दर्शन पाकर आज मेरे नेत्रयुगल तो सफल हो गये; किन्तु क्या अब भगवत्कृपासे इन-का अंगसंग पाकर मेरा शरीर भी कृतकृत्य हो सकेगा ? ॥ २७ ॥ जिनकी अंगुळीके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हुए पुरुष निर्दोषसिद्धि (कैवल्य-मोक्ष) प्राप्त कर छेते हैं क्या वे अनन्तमूर्ति श्रीमान् हरि मेरी पीठपर अपना करकमछ रखेंगे ? ॥ २८ ॥ जिन्होंने अग्नि, विद्यत् और सूर्यकी किरण-मालाके समान अपने उप्र चक्रका प्रहारकर दैत्यपति-की सेनाको नष्ट करते हुए असूर-सुन्दरियोंकी आँखों-के अञ्जन घो डाले थे ॥ २९॥ जिनको एक जल-विन्दु प्रदान करनेसे राजा बलिने पृथिवीतलमें अति मनोज्ञ मोग और एक मन्यन्तरतक देवत्य-लाभपूर्वक रात्रु-विहीन इन्द्रपद प्राप्त किया था ॥३०॥ वे ही विष्णभगवान् मुझ निर्दोषको भी कंसके संसर्गसे दोषी ठहराकर क्या मेरी अवज्ञा कंर देंगे ? मेरे ऐसे साधुजन-बहिष्कृत पुरुषके जन्मको धिकार है ॥ ३१॥ अथवा संसार-में ऐसी कौन वस्तु है जो उन ज्ञानसरूप, शुद्धसच्व-राशि, दोषहीन, नित्य-प्रकाश और समस्त भूतोंके इदयस्थित प्रमुको विदित न हो ? ॥ ३२॥ अतः मैं उन ईश्वरोंके ईश्वर, आदि, मध्य और अन्तरहित पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णचन्द्रके पास भक्तिविनम्रचित्तसे जाता हूँ। [मुझे पूर्ण आशा है, वे मेरी कभी अवज्ञा न करेंगे] ॥ ३३॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अठारहवाँ अध्याय

भगवान्का मथुराको प्रस्थान, गोवियोंकी विरह कथा और अक्रूरजीका मोह।

श्रीपराशर उवाच

चिन्तयन्त्रिति गोविन्द्ग्रुपगम्य सयादवः। अक्रुरोऽसीति चरणौ ननाम शिरसा हरेः ॥ १ ॥ सोऽप्येनं ध्वजवज्राब्जकृतचिह्नेन पाणिना । संस्पृत्रयाकुष्य च प्रीत्या सुगाढं परिपखने ॥ २ ॥ कृतसंवन्दनौ तेन यथावद्वलकेशवौ। ततः प्रविष्टौ संहृष्टौ तमादायात्ममन्दिरम् ॥ ३ ॥ सह ताभ्यां तदाकूरः कृतसंवन्दनादिकः। अक्तभोज्यो यथान्यायमाचचक्षे ततस्तयोः॥ ४॥ यथा निर्भर्तिसतस्तेन कंसेनानकदुन्दुभिः। यथा च देवकी देवी दानवेन दुरात्मना ॥ ५॥ उग्रसेने यथा कंसस्स दुरात्मा च वर्तते । यं चैवार्थं समुद्दिश्य कंसेन तु विसर्जितः ॥ ६ ॥ तत्सर्वे विस्तराच्छ्रत्वा भगवान्देवकीसुतः । उवाचाखिलमप्येतज्ज्ञातं दानपते मया।। ७।। करिष्ये तन्महाभाग यदत्रौपयिकं मतम्। विचिन्त्यं नान्यथैतत्ते विद्धि कंसं हतं मया ॥ ८॥ अहं रामश्र मथुरां श्वो यास्यावस्सह त्वया। गोपबृद्धाश्च यास्यन्ति ह्यादायोपायनं बहु ॥ ९ ॥ निशेयं नीयतां वीर न चिन्तां कर्जुमहिसि । त्रिरात्राभ्यन्तरे कंसं निहनिष्यामि सातुगम् ॥१०॥ अवस्य मार डाल्टॅंगा" ॥ १०॥

श्रीपराशर उवाच

समादिक्य ततो गोपानकूरोऽपि च केशवः। सुष्वाप बलभद्रश्र

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! यदुवंशी अकर-जीने इस प्रकार चिन्तन करते श्रीगोविन्दके पास पहुँचकर उनके चरणोंमें शिर झुकाते हुए 'मैं अक्र्र हूँ 'ऐसा कहकर प्रणाम किया ॥ १॥ भगवान्ने भी अपने ध्वजा-वज्र-पद्मांकित करकमछोंसे उन्हें स्पर्शकर और प्रीतिपूर्वक अपनी ओर खींच-कर गाढ़ आलिंगन किया ॥ २ ॥ तदनन्तर अक्रर-जीके यथायोग्य प्रणामादि कर चुकनेपर श्रीवलरामजी और कृष्णचन्द्र अति आनन्दित हो उन्हें साथ हेकर अपने घर आये ॥३॥ फिर उनके द्वारा सत्कृत होकर यथायोग्य मोजनादि कर चुकनेपर अक्रूरने उनसे वह सम्पूर्ण वृत्तान्त कहना आरम्भ किया जैसे कि दुरात्मा दानव कंसने आनकदुन्दुमि वसुदेव और देवी देवकीको डाँटा था तथा जिस प्रकार वह दुरात्मा अपने पिता उप्रसेनसे दुर्ब्यवहार कर रहा है और जिसिछिये उसने उन्हें (अक्रूरजीको) वृन्दावन भेजा है ॥ ४-६॥

भगवान् देवकीनन्दनने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तार-पूर्वक सुनकर कहा-"हे दानपते! ये सब बातें मुझे माऌम हो गयीं ॥ ७॥ हे महाभाग ! इस विपयमें मुझे जो उपयुक्त जान पड़ेगा वही करूँगा । अब तुम कंसको मेरेद्वारा मरा हुआ ही समझो, इसमें किसी और तरहका विचार न करो ॥८॥ भैया वल्राम और मैं दोनों ही कल तुम्हारे साथ मथुरा चलेंगे. हमारे साथ ही दूसरे बड़े-बूढ़े गोप भी बहुत-सा उपहार लेकर जायँगे ॥ ९॥ हे बीर ! आप यह रात्रि सख-पूर्वक विताइये, किसी प्रकारकी चिन्ता न कीजिये। तीन रात्रिके भीतर मैं कंसको उसके अनुचरोंसहित

श्रीपराशरजी बोले-तदनन्तर अक्रूरजी, श्री-कृष्णचन्द्र और बळरामजी सम्पूर्ण गोपोंको कंसकी नन्दगोपगृहे ततः ॥११॥ आज्ञा सुना नन्दगोपके घर सो गये ॥११॥

ततः प्रभाते विमले कृष्णरामौ महाद्युती । अक्रूरेण समं गन्तुमुद्यतौ मथुरां पुरीम् ॥१२॥ दृष्ट्वा गोपीजनस्सास्रः श्रथद्वलयबाहुकः । निःशश्वासातिदुःखार्तः प्राह चेदं परस्परम् ॥१३॥ मथुरां प्राप्य गोविन्दः कथं गोक्रलमेष्यति । नगरस्रीकलालापमधु श्रोत्रेण पास्यति ॥१४॥ विलासवाक्यपानेषु नागरीणां कृतास्पदम् । चित्तमस्य कथं भूयो ग्राम्यगोपीषु यास्वति ॥१५॥ सारं समस्तगोष्ठस्य विधिना हरता हरिस्। प्रहृतं गोपयोषित्सु निर्घृणेन दुरात्मना ॥१६॥ भावगर्भसितं वाक्यं विलासल्लिता गतिः। नागरीणामतीवैतत्कटाक्षेक्षितमेव च ॥१७॥ **प्राम्यो हरिरयं तासां विलासनिग**डेर्युतः । भवतीनां पुनः पार्श्वं कया युक्त्या समेष्यति।।१८।। एवेष रथमारुह्य मथुरां याति केशवः। क्र्रेणाक्र्रकेणात्र निर्घृणेन प्रतारितः ॥१९॥ किं न वेत्ति नृशंसोऽयमनुरागपरं जनम्। येनैवमक्ष्णोराह्वादं नयत्यन्यत्र नो हरिम् ॥२०॥ एप रामेण सहितः प्रयात्यत्यन्तनिर्घृणः। रथमारुह्य गोविन्दस्त्वर्यतामस्य वारणे ॥२१॥ गुरूणामग्रतो वक्तुं कि त्रवीपि न नः क्षमम् । गुरवः किं करिष्यन्ति दग्धानां विरहामिना ॥२२॥ नन्दगोपम्रुखा गोपा गन्तुमेते समुद्यताः। नोद्यमं कुरुते कश्चिद्गोविन्दविनिवर्तने ॥२३॥ सुप्रभाताद्य रजनी मथुरावासियोपिताम्। पास्यन्त्यच्युतवक्त्राञ्जं यासां नेत्रालिपुद्धयः २४

दूसरे दिन निर्मल प्रभातकाल होते ही महातेजसी राम और कृष्णको अक्रूरके साथ मथुरा चलनेकी तैयारी करते देख जिनकी मुजाओंके कंकण ढीछे हो गये हैं वे गोपियाँ नेत्रोंमें आँसू भरकर तथा दुःखार्त्त होकर दीर्घ निक्क्वास छोड़ती हुई परस्पर कहने लगीं-॥ १२-१३॥ "अब मथुरापुरी जाकर श्रीकृष्णचन्द्र फिर गोकुलमें क्यों आने लगे ? क्योंकि वहाँ तो ये अपने कानोंसे नगरनारियोंके मधुर आलापरूप मधुका ही पान करेंगे ॥ १४ ॥ नगरकी [विदम्ध] वनिताओंके विलासयुक्त वचनोंके रसपानमें आसक्त होकर फिर इनका चित्त गैँबारी गोपियोंकी ओर क्यों जाने लगा ? ॥ १५॥ आज निर्दयी दुरात्मा विधाताने समस्त त्रजके सारभूत (सर्वखखरूप) श्रीहरिको हरकर हम गोप-नारियोंपर घोर आघात किया है ॥ १६॥ नगरकी नारियोंमें भावपूर्ण मुसकानमयी बोळी, विलासलित गति और कटाक्षपूर्ण चितवनकी खभावसे ही अधिकता होती है। उनके विलास-बन्धनों से वँधकर यह ग्राम्य हरि फिर किस युक्तिसे तुम्हारे [हमारे] पास आवेगां ?॥१७-१८॥ देखो, देखो, कर एवं निर्दयी अक्रु के बहकानेमें आकर ये कृष्णचन्द्र रथपर चढ़े हुए मथुरा जा रहे हैं ॥१९॥ यह नृशंस अक्रुर क्या अनुरागीजनोंके दृदयका भाव तनिक भी नहीं जानता ? जो यह इस प्रकार हमारे नयनानन्दवर्धन नन्दनन्दनको अन्यत्र छिये जाता है ॥ २० ॥ देखो, यह अत्यन्त निटुर गोविन्द रामके साथ रथपर चढ़कर जा रहे हैं; अरी ! इन्हें रोकनेमें शीव्रता करो" ॥ २१॥

[इसपर गुरुजनोंके सामने ऐसा करनेमें असमर्थता प्रकट करनेवाळी किसी गोपीको छक्ष्य करके उसने फिर कहा—] "अरी! तू क्या कह रही है 'कि अपने गुरुजनोंके सामने हम ऐसा नहीं कर सकतीं ?' मळा अब विरहाग्रिसे मस्मीभूत हुई हमळोगोंका गुरुजन क्या करेंगे ? ॥ २२ ॥ देखो, यह नन्दगोप आदि गोपगण भी उन्हींके साथ जानेकी तैयारी कर रहे हैं । इनमेंसे भी कोई गोविन्दको छोटानेका प्रयत्न नहीं करता ॥२३॥ आजकी रात्रि मथुरावासिनी क्षियोंके छिये सुन्दर प्रभातवाळी हुई है, क्योंकि आज उनके नयन-मृंग श्री-

धन्यास्ते पथि ये कृष्णमितो यान्त्यनिवारिताः । उद्वहिष्यन्ति पत्रयन्तस्खदेहं पुलकाश्चितम् ॥२५॥ मथुरानगरीपौरनयनानां महोत्सवः । गोविन्दावयवैद्देष्टैरतीवाद्य मविष्यति ॥२६॥ को जु स्वमस्सभाग्याभिर्देष्टस्ताभिरघोक्षजम्। विस्तारिकान्तिनयना या द्रक्ष्यन्त्यनिवारिताः।२७। अहो गोपीजनस्यास्य द्रशियत्वा महानिधिम्। उत्कृत्तान्यद्य नेत्राणि विधिनाकरुणांत्मना ।।२८॥ अनुरागेण शैथिल्यमसासु त्रजिते हरी। शैथिल्यग्रुपयान्त्याश्च करेषु वलयान्यपि ॥२९॥ अक्र्रः क्र्रहृद्यक्शीघं प्रेरयते हयान्। एवमार्चासु योषित्सु कृपा कस्य न जायते ।।३०।। एष कृष्णरथस्योचैश्रकरेणुर्निरीक्ष्यताम् । दूरीभूतो हरियेन सोऽपि रेणुर्न लक्ष्यते ॥३१॥

श्रीपराशर उवाच

इत्येवमतिहार्देन गोपीजननिरीक्षितः । तत्याज व्रजभूभागं सह रामेण केशवः ॥३२॥ गच्छन्तो जवनाश्चेन रथेन यम्रुनातटम् । प्राप्ता मध्याह्वसमये रामाक्र्रजनार्द्दनाः ॥३३॥ अथाह कृष्णमक्र्रो भवद्भचां तावदास्यताम् । यावत्करोमि कालिन्द्या आह्विकार्द्दणमम्भसि ॥३४॥

श्रीपराशर उवाच
तथेत्युक्तस्ततस्त्वातस्त्वाचान्तस्स महामितः।
दच्यौ ब्रह्म परं वित्र प्रविष्टो यम्रनाजले ॥३५॥
फणासहस्रमालाढ्यं चलभद्रं ददर्श सः।
कुन्दमालाङ्गम्रिबद्रपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥३६॥

जो छोग इधरसे विना रोक-टोक श्रीकृप्णचन्द्रका अनुगमन कर रहे हैं वे धन्य हैं, क्योंकि वे उनका दर्शन करते हुए अपने रोमाञ्चयुक्त शरीरका वहन करेंगे ॥ २५ ॥ 'आज श्रीगोविन्दके अंग-प्रत्यंगोंको देखकर मथुरावासियोंके नेत्रोंको अत्यन्त महोत्सव होगा ॥ २६ ॥ आज न जाने उन भाग्यशालिनियोंने ऐसा कौन ग्रुम स्नप्त देखा है जो वे कान्तिमय विशाल नयनोंवाछी (मथुरापुरीकी स्त्रियाँ) खच्छन्दतापूर्वक श्रीअघोक्षजको निहारेंगी ? ॥ २७ ॥ अहो ! निष्ठुर विभाताने गोपियोंको महानिधि दिखलाकर आज उनके नेत्र निकाल लिये ॥ २८ ॥ देखो ! हमारे प्रति श्रीहरिके अनुरागमें शिथिळता आ जानेसे हमारे हाथों-के कंकण मी तुरन्त ही ढीछे पड़ गये हैं ॥ २९॥ मला हम-जैसी दुःखिनी अवलाओंपर किसे दया न आवेगी ? परन्तु देखो, यह क्रार-इदय अक्रार तो वड़ी शीव्रतासे घोड़ोंको हाँक रहा है!॥३०॥ देखो, यह कृष्णचन्द्रके रथकी घूळि दिखलायी दे रही है; किन्तु हा ! अब तो श्रीहरि इतनी दूर चछे गये कि वह घूलि भी नहीं दीखती' ॥ ३१॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार गोपियोंके अति अनुरागसहित देखते-देखते श्रीकृष्णचन्द्रने बल्रामजी-के सहित ब्रजमूमिको त्याग दिया ॥ ३२ ॥ तब वे राम, कृष्ण और अक्रूर शीव्रगामी घोड़ोंबाले रथसे चल्रते-चल्रते मध्याह्रके समय यमुनातटपर आ गये ॥३३॥ वहाँ पहुँचनेपर अक्रूरने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा— "जबतक मैं यमुनाजल्में मध्याह्रकालीन उपासनासे निवृत्त होजँ तबतक आप दोनों यहीं विराजें" ॥३॥

श्रीपराशरजी बोल्ले-हे विप्र ! तत्र मगवान्के 'बहुत अच्छा' कहनेपर महामित अक्त्र्जा यमुना-जल्में धुसकर स्नान और आचमन आदिके अनन्तर परब्रह्मका घ्यान करने लगे ॥ ३५ ॥ उस समय उन्होंने देखा कि ब्लमद्रजी सहस्रफणावलिसे सुशोमित हैं, उनका शरीर कुन्दमालाओं के समान [शुभ्रवर्ण] है तया नेत्र प्रफुञ्ज कमल्दलके समान विशाल हैं ॥ ३६ ॥

वृतं वासुकिरम्भाद्यैर्महद्भिः पवनाशिभिः । संस्त्रयमानमुद्गन्धिवनमालाविभूषितम् ॥३७॥ वस्त्रे चारुरूपावतंसकम्। दधानमसिते चारुकुण्डलिनं मान्तमन्तर्जलतले स्थितम् ॥३८॥ तस्योत्सङ्गे घनक्याममाताम्रायतलोचनम्। चतुर्वोहुमुदाराङ्गं चक्राद्यायुधभूषणम् ॥३९॥ पीते वसानं वसने चित्रमाल्योपशोभितम्। शक्रचापतिडन्मालाविचित्रमिव तोयदम् ॥४०॥ श्रीवत्सवक्षसं चारु स्फुरन्मकरकुण्डलम्। दद्शे कृष्णमक्किष्टं पुण्डरीकावतंसकम् ॥४१॥ सनन्दना चैर्भनिभिस्सिद्धयोगैरकल्मषैः सञ्चिन्त्यमानं तत्रस्थैनीसाग्रन्यस्तलोचनैः ॥४२॥ वलकृष्णौ तथाकूरः प्रत्यभिज्ञाय विसितः । अचिन्तयद्रथाच्छीघ्रं कथमत्रागताविति ।।४३।। विवक्षोः स्तम्भयामास वाचं तस जनार्दनः । ततो निष्क्रम्य सलिलाद्रथमभ्यागतः पुनः ॥४४॥ ददर्श तत्र चैवोभौ रथस्रोपरि निष्ठितौ । रामकृष्णौ यथापूर्व मनुष्यवपुषान्वितौ ॥४५॥ निमम्ब पुनस्तोये ददर्श च तथैव तौ। संस्त्यमानौ गन्धर्वेर्ध्वनिसिद्धमहोरगैः ॥४६॥ ततो विज्ञातसद्भावस्स तु दानपतिस्तदा। सर्वविज्ञानमयमच्युतमीश्वरम् ॥४७॥ तुष्टाव श्रकर उवाच

सन्मात्ररूपिणेऽचिन्त्यमिहिम्ने परमात्मने ।

व्यापिने नैकरूपैकस्वरूपाय नमो नमः ॥४८॥

सर्वरूपाय तेऽचिन्त्य हविर्भुताय ते नमः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastir Collectio

वे वासुिक और रम्भ आदि महासपेंसि घिरकर उनसे प्रशंसित हो रहे हैं तथा अत्यन्त सुगन्धित वनमालाओं- से विभूषित हैं ॥ ३७॥ वे दो स्याम वस्त्र धारण किये, सुन्दर कर्णभूषण पहने तथा मनोहर कुण्डली (गँडुली) मारे जलके भीतर विराजमान हैं ॥ ३८॥

उनकी गोदमें उन्होंने आनन्दमय कमलभूषण श्रीकृष्णचन्द्रको देखा, जो मेघके समान स्यामवर्ण, कुछ लाल-लाल विशाल नयनोंवाले, चतुर्भुज, मनोहर अंगोपांगोंवाले तथा शंख-चक्रादि आयुषोंसे सुशोमित हैं; जो पीताम्बर पहने हुए हैं और विचित्र वनमालासे विभूषित हैं, तथा [उनके कारण] इन्द्रभ्यतुष और विद्युन्मालामण्डित सजल मेघके समान जान पड़ते हैं तथा जिनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न और कानोंमें देदीप्यमान मकराकृत कुण्डल विराजमान हैं ॥ ३९-७१ ॥ [अक्रूरजीने यह भी देखा कि] सनकादि मुनिजन और निष्पाप सिद्ध तथा योगिजन उस जलमें ही स्थित होकर नासिकाम-दृष्टिसे उन (श्रीकृष्णचन्द्र) का ही चिन्तन कर रहे हैं ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वहाँ राम और कृष्णको पहचानकर अक्रूरजी बड़े ही विस्मित हुए और सोचने छगे कि ये यहाँ इतनी शीघ्रतासे रथसे कैसे आ गये ? ॥ ४३ ॥ जब उन्होंने कुछ कहना चाहा तो भगवान्ने उनकी वाणी रोक दी । तब वे जलसे निकलकर रथके पास आये और देखा कि वहाँ मी राम और कृष्ण दोनों ही मनुष्य-शरीरसे पूर्ववत रथपर बैठे हुए हैं ॥ ४४-४५ ॥ तदनन्तर, उन्होंने जलमें घुसकर उन्हें फिर गन्धर्व, सिद्ध, मुनि और नागादिकोंसे स्तुति किये जाते देखा॥ ४६ ॥ तब तो दानपित अक्रूरजी वास्तविक रहस्य जानकर उन सर्वविज्ञानमय अच्युत भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ४७॥

अकूरजी बोले-जो सन्मात्रखरूप, अचिन्स्य-महिम, सर्वव्यापक तथा [कार्यरूपसे] अनेक और [कारणरूपसे] एक रूप हैं उन परमात्माको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ४८ ॥ हे अचिन्तनीय प्रमो | आप सर्वरूप एवं हविःखरूप परमेश्वरको नमस्कार New Delhi. Digitized by eGangotri

नमो विज्ञानपाराय पराय प्रकृतेः प्रभो ॥४९॥ भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान् । आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पञ्चधा श्वितः।५०। प्रसीद सर्व सर्वात्मन् क्षराक्षरमयेश्वर । त्रह्मविष्णुशिवाख्याभिः कल्पनाभिरुदीरितः ५१ अनाख्येयस्वरूपात्मन्ननाख्येयप्रयोजन अनाख्येयामिधानं त्वां नतोऽस्मि परमेश्वर ॥५२॥ न यत्र नाथ विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः। परमं नित्यमविकारि भवानजः ॥५३॥ न कल्पनामृतेऽर्थस सर्वसाधिगमो यतः। ततः कृष्णाच्युतानन्तविष्णुसंज्ञाभिरीड्यते ॥५४॥ सर्वार्थास्त्वमज विकल्पनाभिरेतै-र्देवाद्यैर्भवति हि यैरनन्त विश्वम् । विश्वात्मा त्वमिति विकारहीनमेत-त्स विश्वित्र हि भवतोऽस्ति किश्चिद्न्यत् ५५ त्वं ब्रह्मा पञ्चपतिरर्थमा विधाता धाता त्वं त्रिदशपतिस्समीरणोऽप्रिः । तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको भिनार्थेर्जगद्भिपासि शक्तिमेदैः ॥५६॥ विश्वं भवान्सुजति सूर्यगभित्ररूपो विश्वेश ते गुणमयोऽयमतः प्रपञ्चः । रूपं परं सदिति वाचकमक्षरं य-ज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोऽसि तसै ५७ ॐ नमो वासुदेवाय नमस्संकर्षणाय च। प्रद्यसाय नमस्तम्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥५८॥

है। आप बुद्धिसे अतीत और प्रकृतिसे परे हैं, आप-को वारम्वार नमस्कार है ॥ ४९ ॥ आप भूतखरूप, इन्द्रियखरूप और प्रधानखरूप हैं तथा आप ही जीवात्मा और परमात्मा हैं इस प्रकार आप अकेले ही पाँच प्रकारसे स्थित हैं ॥५०॥ हे सर्व ! हे सर्वात्मन् ! हे क्षराक्षरमय ईश्वर ! आप प्रसन्त होइये। एक आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि कल्पनाओंसे वर्णन किये जाते हैं ॥ ५१ ॥ हे परमेश्वर ! आपके खरूप, प्रयोजन और नाम आदि समी अनिर्वचनीय हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ५२ ॥

हे नाथ ! जहाँ नाम और जाति आदि कल्पनाओं-का सर्वेथा अभाव है आप वहीं नित्य अविकारी और अजन्मा परब्रह्म हैं ॥ ५३ ॥ क्योंकि कल्पनाके विना किसी भी पदार्थका ज्ञान नहीं होता इसीलिये आपका कृष्ण, अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामोंसे स्तवन किया जाता है [वास्तवमें तो आपका किसो भी नामसे निर्देश नहीं किया जा सकता] ॥ ५४ ॥ हे अज ! जिन देवता आदि कल्पनामय पदार्थीसे अनन्त विश्वकी उत्पत्ति हुई है वे समस्त पदार्थ आप ही हैं तथा आप ही विकारहीन आत्मवस्तु हैं, अतः आप विश्वरूप हैं। हे प्रभो ! इन सम्पूर्ण पदार्थों में आपसे मिन्न और कुछ भी नहीं है ॥ ५५ ॥ आप ही ब्रह्मा, महादेव, अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम हैं। इस प्रकार एक आप ही मिन्न-भिन्न कार्यवाले अपनी शक्तियोंके मेदसे इस सम्पूर्ण जगत्की रक्षा कर रहे हैं ॥ ५६ ॥ हे विश्वेश ! सूर्यकी किरणरूप होकर आप ही [वृष्टिद्वारा] विश्वकी रचना करते हैं, अतः यह गुणमय प्रपन्न आपका ही रूप है। 'सत्' पद ['ॐतत् सत्' इस रूपसे] जिसका वाचक है वह 'ॐ' अक्षर आपका परम सरूप है, आपके उस ज्ञानात्मा सदसत्खरूपको नमस्कार है ॥ ५७ ॥ हे प्रमो ! वासुदेव, संकर्पण, प्रदुस और अनिरुद्धसरूप आपको वारम्वार नमस्कार

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमें ऽशेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भगवानका मधुरा-प्रवेश, रजक-वध तथा मालीपर कृपा।

श्रीपराशर उवाच

एवमन्तर्जले विष्णुमभिष्ट्रय स यादवः। अर्चयामास सर्वेशं भूपपुष्पैर्मनोमयैः ॥ १ ॥ परित्यक्तान्यविषयो मनस्तत्र निवेश्य सः। ब्रह्मभूते चिरं स्थित्वा विरराम समाधितः ॥ २ ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामतिः। आजगाम रथं भूयो निर्गम्य यम्रनाम्भसः ॥ ३ ॥ ददर्श रामकृष्णौ च यथापूर्वमवस्थितौ । विसिताक्षस्तदाकूरस्तं च कृष्णोऽभ्यभाषत।। ४।।

श्रीकृष्ण उवाच

न्तं ते दृष्टमाश्चर्यमकूर यग्रुनाजले। विसयोत्फ्रल्लनयनो भवान्संलक्ष्यते यतः ॥ ५ ॥

अकूर उवाच

अन्तर्जले यदाश्चर्य दृष्टं तत्र मयाच्युत । तदत्रापि हि पश्यामि मूर्तिमत्पुरतः स्थितम् ॥ ६ ॥ जगदेतन्महाश्चर्यरूपं यस महात्मनः। तेनाश्चर्यपरेणाहं भवता कृष्ण सङ्गतः॥७॥ तत्किमेतेन मथुरां यास्यामो मधुस्रद्रन। विभेमि कंसाद्धिग्जन्म परपिण्डोपजीविनाम्।। ८।। इत्युक्त्वा चोदयामास स हयान् वातरंहसः । सम्प्राप्तश्चापि सायाह्वे सोऽक्रूरो मथुरां पुरीम्।। ९।। विलोक्य मथुरां कृष्णं रामं चाह स यादवः । पदुम्यां यातं महावीरौ रथेनैको विशाम्यहम् ॥१०॥ गन्तव्यं वसुदेवस्य नो भवद्भ्यां तथा गृहम् । युवयोर्हि कृते वृद्धस्स कंसेन निरस्यते ॥११॥ करता रहता है"॥११॥
CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

श्रीपराशरजी बोले-यद्कुलोत्पन श्रीविष्णुभगवान्का जलके भीतर इस प्रकार स्तवन-कर उन सर्वेश्वरका मनःकल्पित धूप, दीप और पुष्पादिसे पूजन किया ॥१॥ उन्होंने अपने मनको अन्य विषयोंसे हटाकर उन्होंमें लगा दिया और चिरकालतक उन ब्रह्मभूतमें ही समाहित भावसे स्थित रहकर फिर समाधिसे विरत हो गये ॥ २॥ तदनन्तर महामित अमूरजी अपनेको कृतकृत्य-सा मानते हुए निकलकर फिर रथके पास चले यमुनाजलसे आये ॥ ३ ॥ वहाँ आकर उन्होंने आश्चर्ययुक्त नेत्रोंसे राम और कृष्णको पूर्ववत् रथमें बैठे देखा । उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरजीसे कहा ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णजी बोले-अक्र्रजी ! आपने अवस्य ही यमुना-जलमें कोई आश्चर्यजनक बात देखी है, क्योंकि आपके नेत्र आश्चर्यचिकत दीख पड़ते हैं ॥ ५॥

अक्रूरजी बोले-हे अच्युत ! मैंने यमुनाजलमें जो आश्चर्य देखा है उसे मैं इस समय भी अपने सामने मूर्तिमान् देख रहा हूँ ॥ ६ ॥ हे कृष्ण ! यह महान् आश्चर्यमय जगत् जिस महात्माका खरूप है उन्हीं परम आश्चर्यखरूप आपके साथ मेरा समागम हुआ है ॥ ७ ॥ हे मधुसूदन ! अब उस आश्चर्यके विषयमें और अधिक कहनेसे लाम ही क्या है ? चलो, हमें शीव्र ही मथुरा पहुँचना है; मुझे कंससे बहुत भय लगता है। दूसरेके दिये हुए अन्नसे जीनेवाले पुरुषोंके जीवनको धिक्कार है ! ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर अक्रूरजीने वायुके समान वेगवाले घोड़ोंको हाँका और सायङ्कालके समय मधुरापुरीमें पहुँच गये ॥९॥ मथुरापुरीको देखकर अक्रूरने राम और कृष्णसे कहा-"हे वीरवरो ! अब मैं अकेला ही रथसे जाऊँगा, आप दोनों पैदल चले आवें ॥१०॥ मथुरामें पहुँचकर आप वसुदेवजीके घर न जायँ क्योंकि आपके कारण ही उन वृद्ध वसुदेवजीका कंस सर्वदा निरादर श्रीपराशर उवाच

इत्युक्त्वा प्रविवेशाथ सोऽक्र्रो मथुरां पुरीम् । प्रविष्टौ रामकृष्णौ च राजमार्गम्रपागतौ।।१२॥ स्त्रीभिनरेश्व सानन्दं लोचनैरभिवीक्षितौ। . जग्मतुर्लीलया वीरौ मत्तौ वालगजाविव ॥१३॥ अममाणौ ततो दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम्। अयाचेतां सुरूपाणि वासांसि रुचिराणि तौ ॥१४॥ कंसस्य रजकः सोऽथ प्रसादारूढविसयः। बहून्याक्षेपवाक्यानि प्राहोचे रामकेशवौ ॥१५॥ ततस्तलप्रहारेण कृष्णस्तस्य दुरात्मनः। पातयामास रोपेण रजकस्य शिरो अवि॥१६॥ हत्वादाय च वस्नाणि पीतनीलाम्बरौ ततः। कृष्णरामौ मुदा युक्तौ मालाकारगृहं गतौ ॥१७॥ विकासिनेत्रयुगलो मालाकारोऽतिविसितः। एतौ कस्य सुतौ यातौ मैत्रेयाचिन्तयत्तदा ॥१८॥ पीतनीलाम्बरधरौ तौ दृष्टातिमनोहरौ। स तर्कयामास तदा भुवं देवाचुपागतौ ॥१९॥ विकासिमुखपद्माभ्यां ताभ्यां पुष्पाणि याचितः । भ्रवं विष्टभ्य हस्ताभ्यां पस्पर्श शिरसा महीम् ॥२०॥ प्रसादपरमौ नाथौ मम गेहम्रपागतौ। धन्योऽहमर्चियिष्यामीत्याह तौ माल्यजीवनः।।२१।। ततः प्रहृष्टवद्नस्तयोः पुष्पाणि कामतः। चारूण्येतान्यथैतानि प्रददौ स प्रलोभयन् ॥२२॥ पुनः पुनः प्रणम्योभौ मालाकारो नरोत्तमौ । ददौ पुष्पाणि चारूणि गन्धवन्त्यमलानि च ॥२३॥ मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्नः प्रददौ वरान्।

श्रीपराशरजी बोले-ऐसा कह अक्रूरजी मथुरा-पुरीमें चले गये। उनके पीले राम और कृष्ण भी नगरमें प्रवेशकर राजमार्गपर आये॥१२॥वहाँके नर-नारियोंसे आनन्दपूर्वक देखे जाते हुए वे दोनों वीर मतवाले तरुण हाथियोंके समान लीलापूर्वक जा रहे थे॥ १३॥

मार्गमें उन्होंने एक वस्त रँगनेवाछे रजकको घृमते देख उससे रङ्ग-विरङ्गे सुन्दर वस्त माँगे॥ १४॥ वह रजक कंसका था और राजाके मुँहल्गा होनेसे वड़ा घमण्डी हो गया था, अतः राम और कृष्णके वस्त माँगनेपर उसने विस्मित होकर उनसे वड़े जोरोंके साथ अनेक दुर्वाक्य कहे ॥१५॥ तव श्रीकृष्णचन्द्रने क्रुद्ध होकर अपने करतलके प्रहारसे उस दुष्ट रजकका शिर पृथिवीपर गिरा दिया॥१६॥ इस प्रकार उसे मारकर राम और कृष्णने उसके वस्त्र छीन लिये तथा क्रमशः नील और पीत वस्त्र धारणकर वे प्रसन्नचित्तसे मालीके घर गये॥१७॥

हे मैत्रेय! उन्हें देखते ही उस माछीके नेत्र आनन्दसे खिल गये और वह आश्चर्यचिकत होकर सोचने लगा कि 'ये किसके पुत्र हैं और कहाँसे आये हैं ?' || १८ || पीछे और नीछे वस्न धारण किये उन अति मनोहर वाल्कोंको देखकर उसने समझा मानो दो देवगण ही पृथिवीतलपर पधारे हैं॥ १९॥ जब उन विकसितमुखकमल वालकोंने उससे पुष्प माँगे तो उसने अपने दोनों हाथ पृथिवीपर टेककर शिरसे भूमिको स्पर्श किया ॥२०॥ फिर उस माछीने कहा—''हे नाय ! आपछोग वड़े ही कृपाछ हैं जो मेरे घर पधारे । मैं धन्य हूँ, क्योंकि आज मैं आपका पूजन कर सकूँगा" ॥ २१ ॥ तदनन्तर उसने 'देखिये, ये बहुत सुन्दर हैं, ये बहुत सुन्दर हैं'-इस प्रकार प्रसन्तमुखसे छुमा-छुभाकर उन्हें इच्छानुसार पुष्प दिये ॥ २२ ॥ उसने उन दोनों पुरुपश्रेष्टोंको पुनः-पुनः प्रणामकर अति निर्मल और सुगन्धित मनोहर पुष्प दिये ॥२३॥

मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्नः प्रददौ वरान्। तव कृष्णचन्द्रने भी प्रसन्न होकर उस मालीको यह वर श्रीस्त्वां मत्संश्रया भद्र न कदाचित्रयजिष्यति।२४। दिया कि ''हे भद्र! मेरे आश्रित रहनेवाली लक्ष्मी तुझे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

बलहानिर्न ते सौम्य धनहानिरथापि वा ।
याविद्दनानि तावच न निश्चित्यति सन्तितिः ॥२५॥
श्चक्त्वा च विपुलान्भोगांस्त्वमन्ते मत्प्रसादतः ।
ममानुस्मरणं प्राप्य दिच्यं लोकमवाप्स्यसि ॥२६॥
धर्मे मनश्च ते मद्र सर्वकालं भविष्यति ।
गुष्मत्सन्तितजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति ॥२७॥
नोपसर्गादिकं दोपं युष्मत्सन्तितसम्भवः ।
अवाप्सिति महाभाग यावतस्त्रयों भविष्यति ॥२८॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्त्वा तद्गृहात्कुष्णो बलदेवसहायवान्। श्रीकृष्णचन्द्र बलभद्रजीके सहित निर्जगाम मुनिश्रेष्ठ मालाकारेण पूजितः ॥२९॥ हो उसके घरसे चल दिये॥ २९॥

कभी न छोड़ेगी ॥२४॥ हे सौम्य! तेरे वल और धनका हास कभी न होगा और जवतक दिन (सूर्य) की सत्ता रहेगी तवतक तेरी सन्तानका उच्छेद न होगा ॥ २५॥ त भी यावज्ञीवन नाना प्रकारके भोग भोगता हुआ अन्तमें मेरी कृपासे मेरा सरण करनेके कारण दिन्य छोकको प्राप्त होगा ॥ २६॥ हे भद्र! तेरा मन सर्वदा धर्मपरायण रहेगा तथा तेरे वंशमें जन्म छेनेवाछोंकी आयु दीर्घ होगी ॥ २७॥ हे महाभाग! जवतक सूर्य रहेगा तवतक तेरे वंशमें उत्पन्न हुआ कोई भी व्यक्ति उपसर्ग (आकस्मिक रोग) आदि दोषोंको प्राप्त न होगा" ॥ २८॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मुनिश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर श्रीकृष्णचन्द्र बलभद्रजीके सहित मालाकारसे प्जित हो उसके घरसे चल दिये॥ २९॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

कुञ्जापर कृपा, धनुर्मङ्ग, कुवलयापीड और चाणूरादि मल्लोंका नार्श तथा कंस-वध ।

श्रीपराशर उवाच

राजमार्गे ततः कृष्णस्सानुरुपनमाजनाम् ।
दद्र्भ कृष्णमायान्तीं नवयौवनगोचराम् ॥ १ ॥
तामाह लिलतं कृष्णः कस्येदमनुरुपनम् ।
मवत्या नीयते सत्यं वदेन्दीवरलोचने ॥ २ ॥
सकामेनेव सा प्रोक्ता सानुरागा हरिं प्रति ।
प्राह सा लिलतं कृष्णा तद्दर्शनवलात्कृता ॥ ३ ॥
कान्त कसान्त्रं जानासि कंसेन विनियोजिताम् ।
नैकवकेति विख्यातामनुरुपनकर्मणि ॥ ४ ॥
नान्यपिष्टं हि कंसस्य प्रीतये बनुरुपनम् ।
भवाम्यहमतीवास्य ८० प्रसाद्धनमाजनम् ॥ ५००॥

श्रीपराशरजी बोल्ले-तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्रने राजमार्गमें एक नवयौवना कुच्जा स्त्रीको अनुलेपनका पात्र लिये आती देखा ॥ १ ॥ तत्र श्रीकृष्णने उससे विलासपूर्वक कहा—''अयि कमल्लोचने ! त सच-सच बता यह अनुलेपन किसके लिये ले जा रही है ?'' ॥ २ ॥ भगवान् कृष्णके कामुक पुरुषकी भाँति इस प्रकार प्लनेपर अनुरागिणी कुच्जाने उनके दर्शनसे हठात् आकृष्टचित्त हो अति लिलत भावसे इस प्रकार कहा—॥ ३ ॥ ''हे कान्त ! क्या आप मुझे नहीं जानते ! मैं अनेकवका-नामसे विल्यात हूँ, राजा कंसने मुझे अनुलेपन-कार्यमें नियुक्त किया है ॥ १ ॥ राजा कंसको मेरे अतिरिक्त और किसीका पीसा हुआ जबटन पसन्द नहीं है, अतः मैं उनकी अस्यन्त कृष्णभावी क्रूँ किसीका।

श्रीकृष्ण उवाच

सुगन्धमेतद्राजाहै रुचिरं रुचिरानने । आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामनुरुपनम् ॥ ६॥

श्रीपराशर उवाच श्रुत्वैतदाह सा कुञ्जा गृह्यतामिति साद्रम् । अनुलेपनं च प्रददौ गात्रयोग्यमथोभयोः ॥ ७॥ भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गौ ततस्तौ पुरुषर्पमौ । सेन्द्रचापौ व्यराजेतां सितकृष्णाविवाम्बुदौ ॥८॥ ततस्तां चित्रुके शौरिरुह्णापनविधानवित्। उत्पाट्य तोलयामास द्रचञ्जलेनात्रपाणिना ॥ ९ ॥ चकर्ष पद्भयां च तदा ऋजुत्वं केशवोऽनयत्। ततस्सा ऋजुतां प्राप्ता योपितामभवद्वरा ।।१०।। विलासललितं प्राह प्रेमगर्भभरालसम् । वस्त्रे प्रगृह्य गोविन्दं मम गेहं व्रजेति वै ॥११॥ एवम्रकस्तया शौरी रामसालोक्य चाननम्। प्रहस्य कुब्जां तामाह नैकवक्रामनिन्दिताम् ॥१२॥ आयास्ये भवतीगेहमिति तां प्रहसन्हरिः। विससर्ज जहासोचै रामसालोक्य चाननम् ॥१३॥ भक्तिमेदाजलिपाङ्गी नीलपीताम्बरौ त तौ। धनुश्वालां ततो यातौ चित्रमाल्योपशोमितौ।१४। आयागं तद्धनूरतं ताभ्यां पृष्टैस्तु रक्षिभिः। आख्याते सहसा कृष्णो गृहीत्वापूरयद्भुः।।१५॥ ततः पूरयता तेन मज्यमानं बलाइनुः। चकार सुमहच्छब्दं मथुरा येन पूरिता ॥१६॥

श्रीकृष्णजी बोले-हे सुमुखि! यह सुन्दर सुगन्ध-मय अनुलेपन तो राजाके ही योग्य है, हमारे शरीरके योग्य मी कोई अनुलेपन हो तो दो।। ६।।

श्रीपराशरजी बोले-यह सुनकर कुटजाने कहा—'लीजिये,' और फिर उन दोनोंको आदर-पूर्वक उनके शरीरयोग्य चन्दनादि दिये ॥ ७ ॥ उस समय वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ [कपोल आदि अंगोंमें] पत्ररचनाविधिसे यथावत अनुलिस होकर इन्द्र-धनुषयुक्त स्थाम और स्त्रेत मेघके समान सुशोमित हुए ॥ ८ ॥ तत्पश्चात् उल्लापन (सीधे करनेकी) विधिके जाननेवाले मगवान् कृष्णचन्द्रने उसकी ठोड़ी-में अपनी आगेकी दो अँगुलियाँ लगा उसे उचकाकर हिलाया तथा उसके पैर अपने पैरोंसे दवा लिये । इस प्रकार श्रीकेशवने उसे ऋजुकाय (सीधे शरीरण वाली) कर दी । तब सीधी हो जानेपर वह सम्पूर्ण क्षियोंमें सुन्दरी हो गयी ॥ ९-१०॥

तब बह श्रीगोविन्दका पछा पकड़कर अन्तगीर्भित प्रेम-मारसे अलसायी हुई विलासल्लित वाणीमें
बोली—'आप मेरे घर चल्रिये' ॥ ११ ॥ उसके
ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने उस कुल्जासे, जो पहले
अनेकों अंगोंसे टेढ़ी थी, परन्तु अब सुन्दरी हो
गई थी, बल्रामजीके मुखकी ओर देखकर हँसते
हुए कहा—॥१२॥ 'हाँ, तुम्हारे घर मी आऊँगा'—
ऐसा कहकर श्रीहरिने उसे मुसकाते हुए विदा
किया और बल्मद्रजीके मुखकी ओर देखते हुए
जोर-जोरसे हँसने लगे ॥ १३॥

तदनन्तर पत्र-रचनादि विधिसे अनुष्ठिस तथा चित्र-विचित्र मालाओंसे झुशोमित राम और कृष्ण कमशः नीलम्बर और पीताम्बर धारण किये हुए यज्ञशालातक आये ॥ १४ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने यज्ञरक्षकोंसे उस यज्ञके उद्देश्यस्क्ष धनुषके विषयमें पूछा और उनके वतलानेपर श्रीकृष्णचन्द्रने उसे सहसा उठाकर प्रत्यक्चा (डोरी) चढ़ा दी ॥ १५ ॥ उसपर बल्पूर्वक प्रत्यक्चा चढ़ाते समय वह धनुष ट्रट गया, उस समय उसने ऐसा घोर शब्द किया कि उससे सम्पूर्ण मथुरापुरी गूँज उठी ॥१६॥

अजुयुक्तौ ततस्तौ तु मग्ने घजुषि रक्षिमिः ।
रिक्षिसैन्यं निहत्योभौ निष्क्रान्तौ कार्म्यकालयात् १७
अक्र्रागमवृत्तान्तम्रपलभ्य महद्भनुः ।
मग्नं श्रुत्वा च कंसोऽपि ग्राह चाणूरम्रष्टिकौ ॥१८॥
कंस जवाच

गोपालदारकौ प्राप्तौ भवद्भचां तु ममाप्रतः। मछयुद्धेन हन्तन्यौ मम प्राणहरौ हि तौ ॥१९॥ नियुद्धे तद्धिनाशेन भवद्भयां तोषितो ह्यहम् । दास्याम्यभिमतान्कामान्नान्यथैतौ महावलौ ॥२०॥ न्यायतोऽन्यायतो वापि भवद्भचां तौ ममाहितौ। हन्तव्यौ तद्वधाद्राज्यं सामान्यं वां भविष्यति॥२१॥ इत्यादिक्य स तौ मल्लौ ततश्राह्य हस्तिपम् । प्रोवाचोचैस्त्वया मह्नसमाजद्वारि कुझरः ॥२२॥ स्थाप्यः कुवलयापीडस्तेन तौं गोपदारकौ । घातनीयौ नियुद्धाय रङ्गद्वारग्रुपागतौ ॥२३॥ तमप्याज्ञाप्य दृष्ट्वा च सर्वान्मश्चानुपाकृतान्। स्योदयमुदैश्वत ॥२४॥ आसन्नमरणः कंस: ततः समस्तमञ्जेषु नागरस्य तदा जनः। राजमञ्जेषु चारूढास्सह भृत्यैर्नराधिपाः ॥२५॥ मल्लप्राश्चिकवर्गश्च रङ्गमध्यसमीपगः। कृतः कंसेन कंसोऽपि तुङ्गमश्चे व्यवस्थितः ॥२६॥ अन्तः पुराणां मञ्जाश्च तथान्ये परिकल्पिताः। अन्ये च वारमुख्यानामन्ये नागरयोषिताम् ॥२७॥ नन्दगोपादयो गोपा मश्चेष्वन्येष्त्रवस्थिताः। अक्र्रवसुदेवी च मञ्जप्रान्ते न्यवस्थितौ ॥२८॥

तब धनुष ट्रट जानेपर उसके रक्षकोंने उनपर आक्रमण किया, उस रक्षक सेनाका संहारकर वे दोनों बाळक धनुस्शाळासे बाहर आये ॥ १७॥

तदनन्तर अक्रूरके आनेका समाचार पाकर तथा उस महान् धनुषको भग्न हुआ सुनकर कंसने चाणूर और मुंष्टिकसे कहा ॥ १८॥

कंस बोळा-यहाँ दोनों गोपालबालक आ गये हैं। वे मेरा प्राण-हरण करनेवाले हैं, अतः तुम दोनों मञ्जयुद्धसे उन्हें मेरे सामने मार डालो। यदि तुमलोग मञ्जयुद्धमें उन दोनोंका विनाश करके मुझे सन्तुष्ट कर दोगे तो मैं तुम्हारी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा; मेरे इस कथनको तुम मिध्या न समझना। तुम न्यायसे अथवा अन्यायसे मेरे इन महा-बलवान् अपकारियोंको अवस्य मार डालो। उनके मारे जानेपर यह सारा राज्य [हमारा और] तुम दोनोंका सामान्य होगा॥ १९—२१॥

मञ्जोंको इस प्रकार आज्ञा दे कंसने अपने महावत-को बुळाया और उसे आज्ञा दी कि त् कुबढ़यापीड हाथीको मञ्जोंकी रंगम्मिके द्वारपर खड़ा रख और जब वे गोपकुमार युद्धके ळिये यहाँ आवें तो उन्हें इससे नष्ट करा दे ॥ २२-२३॥ इस प्रकार उसे आज्ञा देकर और समस्त सिंहासनोंको यथावत् रखे देखकर, जिसकी मृत्यु पास आ गयी है वह कंस सूर्योदयकी प्रतीक्षा करने छगा॥ २४॥

प्रातःकाल होनेपर समस्त मर्झोपर नागरिक लोग और राजमञ्जोपर अपने अनुचरोंके सहित राजालोग बैठे ॥२५॥ तदनन्तर रंगभूमिके मध्य मागके समीप कंसने युद्धपरीक्षकोंको बैठाया और फिर खयं आप भी एक ऊँचे सिंहासनपर बैठा॥ २६॥ वहाँ अन्तःपुरकी स्त्रियोंके लिये पृथक् मचान बनाये गये थे तथा मुख्य-मुख्य वारांगनाओं और नगरकी महिलाओंके लिये भी अलग-अलग मञ्ज थे ॥ २७॥ कुछ अन्य मञ्जोपर नन्दगोप आदि गंपगण बिठाये गये थे और उन मञ्जोंक पासही अक्रूर और वसुदेवजी बैठे थे॥ २८॥

नागरीयोपितां मध्ये देवकीपुत्रगर्द्धिनी । अन्तकालेऽपि पुत्रस द्रक्ष्यामीति मुखं स्थिता ।२९। वाद्यमानेषु तूर्येषु चाणूरे चापि वल्गति । हाहाकारपरे लोके ह्यास्फोटयति मुष्टिके ॥३०॥ ईपद्धसन्तौ तौ वीरौ वलभद्रजनार्दनौ। गोपवेषधरौ वालौ रङ्गद्वारमुपागतौ ॥३१॥ ततः कुवलयापीडो महामात्रप्रचोदितः। अभ्यधावत वेगेन हन्तं गोपकुमारकौ ॥३२॥ हाहाकारो महाञ्जन्ने रङ्गमध्ये द्विजोत्तम । बलदेवोऽनुजं दृष्टा वचनं चेद्मव्रवीत् ॥३३॥ हन्तव्यो हि महाभाग नागोऽयं शत्रुचोदितः ॥३४॥ इत्युक्तस्सोऽग्रजेनाथ वलदेवेन वै द्विज। सिंहनादं ततश्रके माधवः परवीरहा ॥३५॥ करेण करमाकुष्य तस्य केशिनिषूदनः। भ्रामयामास तं शौरिरैरावतसमं बले ॥३६॥ ईशोऽपि सर्वजगतां वाललीलानुसारतः। क्रीडित्वासुचिरं कृष्णः करिदन्तपदान्तरे ॥३७॥ उत्पाट्य वामदन्तं तु दक्षिणेनैंव पाणिना । ताडयामास यन्तारं तस्यासीच्छतधा शिरः ॥३८॥ दक्षिणं दन्तमुत्पाटच वलभद्रोऽपि तत्क्षणात्। सरोषस्तेन पार्श्वस्थान् गजपालानपोथयत् ॥३९॥ ततस्तूत्प्छत्य वेगेन रौहिणेयो महावलः। जघान वामपादेन मस्तके हस्तिनं रुपा।।४०।। स पपात इतस्तेन बलमद्रेण लीलया। सहस्राक्षेण वज्रेण ताडितः पर्वतो यथा ॥४१॥ हत्वा कुवलयापीडं हस्त्यारोहप्रचोदितम्। मदासृगजुलिप्ताङ्गी हित्तदन्तवरायुघौ ॥४२॥ मृगमध्ये यथा सिंही गर्वलीलावलोकिनौ।

नगरकी नारियोंके बीचमें 'चलो, अन्तकालमें ही पुत्रका मुख तो देख लूँगी' ऐसा विचारकर पुत्रके लिये मङ्गल-कामना करती हुई देवकीजी बैठी थीं ॥ २९॥

तदनन्तर जिस समय त्र्यं आदिके वजने तथा चाण्रके अत्यन्त उछ्छने और मुष्टिकके ताछ ठोंकने-पर दर्शकगण हाहाकार कर रहे थे, गोपवेषचारी वीर बाछक वछमद्र और कृष्ण कुछ हँसते हुए रंगभूमिके द्वारपर आये ॥ ३०-३१ ॥ वहाँ आते हो महावतकी प्रेरणासे कुवछ्यापीडनामक हाथी उन दोनों गोप-कुमारोंको मारनेके छिये वड़े वेगसे दौड़ा ॥ ३२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उस समय रंगभूमिमें महान् हाहाकार मच गया तथा वछदेवजीने अपने अनुज कृष्णकी ओर देखकर कहा—"हे महाभाग ! इस हाथीको शत्रुने ही प्रेरित किया है; अतः इसे मार डाछना चाहिये" ॥ ३३-३४ ॥

हे द्विज ! ज्येष्ठ भ्राता बलरामजीके ऐसा कहने-पर शत्रसूदन श्रीश्यामसुन्दरने वड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ३५॥ फिर केशिनियृदन भगवान् श्रीकृष्णने वलमें ऐरावतके समान उस महावली हाथीकी सूँड अपने हाथसे पकड़कर उसे घुमाया ॥३६॥ भगवान् कृष्ण यद्यपि सम्पूर्ण जगत्के खामी हैं तथापि उन्होंने बहुत देरतक उस हार्थाके दाँत और चरणोंके बीचमें खेखते-खेखते अपने दाएँ हाथसे उसका वायाँ दाँत उखाड़कर उससे महावतपर प्रहार किया। इससे उसके शिरके सैकड़ों टुकड़े हो गये ॥ ३७-३८॥ उसी समय बलभद्रजीने भी क्रोधपूर्वक उसका दायाँ दाँत उखाडकर उससे आस-पास खड़े हुए महावर्तोंको मार डाछा ॥ ३९॥ तदनन्तर महात्रछी रोहिणी-नन्दनने रोपपूर्वक अति वेगसे उछलकर उस हाथीके मस्तकपर अपनी बायीं छात मारी ॥ ४०॥ इस प्रकार वह हायी वलभद्रजीद्वारा छीलापूर्वक मारा जाकर इन्द्र-वज़से आहत पर्वतके समान गिर पड़ा ॥ ४१ ॥

तत्र महावतसे प्रेरित कुवल्यापीडको मारकर उसके मद और रक्तसे लथ-पथ राम और कृष्ण उसके दाँतोंको लिये हुए गर्वयुक्त लीलामयी चितवनसे

बलभद्रजनार्दनौ ॥४३॥ प्रविष्टी सुमहारङ्गं हाहाकारो महाञ्जन्ने महारङ्गे त्वनन्तरम् । कृष्णोऽयं बलभद्रोऽयमिति लोकस्य विस्रयः ॥४४॥ सोऽयं येन हता घोरा पूतना बालघातिनी । क्षिप्तं त शकटं येन भग्नौ त यमलार्जुनौ ।।४५।। सोऽयं यः कालियं नागं ममदीरुह्य बालकः । धृतो गोवर्द्धनो येन सप्तरात्रं महागिरिः ॥४६॥ अरिष्टो घेतुकः केशी लीलयैव महात्मना । निहता येन दुर्वता दृश्यतामेष सोऽच्युतः ॥४७॥ अयं चास महाबाहुर्वलभद्रोऽग्रतोऽग्रजः। प्रयाति लीलया योषिन्मनोनयननन्दनः ॥४८॥ अयं स कथ्यते प्राज्ञैः पुराणार्थविशारदैः । गोपालो यादवं वंशं मग्रमभ्युद्धरिष्यति ॥४९॥ अयं हि सर्वलोकस्य विष्णोरिखलजन्मनः। अवतीणों महीमंशो नूनं भारहरो भ्रवः ॥५०॥ इत्येवं वर्णिते पारे रामे कृष्णे च तत्क्षणात् । देवक्याः स्नेहस्रतपयोधरम् ॥५१॥ महोत्सवमिवासाद्य पुत्राननविलोकनात् । युवेव वसुदेवोऽभूद्विहायाम्यागतां जराम् ॥५२॥ . विस्तारिताश्वियुगलो राजान्तः पुरयोपितास् । नागरस्त्रीसमृहश्च द्रष्डं न विरराम तम्।।५३।। सख्यः पश्यत कृष्णस्य मुखमत्यरूणेक्षणम् । गजयुद्धकृतायासस्वेदाम्बुकणिकाचितम् ॥५४॥ विकासिशरदम्भोजमवश्यायजलोक्षितम्

निहारते उस महान् रंगभूमिमें इस प्रकार आये जैसे मृग-समृहके बीचमें सिंह चला जाता है ॥ ४२-४३॥ उस समय महान् रंगभूमिमें वडा कोलाहल होने लगा और सब लोगोंमें 'ये कृष्ण हैं, ये बलमद्र हैं' ऐसा विस्मय छा गया॥ ४४॥

िवे कहने छगे—] "जिसने वालघातिनी घोर राक्षसी पूतनाको मारा था, शकटको उलट दिया था और यमलार्ज नको उखाड़ डाला था वह यही है। जिस बालकने कालियनागके ऊपर चढ़कर उसका मान-मर्दन किया था और सात रात्रितक महापर्वत गोवर्धनको अपने हाथपर धारण किया था वह यही है ॥ ४५-४६ ॥ जिस महात्माने अरिष्टासुर, धेनुका-धुर और केशी आदि दुष्टोंको छीछासे ही मार डाला था; देखो, वह अच्युत यही हैं ॥ ४७॥ ये इनके आगे इनके बड़े भाई महाबाह बल्मद्रजी हैं जो बड़े लीलापूर्वक चल रहे हैं। ये स्नियोंके मन और नयनोंको बड़ा ही आनन्द देनेवाले हैं ? ॥ ४८॥ पुराणार्थ-वेता विद्वान् लोग कहते हैं कि ये गोपालजी डूवे हुए यदुवंशका उद्धार करेंगे ॥ ४९॥ ये सर्वछोकमय और सर्वकारण भगवान् विष्णुके ही अंश हैं, इन्होंने पृथिवीका भार उतारनेके छिये ही भूमिपर अवतार लिया है" ॥ ५० ॥

राम और कृष्णके विषयमें पुरवासियोंके इस प्रकार कहते समय देवकीके स्तनोंसे खेहके कारण दूध बहने लगा और उसके हृदयमें बड़ा अनुताप हुआ ॥ ५१ ॥ पुत्रोंका मुख देखनेसे अत्यन्त उल्लास-सा प्राप्त होनेके कारण बसुदेवजी भी मानो आई हुई बुढ़ापाको छोड़कर फिरसे नवयुवक-से हो गये॥ ५२ ॥

राजाके अन्तः पुरकी क्षियाँ तथा नगरनिवासिनी महिलाएँ भी उन्हें एकटक देखते-देखते उपराम न हुई ॥५३॥ [वे परस्पर कहने लगीं—] "अरी सिखयो । अरुणनयनसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रका अति सुन्दर मुख तो देखो, जो कुबल्यापीडके साथ युद्ध करनेके परिश्रमसे खेदबिन्दुपूर्ण होकर हिम-कण-सिश्चित शरकालीन प्रफुळ कमलको लिजत कर रहा है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

परिश्रुय स्थितं जन्म सफलं क्रियतां द्याः ॥५५॥

श्रीवत्साङ्कं महद्धाम वालस्यैतदिलोक्यताम्। विपक्षक्षपणं वक्षो अजयुग्मं च भामिनि॥५६॥

किं न पश्यसि दुग्धेन्दुमृणालध्वलाकृतिम् । बलभद्रमिमं नीलपरिधानग्रुपागतम् ॥५७॥ वल्गता ग्रुष्टिकेनैव चाणूरेण तथा सिख । क्रीडतो बलभद्रस्य हरेर्हास्यं विलोक्यताम् ॥५८॥

सख्यः पश्यत चाणूरं नियुद्धार्थमयं हरिः ।

सम्रोपति न सन्त्यत्र किं दृद्धा मुक्तकारिणः ॥५९॥

क यौवनोन्मुखीभूतसुकुमारतनुर्हरिः ।

क वज्रकठिनाभोगशरीरोऽयं महासुरः ॥६०॥

हमौ सुललितैरङ्गेर्वतेते नवयौवनौ ।

दैतेयमल्लाश्राण्रप्रमुखास्त्वतिदारुणाः ॥६१॥

नियुद्धप्राश्रिकानां तु महानेष व्यतिक्रमः ।

यद्धालविलनोर्युद्धं मध्यस्थैस्समुपेक्ष्यते ॥६२॥

अरी ! इसका दर्शन करके अपने नेत्रोंका होना सफल कर लो" ॥ ५४-५५॥

[एक स्त्री बोळी-] "हे भामिनि ! इस वाळकका यह लक्ष्मी आदिका आश्रयभूत श्रीवत्सांकयुक्त वक्षः-स्थल तथा शत्रुओंको पराजित करनेवाली इसकी दोनों मुजाएँ तो देखो।" ॥ ५६॥

[दूसरी॰—]''अरी ! क्या तुम नीलाम्बर धारण किये इन दुग्ध, चन्द्र अथवा कमल्नालके समान शुभ्रवर्ण बल्देवजीको आते हुए नहीं देखती हो ?''॥ ५०॥

[तीसरी०-]"अरी सिखयो! [अखाड़ेमें] चकर देकर घूमनेवाले चाणूर और मुष्टिकके साथ क्रीडा करते हुए वलमद तथा कृष्णका हँसना देख लो।"॥ ५८॥

[चीथी०-] 'हाय ! सिखयो ! देखो तो चाण्रसे छड़नेके लिये ये हिर आगे बढ़ रहे हैं; क्या इन्हें छुड़ाने-बाले कोई भी बड़े-बूढ़े यहाँ नहीं हैं !" ॥ ५९ ॥ कहाँ तो यौबनमें प्रवेश करनेवाले सुकुमार-शरीर स्याम और कहाँ बज़के समान कठोर शरीरवाला यह महान् असुर !'॥ ६० ॥ ये दोनों नवयुवक तो बड़े ही सुकुमार शरीरवाले हैं, [किन्तु इनके प्रतिपक्षी] ये चाण्र् आदि दैत्य मञ्ज अत्यन्त दारुण हैं ॥ ६१ ॥ मञ्जयुद्धके परीक्षकगणोंका यह बहुत बड़ा अन्याय है जो वे मध्यस्थ होकर भी इन बालक और बल्बान मञ्जोंके युद्धकी उपेक्षा कर रहे हैं"॥ ६२ ॥

श्रीपराशरजी बोले-नगरकी क्षियोंके इस प्रकार वार्तालाप करते समय भगवान् कृष्णचन्द्र अपनी कमर कसकर उन समस्त दर्शकोंके बीचमें पृथिबीको कम्पायमान करते हुए रङ्गम्मिमें कूद पड़े ॥ ६३ ॥ श्रीबलमद्रजी मी अपने मुजदण्डोंको ठोंकते हुए अति मनोहर भावसे उछलने लगे। उस समय उनके पद-पद्पर पृथिबी नहीं फटी, यही बड़ा आश्चर्य है ॥६॥

तदनन्तर अमित-विक्रम कृष्णचन्द्र चाण्र्के साथ और द्वन्द्वयुद्धकुशल राक्षस मुष्टिक बलमदके साथ युद्ध करने लगे ॥ ६५ ॥

सन्निपातावधूतैस्तु चाणूरेण समं हरिः। प्रक्षेपणैर्म्रष्टिभिश्च कीलवज्रनिपातनैः।।६६।। पादोद्धृतैः प्रमृष्टैश्च तयोर्धुद्धमभून्महत् ॥६७॥ अशस्त्रमतिघोरं तत्तयोर्युद्धं सुदारुणम् । बलप्राणविनिष्पाद्यं समाजोत्सवसिन्धौ ॥६८॥ यावद्यावच चाणूरो युगुधे हरिणा सह। प्राणहानिमवापाप्रयां तावत्तावस्रवास्रवम् ॥६९॥ कृष्णोऽपि युयुधे तेन लीलयैव जगन्मयः । खेदाचालयता कोपान्निजशेखरकेसरम् ॥७०॥ बलक्षयं विवृद्धिं च दृष्ट्वा चाणूरकृष्णयोः । वारयामास तूर्याणि कंसः कोपपरायणः॥७१॥ मृदङ्गादिषु तूर्येषु प्रतिषिद्धेषु तत्थ्रणात् । खे सङ्गतान्यवाद्यन्त देवतूर्याण्यनेकशः॥७२॥ जय गोविन्द चाणूरं जहि केशव दानवम् । अन्तर्द्धानगता देवास्तमूचुरतिहर्पिताः ॥७३॥ चाणूरेण चिरं कालं ऋीडित्वा मधुसद्दनः। उत्थाप्य आमयामास तद्वधाय कृतोद्यमः।।७४।। भ्रामयित्वा शतगुणं दैत्यमस्रममित्रजित्। भूमावास्फोटयामास गगने गतजीवितम्।।७५॥ भूमावास्फोटितस्तेन चाणूरः शतधाभवत् । रक्तस्रावमहापङ्कां चकार च तदा भ्रुवम्।।७६॥ बलदेवोऽपि तत्कालं मुष्टिकेन महाबल:। युग्रे दैत्यमल्लेन चाणूरेण यथा हरिः॥७७॥ सोऽप्येनं मुष्टिना मूर्प्ति वक्षस्याहत्य जानुना । पात्रित्वा धराप्रष्टे निष्पिपेष गतासुष्म ॥७८॥

कृष्णचन्द्र चाणूरके साथ परस्पर भिड़कर, नीचे गिराकर उछालकर, घूँसे और बज़के समान कोहनी मारकर, पैरोंसे ठोकर मारकर तथा एक-दूसरेके अंगोंको रगड़कर लड़ने लगे। उस समय उनमें महान् युद्ध होने लगा॥ ६६-६७॥

इस प्रकार उस समाजोत्सवके समीप केवल बल और प्राणशक्तिसे ही सम्पन्न होनेवाला उनका अति भयंकर और दारुण शस्त्रहीन युद्ध हुआ || ६८ || चाण्र जैसे-जैसे भगवान्से भिड़ता गया वैसे-ही-वैसे उसकी प्राणशक्ति थोड़ी-थोड़ी करके अत्यन्त क्षीण होती गयी || ६९ || जगन्मय भगवान् कृष्ण भी, श्रम और कोपके कारण अपने पुष्पमय शिरोभूपणोंमें लगे हुए केशरको हिलानेवाले उस चाणूरसे लीलापूर्वक लड़ने छगे ॥ ७० ॥ उस समय चाणूरके वलका क्षय और कृष्णचन्द्रके वलका उदय देख कंसने खीझकर तुर्य आदि वाजे वन्द करा दिये ॥ ७१ ॥ रंगभूमिमें मृदंग और त्र्यं आदिके बन्द हो जानेपर आकाशमें अनेक दिव्य तूर्य एक साथ बजने छगे॥ ७२॥ और देवगण अत्यन्त हर्षित होकर अलक्षित-भावसे कहने लगे-"हे गोविन्द! आपकी जय हो । हे केराव ! आप शीघ्र ही इस चाणूर दानवको मार डालिये।" ॥ ७३॥

भगवान् मधुसूदन बहुत देरतक चाणूरके साथ खेळ करते रहे, फिर उसका वध करनेके लिये उद्यत होकर उसे उठाकर घुमाया ॥ ७४ ॥ शत्रुविजयी श्रीकृष्णचन्द्रने उस दैत्य मळको सैकड़ों वार घुमाकर आकाशमें ही निर्जीव हो जानेपर पृथिवीपर पटक दिया ॥७५॥ भगवान्के द्वारा पृथिवीपर गिराये जाते ही चाणूरके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो गये और उस समय उसने रक्तसावसे पृथिवीको अत्यन्त कीचड़मय कर दिया ॥ ७६ ॥ इधर, जिस प्रकार भगवान् कृष्ण चाणूरसे ळड़ रहेथे उसी प्रकार महावळी वळमद्रजी भी उस समय दैत्य मञ्ज मुष्टिकसे भिड़े हुए थे ॥ ७७ ॥ बळरामजीने उसके मस्तकपर घूँसोंसे तथा वक्षःस्थळमें जानुसे प्रहार किया और उस गतायु दैत्यको पृथिवीपर पटककर स्तिह इसळा ॥ १९६० ॥ १९६० ॥

कृष्णस्तोशलकं भूयो मछराजं महावलम्। वाममुष्टिप्रहारेण पातयामास भूतले ॥७९॥ चाणूरे निहते मल्ले मुष्टिके विनिपातिते । नीते क्षयं तोशलके सर्वे मल्लाः प्रदुद्धनुः ॥८०॥ ववल्गतुस्ततो रङ्गे कृष्णसङ्कर्पणावुभौ। समानवयसो गोपान्वलादाकुष्य हर्षितौ ॥८१॥ कंसोऽपि कोपरक्ताक्षः प्राहोचैर्च्यायतान्नरान् । गोपावेतौ समाजौघान्निष्काम्येतां वलादितः॥८२॥ नन्दोऽपि गृह्यतां पापो निर्गलैरायसैरिह । अवृद्धार्हेण दण्डेन वसुदेवोऽपि वध्यताम् ॥८३॥ वल्गन्ति गोपाः कुष्णेन ये चेमे सहिताः पुरः । गावो निगृद्यतामेषां यचास्ति वसु किञ्चन ॥८४॥ एवमाज्ञापयन्तं तु प्रहस्य मधुस्रद्रनः। उत्प्कुत्यारुह्य तं मश्चं कंसं जग्राह वेगतः ॥८५॥ विगलत्करीटमवनीतले। केशेष्वाकृष्य स कंसं पातयामास तस्योपरि पपात च ॥८६॥ पततोपरि । अशेषजगदाधारगुरुणा कृष्णेन त्याजितः प्राणानुप्रसेनात्मजो नृपः ॥८७॥ मृतस्य केशेषु तदा गृहीत्वा मधुस्रद्रनः। चकर्ष देहं कंसस्य रङ्गमध्ये महावलः॥८८॥ गौरवेणातिमहता परिघा तेन कृष्यता। कृता कंसस्य देहेन वेगेनेव महाम्भसः ॥८९॥ कंसे गृहीते कृष्णेन तद्भाताऽम्यागतो रुपा । सुमाली वलभद्रेण लीलयैव निपातितः॥९०॥ ततो हाहाकृतं सर्वमासीत्तद्रङ्गमण्डलम् । अवज्ञया हतं दृष्ट्वा कृष्णेन मथुरेश्वरम् ॥९१॥ कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ जग्राह सत्वरः। महाबाहुबेलदेवसहायवान् ॥९२॥ और देवकीकं चरण पकड़ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri देवक्याश्र

तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्रने महावली मञ्जराज तोशल-को वार्ये हाथसे चुँसा मारकर पृथिवीपर गिरा दिया ॥ ७९ ॥ मञ्जश्रेष्ठ चाण्र और मुष्टिकके मारे जानेपर तथा महराज तोशलके नष्ट होनेपर समस्त म ब्रगण भाग गये ॥ ८० ॥ तब कृष्ण और संकर्षण अपने समवयस्क गोपोंको वलपूर्वक खींचकर [आल्गिन करते हुए] हुपसे रंगभूमिमें उछ्छने छगे॥ ८१॥

तदनन्तर कंसने क्रोधसे नेत्र छाछ करके वहाँ एकत्रित हुए पुरुषोंसे कहा-"अरे ! इस समाजसे इन ग्वाल-वालोंको बलपूर्वक निकाल दो ॥८२॥ पापी नन्दको लोहेकी श्रृंखलामें वाँधकर पकड़ लो तथा वृद्ध पुरुपों-के अयोग्य दण्ड देकर वसुदेवको भी मार डालो ॥ ८३ ॥ मेरे सामने कृष्णके साथ ये जितने गोपवालक उछल रहे हैं इन सबको भी मार डालो तथा इनकी गौएँ और जो कुछ अन्य धन हो वह सब छीन छो" ॥८४॥ जिस समय कंस इस प्रकार आज्ञा दे रहा था उसी समय श्रीमधुसूदन हँसते-हँसते उछलकर मञ्चपर चढ़ गये और शीव्रतासे उसे पकड़ लिया ॥ ८५ ॥ भगवान् कृष्णने उसके केशोंको खींचकर उसे पृथिवीपर पटक दिया तथा उसके ऊपर आप भी कूद पड़े, इस समय उसका मुक्ट शिरसे खिसककर अलग जा पड़ा ॥ ८६ ॥ सम्पूर्ण जगत्के आधार भगवान् कृष्णके ऊपर गिरते ही उप्रसेनात्मज राजा कंसने अपने प्राण छोड़ दिये ॥ ८७ ॥ तब महाबळी कृष्णचन्द्रने मृतक कंसके केश पकड़कर उसके देहको रंगमूमिमें घसीटा ॥ ८८ ॥ कंसका देह बहुत भारी था, इसिंखेये उसे वसीटनेसे जलके महान् वेगसे हुई दरारके समान पृथिवीपर परिघा वन गयी ॥ ८९॥

श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा कंसके पकड़ छिये जानेपर उसके माई सुमाछीने क्रोधपूर्वक आक्रमण किया। उसे वलरामजीने लीलासे ही मार डाला ॥ ९०॥ इस प्रकार मथुरापति कंसको कृष्णचन्द्रद्वारा अवज्ञा-पूर्वक मरा हुआ देखकर रंगभूमिमें उपस्थित सम्पूर्ण जनता हाह।कार करने छगी ॥ ९१ ॥ उसी समय कृष्णचन्द्रने वळदेवजीसहित वसदेव महावाहु चरण पकड़ लिये ॥ ९२ ॥ और देवकीके

उत्थाप्य वसुदेवस्तं देवकी च जनार्दनम् । स्मृतजन्मोक्तवचनौ तावेव प्रणतौ स्थितौ ॥९३॥

श्रीवसुदेव उवाच

प्रसीद सीदतां दत्तो देवानां यो वरः प्रमो ।
तथावयोः प्रसादेन कृतोद्धारस्स केशव ॥९४॥
आराधितो यद्भगवानवतीर्णो गृहे मम ।
दुर्शृत्तनिधनार्थाय तेन नः पावितं कुलम् ॥९५॥
त्वमन्तः सर्वभूतानां सर्वभृतमयः स्थितः ।
प्रवतेते समस्तात्मंस्त्वत्तो भूतभविष्यती ॥९६॥
यश्चैस्त्वमिज्यसेऽचिन्त्य सर्वदेवमयाच्युत ।
त्वमेव यश्चो यष्टा च यज्वनां परमेश्वर ॥९७॥
सम्बद्धवस्समस्तस्य जगतस्त्वं जनार्दन ॥९८॥
सापह्ववं मम मनो यदेतत्त्विय जायते ।
देवक्याश्चात्मजप्रीत्या तदत्यन्तविद्धम्बना ॥९९॥
त्वं कर्ता सर्वभूतानामनादिनिधनो भवान् ।
त्वां मजुष्यस्य कस्यैषा जिह्वा पुत्रेति वक्ष्यति॥१००॥

जगदेतज्जगन्नाथ सम्भूतमिखलं यतः । कया युक्त्या विना मायां सोऽसत्तः सम्भविष्यति ॥ यसिन्प्रतिष्ठितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । स कोष्ठोत्सङ्गश्यमो मानुषो जायते कथम् ॥१०२॥

स त्वं प्रसीद परमेश्वर पाहि विश्वमंशावतारकरणैर्न ममासि पुत्रः ।
आत्रक्षपादपमिदं जगदेतदीश
त्वचो विमोहयसि किं पुरुषोत्तमासान् ॥
मायाविमोहितदृशा तनयो ममेति
कंसाद्भयं कृतम्भास्तभ्यातितीत्रम्नि

तब वसुदेव और देवकीको पूर्वजन्ममें कहे हुए भगवद्-वाक्योंका स्मरण हो आया और उन्होंने श्रीजनार्दनको पृथिवीपरसे उठा लिया तथा उनके सामने प्रणत-भावसे खड़े हो गये ॥ ९३॥

श्रीवसुदेवजी बोले-हे प्रमो ! अव आप हमपर प्रसन्न होइये । हे केशव ! आपने आर्त देवगणींको जो वर दिया था वह हम दोनोंपर अनुप्रह करके पूर्ण कर दिया ॥ ९४ ॥ मगवन् ! आपने जो मेरी आराधनासे दुष्टजनोंके नाशके लिये मेरे घरमें जन्म लिया, उससे हमारे कुलको पवित्र कर दिया है ॥ ९५॥ आप सर्वभूतमय हैं और समस्त भूतोंके भीतर स्थित हैं । हे समस्तात्मन् ! भूत और भविष्यत् आपहीसे प्रवृत्त होते हैं ॥ ९६ ॥ हे अचिन्त्य ! हे सर्वदेवमय ! हे अच्युत ! समस्त यज्ञोंसे आपहीका यजन किया जाता है तथा हे परमेश्वर ! आप ही यज्ञ करने-वालोंके और यज्ञसरूप हैं ॥ ९७॥ हे जनार्दन ! आप तो सम्पूर्ण जगत्के उत्पत्ति-स्थान हैं, आपके प्रति पुत्रवात्सल्यके कारण जो मेरा और देवकीका चित्त भ्रान्तियुक्त हो रहा है यह बड़ी ही हँसीकी बात है ॥ ९८-९९ ॥ आप आदि और अन्तसे रहित हैं तथा समस्त प्राणियोंके उत्पत्तिकंत्ती हैं, ऐसा कौन मनुष्य है जिसकी जिह्ना आपको 'पुत्र' कहकर सम्बोधन करेगी ? ॥ १००॥

हे जगनाथ! जिन आपसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुओ है वही आप बिना मायाशक्तिके और किस प्रकार हमसे उत्पन्न हो सकते हैं ॥ १०१॥ जिसमें सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् स्थित है वह प्रस् कुक्षि (कोख) और गोदमें शयन करनेवाला मनुष्य कैसे हो सकता है ?॥ १०२॥

हे परमेश्वर ! वही आप हमपर प्रसन्न होइये और अपने अंशावतारसे विश्वकी रक्षा कीजिये । आप मेरे पुत्र नहीं हैं । हे ईश ! ब्रह्मासे छेकर वृक्षादिपर्यन्त यह सम्पूर्ण जगत् आपहीसे उत्पन्न हुआ है, फिर हे पुरुषोत्तम ! आप हमें क्यों मोहित कर रहे हैं ! ॥ १०३ ॥ हे निर्भय ! 'आप मेरे पुत्र हैं" इस मायासे स्मोहित होका मैंने कंस से अध्यन्त मय माना था और

नीतोऽसि गोकुलमरातिभयाकुलेन
वृद्धिं गतोऽसि मम नास्ति ममत्वमीश १०४
कर्माणि रुद्रमरुद्धिशतकत्नां
साध्यानि यस न भवन्ति निरीक्षितानि ।
त्वं विष्णुरीश जगतास्रुपकारहेतोः
प्राप्तोऽसि नः परिगतो विगतो हि मोहः १०५

उस शत्रुके मयसे ही मैं आपको गोकुल ले गया था। है ईश! आप वहीं रहकर इतने बड़े हुए हैं, इसलिये अब आपमें मेरी ममता नहीं रही है।। १०४।। अब-तक मैंने आपके ऐसे अनेक कर्म देखे हैं जो रुद्र, मरुद्रण, अश्विनीकुमार और इन्द्रके लिये भी साध्य नहीं हैं। अब मेरा मोह दूर हो गया है, हे ईश! [मैंने निश्चयपूर्वक जान लिया है कि] आप साक्षात् श्रीविष्णुमगवान् ही जगत्के उपकारके लिये प्रकट हुए हैं।। १०५॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पश्चमें इशे विशोऽध्यायः ॥२०॥

इकीसवाँ अध्याय

उग्रसेनका राज्याभिषेक तथा भगवान्का विद्याध्ययन।

श्रीपराशर उवाच

तौ समुत्पन्नविज्ञानौ भगवत्कर्मदर्शनात्। देवकीवसुदेनौ तु दृष्ट्रा मायां पुनर्हरिः। मोद्दाय यदुचक्रस्य विततान स वैष्णवीम्॥१॥ उवाच चाम्ब हे तात चिरादुत्किण्ठितेन मे। भवन्तौ कंसमीतेन दृष्टौ सङ्कर्षणेन च॥२॥ कुर्वतां याति यः कालो मातापित्रोरप्जनम्। तत्स्वण्डमायुषो व्यर्थमसाधूनां हि जायते॥ ३॥ गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्च प्जनम्। कुर्वतां सफलः कालो देहिनां तात जायते॥ ४॥ तत्स्वन्तव्यमिदं सर्वमतिक्रमकृतं पितः। कंसवीर्यप्रतापाम्यामावयोः परवव्ययोः॥ ५॥

श्रीपराश्चर उवाच इत्युक्त्वाथ प्रणम्योभौ यदुवृद्धानतुक्रमात्। यथावदभिपूज्याथ चक्रतुः पौरमाननम् ॥६॥ कंसपत्न्यस्ततः कंसं परिवार्य इतं भ्रुवि। विलेपुर्मातस्थास्य दुःखशोकपरिप्छताः॥७॥

श्रीपराशरजी बोळे-अपने अति अद्भुत कर्मोंको देखनेसे वसुदेव और देवकीको विज्ञान उत्पन्न हुआ देखकर मगवान्ने यदुवंशियोंको मोहित करनेके लिये अपनी वैष्णवी मायाका विस्तार किया ॥१॥ और बोळे-"हे मातः! हे पिताजी! वल्रामजी और में बहुत दिनोंसे कंसके मयसे लिये हुए आपके दर्शनों-के लिये उत्कण्ठित थे, सो आज आपका दर्शन हुआ है॥२॥ जो समय माता-पिताकी सेवा किये विना बीतता है वह असाधु पुरुषोंकी ही आयुका माग व्यर्थ जाता है॥३॥ हे तात! गुरु, देव, ब्राह्मण और माता-पिताका पूजन करते रहनेसे देह-धारियोंका जीवन सफल हो जाता है॥ १॥ अतः हे तात! कंसके वीर्य और प्रतापसे मीत हम परवशोंसे जो कुछ अपराध हुआ हो वह क्षमा करें"॥५॥

श्रीपराशरजी बोळे-राम और कृष्णने इस प्रकार कह माता-पिताको प्रणाम किया और फिर क्रमशः समस्त यदुवृद्धोंका यथायोग्य अमिवादनकर पुरवासियों-का सम्मान किया ॥ ६ ॥ उस समय कंसकी पित्नयाँ और माताएँ पृथिवीपर पड़े हुए मृतक कंसको वेरकर दुःख-शोकसे पूर्ण हो विछाप करने छगों ॥ ७ ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

बहुप्रकारमत्यर्थं पश्चात्तापातुरो हरिः।

तास्समाश्चासयामास स्वयमस्नाविलेश्वणः॥८॥

उप्रसेनं ततो वन्धान्मुमोच मधुसूदनः।

अभ्यस्श्चित्तदैवैनं निजराज्ये हतात्मजम्॥९॥

राज्येऽभिषिक्तः कृष्णेन यदुसिंहस्सुतस्य सः।

चकार प्रेतकार्याणि ये चान्ये तत्र घातिताः॥१०॥

कृतौर्द्वदैहिकं चैनं सिंहासनगतं हरिः।

उवाचाज्ञापय विभो यत्कार्यमविशङ्कितः॥११॥

ययातिशापाद्वंशोऽयमराज्याहोंऽपि साम्प्रतम्।

मिय भृत्ये स्थिते देवानाज्ञापयतु किं नृषैः॥१२॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तवा सोऽस्मरद्वायुमाजगाम च तत्क्षणात्। उवाच चैनं भगवान्केशवः कार्यमानुषः ॥१३॥ गच्छेदं ब्र्हि वायो त्वमलं गर्वेण वासव। दीयतासुग्रसेनाय सुधर्मा भवता सभा॥१४॥ कृष्णो व्रवीति राजाईमेतद्रत्नमनुत्तमम्। सुधर्माख्यसभा युक्तमस्यां यदुमिरासितुम्॥१५॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तः पवनो गत्वा सर्वमाह श्रचीपतिम् । ददौ सोऽपि सुधर्माख्यां सभां वायोः पुरन्दरः ।१६। वायुना चाहतां दिव्यां सभां ते यदुपुङ्गवाः । बुग्रज्जस्सर्वरत्नाढ्यां गोविन्दग्रजसंश्रयाः ॥१७॥ विदिताखिलविज्ञानौ सर्वज्ञानमयावपि । शिष्याचार्यक्रमं वीरौ ख्यापयन्तौ यदूक्तमौ ॥१८॥ ततस्सान्दीपनि काञ्यमवन्तिपुरवासिनम् । विद्यार्थं जग्मतुर्वालौ कृतोपन्यनक्रमो ॥१९॥ तब कृष्णचन्द्रने भी अत्यन्त पश्चात्तापसे विह्वल हो स्वयं आँखोंमें आँसू भरकर उन्हें अनेकों प्रकारसे ढाँदस बँघाया ॥ ८॥

तदनन्तर श्रीमधुसूदनने उग्रसेनको बन्धनसे मुक्त किया और पुत्रके मारे जानेपर उन्हें अपने राज्यपद-पर अभिषिक्त किया ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा राज्या-भिषिक्त होकर यदुश्रेष्ठ उग्रसेनने अपने पुत्र तथा और भी जो छोग वहाँ मारे गये थे उन सबके और्ध्वदैहिक कर्म किये ॥ १० ॥ और्ध्वदैहिक कर्मोंसे निवृत्त होने-पर सिंहासनारूढ़ उग्रसेनसे श्रीहरि बोछे—"हे विभो ! हमारे योग्य जो सेवा हो उसके छिये हमें निस्त्रंक होकर आज्ञा दीजिये ॥ ११ ॥ ययातिका शाप होनेसे यद्यपि हमारा वंश राज्यका अधिकारी नहीं है तथापि इस समय मुझ दासके रहते हुए राजाओंको तो क्या, आप देवताओंको भी आज्ञा दे सकते हैं" ॥ १२ ॥

श्रीपराशरजी बोले-उप्रसेनसे इस प्रकार कह [धर्मसंस्थापनादि] कार्यसिद्धिके छिये मनुष्यरूप धारण करनेवाले मगवान् कृष्णने वायुका स्मरण किया और वह उसी समय वहाँ उपस्थित हो गया। तब मगवान्ने उससे कहा-॥ १३॥ "हे वायो । तुम जाओ और इन्द्रसे कहो कि हे वासव! व्यर्थ गर्व छोड़कर तुम उप्रसेनको अपनी सुधर्मा-नामकी समा दो ॥ १४॥ कृष्णचन्द्रकी आज्ञा है कि यह सुधर्मा-समा नामक सर्वोत्तम रह राजांके हो योग्य है इसमें यादवों-का विराजमान होना उपयुक्त है"॥ १५॥

श्रीपराशरजी बोले-भगवान्की ऐसी आज्ञा होने-पर वाशुने यह सारा समाचार इन्द्रसे जाकर कह दिया और इन्द्रने भी तुरन्त ही अपनी सुधर्मा-नामकी सभा वाशुको दे दी ॥१६॥ वाशुद्धारा छायी हुई उस सर्वरह-सम्पन्न दिव्य सभाका सम्पूर्ण यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रकी सुजाओंके आश्रित रहकर भोग करने छगे ॥१०॥

तदनन्तर समस्त विज्ञानोंको जानते हुए और सर्वज्ञान-सम्पन्न होते हुए भी वीरवर कृष्ण और वलराम गुरु-शिष्य-सम्बन्धको प्रकाशित करनेके छिये उपनयन-संस्कारके अनन्तर विद्योपार्जनके छिये कार्शामें उत्पन्न हुए अवन्ति-पुरवासी सान्दीपनि मुनिके यहाँ गये ॥ १८-१९॥ СС-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi, Digitized by eGangori

वेदाभ्यासकृतप्रीती सङ्कर्पणजनार्दनौ । तस्य शिष्यत्वमभ्येत्य गुरुवृत्तिपरौ हि तौ। दर्शयाश्वऋतुर्वीरावाचारमिलले जने ॥२०॥ सरहस्यं धनुर्वेदं ससङ्ग्रहमधीयताम् । अहोरात्रचतुष्पष्ट्या तद्द्धतमभृद्द्विज ॥२१॥ सान्दीपनिरसम्भाव्यं तयोः कर्मातिमाजुपम्। विचिन्त्य तौ तदा मेने प्राप्तौ चन्द्रदिवाकरौ॥२२॥ साङ्गांश्र चतुरो वेदान्सर्वशास्त्राणि चैव हि । अस्त्रप्राममशेषं च प्रोक्तमात्रमवाप्य तौ ॥२३॥ ऊचतुर्त्रियतां या ते दातच्या गुरुदक्षिणा ॥२४॥ सोऽप्यतीन्द्रियमालाक्य तयोः कर्म महामतिः। अयाचत मृतं पुत्रं प्रभासे लवणार्णवे ॥२५॥ गृहीतास्त्रौ ततस्तौ त सार्घ्यहस्तो महोदधिः । उवाच न मया पुत्रो हतस्सान्दीपनेरिति ॥२६॥ दैत्यः पश्चजनो नाम शङ्खरूपस्स वालकम् । जग्राह योऽस्ति सलिले ममैवासुरसद्दन ॥२७॥

श्रीपराशर उवाच
इत्युक्तोऽन्तर्जलं गत्वा हत्वा पश्चजनं च तम् ।
कृष्णो जग्राह तस्यास्थिप्रभवं शङ्खग्रुचमम् ॥२८॥
यस्य नादेन दैत्यानां बलहानिरजायत ।
देवानां वृष्ट्ये तेजो <u>यात्यधर्मश्च</u> सङ्ख्यम् ॥२९॥
तं पाञ्चजन्यमापूर्य गत्वा यमपुरं हरिः ।
बलदेवश्च बलवाञ्चित्वा वैवस्वतं यमम् ॥३०॥
तं बालं यातनासंस्यं यथापूर्वश्चरीरिणम् ।
पित्रे प्रदत्तवान्कृष्णो बलश्च बलिनां वरः ॥३१॥
मशुरां च पुनः प्राप्तानुप्रसेनेन पालिताम् ।

प्रहृष्टपुरुषस्रीकामुमौ रामजनार्दनौ ॥३२॥

बीर संकर्पण और जनार्दन सान्दीपनिका शिष्यत्व खीकारकर वेदाभ्यासपरायण हो यथायोग्य गुरु-शुश्रुपादिमें प्रवृत्त रह सम्पूर्ण लोकोंको यथोचित शिष्टाचार प्रदर्शित करने छगे ॥ २०॥ हे द्विज ! यह वड़े आश्चर्यकी वात हुई कि उन्होंने केवल चौंसठ दिनमें रहस्य (अस्त्रमन्त्रोपनिपत्) और संग्रह (अस्तप्रयोग) के सहित सम्पूर्ण धनुर्वेद सीख लिया ॥ २१ ॥ सान्दीपनिने जब उनके इस असम्भव और अतिमानुप-कर्मको देखा तो यही समझा कि साक्षात् सूर्य और चन्द्रमा ही मेरे घर आ गये हैं ॥ २२ ॥ उन दोनोंने अंगोंसहितं चारों वेद, सम्पूर्ण शास्त्र और सव प्रकारकी अञ्चविद्या एक वार सुनते ही प्राप्त कर ली और फिर गुरुजीसे कहा-"कहिये, आपको क्या गुरु-दक्षिणा दें ?" ॥ २३-२४ ॥ महामति सान्दीपनि-ने उनके अतीन्द्रिय-कर्म देखकर प्रमास-क्षेत्रके खारे समुद्रमें इवकर मरे हुए अपने पुत्रको माँगा ।। २५ ।। तद्नन्तर जब वे शस्त्र ग्रहगकर समुद्रके पास पहुँचे तो समुद्र अर्घ्य छेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुआ और कहा-"मैंने सान्दीपनिका पुत्र हरण नहीं किया ॥ २६ ॥ हे दैत्यदवन ! मेरे जलमें ही पञ्चजन नामक एक दैत्य शंखरूपसे रहता है; उसीने उस वालकको पकड़ लिया था" ॥ २७॥

श्रीपराशरजी बोले-समुद्रके इस प्रकार कहनेपर कृष्णचन्द्रने जलके भीतर जाकर पञ्चजनका वध किया और उसकी अस्थियोंसे उत्पन्न हुए शंखको ले लिया ॥ २८॥ जिसके शब्दसे दैश्योंका वल नष्ट हो जाता है, देवताओंका तेज बढ़ता है और अधर्मका क्षय होता है ॥ २९॥ तदनन्तर उस पाञ्चजन्य शंखको वजाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र और बल्बान् वल्राम यमपुरको गये और सूर्यपुत्र यमको जीतकर यमयातना मोगते हुए उस बाल्कको पूर्ववत् शरीरयुक्तकर उसके पिताको दे दिया ॥ ३०-३१॥

रामजनार्दनौ ॥३२॥ इसके पश्चात् वे राम और कृष्ण राजा उम्रसेनद्वारा परिपालित मथुरापुरीमें, जहाँके स्नी-पुरुप [उनके रामजनार्दनौ ॥३२॥ आगमनसे] आनन्दित हो रहे थे, पघारे॥ ३२॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

बाईसवाँ अध्याय

जरासन्धकी पराजय।

श्रीपराशर उवाच

जरासन्धसुते कंस उपयेमे महाबलः। अस्ति प्राप्ति च मैत्रेय तयोर्भर्तृहणं हरिम् ॥ १ ॥ महाबलपरीवारो मगधाधिपतिर्बली। हन्तुमभ्याययौ कोपाजरासन्धस्सयादवम् ॥ २ ॥ उपेत्य मथुरां सोऽथ रुरोध मगधेश्वरः। अक्षौहिणीभिस्सैन्यस त्रयोविंशतिभिर्वतः॥ ३॥ निष्क्रम्यालपपरीवाराष्ट्रभौ रामजनार्दनौ। युयुघाते समं तस्य बलिनौ बलिसैनिकैः ॥ ४ ॥ ततो रामश्र कृष्णश्र मतिं चक्रतुरञ्जसा । आयुधानां पुराणानामादाने सुनिसत्तम ॥ ५॥ अनन्तरं हरेक्शार्क्न तूणी चाक्षयसायकौ। आकाशादागतौ विप्र तथा कौमोदकी गदा।। ६।। हलं च बलभद्रस्य गगनादागतं महत्। मनसोऽभिमतं विष्र सुनन्दं सुसलं तथा ॥ ७॥ ततो युद्धे पराजित्य ससैन्यं मगधाधिपम् । पुरीं विविशतुर्वीराबुभौ रामजनार्दनौ ॥ ८॥ जिते तसिन्सुदुईते जरासन्धे महासुने। जीवमाने गते कृष्णस्तेनामन्यत नाजितम् ॥९॥ पुनरप्याजगामाथ जरासन्धो बलान्वितः। जितश्र रामकृष्णाभ्यामपकान्तो द्विजोत्तम ॥१०॥ र्द्श चाष्टौ च सङ्ग्रामानेवमत्यन्तदुर्मदः। यदुभिर्मागधो राजा चक्रे कृष्णपुरोगमैः ॥११॥ सर्वेष्वेतेषु युद्धेषु यादवैस्स पराजितः। अपकान्तो जरासन्धस्खल्पसैन्यैर्बलाधिकः ॥१२॥ न तद्वलं याद्वानां विजितं यदनेकशः। तुजु सिन्निधिमाहात्म्यं विष्णोरंशस चिन्नणः॥१३॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! महावली कंसने जरासन्धकी पुत्री अस्ति और प्राप्तिसे विवाह किया था, अतः वह अत्यन्त बलिष्ठ मगधराज क्रोधपूर्वक एक बहुत बड़ी सेना लेकर अपनी पुत्रियोंके खामी कंसको मारनेवाले श्रीहरिको यादवोंके सहित मारनेकी इच्छासे मथुरापर चढ़ आया ॥ १-२॥ मगधेश्वर जरासन्धने तेईस अक्षौहिणी सेनाके सहित आकर मथुराको चारों ओरसे वेर लिया ॥ ३॥

तव महावछी राम और जनार्दन थोड़ी-सी सेनाके साथ नगरसे निकलकर जरासन्थके प्रवल सैनिकोंसे युद्ध करने छो ॥ १॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय राम और कृष्णने अपने पुरातन शक्षोंको प्रहण करनेका विचार किया ॥ ५॥ हे विप्र ! हरिके समरण करते ही उनका शार्क्ष धनुष, अक्षय वाणयुक्त दो तरकश और कौमोदकी-नामकी गदा आकाशसे आकर उपस्थित हो गये ॥ ६॥ हे द्विज ! वलमद्रजीके पास भी उनका मनोवाञ्छित महान् हल और सुनन्द नामक मूसल आकाशसे आ गये ॥ ७॥

तदनन्तर दोनों वीर राम और कृष्ण सेनाके सिंहत मगधराजको युद्धमें हराकर मथुरापुरीमें चले आये ॥ ८॥ हे महामुने ! दुराचारी जरासन्धको जीत लेनेपर भी उसके जीवित चले जानेके कारण कृष्णचन्द्रने अपनेको अपराजित नहीं समझा ॥ ९॥

हे द्विजोत्तम ! जरासन्ध फिर उतनी ही सेना छेकर आया, किन्तु राम और कृष्णसे पराजित होकर भाग गया ॥१०॥ इस प्रकार अत्यन्त दुर्धर्ष मगधराज जरासन्धने राम और कृष्ण आदि यादवोंसे अद्वारह बार युद्ध किया ॥ ११ ॥ इन सभी युद्धोंमें अधिक सैन्यशाळी जरासन्ध योड़ी-सी सेनावाळे यदुवंशियोंसे हारकर भाग गया ॥ १२ ॥ यादवोंकी योड़ी-सी सेना मी जो [उसकी अनेक वड़ी सेनाओंसे] पराजित न हुई, यह सब भगवान् विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णचन्द्रकी सिनिधिका ही माहात्म्य या ॥ १३ ॥

मनुष्यधर्मशीलस लीला सा जगतीपतेः।
अस्नाण्यनेकरूपाणि यदरातिषु ग्रुश्चिति ॥१४॥
मनसैव जगत्सृष्टिं संहारं च करोति यः।
तस्यारिपक्षक्षपणे कियानुद्यमितसरः॥१५॥
तथापि यो मनुष्याणां धर्मस्तमनुवर्तते।
कुर्वन्वलवता सन्धि हीनैर्युद्धं करोत्यसौ॥१६॥
साम चोपप्रदानं च तथा भेदं च दर्शयन्।
करोति दण्डपातं च कचिदेच पलायनम्॥१७॥
मनुष्यदेहिनां चेष्टामित्येवमनुवर्तते।
लीला जगत्पतेस्तस्यच्छन्दतः परिवर्तते॥१८॥

उन मानवधर्मशील जगत्पितिकी यह लीला ही है जो कि ये अपने शत्रुओंपर नाना प्रकारके अख-शक्त छोड़ रहे हैं ॥ १८ ॥ जो केवल संकल्पमात्रसे ही संसारकी उत्पित्त और संहार कर देते हैं उन्हें अपने शत्रुपक्ष-का नाश करनेके लिये मला उद्योग फैलानेकी कितनी आवश्यकता है ! ॥ १५ ॥ तथापि वे बल्बानोंसे सिन्ध और बल्हीनोंसे युद्ध करके मानव-धर्मोंका अनुवर्तन कर रहे थे ॥ १६ ॥ वे कहीं साम, कहीं दान और कहीं मेदनीतिका व्यवहार करते थे तथा कहीं दण्ड देते और कहींसे खर्य माग मी जाते थे ॥ १० ॥ इस प्रकार मानवदेहधारियोंकी चेष्टाओंका अनुवर्तन करते हुए श्रीजगत्पितिकी अपनी इच्छानुसार लीलाएँ होती रहती थीं ॥ १८ ॥

-・ラボのがく・-

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमें इशे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

तेईसवाँ अध्याय

द्वारका-दुर्गकी रचना, कालयवनका भस्म होना तथा मुचुकुन्दकृत भगवत्स्तुति।

श्रीपराशर उवाच

गार्गं गोष्ठचां द्विजं श्यालष्णढ इत्युक्तवान्द्विज ।
यद्नां सिन्नधौ सर्वे जहसुर्यादवास्तदा ॥ १ ॥
ततः कोपपरीतात्मा दक्षिणापथमेत्य सः ।
सुतमिच्छंस्तपस्तेपे यदुचक्रभयावहम् ॥ २ ॥
आराधयन्महादेवं लोहचूर्णममक्षयत् ।
ददौ वरं च तुष्टोऽसै वर्षे तु द्वादशे हरः ॥ ३ ॥
सन्तोषयामास च तं यवनेशो ह्वनात्मजः ।
तद्योपित्सङ्गमाचास्य पुत्रोऽभूदिलसिन्नमः ॥ ४ ॥
तं कालयवनं नाम राज्ये स्वे यवनेश्वरः ।
अभिषिच्य वनं यातो वज्राप्रकठिनोरसम् ॥ ५ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विज ! एक वार महर्षि गार्ग्यसे उनके सालेने यादवोंकी गोष्टीमें नपुंसक कह दिया । उस समय समस्त यदुवंशी हँस पड़े ॥१॥ तब गार्ग्यने अत्यन्त कुपित हो दक्षिण-ससुद्रके तटपर जा यादवसेनाको भयभीत करनेवाले पुत्रकी प्राप्तिके लिये तपस्या की ॥२॥ उन्होंने श्रीमहादेवजीकी उपासना करते हुए केवल लोहचूर्ण भक्षण किया तब भगवान् शंकरने वारहवें वर्षमें प्रसन्न होकर उन्हें अमीष्ट वर दिया ॥ ३॥

एक पुत्रहीन यवनराजने महर्पि गार्भ्यकी अत्यन्त सेवाकर उन्हें सन्तुष्ट किया, उसकी खीके संगसे ही इनके एक मौरिके समान कृष्णवर्ण वालक हुआ ।। ४ ।। वह यवनराज उस काल्यवन नामक बाल्कको, जिसका वक्षःस्थल वज्रके समान कठोर था, अपने राज्यपदपर अमिषिक्त कर खयं वनको चला गया ।। ५ ।। स तु वीर्यमदोन्मत्तः पृथिच्यां बिलनो नृपान् ।

अपृच्छकारदस्तसै कथयामास यादवान् ॥ ६ ॥

म्लेच्छकोटिसहस्राणां सहस्रैस्सोऽभिसंवृतः ।

गजाश्वरथसम्पन्नैश्वकार परमोद्यमम् ॥ ७ ॥

प्रययौ सोऽच्यवच्छिकं छिक्रयानो दिने दिने ।

यादवान्प्रति सामर्थो मैत्रेय मथुरां पुरीम् ॥ ८ ॥

कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षपितं यादवं बलम्।
यवनेन रणे गम्यं मागधस्य भविष्यति ॥ ९॥
मागधस्य बलं श्लीणं स कालयवनो बली।
हन्तैतदेवमायातं यद्नां व्यसनं द्विधा॥१०॥
तसादुदुर्गं करिष्यामि यद्नामरिदुर्जयम्।
स्त्रियोऽपि यत्र युद्धेयुः किं पुनर्श्वष्णपुङ्गवाः॥११॥
मिय मत्ते प्रमत्ते वा सुप्ते प्रवस्तिऽपि वा।
यादवाभिभवं दुष्टा मा कुर्वन्त्वरयोऽधिकाः॥१२॥

इति सिश्चन्त्य गोनिन्दो योजनानां महोदिधम् ।
ययाचे द्वादश पुरीं द्वारकां तत्र निर्ममे ॥१३॥
महोद्यानां महावप्रां तटाकशतशोभिताम् ।
प्रासादगृहसम्बाधामिन्द्रस्येवामरावतीम् ॥१४॥
मथुरावासिनं लोकं तत्रानीय जनार्दनः ।
आसने कालयवने मथुरां च स्वयं ययौ ॥१५॥
बिहरावासिते सैन्ये मथुराया निरायुधः ।
निर्जगाम च गोनिन्दो ददर्श यवनश्च तम् ॥१६॥

तदनन्तर वीर्यमदोन्मत्त कालयवनने नारदजीसे पूछा कि पृथिवीपर वल्लान् राजा कौन-कौन-से हैं ? इसपर नारदजीने उसे यादवोंको हो सबसे अधिक वलशाली बतलाया ॥ ६॥ यह सुनकर कालयवनने हजारों हाथी, घोड़े और रथोंके सिहत सहस्रों करोड़ म्लेच्छ-सेनाको साथ ले वड़ी मारी तैयारी की ॥ ७॥ और यादवोंके प्रति कृद्ध होकर वह प्रतिदिन [हाथी, घोड़े आदिके थक जाने-पर] उन वाहनोंका त्यागकरता हुआ [अन्य वाहनों-पर चढ़कर] अविच्छिन्न-गितसे मथुरापुरीपर चढ़ आया ॥ ८॥

[एक ओर जरास-धका आक्रमण और दूसरी ओर काल्यवनकी चढ़ाई देखकर] श्रीकृष्णचन्द्रने सोचा— "यवनोंके साथ युद्ध करनेसे क्षीण हुई यादव-सेना अवस्य ही मगधनरेशसे पराजित हो जायगी ॥९॥ और यदि प्रथम मगधनरेशसे ज्इते हैं तो उससे क्षीण हुई यादवसेनाको बल्लवान् काल्यवन नष्ट कर देगा। हाय! इस प्रकार यादवोंपर [एक ही साथ] यह दो तरहकी आपत्ति आ पहुँची है॥१०॥ अतः मैं यादवोंके लिये एक ऐसा दुर्जय दुर्ग तैयार कराता हूँ जिसमें वैठकर वृष्णिश्रेष्ठ यादवोंकी तो बात ही क्या है, ख्रियाँ भी युद्ध कर सकें ॥ ११॥ उस दुर्गमें रहनेपर यदि मैं मत्त, प्रमत्त (असावधान), सोया अथवा कहीं बाहर भी गया होऊँ तब भी,अधिक-से-अधिक दुष्ट शत्रु गण भी यादवोंको पराभूत न कर सकें"॥ १२॥

ऐसा विचारकर श्रीगोविन्दने समुद्रसे बारह योजन भूमि माँगी और उसमें द्वारकापुरी निर्माण की ॥१३॥ जो इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान महान् उद्यान, गहरी खाई, सैकड़ों सरोवर तथा अनेकों महलेंसे सुशोमित थी॥१४॥ काल्यवनकों समीप आ जानेपर श्रीजनार्दन सम्पूर्ण मथुरानिवासियोंको द्वारकामें ले आये और फिर खयं मथुरा लौट गये॥१५॥ जब काल्यवनकी सेनाने मथुराको घेर लिया तो श्रीकृष्णचन्द्र बिना शक्ष लिये मथुरासे बाहर निकल आये। तब यवनराज काल्यवनने उन्हें देखा॥१६॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangoni देखा ॥ १६॥

स ज्ञात्वा वासुदेवं तं बाहुप्रहरणं नृपः। अनुयातो महायोगिचेतोभिः प्राप्यते न यः ॥१७॥ तेनाजुयातः कृष्णोऽपि प्रविवेश महागुहाम्। यत्र शेते महावीर्यो मुचुकुन्दो नरेश्वरः ॥१८॥ सोऽपि प्रविष्टो यवनो दृष्ट्वा श्रय्यागतं नृपम् । पादेन ताडयामास मंत्वा कृष्णं सुदुर्मतिः।।१९॥ उत्थाय मुचुकुन्दोऽपि ददर्श यवनं नृपः ॥२०॥ दृष्टमात्रश्च तेनासौ जज्वाल यवनोऽग्निना । तत्कोधजेन मैत्रेय मसीभृतश्च तत्क्षणात् ॥२१॥ स हि देवासुरे युद्धे गतो हत्वा महासुरान् । निद्रार्त्तस्सुमहाकालं निद्रां वन्ने वरं सुरान् ॥२२॥ श्रोक्तश्च देवैस्संसुप्तं यस्त्वासुत्थापयिष्यति । देहजेनामिना सद्यस्स तु भस्मीभविष्यति ॥२३॥

एवं दग्ध्वा स तं पापं दृष्ट्वा च मधुसूद्रनंम् । कस्त्वमित्याह सोऽप्याह जातोऽहं शशिनः कले। वसदेवस्य तनयो यदोर्वशसमुद्भवः ॥२४॥ मुचुकुन्दोऽपि तत्रासौ वृद्धगार्ग्यवचोऽसरत्।२५। संस्थृत्य प्रणिपत्यैनं सर्वं सर्वेश्वरं इरिम्। प्राह ज्ञातो भवान्विष्णोरंशस्त्वं परमेश्वर ॥२६॥ पुरा गार्ग्येण कथितमष्टाविंशतिमे युगे। द्वापरान्ते हरेर्जन्म यदुवंशे भविष्यति ॥२७॥ स त्वं प्राप्तो न सन्देहा मर्त्यानाग्रुपकारकृत् । तथापि सुमहत्तेजो नालं सोद्धमहं तव ॥२८॥ तथा हि सजलाम्मोदनादधीरतरं तव। वाक्यं नमति चैवोर्वी युष्मत्पादप्रपीड़िता ॥२९॥ आपके चरणोंसे पीड़िता होकर पृथिवी झुकी हुई है॥२९॥

महायोगी खरोंका चित्त भी जिन्हें प्राप्त नहीं कर पाता उन्हीं वासुदेवको केवल वाहुरूप शस्त्रोंसे ही युक्त [अर्थात् खाळी हाथ] देखकर वह उनके पीछे दौडा ॥ १७ ॥

काल्यवनसे पीछा किये जाते इए श्रीकृष्णचन्द्र उस महा गुहामें घुस गये जिसमें महावीर्यशाली राजा मुचुकुन्द सो रहा था॥ १८॥ उस दुर्मति यवनने भी उस गुफामें जाकर सोये हुए राजाको कृष्ण समझकर छात मारी ॥ १९॥ उसके छात मारनेसे उठकर राजा मुचुकुन्दने उस यवनशंजको देखा । हे मैत्रेय ! उनके देखते ही वह यवन उसकी क्रोधाग्निसे जलकर भस्मीभूत हो गया ॥ २०-२१॥

पूर्वकालमें राजा मुचुकुन्द देवताओंकी ओरसे देवासुर-संग्राममें गये थे; असुरोंको मार चुकनेपर अत्यन्त निद्राछ होनेके कारण उन्होंने देवताओंसे वहुत समयतक सोनेका वर माँगा था ॥ २२ ॥ उस समय देवताओंने कहा था कि तुम्हारे शयन करनेपर तुम्हें जो कोई जगावेगा वह तुरन्त ही अपने शरीरसे उत्पन्न हुई अग्निसे जलकर भस्म हो जायगा ॥ २३॥

इस प्रकार पापी काल्यवनको दग्ध कर चुकनेपर राजा मुचुकुन्दने श्रीमधुसूदनको देखकर पृछा 'आप कौन हैं ?' तव भगवान्ने कहा-"मैं चन्द्रवंशके अन्त-र्गत यदुकुलमें वसुदेवजीके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ हूँ"।२४। तव मुचुकुन्दको वृद्ध गार्ग्य मुनिके वचनोंका स्मरण हुआ । उनका स्मरण होते ही उन्होंने सर्वरूप सर्वे-यर श्रीहरिको प्रणाम करके कहा-"हे परमेश्वर ! मैंने आपको जान लिया है; आप साक्षात् भगवान विष्णुके अंश हैं॥२५-२६॥ पूर्वकालमें गार्य मुनिने कहा था कि अट्टाईसर्वे युगमें द्वापरके अन्तमें यदुकुलमें श्रीहरिका जन्म होगा ॥२७॥ निस्सन्देह आप भगवान् विष्णके अंश हैं और मनुष्योंके उपकारके छिये ही अवतीर्ण हुए हैं तथापि मैं आपके महान् तेजको सहन करनेमें समर्थ नहीं हूँ ॥२८॥ हे भगवन् ! आपका शब्द सजल मेघकी घोर गर्जनाके समान अति गम्भीर है तथा

देवासुरमहायुद्धे दैत्यसैन्यमहाभटाः। न सेहुर्मम तेजस्ते त्वत्तेजो न सहाम्यहम् ॥३०॥ संसारपतितस्यैको जन्तोस्त्वं शरणं परम्। प्रसीद त्वं प्रपन्नार्तिहर नाश्य मेऽशुभम् ॥३१॥

त्वं पयोनिधयक्शैलसरितस्त्वं वनानि च । मेदिनी गगनं वायुरापोऽग्निस्त्वं तथा मनः ॥३२॥ बुद्धिरव्याकृतप्राणाः प्राणेशस्त्वं तथा पुमान्। पुंसः परतरं यच व्याप्यजन्मविकारवत्।।३३।। शब्दादिहीनमजरममेयं क्षयवर्जितम् । अवृद्धिनाशं तद्रह्म त्वमाद्यन्तविवर्जितम् ॥३४॥ त्वचोऽमरास्सपितरो यक्षगन्धर्वकिन्नराः। सिद्धाश्राप्सरसस्त्वत्तो मनुष्याः पश्चवः खगाः।३५। सरीस्रुपा सृगास्सर्वे त्वत्तस्सर्वे महीरुहाः। यच भूतं भविष्यं च किश्चिदत्र चराचरम्।।३६॥ मृतीमृत तथा चापि स्थूलं सक्ष्मतरं तथा । तत्सर्वं त्वं जगत्कर्ता नास्ति किश्चित्त्वया विना।३७।

मया संसारचक्रेऽसिन्ध्रमता भगवन् सदा। तापत्रयाभिभूतेन न प्राप्ता निर्देतिः क्वचित् ॥३८॥ दुःखान्येव सुखानीति मृगतृष्णा जलाशया। मया नाथ गृहीतानि तानि तापाय मेऽभवन् ॥३९॥ राज्यमुर्वी वलं कोशो मित्रपक्षस्तथात्मजाः। भार्या भृत्यजनो ये च शब्दाद्या विषयाः प्रभा।४०। सुखबुद्धचा मया सर्वे गृहीतमिदमञ्ययम् । 'परिणामे तदेवेश तापात्मकमभून्मम ॥४१॥ देवलोकगतिं प्राप्तो नाथ देवगणोऽपि हि। मत्तरसाहाय्यकामोऽभूच्छाश्वती कुत्र निर्वृतिः।४२। त्वामनाराध्य जगतां सर्वेषां प्रभवास्पदम् ।

हे देव ! देवासुर-महासंग्राममें दैत्य-सेनाके वड़े-बड़े योद्धागण भी मेरा तेज नहीं सह सके थे और मैं आपका तेज सहन नहीं कर सकता ॥ ३०॥ संसारमें पतित जीवोंके एकमात्र आप ही परम आश्रय हैं। हे शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले ! आप प्रसन्त होइये और मेरे अमंगलोंको नष्ट कीजिये ॥३१॥

आप ही समुद्र हैं, आप ही पर्वत हैं, आप ही नदियाँ हैं और आप ही वन हैं तथा आप ही पृथिवी, आकारा, वायु, जल, अग्नि और मन हैं ॥३२॥ आप ही बुद्धि, अन्याकृत, प्राण और प्राणींका अधिष्ठाता पुरुष हैं; तथा पुरुषसे भी परे जो व्यापक और जन्म तथा विकारसे शून्य तत्त्व है वह भी आप ही हैं॥३३॥ जो शब्दादिसे रहित, अजर, अमेय, अक्षय और नाश तथा वृद्धिसे रहित है वह आचन्तहीन ब्रह्म भी आप ही हैं॥ ३४॥ आपहीसे देवता, पितृगण, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध और अप्सरागण उत्पन्न हुए हैं। आपहींसे मनुष्य, पश्च, पक्षी, सरीसृप और मृग आदि हुए हैं तथा आपहींसे सम्पूर्ण वृक्ष और जो कुछ भी भूत-भविष्यत् चराचर जगत् है वह सब हुआ है ॥३५-३६॥ हे प्रमो ! मूर्त-अमूर्त, स्थूल-सूक्ष्म तथा और भी जो कुछ है वह सब आप जगत्-कर्ता ही हैं, आपसे मिन्न और कुछ मी नहीं है ॥३०॥

हे भगवन् ! तापत्रयसे अभिभूत होकर सर्वदा इस संसार-चक्रमें भ्रमण करते हुए मुझे कमी शान्ति प्राप्त नहीं हुई ॥ ३८ ॥ हे नाथ ! जलकी आशासे मृग-तृष्णाके समान मैंने दुःखोंको ही सुख समझकर प्रहण किया था; परन्तु वे मेरे सन्तापके ही कारण हुए ॥ ३९॥ हे प्रमो ! राज्य, पृथिवी, सेना, कोश, मित्रपक्ष, पुत्रगण, स्त्री तथा सेवक आदि और शब्दादि विषय इन सवको मैंने अविनाशी तथा सुख-बुद्धिसे ही अपनाया था; किन्तुं हे ईश ! परिणाममें वे ही दुःखरूप सिद्ध हुए ॥ ४०-४१ ॥ हे नाथ ! जब देवलोक प्राप्त करके भी देवताओंको मेरी सहा-यताकी इच्छा हुई तो उस (स्वर्गलोक) में भी नित्य-शान्ति कहाँ है ! ॥४२॥ हे परमेश्वर ! सम्पूर्ण जगत्-की उत्पत्तिके आदि-स्थान आपकी आराधना किये शाश्वती प्राप्यते केन परमेश्वर निर्देतिः ॥४३॥ विना कौन शाश्वत आदित अपना आराधना किय

त्वन्मायामूढमनसो जन्ममृत्युजरादिकान् ।
अवाप्य तापान्पश्यन्ति प्रेतराजमनन्तरम् ॥४४॥
ततो निजिक्रियास्ति नरकेष्वतिदारुणम् ।
प्राप्तुवन्ति नरा दुःखमखरूपविदत्तव ॥४५॥
अहमत्यन्तविपयी मोहितस्तव मायया ।
ममत्वगर्वगर्त्तान्तर्भ्रमामि परमेश्वर ॥४६॥
सोऽहं त्वां शरणमपारमप्रमेयं
सम्प्राप्तः परमपदं यतो न किश्चित् ।
संसारभ्रमपरितापतप्तचेता
निर्वाणे परिणतधाम्नि सामिलापः ॥४७॥

हे प्रभो ! आपकी मायासे मृद हुए पुरुष जन्म, मृत्यु और जरा आदि सन्तापोंको भोगते हुए अन्तमें यमराजका दर्शन करते हैं ॥४४॥ आपके खरूपको न जाननेवाछे पुरुष नरकोंमें पड़कर अपने कर्मोंके फलखरूप नाना प्रकारके दारुण क्लेश पाते हैं ॥४५॥ हे परमेश्वर ! मैं अत्यन्त विषयी हूँ और आपकी मायासे मोहित होकर ममत्वाभिमानके गड्देमें मटकता रहा हूँ ॥४६॥ वही मैं आज अपार और अप्रमेय परमपदरूप आप परमेश्वरकी शरणमें आया हूँ जिससे भिन्न दूसरा कुछ भी नहीं है, और संसारस्रमणके खेदसे खिन्न-चित्त होकर मैं निरतिशयतेजोमय निर्वाणस्वरूप आपका ही अभिलाषी हूँ"॥४०॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चौबीसवाँ अध्याय

मुचुकुन्द्का तपस्याके लिये प्रस्थान और बलरामजीकी वजयात्रा।

श्रीपराशर उवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन ग्रुचुकुन्देन धीमता। प्राहेशः सर्वभूतानामनादिनिधनो हरिः॥१॥

श्रीभगवानुवाच

यथाभिवाञ्छितान्दिञ्यान्गञ्छ लोकान्नराघिप । अञ्याहतपरैश्वर्यो मत्त्रसादोपदृहितः ॥ २ ॥ अक्त्वा दिञ्यान्महाभोगान्मविष्यसि महाकुले । जातिसरो मत्त्रसादात्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ ३ ॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्येशं जगतामच्युतं नृपः ।
गुहाम्रुखाद्विनिष्क्रान्तस्स ददशील्पकान्तरान् ॥४॥
ततः कलियुगं मत्वा प्राप्तं तप्तुं नृपत्तपः ।
नरनारायणस्थानं प्रययो गन्धमादनम् ॥ ५ ॥
कृष्णोऽपि घातयित्वारिम्रुपायेन हि तद्वलम् ।
जग्राह मथुरामेत्य हस्त्यश्वस्यन्दनोज्ज्वलम् ॥ ६ ॥

श्रीपराशरजी बोले-परम बुद्धिमान् राजा मुचु-कुन्दके इस प्रकार स्तुति करनेपर सर्व मूर्तोके ईश्वर अनादिनिधन मगवान् हरि बोले॥ १॥

श्रीमगवान्ते कहा-हे नरेश्वर ! तुम अपने अभि-मत दिव्य लोकोंको जाओ; मेरी कृपासे तुम्हें अव्याहत परम ऐश्वर्य प्राप्त होगा ॥ २ ॥ वहाँ अत्यन्त दिव्य भोगोंको मोगकर तुम अन्तमें एक महान् कुलमें जन्म लोगे, उस समय तुम्हें अपने पूर्वजन्मका स्मरण रहेगा और फिर मेरी कृपासे तुम मोक्षपद प्राप्त करोगे ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले-मगवान्के इस प्रकार कहने-पर राजा मुचुकुन्दने जगदीश्वर श्रीअच्युतको प्रणाम किया और गुफासे निकलकर देखा कि लोग बहुत छोटे-छोटे हो गये हैं ॥ १ ॥ उस समय कल्यिगको वर्तमान समझकर राजा तपस्या करनेके लिये श्रीनर-नारायणके स्थान गन्धमादनपर्वतपर चले गये ॥ ५ ॥ इस प्रकार कृष्णचन्द्रने उपायपूर्वक शत्रुको नष्टकर फिर मथुरामें आ उसकी हाथी, घोड़े और रथादि- आनीय चोप्रसेनाय द्वारवत्यां न्यवेदयत् । परामिभवनिश्शक्कं बभूव च यदोः कुलम् ॥ ७॥

बलदेवोऽपि मैत्रेय प्रशान्ताखिलविग्रहः।
ज्ञातिदर्शनसोत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम्।।८।।
ततो गोपांत्र गोपीत्र यथा पूर्वमिनत्रजित्।
तथैवाम्यवदत्त्रेमणा बहुमानपुरस्सरम्।।९।।
स कैश्रित्सम्परिष्वक्तः कांश्रिच परिषखजे।
हास्यं चके समं कैश्रिद्रोपैगींपीजनैस्तथा।।१०।।
प्रियाण्यनेकान्यवदन् गोपास्तत्र हलायुधम्।
गोप्यश्र प्रेमकुपिताः प्रोचुस्सेर्ष्यमथापराः।।११॥

गोप्यः पत्रच्छुरपरा नागरीजनवस्त्रभः। कचिदास्ते सुखं कृष्णश्रलप्रेमलवात्मकः ॥१२॥ असचेष्टामपहसन कचित्पुरयोषिताम्। सौभाग्यमानमधिकं करोति क्षणसौहृदः।।१३॥ कचित्सारति नः कृष्णो गीतानुगमनं कलम्। अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सक्रद्प्यागमिष्यति ॥१४॥ अथवा किं तदालापैः कियन्तामपराः कथाः। यसासाभिर्विना तेन विनासाकं भविष्यति॥१५॥ पिता माता तथा आता भर्ता वन्धुजनश्र किम्। सन्त्यक्तस्तत्कृतेऽसामिरकृतज्ञध्वजो हि सः ॥१६॥ किचदालापिमहागमनसंश्रयम्। तथापि करोति कृष्णो वक्तव्यं भवता राम नानृतम् ॥१७॥ दामोदरोऽसौ गोविन्दः पुरस्रीसक्तमानसः। अपेतप्रीतिरसासु दुर्दर्शः प्रतिभाति नः ॥१८॥ श्रीपराशर उवाच आमन्त्रितश्च कृष्णेति पुनर्दामोदरेति च।

से सुशोमित सेनाको अपने वशीभूत किया और उसे द्वारकामें छाकर राजा उप्रसेनको अर्पण कर दिया। तबसे यदुवंश शत्रुओंके दमनसे निःशंक हो गया॥६-७॥

हे मैत्रेय! इस सम्पूर्ण विग्रहके शान्त हो जानेपर बळदेवजी अपने बान्धवोंके दर्शनकी उत्कण्ठासे नन्दजीके गोकुळको गये ॥८॥ वहाँ पहुँचकर शत्रुजित् बळमद्र-जीने गोप और गोपियोंका पहलेहीकी माँति अति आदर और प्रेमके साथ अभिवादन किया॥९॥ किसीने उनका आलिङ्गन किया और किसीको उन्होंने गले लगाया तथा किन्हीं गोप और गोपियोंके साथ उन्होंने हास-परिहास किया॥१०॥ गोपोंने वलराम-जीसे अनेकों प्रिय वचन कहे तथा गोपियोंमेंसे कोई प्रणयक्रिपत होकर वोलीं और किन्हींने उपालम्भयक्त बातें की ॥११॥

किन्हीं अन्य गोपियोंने पृछा—चञ्चल एवं अल्प प्रेम करना ही जिनका स्वभाव है, वे नगर-नारियोंके प्राणाधार कृष्ण तो आनन्दमें हैं न ! ॥१२॥ वे क्षणिक स्नेह्वाछे नन्दनन्दन हमारी चेष्टाओंका उपहास करते हुए क्या नगरकी महिलाओंके सौभाग्यका मान नहीं बढ़ाया करते ? ॥१३॥ क्या कृष्णचन्द्र कभी हमारे गीतानुयायी मनोहर खरका स्मरण करते हैं ? क्या वे एक बार अपनी माताको भी देखनेके लिये यहाँ आवेंगे ? ॥१४॥ अथवा अब उनकी वात करनेसे हमें क्या प्रयोजन है, कोई और बात करो। जब उनकी हमारे बिना निभ गयी तो हम भी उनके बिना निभा ही छेंगी ॥१५॥ क्या माता, क्या पिता, क्या बन्धु, क्या पति और क्या कुटुम्बके छोग ? हमने उनके लिये सभीको छोड़ दिया, किन्तु वे तो अकृतज्ञोंकी घ्वजा ही निकले ॥१६॥ तथापि बलराम-जी ! सच-सच बतलाइये क्या कृष्ण कभी यहाँ आनेके विषयमें भी कोई बातचीत करते हैं ? ॥१७॥ हमें ऐसा प्रतीत होता है कि दामोदर कृष्णका चित्त नागरी नारियोंमें फँस गया है; हममें अव उनकी प्रीति नहीं है, अतः अब हमें तो उनका दर्शन दुर्लभ ही जान पड़ता है ॥१८॥

श्रीपराशरजी बोले-तदनन्तर श्रीहरिने जिनका चित्त हर लिया है वे गोपियाँ बलरामजीको कृष्ण जहसुस्तखरं गोप्यो हरिणा हृतचेतसः ॥१९॥ सन्देशैस्ताममधुरैः प्रेमगर्भरगिवतैः । रामेणाश्वासिता गोप्यः कृष्णसातिमनोहरैः ॥२०॥ गोपैश्व पूर्ववद्रामः परिहासमनोहराः । कथाश्रकार रेमे च सह तैर्वजभूमिषु ॥२१॥

और दामोदर कहकर सम्बोधन करने छगीं और फिर उच्च खरसे हँसने छगीं ॥१९॥ तव वछभद्रजीने कृष्णचन्द्रका अति मनोहर और शान्तिमय, प्रेमगर्भित और गर्वहीन सन्देश सुनाकर गोपियोंको सान्त्वना दी ॥२०॥ तथा गोपोंके साथ हास्य करते हुए उन्होंने पहछेकी भाँति वहुत-सी मनोहर वार्ते की और उनके साथ वजमूमिमें नाना प्रकारकी छीछाएँ करते रहे ॥२१॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे चतुर्विशोऽध्यायः ॥२४॥

पचीसवाँ अध्याय

वलमद्रजीका व्रज-विहार तथा यमुनाकर्णण।

श्रीपराशर उवाच

वने विचरतस्तस्य सह गोपैर्महात्मनः। शेषस्य धरणीधृतः ॥ १ ॥ मानपञ्छबरूपस्य निष्पादितोरुकार्यस कार्येणोर्वीप्रचारिणः। उपभोगार्थमत्यर्थं वरुणः प्राह वारुणीम् ॥ २ ॥ अभीष्टा सर्वदा यस मदिरे त्वं महौजसः । अनन्तस्योपभोगाय तस्य गच्छ मुदे शुभे ॥ ३ ॥ इत्युक्ता वारुणी तेन सन्निधानमथाकरोत । वृन्दावनसम्रत्प**ञक**दम्वतरुकोटरे 11811 विचरन् वलदेवोऽपि मदिरागन्धग्रुत्तमम्। मदिरातर्षमवापाथ वराननः ॥ ५॥ ततः कदम्वात्सहसा मद्यधारां स लाङ्गली । पतन्तीं वीक्ष्य मैत्रेय प्रययौ परमां मुद्रम् ॥ ६ ॥ पपौ च गोपगोपीभिस्सम्रपेतो मुदान्वितः । प्रगीयमानो ललितं गीतवाद्यविद्यारदैः॥७॥ स मत्तोऽत्यन्तधर्माम्भःकणिकामौक्तिकोज्ज्वलः ।

श्रीपराशरजी बोले-अपने कार्योंसे पृथिवीको विचलित करनेवाले, बड़े विकट कार्य करनेवाले, धरणीधर रोपजीके अवतार माया-मानवरूप महात्मा वल्रामजीको गोपोंके साथ वनमें विचरते देख उनके उपमोगके छिये वरुणने वारुणी (मदिरा) से कहा--।।१-२॥ "हे मदिरे ! जिन महावलशाली अनन्त देवको तुम सर्वदा प्रिय हो; हे शुमे ! तुम उनके उपभोग और प्रसन्नताके छिये जाओ" ॥३॥ वरुणकी ऐसी आज्ञा होनेपर वारुणी वृन्दावनमें उत्पन्न हुए कदम्ब-बृक्षके कोटर्मे रहने छगी॥४॥ तव मनोहर मुखवाले वलदेवजीको वनमें विचरते हुए मदिराकी अति उत्तम गन्ध सूँवनेसे उसे पीनेकी इच्छा हुई ॥५॥ हे मैत्रेय ! उसी समय कदम्बसे मद्य-की धारा गिरती देख हलधारी वलरामजी वड़े प्रसन्न हुए ॥६॥ तया गाने-बजानेमें कुशल गोप और गोपियोंके मधुर खरसे गाते हुए उन्होंने उनके साथ प्रसन्तता-पूर्वक मद्यपान किया ॥७॥

स मत्तोऽत्यन्तधर्माम्भःकणिकामौक्तिकोज्ज्वलः । तदनन्तर अत्यन्त धामके कारण स्वेद-विन्दुरूप मोतियोंसे सुशोमित मदोन्मत्त बलरामजीने विद्वल आगच्छ यसुने स्नातुमिच्छामीत्याह विद्वलः॥ ८॥ होकर कहा—''यसुने ! आ, मैं स्नान करना चाहता

तस्य वाचं नदी सा तु मत्तोक्तामवमत्य वै ।
नाजगाम ततः क्रुद्धो हलं जग्राह लाङ्गली ॥ ९ ॥
गृहीत्वा तां हलान्तेन चकर्ष मद्विह्वलः ।
पापे नायासि नायासि गम्यतामिच्छयान्यतः ।१०।
साक्रष्टा सहसा तेन मार्ग सन्त्यच्य निम्नगा ।
यत्रास्ते बलभद्रोऽसौं ष्ठावयामास तद्वनम् ॥११॥

शरीरिणी तदाम्येत्य त्रासिवह्वललोचना ।
प्रसीदेत्यत्रवीद्रामं ग्रुश्च मां ग्रुसलायुध ॥१२॥
ततस्त्रस्याः सुवचनमाकण्ये स हलायुधः ।
सोऽत्रवीद्वजानासि मम शौर्यवले निद् ।
सोऽहं त्वां हलपातेन नियष्यामि सहस्रधा ॥१३॥
श्रीपराशर जवाच

इत्युक्तयातिसन्त्रासात्तया नद्या प्रसादितः ।
भूभागे प्राविते तिस्तन्ध्रमोच यम्रुनां बलः ॥१४॥
ततस्त्रातस्य वै कान्तिरजायत महात्मनः ॥१५॥
अवतंसोत्पलं चारु गृहीत्वैकं च कुण्डलम् ।
वरुणप्रहितां चास्त मालामम्लानपङ्कजाम् ।
सम्रुद्रामे तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत ॥१६॥
कृतावतंसस्स तदा चारुकुण्डलभूषितः ।
नीलाम्बरधरस्त्रग्वी ग्रुग्धमे कान्तिसंयुतः ॥१७॥
इत्थं विभूषितो रेमे तत्र रामस्तथा व्रजे ।
मासद्वयेन यातश्र स पुनर्द्वारकां पुरीम् ॥१८॥
रेवतीं नाम तनयां रैवतस्य महीपतेः ।
उपयेमे बलस्तस्यां जज्ञाते निश्चठोल्युकौ ॥१९॥

हूँ" ।।८॥ उनके वाक्यको उन्मत्तका प्रलाप समझकर यमुनाने उसपर कुछ मी ध्यान न दिया और वह वहाँ न आयी । इसपर हल्धरने क्रोधित होकर अपना हल उठाया ॥९॥ और मदसे विह्वल होकर यमुनाको हल्की नोकसे पकड़कर खींचते हुए कहा—"अरी पापिनि ! तू नहीं आती थी! अच्छा, अब यदि शक्ति हो तो] इच्छानुसार अन्यत्र जा तो सही ॥१०॥ इस प्रकार बल्रामजीकें खींचनेपर यमुनाने अकस्मात् अपना मार्ग छोड़ दिया और जिस वनमें वल्रामजी खड़े थे उसे आधावित कर दिया ॥११॥

तव वह शरीर धारणकर बलरामजीके पास आयी और भयवश डवडवाती आँखोंसे कहने लगी—''हे मुसलायुध ! आप प्रसन्न होइये और मुझे छोड़ दीजिये'' ॥१२॥ उसके उन मधुर वचनोंको सुनकर हलायुध बलभद्रजीने कहा—''अरी नदि! क्या तू मेरे बल-वीर्यकी अवज्ञा करती है १ देख, इस हलसे मैं अभी तेरे हजारों टुकड़े कर डालूँगा ॥१३॥

श्रीपराशरजी बोले-बलरामजीद्वारा इस प्रकार कहीं जानेसे भयमीत हुई यमुनाके उस भू-भागमें बहने छगनेपर उन्होंने प्रसन्न होकर उसे छोड़ दिया ॥१४॥ उस समय स्नान करनेपर महात्मा बळरामजीकी अत्यन्त शोभा हुई। तव छक्ष्मीजीने [सशरीर प्रकट होकर] उन्हें एक सुन्दर कर्णफूल, एक कुण्डल, एक वरुणकी मेजी हुई कमी न कुम्हलानेवाले कमल-पुष्पोंकी माला और दो समुद्रके समान कान्तिवाछे नीछवर्ण वस्त्र दिये ॥१५-१६॥ उन कर्णफ़्ल, सुन्दर कुण्डल, नीलम्बर और पुष्प-मालाको धारणकर श्रीबलरामजी अतिशय कान्तियुक्त हो सुशोमित होने छगे ॥१७॥ इस प्रकार विभूषित होकर श्रीबलमद्दजीने व्रजमें अनेकों छीछाएँ की और फिर दो मास पश्चात् द्वारकापुरीको चले आये ॥१८॥ वहाँ आकर बलदेव-जीने राजा रेवतकी पुत्री रेवतीसे विवाह किया; उससे उनके निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र हुए ॥१९॥

ं इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमें ऽशे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

छन्बीसवाँ अध्याय

रुक्मिणी-हरण।

श्रीपराशर उवाच

भीष्मकः कुण्डिने राजा विदर्भविपयेऽभवत् । रुक्मी तस्याभवत्पुत्रो रुक्मिणी च वरानना ॥ १ ॥ रुक्मिणीं चकमे कृष्णस्सा च तं चारुहासिनी । न ददौ याचते चैनां रुक्मी द्वेषेण चक्रिणे ॥ २ ॥ ददौ च शिश्चपालाय जरासन्धप्रचोदितः। भीष्मको रुक्मिणा सार्ड रुक्मिणीम्रुरुविक्रमः ॥३॥ विवाहार्थं ततः सर्वे जरासन्धम्रखा नृपाः । भीष्मकस्य पुरं जग्मुहिश्रश्चपालिप्रयैषिणः ॥ ४ ॥ कृष्णोऽपि बलभद्राद्यैर्यदुभिः परिवारितः। प्रययो कुण्डिनं द्रष्टुं विवाहं चैद्यभूमृतः॥५॥ श्वोमामिनि विवाहे तु तां कन्यां हतवान्हरिः । विपश्चभारमासज्य रामादिष्वथ वन्धुषु ॥ ६ ॥ ततश्र पौण्ड्रकश्श्रीमान्दन्तवक्रो विद्र्यः। शिश्चपालजरासन्धशाल्वाद्याश्च महीभृतः ॥ ७॥ कुपितास्ते हीरं हन्तुं चक्रुरुद्योगग्रुत्तमम्। निर्जिताश्र समागम्य रामाधैर्यदुपुङ्गवैः॥८॥ क्रण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि हाहत्वा युधि केशवम् । कृत्वा प्रतिज्ञां रुक्मी च हन्तुं कृष्णम् नुद्वतः ॥ ९॥ इत्वा बलं सनागाश्वं पत्तिखन्दनसङ्खलम् । निर्जितः पातितश्रोर्व्यां लीलयैव स चक्रिणा ॥१०॥ निर्जित्य रुक्मिणं सम्यगुपयेमे च रुक्मिणीम् । राक्षसेन विवाहेन सम्प्राप्तां मधुद्धदनः ॥११॥

श्रीपराशरजी बोले-विदर्भदेशान्तर्गत कुण्डिनपर नामक नगरमें भीष्मक नामक एक राजा थे। उनके रुक्मी नामक पुत्र और रुक्मिणी-नामकी एक समुखी कन्या थी ॥१॥ श्रीकृष्णने रुक्मिणीकी और चारु-हांसिनी रुक्मिणीने श्रीकृष्णचन्द्रकी अभिलापा की, किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके प्रार्थना करनेपर भी उनसे द्वेष करनेके कारण रुक्मीने उन्हें रुक्मिणी न दी ॥२॥ महापराक्रमी भीष्मकने जरासन्धकी प्रेरणासे रुक्मीसे सहमत होकर शिश्चपालको रुक्मिणी देनेका निश्चय किया ॥३॥ तत्र शिञ्चपालके हितैषी जरासन्ध आदि सम्पूर्ण राजागण विवाहमें सम्मिटित होनेके लिये भीष्मकके नगरमें गये ॥४॥ इधर वलमद्र आदि यदुवंशियोंके सहित श्रीकृष्णचन्द्र भी चेदिराजका विवाहोत्सव देखनेके छिये कुण्डिनपुर आये ॥५॥

तदनन्तर विवाहका एक दिन रहनेपर अपने विपक्षियोंका भार वलभद्र आदि वन्धुओंको सौंपकर श्रीहरिने उस कन्याका हरण कर लिया ॥६॥ तव श्रीमान् पौण्डक, दन्तवक्र, विदूर्य, शिशुपाछ, जरासन्ध और शाल्व आदि राजाओंने क्रोधित होकर श्रीहरिको मारनेका महान् उद्योग किया, किन्तु वे सब बलराम आदि यदुश्रेष्ठोंसे मुठभेड़ होनेपर पराजित हो गये ॥७-८॥ तत्र रुक्मीने यह प्रतिज्ञाकर कि 'मैं युद्धमें कृष्णको मारे विना कुण्डिनपुरमें प्रवेश न करूँगा' कृष्णको मारनेके लिये उनका पीछा किया।।९॥ किन्त श्रीकृष्णने डीठासे ही हाथी, घोड़े, रय और पदातियोंसे युक्त उसकी सेनाको नष्ट करके उसे जीत लिया और पृथिवीमें गिरा दिया ॥१०॥

इस प्रकार रुक्मीको युद्धमें परास्तकर श्रीमधुसूदनने राक्षस-विवाहसे मिछी हुई रुक्मिणीका सम्यक (वेदोक्त) रीतिसे पाणिप्रहण किया ॥ ११ ॥ उससे उनके कामदेवके अंशसे उत्पन्न हुए वीर्यवान् प्रचन्न-तस्यां जज्ञे च प्रद्युम्नो मद्नांशस्सवीर्यवान् । । उनके कामदेवक अशसे उत्पन्न हु तस्यां जज्ञे च प्रद्युम्नो मद्नांशस्सवीर्यवान् ।

जहार शम्बरो यं वै यो जघान च शम्बरम् ॥१२॥

जीका जन्म हुआ, जिन्हें शम्बरासुर हर छे गया था और फिर जिन्होंने [काळ-क्रमसे] शम्वराष्ट्ररका वध किया था ॥ १२ ॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

प्रयुम्न-हरण तथा शम्बर-वध।

श्रीमैत्रेय उवाच

शम्बरेण हतो वीरः प्रद्युम्नः स कथं मुने। शम्बरः स महावीर्यः प्रद्युम्नेन कथं हतः ॥ १॥ यस्तेनापहृतः पूर्वं स कथं विज्ञान तम्। एतद्विस्तरतः श्रोतुमिच्छामि सकलं गुरो ॥ २॥

श्रीपराशर उवाच

षष्ठेऽह्वि जातमात्रं तु प्रद्युम्नं स्तिकागृहात्। ममैष हन्तेति मुने हतवान्कालशम्बरः ॥ ३॥ हत्वा चिक्षेप चैवैनं ग्राहोग्रे लवणार्णवे। कछोलजनितावर्चे सुघोरे मकरालये॥ ४॥ पातितं तत्र चैवैको मत्स्यो जग्राह वालकम्। न ममार च तस्यापि जठरामिप्रदीपितः॥ ५॥ मत्स्ववन्षेश्र मत्स्योऽसौ मत्स्यैरन्यैस्सह द्विज । वातितोऽसुरवर्याय शम्बराय निवेदितः॥६॥ तस्य मायावती नामपत्नी सर्वगृहेश्वरी। कारयामास संदानामाधिपत्यमनिन्दिता।। ७।। दारिते मत्स्वजठरे सा ददशीतिशोभनम्। मन्मथतरोर्द्ग्घस प्रथमाङ्करम् ॥ ८॥ क्रमारं कोऽयं कथमयं मत्स्यजठरे प्रविवेशितः।

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे मुने ! वीरवर प्रबुम्नको शम्बरासुरने कैसे हरण किया था ? और फिर उस महाबली राम्बरको प्रबुम्नने कैसे मारा ? ॥ १॥ जिसको पहले उसने हरण किया या उसीने पीछे उसे किस प्रकार मार डाला ? हे गुरो ! मैं यह सम्पूर्ण प्रसंग विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मुने ! कालके समान विकराल शम्बरासुरने प्रद्युन्नको, जन्म लेनेके छठे ही दिन 'यह मेरा मारनेवाला है' ऐसा जानकर स्तिकागृहसे हर लिया ॥ ३ ॥ उसको हरण करके शम्बरासुरने लवणसमुद्रमें डाल दिया, जो तरंग-मालाजनित आवर्तोंसे पूर्ण और बड़े भयानक मकरोंका घर है ॥ ४ ॥ वहाँ फेंके हुए उस बालकको एक मत्स्यने निगळ ळिया, किन्तु वह उसकी जठरा-ग्निसे जलकर भी न मरा॥ ५॥

काळान्तरमें कुछ मछेरोंने उसे अन्य मछिर्योंके साथ अपने जालमें फँसाया और असुरश्रेष्ठ राम्बरको निवेदन किया ॥६॥ उसकी नाममात्रकी पत्नी मायावती सम्पूर्ण अन्तः पुरकी खामिनी थी और वह सुळक्षणा सम्पूर्ण सूदों (रसोइयों) का आधिपत्य करती थी ॥ ७ ॥ उस मछछीका पेट चीरते ही उसमें एक अति सुन्दर वालक दिखायी दिया जो दग्ध हुए कामनृक्षका प्रथम अंकुर या ॥ ८॥ 'तब यह कौन है और किस प्रकार इस मछलीके पेटमें डाला गया इस प्रकार अत्यन्त आश्चर्यचिकत हुई उस सुन्दरी इत्येवं कौतुकाविष्टां तन्वीं प्राहाथ नारदः ॥ ९ ॥ से देवर्षि नारदने CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangott

अयं समस्तजगतः स्थितिसंहारकारिणः।

शम्यरेण हृतो विष्णोस्तनयः स्वितकागृहात्।।१०॥

स्थितस्सम्रद्धे मत्स्येन निगीर्णस्ते गृहं गतः।

नररत्निमदं सुभ्रु विस्रव्या परिपालय।।११॥

इरकि विस्रविष्ण स्वर्णस्य प्रमुचन

श्रीपराशर उवाच

नारदेनैवयुक्ता सा पालयामास तं शिशुम् ।
वाल्यादेवातिरागेण रूपातिशयमोहिता ॥१२॥
स यदा यौवनाभोगभूपितोऽभून्महामते ।
सामिलापा तदा सापि वभूव गजगामिनी ॥१३॥
मायावती ददौ तस्मै मायास्सर्वा महाग्रुने ।
प्रद्युम्नायानुरागान्धा तन्त्यस्तहृदयेक्षणा ॥१४॥
प्रसजन्तीं तु तां प्राह स कार्ष्णः कमलेक्षणाम् ।
मातृत्वमपहायाद्य किमेवं वर्तसेऽन्यथा ॥१५॥
सा तस्मै कथयामास न पुत्रस्त्वं ममेति वै ।
तनयं त्वामयं विष्णोर्ह्तवान्कालशम्बरः ॥१६॥
सिप्तः सम्रुद्रे मत्स्यस्य सम्प्राप्तो जदरान्मया ।
सा हि रोदिति ते माता कान्ताद्याप्यतिवत्सला १७

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तश्चम्वरं युद्धे प्रद्युम्नः स समाह्वयत् । क्रोधाकुलीकृतमना युयुघे च महावलः ॥१८॥ हत्वा सैन्यमशेषं तु तस्य दैत्यस्य यादवः । सप्त माया व्यतिक्रम्य मायां प्रयुयुजेऽष्टमीम् ॥१९॥ तया जघान तं दैत्यं मायया कालश्चम्बरम् । उत्पत्त्य च तया सार्द्धमाजगाम पितुः पुरम् ॥२०॥

अन्तः धुरे निपतितं मायावत्या समन्वितम् ।

"हे सुन्दर भ्कुटिवाछी ! यह सम्पूर्ण जगत्के स्थिति और संहारकर्ता भगवान् विष्णुका पुत्र है; इसे शम्बरासुरने सूतिकागृहसे चुराकर समुद्रमें फेंक दिया था । वहाँ इसे यह मत्स्य निगळ गया और अब इसीके द्वारा यह तेरे घर आ गया है । त् इस नररत्नका विश्वस्त होकर पाळन कर" ॥१०-११॥

श्रीपराशरजी बोले-नारदजीके ऐसा कहनेपर मायावतीने उस वालककी अतिशय सुन्दरतासे मोहित हो वाल्यावस्थासे ही उसका अति अनुराग-पूर्वक पालन किया ॥ १२ ॥ हे महामते ! जिस समय वह नवयौवनके समागमसे सुशोभित हुआ तव वह गजगामिनी उसके प्रति कामनायुक्त अनुराग प्रकट करने छगी ॥ १३ ॥ हे महामुने ! जो अपना इदय और नेत्र प्रबुम्नमें अर्पित कर चुकी यी उस मायावतीने अनुरागसे अन्धी होकर उसे सव प्रकारकी माया सिखा दी ॥ १४ ॥ इस प्रकार अपने ऊपर आसक्त हुई उस कमळ्छोचनासे कृष्णनन्दन प्रद्युम्नने कहा—"आज तुम मातृ-भावको छोड्कर यह अन्य प्रकारका भाव क्यों प्रकट करती हो ?" ॥ १५॥ तव मायावतीने कहा-"तुम मेरे पुत्र नहीं हो, तुम भगवान् विष्णुके तनय हो । तुम्हें कालशम्बरने हर-कर समुद्रमें फेंक दिया था; तुम मुझे एक मत्स्यके उदरमें मिछे हो । हे कान्त ! आपकी पुत्रवत्सछा जननी आज भी रोती होगी" || १६-१७॥

श्रीपराशरजी बोले-मायावतीके इस प्रकार कहने-पर महावलवान् प्रद्युम्नजीने क्रोधसे विद्वल हो राम्बरामुरको युद्धके लिये ललकारा और उससे युद्ध करने लगे ॥ १८ ॥ यादवश्रेष्ठ प्रद्युम्नजीने उस दैत्य-की सम्पूर्ण सेना मार डाली और उसकी सात माया-ओंको जीतकर खयं आठवीं मायाका प्रयोग किया ॥ १९ ॥ उस मायासे उन्होंने दैत्यराज कालशम्बरको मार डाला और मायावतीके साथ [विमानद्वारा] उदकर आकाशमार्गसे अपने पिताके नगरमें आ गये ॥ २० ॥

मायावतीके सहित अन्तः पुरमें उतरनेपर श्रीकृष्ण-

तं दृष्ट्वा कृष्णसङ्कल्पा बभूवुः कृष्णयोषितः ॥२१॥
रुक्मिणी साभवत्त्रेम्णा सास्रदृष्टिरनिन्दिता।
धन्यायाः खल्वयं पुत्रो वर्तते नवयौवने ॥२२॥
अस्मिन्वयसि पुत्रो मे प्रद्युम्नो यदि जीवति ।
सभाग्या जननी वत्स सा त्वया का विभूषिता॥२३॥
अथवा याद्दशः स्रोहो मम याद्दग्वपुस्तव।
हरेरपत्यं सुन्यक्तं भवान्वत्स भविष्यति॥२४॥

श्रीपराशर उवाच

एतसिनन्तरे प्राप्तस्सह कृष्णेन नारदः। अन्तः पुरचरां देवीं रुक्मिणीं प्राह हर्षयन् ॥२५॥ एष ते तनयः सुभ्रु हत्वा शम्बरमागतः । हतो येनाभवद्वालो भवत्यास्स्रतिकागृहात् ॥२६॥ इयं मायावती भार्या तनयस्यास्य ते सती। शम्बरस्य न भार्येयं श्रूयतामत्र कारणम् ॥२७॥ मन्मथे तु गते नाशं तदुद्भवपरायणा। क्षेत्र शम्बरं मोहयामास मायारूपेण रूपिणी ॥२८॥ विहाराद्युपमोगेषु रूपं मायामयं श्रमम्। दर्शयामास दैत्यस्य यस्येयं मदिरेक्षणा ॥२९॥ त्रम्तद्व कामोञ्चतीर्णः पुत्रस्ते तस्येयं द्यिता रतिः । विशङ्का नात्र कर्तव्या स्तुपेयं तव शोमने ॥३०॥ ततो हर्षसमाविष्टौ रुक्मिणीकेशवौ तदा। नगरी च समस्ता सा साधुसाब्वित्यभाषत ॥३१॥ चिरं नष्टेन पुत्रेण सङ्गतां प्रेक्ष्य रुक्मिणीम् । अवाप विसायं सर्वो द्वारवत्यां तदा जनः ॥३२॥

चन्द्रकी रानियोंने उन्हें देखकर कृष्ण ही समझा ॥ २१ ॥ किन्तु अनिन्दिता रुक्मिणीके नेत्रोंमें प्रेम-वश ऑस् मर आये और वे कहने छगों—"अवश्य ही यह नवयौवनको प्राप्त हुआ किसी बड्मागिनीका पुत्र है ॥ २२ ॥ यदि मेरा पुत्र प्रद्युम्न जीवित होगा तो उसकी भी यही आयु होगी। हे बत्स ! तू ठीक-ठीक बता तूने किस भाग्यवती जननीको विभूषित किया है ! ॥ २३ ॥ अथवा, बेटा ! जैसा मुझे तेरे प्रति खेह हो रहा है और जैसा तेरा खरूप है उससे मुझे ऐसा मी प्रतीत होता है कि तू श्रीहरिका ही पुत्र है" ॥ २४ ॥

श्रीपराशरजी बोले-इसी समय श्रीकृष्णचन्द्रके साथ वहाँ नारदजी आ गये । उन्होंने अन्तःपुर-निवासिनी देवी रुक्मिणीको आनन्दित करते हुए कहा--।। २५॥ "हे सुभू ! यह तेरा ही पुत्र है। यह शम्बराम्रुरको मारकर आ रहा है, जिसने कि इसे बाल्यावस्थामें सूतिकागृहसे हर छिया था ॥ २६॥ यह सती मायावती भी तेरे पुत्रकी ही स्त्री है; यह शम्बरा-सुरकी पत्नी नहीं है । इसका कारण सुन ॥ २०॥ पूर्वकालमें कामदेवके भस्म हो जानेपर उसके पुन-र्जन्मकी प्रतीक्षा करती हुई इसने अपने मायामय रूपसे शम्बरासुरको मोहित किया था॥ २८॥ यह मत्तविछोचना उस दैत्यको विहारादि उपमोगोंके समय अपने अति सुन्दर मायामय रूप दिखलाती रहती थी ॥ २९ ॥ कामदेवने ही तेरे पुत्ररूपसे जन्म लिया है और यह सुन्दरी उसकी प्रिया रित ही है। हे शोमने ! यह तेरी पुत्रवघू है, इसमें त् किसी प्रकार-की विपरीत शंका न कर" ॥ ३०॥

यह सुनकर रुक्मिणी और कृष्णको अतिशय आनन्द हुआ तथा समस्त द्वारकापुरी भी 'साधु-साधु' कहने लगी ॥ ३१॥ उस समय चिरकाल्से खोये हुए पुत्रके साथ रुक्मिणीका समागम हुआ देख द्वारकापुरीके सभी नागरिकोंको बड़ा आश्चर्य हुआ॥३२॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पन्नमेंऽशे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२०॥

अट्टाईसवाँ अध्याय

रुक्मीका वधा

श्रीपराशर उवाच चारुदेष्णं सुदेष्णं च चारुदेहं च वीर्यवान् । सुपेणं चारुगुप्तं च भद्रचारुं तथा परम् ॥ १ ॥ चारुविन्दं सुचारुं च चारुं च विलनां वरम्। रुक्मिण्यजनयत्पुत्रान्कन्यां चारुमतीं तथा॥ २॥ अन्याश्च भार्याः कृष्णस्य वभृवुः सप्त शोभनाः। कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नाम्रजिती तथा ।३। देवी जाम्बवती चापि रोहिणी कामरूपिणी। मद्रराजसुता चान्या सुशीला शीलमण्डना ॥ ४ ॥ सात्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी। षोडशासन् सहस्राणि स्त्रीणामन्यानि चित्रणः॥५॥ प्रद्युम्रोऽपि महावीयीं रुक्मिणस्तनयां ग्रमाम्। खयंवरे तां जग्राह सा च तं तनयं हरेः ॥ ६ ॥ तस्यामस्याभवत्पुत्रो महावलपराक्रमः । रणेऽरुद्धवीर्योदिघररिन्दमः ॥ ७॥ अनिरुद्धो तस्यापि रुक्सिणः पौत्रीं वरयामास केशवः । दौहित्राय ददौ रुक्मी तां स्पर्द्धन्निप चिक्रणा॥ ८॥ तस्या विवाहे रामाद्या यादवा हरिणा सह । रुक्मिणो नगरं जग्मुर्नाम्ना भोजकटं द्विज ॥ ९॥ विवाहे तत्र निर्वृत्ते प्राधुम्नेस्तु महात्मनः। कलिङ्गराजप्रमुखा रुक्मिणं वाक्यमृत्रुवन् । ११०।।

श्रीपराश्चर जनाच तथेति तानाह नृपान्रुक्मी बलमदान्वितः । सभायां सह रामेण चक्रे द्यूतं च वै तदा ॥१२॥

न जयामो वलं-कसाद्यूतेनैनं महावलम् ॥११॥

अनक्षज्ञो हली द्यते तथास्य न्यसनं महत्।

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय! रुक्मिणीके [प्रद्युग्नके अतिरिक्त] चारुदेष्ण, सुदेष्ण, वीर्यवान् चारुदेह, सुषेण, चारुगुप्त, मद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु और वलवानोंमें श्रेष्ट चारु नामक पुत्र तथा चारुमती नामकी एक कन्या हुई ॥ १-२ ॥ रुक्मिणीके अतिरिक्त श्रीकृष्णचन्द्रके काल्निदी, मित्रविन्दा, नग्न-जित्की पुत्री सत्या, जाम्बवान्की पुत्री कामरूपिणी रोहिणी, अतिशील्वती मद्रराजसुता सुशील मद्रा, सत्राजित्की पुत्री सत्यभामा और चारुहासिनी लक्ष्मणा—ये अति सुन्दरी सात क्षियाँ और यीं इनके सिवा उनके सोल्ह हजार क्षियाँ और भी यीं ॥ ३—५ ॥

महावीर प्रद्युम्नने रुक्मीकी सुन्दरी कन्याको और उस कन्याने भी भगवान्के पुत्र प्रद्युम्नजीको खयंवरमें प्रहण किया ॥६॥ उससे प्रद्युम्नजीके अनिरुद्ध नामक एक महावल्पराक्रमसम्पन्न पुत्र हुआ जो युद्धमें रुद्ध (प्रतिहत) न होनेवाला, बलका समुद्र तथा शत्रुओंका दमन करनेवाला था ॥७॥ कृष्णचन्द्रने उस (अनिरुद्ध) के लिये भी रुक्मीकी पौत्रीका वरण किया और रुक्मीने कृष्णचन्द्रसे ईर्ष्या रखते हुए भी अपने दौहित्रको अपनी पौत्री देना खीकार कर लिया ॥८॥

हे द्विज ! उसके विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये कृष्णचन्द्रके साथ वलमद्र आदि अन्य यादवरण मी रुक्मीकी राजधानी मोजकट नामक नगरको गये ॥ ९॥ जब प्रधुम्न-पुत्र महात्मा अनिरुद्धका विवाह-संस्कार हो चुका तो कलिंगराज आदि राजाओंने रुक्मीसे कहा—॥ १०॥ "ये वलमद्र चूतक्रीडा [अच्छी तरह] जानते तो हैं नहीं तथापि इन्हें उसका व्यसन बहुत है; तो फिर हम इन महावली रामको जुएसे ही क्यों न जीत लें ?"॥ ११॥

श्रीपराशरजी बोले तत्र वलके मदसे उन्मत्त रुक्मी-ने उन राजाओंसे कहा-'बहुत अच्छा' और समामें बलरामजीके साथ चूतकीडा आरम्भ कर दी ॥ १२॥

द्वितीयेऽपि पणे चान्यत्सहस्रं रुक्मिणा जितः ।१३। ततो दशसहस्राणि निष्काणां पणमाददे । बलमद्रोऽजयत्तानि रुक्मी द्यतिवदां वरः ॥१४॥ ततो जहास खनवत्किल्ङाधिपतिर्द्विज । दन्तान्विदर्शयन्युढो रुक्मी चाह मदोद्धतः ।।१५॥ अविद्योऽयं मया द्यूते बलभद्रः पराजितः। मुधैवाक्षावलेपान्धो योऽवमेनेऽक्षकोविदान्॥१६॥ दृष्ट्रा कलिङ्गराजन्तं प्रकाशद्शनाननम्। रुक्मिणं चापि दुर्वाक्यं कोपं चक्रे हलायुधः ॥१७॥ ततः कोपपरीतात्मा निष्ककोटिं समाददे । ग्लहं जग्राह रुक्मी च तद्थें प्रक्षानपातयत् ॥१८॥ अजयद्वलदेवस्तं प्राहोचेविंजितं मयेति रुक्मी प्राहोचैरलीकोक्तेरलं बल।।१९॥ त्वयोक्तोऽयं ग्लहस्सत्यं न मयैषोऽजुमोदितः। एवं त्वया चेद्विजितं विजितं न मया कथम् ।।२०।। श्रीपराशर उवाच अथान्तरिक्षे वागुचैः प्राह गम्भीरनादिनी । बलदेवस्य तं कोपं वर्द्धयन्ती - महात्मनः ॥२१॥ जितं बलेन धर्मेण रुक्मिणा भाषितं मृपा। अनुक्त्वापि वचः किश्चित्कृतं भवति कर्मणा ।२२। ततो वलः सम्रत्थाय कोपसंरक्तलोचनः। जघानाष्टापदेनैव रुक्मिणं स महावलः ॥२३॥ किल्किराजं चादाय विस्फुरन्तं बलाद्वलः। बभञ्ज दन्तान्कुपितो यैः प्रकाशं जहास सः ॥२४॥ आकृष्य च महास्तम्भं जातरूपम्यं बलः।

सहस्रमेकं निष्काणां रुक्मिणा विजितो बलः।

रुक्मीने पहले ही दाँवमें बलरामजीसे एक सहस्र निष्क जीते तथा दूसरे दाँवमें एक सहस्र निष्क और जीत लिये ॥ १३ ॥ तब वलमद्रजीने दश हजार निष्कका एक दाँव और लगाया । उसे भी पक्के जुआरी रुक्मीने ही जीत लिया ॥१४॥ हे द्विज ! इसपर मूढ कलिंगराज दाँत दिखाता हुआ जोरसे हँसने छगा और मदोन्मत रुक्मीने कहा—॥ १५॥ "धूतक्रीडासे अनिभन्न इन वलभद्रजीको मैंने हरा दिया है; ये वृथा ही अक्ष-के घमण्डसे अन्धे होकर अक्षकुशल पुरुषोंका अपमान करते थे" ॥ १६॥

इस प्रकार कल्णिगराजको दाँत दिखाते और रुम्मी-को दुर्वाक्य कहते देख हलायुध वलमद्रजी अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ १७ ॥ तब उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर करोड़ निष्कका दाँव लगाया और रुक्मीने भी उसे प्रहणकर उसके निमित्त पाँसे फेंके ॥ १८॥ उसे बलदेवजीने ही जीता और वे जोरसे वोल उठे जीता ।' इसपर रुक्मी भी चिल्लाकर बोला-"बलराम असत्य बोलनेसे कुछ लाभ नहीं हो सकता, यह दाँव भी मैंने ही जीता है ॥ १९॥ आपने इस दाँवके विषयमें जिक्र अवस्य किया था, किन्तु मैंने उसका अनुमोदन तो नहीं किया । इस प्रकार यदि आपने इसे जीता है तो मैंने भी क्यों नहीं जीता ?" ॥ २०॥

श्रीपराशरजी बोले-उसी समय महात्मा वलदेव-जीके क्रोधको बढ़ाती हुई आकाशवाणीने गम्भीर खरमें कहा—॥ २१॥ "इस दाँवको धर्मानुसार तो बळराम-जी ही जीते हैं; रुक्मी झूठ बोळता है क्योंकि [अनुमोदन-सूचक] वचन न कहनेपर भी [पाँसे फेंकने आदि] कार्यसे वह अनुमोदित ही माना जायगा" ॥ २२॥

तव क्रोधसे अरुणनयन हुए महाबली बलभद्रजीने उठकर रुक्मीको जुआ खेळनेके पाँसोंसे ही मार डाला ॥ २३ ॥ फिर फड़कते हुए कल्जिंगराजको बलपूर्वक पकड़कर बलरामजीने उसके दाँत, जिन्हें दिखलाता हुआ वह हँसा था, तोड़ दिये ॥ २४ ॥ इनके सिवा उसके पक्षके और भी जो कोई राजालोग थे उन्हें बळरामजीने अत्यन्त कुपित होकर एक मुवर्ण-ज्ञान तान्ये तत्पक्षे भूभृतः कृपितो भृशम् ॥२५॥ मय स्तम्म उखाइकर उससे मार डाला ॥ २५॥ СС-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

ततो हाहाकृतं सर्वं पलायनपरं द्विज ।
तद्राजमण्डलं भीतं वभूव कुपिते वले ।।२६।।
बलेन निहतं दृष्ट्रा रुक्मिणं मधुसद्दनः ।
नोवाच किञ्चिन्मैत्रेय रुक्मिणीवलयोर्भयात्।२७।
ततोऽनिरुद्धमादाय कृतदारं द्विजोत्तम ।
द्वारकांमाजगामाथ यदुचकं च केशवः ।।२८॥

हे द्विज ! उस समय वल्रामजीके कुपित होनेसे हाहाकार मच गया और सम्पूर्ण राजालोग भयभीत होकर भागने लगे॥२६॥

हे मैत्रेय ! उस समय रुक्मीको मारा गया देख श्रीमधुस्दनने एक ओर रुक्मिणीके और दूसरी ओर बल्रामजीके मयसे कुछ भी नहीं कहा ॥ २७ ॥ तदनन्तर, हे द्विजश्रेष्ठ ! यादवोंके सहित श्रीकृष्ण-चन्द्र सपत्नीक अनिरुद्धको लेकर द्वारकापुरीमें चले आये ॥ २८ ॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽरोऽद्याविंशोऽच्यायः ॥ २८॥

-- 3XGCCC

उन्तीसवाँ अध्याय

नरकासुरका वध।

श्रीपराशर उवाच द्वारवत्यां स्थिते कृष्णे शक्रस्त्रिभ्रवनेश्वरः। मैत्रेय मत्तरावतपृष्ठगः॥१॥ आजगामाथ प्रविक्य द्वारकां सोऽथ समेत्य हरिणा ततः । कथयामास दैत्यस नरकस विचेष्टितम् ॥ २ ॥ त्वया नाथेन देवानां मज्ञष्यत्वेऽपि तिष्ठता । प्रशमं सर्वदुःखानि नीतानि मधुसद्दन ॥ ३॥ तपिखन्यसनार्थाय सोऽरिष्टो घेनुकस्तथा। प्रवत्तो यस्तथा केशी ते सर्वे निहतास्त्वया।। ४।। कंसः क्रवलयापीडः पूतना बालघातिनी। नाशं नीतास्त्वया सर्वे येऽन्ये जगदुपद्रवाः ॥ ५ ॥ युष्महोर्दण्डसम्भृतिपरित्राते जगत्त्रये। यज्वयज्ञांशसम्प्राप्त्या तृप्तिं यान्ति दिवौकसः ॥६॥ सोऽहं साम्प्रतमायातो यन्निमित्तं जनार्दन । तच्छूत्वा तत्प्रतीकारप्रयत्तं कर्तुमहिसि ॥७॥ भौमोऽयं नरको नाम प्राग्डयोतिषपुरेश्वरः।

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय! एक बार जव श्रीमगवान् द्वारकामें ही थे त्रिमुबनपति इन्द्र अपने मत्त गजराज ऐरावतपर चढ़कर उनके पास आये ॥१ ॥ द्वारकामें आकर वे भगवान्से मिळे और उनसे नरकाष्ट्ररके अत्याचारोंका वर्णन किया ॥ २ ॥ [वे वोळे---] "हे मधुसूदन ! इस समय मनुष्यरूपमें स्थित होकर भी आप सम्पूर्ण देवताओंके खामीने हमारे समस्त दुःखोंको शान्त कर दिया है॥ ३॥ जो अरिष्ट, घेनुक और केशी आदि असुर सर्वदा तपिलयों-को क्लेशित करते रहते थे उन सत्रको आपने मार डाला ॥ ४ ॥ कंस, कुबल्यापीड और बाल्घातिनी पूतना तथा और भी जो-जो संसारके उपद्रवरूप थे उन सबको आपने नष्ट कर दिया॥ ५॥ आपके वाहुदण्डकी सत्तासे त्रिलोकीके सुरक्षित हो जानेके कारण याजकोंके दिये हुए यज्ञमागोंको प्राप्तकर देवगण त्स हो रहे हैं ॥ ६ ॥ हे जनार्दन ! इस समय जिस निमित्तसे मैं आपके पास उपस्थित हुआ हूँ उसे सुन-कर आप उसके प्रतीकारका प्रयत्न करें ॥ ७॥

हे शत्रुदमन ! यह पृथिवीका पुत्र नरकासुर

करोति सर्वभूतानाम्रुपघातमरिन्दम् ॥ ८॥ देवसिद्धासुरादीनां नृपाणां च जनार्दन् । हत्वा तु सोऽसुरः कन्या रुरुधे निजमन्दिरे ॥ ९॥ छत्रं यत्सिलिलसावि तज्जहार प्रचेतसः । मन्दरस्य तथा शृङ्गं हतवानमणिपर्वतम् ॥१०॥ अमृतसाविणी दिच्ये मन्मातुः कृष्ण कुण्डले । जहार सोऽसुरोऽदित्या वाञ्छत्यरावतं गजम्॥११॥ दुनीतमेतद्गोविन्द मया तस्य निवेदितम् । यदत्र प्रतिकर्त्वच्यं तत्स्वयं परिमृज्यताम् ॥१२॥

श्रीपराशर उवाच

इति श्रुत्वा सितं कृत्वा भगवान्देवकीसुतः। गृहीत्वा वासवं हस्ते सम्रुत्तस्था वरासनात् ॥१३॥ सिश्चत्यागतमारुह्य गरुडं गगनेचरम्। सत्यभामां समारोप्य ययौ प्राग्ज्योतिषं पुरम्।१४। आरुह्यरावतं नागं शकों ऽपि त्रिदिवं ययौ। ततो जगाम कृष्णश्च पश्यतां द्वारकीकसाम् ॥१५॥ प्राग्ज्योतिषपुरस्यापि समन्ताच्छतयोजनम्। आचिता <u>मौरवैः</u> पाशैः श्रुरान्तैर्भूद्विजोत्तम ॥१६॥ र भिरा होते तांश्रिच्छेद हरिः पाञ्चान्श्रिप्त्वा चक्रं सुदर्शनम् । ततो मुरस्समुत्तस्थौ तं जघान च केशवः ॥१७॥ ग्रुरस्य तनयान्सप्त सहस्रांस्तांस्ततो हरिः। चक्रधाराग्निनिर्दग्धांश्रकार श्रुलभानिव ॥१८॥ हत्वा मुरं हयग्रीवं तथा पश्चजनं द्विज। **ब्राग्ज्योतिषपुरं घीमांस्त्वरावान्सम्रुपाद्रवत् ॥१९॥** नरकेणास्य तत्राभून्महासैन्येन संयुगम्। कुष्णस्य यत्र गोविन्दो जन्ने दैत्यान्सहस्रग्नः॥२०॥ ग्रस्तास्त्रवर्षं मुश्चन्तं तं भौमं नरकं बूली। CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri

प्राग्ज्योतिषपुरका खामी है; इस समय यह सम्पूर्ण जीवोंका घात कर रहा है ॥ ८ ॥ हे जनार्दन ! उसने देवता, सिद्ध, असुर और राजा आदिकोंकी कन्याओं-को बलात्कारसे लाकर अपने अन्तःपुरमें बन्द कर रखा है ॥ ९ ॥ इस दैत्यने वरुणका जल वरसानेवाल छत्र और मन्दराचलका मणिपर्वतनामक शिखर भी हर लिया है ॥ १० ॥

हे कृष्ण ! उसने मेरी माता अदितिके अमृतसावी दोनों दिव्य कुण्डल ले लिये हैं और अब इस ऐरावत हाथीको मी लेना चाहता है ॥ ११ ॥ हे गोविन्द ! मैंने आपको उसकी ये सब अनीतियाँ सुना दी हैं; इनका जो प्रतीकार होना चाहिये, वह आप स्वयं विचार लें" ॥ १२ ॥

श्रीपराशरजी बोले-इन्द्रके ये वचन सुनकर श्रीदेवकीनन्दन मुसकाये और इन्द्रका हाथ पकड़कर अपने श्रेष्ठ आसनसे उठे ॥ १३ ॥ फिर स्मरण करते ही उपस्थित हुए आकाशगामी गरुडपर सत्यमामाको चढ़ाकर स्वयं चढ़े और प्राग्ज्योतिषपुरको चले॥ १४ ॥ तदनन्तर इन्द्र भी ऐरावतपर चढ़कर देवलोकको गये तथा भगवान् कृष्णचन्द्र सब द्वारकावासियोंके देखते-देखते [नरकासुरको मारने] चले गये॥ १५॥

हे द्विजोत्तम ! प्राग्ज्योतिषपुरके चारों ओर पृथिवी सौ योजनतक मुर दैत्यके बनाये हुए छुरेकी धाराके समान अति तीक्ष्ण पाशोंसे घिरी हुई थी ॥ १६ ॥ भगवानने उन पाशोंको सुदर्शनचक्र फेंककर काट डाला; फिर मुर दैत्य भी सामना करनेके लिये उठा तब श्रीकेशवने उसे भी मार डाला ॥ १७ ॥ तदनन्तर श्रीहरिने मुरके सात हजार पुत्रोंको भी अपने चक्रकी धाररूप अग्नेमें पतंगके समान मस्म कर दिया॥ १८ ॥ हे द्विज । इस प्रकार मतिमान भगवान्ने मुर, हयग्रीव एवं पञ्चजन आदि देत्योंको मारकर बड़ी शींग्रतासे प्राग्ज्योतिषपुरमें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ वहाँ पहुँचकर भगवान्का अधिक सेनावाले नरकासुरसे युद्ध हुआ जिसमें श्रीगोविन्दने उसके सहस्रों दैत्योंको मार डाला ॥ २० ॥ दैत्यदलका दलन करनेवाले महाबलवान महाबान काक्रमाणिने हालाक्रकी वर्षा करते हुए भूमि-

क्षिप्त्वा चक्रं द्विधा चक्रे चक्री दैतेयचक्रहा।।२१॥ हते तु नरके भूमिर्गृहीत्वादितिकुण्डले। उपतस्थे जगन्नाथं वाक्यं चेदमथात्रवीत्।२२।

पृथ्ज्युवाच

यदाहमुद्भुता नाथ त्वया स्करमूर्तिना।
त्वत्स्पर्शसम्भवः पुत्रस्तद्गयं मय्यजायत।।२३।।
सोऽयं त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातितः।
गृहाण कुण्डले चेमे पालयास्य च सन्ततिम्।।२४।।
भारावतरणार्थाय ममैव भगवानिमम्।
अंशेन लोकमायातः प्रसादसुमुखः प्रभो।।२५॥
त्वं कर्जा च विकर्ता च संहर्ता प्रभवे।ऽप्ययः।
जगतां त्वं जगद्भूयः स्त्यतेऽच्युत किं तव।।२६॥
व्याप्तिच्यीप्यं क्रिया कर्जा कार्यं च मगवान्यथा।
सर्वभूतात्मभूतस्य स्त्यते तव किं तथा।।२०॥
परमात्मा च भूतात्मा त्वमात्मा चाव्ययो भवान्।
यथा तथा स्तुतिर्नाथ किमर्थं ते प्रवर्तते।।२८॥
प्रसीद सर्वभूतात्मन्नरकेण तु यत्कृतम्।
तत्क्षम्यतामदोषाय त्वत्सुतस्त्विन्नपातितः।।२९॥

श्रीपराशर उवाच

तथेति चोक्त्वा धरणीं भगवान्ध्रुतभावनः ।
रत्नानि नरकावासाजग्राह ग्रुनिसत्तम ॥३०॥
कन्यापुरे स कन्यानां पोडशातुलविक्रमः ।
श्रुत्युधिकानि दृदशे सहस्राणि महाग्रुने ॥३१॥
चतुर्देष्ट्रान्गजांश्वाग्न्यान् षद्सहस्रांश्व दृष्टवान् ।
काम्बोजानां तथाश्वानां नियुतान्येकविंशतिम्।३२॥
ताः कन्यास्तांस्तथा नागांस्तानश्वान् द्वारकां पुरीम्
प्रापयामास गोविन्दस्सद्यो नरकिकङ्करैः ॥३३॥

पुत्र नरकासुरके सुदर्शनचक्र फेंककर दो दृकड़े कर दिये ॥ २१ ॥ नरकासुरके मरते ही पृथिवी अदितिके कुण्डल लेकर उपस्थित हुई और श्रीजगनायसे कहने लगी ॥ २२ ॥

पृथिवी बोली-हे नाथ ! जिस समय वराहरूप धारणकर आपने मेरा उद्धार किया या उसी समय आपके स्पर्शसे मेरे यह पुत्र उत्पन्न हुआ या॥ २३॥ इस प्रकार आपहीने मुझे यह पुत्र दिया या और अव आपहींने इसको नष्ट किया है; आप ये कुण्डल लीजिये और अव इसकी सन्तानकी रक्षा कीजिये॥ २४॥ हे प्रमो ! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर ही आप मेरा भार उतारनेके लिये अपने अंशसे इस लोकमें अवर्तार्ण हुए हैं ॥ २५ ॥ हे अच्युत ! इस जगत्के आप ही कर्ता, आप ही विकर्ता (पोषक) और आप ही हर्ता (संहारक) हैं; आप ही इसकी उत्पत्ति और ल्यके स्थान हैं तथा आप ही जगत्रूप हैं । फिर हम आपकी स्तुति किस प्रकार करें ? ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! जब कि व्याप्ति, व्याप्य, क्रिया, कर्ता और कार्यरूप आप ही हैं तब सबके आत्मखरूप आपकी किस प्रकार स्तृति की जा सकती है ! ॥२७॥ हे नाय ! जब आप ही परमात्मा, आप ही भूतात्मा और आप ही अव्यय जीवात्मा हैं तब किस वस्तुको छेकर आपकी स्तुति हो सकती है ? ॥ २८ ॥ हे सर्वभूतात्मन् ! आप प्रसन्त होइये और इस नरकासुरके सम्पूर्ण अपराध क्षमा कीजिये। निश्चय ही आपने अपने पुत्रको निर्दोप करनेके छिये ही खयं मारा है ॥ २९॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मुनिश्रेष्ट ! तदनन्तर्
भगवान् भूतमावनने पृथिवीसे कहा—"तुम्हारी इच्छा
पूर्ण हो" और फिर नरकासुरके महल्से नाना प्रकारके
रत्न लिये ॥३०॥ हे महामुने ! अतुलविक्रम श्रीभगवान्ने नरकासुरके कन्यान्तः पुरमें जाकर सोल्ह हजार
एक सौ कन्याएँ देखीं ॥३१॥ तथा चार दाँतवाले
छः हजार गजश्रेष्ठ और इक्कीस लाख काम्बोजदेशीय
अद्य देखे ॥३२॥ उन कन्याओं, हाथियों और घोड़ोंको श्रीकृष्णचन्द्रने नरकासुरके सेवकोंद्वारा तुरन्त ही
द्वारकापुरी पहुँचवा दिया॥ ३३॥

दृहशे वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम्। आरोपयामास हरिर्गरुडे पतगेश्वरे ॥३४॥ आरुं च खरं कुष्णस्सत्यभाम।सहायवान्। अदित्याः कुण्डले दातुं जगाम त्रिदशालयम् ॥३५॥ स्वर्गलोकको गये ॥३५॥

848

तदनन्तर भगवान्ने वरुणका छत्र और मणिपर्वत देखा, उन्हें उठाकर उन्होंने पिक्षराज गरुडपर रख लिया ॥ ३४ ॥ और सत्यभामाके सिहत स्वयं भी उसीपर चढ़कर अदितिके कुण्डल देनेके लिये

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे एकोनित्रंशोऽध्यायः॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

पारिजात-हरण।

श्रीपराशर उवाच

गुरुडो वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम्। समार्यं च ह्यीकेशं लीलयैव वहन्ययौ ॥ १॥ ततक्शङ्खमुपाध्मासीत्स्वर्गद्वारगतो हरिः। उपतस्युत्तथा देवास्सार्घ्यहत्ता जनार्दनम्।। २।। स देवैरार्चितः कृष्णो देवमातुर्निवेशनम् । सिताअशिखराकारं प्रविक्य दृहशेऽदितिम् ॥ ३ ॥ स तां प्रणम्य शक्रेण सह ते कुण्डलेश्तमे। ददौ नरकनाशं च शशंसासै जनार्दनः॥ ४॥ ततः प्रीता जगन्माता धातारं जगतां हरिम्। तुष्टावादितिरच्यग्रा कृत्वा तत्त्रवणं मनः॥५॥

अदितिरुवाच

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष मक्तानामभयङ्कर । सनातनात्मन् सर्वात्मन् भूतात्मन् भूतभावन ॥६॥ प्रणेतर्मनसो बुद्धिरिन्द्रियाणां गुणात्मक । त्रिगुणातीत निर्द्धन्द्र ग्रुद्धसत्त्व हृदि स्थित ॥ ७ ॥ सितदीर्घादिनिक्शेषकल्पनापरिवार्जेत जन्मादिभिरसंस्पृष्ट स्त्रमादिपरिवर्जित ॥ ८॥ सन्ध्या रात्रिरहो भूमिर्गगनं वायुरम्बु च। हुताशनो मनो बुद्धिर्भूतादिस्त्वं तथाच्युत ॥ ९ ॥

श्रीपराशरजी बोले-पक्षिराज गरुड उस वारुण-छत्र, मणिपर्वत और सत्यभामाके सहित श्रीकृष्णचन्द्र-को छीछासे ही छेकर चछने छगे॥ १॥ स्वर्गके द्वार-पर पहुँचते ही श्रीहरिने अपना शंख वजाया । उसका शब्द सुनते ही देवगण अर्घ लेकर भगवान्के सामने उपस्थित हुए ॥ २ ॥ देवताओंसे पूजित होकर श्रीकृष्ण-चन्द्रजीने देवमाता अदितिके स्वेत मेघशिखरके समान गृहमें जाकर उनका दर्शन किया ॥३॥ तव श्रीजनार्दनने इन्द्रके साथ देवमाताको प्रणामकर उसके अत्युत्तम कुण्डल दिये और उसे नरक-वधका वृत्तान्त सुनाया ॥४॥ तदनन्तर जगन्माता अदितिने प्रसन्नतापूर्वक तन्मय होकर जगद्वाता श्रीहरिकी अन्यप्र-मावसे स्तुति की ॥५॥

अदिति बोली-हे कमलनयन ! हे मक्तोंको अभय करनेवाछे ! हे सनातनस्रह्म ! हे सर्वात्मन् ! हे भूतखरूप ! हे भूतभावन ! आपको नमस्कार है ॥६॥ हे मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके रचियंता ! हे गुणस्रूप ! हे त्रिगुणातीत ! हे निर्द्ध-द्व ! हे गुद्ध-सत्त्व । हे अन्तर्यामिन् आपको नमस्कार है ॥ ७॥ हे नाथ । आप स्वेत, दीर्घ आदि सम्पूर्ण कल्पनाओंसे रहित हैं, जन्मादि विकारोंसे पृथक् हैं तथा खन्नादि अवस्थात्रयसे परे हैं; आपको नमस्कार है॥८॥ हे अच्युत ! सन्ध्या, रात्रि, दिन, भूमि, आकाश,वायु, जल, CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by Cangon आप ही हैं ॥ ९॥

सर्गिस्थितिविनाशानां कर्ता कर्तृपतिर्भवान् । ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरीश्वर ॥१०॥ देवा दैत्यास्तथा यक्षा राक्षसास्सिद्धपत्रगाः। क्षमाण्डाश्र पिशाचाश्र गन्धर्वा मनुजास्तथा॥११॥ पश्चय मृगाश्चेव पतङ्गाश्च सरीसृपाः। वृक्षगुल्मलता वह्वचः समस्तास्तृणजातयः ॥१२॥ स्थूला मध्यास्तथा सक्ष्मास्सक्ष्मात्सक्ष्मतराश्च ये। .देह मेदा भवान् सर्वे ये केचित्पुर्गलाश्रयाः ॥१३॥ माया तवेयमज्ञातपरमार्थातिमोहिनी। अनात्मन्यात्मविज्ञानं यया मृढो निरुद्धचते ॥१४॥ अस्वे खिमिति भावोऽत्र यत्पुंसाम्रपजायते । अहं ममेति भावो यत्प्रायेणैवाभिजायते। संसारमातुर्मायायास्तवेतन्नाथ चेष्टितम् ।।१५॥ यैः स्वधर्मपरैर्नाथ नरैराराधितो भवान्। ते तरन्त्यखिलामेतां मायामात्मविग्रुक्तये ॥१६॥ त्रह्माद्यास्सकला देवा मनुष्याः पश्चतस्था । विष्णुमायामहावर्तमोहान्धतमसावृताः 118011 आराध्य त्वामभीप्सन्ते कामानात्मभवक्षयम्।

तत्प्रसीदाखिलजगन्मायामोहकराव्यय । अज्ञानं ज्ञानसद्भावभृतं भृतेश्च नाशय॥२१॥ नमस्ते चक्रहस्ताय शार्क्कहस्ताय ते नमः।

यदेते पुरुषा माया सैवेयं भगवंस्तव ॥१८॥

आराधितो न मोक्षाय मायाविलसितं हि तत्।।१९॥

जायते यदपुण्यानां सोऽपराधः स्त्रदोषजः ॥२०॥

मया त्वं पुत्रकामिन्या वैरिपक्षजयाय च ।

कौपीनाच्छादनप्राया वाञ्छा कल्पद्धमादपि ।

हे ईखर ! आप ब्रह्मा, विष्णु और शिवनामक अपनी म्रियोंसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कर्ता हैं तथा आप कर्ताओंके मी खामी हैं !! १० !! देवता, देत्य, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, पन्नग (नाग) कृष्माण्ड, पिशाच, गन्धर्व, मनुष्य, पशु, मृग, पतङ्ग, सरीस्प (साँप), अनेकों वृक्ष, गुल्म और खताएँ, समस्त तृणजातियाँ तथा स्थूछ मध्यम सूक्ष्म और सूक्ष्मसे भी सक्ष्म जितने देह-भेद पुर्गछ (परमाणु) के आश्रित हैं वे सब आप ही हैं !! ११-१३ !!

हे प्रभो ! आपको माया ही परमार्थतत्त्वके न जाननेवाछे पुरुषोंको मोहित करनेवाछी है जिससे मृद पुरुष अनात्मामें आत्मबुद्धि करके वन्धनमें पृड् जाते हैं ॥१४॥ हे नाथ ! पुरुषको जो अनात्मामें आत्मवुद्धि और 'मैं-मेरा' आदि भाव प्रायः उत्पन्न होते हैं वह सव आपकी जगज्जननी मायाका ही विलास है ॥१५॥ हे नाथ ! जो खधर्मपरायण पुरुष आपकी आराधना करते हैं वे अपने मोक्षके लिये इस सम्पूर्ण मायाको पार कर जाते हैं ॥१६॥ त्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवगण तथा मनुष्य और पशु आदि सभी विष्णुमायारूप महान् आवर्तमें पड़कर मोहरूप अन्धकारसे आवृत हैं ॥१७॥ हे भगवन् ! [जन्म और मरणके चक्रमें पड़े हुए] ये पुरुप जीवके भव-बन्धनको नष्ट करनेवाछे आपकी आराधना करके भी जो नाना प्रकारकी कामनाएँ ही माँगते हैं यह आपकी माया ही है ॥१८॥ मैंने भी पुत्रोंकी जयकामनासे रात्रुपक्ष-को पराजित करनेके छिये ही आपकी आराधना की है, मोक्षके लिये नहीं | यह मी आपकी मायाका ही विळास है ॥१९॥ पुण्यहीन पुरुषोंको जो कल्पवृक्षसे भी कौपीन और आच्छादन-वस्त्रमात्रकी ही कामना होती है यह उनका कर्म-दोष-जन्य अपराध ही है ॥२०॥

हे अखिलजगन्माया-मोहकारी अन्यय प्रभी ! आप प्रसन्न होइये और हे मूतेश्वर ! 'मैं ज्ञानवान् हूँ' मेरे इस अज्ञानको नष्ट कीजिये ॥२१॥ हे चक्रपाणे ! आपको नमस्कार है, हे शार्क्सघर ! आपको नमस्कार गदाहस्ताय ते विष्णो शङ्खहस्ताय ते नमः ।।२२।। एतत्पश्यामि ते रूपं स्थूलचिह्वोपलक्षितम् । न जानामि परं यत्ते प्रसीद परमेश्वर ।।२३॥

श्रीपराशर उवाच

अदित्यैवं स्तुतो विष्णुः प्रहस्याह सुरारणिम्। माता देवि त्वमस्माकं प्रसीदः वरदा भव।।२४।।

अदितिरुवाच

एवमस्तु यथेच्छा ते त्वमशेषैस्सुरासुरैः । अजेयः पुरुपच्याघ्र मर्त्यलोके भविष्यसि ॥२५॥ श्रीपराशर जवाच

ततः कृष्णस्य पत्नी च शकपत्न्यासहादितिम्। सत्यभामा प्रणम्याह प्रसीदेति पुनः पुनः॥२६॥ अदितिरुवाच

मत्त्रसादान्न ते सुभ्रु जरा वैरूप्यमेव वा । भविष्यत्यनवद्याङ्गि सुस्थिरं नवयौवनम् ॥२७॥

श्रीपराशर उवाच

अदित्या तु कृतानुज्ञो देवराजो जनार्दनम् ।
यथावत्यूजयामास बहुमानपुरस्सरम् ॥२८॥
शची च सत्यभामायै पारिजातस्य पुष्पेकम् ।
न ददौ मानुषीं मत्वा स्वयं पुष्पेरलङ्कृता ॥२९॥
ततो ददर्श कृष्णोऽपि सत्यभामासहायवान् ।
देवोद्यानानि हृद्यानि नन्दनादीनि सत्तम ॥३०॥
ददर्श च सुगन्धाद्धं मझरीपुञ्जधारिणम् ।
नित्याह्वादकरं ताम्रवालपछ्वशोभितम् ॥३१॥
मध्यमानेऽमृते जातं जातरूपोपमत्वचम् ।
पारिजातं जगन्नाथः केशवः केशिसद्दनः ॥३२॥
तुतोष परमग्रीत्या तरुराजमनुत्तमम् ।
तं दृष्टा ग्राह गोविन्दं सत्यभामा दिलोन्सम् ।

तुतोष परमप्रीत्या तरुराजमनुत्तमम् । तं दृष्ट्वा प्राह गोविन्दं सत्यभामा द्विजोत्तम । कस्मान्न द्वारकामेष नीयते कृष्ण पादपः ॥३३॥ यदि चेन्तद्वचः सत्यं त्वमत्यर्थं प्रियेति मे । महेहनिष्कुटार्थाय तद्यं नीयतां तरुः ॥३४॥ है; हे गदाघर ! आपको नमस्कार है; हे शंखपाण ! हे विष्णो ! आपको वारम्वार नमस्कार है ॥२२॥ मैं स्थूछ चिह्नोंसे प्रतीत होनेवाछे आपके इस रूपको ही देखती हूँ; आपके वास्तविक परस्वरूपको मैं नहीं जानती; हे परमेश्वर ! आप प्रसन्न होइये ॥२३॥

श्रीपराशरजी चोले-अदितिद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् विष्णु देवमातासे हँसकर वोले—"हे देवि! तुम तो हमारी माता हो; तुम प्रसन्न होकर हमें वरदायिनी होओ" ॥२॥

अदिति बोळी-हे पुरुषसिंह ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो । तुम मर्त्यछोकमें सम्पूर्ण सुरासुरोंसे अजेय होगे ॥२५॥

श्रीपराशरजी घोळे-तदनन्तर शकपत्नी शचीके सिहत कृष्णप्रिया सत्यभामाने अदितिको पुनः-पुनः प्रणाम करके कहा - "माता! आप प्रसन्न होइये"॥२६॥

अदिति बोली-हे सुन्दर भृकुटिवाली ! मेरी कृपासे तुझे कमी वृद्धावस्था या विरूपता व्याप्त न होगी | हे अनिन्दितांगि ! तेरा नवयीवन सदा स्थिर रहेगा ||२७||

श्रीपराशरजी बोळे-तदनन्तर अदितिकी आज्ञासे देवराजने अत्यन्त आदर-सःकारके साथ श्रीकृष्णचन्द्र-का पूजन किया ॥२८॥ किन्तु कल्पवृक्षके पुष्पोंसे अलंकृता इन्द्राणीने सत्यमामाको मानुषी समझकर वे पुष्प न दिये ॥२९॥ हे साधुश्रेष्ठ ! तदनन्तर सत्य-मामाको सहित श्रीकृष्णचन्द्रने भी देवताओंके नन्दन आदि मनोहर उद्यानोंको देखा ॥३०॥ वहाँपर केशिनिणूदन जगन्नाथ श्रीकृष्णने सुगन्धपूर्ण मझरी-पुज्ञधारी, नित्याह्रादकारी, ताम्रवर्ण बाल और पत्तोंसे सुशोभित अमृत-मन्थनके समय प्रकट हुआ तथा सुनहरी छाल्वाला पारिजात-वृक्ष देखा ॥३१-३२॥

तरुराजमनुत्तमम् ।
त्यभामा द्विजोत्तम । परम प्रीतिवश सत्यभामा अति प्रसन्न हुई और
यते कृष्ण पाद्पः ॥३३॥
सत्यर्थं प्रियेति मे ।

पं नीयतां तरुः ॥३४॥

परम प्रीतिवश सत्यभामा अति प्रसन्न हुई और
श्रीगोविन्दसे बोळी— "हे कृष्ण ! इस वृक्षको द्वारकापुरी
क्यों नहीं ले चळते !॥३३॥ यदि आपका यह वचन कि
'तुम ही मेरी अत्यन्त प्रिया हो' सत्य है तो मेरे गृहोद्यानमें लगानेके लिये इस वृक्षको ले चळिये ॥३॥।

न मे जाम्बवती ताहगभीष्टा न च रुक्मिणी।
सत्ये यथा त्विमत्युक्तं त्वया कृष्णासकृत्प्रियम्।३५।
सत्यं तद्यदि गोविन्द नोपचारकृतं मम।
तदस्तु पारिजातोऽयं मम गेहविभूषणम्॥३६॥
विश्रती पारिजातस्य केशपक्षेण मञ्जरीम्।
सपत्नीनामहं मध्ये शोभेयमिति कामये॥३७॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तस्स प्रहस्येनां पारिजातं गरुत्मति। आरोपयामास हरिस्तमूचुर्वनरक्षिणः ।।३८।। भो शची देवराजस महिपी तत्परिग्रहम्। पारिजातं न गोविन्द हर्तुमहिसि पादपम् ॥३९॥ उत्पन्नो देवराजाय दत्त्तस्सोऽपि ददौ प्रनः । महिष्ये सुमहाभाग देन्ये शच्ये कुत्रहलात् ॥४०॥ शचीविभूषणार्थाय देवैरमृतमन्थने। उत्पादितोऽयं न श्वेमी गृहीत्वैनं गमिष्यसि ॥४१॥ देवराजो मुखप्रेक्षी यसास्तसाः परिग्रहम्। मौढ्यात्प्रार्थयसे क्षेमी गृहीत्वैनं हि को व्रजेत्।।४२।। अवश्यमस्य देवेन्द्रो निष्कृतिं कृष्ण यास्यति । वज्रोद्यतकरं शक्रमनुयास्यन्ति चामराः ॥४३॥ सकलैर्देवैर्विग्रहेण तवाच्युत । विपाककर यत्कर्म तन शंसन्ति पण्डिताः ॥४४॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्ते तैरुवाचैतान् सत्यभामातिकोपिनी । का ग्रची पारिजातस्यं को वा शकस्सुराधिपः॥४५॥ सामान्यस्सर्वलोकस्य यद्येषोऽमृतमन्थने । सम्रुत्पन्नस्तरुः कस्मादेको गृह्णाति वासवः॥४६॥ हे कृष्ण ! आपने कई बार मुझसे यह प्रिय वाक्य कहा है कि 'हे सत्ये! मुझे त् जितनी प्यारी है उतनी न जाम्बवती है और न रुक्मिणी ही' ॥ ३५ ॥ हे गोविन्द ! यदि आपका यह कथन सत्य है—केवल मुझे बहलाना ही नहीं है— तो यह पारिजात-चृक्ष मेरे गृहका भूपण हो ॥३६॥ मेरी ऐसी इच्छा है कि मैं अपने केश-कलापोंमें पारिजात-पुष्प गूँथकर अपनी अन्य सपिंहयोंमें सुशोमित होऊँ" ॥३०॥

श्रीपराशरजी बोले-सत्यभामाके इस प्रकार कहने-पर श्रीहरिने हँसते हुए उस पारिजात-वृक्षको गरुड-पर रख लिया; तव नन्दनवनके रक्षकोंने कहा-॥३८॥ "हे गोविन्द ! देवराज इन्द्रकी पत्नी जो महारानी शची हैं यह पारिजात-वृक्ष सम्पत्ति है, आप इसका हरण न कीजिये ॥ ३९ ॥ क्षीर-समुद्रसे उत्पन्न होनेके अनन्तर यह देवराजको दिया गया था; फिर हे महाभाग ! देवराजने कुत्ह्ळवश इसे अपनी महिषी शचीदेवीको दे दिया है ॥ ४०॥ समुद्र-मन्थनके समय शचीको विभूषित करनेके छिये ही देवताओंने इसे उत्पन्न किया था; इसे डेकर आप कुशलपूर्वक नहीं जा सकेंगे ॥४१॥ देवराज भी जिसका मुँह देखते रहते हैं उस शचीकी सम्पत्ति इस पारिजातकी इच्छा आप मूढताहीसे करते हैं; इसे छेकर मछा कौन सकुशछ जा सकता है ? ॥ १२॥ हे कृष्ण ! देवराज इन्द्र इस वृक्षका वदला चुकानेके लिये अवस्य ही वज्र लेकर उद्यत होंगे और फिर देवगण भी अवस्य ही उनका अनुगमन करेंगे ॥ ४३ ॥ अतः हे अच्युत ! समस्त देवतांओंके साथ रार बढ़ानेसे आपका कोई छाम नहीं; क्योंकि जिस कर्मका परिणाम कट होता है, पण्डितजन उसे अच्छा नहीं कहते ॥ ४४ ॥

श्रीपराशरजी बोले-उद्यान-रक्षकोंके इस प्रकार कहनेपर सत्यमामाने अत्यन्त कृद्ध होकर कहा— "शची अथवा देवराज इन्द्र ही इस पारिजातके कौन होते हैं ?॥ १५॥ यदि यह अमृत-मन्यनके समय उत्पन्न हुआ है, तो सबकी समान सम्पत्ति है। अकेला इन्द्र ही इसे कैसे ले सकता है ?॥ १६॥ यथा सुरा यथैवेन्दुर्यथा श्रीर्वनरक्षिणः ।
सामान्यस्तर्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्वमः ॥४७॥
मर्तृबाहुमहागर्वाद्वणद्भयेनमथो शची ।
तत्कथ्यतामलं क्षान्त्या सत्या हारयति द्वमम् ॥४८॥
कथ्यतां च द्वतं गत्वा पौलोम्या वचनं मम ।
सत्यभामा वदत्येतिदिति गर्वोद्धताक्षरम् ॥४९॥
यदि त्वं दियता भर्तुर्यदि वश्यः पतिस्तव ।
मद्भर्तुर्हरतो वृक्षं तत्कारय निवारणम् ॥५०॥
जानामि ते पति शकं जानामि त्रिदशेश्वरम् ।
पारिजातं तथाप्येनं माजुषी हारयामि ते ॥५१॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्ता रक्षिणो गत्वा शच्याः प्रोचुर्यथोदितम्। श्रुत्वा चोत्साहयामास शची शक्रं सुराधिपम् ।५२। ततस्समस्तदेवानां सैन्यैः परिवृतो हरिम्। प्रययौ पारिजातार्थमिन्द्रो योद्धं द्विजोत्तम ॥५३॥ परिचनिस्त्रिशगदाश्र्लवरायुधाः। वभुवुद्मिदशास्सजाः शके वजकरे स्थिते ॥५४॥ ततो निरीक्ष्य गोविन्दो नागराजोपरि स्थितम् । शक्रं देवपरीवारं युद्धाय सम्रुपस्थितम्।।५५॥ चकार शङ्खिनिर्घोपं दिशक्शब्देन पूरयन्। मुमोच शरसङ्घातान्सहस्रायुतशक्शितान् ॥५६॥ ततो दिशो नभश्रेव दृष्टा शरशतैश्रितम्। **मुमुचुस्निद्शास्सर्वे** बस्रशस्राण्यनेकशः ॥५७॥ एकैकमसं शसं च देनैर्र्यकं सहस्रशः। चिच्छेद लीलयैवेशो जगतां मधुद्धदनः॥५८॥ पाशं सलिलराजस समाकृष्योरगाशनः।

अरे वनरक्षको ! जिस प्रकार [समुद्रसे उत्पन्न हुए] मदिरा, चन्द्रमा और छक्ष्मीका सब छोग समानतासे भोग करते हैं उसी प्रकार पारिजात-वृक्ष भी समींकी सम्पत्ति है ॥४७॥ यदि पतिके बाहुबळसे गर्विता होकर शचीने ही इसपर अपना अधिकार जमा रखा है तो उससे कहना कि सत्यभामा उस वृक्षको हरण कराकर लिये जाती है, तुम्हें क्षमा करनेकी आवस्यकता नहीं है ॥४८॥ अरे मालियो ! तुम तुरन्त जाकर मेरे ये शब्द शचीसे कहो कि सत्यभामा अत्यन्त गर्वपूर्वक कड़े अक्षरोंमें यह कहती है कि यदि तुम अपने पतिको अत्यन्त प्यारी हो और वे तुम्हारे वशीभूत हैं तो मेरे पतिको पारिजात हरण करनेसे रोकें ॥४९-५०॥ मैं तुम्हारे पति राक्रको जानती हूँ और यह भी जानती हूँ कि वे देवताओं के खामी हैं तथापि मैं मानवी ही तुम्हारे इस पारिजात-वृक्षको लिये जाती हूँ" ॥५१॥

श्रीपराशरजी बोले-सत्यभामाके इस प्रकार कहने-पर वनरक्षकोंने शचीके पास जाकर उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह दिया। यह सब सुन-कर राचीने अपने पति देवराज इन्द्रको उत्साहित किया ॥५२॥ हे द्विजोत्तम ! तब देवराज इन्द्र पारिजात-वृक्षको छुड़ानेके लिये सम्पूर्ण देवसेनाके सहित श्रीहरिसे लड़नेके लिये चले ॥५३॥ जिस समय इन्द्रने अपने हाथमें वज्र लिया उसी समय सम्पूर्ण देवगण परिघ, निश्चिश, गदा और शूळ आदि अस्त-शर्बोसे मुसज्जित हो गये ॥५४॥ तदनन्तर देवसेनासे घिरे हुए ऐरावतारूढ इन्द्रको युद्धके लिये उद्यत देख श्रीगोविन्दने सम्पूर्ण दिशाओंको शब्दाय-मान करते हुए शङ्खध्वनि की और हजारों-लाखों तीखे वाण छोड़े ॥५५-५६॥ इस प्रकार सम्पूर्ण दिशाओं और आकाशको सैकड़ों वाणोंसे पूर्ण देख देवताओंने अनेकों अस-रास छोड़े॥५०॥

त्रिलोकीके खामी श्रीमधुसूदनने देवताओंके छोड़े हुए प्रत्येक अख-राखके लीलासे ही हजारों दुकड़े कर दिये ॥५८॥ सर्पाहारी गरुडने जलाधिपति वरुणके

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

चकार खण्डशश्रञ्जा बालपन्नगदेहवत् ॥५९॥
यमेन प्रहितं दण्डं गदाविश्वेपखण्डितम् ।
पृथिच्यां पातयामास भगवान् देवकीसुतः ॥६०॥
श्विविकां च धनेशस्य चकेण तिलशो विश्वः ।
चकार शौरिरकं च दृष्टिदृष्ट्वतौजसम् ॥६१॥
नीतोऽप्रिक्शीततां वाणैद्रीविता वसवो दिशः ।
चक्रविच्छिनशूलाग्रा रुद्रा श्विव निपातिताः ॥६२॥
साध्या विश्वेऽथ मरुतो गन्धविश्वेव सायकैः ।
शार्ज्जिणा प्रेरितैरस्ता च्योम्नि शाल्मलित्लवत्६३
गरुत्मानपि तुण्डेन पक्षाभ्यां च नसाङ्करैः ।
भक्षयंस्ताडयन् देवान् दारयंश्व चचार वै ॥६४॥

देवेन्द्रमधुद्धदनौ । ततक्शरसहस्रण परस्परं ववर्णते घाराभिरिव तोयदौ ॥६५॥ ऐरावतेन गरुडो युगुघे तत्र सङ्कले। देवैस्समस्तेर्युयुधे शक्रेण च जनार्दनः।।६६॥ भिनेष्वशेषवाणेषु शस्त्रेष्वस्तेषु च त्वरन्। जग्राह वासवो वजं कृष्णश्चकं सुदर्शनम्।।६७॥ ततो हाहाकृतं सर्वे त्रैलोक्यं द्विजसत्तम। देवराजजनार्दनौ ॥६८॥ वज्रचक्रकरौं दृष्ट्वा क्षिप्तं वज्रमथेन्द्रेण जग्राह भगवान्हरिः। न ग्रुमोच तदा चक्रं शक्रं तिष्ठेति चात्रवीत् ॥६९॥ प्रणष्टवर्जं देवेन्द्रं गरुडक्षतवाहनम्। पलायनपरायणम् ॥७०॥ सत्यभामात्रवीद्वीरं त्रैलोक्येश न ते युक्तं शचीमर्तुः पलायनम् । पारिजातस्रगाभोगा त्वाम्रुपस्थास्यते शची ॥७१॥ कीदृशं देवराज्यं ते पारिजातस्रगुज्ज्वलाम् ।

पाशको खींचकर अपनी चोंचसे सर्पके वच्चेके समान उसके कितने ही टुकड़े कर डाले ॥५९॥ श्रीदेवकी-नन्दनने यमके फेंके हुए दण्डको अपनी गदासे खण्ड-खण्ड कर पृथिवीपर गिरा दिया ॥६०॥ कुवेरके विमानको मगवान्ने सुदर्शनचक्रद्वारा तिल्ठ-तिल्ल कर डाला और सूर्यको अपनी तेजोमय दृष्टिसे देखकर ही निस्तेज कर दिया ॥६१॥ मगवान्ने तदनन्तर वाण वरसाकर अग्निको शीतल कर दिया और वसुओंको दिशा-विदिशाओंमें भगा दिया तथा अपने चक्रसे त्रिश्लेंको नोंक काटकर रुद्रगणको पृथिवीपर गिरा दिया ॥६२॥ मगवान्के चलाये हुए वाणोंसे साध्यगण, विश्लेदेवगण, मरुद्रण और गन्धर्वगण सेमलकी रूईके समान आकाशमें ही लीन हो गये॥६३॥ श्रीभगवान्के साथ गरुडजी भी अपनी चोंच, पञ्च और पञ्जोंसे देवताओंको खाते, मारते और फाट्रते फिर रहे थे ।६४।

फिर जिस प्रकार दो मेघ जलको घाराएँ वरसाते हों उसी प्रकार देवराज इन्द्र और श्रीमधुसूदन एक दूसरेपर वाण वरसाने लगे ॥६५॥ उस युद्धमें गरुडजी ऐरावतके साथ और श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवताओंके साथ लइ रहे थे ॥६६॥ सम्पूर्ण वाणोंके चुक जाने और अख-राखोंके कट जानेपर इन्द्रने शीघ्रतासे वज्र और कृष्णने सुदर्शनचक्र हाथमें लिया ॥६०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उस समय सम्पूर्ण त्रिलोकीमें इन्द्र और कृष्णचन्द्रको क्रमशः वज्र और चक्र लिये हुए देखकर हाहाकार मच गया ॥ ६८ ॥ श्रीहरिने इन्द्रके छोड़े हुए वज्रको अपने हाथोंसे पकड़ लिया और स्वयं चक्र न छोड़कर इन्द्रसे कहा—"अरे, ठहर !" ॥ ६९ ॥

इस प्रकार बज्र छिन जाने और अपने वाहन ऐरावतके गरुडद्वारा क्षत-विश्वत हो जानेके कारण भागते हुए वीर इन्द्रसे सत्यमामाने कहा—॥७०॥ "हे त्रेंळोक्येश्वर! तुम शचीके पित हो, तुम्हें इस प्रकार युद्धमें पीठ दिखळाना उचित नहीं है। तुम भागो मत, पारिजात-पुष्पोंकी माळासे विभूषिता होकर शची शीघ्र ही तुम्हारे पास आवेगी ॥७१॥ अब प्रेमवश अपने पास आयी हुई शचीको पहळेको माँति पारिजात-पुष्पकी अपक्यतो यथापूर्वं प्रणयाभ्यागतां शचीम् ॥७२॥ अलं शक प्रयासेन न ब्रीडां गन्तुमहिसि । नीयतां पारिजातोऽयं देवास्सन्तु गतव्यथाः॥७३॥ पतिगर्वावलेपेन बहुमानपुरस्सरम् । न ददर्श गृहं याताम्रुपचारेण मां शची ॥७४॥ स्त्रीत्वादगुरुचित्ताहं स्वभर्तश्राघनापरा । ततः कृतवती शक भवता सह विग्रहम् ॥७५॥ तदलं पारिजातेन परस्वेन हतेन मे । रूपेण गविंता सा तु भर्शो का स्त्री न गविंता॥७६॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तो वै निवद्दते देवराजस्तया द्विज ।

प्राह चैनामलं चण्डि सख्युः खेदोक्तिविस्तरैः॥७७॥

न चापि सर्गसंहारिश्यतिकर्ताखिलस्य यः ।

जितस्य तेन मे त्रीडा जायते विश्वरूपिणा ॥७८॥

यसाजगत्सकलमेतदनादिमध्या
द्यसिन्यतश्चन भविष्यति सर्वभृतात् ।

तेनोद्भवप्रलयपालनकारणेन

त्रीडा कथं भवति देवि निराकृतस्य ॥७९॥

सक्तलभ्रवनस्रतिर्मृतिरल्पाल्पस्रक्ष्मा

विदितसकलवेदैर्ज्ञायते यस्य नान्यैः ।

तमजमकृतमीशं शाश्चतं स्वेच्छयैनं

जगद्वपकृतिमर्त्यं को विजेत्रं समर्थः ॥८०॥

मालासे अलब्कृत न देखकर तुम्हें देवराजलका क्या सुख होगा ? ॥ ७२ ॥ हे शक ! अब तुम्हें अधिक प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं है, तुम सङ्कोच मत करो; इस पारिजात-वृक्षको ले जाओ । इसे पाकर देवगण सन्तापरहित हों ॥ ७३ ॥ अपने पतिके वाहुबल्से अत्यन्त गर्विता शचीने अपने घर जानेपर मी मुझे कुछ अधिक सम्मानकी दृष्टिसे नहीं देखा था ॥७४॥ स्त्री होनेसे मेरा चित्त भी अधिक गम्भीर नहीं है, इसलिये मैंने भी अपने पतिका गौरव प्रकट करनेके लिये ही तुमसे यह लड़ाई ठानी थी ॥७५॥ मुझे दूसरेकी सम्पत्ति इस पारिजातको ले जानेकी क्या आवश्यकता है ? शची अपने रूप और पतिके कारण गर्विता है तो ऐसी कौन-सी स्ना है जो इस प्रकार गर्वीली न हो ? ॥७६॥

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विज ! सत्यभामाके इस प्रकार कहनेपर देवराज छौट आये और बोले-"हे कोधिते ! मैं तुम्हारा सुहृद् हूँ, अतः मेरेलिये ऐसी वैमनस्य बढ़ानेवाली उक्तियोंके विस्तार करनेका कोई प्रयोजन नहीं है ? ॥७७॥ जो सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले हैं उन विस्वरूप प्रमुसे पराजित होनेमें भी मुझे कोई सङ्कोच नहीं है ॥७८॥ जिस आदि और मध्यरहित प्रमुसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसमें यह स्थित है और फिर जिसमें छीन होकर अन्तमें यह न रहेगा; हे देवि ! जगत्की उत्पत्ति, प्रलय और पालनके कारण उस परमात्मासे ही परास्त होनेमें मुझे कैसे लजा हो सकती है ! ॥७९॥ जिसकी अत्यन्त अल्प और सूक्ष्म मूर्तिको, जो सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाली है, सम्पूर्ण वेदोंको जाननेवाले अन्य पुरुष भी नहीं जान पाते तथा जिसने जगत्के उपकारके छिये अपनी इच्छासे ही मनुष्यरूप धारण किया है उस अजन्मा, अकर्ता और नित्य ईश्वरको जीतनेमें कौन समर्थ

इति श्रीविष्णुपुराणे पश्चमेंऽशे त्रिंशोऽच्यायः ॥३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

भगवान्का द्वारकापुरीमें छीटना और सीछहं हजार एक सी कन्याओंसे विवाह करना।

श्रीपराशर उवाच संस्तुतो भगवानित्थं देवराजेन केशवः। प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेन्द्रं द्विजोत्तम् ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच

देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते। क्षन्तव्यं भवतैवेदमपराधं कृतं मम।। २।। पारिजाततरुश्रायं नीयतामुचितास्पद्म् । गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात् ॥ ३ ॥ वज्रं चेदं गृहाण त्वं यदत्र प्रहितं त्वया । त्रवैवैतत्प्रहरणं शक वैरिविदारणम्।। ४।।

इन्द्र उवाच विमोहथसि मामीश मत्योंऽहमिति किं वदन्। जानीमस्त्वां भगवतो न तु सूक्ष्मविदो वयम्॥ ५ ॥

करोष्यसुरसदन ॥ ६॥ जगतक्शल्यनिष्कर्ष नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवर्ती पुरीम् ।

योऽसि सोऽसि जगत्त्राणप्रवृत्तो नाथ संस्थितः।

मर्त्यलोके त्वया त्यक्ते नायं संस्थास्वते भ्रुवि ॥ ७ ॥

देव देव जगनाथ कृष्ण विष्णो महाभुज।

शङ्खचकगदापाणे क्षमस्तैतद्व्यतिक्रमम्।। ८।।

श्रीपराशर उवाच

तथेत्युक्त्वा च देवेन्द्रमाजगाम भ्रुवं हरिः। प्रसक्तैः सिद्धगन्धर्वैः स्तूयमानः सुरर्षिभिः॥ ९॥ ततश्रङ्खमुपाष्माय द्वारकोपरि संस्थितः। हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिनां द्विज ॥१०॥ गुरुडात्सत्यभामासहायवान् । । १०॥ तदनन्तर् सत्यभामाक साह् अवतीयांथ

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विजोत्तम! इन्द्रने जब इस प्रकार स्तुति की तो भगवान् कृष्णचन्द्र गम्भीर भाव-से हँसते हुए इस प्रकार वोछे ॥ १ ॥

श्रीकृष्णजी बोले-हे जगत्पते ! आप देवराज इन्द्र हैं और हम मरणधर्मा मनुष्य हैं । हमने आपका जो अपराध किया है उसे आप क्षमा करें ॥ २ ॥ मैंने जो यह पारिजात-वृक्ष लिया था इसे इसके योग्य स्थान (नन्दनवन) को छे जाइये। हे शक्र ! मैंने तो इसे सत्यभामाके कहनेसे ही छे छिया था॥३॥ और आपने जो वज्र फेंका या उसे भी छे छीजिये. क्योंकि हे शक ! यह शत्रुओंको नष्ट करनेवाला शस्त्र आपहीका है ॥ ४ ॥

इन्द्र बोले-हे ईश ! 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा कहकर मुझे क्यों मोहित करते हैं ? हे भगवन् ! मैं तो आपके इस सगुण खरूपको ही जानता हूँ, हम आपके सूक्स खरूपको जाननेवाछे नहीं हैं ॥ ५ ॥ हे नाय ! आप जो हैं वही हैं, [हम तो इतना ही जानते हैं कि] हे दैत्यदलन ! आप लोकरक्षामें तत्पर हैं और इस संसारके काँटोंको निकाल रहे हैं ॥ ६॥ हे कृष्ण ! इस पारिजात-बृक्षको आप द्वारकापुरी छे जाइये, जिस समय आप मर्त्यलोक छोड़ देंगे, उस समय यह भूलोंक-में नहीं रहेगा ॥ ७ ॥ हे देवदेव ! हे जगन्नाय ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे महावाहो ! हे शंखचक्रगदा-पाणे ! मेरी इस घृष्टताको क्षमा कीजिये ॥ ८॥

श्रीपराशरजी बोले-तदनन्तर श्रीहरि देवराजसे 'तुम्हारी जैसी इच्छा है वैसा ही सही' ऐसा कहकर सिद्ध, गन्धर्व और देवर्षिगणसे स्तुत हो मूर्लोकमें चले आये ॥ ९ ॥ हे द्विज ! द्वारकापुरीके ऊपर पहुँच-कर श्रीकृष्णचन्द्रने [अपने आनेकी सूचना देते हुए] शंख वजाकर द्वारकावासियोंको आनन्दित किया ॥ १० ॥ तदनन्तर सत्यभामाके सहित गरूडसे उतरकर

निष्कुटे स्थापयामास पारिजातं महातरुम् ॥११॥ यमभ्येत्य जनस्सर्वो जातिं सरति पौर्विकीम् । वास्यते यस्य पुष्पोत्थगन्धेनोर्वी त्रियोजनम् ॥१२॥ ततस्ते यादवास्सर्वे देहवन्धानमानुषान् । दृह्युः पाद्पे तस्मिन् कुर्वन्तो मुखद्शनम् ।।१३॥ किङ्करैस्सम्पानीतं हस्त्यश्वादि ततो धनम्। विमज्य प्रददौ कृष्णो बान्धवानां महामतिः॥१४॥ कन्याश्च कृष्णो जग्राह नरकस्य परिग्रहान ।।१५।। ततः काले शुभे प्राप्ते उपयेमे जनार्दनः। ताः कन्या नरकेणासन्सर्वतो यास्समाहृताः ॥१६। एकसिनेव गोविन्दः काले तासां महामुने । जग्राह विधिवत्पाणीनपृथग्गेहेषु धर्मतः ॥१७॥ षोडशस्त्रीसहस्राणि शतमेकं ततोऽधिकम्। तावन्ति चक्रे रूपाणि भगवान् मधुसूद्नः ॥१८॥ एकैकमेव ताः कन्या मेनिरे मधुद्धद्नः। पाणिंग्रहणं मैत्रेय कृतवानिति ॥१९॥ निशासु च जगत्स्रष्टा तासां गेहेषु केशवः । उवास वित्र सर्वासां विश्वरूपघरो हरिः ॥२०॥ रात्रिके समय उन समीके घरोंमें रहते थे॥ २०॥

उस पारिजात-महावृक्षको [सत्यभामाके] गृहोद्यानमें लगा दिया ॥ ११ ॥ जिसके पास आकर सब मनुष्यों-को अपने पूर्वजन्मका स्मर्ण हो आता है और जिसके पुष्पोंसे निकली हुई गन्धसे तीन योजनतक पृथिवी सुगन्धित रहती है ॥ १२ ॥ यादवोंने उस वृक्षके पास जाकर अपना मुख देखा तो उन्हें अपना शरीर अमानुष दिखलायी दिया ॥ १३॥

तदनन्तर महामति श्रीकृष्णचन्द्रने नरकासुरके सेवकोंद्वारा लाये हुए हाथी-घोड़े आदि धनको अपने वन्धु-बान्धवोंमें बाँट दिया और नरकासुरकी वरण की हुई कन्याओंको खयं छे छिया ॥१४-१५॥ जुम समय प्राप्त होनेपर श्रीजनार्दनने, उन समस्त कन्याओंके साथ, जिन्हें नरकासुरने बलात्कारसे हर लाया था,विवाह किया ॥१६॥ हे महामुने ! श्रीगोविन्दने एक ही समय पृथक्-पृथक् भवनोंमें उन सबके साथ विधिवत् धर्मपूर्वक पाणि-प्रहण किया ॥१७॥ वे सोळह हजार एक सी स्नियाँ थीं; उन सबके साथ पाणिप्रहण करते समय श्रीमधुसूदनने इतने ही रूप बना लिये ॥१८॥ हे मैत्रेय ! परन्तु उस समय प्रत्येक कन्या 'भगवान्ने मेरा ही पाणिप्रहण किया है' इस प्रकार उन्हें एक ही समझ रही थी ॥ १९॥ हे निप्र ! जगत्स्रष्टा विस्वरूपधारी श्रोहरि

= अत्येश्रत्

इति श्रीविष्णुपुराणे पश्चमेंऽशे एकत्रिशोऽध्यायः ॥३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

उपा-चरित्र।

श्रीपराशर उवाच

प्रद्यसाद्या हरेः पुत्रा रुक्मिण्यां कथितास्तव । भाजुमौमेरिकाद्यांश्व सत्यभामा व्यजायत ॥ १ ॥ दीप्तिमत्ताम्रपक्षाद्या रोहिण्यां तनया हरेः। बभुवुर्जाम्बवत्यां च साम्बाद्या बलशालिनः॥ २ ॥ तनया भद्रविन्दाद्या नाम्रजित्यां महाबलाः ।

श्रीपराशरजी बोले-रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन हुए मगवान्के प्रयुम्न आदि पुत्रोंका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं; सत्यभामाने मानु और भौमेरिक आदिको जन्म दिया ॥ १ ॥ श्रीहरिके रोहिणीके गर्मसे दीप्तिमान् और ताम्रपक्ष आदि तथा जाम्बवतीसे बळशाळी साम्ब आदि पुत्र हुए॥ २ ॥ नाम्नजिती (सत्या) से महाबळी भद्रविन्द आदि और शैन्या (मित्र-सङ्घामजित्प्रधानास्त श्रेव्यायां च हरेस्सताः ॥ ३॥ विन्दा) से संप्रामजित् आदि उत्पत्र हुए॥ ३॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

वृकाद्याश्र सुता माद्र्यां गात्रवत्त्रमुखान्सुतान्।
अवाप लक्ष्मणा पुत्रान्कालिन्द्याश्र श्रुताद्यः ॥४॥
अन्यासां चैव भार्याणां सम्रुत्पन्नानि चिक्रणः।
अष्टायुतानि पुत्राणां सहस्राणि शतं तथा ॥ ५॥
प्रद्युन्नः प्रथमस्तेषां सर्वेषां रुक्मिणीसुतः।
प्रद्युन्नः प्रथमस्तेषां सर्वेषां रुक्मिणीसुतः।
प्रद्युन्नाद्गिरुद्धोऽभूद्वज्रस्तस्माद्जायत ॥६॥
अनिरुद्धो रणेऽरुद्धो बलेः पौत्रीं महावलः।
उषां बाणस्य तनयामुपयेमे द्विजोत्तम॥७॥
यत्र युद्धमभूद्धोरं हरिशङ्करयोर्महत्।
छिनं सहस्रं बाहूनां यत्र वाणस्य चिक्रणा॥८॥
श्रीमैत्रेय उवाच

कथं युद्धमभूद्व्रह्मनुपार्थे हरकृष्णयोः । कथं क्षयं च वाणस्य वाहूनां कृतवान्हरिः ॥ ९ ॥ एतत्सर्वं महाभाग ममाख्यातुं त्वमईसि । महत्कौतृहुलं जातं कथां श्रोतुमिमां हरेः ॥१०॥

श्रीपराशर उवाच

उपा वाणसुता वित्र पार्वतीं सह ग्रम्भुना । क्रीडन्तीम्रपलक्ष्योचैः स्पृहां चक्रे तदाश्रयाम् ।११। ततस्सकलचित्तज्ञा गौरी तामाह भामिनीम् । अलमत्यर्थतापेन भर्त्री त्वमिप रंस्यसे ॥१२॥ इत्युक्ता सा तया चक्रे कदेति मतिमात्मनः । को वा भर्ता ममेत्याह पुनस्तामाह पार्वती ॥१३॥ पार्वत्युवाच

वैशाखशुक्कद्वादक्यां खमे योऽभिमवं तव । करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति ॥१४॥ श्रीपराग्नर जवाच

तस्यां तिथानुपास्तमे यथा देव्या समीरितम् । तथैवाभिभवं चके कथिद्रागं च तत्र सा ॥१५॥ ततः प्रबुद्धा पुरुषमपश्यन्ती समुत्सुका । माद्रीसे दृक आदि, रुक्ष्मणासे गात्रवान् आदि तया कालिन्दीसे श्रुत आदि पुत्रोंका जन्म हुआ॥ ४॥ इसी प्रकार मगवानकी अन्य ब्रियोंके भी आठ अयुत आठ हजार आठ सौ (अट्टासी हजार आठ सौ) पुत्र हुए॥५॥

इन सव पुत्रों में रुक्मिणीनन्दन श्रद्युम्न सवसे वड़े थे; प्रद्युम्नसे अनिरुद्धका जन्म हुआ और अनिरुद्धसे वज्र उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तम! महावळी अनिरुद्ध युद्धमें किसीसे रोके नहीं जा सकते थे। उन्होंने विख्नि पौत्री एवं वाणासुरकी पुत्री उषासे विवाह किया था॥ ७॥ उस विवाहमें श्रीहरि और मगवान् शंकरका घोर युद्ध हुआ था और श्रीकृष्ण-चन्द्रने वाणासुरकी सहस्र मुजाएँ काट डाळी थीं॥ ८॥

श्रीमेंत्रेयजी बोलें-हे ब्रह्मन् ! उषाके लिये श्रीमहादेव और कृष्णका युद्ध क्यों हुआ और श्रीहरिने वाणासुर-की मुजाएँ क्यों काट डार्लों ! ॥ ९॥ हे महाभाग ! आप मुझसे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त कहिये; मुझे श्रीहरिकी यह कया सुननेका वड़ा कुत्तहल हो रहा है ॥ १०॥

श्रीपराशरजी बोले-हे विप्र ! एक वार वाणाझर-की पुत्री उपाने श्रीशंकरके साथ पार्वतीजीको क्रीडा करती देख खयं भी अपने पतिके साथ रमण करनेकी इच्छा की ॥ ११ ॥ तब सर्वान्तर्यामिनी श्रीपार्वतीजीने उस सुकुमारीसे कहा—"त् अधिक सन्तप्त मत हो, यथासमय त् भी अपने पतिके साथ रमण करेगी" ॥ १२ ॥ पार्वतीजीके ऐसा कहनेपर उपाने मन-ही-मन यह सोचकर कि 'न जाने ऐसा कव होगा श और मेरा पति भी कौन होगा ? [इस सम्बन्धमें] पार्वती-जीसे पूछा, तब पार्वतीजीने उससे फिर कहा—॥ १३ ॥

पार्वतीजी बोर्छीं-हे राजपुत्रि ! वैशाख शुक्का द्वादशीकी रात्रिको जो पुरुष सप्तमें तुझसे हठात् सम्मोग करेगा वहीं तेरा पति होगा ॥ १४॥

श्रीपराशरजी बोले-तदनन्तर उसी तिथिको उपा-की खप्तावस्थामें किसी पुरुषने उससे, जैसा श्रीपार्वती-देवीने कहा था, उसी प्रकार सम्मोग किया और उसका भी उसमें अनुराग हो गया ॥ १५॥ हे मैत्रेय ! तब उसके बाद खप्तसे जगनेपर जब उसने उस पुरुषको न देखा तो बह उसे देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

क्र गतोऽसीति निर्लजा मैत्रेयोक्तवती सखीम् ।१६।

वाणस मन्त्री कुम्भाण्डः चित्रलेखा च तत्सुता।
तस्याः सख्यभवत्सा च प्राह कोऽयं त्वयोच्यते।१७।
यदा लज्जाकुला नास्यै कथयामास सा सखी।
तदा विश्वासमानीय सर्वमेवाभ्यवादयत्।।१८॥
विदितार्थां त तामाह पुनश्रोषा यथोदितम्।
देच्या तथैव तत्प्राप्तौ यो ह्यपायः कुरुष्व तम्।।१९॥

चित्रलेखोवाच

दुविंज्ञेयमिदं वक्तुं प्राप्तुं वापि न शक्यते ।
तथापि किञ्चित्कर्तव्यम्रपकारं प्रिये तव ॥२०॥
सप्ताष्टदिनपर्यन्तं तावत्कालः प्रतीक्ष्यताम् ।
इत्युक्त्वाभ्यन्तरं गत्वा उपायं तमथाकरोत्॥२१॥
श्रीपराशर जवाच

ततः पटे सुरान्दैत्यान्गन्धर्वाश्च प्रधानतः ।

मनुष्यांश्च विलिख्यास्यै चित्रलेखा व्यदर्शयत्।२२।

अपास्य सा त गन्धर्वास्तयोरगसुरासुरान् ।

मनुष्येषु ददौ दृष्टि तेष्वप्यन्धकवृष्णिषु ॥२३॥

कृष्णरामौ विलोक्यासीत्सुभूलिजाजडेव सा ।

प्रद्युम्नदर्शने त्रीडादृष्टि निन्येऽन्यतो द्विज ॥२४॥

दृष्टमात्रे ततः कान्ते प्रद्युम्नतनये द्विज ।

दृष्ट्यात्यर्थविलासिन्या लजा कापि निराकृता ।२५॥

सोऽयं सोऽयमितीत्युक्ते तया सा योगगामिनी ।

चित्रलेखात्रवीदेनासुपां वाणसुतां तदा ॥२६॥

अपनी सखीको ओर छक्ष्य करके निर्छजापूर्वक कहने छगी—''हे नाय! आप कहाँ चछे गये ?'' ॥१६॥

वाणासुरका मन्त्री कुम्माण्ड था; उसकी चित्रहेखा नामकी पुत्री थी, वह उषाकी सखी थी, [उषाका यह प्रछाप सुनकर] उसने पूछा—"यह तुम किसके विषयमें कह रही हो ?"॥ १७॥ किन्तु जब छजावश उषाने उसे कुछ भी न वतलाया तब चित्रहेखाने [सब बात गुप्त रखनेका] विश्वास दिलाकर उषासे सब बृत्तान्त कहला लिया॥ १८॥ चित्रहेखाके सब बात जान हेनेपर उषाने जो कुछ श्रीपार्वतीजीने कहा था बह भी उसे सुना दिया और कहा कि अब जिस प्रकार उसका पुनः समागम हो वही उपाय करो॥१९॥

चित्रलेखाने कहा-हे प्रिये ! तुमने जिस पुरुषको देखा है उसे तो जानना भी बहुत कठिन है फिर उसे बतलाना या पाना कैसे हो सकता है ? तथापि मैं तुम्हारा कुछ-न-कुछ उपकार तो कहँगी ही ॥ २०॥ तुम सात या आठ दिनतक मेरी प्रतीक्षा करना—ऐसा कहकर वह अपने घरके मीतर गयी और उस पुरुषको हूँढनेका उपाय करने लगी ॥ २१॥

श्रीपराशरजी बोले-तदनन्तर [आठ-सात दिन पश्चात् छौटकर] चित्रलेखाने चित्रपटपर मुख्य-मुख्य देवता, दैत्य, गन्धर्व और मनुष्योंके चित्र छिखकर उषाको दिखलाये ॥ २२ ॥ तब उषाने गन्धर्य, नाग, देवता और दैत्य आदिको छोड़कर केवल मनुष्योंपर और उनमें भी विशेषतः अन्धक और दृष्णिवंशी यादवोंपर ही दृष्टि दी ॥ २३ ॥ हे द्विज ! राम और कृष्णके चित्र देखकर वह सुन्दर मृकुटिवाली छजासे जडवत् हो गयी तथा प्रद्युमको देखकर उसने छजावश अपनी दृष्टि हटा ली ॥ २४ ॥ तत्पश्चात् प्रद्युम्नतनय प्रियतम अनिरुद्धजीको देखते ही उस अत्यन्त विलिसनीकी छजा मानो कहीं चली गयी ॥ २५ ॥ [वह बोल उठी]— वह यही है, वह यही है। उसके इस प्रकार कहनेपर योगगामिनी चित्रलेखाने उस वाणासुरकी कन्यासे

New Delhi: Digitized by eGangotri

चित्रलेखोवाच

अयं कृष्णस्य पौत्रस्ते भर्ता देव्या प्रसादितः । अनिरुद्ध इति ख्यातः प्रख्यातः प्रियद्र्शनः ।२७। प्रामोपि यदि भर्तारमिमं प्राप्तं त्वयाखिलम् । दुष्प्रवेशा पुरी पूर्व द्वारका कृष्णपालिता ॥२८॥ तथापि यलाद्धर्तारमानयिष्यामि ते सिव । रहस्यमेतद्वक्तव्यं न कस्यचिद्पि त्वया ॥२९॥ अचिरादागमिष्यामि सहस्व विरहं मम। ययौ द्वारवतीं चोषां समाश्वास्य ततः सस्तीम् ।३०। द्वारकापुरीको गयी ॥ ३०॥

चित्रलेखा बोली-देवीने प्रसन कृष्णका पौत्र ही तेरा पति निश्चित किया है; इसका नाम अनिरुद्ध है और यह अपनी सुन्दरताके छिये प्रंसिद्ध है ॥ २७ ॥ यदि तुझको यह पति मिल गया तव तो त्ने मानो सभी कुछ पा लिया; किन्तु कृष्णचन्द्र-द्वारा सुरक्षित द्वारकापुरीमें पहले प्रवेश ही करना कठिन है ॥ २८ ॥ तथापि हे सखि ! किसी उपाय-से मैं तेरे पतिको लाऊँगी ही, त् इस गुप्त रहस्यको किसीसे भी न कहना ॥ २९ ॥ मैं शीघ्र ही आऊँगी, इतनी देर तू मेरे वियोगको सहन कर । अपनी सखी वँधाकर चित्रटेखा उषाको इस प्रकार ढाढस

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे द्वात्रिशोऽध्यायः ॥३२॥

तेंतीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण और वाणासुरका युद्ध।

श्रीपराशर उवाच

बाणोऽपि प्रणिपत्याग्रे मैत्रेयाह त्रिलोचनम् । देव बाहुसहस्रेण निर्विण्णोऽस्म्याहवं विना ॥ १ ॥ कचिन्ममैषां बाहूनां साफल्यजनको रणः। ्रेमविष्यति विना युद्धं भाराय मम कि भुजैः॥ २॥ श्रीशङ्कर उवाच

मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा वाण भविष्यति। पिशिताशिजनानन्दं प्राप्ससे त्वं तदा रणम्।। ३॥

श्रीपराशर उवाच

ततः प्रणस्य वरदं शम्भ्रमस्यागतो गृहम् । सभग्नं ध्वजमालोक्य हृष्टो हर्षे पुनर्ययौ ॥ ४ ॥ एतसिनेव काले तु योगविद्यावलेन तम्। अनिरुद्धमथानिन्ये चित्रलेखा वराप्सराः ॥ ५ ॥ कन्यान्तः पुरमभ्येत्य रममाणं सहोषया ।

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! एक बार वाणा-सुरने भी भगवान् त्रिछोचनको प्रणाम करके कहा था कि हे देव ! त्रिना युद्धके इन हजार मुजाओंसे मुझे बड़ा ही खेद हो रहा है ॥ १ ॥ क्या कभी मेरी इन मुजाओंको सफल करनेवाला युद्ध होगा ? भला बिना युद्धके इन भारकप मुजाओंसे मुझे लाभ ही क्या है ! ॥ २॥

श्रीशङ्करजी बोले-हे वाणासुर ! जिस समय तेरी मयूर-चिह्नवाली ध्वजा ट्रट जायगी उसी समय तेरे सामने मांसमोजी यक्ष-पिशाचादिको आनन्द देनेवाला युद्ध उपिथत होगा ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले-तदनन्तर, वरदायक श्री-शंकरको प्रणामकर वाणासुर अपने घर और फिर कालान्तरमें उस ध्वजाको टूटी देखकर अति आनन्दित हुआ ॥ ४ ॥ इसी समय अप्सरा-श्रेष्ठ चित्रलेखा अपने योगत्रलसे अनिरुद्धको वहाँ ले आयी ॥ ५ ॥ अनिरुद्धको कन्यान्तःपुरमें

विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशंसुर्दैत्यभूपतेः ॥ ६ ॥ च्यादिष्टं किङ्कराणां तु सैन्यं तेन महात्मना । जवान परिषं घोरमादाय परवीरहा ॥ ७॥

हतेषु तेषु वाणोऽपि रथस्थस्तद्वधोद्यतः । युष्यमानो यथाशक्ति यदुवीरेण निर्जितः ॥ ८॥ माय्या युयुधे तेन स तदा मन्त्रिचोदितः । ततस्तं पन्नगास्रेण ववन्ध यदुनन्दनम् ॥ ९॥

द्वारवत्यां क यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम्। यदुनामाचचक्षे तं बद्धं वाणेन नारदः ॥१०॥ तं शोणितपुरं नीतं श्रुत्वा विद्याविद्ग्धया । योपिता प्रत्ययं जग्मुर्याद्वा नामरैरिति ॥११॥ ततो गरुडम।रुद्य स्मृतमात्रागतं हरिः। बलप्रद्यस्मसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम्।।१२।। प्रमथैर्युद्धमासीन्महात्मनः । ययौ बाणपुराभ्याशं नीत्वा तान्सङ्ख्यं हरिः।।१३।। ततस्त्रिपादस्त्रिशिरा ज्वरो माहेश्वरो महान् । बाणरक्षार्थमभ्येत्य युयुघे शार्क्नधन्वना ॥१४॥ तद्भसम्पर्शसम्भूततापः कृष्णाङ्गसङ्गमात् । अवाप बलदेवोऽपि श्रममामीलितेक्षणः ॥१५॥ ततस्स युद्धचमानस्तु सह देवेन शार्झिणा। वैष्णवेन ज्वरेणाशु कृष्णदेहात्रिराकृतः ॥१६॥ नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम्। तं वीक्ष्य श्रम्यतामस्येत्याह देवः पितामहः ।१७। उषाके साथ रमण करता जान अन्तःपुररक्षकींने सम्पूर्ण वृत्तान्त दैत्यराज वाणासुरसे कह दिया ॥६॥ तब महाबीर वाणासुरने अपने सेवकोंको उससे युद्ध करनेकी आज्ञा दी; किन्तु शत्रु-दमन अनिरुद्धने अपने सम्मुख आनेपर उस सम्पूर्ण सेना-को एक छोहमय दण्डसे मार डाला ॥ ७॥

अपने सेवकोंके मारे जानेपर वाणासुर अनिरुद्ध-को मार डालनेकी इच्छासे रथपर चढ़कर उनके साथ युद्ध करने लगा; किन्तु अपनी शक्तिभर युद्ध करनेपर भी वह यदुवीर अनिरुद्धजीसे परास्त हो गया ॥ ८॥ तब वह मन्त्रियोंकी प्रेरणासे मायापूर्वक युद्ध करने लगा और यदुनन्दन अनिरुद्धको नाग-पाशसे बाँघ लिया ॥ ९॥

इधर द्वारकापुरीमें जिस समय समस्त यादवोंमें यह चर्चा हो रही थी कि 'अनिरुद्ध कहाँ गये?' उसी समय देवर्षि नारदने उनके वाणासुरद्वारा वाँचे जाने-की सूचना दी ॥ १०॥ नारदजीके मुखसे योग-विद्यामें निपुण युवती चित्रदेखाद्वारा उन्हें शोणितपुर हे जाये गये सुनकर यादवोंको विश्वास हो गया कि देवताओंने उन्हें नहीं चुराया* ॥ ११॥ तब स्मरणमात्रसे उपस्थित हुए गरुडपर चढ़कर श्रीहरि बल्राम और प्रदुष्नके सहित वाणासुरकी राजधानीमें आये॥ १२॥ नगरमें घुसते ही उन तीनोंका मगवान् शंकरके पार्षद प्रमथगणोंसे युद्ध हुआ; उन्हें नष्ट करके श्रीहरि वाणासुरकी राजधानीके समीप चले गये॥१३॥

तदनन्तर वाणासुरकी रक्षाके लिये तीन शिर और तीन पैरवाला माहेश्वर नामक महान् ज्वर आगे बढ़कर श्रीमगवान्से लड़ने लगा ॥१४॥ [उस ज्वरका ऐसा प्रमाव था कि] उसके फेंके हुए मस्मके स्पर्शसे सन्तप्त हुए श्रीकृष्णचन्द्रके शरीरका आलिङ्गन करने-पर वल्देवजीने भी शिथिल होकर नेत्र मूँद लिये॥१५॥ इस प्रकार भगवान् शाङ्ग धरके साथ [उनके शरीरमें न्याप्त होकर] युद्ध करते हुए उस माहेश्वर ज्वरको वैष्णव ज्वरने तुरन्त उनके शरीरसे निकाल दिया॥१६॥ उस समय श्रीनारायणकी मुजाओंके आधातसे उस माहेश्वर ज्वरको पीड़ित और विह्वल हुआ देखकर पितामह ब्रह्माजीने भगवान्से कहा—'इसे क्षमा कीजिये'॥१०॥ ततश्र क्षान्तमेवेति प्रोच्य तं वैष्णवं ज्वरम्। आत्मन्येव लयं निन्ये भगवान्मधुसूद्नः ॥१८॥

मम त्वया समं युद्धं ये सारिष्यन्ति मानवाः । विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैनं ययौ ज्वरः १९ ततोऽग्रीन्भगवान्पश्च जित्वा नीत्वा तथा क्षयम् । दानवानां वलं कृष्णश्चर्णयामास लीलया ॥२०॥ ततस्समस्तसैन्येन दैतेयानां बलेस्सतः। युगुघे शङ्करश्रेव कार्त्तिकेयश्र शौरिणा ॥२१॥ हरिशङ्करयोर्युद्धमतीवासीत्सुदारुणम् चुक्षुभुस्सकला लोकाः शस्त्रास्त्रांशुप्रतापिताः ॥२२॥ प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागतः। मेनिरे त्रिद्शास्तत्र वर्तमाने महारणे।।२३॥ जुम्भकास्रेण गोविन्दो जुम्भयामास शङ्करम् । ततः प्रणेशुर्देतियाः प्रमथाश्च समन्ततः ॥२४॥ जृम्मामिभूतस्तु हरो रथोपस्य उपाविश्रत्। न शशाक ततो योद्धुं कृष्णेनाक्किष्टकर्मणा ॥२५॥ प्रद्युम्नास्त्रेण पीडितः। गरुडश्रतवाह्य कुष्णहुङ्कारनिर्धृतशक्तिश्वापययौ ग्रहः ॥२६॥ जृम्भिते शङ्करे नष्टे दैत्यसैन्ये गुहे जिते। नीते प्रमथसैन्ये च सङ्घ्यं शार्क्षधन्यना ॥२७॥ नन्दिना सङ्गृहीताश्वमधिरूढो महारथम्। बाणस्तत्राययौ योद्धं कृष्णकार्ष्णिवलस्सह ॥२८॥ वलभद्रो महावीर्यो वाणसैन्यमनेकथा। विच्याघ वाणैः प्रभ्रश्य घर्मतश्र पलायत ॥२९॥ आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुसलेनाशु ताडितम् । उसकी सेनाको बलमहर्जी वडी फु

तव भगवान् मधुसूदनने 'अच्छा, मैंने क्षमा की' ऐसा कहकर उस वैष्णव ज्वरको अपनेमें छीन कर छिया ।१८।

ज्वर बोला-जो मनुष्य आपके साथ मेरे इस युद्धका स्मरण करेंगे वे ज्वरहीन हो जायेंगे, ऐसा कहकर वह चला गया ॥१९॥

तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्रने पञ्चाग्नियोंको जीत-कर नष्ट किया और फिर छीछासे ही दानवसेनाको नष्ट करने छगे ॥२०॥ तव सम्पूर्ण दैत्यसेनाके सहित विल-पुत्र वाणासुर, भगवान् शङ्कर और स्वामि-कार्त्तिकेयजी भगवान् कृष्णके साथ युद्ध करने छगे ॥२१॥ श्रीहरि और श्रीमहादेवजीका परस्पर वड़ा घोर युद्ध हुआ, इस युद्धमें प्रयुक्त शस्त्रास्त्रोंके किरणजालसे सन्तप्त होकर सम्पूर्ण छोक क्षुव्ध हो गये ॥२२॥ इस घोर युद्धके उपस्थित होनेपर देवताओंने समझा कि निश्चय ही यह सम्पूर्ण जगत्का प्रख्यकाल आ गया है ॥२३॥ श्रीगोविन्दने जम्भकास्त्र छोड़ा जिससे महादेवजी निदित-से होकर जमुहाई छेने छगे; उनकी ऐसी दशा देखकर दैत्य और प्रमथगण चारों ओर भागने छगे ॥२४॥ भगवान् शङ्कर निद्रामिभृत होकर रथके पिछछे मागमें बैठ गये और फिर अनायास ही अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध न कर सके ॥२५॥ तद-नन्तर गरुडद्वारा वाहनके नष्ट हो जानेसे, प्रयुद्धजीके शस्त्रोंसे पीडित होनेसे तथा कृष्णचन्द्रके हुंकारसे शक्तिहींन हो जानेसे स्वामिकार्त्तिकेय भी भागने छगे ॥२६॥

इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा महादेवजीके निद्रा-मिभृत, दैत्य-सेनाके नष्ट, स्वामिकार्त्तिकेयके पराजित और शिवगर्णोंके क्षीण हो जानेपर कृष्ण, प्रबुन्न और वलमद्रजीके साथ युद्ध करनेके लिये वहाँ वाणासुर साक्षात नन्दीश्वरद्वारा हाँके जाते हुए महान् रथपर चढ़कर आया ॥२७-२८॥ उसके आते ही महावीर्य-शाली बलभद्रजीने अनेकों वाण वरसाकर वाणासुर-की सेनाको छिन्न-मिन्न कर डाला; तब वह वीरधर्मसे म्रष्ट होकर भागने लगी ॥२९॥ वाणासुरने देखा कि उसकी सेनाको बलमद्रजी वड़ी फुर्तीसे हलसे खाँच-

वलं बलेन दहशे बाणो बाणैश्व चित्रणा ।।३०।। ततः कृष्णेन वाणस्य युद्धमासीत्सुदारुणम् । समस्यतोरिषुन्दीप्तान्कायत्राणविभेदिनः ।।३१।। कृष्णश्चिच्छेद वाणैस्तान्वाणेन प्रहिताञ्छितान् । विच्याघ केशवं बाणो बाणं विच्याघ चक्रधृक्।।३२॥ म्रमचाते तथास्ताणि वाणकृष्णौ जिगीषया । परस्परं श्वतिकरौ लाघवादनिशं द्विज।।३३।। भिद्यमानेष्त्रशेषेषु शरेष्त्रस्ते च सीद्ति। प्राचुर्येण ततो वाणं हन्तुं चक्रे हरिर्मनः ॥३४॥ ततोऽर्कशतसङ्घाततेजसा सद्शद्यति। जग्राह दैत्यचकारिईरिश्रकं सुदर्शनम् ॥३५॥ मुञ्जतो वाणनाशाय ततश्रकं मधुद्रिषः। नमा दैतेयविद्याभूत्कोटरी पुरतो हरे: ।।३६।। तामग्रतो हरिर्देष्ट्रा मीलिताक्षस्युदर्शनम्। म्रुमोच वाणमुद्दिश्यच्छेत्तुं बाहुवनं रिपोः ॥३७॥ क्रमेण तत्तु बाहूनां बाणस्याच्युतचोदितम्। छेदं चक्रेऽसुरापास्तशस्त्रीवश्वपणादतम् ॥३८॥ छिने बाहुवने तत्तु करस्थं मधुसद्नः। मुमुक्षुर्वाणनाशाय विज्ञात्स्त्रिपुरद्विषा ॥३९॥ सम्रपेत्याह गोविन्दं सामपूर्वम्रमापतिः। विलोक्य वाणं दोर्दण्डच्छेदासुक्साववर्षिणस्।४०।

श्रीशङ्कर उवाच

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वां पुरुषोत्तमम् । परेशं परमात्मानमनादिनिधनं हरिम् ॥४१॥ देवतिर्यन्त्रजुष्येषु शरीरम्रहणात्मिका । खींचकर म्सलसे मार रहे हैं और श्रीकृष्णचन्द्र उसे वाणोंसे बीधे डालते हैं ॥३०॥ तब वाणासुरका श्रीकृष्णचन्द्रके साथ घोर युद्ध छिड़ गया । वे दोनों परस्पर कवचभेदी वाण छोड़ने लगे । परन्तु मगवान् कृष्णने वाणासुरके छोड़े हुए तीखे वाणोंको अपने वाणोंसे काट डाला; और फिर वाणासुर कृष्णको तथा कृष्ण वाणासुरको बीधने लगे॥३१-३२॥ हे द्विज ! उस समय परस्पर चोट करनेवाले वाणासुर और कृष्ण दोनों ही विजयकी इच्छासे निरन्तर शीव्रतापूर्वक अख्र-शक्ष छोड़ने लगे॥३३॥

अन्तमें, समस्त वाणोंके छिन्न और सम्पूर्ण अस्न-रास्त्रोंके निष्फल हो जानेपर श्रीहरिने वाणासुरको मार डाल्लेका विचार किया ॥३४॥ तब दैत्यमण्डलके रात्रु भगवान् कृष्णने सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान अपने सुदर्शनचक्रको हाथमें ले लिया ॥३५॥

जिस समय भगवान् मधुसूदन वाणासुरको मारने-के लिये चक्र छोड़ना ही चाहते थे उसी समय दैत्यों-की विद्या (मन्त्रमयी कुलदेवी) कोटरी भगवान्के सामने नग्नावस्थामें उपस्थित हुई ॥३६॥ उसे देखते ही भगवान्ने नेत्र मूँद लिये और वाणासुरको लक्ष्य करके उस रात्रुकी मुजाओंके वनको काटनेके छिये सुदर्शन-चक्र छोड़ा ॥३०॥ भगवान् अच्युतके द्वारा प्रेरित उस चक्रने दैत्योंके छोड़े हुए अस्नसमृहको काटकर क्रमशः वाणासुरकी भुजाओंको काट डाला किवल दो सुजाएँ छोड़ दीं] ॥३८॥ तब त्रिपुरशत्रु भगवान् शङ्कर जान गये कि श्रीमधुसूदन वाणासुरके बाहुवन-को काटकर अपने हाथमें आये हुए चक्रको उसका वध करनेके लिये फिर छोड़ना चाहते हैं ॥३९॥ अतः वाणासुरको अपने खण्डित मुजदण्डोंसे लोहूकी धारा बहाते देख श्रीउमापतिने गोविन्दके पास आकर सामपूर्वक कहा--।।४०।।

श्रीशङ्करजी बोले-हे कृष्ण ! हे कृष्ण !! हे जगनाय !!
मैं यह जानता हूँ कि आप पुरुषोत्तम परमेश्वर, पर-मात्मा और आदि-अन्तसे रहित श्रीहरि हैं ॥४१॥ आप सर्वमृतमय हैं । आप जो देव, तिर्यक् और मनुष्यादि योनियोंमें शरीर धारण करते हैं यह आप-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

लीलेयं सर्वभूतस्य तव चेष्टोपलक्षणा ॥४२॥ तत्त्रसीदाभयं दत्तं वाणस्यास्य मया प्रभो । तत्त्वया नानृतं कार्यं यन्मया व्याहृतं वचः ॥४३॥ अस्तत्तंश्रयदृप्तोऽयं नापराधी तवाव्यय । सया दत्त्वरो दैत्यस्ततस्त्वां क्षमयाम्यहृम् ॥४४॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तः प्राह गोविन्दः ग्रूलपाणिम्रुमापतिम् । प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्पोऽसुरं प्रति ॥४५॥ श्रीमगवानुवाच

युष्मद्द्तवरो वाणो जीवतामेष शङ्कर ।
त्वद्राक्यगौरवादेतन्मया चक्रं निवर्तितम् ॥४६॥
त्वया यद्भयं दत्तं तद्दत्तमित्वलं मया ।
मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमहिसि शङ्कर ॥४७॥
योऽहं स त्वं जगचेदं सदेवासुरमातुपम् ।
मत्तो नान्यदशेषं यत्तत्त्वं ज्ञातुमिहाहिसि ॥४८॥
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः ।
वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर ॥४९॥
प्रसन्नोऽहं गमिष्यामि त्वं गच्छ वृषमध्वज ॥५०॥
श्रीपराशर जवाच

इत्युक्त्वा प्रययो कृष्णः प्राद्युम्निर्यत्र तिष्ठति ।

तद्धन्धमणिनो नेद्युर्गरुडानिरुपोथिताः ॥५१॥

ततोऽनिरुद्धमारोप्य सपत्नीकं गरुत्मति ।

आजग्द्युर्दारकां रामकार्ष्णिदामोदराः पुरीम्॥५२॥

पुत्रपोत्रैः परिवृतस्तत्र रेमे जनार्दनः ।

देवीभिस्सततं विष्र भूभारतरणेच्छया॥५३॥

की खाधीन चेष्टाकी उपलक्षिका लीला ही है ॥ १२॥ हे प्रमो ! आप प्रसन्न होइये । मैंने इस वाणासुरको अमयदान दिया है । हे नाथ ! मैंने जो वचन दिया है उसे आप मिथ्या न करें ॥ १३॥ हे अन्यय ! यह आपका अपराधी नहीं है; यह तो मेरा आश्रय पानेसे ही इतना गर्वीला हो गया है । इस दैरयको मैंने ही वर दिया था इसलिये मैं ही आपसे इसके लिये क्षमा कराता हूँ ॥ १४॥

श्रीपराशरजी बोले-त्रिश्लपाणि भगवान् उमा-पतिके इस प्रकार कहनेपर श्रीगोविन्दने वाणासुरके प्रति क्रोधभाव त्याग दिया और प्रसन्नवदन होकर उनसे कहा—॥४५॥

श्रीभगवान् बोले-हे शङ्कर ! यदि आपने इसे वर दिया है तो यह वाणासुर जीवित रहे । आपके वचनका मान रखनेके लिये में इस चक्रको रोके लेता हूँ ॥४६॥ आपने जो अभय दिया है वह सब मैंने भी दे दिया । हे शङ्कर ! आप अपनेको मुझसे सर्वथा अभिन्न देखें ॥४०॥ आप यह भली प्रकार समझ लें कि जो में हूँ सो आप हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत्, देव, असुर और मनुष्य आदि कोई भी मुझसे भिन्न नहीं हैं ॥४८॥ हे हर ! जिन लोगोंका चित्त अविद्यासे मोहित है वे भिन्नदर्शी पुरुष ही हम दोनों-में मेद देखते और वतलाते हैं । हे वृषमध्वज ! मैं प्रसन्न हूँ, आप प्रधारिये, मैं भी अन्न जाऊँ गा ॥४९-५०॥

श्रीपराशरजी बोले-इस प्रकार कहकर मगवान् कृष्ण जहाँ प्रबुद्धकुमार अनिरुद्ध थे वहाँ गये । उनके पहुँचते ही अनिरुद्धके वन्धनरूप समस्त नागगण गरुडके वेगसे उत्पन्न हुए वायुके प्रहारसे नष्ट हो गये ॥५१॥ तदनन्तर सपनीक अनिरुद्धको गरुडपर चढ़ाकर वल्राम, प्रबुद्ध और कृष्णचन्द्र द्वारकापुरीमें लौट आये ॥५२॥ हे विप्र ! वहाँ मू-मार-हरणकी इच्छासे रहते हुए श्रीजनार्दन अपने पुत्र-पौत्रादिसे घिरे रहकर अपनी रानियोंके साथ रमण करने लो ॥५२॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे त्रयस्त्रिंशोऽघ्यायः ॥३३॥

चौतीसवाँ अध्याय

पौण्डुक-वध तथा काशीदह्न।

श्रीभैत्रेय उवाच

चके कर्म महच्छौरिर्विश्राणो मानुपीं तनुम् ।
जिगाय शकं शर्वं च सर्वान्देवांश्र लीलया ॥ १ ॥
यचान्यदकरोत्कर्म दिन्यचेष्टाविघातकृत् ।
तत्कथ्यतां महाभाग परं कौत्हलं हि मे ॥ २ ॥
श्रीपराश्वर जवाच

गदतो मम विप्रर्पे श्रूयतामिदमादरात्। नरावतारे कृष्णेन दग्धा वाराणसी यथा।। ३।। पौण्ड्को वासुदेवस्तु वासुदेवोऽभवद्भुवि । अवतीर्णस्त्वमित्युक्तो जनैरज्ञानमोहितैः ॥ ४ ॥ स मेने वासुदेवोऽहमवतीर्णो महीतले। नष्टस्मृतिस्ततस्सर्वे विष्णुचिह्नमचीकरत्॥ ५॥ द्तं च प्रेषयामास कृष्णाय सुमहात्मने । त्यक्त्वा चक्रादिकं चिह्नं मदीयं नाम चात्मनः ॥६॥ वासुदेवात्मकं मृढ त्यक्त्वा सर्वमशेषतः। आत्मनो जीवितार्थीय ततो मे प्रणितं व्रज ॥ ७ ॥ इत्युक्तस्सम्प्रहसौनं दूतं प्राह जनार्दनः। निजचिह्नमहं चक्रं सम्रत्सक्ष्ये त्वयीति वै॥८॥ वाच्यश्च पौण्डुको गत्वा त्वया दूत वचो मम। ज्ञातस्त्वद्वाक्यसद्भावो यत्कार्यं तद्विधीयताम् ॥९॥ गृहीतचिह्नवेषोऽहमागमिष्यामि ते पुरम्। उत्स्रक्ष्यामि च तचक्रं निजचिह्नमसंशयम् ॥१०॥ आज्ञापूर्वं च यदिद्मागच्छेति त्वयोदितम्। सम्पादियञ्ये श्वस्तुम्यं समागम्याविलम्बित्म्।११। शरणं ते समस्येत्य कर्तासि नृपते तथा। पथा त्वचो भयं भूयो न मे किश्चिद्भविष्यति ॥१२॥ श्रीमेश्रेयजी बोले-हे गुरो ! श्रीविष्णुमगवान्ने मनुष्य-शरीर धारणकर जो लीलासे ही इन्द्र, शङ्कर और सम्पूर्ण देवगणको जीतकर महान् कर्म किये थे [वह मैं सुन चुका] ॥१॥ इनके सिवा देवताओंकी चेष्टाओंका विघात करनेवाले उन्होंने और भी जो कर्म किये थे, हे महाभाग ! वे सब मुझे सुनाइये; मुझे उनके सुननेका बड़ा कुत्बहल हो रहा है ॥२॥

श्रीपराशरजी बोले-हे ब्रह्मर्षे ! भगवान्ने मनुष्या-वतार लेकर जिस प्रकार काशीपुरी जलायी थी वह मैं सुनाता हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो ॥ ३ ॥ पौण्ड्क-वंशीय वासुदेव नामक एक राजाको अज्ञानमोहित पुरुष 'आप वासुदेवरूपसे पृथिवीपर अवतीर्ण हुए हैं' ऐसा कहकर स्तुति किया करते थे ॥ १॥ अन्तमें वह भी यही मानने लगा कि 'मैं वासुदेवरूपसे पृथिवीमें अवतीर्ण हुआ हूँ !' इस प्रकार आत्म-विस्मृत हो जानेसे उसने विष्णुभगवान्के समस्त चिह्न धारण कर लिये ॥ ५ ॥ और महात्मा कृष्णचन्द्रके पास यह सन्देश लेकर दूत भेजा कि "हे मृढ़ ! अपने वासुदेव नामको छोड़कर मेरे चक्र आदि सम्पूर्ण चिह्नोंको छोड़ दे और यदि तुझे जीवनकी इच्छा है तो मेरी शरणमें आ'' ॥ ६-७॥

दूतने जब इसी प्रकार जाकर कहा तो श्रीजनादीन उससे हँसकर बोले—"ठीक है, मैं अपने चिह्न चक्रको तेरे प्रति। छोड़ूँगा। हे दूत! मेरी ओरसे द पौण्ड्कसे जाकर यह कहना कि मैंने तेरे वाक्यका वास्तिविक भाव समझ लिया है, तुझे जो करना हो सो कर ॥८-९॥ मैं अपने चिह्न और वेष धारणकर तेरे नगरमें आजँगा! और निस्सन्देह अपने चिह्न चक्रको तेरे ऊपर छोड़ूँगा ॥१०॥ 'और दने जो आज्ञा करते हुए 'आ' ऐसा कहा है सो मैं उसे भी अवस्य पालन करूँगा और कल शीघ्र ही तेरे पास पहुँचूँगा ॥११॥ हे राजन्! तेरी शरणमें आकर मैं वही उपाय करूँगा जिससे फिर तुझसे मुझे कोई भय न रहे ॥१२॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तेऽपगते द्ते संस्मृत्याभ्यागतं हरिः । गरुत्मन्तमथारुद्य त्वरितस्तन्पुरं ययौ ॥१३॥ ततस्त केशवोद्योगं श्रुत्वा काशिपतिस्तदा । सर्वसैन्यपरीवारः पार्ष्णिग्राह उपाययौ ॥१४॥ ततो वलेन महता काशिराजवलेन च । पौण्डुको वासदेवोऽसौ केशवाभिम्रखो ययौ ॥१५॥ तं ददर्श हरिर्दूरादुदारसन्दने स्थितम्। चक्रहस्तं गदाञ्चार्ङ्गवाहुं पाणिगताम्बुजम् ॥१६॥ स्रग्धरं पीतवसनं सुपर्णरचितध्वजम् । वक्षः खले कृतं चास श्रीवत्सं दहशे हरिः ॥१७॥ किरीटकुण्डलधरं नानारलोपशोभितम्। तं दृष्ट्वा भावगम्भीरं जहास गरुडध्वजः ॥१८॥ युगुधे च बलेनासं हस्त्यश्ववलिना द्विज। निस्त्रिशासिगदाग्रुलशक्तिकार्ग्रुकशालिना ॥१९॥ शार्क्ननिर्धक्तैश्शरैररिविदारणैः। क्षणेन गदाचक्रनिपातैश्र सदयामास तद्वलम् ॥२०॥ काशिराजवलं चैवं क्षयं नीत्वा जनार्दनः। उवाच पौण्ड्कं मृढमात्मचिह्नोपलक्षितम् ॥२१॥ श्रीभगवानुवाच

पौण्ड्कोक्तं त्वया यजु दूतवक्त्रेण मां प्रति । सम्रुत्सृजेति चिह्वानि तत्ते सम्पादयाम्यहम्॥२२॥ चक्रमेतत्सम्रत्सृष्टं गदेयं ते विसर्जिता । गरुत्मानेष चोत्सृष्टस्समारोहतु ते ध्वजम्॥२३॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युचार्य विम्रुक्तेन चक्रेणासौ विदारितः । पातितो गदया भग्नो घ्वजश्रास्य गरुत्मता ॥२४॥ ततो हाहाकृते लोके काशिपुर्यियो बली । युयुधे वासुदेवेन मित्रस्मापचितौ स्थितः ॥२५॥

श्रीपराशरजी बोले-श्रीकृण्यचन्द्रके ऐसा कहने-पर जब दृत चला गया तो भगवान् स्मरण करते ही उपस्थित द्वए गरुडपर चढ़कर तुरन्त उसकी राजधानी-को चले ॥१३॥ भगवान्के आक्रमणका समाचार सुनकर काशीनरेश भी उसका पृष्ठपोषक (सहायक) होकर अपनी सम्पूर्ण सेना छे उपस्थित हुआ ॥ १४॥ तदनन्तर अपनी महान् सेनाके सहित काशीनरेशकी सेना छेकर पौण्डक वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥१५॥ मगवान्ने दूरसे ही उसे हाथमें चक्र, गदा, शार्क्क धनुष और पद्म लिये एक उत्तम रथपर वैठे देखा ॥१६॥ श्रीहरिने देखा कि उसके कण्ठमें वैजयन्तीमाला है, शरीरमें पीताम्बर है, गरुडरचित • घ्वजा है और वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न हैं ॥१७॥ उसे नाना प्रकारके रहोंसे सुसज्जित किरीट और कुण्डल धारण किये देखकर श्रीगरुडध्वज भगवान् गम्भीर भावसे हँसने छ्गे ॥१८॥ और हे द्विज ! उसकी हाथी-घोड़ोंसे विषष्ठ तथा निस्त्रिंश खड्ग, गदा, शूल, शक्ति और धनुप आदिसे सुसज्जित सेनासे युद्ध करने छगे॥१९॥ श्रीमगवान्ने एक क्षणमें ही अपने शाङ्ग-धनुषसे छोड़े हुए रात्रुओंको विदीर्ण करनेवाछे तीक्ष्ण वाणों तथा गदा और चक्रसे उसकी सम्पूर्ण सेनाको नष्ट कर डाला ॥२०॥ इसी प्रकार काशिराजकी सेनाको मी नष्ट करके श्रीजनार्दनने अपने चिह्नोंसे युक्त मृदमित पौण्डुकसे कहा ॥२१॥

श्रीमगवान बोले-हे पौण्ड्क ! मेरे प्रति त्ने जो दितके मुखसे यह कहलाया था कि मेरे चिहोंको छोड़ . दे सो मैं तेरे सम्मुख उस आज्ञाको सम्पन्न करता हूँ ॥ २२ ॥ देख, यह मैंने चक्र छोड़ दिया, यह तेरे ऊपर गदा भी छोड़ दी और यह गरुड भी छोड़े देता हूँ, यह तेरी घ्यजापर आरूढ़ हों ॥ २३ ॥

श्रीपराशरजी घोले-ऐसा कहकर छोड़े हुए चक्रने पौण्ड्कको विदीर्ण कर डाला, गदाने नीचे गिरा दिया और गरुडने उसकी ध्वजा तोड़ डाली ॥२॥ तदनन्तर सम्पूर्ण सेनामें हाहाकार मच जानेपर अपने मित्रका बदला चुकानेके लिये खड़ा हुआ काशी-नरेश श्रीवासुदेवसे लड़ने लगा ॥ २५ ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

ततक्शार्क्षधनुर्धक्तैिक्छन्त्वा तस्य शिरक्शेरैः ।
काशिपुर्यां स चिश्लेप कुर्वछोकस्य विस्तयम् ॥२६॥
हत्त्वा तं पौण्ड्रकं शौरिः काशिराजं च सानुगम् ।
पुनद्वीरवतीं प्राप्तो रेमे स्वर्गगतो यथा ॥२७॥
तिच्छरः पतितं तत्र दृष्ट्वा काशिपतेः पुरे ।
जनः किमेतदित्याहिच्छकं केनेति विस्तितः॥२८॥
इत्वा तं वासुदेवेन हतं तस्य सुतस्ततः ।
पुरोहितेन सहितस्तोषयामास शङ्करम् ॥२९॥
अविस्रुक्ते महाक्षेत्रे तोषितस्तेन शङ्करः ।
वरं वृणीष्वेति तदा तं प्रोवाच नृपात्मजम् ॥३०॥
स वत्रे मगवन्कत्या पितृहन्तुर्वधाय मे ।
सम्रतिष्ठतु कृष्णस्य त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥३१॥
श्रीपराशर जवाच

एवं मविष्यतीत्युक्ते दक्षिणाग्नेरनन्तरम्।

महाकृत्या सम्रुक्तस्यौ तस्यैवाग्नेविनाश्चिनी।।३२।।

ततो ज्वालाकरालास्या ज्वलत्केशकपालिका।

कृष्ण कृष्णेति कृपिता कृत्या द्वारवतीं ययौ॥३३॥

तामवेक्ष्य जनस्नासाद्विचलक्षोचनो मुने।

ययौ श्वरण्यं जगतां श्वरणं मधुसद्नम्॥३४॥

काशिराजसुतेनेयमाराध्य वृषमध्वजम्।

उत्पादिता महाकृत्येत्यवगम्याथ चिक्रणा॥३५॥

जहि कृत्यामिमाम्रुग्रां विद्वज्वालाजटालकाम्।

चक्रमृतस्रष्टमक्षेषु क्रीडासक्तेन लील्या॥३६॥

तब भगवान्ने शार्क्स -धनुषसे छोड़े हुए एक वाणसे उसका शिर काटकर सम्पूर्ण छोगोंको विस्मित करते हुए काशीपुरीमें फेंक दिया ॥ २६ ॥ इस प्रकार पौण्ड्रक और काशीनरेशको अनुचरोंसहित मारकर भगवान् फिर द्वारकाको छोट आये और वहाँ खर्ग-सदश सुखका अनुभव करते हुए रमण करने छगे ॥ २७ ॥

इधर काशीपुरीमें काशिराजका सिर गिरा देख सम्पूर्ण नगरनिवासी विस्मयपूर्वक कहने छने-'यह क्या हुआ ? इसे किसने काट डाळा ?' ॥ २८ ॥ जब उसके पुत्रको माल्म हुआ कि उसे श्रीवासुदेवने मारा है तो उसने अपने पुरोहितके साथ मिलकर भगवान् शंकरको सन्तुष्ट किया ॥ २९ ॥ अविमुक्त महाक्षेत्रमें उस राजकुमारसे सन्तुष्ट होकर श्रीशंकरने कहा—'वर माँग'॥ ३०॥ वह वोळा—''हे मगवन् ! हे महेश्वर !! आपकी कृपासे मेरे पिताका वध करने-वाले कृष्णका नाश करनेके छिये (अग्निसे) कृत्या उत्पन्न हो"*॥ ३१॥

श्रीपराशरजी बोले-मगवान् शङ्करने कहा, 'ऐसा ही होगा।' उनके ऐसा कहनेपर दक्षिणाग्निका चयन करनेके अनन्तर उससे उस अग्निका ही विनाश करनेवाली कृत्या उत्पन्न हुई ॥ ३२॥ उसका कराल मुख ज्वालामालाओंसे पूर्ण था तथा उसके केश अग्निशिखाके समान दीप्तिमान् और ताम्रवर्ण थे। वह क्रोधपूर्वक 'कृष्ण! कृष्ण!!' कहती द्वारका-पुरीमें आयी॥ ३३॥

हे मुने ! उसे देखकर छोगोंने भय-विचिछत नेत्रोंसे जगद्गति भगवान् मधुसूदनकी शरण छी ॥ ३४॥ जब भगवान् चक्रपाणिने जाना कि श्री-शंकरकी उपासनाकर काशिराजके पुत्रने ही यह महाकृत्या उत्पन्न की है तो अक्षक्रीडामें छगे हुए उन्होंने छीछासे ही यह कहकर कि 'इस अग्नि-ज्वाछामयी जटाओंवाछी भयंकर कृत्याको मार डाछ' अपना चक्र छोड़ा ॥ ३५-३६॥

क्ष इस वाक्यका अर्थ यह भी होता है कि 'मेरे वश्रके लिये मेरे पिताके मारनेवाले कृष्णके पास कृत्या उत्पन्न हो । इसितिये यदि इस वरका विपरीत परिवास हुना तो उसमें हांका नहीं करनी चाहिये।

तद्प्रिमालाजटिलज्वालोद्वारातिभीपणाम् । कुत्यामनुजगामाशु विष्णुचक्रं सुद्रश्नेनम्।।३७॥ चक्रप्रतापनिर्द्ग्धा कृत्या माहेश्वरी तदा। ननाश वेगिनी वेगात्तदप्यजुजगाम ताम्।।३८।। क्रत्या वाराणसीमेव प्रविवेश त्वरान्विता । विष्णुचऋप्रतिहतप्रभावा म्रनिसत्तम ॥३९॥ ततः काशीवलं भूरि प्रमथानां तथा बलम्। समलग्रह्मास्त्रयुतं चक्रसामिम्रखं ययौ ॥४०॥ शस्त्रास्त्रमोक्षचतुरं दग्ध्या तद्वलमोजसा। कृत्यागर्भामशेषां तां तदा वाराणसीं प्ररीम् ॥४१॥ सभूभृद्भृत्यपौरां तु साश्वमातङ्गमानवाम् । अशेषगोष्ठकोशां तां दुर्निरीक्ष्यां सुरैरपि ॥४२॥ . ज्वालापरिष्कृताशेषगृहप्राकारचत्वराम् ददाह तद्धरेश्वकं सकलामेव तां पुरीम् ॥४३॥ अक्षीणामर्षमत्युग्रसाध्यसाधनसस्पृहम् तचकं प्रस्फुरदीप्ति विष्णोरम्याययौ करम् ॥४४॥

तव भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रनेउस अग्नि-मालामण्डित जटाओंवाली और अग्निज्वालाओंके कारण भयानक मुखवाली कृत्याका पीछा किया ॥ ३०॥ उस चक्रके तेजसे दग्ध होकर छिन-भिन्न होती हुई वह माहेश्वरी कृत्या अति वेगसे दौड़ने लगी तथा वह चक्र भी उतने ही वेगसे उसका पीछा करने लगा॥ ३८॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अन्तमें विष्णचक्रसे हत-प्रभाव हुई कृत्याने शीव्रतासे काशीमें ही प्रवेश किया ॥ ३९॥ उस समय काशीनरेशकी सम्पूर्ण सेना और प्रमथ-गण अस्त-शस्त्रोंसे सुसिजित होकर उस चक्रके सम्मुख आये ॥ ४०॥

तव वह चक्र अपने तेजसे शस्त्रास्त्र-प्रयोगमें कुश्ल उस सम्पूर्ण सेनाको दग्धकर कृत्याके सहित सम्पूर्ण वाराणसीको जलाने लगा ॥ ४१ ॥ जो राजा, प्रजा और सेवकोंसे पूर्ण थी; घोड़े, हाथी और मनुष्योंसे भरी थी; सम्पूर्ण गोष्ठ और कोशोंसे युक्त थी और देवताओं के खिये भी दुर्दर्शनीय थी उसी काशीपुरीको भगवान् विष्णुके उस चक्रने उसके गृह, कोट और चबूतरोंमें अग्निकी ज्वालाएँ प्रकटकर जला डाला ॥ ४२-४३॥ अन्तर्मे, जिसका क्रोध अमी शान्त नहीं दुआ तथा जो अत्यन्त उप्र कर्म करनेको उत्सक था और जिसकी दीप्ति चारों ओर फैल रही थी वह चक फिर छौटकर भगवान् विष्णुके हाथमें आ गया ॥ १४ ॥

इति श्रीविष्णपुराणे पञ्चमेंऽशे चतुस्त्रिशोऽध्यायः ॥३ ४॥

पैतीसवाँ अध्याय

2000

साम्बका विवाह।

श्रीमैत्रेय उवाच

भूय एवाहमिच्छामि वलमद्रस्य घीमतः। श्रोतुं पराक्रमं ब्रह्मन् तन्ममाख्यातुमहिसि ॥ १ ॥ यमुनाकर्षणादीनि श्रुतानि भगवन्मया। तत्कथ्यतां महाभाग यदन्यत्कृतवान्वलः ॥ २ ॥ हैं उनका वर्णेन कीजिये ॥ २ ॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे ब्रह्मन् ! अव मैं फिर मितमान् बलभद्रजीके पराक्रमकी वार्ती सुनना चाहता हूँ, आप वर्णन कांजिये ॥ १ ॥ हे भगवन् ! मैंने उनके यमुनाकर्षणादि पराक्रम तो सुन छिये: अव हे महाभाग ! उन्होंने जो और-और विक्रम दिखलाये

हैं उनका वर्णन कीजिये ॥ २॥

मैत्रेय श्रूयतां कर्म यद्रामेणाभवत्कृतम् ।
अनन्तेनाप्रमेयेन शेपेण धरणीधृता ॥ ३ ॥
सुयोधनस्य तनयां स्वयंवरकृतक्षणाम् ।
वलादादत्तवान्वीरस्साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ ४ ॥
ततः क्रुद्धा महावीर्याः कर्णदुर्योधनादयः ।
भीष्मद्रोणादयश्चैनं बवन्धुर्युधि निर्जितम् ॥ ५ ॥
तच्छुत्वा यादवास्सर्वे क्रोधं दुर्योधनादिषु ।
मैत्रेय चक्रुः कृष्णश्च तानिहन्तुं महोद्यमम् ॥ ६ ॥
तानिवार्य वलः प्राह मदलोलकलाक्षरम् ।
मोक्ष्यन्ति ते मद्रचनाद्यास्याम्येको हि कौरवान् । ७।
भीपराशर जवान

वलदेवस्ततो गत्वा नगरं नागसाह्वयम्। बाह्योपवनमध्येऽभूत्र विवेश च तत्पुरम् ॥ ८॥ वलमागतमाज्ञाय भूपा दुर्योधनादयः। गामर्घ्यमुद्कं चैव रामाय प्रत्यवेदयन्।। ९।। गृहीत्वा विधिवत्सर्वं ततस्तानाह कौरवान् । आज्ञापयत्युप्रसेनस्साम्बमाशु विम्रश्चत ॥१०॥ ततस्तद्रचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणाद्यो नृपाः। कर्णदुर्योधनाद्याश्र चुक्षुभुद्धिजसत्तम ॥११॥ ऊचुश्र कुपितास्सर्वे बाह्विकाद्याश्र कौरवाः। अराज्याई यदोर्वशमवेक्ष्य ग्रुसलायुधम् ॥१२॥ मो भो किमेतद्भवता वलभद्रेरितं वचः। आज्ञां कुरुकुलोत्थानां यादवः कः प्रदास्यति॥१३॥ उग्रसेनोऽपि यद्याश्चां कौरवाणां प्रदास्ति । पाण्डुरैक्छत्रेर्नुपयोग्यैविंडम्बनैः ॥१४॥ तदलं तद्भच्छ बल मा वा त्वं साम्ब्मन्यायचेष्टितम्। विमोक्ष्यामो न भवतश्रोग्रसेतस्य शासनात् ॥१%॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! अनन्त, अप्रमेय, धरणीधर शेषावतार श्रीवलरामजीने जो कर्म कियेथे, वह सुनो—॥ ३॥

एक बार जाम्बवती-नन्दन वीरवर साम्बने खयंवरके अवसरपर दुर्योधनकी पुत्रीको बळात्कारसे हरण किया ॥ ४॥ तब महावीर कर्ण, दुर्योधन, मीष्म और द्रोण आदिने कुद्ध होकर उसे युद्धमें हराकर बाँघ लिया ॥ ५॥ यह समाचार पाकर कृष्णचन्द्र आदि समस्त यादवोंने दुर्योधनादिपर कुद्ध होकर उन्हें मारनेके लिये बड़ी तैयारी की ॥ ६॥ उनको रोककर श्रीबलरामजीने मदिराके उन्मादसे लड़खड़ाते हुए शब्दोंमें कहा—"कौरवगण मेरे कहनेसे साम्बको छोड़ देंगे अतः मैं अकेला ही उनके पास जाता हूँ"॥ ७॥

श्रीपराशरजी बोल्ले-तदनन्तर, श्रीबल्देवजी हिस्तिनापुरके समीप पहुँचकर उसके वाहर एक उद्यानमें ठहर गये; उन्होंने नगरमें प्रवेश नहीं किया ॥८॥ बल्रामजीको आये जान दुर्योधन आदि राजाओंने उन्हें गौ, अर्घ्य और पाद्यादि निवेदन किये॥९॥ उन सबको विधिवत् प्रहण कर बल्मद्रजीने कौरवेंसे कहा—"राजा उप्रसेनको आज्ञा है आपलोग साम्बको तुरन्त लोड़ दें"॥ १०॥

हे द्विजसत्तम ! बल्रामजीके इन वचनोंको सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि राजाओंको बड़ा क्षोम हुआ ॥ ११ ॥ और यदुवंशको
राज्यपदके अयोग्य समझ बाह्निक आदि सभी कौरवगण
कृपित होकर म्सल्धारी बल्मद्रजीसे कहने ल्यो—
॥ १२ ॥ "हे बल्मद्र ! तुम यह क्या कह रहे हो;
ऐसा कौन यदुवंशी है जो कुरुकुलोत्पन्न किसी वीरको आज्ञा दे !॥ १३ ॥ यदि उप्रसेन भी कौरवोंको आज्ञा
दे सकता है तो राजाओंके योग्य कौरवोंके इस स्वेत छन्नका क्या प्रयोजन है !॥ १४ ॥ अतः हे बल्राम !
तुम जाओ अथवा रहो, हमलोग तुम्हारी या उप्रसेनकी
आज्ञासे अन्यायकर्मा साम्बक्तो नहीं छोड़ सकते॥ १ ॥।

प्रणतिर्या कृतास्माकं मान्यानां कुकुरान्धकैः। ननाम सा कृता केयमाज्ञा खामिनि भृत्यतः॥१६॥ गर्वमारोपिता यूयं समानासनभोजनैः। को दोपो भवतां नीतिर्यत्मीत्या नावलोकिता।१७। असाभिरघीं भवतो योऽयं वल निवेदितः । प्रेम्णैतन्नैतदसाकं कुलाद्युष्मत्कुलोचितम्।।१८।।

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्त्वा कुरवः साम्बं मुश्रामो न हरेस्सुतम् । कृतैकनिश्रयास्तूर्णं विविधर्गजसाह्वयम् ॥१९॥ मत्तः कोपेन चाघूर्णंस्ततोऽधिक्षेपजन्मना। उत्थाय पाष्ण्यी वसुधां जघान स हलायुधः ॥२०॥ ततो विदारिता पृथ्वी पार्ष्णिघातान्महात्मनः। आस्फोटयामास तदा दिशक्शब्देन पूरयन् ॥२१॥ उवाच चातिताम्राक्षो भृकुटीकुटिलाननः ॥२२॥ अहो मदावलेपोऽयमसाराणां दुरात्मनाम् । कौरवाणां महीपत्वमसाकं किल कालजम्। उप्रसेनस्य ये नाज्ञां मन्यन्तेऽद्यापि लङ्घनम् ॥२३॥ उग्रसेनः समध्यास्ते सुधर्मा न शचीपतिः। **धिङ्**मानुषश्वतोच्छिष्टे तुष्टिरेषां नृपासने ॥२४॥ पुष्पमञ्जरीर्वनिताजनः। पारिजाततरोः विमर्ति यस्य भृत्यानां सोऽप्येषां न महीपतिः।२५। समस्तभूभृतां नाथ उत्रसेनस्स तिष्ठतु । अद्य निष्कौरवामुर्वी कृत्वा यास्यामि तत्पुरीम्।२६। कर्णं दुर्योघनं द्रोणमद्य भीष्मं सवाहिकम्। दुश्शासनादीन्ध्रिरं च भूरिश्रवसमेव च ॥२७॥ दोण, भीष्म, बाह्रिक, दुश्शासनादि CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पूर्वकालमें कुकुर और अन्धकवंशीय यादवगण हम माननीयोंको प्रणाम किया करते थे सो अब वे ऐसा नहीं करते तो न सही किन्तु खामीको यह सेवककी ओरसे आज्ञा देना कैसा ? ॥ १६ ॥ तुमछोगोंके साथ समान आसन और मोजनका व्यवहार करके तुम्हें हमहीने गर्वीला वना दिया है; इसमें तुम्हारा कोई दोप नहीं है क्योंकि हमने ही प्रीतिवश नीतिका विचार नहीं किया ॥ १७ ॥ हे बळराम ! हमने जो तुम्हें यह अर्घ्य आदि निवेदन किया है यह प्रेमवश ही किया है, वास्तवमें हमारे कुलकी तरफसे तुम्हारे कुलको अर्घादि देना उचित नहीं है" ॥ १८॥

श्रीपराशरजी बोले-ऐसां कहकर कौरवगण यह निश्चय करके कि "हम कृष्णके पुत्र साम्वको नहीं छोड़ेंगे" तुरन्त हितापुरमें चले गये ॥१९॥ तदनन्तर हलायुध श्रीवलरामजीने उनके तिरस्कारसे उत्पन्न हर क्रोधसे मत्त होकर घरते हुए पृथिवीमें छात मारी ॥ २० ॥ महात्मा वलरामजीके पाद-प्रहारसे पृथिवी फट गयी और वे अपने शब्दसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाकर कम्पायमान करने छगे तथा छाछ-छाछ नेत्र और टेढ़ी मृकुटि करके बोले—॥२१-२२॥ "अहो ! इन सारहीन दुरात्मा कौरवोंको यह कैसा राजमदका अभिमान है। कौरवोंका महीपाछल तो खतःसिद्ध है और हमारा सामयिक—ऐसा समझकर ही आज ये महाराज उप्रसेनकी आज्ञा नहीं मानते: बल्कि उसका उल्लब्ज कर रहे हैं ॥२३॥ आज राजा उप्रसेन सुधर्मा-सभामें स्वयं विराजमान होते हैं, उसमें राचीपति इन्द्र भी नहीं बैठने पाते । परन्तु इन कौरवोंको घिकार है जिन्हें सैकड़ों मनुष्योंके उच्छिष्ट राजसिंहासनमें इतनी तुष्टि है ॥ २४॥ जिनके सेवकोंकी क्षियाँ भी पारिजात-वृक्षकी पुष्प-मञ्जरी धारण करती हैं वह भी इन कौरवोंके महाराज नहीं हैं ? [यह कैसा आश्चर्य है ?] ॥२५॥ वे उप्रसेन ही सम्पूर्ण राजाओंके महाराज वनकर रहें। आज मैं अकेला ही प्रियवीको कौरवहीन करके उनकी द्वारकापुरीको जाऊँगा ॥२६॥ आज कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, बाह्निक, दुस्शासनादि, भूरि, भूरिश्रवा.

सोमदत्तं शलं चैव भीमार्जुनयुधिष्ठिरान् । यमौ च कौरवांश्वान्यान्हत्वा साश्वरथद्विपान्।।२८।। वीरमादाय तं साम्बं सपत्नीकं ततः पुरीम् । द्वारकायुत्रसेनादीन्गत्वा द्रक्ष्यामि बान्धवान् ।२९। अथ वा कौरवावासं समस्तैः कुरुभिस्सह । भागीरथ्यां क्षिपाम्याश्च नगरं नागसाह्वयम् ॥३०॥

श्रीपराशर जवाच

इत्युक्त्वा मदरक्ताक्षः कर्षणाघोष्ठाखं हलम् ।

प्राकारवप्रदुर्गस्य चकर्ष प्रसलायुषः ॥३१॥

आघूर्णितं तत्सहसा ततो वै हास्तिनं पुरम् ।

हष्ट्वा संक्षुब्धहृदयाद्युक्षुग्रः सर्वकौरवाः ॥३२॥

राम राम महाबाहो श्रम्यतां श्रम्यतां त्वया ।

उपसंहियतां कोपः प्रसीद् प्रसलायुष्घ ॥३३॥

एष साम्बस्सपत्नीकस्तव निर्यातितो बल ।

अविज्ञातप्रभावाणां श्रम्यतामपराधिनाम् ॥३४॥

श्रीपराशर जवाच

ततो निर्यातयामासुस्साम्बं पत्तीसमन्वितम् ।
निष्कम्य स्वपुरान्त्र्णं कौरवा स्निपुङ्गव ॥३५॥
भीष्मद्रोणक्रपादीनां प्रणम्य वदतां प्रियम् ।
श्वान्तमेव मयेत्याह बलो वलवतां वरः ॥३६॥
अद्याप्याप्तृ्णिताकारं लक्ष्यते तत्पुरं द्विज ।
एप प्रभावो रामस्य बलगोर्योपलक्षणः ॥३७॥
ततस्तु कौरवास्साम्बं सम्पूज्य हिलना सह ।
प्रियामासुरुद्वाहधनभार्यासमन्वितम् ॥३८॥

सोमदत्त, शल, भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव तथा अन्यान्य समस्त कौरवोंको उनके हाथी-घोड़े और रथके सहित मारकर तथा नववधूके साथ वीरवर साम्बको लेकर ही मैं द्वारकापुरीमें जाकर उप्रसेन आदि अपने बन्धु-वान्धवोंको देख्ँगा ॥२७–२९॥ अथवा समस्त कौरवोंके सहित उनके निवासस्थान इस हस्तिनापुर नगरको ही अभी गङ्गाजीमें फेंके देता हूँ"।॥३०॥

श्रीपराशरजी बोळे-ऐसा कहकर मदसे अरुण-नयन मुसलायुघ श्रीबलभद्रजीने हल्की नोंकको हस्तिनापुरके खाई और दुर्गसे युक्त प्राकारके म्ल्में लगाकर खींचा ॥३ १॥ उस समय सम्पूर्ण हस्तिनापुर सहसा डगमगाता देख समस्त कौरवगण क्षुट्यचित्त होकर भयमीत हो गये ॥३२॥ [और कहने लगे—] "हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! क्षमा करो, क्षमा करो । हे मुसलायुघ ! अपना कोप शान्त करके प्रसन्न होइये ॥३३॥ हे बल्हराम ! हम आपको पत्नीके सिहत इस साम्बको सौंपते हैं । हम आपका प्रभाव नहीं जानते थे, इसीसे आपका अपराध किया; कृपया क्षमा कीजिये" ॥३॥।

श्रीपराशरजी बोले-हे मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर कौरवोंने तुरन्त ही अपने नगरसे वाहर आकर पत्नी-सिहत साम्बको श्रीबलरामजांके अपण कर दिया॥३५॥ तब प्रणामपूर्वक प्रिय वाक्य बोलते हुए मीष्म, द्रोण, कृप आदिसे वीरवर बलरामजीने कहा—''अच्छा मैंने क्षमा किया"॥ ३६॥ हे द्विज ! इस समय भी हस्तिनापुर [गंगाकी ओर] कुछ झुका हुआ-सा दिखायी देता है, यह श्रीबलरामजीके बल और शूरवीरताका परिचय देनेवाला उनका प्रमाव ही है ॥ ३०॥ तदनन्तर कौरवोंने बलरामजीके सिहत साम्बका पूजन किया तथा बहुत-से दहेज और वध्नेक सिहत उन्हें द्वारकापुरी मेज दिया॥३८॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५॥

बत्तीसवाँ अध्याय

हिविद्-वध ।

श्रीपराशर उवाच

मैन्नेयैतद्वलं तस्य वलस्य वलशालिनः। क्रतं यदन्यत्तेनाभृत्तदपि श्र्यतां त्वया ॥ १ ॥ नरकस्यासुरेन्द्रस्य देवपक्षविरोधिनः। सखासवन्महावीयों द्विविदो वानर्राभः॥२॥ वैरालुवन्धं वलवान्स चकार सुरान्प्रति। नरकं हतवान्कृष्णो देवराजेन चोदितः ॥ ३॥ करिष्ये सर्वदेवानां तस्मादेतत्प्रतिक्रियाम् । यज्ञविध्वंसनं जुर्वेन् मर्त्यलोकक्षयं तथा।। ४।। ततो विध्वंसयामास यज्ञानज्ञानमोहितः। बिसेद साधुसर्यादां क्षयं चक्रे च देहिनाम् ॥ ५ ॥ ददाह सवनान्देशान्प्ररग्रामान्तराणि च । पर्वताक्षेपैर्यामादीन्समचूर्णयत् ॥ ६ ॥ शैलातुत्पाट्य तोयेषु मुमोचाम्बुनिधौ तथा । पुनश्रार्णवमध्यस्थः क्षोभयामास सागरम्।। ७।। तेन विश्वोभितश्राब्धिरुद्वेलो द्विज जायते । ष्ठावयंस्तीरजान्त्रामान्पुरादीनतिवेगवान् ॥ ८॥ कामरूपी महारूपं कृत्वा सस्यान्यशेषतः। छठन्भ्रमणसम्मदैस्सञ्चूर्णयति वानरः॥९॥ तेन विप्र कृतं सर्वं जगदेतद्र्रात्मना। निस्स्वाध्यायवषद्कारं मैत्रेयासीत्सुदुःखितम्।१०। एकदा रैवतोद्याने पपौ पानं हलायुधः। रेवती च महाभागा तथैवान्या वरस्त्रियः ॥११॥ उद्गीयमानो विलसञ्जलनामौलिमध्यगः। रेमे यदुकुलश्रेष्ठः कुवेर इव मन्दरे॥१२॥

्रश्रीपराशरजी घोले-हे मैत्रेय! वलशाली वलराम-जीका ऐसा ही पराक्रम था। अव, उन्होंने जो और एक कर्म किया था वह भी सुनो ॥ १॥ द्विविद नामक एक महावीर्यशाली वानरश्रेष्ट देव-विरोधी दैत्यराज नरकासरका मित्र था ॥ २ ॥ भगवान् कृष्णने देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे नरकासुरका वध किया था. इसिंखये बीर वानर द्विविदने देवताओंसे वैर ठाना ॥३॥ उसने निश्चय किया कि] "मैं मर्त्यलोकका क्षय कर दुँगा और इस प्रकार यज्ञ-यागादिका उच्छेद करके सम्पूर्ण देवताओंसे इसका बदला चुका ऌँगा" ॥ ४ ॥ तवसे वह अज्ञानमोहित होकर यज्ञोंको विध्वंस करने लगा और साधमर्यादाको मिटाने तथा देहधारी जीवों-को नष्ट करने लगा ॥ ५॥ वह वन, देश, पुर और भिन्न-भिन्न प्रामोंको जला देता तथा कभी पर्वत गिरा-कर प्रामादिकोंको चूर्ण कर डालता ॥६॥ कमी पहाड़ोंकी चट्टान उखाड़कर समुद्रके जलमें छोड़ देता और फिर कभी समुद्रमें घुसकर उसे क्षमित कर देता॥७॥ हे द्विज ! उससे क्षुमित हुआ समुद्र ऊँची ऊँची तरङ्गोंसे उठकर अति वेगसे युक्त हो अपने तीरवर्ती ग्राम और पुर आदिको डुवो देता था ॥ ८॥ वह कामरूपी वानर महान् रूप धारणकर छोटने छगता था और अपने छुण्ठनके संघर्षसे सम्पूर्ण धान्यों (खेतों) को कुचल डालता था ॥ ९॥ हे द्विज! उस दुरात्माने इस सम्पूर्ण जगत्को खाध्याय और वपट्-कारसे शून्य कर दिया था, जिससे यह अत्यन्त दुःख-मय हो गया ॥१०॥

एकदा रवतोद्याने पपो पानं हलायुष्यः।
रेवती च महाभागा तथैवान्या वरित्रयः।।११॥
उद्गीयमानो विलसञ्जलनामौलिमध्यगः।
रेमे यदुकुलश्रेष्ठः कुवेर इव मन्दरे॥१२॥
ततस्स वानरोऽस्येत्य गृहीत्वा सीरिणो हल्स् । । । इसी समय वहाँ विविद्य ज्ञानर आया और श्रीहल्घरके

मुसलं च चकारास्य सम्मुखं च विडम्बनम् ॥१३॥ तथैव योषितां तासां जहासाभिष्ठखं कपिः। पानपूर्णांश्र करकाश्रिक्षेपाहत्य वै तदा ॥१४॥ ततः कोपपरीतात्मा भत्सयामास तं हली। तथापि तमवज्ञाय चक्रे किलकिलध्वनिम् ॥१५॥ ततः सायित्वा स बलो जग्राह ग्रुसलं रुपा। सोऽपि शैलशिलां मीमां जग्राह प्रवगोत्तमः ॥१६॥ चिक्षेप स च तां क्षिप्तां ग्रसलेन सहस्रधा। विभेद याद्वश्रेष्ठस्सा पपात महीतले।।१७॥ अथ तन्म्रसलं चासौ सम्रुङ्खच प्रवङ्गमः। वेगेनागत्यं रोपेण करेणोरस्यताडयत् ॥१८॥ ततो बलेन कोपेन मुष्टिना मूर्झि ताडितः। पपात रुघिरोद्रारी द्विविदः क्षीणजीवितः ॥१९॥ पतता तच्छरीरेण गिरक्शृङ्गमशीर्यत् । मैत्रेय शतधा वजिवज्रेणेव विदारितम्।।२०।। पुष्पवृष्टिं ततो देवा रामस्योपरि चिक्षिपुः। प्रश्रांसुस्ततोऽभ्येत्य साध्वेतत्ते महत्कृतम् ॥२१॥ दुष्टकपिना दैत्यपक्षोपकारिणा। जगिनराकृतं वीर दिष्टचा स क्षयमागतः ॥२२॥ इत्युक्त्वा दिवमाजग्मुर्देवा हृष्टास्सगुद्यकाः ॥२३॥

श्रीपराशर उवाच एवंविधान्यनेकानि बलदेवस धीमतः।

हल और म्सल लेकर उनके सामने ही उनकी नकल करने छगा ॥ १३ ॥ वह दुरात्मा वानर उन स्नियोंकी ओर देख-देखकर हँसने लगा और उसने मदिरासे भरे द्वए घड़े फोड़कर फेंक दिये ॥१४॥

तत्र श्रीहलधरने कुद्ध होकर उसे धमकाया तथापि वह उनकी अवज्ञा करके किलकारी मारने लगा ॥१५॥ तदनन्तर श्रीबलरामजीने मुसकाकर क्रोधसे अपना मूसल उठा लिया तथा उस वानरने मी एक भारी चट्टान छे छी ॥१६॥ और उसे बछराम-जीके जपर फेंकी किन्तु यदुवीर वलभद्रजीने मूसलसे उसके हजारों टुकड़े कर दिये; जिससे वह पृथिवीपर गिर पड़ी ॥१७॥ तब उस वानरने बलरामजीके म्सलका वार बचाकर रोषपूर्वक अत्यन्त वेगसे उनकी छातीमें वृँसा मारा ॥१८॥ तत्पश्चात् बलभद्रजीने भी क्रुद्ध होकर द्विविदके शिरमें घूँसा मारा जिससे वह रुधिर वमन करता हुआ निर्जीव होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥१९॥ हे मैत्रेय ! उसके गिरते समय उसके शरीरका आघात पाकर इन्द्र-वज्रसे विदीर्ण होनेके समान उस पर्वतके शिखरके सैकड़ों टुकड़े हो गये॥२०॥

उस समय देवतालोग वलरामजीके ऊपर फूल बरसाने छो और वहाँ आकर "आपने यह बड़ा अच्छा किया" ऐसा कहकर उनकी प्रशंसा करने छगे ॥२१॥ ''हे वीर ! दैत्य-पक्षके उपकारक इस दुष्ट वानरने संसारको बड़ा कष्ट दे रखा था; यह बड़े ही सौभाग्यका विषय है कि आज यह आपके हाथों मारा गया।" ऐसा कहकर गुह्मकोंके सहित देवगण अत्यन्त हर्षपूर्वक खर्गछोकको चछे आये॥२२-२३॥

श्रीपराशरजी बोले-शेषावतार घरणीधर धीमान् बल्मद्रजीके ऐसे ही अनेकों कर्म हैं, जिनका कोई कर्माण्यपरिमेयानि शेषस्य घरणीसृतः ॥२४॥ परिमाण (तुल्ना) नहीं बताया जा सकता ॥२४॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमें ऽशे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सैतीसवाँ अध्याय

ऋषियोंका शाप, यदुवंशविनाश तथा भगवान्का खधाम सिधारना।

श्रीपराशर उवाच

एवं दैत्यवधं कृष्णो बलदेवसहायवान् ।
चक्रे दुष्टिश्वतीशानां तथैव जगतः कृते ॥ १ ॥
श्वितेश्व मारं भगवान्फालगुनेन समन्वितः ।
जनतारयामास विश्वस्समस्ताक्षौहिणीवधात् । २ ॥
कृत्वा मारावतरणं श्ववो हत्वाखिलान्नुपान् ।
श्वापन्याजेन विप्राणाश्चपसंहतवान्कुलम् ॥ ३ ॥
उत्सृज्य द्वारकां कृष्णस्त्यक्त्वा माज्ञष्यमात्मनः।
सांशो विष्णुमयं स्थानं प्रविवेश श्वने निजम् ॥ ४ ॥

श्रीमैत्रेय जवाच स विप्रशापन्याजेन संजहे खकुलं कथम्। कथं च मानुषं देहमुत्ससर्ज जनार्दनः॥५॥ श्रीपरागर जवाच

विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महाम्रुनिः ।
पिण्डारके महातीर्थे दृष्टा यदुकुमारकैः ॥ ६ ॥
ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्यप्रचोदिताः ।
साम्बं जाम्बवतीपुत्रं भूषियत्वा स्त्रियं यथा ॥ ७ ॥
प्रश्रितास्तान्मुनीन् द्भः प्रणिपातपुरस्सरम् ।
इयं स्त्री पुत्रकामा वै वृत किं जनियष्यति ॥ ८ ॥

श्रीपराशर जवाच
दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते विप्रलब्धाः कुमारकैः ।
म्रुनयः कुपिताः प्रोचुर्म्रसलं जनियष्यति ॥ ९ ॥
सर्वयादवसंहारकारणं भ्रुवनोत्तरम् ।
येनाखिलकुलोत्सादो यादवानां मविष्यति ॥१०॥
इत्युक्तास्ते कुमारास्तु आचचक्षुर्यथातथम् ।
जप्रसेनाय मुसलं जज्ञे साम्बस्य चोदरात् ॥११॥
तदुप्रसेनो मुसलम्यञ्चूर्णमकारयत् ।

СС-0. Prof. Satya Vrat Shastri Co

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! इसी प्रकार संसार-के उपकारके लिये वलमद्रजीके सिंहत श्रीकृष्णचन्द्रने दैत्यों और दुष्ट राजाओंका वध किया ॥ १॥ तथा अन्तमें अर्जु नके साथ मिलकर मगवान् कृष्णने अठारह अक्षौहिणी सेनाको मारकर पृथिवीका मार उतारा ॥ २ ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण राजाओंको मारकर पृथिवीका मारावतरण किया और फिर ब्राह्मणोंके शाप-के मिषसे अपने कुलका मी उपसंहार कर दिया ॥ ३॥ हे मुने ! अन्तमें द्वारकापुरीको छोड़कर तथा अपने मानवशरीरको त्यागकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने अंश (बलराम-प्रखुन्नादि) के सिहत अपने विष्णुमय धाममें प्रवेश किया ॥ ४॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे मुने ! श्रीजनार्दनने विप्र-शापके मिषसे किस प्रकार अपने कुछका नाश किया और अपने मानव-देहको किस प्रकार छोड़ा ? ॥ ५ ॥

श्रीपराशरजीं बोले-एक बार कुछ यदुकुमारोंने महातीर्थ पिण्डारक-क्षेत्रमें विस्वामित्र, कण्व और नारद आदि महामुनियोंको देखा ॥ ६ ॥ तब यौवनसे उन्मत्त हुए उन बाल्कोंने होनहारकी प्रेरणासे जाम्बवतीके पुत्र साम्बका स्त्री-वेष बनाकर उन मुनीश्वरोंको प्रणाम करनेके अनन्तर अति नम्रतासे पूछा—"इस स्त्रीको पुत्रकी इच्छा है, हे मुनिजन! कहिये यह क्या जनेगी ?" ॥ ७-८ ॥

श्रीपराशरजी बोले-यदुकुमारोंके इस प्रकार घोखा॰ देनेपर उन दिव्य ज्ञानसम्पन्न मुनिजनोंने कुपित होकर कहा—"यह एक लोकोत्तर मृसल जनेगी जो समस्त यादवोंके नाशका कारण होगा और जिससे यादवोंका सम्पूर्ण कुल संसारमें निर्मूल हो जायगा॥ ९-१०॥

मुनिगणके इस प्रकार कहनेपर उन कुमारोंने सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों राजा उप्रसेनसे कह दिया तथा साम्बके पेटसे एक मूसल उत्पन्न हुआ ॥ ११॥ उप्रसेनने उस होहुम्य सुसल्का चूर्ण कर डाला

जज्ञे मुसलसाथ लोहसा चूणितसा तु यादवैः। खण्डं चूर्णितशेषं तु ततो यत्तोमराकृति।।१३।। तद्प्यम्बुनिधौ क्षिप्तं मत्स्यो जग्राह जालिभिः। घातितस्योदरात्तस्य छुन्धो जप्राह तजराः ॥१४॥ विज्ञातपरमार्थोऽपि भगवान्मधुसद्नः। नैच्छत्तदन्यथा कर्तुं विधिना यत्समीहितम् ।।१५।। देवैश्व प्रहितो वायुः प्रणिपत्याह केशवम् ! रहस्येवमहं दूतः प्रहितो भगवन्सुरै: ॥१६॥ वस्त्रिमरुदादित्यरुद्रसाध्यादिभिस्सह विज्ञापयति शक्रस्त्वां तदिदं श्रूयतां विभो ॥१७॥ भारावतरणार्थाय वर्षाणामधिकं शत्म्। भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदशैस्सह चोदितः ॥१८॥ दुईत्ता निहता दैत्या भ्रुवो भारोऽवतारितः । त्वया सनाथास्त्रिद्शा भवन्तु त्रिंदिवे सदा ॥१९॥ तदतीतं जगन्नाथ वर्षाणामधिकं शतम्। इदानीं गम्यतां खर्गो भवता यदि रोचते ॥२०॥ देवैविज्ञाप्यते देव तथात्रैव रतिस्तव। तत्स्थीयतां यथाकालमां ख्येयमजुजीविभिः ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

यत्त्वमात्थाखिलं दूत वेद्मचेतद्हमप्युत । प्रारब्ध एव हि मया यादवानां परिश्वयः ॥२२॥ भ्रवो नाद्यापि भारोऽयं यादवैरनिवहितै:। अवतार्य करोम्येतत्सप्तरात्रेण सत्वरः ॥२३॥ यथा गृहीतामम्भोधेर्दत्त्वाहं द्वारकाश्चवम् ।

तदेरकाचूर्ण प्रक्षिप्तं तैर्महोदधौ ॥१२॥ और उसे उन वालकोंने [ले जाकर] संमुद्रमें फेंक दिया, उससे वहाँ बहुत-से सरकण्डे उत्पन्न हो गये ॥१२॥ यादवोंद्वारा चूर्ण किये गये इस मूसछके छोहेका जो भालेकी नोंकके समान एक खण्ड चूर्ण करनेसे बचा उसे भी समुद्रहीमें फिकवा दिया। उसे एक मछ्छी निग्छ गयी। उस मछछीको मछेरोंने पकड़ छिया तथा चीरनेपर उसके पेटसे निकले हुए उस मृसलखण्डको जरा नामक व्याधने छे लिया ॥१३-१४॥ भगवान् मधुसूदन इन समस्त बातोंको यथावत् जानते थे तथापि उन्होंने विधाताकी इच्छाको अन्यथा करना न चाहा ॥ १५॥

> इसी समय देवताओंने वायुको भेजा । उसने एकान्तमें श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके कहा-''भगवन् ! मुझे देवताओंने दृत बनाकर मेजा है॥ १६॥ "हे विभो ! वसुगण, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, मरुद्रण और साध्यादिके सहित इन्द्रने आपको जो सन्देश भेजा है वह सुनिये॥ १७॥ हे भगवन् ! देवताओंकी प्रेरणासे उनके ही साथ पृथिवीका मार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुए आपको सौ वर्षसे अधिक बीत चुके हैं ॥ १८॥ अब आप दुराचारी दैत्योंको मार चुके और पृथिवीका भार भी उतार चुके, अतः [हमारी प्रार्थना है कि] अब देवगण सर्वदा खर्गमें ही आपसे सनाथ हों [अर्थात् आप स्वर्ग पधारकर देवताओंको सनाय करें] ॥ १९॥ हे जगन्नाय ! आपको भूमण्डलमें पधारे हुए सौ वर्षसे अधिक हो गये, अब यदि आपको पसन्द आवे तो स्वर्गलोक पधारिये ॥ २०॥ हे देव ! देवगणका यह मी कथन है कि यदि आपको यहीं रहना अच्छा छगे तो रहें, सेवकोंका तो यही धर्म है कि [स्वामीको] यथा-समय कर्तव्यका निवेदन कर दे" ॥ २१॥

श्रीमगवान् बोले-हे दूत ! तुम जो कुछ कहते हो वह मैं सब जानता हूँ, इसिछिये अब मैंने यादवोंके नाशका आरम्भ कर ही दिया है ॥ २२ ॥ इन यादवीं-का संहार हुए विना अभीतक पृथिवीका भार हल्का नहीं हुआ है, अतः अब सात रात्रिके भीतर [इनका संहार करके] पृथिवीका मार उतारकर मैं शीघ्र ही [जैसा तुम कहते हो] वही करूँगा ॥ २३॥ जिस प्रकार यह द्वारकाकी भूमि मैंने समुद्रसे माँगी थी इसे

तमा अभा वर्षे दन्ता

यादवाजुपसंहत्य यास्यामि त्रिदशालयम् ॥२४॥
मजुष्यदेहम्रुत्सृज्य सङ्कर्षणसहायवान् ।
प्राप्त एवास्मि मन्तव्यो देवेन्द्रेण तथामरैः ॥२५॥
जरासन्थादयो येऽन्ये निहता भारहेतवः ।
क्षितेस्तेभ्यः कुमारोऽपि यद्नां नापचीयते ॥२६॥
तदेतं सुमहाभारमवतार्य क्षितेरहम् ।
यास्याम्यमरलोकस्य पालनाय त्रवीहि तान् ॥२७॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन देवदूतः प्रणम्य तम् । मैत्रेय दिव्यया गत्या देवराजान्तिकं ययौ ॥२८॥ भगवानप्यथोत्पातान्दिव्यभौमान्तिरिक्षजान् । ददर्श द्वारकापुर्या विनाञ्चाय दिवानिश्चम् ॥२९॥ तान्द्वष्ट्वा यादवानाह पश्यध्वमतिदारुणान् । महोत्पाताञ्च्छमायैषां प्रभासं याम मा चिरम्॥३०॥

श्रीपराशर उवाच

प्वमुक्ते तु कृष्णेन यादवप्रवरस्ततः।
महाभागवतः प्राह प्रणिपत्योद्धवो हरिम् ॥३१॥
भगवन्यन्मया कार्यं तदाज्ञापय साम्प्रतम्।
मन्ये कुलमिदं सर्वं भगवान्संहरिष्यति॥३२॥
नाशायास्य निमित्तानि कुलस्याच्युत लक्ष्ये॥३३॥

श्रीभगवानुवाच

गच्छ त्वं दिव्यया गत्या मत्प्रसादसम्बत्थया।
यद्भदर्याश्रमं पुण्यं गन्धमादनपर्वते।
नरनारायणस्थाने तत्पवित्रं महीतले॥३४॥
मन्मना मत्प्रसादेन तत्र सिद्धिमवाप्स्यसि।
अहं स्वर्गं गमिष्यामि ह्युपसंहत्य वै कुलम्॥३५॥
ह्यारकां च मया त्यक्तां समुद्रः प्राविष्यति।
ह्यारकां च मया त्यक्तां समुद्रः प्राविष्यति।

उसी प्रकार उसे छोटाकर तथा यादवोंका उपसंहारकर
मैं खर्गछोकमें आऊँगा ॥ २४ ॥ अव देवराज इन्द्र
और देवताओंको यह समझना चाहिये कि संकर्षणके
सिहत मैं मनुष्य-शरीरको छोड़कर खर्ग पहुँच ही
चुका हूँ ॥ २५ ॥ पृथिवीके भारभूत जो जरासन्ध
आदि अन्य राजागण मारे गये हैं, ये यदुकुमार
भी उनसे कम नहीं हैं ॥ २६ ॥ अतः तुम
देवताओंसे जाकर कहो कि मैं पृथिवीके इस महामारको उतारकर ही देवछोकका पालन करनेके लिये
खर्गमें आऊँगा ॥ २७ ॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय! मगवान् वासुदेवके इस प्रकार कहनेपर देवदूत वायु उन्हें प्रणाम करके अपनी दिव्य गतिसे देवराजके पास चले आये ॥२८॥ मगवान्ने देखा कि द्वारकापुरीमें रात-दिन नाशके सूचक दिव्य, मौम और अन्तरिक्ष-सम्बन्धी महान् उत्पात हो रहे हैं॥ २९॥ उन उत्पातोंको देखकर मगवान्ने यादवों-से कहा—'देखो, ये कैसे घोर उपद्रव हो रहे हैं, चलो, शीघ्र ही इनकी शान्तिके लिये प्रमासक्षेत्रको चलें"॥ ३०॥

श्रीपराशरजी बोले-कृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर महाभागवत यादवश्रेष्ठ उद्धवने श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—॥३१॥ "भगवन् ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब आप इस कुलका नाश करेंगे, क्योंकि हे अच्युत ! इस समय सब ओर इसके नाशके सूचक कारण दिखायी दे रहे हैं; अतः मुझे आज्ञा कीजिये कि मैं क्या करूँ ?"॥३२-३३॥

श्रीभगवान् बोले-हे उद्धव! अव तुम मेरी कृपा-से प्राप्त हुई दिव्य गतिसे नर-नारायणके निवासस्थान गन्धमादनपर्वतपर जो पवित्र वदिरकाश्रम क्षेत्र है वहाँ जाओ। पृथिवीतलपर वहीं सबसे पावन स्थान है ॥३॥। वहाँपर मुझमें चित्त लगाकर तुम मेरी कृपासे सिद्धि प्राप्त करोगे। अब मैं भी इस कुलका संहार करके खर्ग-लोकको चला जाऊँगा ॥३५॥ मेरे छोड़ देनेपर सम्पूर्ण द्वारकाको समुद्ध जल्हों हुन्नो देगा; मुझसे मय

मद्रेश्म चैकं मुक्तवा तुं भयान्मत्तो जलाशये। तत्र सिन्हितश्राहं भक्तानां हितकाम्यया ॥३६॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं जगामाञ्च तपोवनम् । नरनारायणस्थानं केशवेनातुमोदितः ॥३७॥ ततस्ते याद्वास्सर्वे रथानारुख शीघ्रगान्। प्रभासं प्रययुस्साईं कृष्णरामादिभिर्द्धिज ।।३८।। प्रभासं समनुप्राप्ताः कुकुरान्धकवृष्णयः। चक्कस्तत्र महापानं वासुदेवेन चोदिताः ॥३९॥ पिवतां तत्र चैतेषां सङ्घर्षेण परस्परम्। अतिवादेन्धनो जज्ञे कलहाप्तिः क्षयावहः ॥४०॥

श्रीमैत्रेय उवाच

खं खं वै भुज्जतां तेषां कलहः किनिमित्तकः। सङ्घर्षे वा द्विजश्रेष्ठ तन्ममाख्यातुमहिसि ॥४१॥ श्रीपराशर उवाच

मृष्टं मदीयमन्नं ते न मृष्टमिति जल्पताम् । मृष्टामृष्टकथा जज्ञे सङ्घर्षकलहौ ततः।।४२।। ततश्चान्योन्यम्भ्येत्य क्रोधसंरक्तलोचनाः। जघ्तुः परस्परं ते तु शस्त्रेदैववलात्कृताः ॥४३॥ क्षीणशस्त्राश्च जगृहुः प्रत्यासन्नामथैरकाम् ॥४४॥ एरका तु गृहीता वै वज्रभृतेव लक्ष्यते। तया परस्परं जघ्नुस्संप्रहारे सुदारुणे ॥४५॥ प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः कृतवमाथ सात्यिकः। अनिरुद्धादयश्चान्ये पृथुर्विपृथुरेव च ॥४६॥ चारुवर्मा चारुकश्च तथाक्र्रादयो द्विज। एरकारूपिभिर्वजैसे निजम्तुः परस्परम् ॥४७॥ निवारयामास हरिर्यादवांस्ते च केशवम् । सहायं मेनिरेऽरीणां प्राप्तं जघ्तुः परस्परम् ॥४८॥ माननेके कारण केवल मेरे भवनको छोड़ देगा; अपने इस भवनमें मैं भक्तोंकी हितकामनासे सर्वदा निवास करता हूँ ॥३६॥

श्रीपराशरजी बोले-भगवान्के ऐसा कहनेपर उद्भवजी उन्हें प्रणामकर तुरन्त ही उनके बतलाये हुए तपोवन श्रीनरनारायणके स्थानको चळे गये॥३०॥ हे द्विज ! तदनन्तर कृष्ण और वलराम आदिके सहित सम्पूर्ण यादव शीघ्रगामी रथोंपर चढ़कर प्रभासक्षेत्रमें आये ॥३८॥ वहाँ पहुँचकर कुकुर, अन्यक और वृष्णि आदि वंशोंके समस्त यादवोंने कृष्णचन्द्रकी प्रेरणासे महापान और मोर्जन किया ॥ ३९॥ पान करते समय उनमें परस्पर कुछ विवाद हो जानेसे वहाँ कुबाक्य-रूप ईंधनसे युक्त प्रख्यकारिणी कछहाग्नि धधक उठी ॥४०॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे द्विज ! अपना-अपना मोजन करते हुए उन यादवोंमें किस कारणसे कछह (वाग्युद्ध) अथवा संघर्ष (हाथापाई) हुआ, सो आप कहिये ॥४१॥

श्रीपराशरजी बोले-'मेरा मोजन शुद्ध है, तेरा अच्छा नहीं है' इस प्रकार मोजनके अच्छे-बुरेकी चर्चा करते-करते उनमें परस्पर विवाद और हाथापाई हो गयी ॥४२॥ तत्र वे दैवी प्रेरणासे विवश होकर आपसमें क्रोधसे रक्तनेत्र हुए एक दूसरेपर शस्त्रप्रहार करने छगे और जब शक्ष समाप्त हो गये तो पास-हीमें उगे हुए सरकण्डे छे छिये ॥४३-४४॥ उनके हाथमें छगे हुए वे सरकण्डे वज्रके समान प्रतीत होते थे, उन वज्रतुल्य सरकण्डोंसे ही वे उस दारुण युद्धमें एक दूसरेपर प्रहार करने छगे ॥४५॥

हे द्विज ! प्रद्मुस्न और साम्ब आदि कृष्णपुत्रगण, कृतवर्मा, सात्यिक और अनिरुद्ध आदि तथा पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, चारुक और अक्रूर आदि यादवगण एक दूसरेपर एरकारूपी वज्रोंसे प्रहार करने लगे ॥४६-४७॥ जब श्रीहरिने उन्हें आपसमें लड़नेसे रोका तो उन्होंने उन्हें अपने प्रतिपक्षीका सहायक होकर आये हुए समझा और [उनकी बातकी अवहेळनाकर] एक दूसरेको मारने छगे॥ १८॥

१ मैत्रेयजीके अग्रिम प्रश्न और प्राशर्जीके उत्तरसे वहाँ यदुवंशियोंका अझ-भोजन करना भी सिद्ध होता है।

कृष्णोऽपि कुपितस्तेषामेरकाम्रुष्टिमाददे ।
वश्राय सोऽपि म्रुसलं म्रुष्टिलीहमभूत्तदा ॥४९॥
जधान तेन निश्शेषान्यादवानाततायिनः ।
जध्तुस्ते सहसाम्येत्य तथान्येऽपि परस्परम्॥५०॥
तत्रश्राण्वमध्येन जैत्रोऽसौ चक्रिणो रथः ।
पश्यतो दारुकस्याथ प्रायादश्रेष्टितो द्विज ॥५१॥
चक्रं गदा तथा शार्ङ्गं तूणी शङ्कोऽसिरेव च ।
प्रदक्षिणं हरिं कृत्वा जग्म्रुरादित्यवर्त्मना ॥५२॥

खणेन नाभवत्किश्रद्यादवानामयातितः।

ऋते कृष्णं महात्मानं दारुकं च महामुने ॥५३॥
चङ्क्रम्यमाणौ तौ रामं वृक्षमूले कृतासनम्।
दृद्याते ग्रुखाचास्य निष्क्रामन्तं महोरगम् ॥५४॥
निष्क्रम्य स ग्रुखाचस्य महाभोगो ग्रुजङ्गमः।
प्रययावर्णवं सिद्धैः पूज्यमानस्तथोरगैः॥५५॥
ततोऽर्घ्यमादाय तदा जलिषस्सम्मुखं ययौ।
प्रविवेश ततस्तोयं पूजितः पन्नगोत्तमैः॥५६॥

दृष्ट्वा बलस्य निर्याणं दारुकं प्राह केशवः ।
इदं सर्वं समाचक्ष्य वसुदेवोग्रसेनयोः ॥५७॥
निर्याणं बलभद्रस्य यादवानां तथा क्षयम् ।
योगे स्थित्वाहमप्येतत्परित्यक्ष्ये कलेवरम् ॥५८॥
वाच्यश्च द्वारकावासी जनस्सर्वस्तथाहुकः ।
यथेमां नगरीं सर्वा समुद्रः प्रावयिष्यति ॥५९॥
तसाद्भवद्भिस्सर्वेस्तु प्रतीक्ष्यो ह्यर्जनागमः ।
न स्थेयं द्वारकामध्ये निष्कान्ते तत्र पाण्डवे ॥६०॥
तेनैव सह गन्तव्यं यत्र याति स कौरवः ॥६१॥
गत्वा च ब्रूहि कौन्तेयमर्जनं वचनान्मम् ।
पालनीयस्त्वया शक्त्या जनोऽयं मत्परिग्रहः ॥६२॥
त्वमर्जुनेन सहितो द्वारवत्यां तथा जनम् ।

कृष्णचन्द्रने भी कुपित होकर उनका वध करनेके छिये एक मुट्टी सरकण्डे उठा छिये। वे मुट्टीभर सरकण्डे छोहेके मूसछ [समान] हो गये ॥४९॥ उन मूसछरूप सरकण्डोंसे कृष्णचन्द्र सम्पूर्ण आततायी यादवोंको मारने छगे तथा अन्य समस्त यादव भी वहाँ आ-आकर एक दूसरेको मारने छगे ॥५०॥ हे द्विज! तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्रका जैत्र नामक रथ घोडोंसे आकृष्ट हो दारुकके देखते-देखते समुद्रके मध्यपथसे चछा गया॥ ५१॥ इसके पश्चात् भगवान्के शंख, चक्र, गदा, शार्क्षधनुष, तरकश और खड्ग आदि आयुध श्रीहरिकी प्रदक्षिणाकर सूर्यमार्गसे चछे गये॥५२॥

हे महामुने ! एक क्षणमें हो महातमा कृष्णचन्द्र और उनके सारथी दारुकको छोड़कर और कोई यदुवंशी जीवित न बचा ॥५३॥ उन दोनोंने वहाँ यूमते हुए देखा कि श्रीवल्रामजी एक वृक्षके तले वैठे हैं और उनके मुखसे एक वहुत बड़ा सर्प निकल रहा है ॥५४॥ वह विशाल फणधारी सर्प उनके मुखन्से निकलकर सिद्ध और नागोंसे पूजित हुआ समुद्रकी ओर गया॥५५॥ उसी समय समुद्र अर्घ्य लेकर उस (महासर्प) के सम्मुख उपस्थित हुआ और वह नागश्रेष्ठोंसे पूजित हो समुद्रमें घुस गया॥५६॥

इस प्रकार श्रीबळरामजीका प्रयाण देखकर श्रीकृष्ण-चन्द्रने दारुकसे कहा—"तुम यह सब वृत्तान्त उप्रसेन और वसुदेवजीसे जाकर कहो" ॥५०॥ बळमद्रजीका निर्याण, यादवोंका क्षय और मैं भी योगस्य होकर शरीर छोडूँ गा—[यह सब समाचार उन्हें] जाकर सुनाओ ।५८। सम्पूर्ण द्वारकावासी और आहुक (उप्रसेन) से कहना कि अब इस सम्पूर्ण नगरीको समुद्र डुवो देगा ॥५९॥ इसळिये आप सब केवळ अर्जुनके आगमनकी प्रतीक्षा और करें तथा अर्जुनके यहाँ से छोटते ही फिर कोई भी व्यक्ति द्वारकामें न रहे; जहाँ वे कुरुनन्दन जायँ वहीं सब छोग चळे जायँ ॥६०-६१॥ कुन्तीपुत्र अर्जुनसे तुम मेरी ओरसे कहना कि "अपनी सामध्यी-जुसार तुम मेरे परिवारके छोगोंकी रक्षा करना" ॥६२॥ और तुम द्वारकावासी सामी द्वारको छेकर अर्जुनके गृहीत्वा याहि वज्रश्च यदुराजो भविष्यति ॥६३॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तो दारुकः कृष्णं प्रणिपत्य पुनः पुनः । प्रदक्षिणं च बहुशः कृत्वा प्रायाद्यथोदितम् ॥६४॥ स्च गत्वा तदाचष्ट द्वारकायां तथार्जनम् । आनिनाय महाबुद्धिर्वज्ं चक्रे तथा नृपस् ॥६५॥ मंगवानिप गोविन्दो वासुदेवात्मकं परम्। त्रह्मात्मिन समारोप्य सर्वभूतेष्वधारयत् । निष्प्रपश्चे महाभाग संयोज्यात्मानमात्मनि । तुर्यावस्थं सलीलं च शेते स पुरुषोत्तमः ॥६६॥ सम्मानयन्द्रिजवचो दुर्वासा यदुवाच ह । योगयुक्तोऽभवत्पादं कृत्वा जानुनि सत्तम ॥६७॥ आययौ च जरानाम तदा तत्र स छुज्धकः। मुसलावशेषलोहैं कसायकन्यस्ततो मरः स तत्पादं मृगाकारमवेक्ष्यारादवस्थितः। तले विच्याध तेनैव तोमरेण द्विजोत्तम ॥६९॥ ततंत्र दहरो तत्र चतुर्वाहुधरं नरम्। प्रणिपत्याह चैवैनं प्रसीदेति पुनः पुनः।।७०।। अज्ञानता कृतमिदं मया हरिणशङ्कया। क्षम्यतां मम पापेन दग्धं मां त्रातुमहिसि ॥७१॥

श्रीपराशर जवाच ततस्तं भगवानाह न तेऽस्तु भयमण्वपि । गच्छ त्वं मत्प्रसादेन छुच्घ खर्गं सुरास्पदम् ॥७२॥ साथ चले जाना । [हमारे पीछे] वज्र यदुवंशका राजा होगा ॥६३॥

श्रीपराशरजी बोले-भगवान् कृष्णचन्द्रके इस प्रकार कहनेपर दारुकने उन्हें बारम्बार प्रणाम किया और उनकी अनेक परिक्रमाएँ कर उनके कथना-जुसार चला गया ॥६४॥ उस महाबुद्धिने द्वारकामें पहुँचकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया और अर्जुनको वहाँ लाकर वज्रको राज्याभिषिक्त किया ॥६५॥

इधर भगवान् कृष्णचन्द्रने समस्त भूतोंमें व्याप्त वासुदेवसक्रप परव्रहाको अपने आत्मामें आरोपित कर उनका ध्यान किया तथा है महाभाग ! वे पुरुषो-त्तम छीछासे ही अपने चित्तको निष्प्रपञ्च परमात्मामें ळीनकरं तुरीयपदमें स्थित हुए ॥६६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! दुर्वासाजीने [श्रीकृष्णचन्द्रके लिये] जैसा कहा था उस द्विजवाक्यका * मानं रखनेके छिये वे अपनी जानुओंपर चरण रखकर योगयुक्त होकर बैठे ॥६७॥ इसी समय, जिसने म्सलके बचे हुए तोमर (वाणमें लगे हुए छोहेके टुकड़े) के आकारवाछे छोह्खण्डको अपने वाणकी नोंकपर लगा लिया या; वह जरा नामक व्याध वहाँ आया ॥ ६८ ॥ हे द्विजोत्तम ! उस चरणको मृगाकार देख उस व्याधने उसे दूरहीसे खड़े-खड़े उसी तोमरसे बींध डाळा ॥६९॥ किन्तु वहाँ पहुँचनेपर उसने एक चतुर्भुजधारी मनुष्य देखा । यह देखते ही वह चरणोंमें गिरकर वारम्बार उनसे कहने छगा-"प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये ॥७०॥ मैंने बिना जाने ही मृगकी आशङ्कासे यह अपराध किया है, कृपया क्षमा कीजिये । मैं अपने पापसे दग्ध हो रहा हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये"।।७१॥

श्रीपराशरजी बोले-तब भगवान्ने उससे कहा-"खुब्धक ! त् तनिक भी न डर; मेरी कृपासे त् अभी देवताओंके स्थान खर्गछोकको चला जा॥ ७२॥

क महाभारतमें यह प्रसंग आया है कि प्क बार महिषे दुर्वासा श्रीकृष्णचन्द्रजीके यहाँ आये और भगवान्से साकार पाकर उन्होंने कहा कि आप मेरा जूँठा जल अपने सारे शरीरमें लगाइये। भगवान्ने वैसा ही किया, परन्तु 'ब्राझायाका जूँठ पैरसे नहीं छूना चाहिये' ऐसा सोचकर पैरमें नहीं छगाया। इसपर दुर्वासाने शाप दिया कि आपके पैरमें कभी छेद हो जायगा।

विमानमागतं सद्यसद्याक्यसमनन्तरम् । आरुह्य प्रययो स्वर्ग छन्धकस्तत्प्रसादतः ॥७३॥ गते तस्मिन्स भगवान्संयोज्यात्मानमात्मनि। ब्रह्मभूतेऽन्ययेऽचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले ॥७४॥ अजन्मन्यमरे विष्णावप्रमेयेऽखिलात्मनि । तत्याज मार्जुपं देहमतीत्य त्रिविधां गतिम् ।।७५॥

इन भगवद्वाक्योंके समाप्त होते ही वहाँ एक विमान आया, उसपर चढ़कर वह व्याध भगवान्की कृपासे उसी समय खर्गको चला गया ॥७३॥ उसके चले जानेपर भगवान् कृष्णचन्द्रने अपने आत्माको अव्यय, अचिन्त्य, वासुदेवस्वरूप, अमल, अजन्मा, अमर, अप्रमेय, अखिलात्मा और ब्रह्मखरूप विष्णुभगवान्में लीन कर त्रिगुणात्मक गतिको पार करके इस मनुष्य-शरीरको छोड़ दिया ॥७४-७५॥

-- 1> Kooket --

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

-·>*******

अड़तीसवाँ अध्याय

याद्वोंका अन्त्येष्टि-संस्कार परीक्षितका राज्याभिषेक तथा पाण्डवोंका स्वर्गारोहण।

श्रीपराशर उवाच

अर्जुनोऽपि तदान्विष्य रामकृष्णकलेवरे । संस्कारं लम्भयामास तथान्येपामनुक्रमात्।। १।। अष्टो महिष्यः कथिता रुक्मिणीप्रमुखास्तु याः । उपगुद्ध हरेर्देहं विविश्चस्ता हुताशनम्।। २।। रेवती चापि रामस देहमाश्लिष्य सत्तमा । विवेश ज्वलितं विद्वं तत्सङ्गाह्णादशीतलम् ॥ ३ ॥ उप्रसेनस्तु तच्छ्रत्वा तथैवानकदुन्दुभिः। देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जातवेदसम्।। ४॥ ततोऽर्जुनः प्रेतकार्यं कृत्वा तेषां यथाविधि । निश्वकाम जनं सर्वे गृहीत्वा वज्रमेव च ॥ ५॥ द्वारवत्या विनिष्क्रान्ताः कृष्णपत्न्यः सहस्रशः। वर्जं जनं च कौन्तेयः पालयञ्छनकैर्ययौ।। ६।। सभा सुधर्मा कृष्णेन मर्त्यलोके सम्रुज्झिते। खर्गं जगाम मैत्रेय पारिजातश्च पादपः॥७॥ 🖊 यस्मिन्दिने हरिर्यातो दिवं सन्त्यज्य मेदिनीम्। तिसनेवावतीर्णोऽयं कालकायो वली किलः।।८।।

श्रीपराशरजी बोले-अर्जुनने राम और कृष्ण तथा अन्यान्य मुख्य-मुख्य यादवोंके मृत देहोंकी खोज कराकर क्रमशः उन सत्रके और्घ्वदैहिक संस्कार किये ॥ १ ॥ भगवान् कृष्णकी जो रुक्मिणी आदि आठं पटरानी वतलायी गयी हैं उन सवने उनके शरीरका आलिङ्गन कर अग्निमें प्रवेश किया ॥२॥ सती रेवतीजी भी वलरामजीके देहका आलिंगन कर, उनके अंग-संगके आह्वादसे शीतल प्रतीत होती हुई प्रज्वित अग्निमें प्रवेश कर गयीं ॥ ३॥ इस सम्पूर्ण अनिष्टका समाचार सुनते ही उग्रसेन, वसुदेव, देवकी और रोहिणीने भी अग्निमें प्रवेश किया ॥ ४॥

तदनन्तर अर्जुन उन सवका विधिपूर्वक प्रेत-कर्म कर वज्र तथा अन्यान्य कुटुम्बियोंको साथ छेकर द्वारकासे बाहर आये ॥ ५॥ द्वारकासे निकली हुई कृष्णचन्द्रकी सहस्रों पत्नियों तथा वज्र और अन्यान्य वान्धवोंकी [सावधानतापूर्वक] रक्षा करते हुए अर्जुन धीरे-धीरे चले ॥६॥ हे मैत्रेय ! कृष्णचन्द्रके मर्त्यलोकका त्याग करते ही सुधर्मा समा और पारिजात-वृक्ष भी स्वर्ग-लोकको चले गये ॥ ७ ॥ जिस दिन भगवान् पृथिवीको . छोड़कर खर्ग सिघारे थे उसी दिनसे यह मिलन-किर्माया बली कोलः ॥ ८ ॥ । देह महाबली कलियुग पृथिवीपर आ गया ॥ ८ ॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by Gangotri

ष्ठावयामास तां ग्रून्यां द्वारकां च महोद्धिः । वासुदेवगृहं त्वेकं न प्रावयति सागरः॥९॥ नातिकान्तुमलं ब्रह्मस्तदद्यापि महोदधिः । नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्केशवो यतः ॥१०॥ तद्तीव महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् । विष्णुश्रियान्वितं स्थानं दृष्ट्वा पापाद्विसुच्यते ॥११॥ पार्थः पश्चनदे देशे बहुधान्यधनान्विते । चकार वासं सर्वस्य जनस्य ग्रुनिसत्तमः ॥१२॥ ततो लोभस्समभवत्पार्थेनैकेन धन्विना। दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमाना दस्यूनां निहतेश्वराः ॥१३॥ ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहृतचेतसः। आभीरा मन्त्रयामासुस्समेत्यात्यन्तदुर्मदाः ॥१४॥ अयमेकोऽर्जुनो धन्वी स्नीजनं निहतेश्वरम् । नयत्यसानतिक्रम्य धिगेतद्भवतां बलम् ॥१५॥ हत्वा गर्वसमारूढो भीष्मद्रोणजयद्रथान्। कर्णादींश्र न जानाति बलं ग्रामनिवासिनाम्।।१६॥ यष्टिहस्तानवेक्ष्यासान्धजुष्पाणिस्स दुर्मतिः । सर्वानेवावजानाति किं वो बाहुमिरुन्नतैः ॥१७॥

ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवो लोष्ट्रधारिणः।
सहस्रशोऽम्यधावन्त तं जनं निहतेश्वरम्॥१८॥
ततो निर्भर्त्सं कौन्तेयः प्राहाभीरान्हसिन्नव।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदि न स्य प्रमूर्षवः॥१९॥
अवज्ञाय वचत्तस्य जगृहुस्ते तदा धनम्।
स्रीधनं चैव मैत्रेय विष्वक्सेनपरिग्रहम्॥२०॥
ततोऽर्जुनो धनुर्दिच्यं गाण्डीवम्जरं युधि।
आरोपयितुमारेमे न शशाक च वीर्यवान्॥२१॥
चकार सज्यं कृष्ट्याच तचाभ्ष्टिश्रीलं पुनः।
न सस्मार ततोऽस्नाणि चिन्तयन्नपि पाण्डवः॥२२॥

СС-0. Prof. Satya Vrat Shastri Colle

इस प्रकार जनश्रन्य द्वारकाको समुद्रने डुवो दिया, केवल एक कृष्णचन्द्रके भवनको वह नहीं डुवाता है ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् ! उसे डुवानेमें समुद्र आज भी समर्थ नहीं है क्योंकि उसमें भगवान् कृष्णचन्द्र सर्वदा निवास करते हैं ॥ १० ॥ वह भगवदैश्वर्यसम्पन स्थान अति पवित्र और समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है; उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है॥११॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! अर्जुनने उन समस्त द्वारका-वासियोंको अत्यन्त धन-धान्य-सम्पन्न (पञ्जाब) देशमें बसाया ॥ १२ ॥ उस समय अनाथा स्त्रियोंको अकेले धनुर्धारी अर्जुनको ले जाते देख छुटेरोंको लोम उत्पन्न हुआ ॥ १३॥ तत्र उन अत्यन्त दुर्मद, पापकर्मा और लुव्धहृद्य आभीर दस्युओंने परस्पर मिळकर सम्मति की-॥ १४॥ 'देखो, यह धनुर्धारी अर्जुन अकेळा ही हमारा अति-क्रमण करके इन अनाथा स्त्रियोंको छिये जाता है; हमारे ऐसे बल-पुरुषार्थको धिकार है!॥ १५॥ यह भीष्म, द्रोण, जयद्रथ और कर्ण आदि [नगर-निवासियों] को मारकर ही इतना अभिमानी हो गया है, अभी हम ग्रामीणोंके बलको यह नहीं जानता ।। १६ ।। हमारे हाथोंमें छाठी देखकर यह दुर्मित धनुष छेकर हम सबकी अवज्ञा करता है फिर हमारी इन ऊँची-ऊँची भुजाओंसे क्या लाम है ?' ।। १७ ।।

ऐसी सम्मितकर वे सहस्रों छटेरे छाठी और ढेले छेकर उन अनाय द्वारकावासियोंपर टूट पड़े ।। १८ ।। तब अर्जुनने उन छटेरोंको झिड़ककर हँसते हुए कहा— "अरे पापियो ! यदि तुम्हें मरनेकी इच्छा न हो तो अभी छौट जाओ" ।।१९ ।। किन्तु हे मैत्रेय ! छटेरोंने उनके कथनपर कुछ भी ध्यान न दिया और भगवान् कृष्णके सम्पूर्ण धन और स्नीधनको अपने अधीन कर छिया ।। २० ।। तब बीरवर अर्जुनने युद्धमें अक्षीण अपने गाण्डीव धनुषको चढ़ाना चाहा; किन्तु वे ऐसा न कर सके ।। २१ ।। उन्होंने जैसे-तैसे अति कठिनतासे उसपर प्रत्यञ्चा (डोरी) चढ़ा भी छी तो फिर वे शिथिछ हो गये और बहुत कुछ सोचनेपर भी उन्हों अपने अस्तोंका स्मारणान हुआ ।। २२ ॥

820

शरान्ध्रसोच चैतेषु पार्थी वैरिष्वमर्षितः। त्वग्भेदं ते परं चक्रुरस्ता गाण्डीवधन्विना ॥२३॥ बह्विना येऽक्षया दत्ताक्कारास्तेऽपि क्षयं ययुः । युद्धचतस्सह गोपालैरर्जुनस्य भवक्षये ॥२४॥

अचिन्तयच कौन्तेयः कृष्णस्येव हि तद्वलम् । यन्मया शरसङ्घातैस्सकला भूभृतो हताः ॥२५॥ मिषतः पाण्डुपुत्रख ततस्ताः प्रमदोत्तमाः। आभीरैरपकुष्यन्त कामं चान्याः प्रदुद्भन्दः ॥२६॥ ततक्कारेषु क्षीणेषु धनुष्कोटचा धनञ्जयः। जधान दस्यूंस्ते चास्य प्रहाराञ्जहसुर्ध्वने ॥२७॥ प्रेक्षतस्तस्य पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः। जग्धरादाय ते म्लेच्छाः समस्ता ध्रनिसत्तम ।।२८॥ ततस्सुदुःखितो जिष्णुः कष्टं कप्टमिति ब्रवन्। अहो भगवतानेन विवादीऽस्मि रुरोद ह ॥२९॥ तद्भुत्तानि शस्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः । सर्वमेकपदे नष्टं दानमश्रोत्रिये यथा।।३०॥ अहोऽतिबलवद्दैवं विना तेन महात्मना। यदसामर्थ्ययुक्ते जियमदम् ॥३१॥ तौ बाहू स च मे मुष्टिः स्थानं तत्सोऽसि चार्जुनः। पुण्येनैव विना तेन गतं सर्वमसारताम् ॥३२॥ ममार्जुनंत्वं भीमस्य भीमत्वं तत्कृते ध्रुवम् । विना तेन यदाभीरैर्जितोऽहं रथिनां वरः ॥३३॥

श्रीपराशर उवाच इत्थं वदन्ययौ जिष्णुरिन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ।

तब वे ऋुद्ध होकर अपने शत्रुओंपर वाण बरसाने छगे; किन्तु गाण्डीवधारी अर्जुनके छोड़े हुए उन वाणोंने केवल उनकी त्वचाको ही वींधा ॥ २३॥ अर्जुनका उद्भव क्षीण हो जानेके कारण अग्निके दिये हुए उनके अक्षय वाण भी उन अहीरोंके साथ छड़नेमें नष्ट हो गये ॥ २४॥

तव अर्जुनने सोचा कि मैंने जो अपने शरसमूह-से अनेकों राजाओंको जीता था वह सव कृष्णचन्द्र-का ही प्रभाव था ॥ २५॥ अर्जुनके देखते-देखते वे अहीर उन स्नीरलोंको खींच-खींचकर हे जाने हुगे तथा कोई-कोई अपनी इच्छानुसार इधर-उधर माग गर्या ॥ २६ ॥ वाणोंके समाप्त हो जानेपर धनञ्जय अर्जुनने धनुषकी नोंकसे ही प्रहार करना आरम्म किया, किन्तु हे मुने ! वे दस्युगण उन प्रहारोंकी और भी हँसी उड़ाने छगे॥२७॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार अर्जुनके देखते-देखते वे म्लेच्छगण वृष्णि और अन्धकवंशकी उन समस्त स्त्रियोंको लेकर चले गये ॥ २८ ॥ तत्र सर्वदा जयशील अर्जुन अत्यन्त दुखी होकर 'हा ! कैसा कष्ट है ? कैसा कष्ट है ?' ऐसा कहकर रोने छगे [और बोछे—] "अहो ! मुझे उन भगवान्ने ही ठग छिया ॥ २९॥ देखो, वहीं धनुष है, वे ही शस्त्र हैं, वहीं रय है और वे ही अस्त्र हैं, किन्तु अश्रोत्रियको दिये हुए दानके समान आज समी एक साथ नष्ट हो गये ॥ ३०॥ अहो ! दैव बड़ा प्रवल है, जिसने आज उन महात्मा कृष्णके न रहनेपर असमर्थ और नीच अहीरोंको जय दे दी ॥ ३१ ॥ देखो ! मेरी वे ही मुजाएँ हैं, वहीं मेरी मुष्टि (मुट्टी) है, वहीं (कुरुक्षेत्र) स्थान है और मैं भी वही अर्जुन हुँ तथापि पुण्यदर्शन कृष्णके विना आज सव सारहीन हो गये ॥ ३२ ॥ अवस्य ही मेरा अर्जुनत्व और भीमका भीमत्व भगवान् कृष्णकी कृपासे ही या । देखो, उनके बिना आज महारिययों में श्रेष्ठ मुझको तुच्छ आभीरोंने जीत छिया" ॥ ३३ ॥

श्रीपराशरजी बोले-अर्जुन इस प्रकार कहते हुए अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थमें आये और वहाँ चकार तत्र राजानं वर्जं यादवनन्दनम् ॥३४॥ यादवनन्दन वज्रका राज्यामिषेक किया ॥ ३४॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

त्रमध्य न्याति रोजः।
स ददर्श ततो व्यासं फाल्गुनः काननाश्रयम् ।
तस्र पेत्य महाभागं विनयेनाभ्यवादयत् ॥३५॥
तं वन्दमानं चरणाववलोक्य स्रुनिश्चिरम् ।
उवाच वाक्यं विच्छायः कथमद्य त्वमीदृशः॥३६॥
हो

प्रवाच वाक्य विच्छाया क्यमध त्वमाहरा।।रपा।

प्रवाच वाक्य विच्छाया क्रवाथ वा ।

हृद्धाशामङ्गदुःखीव अष्टच्छायोऽसि साम्प्रतम्।३७।

सान्तानिकादयो वा ते याचमाना निराकृताः।

अगम्यस्त्रीरितर्वा त्वं येनासि विगतप्रभः॥३८॥

सुद्केऽप्रदाय विप्रेम्यो मिष्टमेकोऽथ वा भवान्।

कि वा कृपणवित्तानि हृतानि भवतार्जुन ॥३९॥

किचन्तु शूर्पवातस्य गोचरत्वं गतोऽर्जुन ।

दुष्टचक्षुर्हतो वाऽसि निश्लीकः कथमन्यथा॥४०॥

स्पृष्टो नखाम्भसा वाथ घटवार्युक्षितोऽपि वा ।

केन त्वं वासि विच्छायो न्यूनैर्वा युधि निर्जितः।४१॥

श्रीपराग्गर उनाच ततः पार्थो विनिःश्वस्य श्रूयतां भगविनति । उन्त्वा यथावदाचष्टे च्यासायात्मपराभवम् ॥४२॥ अर्जुन उनाच

यद्धलं यच मत्तेजो यद्धीर्य यः पराक्रमः ।

याश्रीश्रष्ठाया च नः सोऽसान्परित्यज्य हरिर्गतः ॥

ईश्वरेणापि महता सितपूर्वामिमाविणा ।

हीना वयं मने तेन जातास्तृणमया इव ॥४४॥

अस्राणां सायकानां च गाण्डीवस्य तथा मम ।

सारता यामवन्मृतिंस्स गतः प्रुरुषोत्तमः ॥४५॥

СС-0. Prof. Salya Viat Shastir Col

तदनन्तर वे विपिनवासी व्यासमुनिसे मिले और उन महाभाग मुनिवरके निकट जाकर उन्हें विनयपूर्वक प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ अर्जुनको बहुत देरतक अपने चरणोंकी वन्दना करते देख मुनिवरने कहा-"आज तुम ऐसे कान्तिहीन क्यों हो रहे हो ? ।। ३६ ।। क्या तुमने भेड़ोंकी घूलिका अनु-गमन किया है अथवा ब्रह्महत्या की है या तुम्हारी कोई सुदृढ़ आशा भंग हो गयी है ? जिसके दुःखसे तुम इस समय इतने श्रीहीन हो रहे हो ॥ ३०॥ तुमने किसी सन्तानके इच्छुकका विवाहके छिये याचना करनेपर निरादर तो नहीं किया अथवा किसी अगम्य स्त्रीसे रमण तो नहीं किया, जिससे तुम ऐसे तेजोहीन हो रहे हो ॥ ३८॥ हे अर्जुन! तुम ब्राह्मणोंको बिना दिये मिष्टान अकेले तो नहीं खा छेते हो, अथवा तुमने किसी कृपणका धन तो नहीं हर लिया है ॥ ३९॥ हे अर्जुन ! तुमने सूपकी वायुका तो सेवन नहीं किया ? क्या तुम्हारी आँखें दुखती हैं अथवा तुम्हें किसीने मारा है ? तुम इस प्रकार श्रीहीन कैसे हो रहे हो ? ॥ १०॥ तुमने नख-जलका स्पर्श तो नहीं किया ? तुम्हारे जपर घड़ेसे छलके हुए जलकी छीटें तो नहीं पड़ गयीं अथवा तुम्हें किसी हीनबल पुरुषने युद्धमें पराजित तो नहीं किया ? फिर तुम इस तरह हतप्रम कैसे हो रहे हो ?" ॥ ४१ ॥

श्रीपराशरजी बोल्ले-तब अर्जुनने दीर्घ निःश्वास छोडते हुए कहा—"भगवन् ! सुनिये" ऐसा कहकर उन्होंने अपने पराजयका सम्पूर्ण बृत्तान्त व्यासजीको ज्यों-का-त्यों सुना दिया ॥ ४२ ॥

अर्जु न बोले-जो हिर मेरे एकमात्र बल, तेज, वीर्य, पराक्रम, श्री और कान्ति थे वे हमें छोड़कर चले गये॥ ४३॥ जो सब प्रकार समर्थ होकर भी हमसे मित्रवत् हँस-हँसकर बातें किया करते थे, हे मुने! उन हरिके विना हम आज तृणमय पुतलेके समान निःसत्त्व हो गये हैं॥ ४४॥ जो मेरे दिल्याकों, दिल्य-वाणों और गाण्डीव धनुषके मूर्तिमान् सार थे वे पुरुषोत्तम भाषान् हमें छोड़कार जले गये हैं॥ ४५॥

न तत्याज स गोविन्द्स्त्यक्त्वास्मान्भगवानगतः ॥ भीष्मद्रोणाङ्गराजाद्यास्तथा दुर्योधनाद्यः। यत्प्रभावेन निर्देग्धास्स कृष्णस्त्यक्तवान्ध्रवम् ।४७। निर्यौवना गतश्रीका नष्टच्छायेव मेदिनी। विभाति तात नैकोऽहं विरहे तस चिकणः ॥४८॥ ्रयस्य प्रभावाद्धीष्माद्यैर्भय्यमी शलभायितम् । विना तेनाद्य कृष्णेन गोपालैरसि निर्जितः ।४९। गाण्डीवस्त्रिषु लोकेषु ख्याति यदनुभावतः। गतस्तेन विनाभीरलगुडैस्स तिरस्कृतः ॥५०॥ स्त्रीसहस्राण्यनेकानि मन्नाथानि महाम्रने । यततो मम नीतानि दस्यभिर्लगुडायुधैः ॥५१॥ आनीयमानमाभीरैः कृष्ण कृष्णावरोधनम् । हृतं यष्टिप्रहरणैः परिभूय वलं मम।।५२॥ √निक्श्रीकता न मे चित्रं यञ्जीवामि तद्द्भतम् । नीचावमानपङ्काङ्की निर्लजोऽसि पितामह ॥५३॥

यस्यावलोकनादसाञ्ज्रीर्जयः सम्पद्वन्नतिः ।

श्रीव्यास जवाच

अलं ते त्रीडिया पार्थ न त्वं शोचितुमईसि ।
अवेहि सर्वभूतेषु कालस्य गतिरीहशी ॥५४॥
कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव ।
कालमूलिमदं ज्ञात्वा भव स्थैर्यपरोऽर्जुन ॥५५॥
नद्यः समुद्रा गिरयस्सकला च वसुन्धरा ।
देवा मनुष्याः पश्चवस्तरवश्च सरीसृपाः ॥५६॥
सृष्टाः कालेन कालेन पुनर्यास्यन्ति संक्षयम् ।
कालात्मकिमदं सर्व ज्ञात्वा शममवाप्नुहि ॥५७॥

जिनकी कृपा-दृष्टिसे श्री, जय, सम्पत्ति और उन्नतिने कभी हमारा साथ नहीं छोड़ा वे ही भगवान् गोविन्द हमें छोड़कर चले गये हैं॥ ४६॥ जिनकी प्रभावाग्नि-में भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि अनेकों शूरवीर दग्ध हो गये थे उन कृष्णचन्द्रने इस भूमण्डल-को छोड़ दिया है ॥ ४७ ॥ हे तात ! उन चक्रपाणि कृष्णचन्द्रके विरहमें एक मैं ही क्या, सम्पूर्ण पृथिवी ही यौवन, श्री और कान्तिसे हीन प्रतीत होती है ॥ ४८॥ जिनके प्रभावसे अग्निरूप मुझमें भीष्म आदि महार्थीगण पतंगवत् भस्म हो गये थे, आज उन्हीं कृष्णके बिना मुझे गोपोंने हरा दिया ! ॥ ४९ ॥ जिनके प्रभावसे यह गाण्डीव धनुष तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ था उन्होंके विना आज यह अहीरोंकी लाठियोंसे तिरस्कृत हो गया ! ॥ ५० ॥ हे महामुने ! भगवान्की जो सहस्रों स्नियाँ मेरी देख-रेखमें आ रही थीं उन्हें, मेरे सब प्रकार यह करते रहनेपर भी दस्यगण अपनी लाठियोंके बलसे ले गये ॥५१॥ हे कृष्णद्वैपायन ! लाठियाँ ही जिनके हथियार हैं उन आभीरोंने आज मेरे बलको कुण्ठितकर मेरेद्वारा साथ लाये हुए सम्पूर्ण कृष्ण-परिवारको हर छिया ॥ ५२ ॥ ऐसी अवस्थामें मेरा श्रीहीन होना कोई आश्चर्यकी वात नहीं है: हे पितामह ! आश्चर्य तो यह है कि नीच पुरुषोंद्वारा अपमान-पंकमें सनकर भी मैं निर्लज अभी जीवित ही हूँ ॥५३॥

श्रीव्यासजी बोले-हे पार्थ ! तुम्हारी लजा व्यर्थ है, तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। तुम सम्पूर्ण मूर्तोमें कालकी ऐसी ही गित जानो ॥ ५४ ॥ हे पाण्डव ! प्राणियोंकी उन्नति और अवनतिका कारण काल ही है, अतः हे अर्जुन ! इन जय-पराजयोंको कालके अधीन समझकर तुम स्थिरता धारण करो ॥५५॥ नदियाँ, समुद्र, गिरिगण, सम्पूर्ण पृथिवी, देव, मनुष्य, पग्नु, बृक्ष और सरीस्प्य आदि सम्पूर्ण पदार्थ कालके ही रचे हुए हैं और फिर कालहीसे ये क्षीण हो जाते हैं, अतः इस सारे प्रपञ्चको कालासक जानकर साल्य होओ ॥ ५६-५०॥

यचात्य कृष्णमाहात्म्यं तत्त्रयेव धनञ्जय।।५८॥ भारावतारकार्यार्थमवतीर्णस्स मेदिनीम्। भाराक्रान्ता घरा याता देवानां समितिं पुरा ॥५९॥ तदर्थमवतीणींऽसौ कालरूपी जनार्दनः। तच निष्पादितं कार्यमशेषा भूअजो हताः ॥६०॥ वृष्ण्यन्यककुलं सर्वे तथा पार्थोपसंहतम्। न किञ्चिद्न्यत्कर्तव्यं तस्य भूमितले प्रमोः ॥६१॥ अतो गतस्स भगवान्कृतकृत्यो यथेच्छया । सृष्टिं सर्गे करोत्येष देवदेवः स्थितौ स्थितिम्। अन्तेऽन्ताय समर्थोऽयं साम्प्रतं वै यथा गतः॥६२॥ तस्मात्यार्थं न सन्तापस्त्वया कार्यः पराभवे । भवन्ति भावाः कालेषु पुरुषाणां यतः स्तुतिः।।६३।। त्वयैकेन हता भीष्मद्रोणकर्णाद्यो रणे। तिषामर्ज्जन कालोत्यः किं न्यूनामिभवो न सः ।६४। विष्णोस्तस्य प्रभावेण यथा तेषां पराभवः। कृतस्तथैव भवतो दस्युभ्यस्त पराभवः ॥६५॥ स देवेशक्शरीराणि समाविक्य जगत्स्थितिम्। करोति सर्वभूतानां नाशमन्ते जगत्पतिः ॥६६॥ भगोद्ये ते कौन्तेय सहायोऽभूजनार्दनः। तथान्ते तद्विपक्षास्ते केशवेन विलोकिताः ॥६७॥ करंश्रद्घ्यात्सगाङ्गेयान्हन्यास्त्वं कौरवानिति । आमीरेभ्यश्र मनतः कः श्रद्घ्यात्परामनम् ॥६८॥

कालखरूपी भगवान्कृष्णः कमललोचनः।

हे धनञ्जय ! तुमने कृष्णचन्द्रका जैसा माहात्म्य बतलाया है वह सब सत्य ही है; क्योंकि कमलनयन भगवान् कृष्ण साक्षात् काळखरूप ही हैं॥ ५८॥ उन्होंने पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही मर्त्यलोकमें अवतार लिया था। एक समय पूर्वकालमें पृथिवी भाराक्रान्त होकर देवताओंकी सभामें गयी थी। ५९॥ काळलरूपी श्रीजनाद्नने उसीके छिये अवतार छिया थां। अब सम्पूर्ण दुष्ट राजा मारे जा चुके, अतः वह कार्य सम्पन्न हो गया ॥ ६०॥ हे पार्थ ! वृष्णि और अन्धक आदि सम्पूर्ण यदुकुलका भी उपसंहार हो गया; इसिछिये उन प्रमुके छिये अब पृथिवीतलपर और कुछ भी कर्त्तव्य नहीं रहा ॥ ६१॥ अतः अपना कार्य समाप्त हो चुकनेपर भगवान् स्वेच्छानुसार चले गये, ये देवदेव प्रमु सर्गके आरम्भमें सृष्टि-रचना करते हैं, स्थितिके समय पाछन करते हैं और अन्तमें ये ही उसका नारा करनेमें समर्थ हैं - जैसे इस समय वे [राक्षस आदिका संहार करके] चले गये हैं ॥६२॥

अतः हे पार्थ ! तुंझे अपनी पराजयसे दुःखी न होना चाहिये क्योंकि अम्युदय-काल उपस्थित होनेपर ही पुरुषोंसे ऐसे कर्म बनते हैं जिनसे उनकी स्तुति होती है ॥६ ३॥ हे अर्जुन ! जिस समय तुझ अकेलेने ही युद्धमें भीष्म, द्रोण और कर्ण आदिको मार डाला था वह क्या उन वीरोंका कालकमसे प्राप्त हीनवल पुरुषसे परामव नहीं था ?।।६४॥ जिस प्रकार भगवान् विष्णुके प्रभावसे तुमने उन सबोंको नीचा दिखलाया था उसी प्रकार तुझे दस्युओंसे दबना पड़ा है ॥ ६५॥ वे जगत्पति देवेक्तर ही शरीरोंमें प्रविष्ट होकर जगत्की स्थिति करते हैं और वे ही अन्तमें समस्त जीवोंका नाश करते हैं ॥ ६६॥

हे कौन्तेय ! जिस समय तेरा भाग्योदय हुआ था उस समय श्रीजनार्दन तेरे सहायक ये और जब उस (सौभाग्य) का अन्त हो गया तो तेरे विपक्षियोंपर श्रीकेशवकी कृपादृष्टि हुई है ॥ ६७॥ त् गंगानन्दन भीष्मपितामहके सहित सम्पूर्ण कौरवींको मार डालेगा— इस बातको कौन मान सकता था और फिर यह भी किसे विकास होगा कि त् आमीरोंसे हार जायगा ॥६८॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पार्थेतत्सर्वभूतस्य हरेर्लीलाविचेष्टितम् । त्वया यत्कोरवा ध्वस्ता यदाभीरैर्भवाञ्जितः॥६९॥

गृहीता दस्युभिर्याश्च भवाञ्छोचित तास्त्रियः।
एतस्याहं यथावृत्तं कथयामि तवार्जन ॥७०॥
अष्टावकः पुरा विग्रो जलवासरतोऽभवत्।
चहून्वर्षगणान्पार्थ गृणन्त्रह्म सनातनम्॥७१॥
जितेष्वसुरसङ्घेषु मेरुपृष्ठे महोत्सवः।
चश्च तत्र गच्छन्त्यो दृहश्चस्तं सुरिह्मयः॥७२॥
रम्भातिलोत्तमाद्यास्तु शतशोऽथ सहस्रशः।
तुष्टुबुस्तं महात्मानं प्रश्चशंसुश्च पाण्डव॥७३॥
आकण्ठमग्नं सिलले जटाभारवहं सुनिम्।
विनयावनताश्चैनं प्रणेसुः स्तोत्रतत्पराः॥७४॥
यथा यथा प्रसन्नोऽसौ तुष्टुबुस्तं तथा तथा।
सर्वास्ताः कौरवश्रेष्ठ तं वरिष्ठं द्विजन्मनाम्॥७५॥

अष्टावक उवाच

प्रसन्नोऽहं महाभागा भवतीनां यदिष्यते ।

मत्तस्तिद्वयतं सर्वं प्रदास्याम्यतिदुर्लभम् ॥७६॥

रम्भातिलोत्तमाद्यासं वैदिक्योऽप्सरसोऽह्यवन् ।

प्रसन्ने त्वय्यपर्याप्तं किमसाकमिति द्विज ॥७७॥

इतरास्त्वह्यवन्वित्र प्रसन्नो भगवान्यदि ।

तदिच्छामः पर्ति प्राप्तुं विप्रेन्द्र पुरुषोत्तमम्॥७८॥

श्रीव्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा ह्युत्ततार जलान्युनिः।

तम्रुत्तीर्णं च दद्द्युर्विरूपं वक्रमष्टधा ॥७९॥

तं दृष्ट्वा गृहमानानां यासां हासः स्फुटोऽभवत् ।

ताक्श्वाप मुनिः कोपमवाप्य कुरुनन्दन ॥८०॥

हे पार्थ ! यह सत्र सर्वात्मा भगवान्की छीछाका ही कौतुक है कि तुझ अकेछेने कौरवोंको नष्ट कर दिया और फिर खर्य अहीरोंसे पराजित हो गया ॥ ६९॥

हे अर्जुन ! तू जो उन दस्युओं द्वारा हरण की गयी कियों के लिये शोक करता है सो मैं तुझे उसका यथावत् रहस्य वतलाता हूँ ॥७०॥ एक वार पूर्वकालमें विप्रवर अष्टावक्रजी सनातन ब्रह्मकी स्तुति करते हुए अनेकों वर्षतक जल्में रहे ॥ ७१ ॥ उसी समय दैत्योंपर विजय प्राप्त करने से देवताओं ने सुमेरु पर्वतपर एक महान् उत्सव किया । उसमें सम्मिलित होने के लिये जाती हुई रम्भा और तिलोत्तमा आदि सैकड़ों-हजारों देवांगनाओं ने मार्गमें उन मुनिवरको देखकर उनकी अत्यन्त स्तुति और प्रशंसा की ॥ ७२-७३ ॥ वे देवांगनाएँ उन जटाधारी मुनिवरको कण्ठपर्यन्त जल्में इवे देखकर विनयपूर्वक स्तुति करती हुई प्रणाम करने लगीं ॥ ७४ ॥ हे कौरवश्रेष्ठ ! जिस प्रकार वे द्विजश्रेष्ठ अष्टावक्रजी प्रसन्त हों उसी प्रकार वे अप्सराएँ उनकी स्तुति करने लगीं ॥ ७५ ॥

अष्टावकजी बोले-हे महामागाओ ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो मुझसे वही वर माँग लो; मैं अति दुर्लम होनेपर भी तुम्हारी इच्छा पूर्ण कलँगा ॥ ७६ ॥ तब रम्मा और तिलोत्तमा आदि वैदिकी (वेदप्रसिद्ध) अप्सराओंने उनसे कहा—"हे द्विज ! आपके प्रसन्न हो जानेपर हमें क्या नहीं मिल गया ।७०। तथा अन्य अप्सराओंने कहा—"यदि भगवान् हमपर प्रसन्न हों तो हे विप्रेन्द्र ! हम साक्षात् पुरुषोत्तम-भगवान्को पतिरूपसे प्राप्त करना चाहती हैं" ॥७८॥

श्रीन्यासजी बोले—तब 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर मुनिवर अष्टावक जलसे वाहर आये। उनके बाहर आते समय अप्सराओंने आठ स्थानोंमें टेढ़े उनके कुरूप देहको देखा॥७९॥ उसे देखकर जिन अप्सराओंन की हँसी लिपानेपर भी प्रकट हो गयी, हे कुरुनन्दन ! उन्हें मुनिवरने कुद्ध होकर यह शाप दिया—॥ ८०॥

यसाद्विकृतरूपं मां मत्वा हासावमानना।
भवतीभिः कृता तसादेतं शापं ददामि वः॥८१॥
मत्त्रसादेन भर्तारं लब्ध्वा तु पुरुषोत्तमम्।
मच्छापोपहतास्सर्वा दस्युहस्तं गमिष्यथ॥८२॥
श्रीव्यास जवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्यं मुनिस्ताभिः प्रसादितः । पुनस्सुरेन्द्रलोंकं वै प्राह भूयो गमिष्यथ।।८३।। एवं तस्य मुनेश्शापादष्टावक्रस्य चक्रिणम्। मर्तारं प्राप्य ता याता दस्युहस्तं सुराङ्गनाः॥८४॥ तत्त्वया नात्र कर्त्तव्यक्शोकोऽल्पोऽपि हि पाण्डव । तेनैवाखिलनाथेन सर्वं तदुपसंहतम्।।८५॥ भवतां चोपसंहार आसन्नस्तेन पाण्डव। वलं तेजस्तथा वीर्थं माहात्म्यं चोपसंहतम् ॥८६॥ जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतेः। वित्रयोगावसानस्तु संयोगः सश्चये क्षयः ॥८७॥ विज्ञाय न बुधाक्शोकं न हर्षम्रुपयान्ति ये। तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तस्सन्ति तादृशाः ॥८८॥ तसात्त्वया नरश्रेष्ठ ज्ञात्वैतद्भातृभिस्सह। परित्यज्याखिलं तन्त्रं गन्तव्यं तपसे वनम्।।८९॥ तद्गच्छ धर्मराजाय निवेद्यैतद्वचो मम। परश्चो भ्रावृभिस्सार्द्धं यथा यासि तथा कुरु ॥९०॥ इत्युक्तोऽभ्येत्य पार्थाभ्यां यमाभ्यां च सहार्जुनः । दृष्टं चैवातुभूतं च सर्वमाख्यातवांस्तथा ॥९१॥ व्यासवाक्यं च ते सर्वे श्रुत्वार्जनमुखेरितम् । राज्ये परीक्षितं कृत्वा ययुः पाण्डुसुता वनम्।।९२।।

"मुझे कुरूप देखकर तुमने हँसते हुए मेरा अपमान किया है इसिंख्ये मैं तुम्हें यह शाप देता हूँ कि मेरी कृपासे श्रीपुरुषोत्तमको पतिरूपसे पाकर भी तुम मेरे शापके वशीभूत होकर छटेरोंके हाथोंमें पड़ोगी" ॥८१-८२॥

श्रीव्यासजी बोले—मुनिका यह वाक्य सुनकर उन अप्सराओंने उन्हें फिर प्रसन्न किया, तब मुनिवर-ने उनसे कहा—"उसके पश्चात् तुम फिर स्वर्गलोकमें चली जाओगी" ॥८३॥ इस प्रकार मुनिवर अष्टावक्रके शापसे ही वे देवांगनाएँ श्रीकृष्णचन्द्रको पति पाकर भी फिर दस्युओंके हाथमें पड़ी हैं ॥ ८४॥

हें पाण्डव ! तुझे इस विषयमें तनिक भी शोक न करना चाहिये क्योंकि उन अखिलेश्वरने ही सम्पूर्ण यदुकुलका उपसंहार किया है ॥ ८५॥ तथा तुम-छोगोंका अन्त भी अब निकट ही है; इसिछिये उन सर्वेश्वरने तुम्हारे बल, तेज, वीर्य और माहात्म्यका सङ्कोच कर दिया है॥ ८६॥ 'जो उत्पन्न हुआ है ' उसकी मृत्यु निश्चित है, उन्नतका पतन अवश्यम्मावी है, संयोगका अन्त वियोग ही है तथा सञ्चय (एकत्र करने) के अनन्तर क्षयं (व्यय) होना सर्वथा निश्चित ही है'--ऐसा जानकर जो बुद्धिमान् पुरुष छाम या हानिमें हर्ष अथवा शोक नहीं करते उन्हींकी चेष्टाका अवलम्बनकर अन्य मनुष्य भी अपना वैसा आचरण बनाते हैं ॥ ८७-८८ ॥ इसिक्टिये हे नरश्रेष्ठ ! तुम ऐसा जानकर अपने भाइयोंसहित सम्पूर्ण राज्यको छोड़कर तपस्याके लिये वनको जाओ ॥ ८९॥ अव तुम जाओ तथा धर्मराज युधिष्ठिरसे मेरी ये सारी वातें कहो और जिस तरह परसों भाइयोंसहित वनको चले जा सको वैसा यत करो ॥ ९०॥

मुनिवर व्यासजीके ऐसा कहनेपर अर्जुनने [इन्द्र-प्रस्थमें] आकर पृथा-पुत्र (युधिष्ठिर और मीमसेन) तथा यमजों (नकुछ और सहदेव) से उन्होंने जो कुछ जैसा-जैसा देखा और सुना था सब ज्यों-का-त्यों सुना दिया ॥ ९१ ॥ उन सब पाण्डु-पुत्रोंने अर्जुनके मुखसे व्यासजीका सन्देश सुनकर राज्यपदपर परीक्षित-को अमिषिक किया और खयं बनको चले गरे ॥ २ ॥

(१९॥४) विकास किया और खर्य बनका चले गये ॥९२॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri चले गये ॥९२॥ इत्येतत्तव मैत्रेय विस्तरेण मयोदितम् । जातस्य यद्यदोर्वशे वासुदेवस्य चेष्टितम् ॥९३॥ यश्चैतचरितं तस्य कृष्णस्य शृणुयात्सदा । सर्वपापविनिर्धको विष्णुलोकं स गच्छति ॥९४॥ हे मैत्रेय ! भगवान् वासुदेवने यदुवंशमें जन्म छेकर जो-जो छीछाएँ की थीं वह सब मैंने विस्तारपूर्वक तुम्हें सुना दीं ॥ ९३ ॥ जो पुरुष भगवान् कृष्णके इस चरित्रको सर्वदा सुनता है वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर अन्तमें विष्णुछोकको जाता है ॥ ९४ ॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे अष्टात्रिशोऽध्यायः ॥३८॥

इति श्रीपराश्चरम्रुनिविरचिते श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायके श्रीमति विष्णुमहापुराणे पश्चमोंऽश्चः समाप्तः।









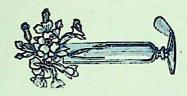
श्रीविष्णुपुराण

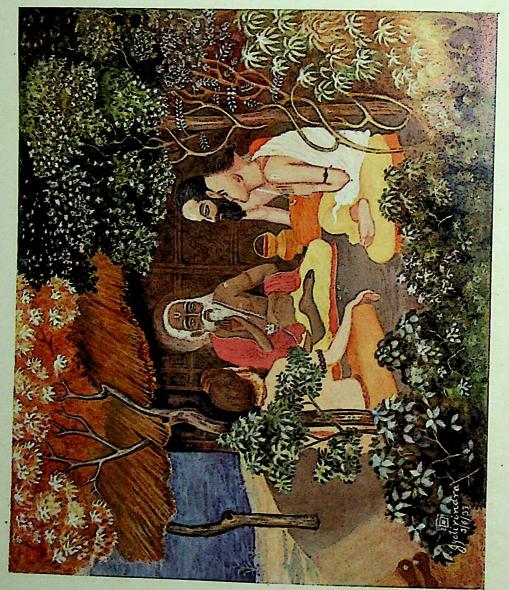


क्षु अंश

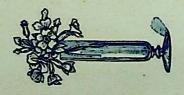


नित्यानन्दं नित्यविद्वारं निर्पायं नीराधारं नीरदकान्ति निरवद्यम् । नानाऽनानाकारमनाकारमुदारं वन्दे विष्णुं नीरजनामं निष्ठनाक्षम्॥





शिव्यासजी एवं ऋषियोंका संवाद



पहला अध्याय

कलिधर्मनिरूपण।

श्रीमैत्रेय उवाच

च्याख्याता भवता सर्गवंशमन्वन्तरिश्वतिः। वंशाज्ञचरितं चैव विस्तरेण महामुने ।। १।। श्रोतमिच्छाम्यहं त्वत्तो यथावदुपसंहतिम् । महाप्रलयसंज्ञां च कल्पान्ते च महाम्रुने ॥ २ ॥

श्रीपराशर उवाच

मैत्रेय श्रूयतां मत्तो यथावदुपसंहृतिः। कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलये जायते यथा।। ३।। अहोरात्रं पितृणां तु मासोऽब्दि स्त्रिदिवौकसाम् । चतुर्युगसहस्रे तु ब्रह्मणो वै द्विजोत्तम ॥ ४ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्रेति चतुर्युगम्। दिच्यैर्वर्षसहस्रेस्त तदुद्वादश्मिरुच्यते ॥ ५॥ चतुर्युगाण्यशेषाणि सदृशानि खरूपतः। आद्यं कृतयुगं मुक्त्वा मैत्रेयान्त्यं तथा कलिम्।। ६।। आद्ये कृतयुगे सर्गी ब्रह्मणा कियते यथा। कियते चोपसंहारस्तथान्ते च कलौ युगे।। ७॥

श्रीमैत्रेय उवाच

कलेस्खरूपं भगवन्विस्तराद्वक्तमहिस । धर्मश्रुतुष्पाद्भगवान्यस्मिन्विधवमृच्छति ॥ ८॥

श्रीपराशर उवाच

कलेस्खरूपं मैत्रेय यद्भवाञ्छोत्।

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे महामुने ! आपने सृष्टि-रचना, वंश-परम्परा और मन्वन्तरोंकी स्थितिका तथा वंशोंके चरित्रोंका विस्तारसे वर्णन किया ॥ १ ॥ अब मैं आपसे कल्पान्तमें होनेवाले महाप्रलय नामक संसारके उपसंहारका यथावत् वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! कल्पान्तके समय प्राकृत प्रलयमें जिस प्रकार जीवोंका उपसंहार होता है, वह सुनो ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! मनुष्योंका एक मास पितृगणका, एक वर्ष देवगणका और दो सहस्र चतुर्यग ब्रह्माका एक दिन-रात होता है ॥४॥ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि-ये चार युग हैं, इन सबका काल मिलाकर बारह हजार दिव्य वर्ष कहा जाता है॥५॥ हे मैत्रेय ! [प्रत्येक मन्वन्तरके] आदि कृतयुग और अन्तिम कलियुगको छोडकर रोष सब चतुर्यग खरूपसे एक समान हैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार आदा (प्रथम) सत्ययुगमें ब्रह्माजी जगत्की रचना करते हैं उसी प्रकार अन्तिम कलियुगमें वे उसका उपसंहार करते हैं ॥ ७ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे भगवन् ! कलिके खरूपका विस्तारसे वर्णन कीजिये, जिसमें चार चरणोंवाछे भगवान् धर्मका प्रायः छोप हो जाता है ॥ ८॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! आप जो कलि-युगका खरूप सुनना चाहते हैं सो उस समय तिश्वोध समासेन वर्तते यन्महामुने।। ९।। जो कुछ होता है वह संक्षेपसे सुनिये॥९॥ वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिन कलौ नृणाम् । न सामऋग्यज्ञर्धर्मविनिष्पादनहैतुकी ॥१०॥ विवाहा न कलौ धर्म्या न शिष्यगुरुसंस्थितिः । न दाम्पत्यक्रमो नैव विद्विदेवात्मकः ऋमः ॥११॥

यत्र कुत्र कुले जातो बली सर्वेश्वरः कलौ ।
सर्वेम्य एव वर्णेम्यो योग्यः कन्यावरोधने ॥१२॥
येन केन च योगेन द्विजातिर्दीक्षितः कलौ ।
यैव सैव च मैत्रेय प्रायिश्वतं कलौ किया ॥१३॥
सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्वचनं द्विज ।
देवता च कलौ सर्वा सर्वस्सर्वस्य चाश्रमः ॥१४॥
उपवासस्तथायासो वित्तोत्सर्गस्तपः कलौ ।
धर्मो यथाभिरुचितैरनुष्ठानैरनुष्ठितः ॥१५॥

वित्तेन मिवता पुंसां खल्पेनाळ्यमदः कलौ।
स्त्रीणां रूपमद्श्रेवं केशैरेव भविष्यति ॥१६॥
सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्रे चोपश्चयं गते।
कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशैरलङ्कताः॥१७॥
परित्यक्ष्यन्ति मर्चारं वित्तदीनं तथा स्त्रियः।
मर्चा भविष्यति कलौ वित्तवानेव योपिताम् ॥१८॥
यो वै ददाति बहुलं सं स स्वामी सदा नृणाम्।
स्वामित्वहेतुस्सम्बन्धो न चामिजनता तथा ॥१९॥

गृहान्ता द्रव्यसङ्घाता द्रव्यान्ता च तथा मतिः । अर्थाश्चात्मोपमोग्यान्ता भविष्यन्ति कलौ युगे २० किथुगमें मनुष्योंकी प्रवृत्ति वर्णाश्रम-धर्मानुकूल नहीं रहती और न वह ऋक्-साम-यजुरूप त्रयी-धर्मका सम्पादन करनेवाली ही होती है॥१०॥ उस समय धर्म-विवाह, गुरु-शिष्य-सम्बन्धकी स्थिति, दाम्पत्यक्रम और अग्निमें देवयज्ञक्रियाका क्रम (अनुष्ठान) भी नहीं रहता॥ ११॥

कियुगमें जो वलवान् होगा वही सबका खामी होगा चाहे किसी भी कुलमें क्यों न उत्पन्न हुआ हो, वह सभी वणोंसे कन्या प्रहण करनेमें समर्थ होगा ॥१२॥ उस समय द्विजातिगण जिस-किसी उपायसे [अर्थात् निषिद्ध द्रव्य आदिसे] भी 'दीक्षित' हो जायँगे और जैसी-तैसी क्रियाएँ ही प्रायश्चित्त मान ली जायँगी॥१३॥ हे द्विज! किल्युगमें जिसके मुखसे जो कुछ निकल जायगा वही शास्त्र समझा जायगा; उस समय सभी (भूत-प्रेत-मशान आदि) देवता होंगे और सभीके सब आश्रम होंगे॥११॥ उपवास, तीर्थाटनादि कायक्लेश, धन-दान तथा तप आदि अपनी रुचिके अनुसार अनुष्ठान किये हुए ही धर्म समझे जायँगे॥१५॥

कियुगमें अल्प धनसे ही छोगोंको धनाह्यताका गर्व हो जायगा और केशोंसे ही क्षियोंको सुन्दरताका अमिमान होगा ॥ १६ ॥ उस समय सुवर्ण, मणि, रत्न और वक्षोंके क्षीण हो जानेसे क्षियाँ केश-कछापों-से ही अपनेको विभूषित करेंगी ॥ १७ ॥ जो पति धनहीन होगा उसे क्षियाँ छोड़ देंगी । किछ्युगमें धनवान् पुरुष ही क्षियोंका पति होगा ॥ १८ ॥ जो मनुष्य [चाहे वह कितनाहू निन्च हो] अधिक धन देगा वही छोगोंका खामी होगा; यह धन-दानका सम्बन्ध ही खामित्वका कारण होगा, कुळीनता नहीं ॥ १९ ॥

किमें सारा द्रव्य-संग्रह घर बनानेमें ही समाप्त हो जायगा [दान-पुण्यादिमें नहीं] बुद्धि धन-सञ्चयमें ही छगी रहेगी [आत्मज्ञानमें नहीं] सारी सम्पत्ति अपने उपभोगमें ही नष्ट हो जायगी [उससे अतिथिसत्कारादि न होगा] ॥२०॥ स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः। अन्यायावाप्तवित्तेषु पुरुषाः स्पृह्यालवः ॥२१॥ अभ्यर्थितापि सुहृदा स्वार्थहानिं न मानवाः। पणार्घार्घार्द्धमात्रेऽपि करिष्यन्ति कलौ द्विज ॥२२॥ समानपौरुपं चेतो भावि विषेषु वै कलौ। क्षीरप्रदानसम्बन्धि भावि गोषु च गौरवम् ॥२३॥ अनावृष्टिसयप्रायाः प्रजाः क्षुद्भयकातराः । भविष्यन्ति तदा सर्वे गगनासक्तदृष्टयः ॥२४॥ कन्दमूलफलाहारास्तापसा इव मानवाः। आत्मानं घातयिष्यन्ति ह्यनावृष्टचादिदुःखिताः२५ दुर्भिक्षमेव सततं तथा क्वेशमनीश्वराः। प्राप्खन्ति व्याहतसुखप्रमोदा मानवाः कलौ ॥२६॥ अस्तानभोजिनो नामिदेवतातिथिपूजनम् । करिष्यन्ति कलै। प्राप्ते न च पिण्डोदकित्रयाम्।२७। लोखपा हस्वदेहाश्र बह्वनादनतत्पराः। बहुप्रजाल्पमाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः।।२८।। उभाभ्यामपि पाणिभ्यां शिरःकण्डूयनं स्त्रियः। कुर्वन्त्यो गुरुभर्तृणामाज्ञां भेत्स्यन्त्यनादराः ॥२९॥ खपोपणपराः श्वद्रा देहसंस्कारवर्जिताः। परुषानृतभाषिण्यो भविष्यन्ति कलौ ख्रियः ॥३०॥ दुःशीला दुष्टशीलेषु कुर्वन्त्यस्सततं स्पृहाम्। असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गनाः ॥३१॥ वेदादानं करिष्यन्ति बटवश्राक्रतव्रताः। गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दास्यन्त्युचितान्यपि।३२। वानप्रस्था भविष्यन्ति ग्राम्याहारपरिग्रहाः । भिक्षवश्रापि मित्रादिस्नेहसम्बन्धयन्त्रणाः ॥३३॥

किकालमें स्रियाँ सुन्दर पुरुषकी कामनासे स्वेच्छा-चारिणी होंगी तथा पुरुष अन्यायोपार्जित धनके इच्छुक होंगे ॥२१॥ हे द्विज ! कलियुगमें अपने सुदृदोंके प्रार्थना करनेपर भी लोग एक-एक दमड़ीके लिये भी स्वार्थ-हानि नहीं करेंगे॥ २२॥ कलिमें ब्राह्मणोंके साथ शृद्ध आदि समानताका दावा करेंगे और दूध देनेके कारण ही गौओंका सम्मान होगा॥ २३॥

उस समय सम्पूर्ण प्रजा क्षुधाकी व्ययासे व्याकुछ हो प्रायः अनावृष्टिके भयसे सदा आकाशकी ओर दृष्टि लगाये रहेगी ॥ २४ ॥ मनुष्य [अनका अभाव होनेसे] तपिखयोंके समान केवल कन्द, मूल और फल आदिके सहारे ही रहेंगे तथा अनावृष्टिके कारण दुःखी होकर आत्मद्यात करेंगे ॥ २५ ॥ कलियुगके असमर्थ लोग सुख और आनन्दके नष्ट हो जानेसे प्रायः सर्वदा दुर्भिक्ष तथा क्लेश ही मोगेंगे ॥ २६ ॥ कलिके आनेपर लोग विना स्नान किये ही मोजन करेंगे, अग्नि, देवता और अतिथिका पूजन न करेंगे और न पिण्डोदक किया ही करेंगे ॥ २७ ॥

उस समयकी स्नियाँ विषयछोल्लप, छोटे शरीरवाछी, अति भोजन करनेवाछी, अधिक सन्तान पैदा करनेवाछी और मन्दभाग्य होंगी ॥ २८ ॥ वे दोनों हाथों-से शिर खुजाती हुई अपने गुरुजनों और पितयोंके आदेशका अनादरपूर्वक खण्डन करेंगी ॥ २९ ॥ किछ्युगकी स्नियाँ अपना ही पेट पाछनेमें तत्पर, क्षुद्र चित्तवाछी, शारीरिक शौचसे हीन तथा कर और मिथ्या भाषण करनेवाछी होंगी॥ ३०॥ उस समयकी कुछाङ्गनाएँ निरन्तर दुश्चरित्र पुरुषोंकी इच्छा रखनेवाछी एवं दुराचारिणी होंगी तथा पुरुषोंके साथ असद्व्यवहार करेंगी॥ ३१॥

ब्रह्मचारिंगण वैदिक व्रत आदिसे हीन रहकर ही वेदाध्ययन करेंगे तथा गृहस्थगण न तो हवन करेंगे और न सत्पात्रको उचित दान ही देंगे॥ ३२॥ वानप्रस्थ [वनके कन्द-म्छादिको छोड़कर] प्राम्य भोजनको खीकार करेंगे और संन्यासी अपने मित्रादिक से स्नेह-बन्धनमें ही बँधे रहेंगे॥ ३३॥

अरक्षितारो हर्त्तारदशुल्कव्याजेन पार्थिवाः । हारिणो जनवित्तानां सम्प्राप्ते त कलौ युगे ।।३४।। यो योऽश्वरथनागाळास्स स राजा भविष्यंति। यश्र यश्रावलस्सर्वस्स स भृत्यः कलौ युगे ।।३५।। वैश्याः कृपिवणिज्यादि सन्त्यज्य निजकर्म यत्। ग्रुद्रवृत्त्या प्रवर्त्स्यंन्ति कारुकर्मोपजीविनः ॥३६॥ मेक्षत्रतपराः ग्रुद्धाः प्रत्रज्यालिङ्गिनोऽघमाः। पापण्डसंश्रयां वृत्तिमाश्रयिष्यन्ति सत्कृताः॥३७॥ दुर्भिक्षकरपीडाभिरतीवोपद्धता गोध्मात्रयवात्राढ्यान्देशान्यास्यन्ति दुःखिताः॥

वेदमार्गे प्रलीने च पापण्डाख्ये ततो जने। अधर्मवृद्धचा लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥३९॥ अञास्त्रविहितं घोरं तप्यमानेषु वै तपः। नरेषु नृपदोपेण बाल्ये मृत्युर्भविष्यति ॥४०॥ भविता योपितां स्तिः पश्चपद्सप्तवापिकी । नवाष्टदश्चवर्षाणां मजुष्याणां तथा कलौ ॥४१॥ पिलतोद्भवश्र मविता तथा द्वादश्वार्पिकः। नातिजीवति वै कश्चित्कलौ वर्पाणि विंशतिः॥४२॥ अल्पप्रज्ञा वृथालिङ्गा दुष्टान्तःकरणाः कलौ। यतस्ततो विनङ्क्ष्यन्ति कालेनाल्पेन मानवाः।४३।

यदा यदा हि मैत्रेय हानिर्धर्मस्य लक्ष्यते । तदा तदा कलेईदिरजुमेया विचक्षणैः ॥४४॥ यदा यदा हि पापण्डवृद्धिमैत्रेय लक्ष्यते। तदा तदा कलेईद्विरजुमेया महात्मिभः॥४५॥ यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम् । तदा तदा कलेर्द्रद्विरज्ञमेया विचक्षणैः ॥४६॥ प्रारम्भाश्रावसीदन्ति यदा धर्ममृतां नृणाम् । तदानुमेयं प्राधान्यं कलेमेंत्रेय पण्डितः ॥४७॥

कलियुगके आनेपर राजालोग प्रजाकी रक्षा नहीं करेंगे, वल्कि कर छेनेके वहाने प्रजाका ही धन छीनेंगे ॥ ३४ ॥ उस समय जिस-जिसके पास बहुत-से हाथी, घोड़े और रथ होंगे वह-वह ही राजा होगा तथा जो-जो शक्तिहीन होगा वह-वह ही सेवक होगा ॥३५॥ वैस्यगण कृषि-वाणिज्यादि अपने कर्मोंको छोड्-कर शिल्पकारी आदिसे जीवन-निर्वाह करते हुए शृद्ध-वृत्तियोंमें ही लग जायँगे ॥ ३६ ॥ आश्रमादिके चिह्नसे रहित अधम गृद्रगण संन्यास छेकर भिक्षावृत्तिमें तत्पर रहेंगे और लोगोंसे सम्मानित होकर पापण्ड-वृत्तिका आश्रय छेंगे॥३०॥ प्रजाजन दुर्मिक्ष और करकी पीड़ासे अत्यन्त उपद्रवयुक्त और दुःखित होकर ऐसे देशोंमें चले जायँगे जहाँ गेहूँ और जौकी अधिकता होगी ॥ ३८॥

उस समय वेद-मार्गका छोप, मनुष्योंमें पापण्ड-की प्रचुरता और अधर्मकी वृद्धि हो जानेसे प्रजाकी आयु अल्प हो जायगी ॥ ३९ ॥ छोगोंके शास्त्रविरुद्ध घोर तपस्या करनेसे तथा राजाके दोपसे प्रजाओंकी बाल्यावस्थामें मृत्यु होने छगेगी॥ ४०॥ कलिमें पाँच-छः अथवा सात वर्षकी स्त्री और आठ-नौ या दश वर्षके पुरुषोंके ही सन्तान हो जायगी ॥ ४१॥ वारह वर्पकी अवस्थामें ही छोगोंके वाछ पकने छोंगे और कोई भी व्यक्ति बीस वर्षसे अधिक जीवित न रहेगा ॥ ४२ ॥ कलियुगमें लोग मन्द-बुद्धि, न्यर्थ चिह्न धारण करनेवाळे और दुष्ट चित्तवाळे होंगे, इसिंछये वे अल्पकालमें ही नष्ट हो जायँगे ॥ ४३॥

हे मैत्रेय ! जय-जय धर्मकी अधिक हानि दिखलायी दे तभी-तभी बुद्धिमान् मनुष्यको कलियुगकी बुद्धिका अनुमान करना चाहिये॥ ४४॥ हे मैत्रेय! जब-जब पापण्ड बढ़ा हुआ दीखे तभी-तभी महात्माओंको किंगुगकी वृद्धि समझनी चाहिये॥ ४५॥ जन्न-जन वैदिक मार्गका अनुसरण करनेवाछे सत्पुरुत्रोंका अभाव हो तभी-तभी बुद्धिमान् मनुष्य किली बृद्धि हुई जाने ॥ ४६ ॥ हे मैत्रेय ! जब धर्मात्मा पुरुषोंके आरम्भ किये हुए कार्योंमें असफलता हो तब NO मत्रय पण्डितः ॥ १७॥ पण्डितजन कल्यिगकी प्रधानता समझे ॥ १७॥

यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः। इज्यते पुरुषेर्यज्ञैसादा ज्ञेयं कलेर्चलम् ॥४८॥ न प्रीतिर्वेदवादेषु पापण्डेषु यदा रतिः। कुलेईद्धिस्तदा प्राज्ञैरनुमेया विचक्षणैः ॥४९॥ कलौ जगत्पतिं विष्णुं सर्वस्रष्टारमीश्वरम्। नार्चियव्यन्ति सैत्रेय पापण्डोपहता जनाः ॥५०॥ कि देवेः कि द्विजेवेदैः कि शौचेनाम्बुजन्मना। इत्येवं विष्र वक्ष्यन्ति पापण्डोपहता जनाः ॥५१॥ स्वल्पाम्बुबृष्टिः पर्जन्यः सस्यं स्वल्पफलं तथा। फलं तथाल्पसारं च वित्र त्राप्ते कलौ युगे ॥५२॥ शाणीप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महीरुहाः । गृद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥५३॥ अणुप्रायाणि धान्यानि अजाप्रायं तथा पयः। भविष्यति कलै। प्राप्ते ह्यौशीरं चानुलेपनम् ॥५४॥ श्वश्रुश्वश्रुरभृविष्ठा गुरवश्र नृणां कलौ। रयालाद्या हारिभार्याश्र सहदो सुनिसत्तम ॥५५॥ कस्य माता पिता कस्य यथा कर्मानुगः पुमान्। इति चोदाहरिष्यन्ति श्रश्चरानुगता नराः ॥५६॥ वाड्यनःकायजैदींपैरिमभूताः पुनः पुनः । नराः पापान्यत्रदिनं करिष्यन्त्यल्पमेधसः ॥५७॥ निस्सत्त्वानामशौचानां निद्यीकाणां तथा नृणाम्। यददुःखाय तत्सर्वं कलिकाले भविष्यति।।५८॥ निस्खाध्यायवपर्कारे खधाखाहाविवर्जिते। तदा प्रविरलो धर्मः क्विल्लोके निवत्स्वति ॥५९॥ तत्राल्पेनैव यहोन पुण्यस्कन्धमनुत्तमम्। करोति यं कृतयुगे क्रियते तपसा हि सः ॥६०॥

जब-जब यज्ञोंके अधीश्वर भगवान् पुरुषोत्तमका छोग यज्ञोंद्वारा यजन न करें तब-तब किलका प्रभाव ही समझना चाहिये ॥ ४८॥ जब वेद-वादमें प्रीतिका अभाव हो और पाषण्डमें प्रेम हो तब बुद्धिमान् प्राज्ञ पुरुष किल्युगको बढ़ा हुआ जाने ॥ ४९॥

हे मैत्रेय ! किल्युगमें लोग पापण्डके वशीभूत हो जानेसे सबके रचियता और प्रभु जगत्पित भगवान् विष्णुका पूजन नहीं करेंगे॥ ५० ॥ हे विष्र ! उस समय लोग पापण्डके वशीभूत होकर कहेंगे—'इन देव, द्विज, वेद और जल्से होनेवाले शौचादिमें क्या रक्खा है ?'॥ ५१॥ हे विष्र ! किलके आनेपर वृष्टि अल्प जल्वाली होगी, खेती थोड़ी उपजवाली होगी और फलादि अल्प सारयुक्त होंगे॥ ५२॥ किल्युगमें प्रायः सनके बने हुए सबके वस्त्र होंगे, अधिकतर शमीके वृक्ष होंगे और चारों वर्ण बहुधा श्रूद्रवत् हो जायँगे॥ ५३॥ किलके आनेपर धान्य अत्यन्त अणु होंगे, प्रायः वकरियोंका ही दृध मिलेगा और उशीर (खस) ही एकमात्र अनुलेपन होगा॥ ५४॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! कल्यिगमें सास और सम्रह ही छोगोंके गुरुजन होंगे और हृदयहारिणी भार्या तथा साले ही सुद्धद् होंगे ॥ ५५ ॥ लोग अपने ससुरके अनुगामी होकर कहेंगे कि 'कौन किसका पिता है और कौन किसकी माता; सब पुरुष अपने कर्मानुसार जन्मते-मरते रहते हैं' ॥ ५६ ॥ उस समय अल्पबुद्धि पुरुप वारम्वार वाणी, मन और शारीरादिके दोपोंके वशीभूत होकर प्रतिदिन पुनः-पुनः पापकर्म करेंगे ॥ ५७ ॥ शक्ति, शौच और छजाहीन पुरुषोंको जो-जो दुःख हो सकते हैं कलियुगमें वे सभी दुःख उपस्थित होंगे ॥ ५८ ॥ उस समय संसारके खाच्याय और वपट्कारसे हीन तथा खधा और खाहासे वर्जित हो जानेसे कहीं-कहीं कुछ-कुछ धर्म रहेगा ॥ ५९ ॥ किन्तु किन्युगमें मनुष्य थोड़ा-सा प्रयत्न करनेसे ही जो अत्यन्त उत्तम पुण्यराशि प्राप्त करता है वही सत्ययगर्ने महान् तपस्यासे प्राप्त किया जा सकता है ॥ ६०॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पष्टेंडशे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

दूसरा अध्याय

श्रीन्यासजीद्वारा कलियुग, शूद्र और स्त्रियोंका महत्त्व-वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

व्यासश्राह महाबुद्धिर्यदत्रैव हि वस्तुनि । तच्छ्रयतां महाभाग गदतो मम तत्त्वतः ॥ १॥ किसन्कालेऽल्पको धर्मो ददाति सुमहत्फलम्। मुनीनां पुण्यवादोऽभृत्कैश्वासी क्रियते सुखम्।।२।। सन्देहनिर्णयार्थीय वेदच्यासं महाम्रुनिम् । ययुस्ते संशयं प्रष्टुं मैत्रेय मुनिपुङ्गवाः ॥ ३ ॥ दद्दश्चस्ते मुनिं तत्र जाह्ववीसलिले द्विज। वेद्व्यासं महाभागमर्द्धस्तातं सुतं मम ॥ ४॥ स्नानावसानं ते तस्य प्रतीक्षन्तो महर्षयः। तस्थुस्तीरे महानद्यास्तरुषण्डग्रुपाश्रिताः ॥ ५ ॥ मयोऽथ जाह्ववीतोयादुत्थायाह सुतो मम। शूद्रस्साधुः कलिस्साधुरित्येवं शृण्वतां वचः ॥६ ॥ तेषां मुनीनां भूयश्च ममज स नदीजले। साधु साध्विति चोत्थाय शूद्र धन्योऽसि चात्रवीत् ७ निममश्र समुत्थाय पुनः प्राह महाम्नुनिः। योषितः साधु घन्यास्तास्ताभ्यो घन्यतरोऽस्ति कः ८ ततः स्नात्वा यथान्यायमायान्तं च कृतिक्रियम् । उपतस्थुर्महाभागं ग्रुनयस्ते सुतं मम।।९।। कृतसंवन्दनांश्राह कृतासनपरिग्रहान । किमर्थमागता यूयमिति सत्यवतीसुतः ॥१०॥ तमृचुः संशयं प्रष्डं भवन्तं वयमागताः। अलं तेनास्तु तावनाः कथ्यतामपरं त्वया ।।११॥ कलिस्साध्विति यत्त्रोक्तं शुद्रः साध्विति योपितः।

श्रीपराशरजी बोले-हे महाभाग ! इसी विषयमें महामित व्यासदेवने जो कुछ कहा है वह मैं यथा-वत् वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ १ ॥ एक वार मुनियोंमें [परस्पर] पुण्यके विषयमें यह वार्ताछाप सुआ कि 'किस समयमें थोड़ा-सा पुण्य भी महान् फल देता है और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं ?' ॥ २ ॥ हे मैत्रेय ! वे समस्त मुनिश्रेष्ठ इस सन्देहका निर्णय करनेके लिये महामुनि व्यासजीके पास यह प्रश्न पूछने गये ॥ ३ ॥ हे द्विज ! वहाँ पहुँचने-पर उन मुनिजनोंने मेरे पुत्र महाभाग व्यासजीको गंगाजीमें आधा स्नान किये देखा ॥ ४ ॥ वे महर्षिगण व्यासजीके स्नान कर चुकनेकी प्रतीक्षामें उस महा-नदीके तटपर वृक्षोंके तले बैठे रहे ॥ ५ ॥

उस समय गंगाजीमें डुबकी लगाये मेरे पुत्र व्यासने जलसे उठकर उन मुनिजनोंके सुनते हुए 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है' यह वचन कहा। ऐसा कहकर उन्होंने फिर जलमें गोता लगाया और फिर उठकर कहा—"शूद्र ! तुम ही श्रेष्ठ हो, तुम ही धन्य हो" ॥ ६-७॥ यह कहकर वे महामुनि फिर जलमें मग्न हो गये और फिर खड़े. होकर बोले—"क्षियाँ ही साधु हैं, वे ही धन्य हैं, उनसे अधिक धन्य और कीन है ?" ॥ ८॥ तदनन्तर जब मेरे महामाग पुत्र व्यासजी स्नान करनेके अनन्तर नियमानुसार नित्यकर्मसे निवृत्त होकर आये तो वे मुनिजन उनके पास पहुँचे ॥ ९॥ वहाँ आकर जब वे यथायोग्य अभिवादनादिके अनन्तर आसनोंपर बैठ गये तो सत्यवतीनन्दन व्यासजीने उनसे पूछा—"आपलोग कैसे आये हैं ?" ॥१०॥

तब मुनियोंने उनसे कहा—"हमलोग आपसे एक सन्देह पूछनेके लिये आये थे, किन्तु इस समय उसे तो जाने दीजिये, एक और बात हमें बतलाइये ॥ ११॥ मगवन् । आपने जो स्नान करते समय कई बार कहा था कि 'कल्यिंग ही श्रेष्ठ है, शूद्ध ही श्रेष्ठ

बार कहा था कि 'कल्यिंग ही श्रेष्ठ है, राद्र ही श्रेष्ठ

यदाह भगवान् साधु धन्याश्रेति पुनः पुनः ॥१२॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामो न चेद् गुद्धं महासुने । तत्स्रध्यतां ततो हृत्स्थं पृच्छामस्त्वां प्रयोजन स् १३

इत्युक्तो ग्रुनिभिर्व्यासः प्रहस्येदमथात्रवीत् । श्रूयतां भो ग्रुनिश्रेष्ठा यदुक्तं साधु साध्विति ॥१४॥

श्रीव्यास उवाच यत्कृते दश्भिर्वर्षेस्रेतायां हायनेन तत्। द्वापरे तच मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥१५॥ तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्व फलं द्विजाः। **ष्ट्राझोति पुरुपस्तेन कलिस्साध्विति भाषितम्।।१६।।** ध्यायन्कृते यजन्यज्ञेस्रोतायां द्वापरेऽर्चयन् । यदामोति तदामोति कलौ संकीत्र्य केशवम् ।।१७।। धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्रामोति पुरुषः कलौ । अल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तृष्टोऽस्म्यहं कलेः ।।१८॥ व्रतचर्यापरैश्रीह्या वेदाः पूर्वे द्विजातिभिः। ततस्वधर्मसम्प्राप्तर्यष्टव्यं विधिवद्धनैः ॥१९॥ वृथा कथा वृथा भोज्यं वृथेज्या च द्विजन्मनाम् । पतनाय ततो भाव्यं तैस्तु संयमिभिस्सदा।।२०।। असम्थकरणे दोषस्तेषां सर्वेषु वस्तुषु । मोज्यपेयादिकं चैषां नेच्छाप्राप्तिकरं द्विजाः॥२१॥ पारतन्त्र्यं समस्तेषु तेषां कार्येषु वै यतः। जयन्ति ते निजाँ छोकान्क्रेशेन महता द्विजाः ।।२२।। द्विजशुश्रुषयेवैष पाकयज्ञाधिकारवान् । निजाञ्जयति वै लोकाञ्च्छद्रो धन्यतरस्ततः ॥२३॥

हैं, क्षियाँ ही साधु और धन्य हैं', सो क्या वात है ? हम यह सम्पूर्ण विषय सुनना चाहते हैं। हे महामुने ! यदि गोपनीय न हो तो कहिये। इसके पीछे हम आपसे अपना आन्तरिक सन्देह पूछेंगे"॥१२-१३॥

श्रीपराशरजी बोले-मुनियोंके इस प्रकार पूछने-पर व्यासजीने हँसते हुए कहा—"हे मुनिश्रेष्ठो ! मैंने जो इन्हें वारम्वार साधु-साधु कहा था, उसका कारण सुनो" ॥ १४॥

श्रीव्यासजी बोले-हे द्विजगण ! जो फल सत्ययुगमें दश वर्ष तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदि करनेसे मिलता है उसे मनुष्य त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास और कलियुगमें केवल एक दिन-रातमें प्राप्त कर लेता है, इस कारण ही मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा है ॥ १५-१६ ॥ जो फल सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें देवार्चन करनेसे प्राप्त होता है वहीं कलियुगमें श्रीकृष्णचन्द्रका नाम-कीर्तन करनेसे मिल जाता है ॥ १७ ॥ हे धर्मज्ञगण ! कलियुगमें थोड़े-से परिश्रमसे ही पुरुषको महान् धर्मकी प्राप्त हो जाती है, इसीलिये मैं कलियुगसे अति सन्तुष्ट हूँ ॥ १८॥

[अब शृद्ध क्यों श्रेष्ठ हैं, यह वतलाते हैं] द्विजातियोंको पहले ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है और फिर स्वधमीचरणसे उपार्जित धनके द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं ॥ १९ ॥ इसमें भी व्यर्थ वार्ताछाप, व्यर्थ मोजन और व्यर्थ यज्ञ उनके पतनके कारण होते हैं; इसिछेये उन्हें सदा संयमी रहना आवस्यक है ॥ २०॥ सभी कामोंमें अनुचित (विधिके विपरीत) करनेसे उन्हें दोष लगता है; यहाँतक कि भोजन और पानादि भी वे अपनी इच्छानुसार नहीं भोग सकते ॥ २१ ॥ क्योंकि उन्हें सम्पूर्ण कार्योंमें परतन्त्रता रहती है। हे द्विजगण ! इस प्रकार वे अत्यन्त क्लेशसे पुण्यलोकोंको प्राप्त करते हैं ॥ २२ ॥ किन्त जिसे केवल [मन्त्रहीन] पाक-यज्ञका ही अधिकार है वह शृद् द्विजोंकी सेवा करनेसे ही सद्गति प्राप्त कर छेता है, इसिंखेये वह अन्य जातियोंकी अपेक्षा धन्यतर है ॥२३॥

मक्ष्यामक्ष्येषु नास्यास्ति पेयापेयेषु वै यतः। नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वितीरितः।२४। खधर्मसाविरोधेन नरैर्लब्धं धनं सदा। प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टन्यं च यथाविधि ॥२५॥ तस्यार्जने महाक्केशः पालने च द्विजोत्तमाः । तथासद्विनियोगेन विज्ञातं गहनं नृणाम्।।२६॥ एवमन्यैस्तथा क्रेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः। निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात्२७ योषिच्छुश्रूषणाद्भर्त्तुः कर्मणा मनसा गिरा । तद्भिता ग्रुभमामोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः।२८। नातिक्केशेन महता तानेव पुरुषो यथा। वृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषितः ॥२९॥ एतद्वः कथितं वित्रा यिनिमित्तमिहागताः। तत्प्रच्छत यथाकामं सर्वे वक्ष्यामि वः स्फुटम्।।३०॥ ऋषयस्ते ततः श्रोचुर्यत्त्रष्टव्यं महामुने। असिन्नेव च तत् प्रश्ने यथावत्कथितं त्वया।।३१।।

श्रीपराशर उवाच

ततः प्रहस्य तानाह कृष्णद्वैपायनो मुनिः। विस्मयोत्फुछनयनांस्तापसांस्ताजुपागतान् ॥३२॥ मयैष मनतां प्रश्नो ज्ञातो दिन्येन चक्षुषा। ततो हि वः प्रसङ्गेन साधु साध्विति माषितम्।।३३।। स्वल्पेन हि प्रयतेन धर्मस्सिद्धचित वै कलौ। नरैरात्मग्रुणाम्मोभिः श्वालिताखिल्किल्विषैः।३८। द्विजशुश्रुपातत्परौद्विजसत्तमाः। तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूपयैव हि ॥३५॥

हे मुनिशार्द्छो ! शूद्रको भक्षाभक्ष पेयापेयका कोई नियम नहीं है, इसिछिये मैंने उसे साधु कहा है ॥ २४॥

[अब स्त्रियोंको किसल्चिये श्रेष्ठ कहा, यह बतलाते हैं-] पुरुषोंको अपने धर्मानुकूछ प्राप्त किये हुए धनसे ही सर्वदा सुपात्रको दान और विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिये ॥ २५॥ हे द्विजोत्तमगण ! इस द्रव्यके उपार्जन तथा रक्षणमें महान् क्वेश होता है और उसको अनुचित कार्यमें लगानेसे भी मनुष्योंको जो कष्ट भोगना पड़ता है वह माछम ही है॥ २६॥ इस प्रकार हे द्विजसत्तमो ! पुरुषगण इन तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायोंसे क्रमशः प्राजापत्य आदि ग्रुम छोकोंको प्राप्त करते हैं॥२७॥ किन्तु स्नियाँ तो तन-मन-वचनसे पतिकी सेवा करनेसे ही उनकी हितकारिणी होकर पतिके समान ग्रुम लोकोंको अनायास ही प्राप्त कर छेती हैं जो कि पुरुषोंको अत्यन्त परिश्रमसे मिलते हैं । इसीलिये मैंने तीसरी बार यह कहा या कि 'स्त्रियाँ साधु हैं' ॥ २८-२९॥ 'हि विप्रगण ! मैंने आपछोगोंसे यह [अपने साधुवादका रहस्य] कह दिया, अब आप जिसलिये पधारे हैं वह इच्छानुसार पूछिये। मैं आपसे सब बातें स्पष्ट करके कह दूँगा"॥३०॥ तब ऋषियोंने कहा— "हे महामुने ! हमें जो कुछ पूछना या उसका यथावत् उत्तर आपने इसी प्रश्नमें दे दिया है। [इसलिये अब हमें और कुछ पूछना नहीं है] ॥ ३१॥

श्रीपराशरजी बोले-तब मुनिवर कृष्णद्वैपायनने विस्मयसे खिले हुए नेत्रोंवाले उन समागत तपिसयोंसे हँसकर कहा ॥ ३२॥ मैं दिव्य दृष्टिसे आपके इस प्रश्नको जान गया था इसीलिये मैंने आपलोगोंके प्रसंगसे ही 'साधु-साधु' कहा था ॥ ३३॥ जिन पुरुषों-ने गुणरूप जलसे अपने समस्त दोष घो डाले हैं उनके थोड़े-से प्रयहसे ही कल्यिगमें धर्म सिद्ध हो जाता है ॥ ३४॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! श्र्वोंको द्विजसेवा-परायण होनेसे और स्त्रियोंको पतिकी सेवामात्र कर्नेसे तिभुश्रूपयंत्र हि ॥३५॥ ही अनायास धर्मकी सिद्धि हो जाती है ॥ ३५॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

धन्यतरं मतम् । ततस्त्रितयमप्येतन्मम धर्मसम्पादने क्केशो द्विजातीनां कृतादिषु ॥३६॥ भवद्भिर्यद्भिप्रेतं तदेतत्कथितं अपूर्वेनापि धर्मजाः किमन्यत्रियतां द्विजाः ।३७।

श्रीपराशर उवाच

ततस्सम्पूज्य ते व्यासं प्रश्रशंसुः पुनः पुनः। यथाऽऽगतं द्विजा जग्मर्र्गसोक्तिकृतनिश्रयाः।३८। भवतोऽपि महाभाग रहस्यं कथितं मया। अत्यन्तदुष्टस्य कलेर्यमेको महान्गुणः। कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तवन्धः परं त्रजेत ॥३९॥ यचाहं भवता पृष्टो जगतामुपसंहृतिम्।

इसीलिये मेरे विचारसे ये तीनों धन्यतर हैं, क्योंकि सत्ययगादि अन्य तीन युगोंमें भी द्विजातियोंको ही धर्म सम्पादन करनेमें महान् छेरा उठाना पड़ता है ॥३६॥ हे धर्मज्ञ त्राह्मणो ! इस प्रकार आपलोगोंका जो अमिप्राय था वह मैंने आपके विना पूछे ही कह दिया, अव और क्या कहूँ ?" ॥ ३७॥

श्रीपराशरजी बोले-तदनन्तर उन्होंने व्यासजी-का पूजनकर उनकी वारम्वार प्रशंसा की और उनके कथनानुसार निश्चयकर जहाँसे आये थे वहाँ चले गये ॥ ३८॥ हे महाभाग मैत्रेयजी ! आपसे भी मैंने यह रहस्य कह दिया । इस अत्यन्त दुष्ट कलियुगर्मे यही एक महान् गुण है कि इस युगमें केवल कृष्ण-चन्द्रका नाम-संकीर्तन करनेसे ही मनुष्य परमपद प्राप्त कर टेता है ॥ ३९ ॥ अत्र आपने मुझसे जो संसारके उपसंहार-प्राकृत प्रख्य और अवान्तर प्राकृतामन्तरालां च तामप्येष वदामि ते ॥४०॥ प्रस्यके विषयमें पृष्टा था वह भी सुनाता हूँ ॥ ४०॥

\$35000 p

इति श्रीविष्णुपुराणे षष्टेंऽशे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

निमेपादि काल-मान तथा नैमित्तिक प्रलयका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

सर्वेषामेव भूतानां त्रिविधः प्रतिसञ्चरः। नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः ॥१॥ ब्राह्मो नैमित्तिकस्तेषां कल्पान्ते प्रतिसञ्चरः। आत्यन्तिकस्तु मोक्षाख्यः प्राकृतो द्विपरार्द्धकः॥२॥ श्रीमैत्रेय उवाच

परार्द्धसंख्यां भगवन्ममाचक्ष्व यया तु सः। द्विगुणीकृतया ज्ञेयः प्राकृतः प्रतिसञ्चरः ॥ ३ ॥ श्रीपराशर उवाच

स्थानात्स्थानं दशगुणमेकसाद्गण्यते द्विज ।

श्रीपराशरजी बोर्जे-पुम्पूर्ण प्राणियोंका प्रलय नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक तीन प्रकारका होता है ॥ १ ॥ उनमेंसे जो कल्पान्तमें ब्राह्म प्रख्य होता है वह नैमित्तिक, जो मोक्ष नामक प्रलय है वह आत्यन्तिक और जो दो परार्द्धके अन्तर्मे होता है वह प्राकृत प्रलय कहलाता है ॥ २ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-भगवन् ! आप मुझे परार्द्धकी संख्या वतलाइये, जिसको दृना करनेसे प्राकृत प्रलय-का परिमाण जाना जा सके ॥ ३॥

श्रीपराशरजी बोले-हे द्विज ! एकसे छेकर क्रमशः दशगुण गिनते-गिनते जो अठारहवीं वार* ततोऽष्टाद्शमे भागे परार्द्धमिभधीयते ॥ ४॥ गिनी जाती है वह संख्या परार्द्ध कहळाती है ॥ ४॥

[🕾] वायुपुराणमें इन श्रठारह संख्याओंके इस प्रकार नाम हैं—एक, दश, शत, सहस्र, श्रयुत, नियुत, प्रयुत, अर्डुद, न्यर्डुद, बृन्द, खर्च, निखर्च, शंख, पद्म, समुद्र, सध्य, अन्त, परार्द्ध।

पराई द्विगुणं यत्तु प्राकृतस्स लयो द्विज । तदाव्यक्तेऽखिलं व्यक्तं स्वहेतौ लयमेति वै॥५॥ निमेषो मानुषो योऽसौ मात्रा मात्राप्रमाणतः। तैः पञ्चद्शभिः काष्ठा त्रिंशत्काष्ठा कला स्मृता।।६।। नांडिका तु प्रमाणेन सा कला दश पश्च च । उन्मानेनाम्भसस्सा तु पलान्यर्द्वत्रयोदश्।। ७।। मागधेन तु मानेन जलप्रस्यस्तु स स्मृतः। कृतच्छिद्रश्रतुर्भिश्रतुरङ्गुलैः ॥ ८॥ नाडिकाभ्यामथ द्वाभ्यां ग्रहूर्तो द्विजसत्तम । अहोरात्रं मुहूर्तास्तु त्रिंशन्मासो दिनैस्तथा ॥ ९ ॥ मासैर्द्धादशभिर्वर्षमहोरात्रं त् तदिवि । त्रिभिर्वर्षश्चित्रं पष्ट्या चैवासुरद्विषाम् ॥१०॥ द्वादशसाहस्रेश्रतुर्युगमुदाहृतम्। तैस्त चतुर्युगसहस्रं तु कथ्यते ब्रह्मणो दिनम् ॥११॥

कल्पस्तत्र मनवश्रतुर्दश महामुने। तदन्ते चैव मैत्रेय बाह्यो नैमित्तिको लयः ॥१२॥ तस्य स्वरूपमत्युत्रं मैत्रेय गदतो मम। शृणुष्व प्राकृतं भूयस्तव वक्ष्याम्यहं लयम् ॥१३॥ चतुर्युगसहस्रान्ते श्लीणप्राये महीतले। अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते शतवार्षिकी.॥१४॥ ततो यान्यल्पसाराणि तानि सत्त्वान्यशेषतः। क्षयं यान्ति मुनिश्रेष्ठ पार्थिवान्यनुपीडनात् ॥१५॥ ततः स भगवान्त्रिष्णु रुद्ररूपधरोऽन्ययः। क्षयाय यतते कर्तुमात्मस्थास्सकलाः प्रजाः ॥१६॥ छीन कर हेनेका प्रयत्न CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

हे द्विज ! इस परार्द्धकी दूनी संख्यावाला प्राकृत प्रलय है, उस समय यह सम्पूर्ण जगत् अपने कारण अन्यक्तमें लीन हो जाता है ॥५॥ मनुप्यका निमेष ही एक मात्रावाले अक्षरके उचारण-कालके समान परिमाण-वाला होनेसे मात्रा कहलाता है; उन पन्द्रह निमेणें-की एक काष्टा होती है और तीस काष्टाकी एक कला कही जाती है ॥६॥ पन्द्रह कला एक नाडिका-का प्रमाण है। वह नाडिका साढ़े बारह पछ ताँवेके वने हुए जलके पात्रसे जानी जा सकती है। मगध-देशीय मापसे वह पात्र जलप्रस्थ कहलाता है; उसमें चार अङ्ग्ल लम्बी चार मासेकी सुवर्ण-रालाकासे छिद्र किया रहता है [उसके छिद्रको जपर करके जलमें डुबो देनेसे जितनी देरमें वह पात्र भर जाय उतने ही समयको एक नाडिका समझना चाहिये] ॥ ७-८ ॥ हे द्विजसत्तम ! ऐसी दो नाडिकाओंका एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्तका एक दिन-रात होता है तथा इतने (तीस) ही दिन-रातका एक मास होता है ॥९॥ बारह मासका एक वर्ष होता है, देवलोकमें यही एक दिन-रात होता है। ऐसे तीन सौ साठ वर्षोंका देवताओंका एक वर्ष होता है ॥१०॥ ऐसे बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग होता है और एक हजार चतुर्युगका ब्रह्माका एक दिन होता है ॥११॥

हे महामुने ! यहां एक कल्प है । इसमें चौदह मनु बीत जाते हैं । हे मैत्रेय ! इसके अन्तमें ब्रह्माका नैमित्तिक प्रलय होता है ॥१२॥ हे मैत्रेय ! सुनो, मैं उस नैमित्तिक प्रलयका अत्यन्त भयानक रूप वर्णन करता हूँ। इसके पीछे मैं तुमसे प्राकृत प्रख्यका भी वर्णन करूँगा ॥१३॥ एक सहस्र चतुर्युग बीतनेपर जब पृथिवी क्षीणप्राय हो जाती है तो सौ वर्षतक अति घोर अनावृष्टि होती है ॥१४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय जो पार्थिव जीव अल्प शक्तिवाले होते हैं वे सब अनावृष्टिसे पीड़ित होकर सर्वथा नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥ तदनन्तर, रुद्ररूपधारी अन्ययात्मा भगवान् विष्णु संसारका क्षय करनेके छिये सम्पूर्ण प्रजाको अपनेमें करते हैं ॥ १६॥

ततस्स भगवान्विष्णुर्भानोस्सप्तसु रिमपु । स्थितः पिवत्यशेपाणि जलानि मुनिसत्तम ॥१७॥ पीत्वाम्भांसि समस्तानि प्राणिभूमिगतान्यपि । शोपं नयति मैत्रेय समस्तं पृथिवीतलम् ॥१८॥ समुद्रान्सरितः शैलनदीप्रस्रवणानि च। पातालेषु च यत्तोयं तत्सर्वं नयति क्षयम् ॥१९॥ ततस्तस्यातुभावेन तोयाहारोपचृहिताः। त एव रक्मयस्सप्त जायन्ते सप्त भास्कराः ॥२०॥ अध्योर्ध्यं च ते दीप्तास्ततस्सप्त दिवाकराः। दहन्त्यशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विज ॥२१॥ दह्यमानं तु तैदींप्तैस्त्रैलोक्यं द्विज भास्करैः। साद्रिनद्यर्णवाभोगं निस्नेहमभिजायते ॥२२॥ ततो निर्दग्धवृक्षाम्बु त्रैलोक्यमितलं द्विज । भवत्येषा च वसुधा कूर्मपृष्ठोपमाकृतिः ॥२३॥ ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ भृत्वा सर्वहरो हरिः। श्रेपाहिश्वाससम्भूतः पातालानि दहत्यधः ॥२४॥ पातालानि समस्तानि स दग्ध्या ज्वलनो महान्। भूमिमभ्येत्य सकलं वभस्ति वसुधातलम् ॥२५॥ भुवर्लीकं ततस्तर्वं स्वर्लीकं च सुदारुणः। परिवर्तते ॥२६॥ ज्वालामालामहावर्तस्तत्रैव अम्बरीपमिवाभाति त्रैलोक्यमखिलं तदा । ज्वालावर्तपरीवार्म्यपक्षीणचराचरम् 112911 ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनित्रासिनः। कृताधिकारा गच्छन्ति महलोंकं महामुने ॥२८॥ तसादिप महातापतप्ता लोकात्ततः परम्।

हे मुनिसत्तम ! उस समय भगवान् विष्णु सूर्यकी सातों किरणोंमें स्थित होकर सम्पूर्ण जलको सोख छेते हैं ।।१७।। हे मैत्रेय ! इस प्रकार प्राणियों तथा पृथिवीके अन्तर्गत सम्पूर्ण जलको सोखकर वे समस्त भूमण्डल-को ग्रुष्क कर देते हैं ॥१८॥ समुद्र तथा नदियोंमें, पर्वतीय सरिताओं और स्रोतोंमें तथा विभिन्न पातालोंमें जितना जल है वे उस सबको सुखा डालते हैं ॥१९॥ तव भगवान्के प्रभावसे प्रभावित होकर तथा जल-पानसे पुष्ट होकर वे सातों सूर्यरिहमयाँ सात सूर्य हो जाती हैं ॥२०॥ हे द्विज ! उस समय ऊपर-नीचे सत्र ओर देदीप्यमान होकर वे सातों सूर्य पातालपर्यन्त सम्पूर्ण त्रिलोकोको भस्म कर डालते हैं ॥२१॥ हे द्विज ! उन प्रदोत मास्करोंसे दग्ध हुई त्रिलोक्ती पर्वत, नदी और समुद्रादिके सहित सर्वथा नीरस हो जाती है ॥२२॥ उस समय सम्पूर्ण त्रिलोक्तीके दृक्ष और जल-आदिके दग्ध हो जानेसे यह पृथिवी कछुएकी पीठके समान कठोर हो जाती है ॥२३॥

तव, सबको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुए श्रीहरि कालाग्निरुद्ररूपसे शेषनागके मुखसे प्रकट होकर नीचेसे पातालोंको जलाना आरम्भ करते हैं ॥२४॥ वह महान् अग्नि समस्त पातालोंको जलाकर पृथिवीपर पहुँचता है और सम्पूर्ण भूतलको भस्म कर डालता है ॥२'४॥ तव वह दारुण अग्नि मुक्लींक तथा खर्गछोकको जला डालता है और वह ज्वाला समुह्का महान् आवर्त वहीं चक्कर छगता है ॥ २६ ॥ इस प्रकार अग्निके आवर्तीसे घिरकर सम्पूर्ण चराचरके नष्ट हो जानेपर समस्त त्रिलोकी एक तप्त कराहके समान प्रतीत होने लगती है ॥२७॥ हे महामुने ! तदनन्तर अवस्थाके परिवर्तनसे परलोककी चाहवाले मुवर्लोक और खर्गलोकमें रहनेवाले [मन्वादि] अधिकारिगण अग्निज्वालासे सन्तप्त होकर महर्लीकको चले जाते हैं किन्तु वहाँ भी उस उप्र कालानलके महातापसे सन्तप्त होनेके कारण वे गच्छन्ति जनलोकं ते दशावृत्या परैषिणः ।।२९।। । उससे वचनेके छिये जनलोकमें चले जाते हैं ॥२८-२९॥

ततो दग्ध्या जगत्सर्वं रुद्ररूपी जनार्दनः। मुखनिःश्वासजान्मेघान्करोति मनिसत्तम ॥३०॥ ततो गजकुलप्रख्यास्तडित्वन्तोऽतिनादिनः। उत्तिष्ठन्ति तथा व्योम्नि घोरास्संवर्तका घनाः।३१। केचिकीलोत्पलक्यामाः केचित्कुमुद्सिक्माः। धुम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोघराः॥३२॥ केचिद्रासभवर्णामा लाक्षारसनिमास्तथा। केचिद्रैड्र्यसङ्काशा इन्द्रनीलनिमाः कचित्।।३३॥ शृह्वकुन्द्निभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभाः परे । इन्द्रगोपनिभाः केचित्ततिश्वाखिनिभास्तथा॥३४॥ मनिश्वलाभाः केचिद्वै हरितालनिभाः परे। चाषपत्रनिमाः केचिदुत्तिष्ठन्ते महाघनाः ॥३५॥ केचित्पुरवराकाराः केचित्पर्वतसिक्भाः। क्टागारनिभाश्रान्ये केचित्स्यलनिभा घनाः।।३६।। महारावा महाकायाः पूरयन्ति नभः खलम्। वर्षन्तस्ते महासारांस्तमियमितिभैरवम् । शमयन्त्यखिलं विष्र त्रैलोक्यान्तरिषष्ठितम् ॥३७॥ नष्टे चाग्रौ च सततं वर्षमाणा ह्यहर्निशम्। म्रावयन्ति जगत्सर्वमम्भोभिर्म्धनिसत्तम ॥३८॥ धाराभिरतिमात्राभिः प्रावयित्वाखिलं भुवम् । भुवर्लीकं तथैवोर्द्धं प्रावयन्ति हि ते द्विज ॥३९॥ अन्धकारीकृते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे। वर्षन्ति ते महामेघा वर्षाणामधिकं शतम्।।४०॥ एवं भवति कल्पान्ते समस्तं मुनिसत्तम ।

हे मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर रुद्ररूपी भगवान् विष्णु सम्पूर्ण संसारको दग्ध करके अपने मुख-निः स्वाससे मेघोंको उत्पन्न करते हैं ॥३०॥ तत्र विद्युत्से युक्त भयद्भर गर्जना करनेवाले गजसमूहके समान बृहदा-कार संवर्तक नामक घोर मेघ आकाशमें उठते हैं॥३१॥ उनमेंसे कोई मेघ नील कमलके समान स्यामवर्ण, कोई कुमुद-कुसुमके समान इवेत, कोई धूम्रवर्ण और कोई पीतवर्ण होते हैं ॥३२॥ कोई गधेके-से वर्णवाले, कोई लाखके-से रङ्गवाले, कोई वैडूर्य-मणिके समान और कोई इन्द्रनील-मणिके समान होते हैं ॥३३॥ कोई राह्व और कुन्दके समान स्वेत-वर्ण, कोई जाती (चमेछी) के समान उज्ज्वल और कोई कजलके समान स्यामवर्ण, कोई इन्द्रगोपके समान रक्तवर्ण और कोई मयूरके समान विचित्र वर्णवाले होते हैं ॥३४॥ कोई गेरूके समान, कोई हरिताछके समान और कोई महा-मेघ, नील-कण्ठके पङ्खके समान रङ्गवाले होते हैं।।३५॥ कोई नगरके समान, कोई पर्वतके समान और कोई कूटागार (गृहविशेष) के समान बृहदाकार होते हैं तथा कोई पृथिवीतलके समान विस्तृत होते हैं ॥३६॥ वे घनघोर शब्द करनेवाळे महाकाय मेघगण आकाश-को आच्छादित कर हेते हैं और मृसलाधार जल बरसाकर त्रिलोकन्यापी भयङ्कर अग्निको शान्त कर देते हैं ॥३७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अग्निके नष्ट हो जानेपर भी अहर्निश निरन्तर बरसते हुए वे मेघ सम्पूर्ण जगत्को जलमें डुवो देते हैं ॥३८॥ हे द्विज ! अपनी अति स्थूल धाराओंसे भूलोंकको जलमें डुबोकर वे भुवर्छोक तथा उसके भी ऊपरके छोकोंको भी जलमग्न कर देते हैं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण संसारके अन्धकारमय हो जानेपर तथा सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जीवोंके नष्ट हो जानेपर भी वे महामेघ सौ वर्ष अधिक कालतक बरसते रहते हैं ॥४०॥ हे मुनिश्रेष्ठ! सनातन प्रमात्मा वासुदेवके माहात्म्यसे कल्पान्तमें वासुदेवस्य माहात्म्यात्रित्यस्य परमात्मनः ॥४१॥ इसी प्रकार यह समस्त विष्ठव होता है ॥४१॥

इति श्रीविष्णुपुराणे षष्टेंऽशे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

प्राकृत प्रखयका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थिते इस्मिस महामुने । एकार्णवं भवत्येतत्त्रैलोक्यमखिलं ततः ॥ १॥ म्रविनःश्वासजो विष्णोर्वायुस्ताञ्जलदांस्ततः। नाज्ञयन्वाति मैत्रेय वर्पाणामपरं ज्ञतम्।। २।। सर्वभृतमयोऽचिन्त्यो भगवानभूतमावनः। अनादिरादिर्विश्वस्य पीत्वा वायुमशेपतः ॥ ३ ॥ एकार्णवे ततस्तसिङच्छेषशय्यागतः प्रभः। भगवानादिकद्वरिः ॥ ४॥ ब्रह्मरूपधरक्रोते जनलोकगतैस्सिद्धैस्सनकाद्यैरभिष्टतः ब्रह्मलोकगतैश्रेव चिन्त्यमानो ग्रुमुक्षभिः॥५॥ आत्ममायामयीं दिच्यां योगनिद्रां समास्थितः । आत्मानं वासुदेवारूयं चिन्तयन्मधुसूद्नः ॥ ६ ॥ एष नैमित्तिको नाम मैत्रेय प्रतिसञ्चरः। निमित्तं तत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो हरिः॥७॥ यदा जागर्ति सर्वात्मा स तदा चेष्टते जगत्। निमीलत्येतदिखलं मायाशय्यां गतेऽच्युते ॥ ८ ॥ पद्मयोनेर्दिनं यत्तु चतुर्युगसहस्रवत् । एकार्णवीकृते लोके तावती रात्रिरिष्यते ॥ ९॥ ततः प्रबुद्धो रात्र्यन्ते पुनस्सृष्टि करोत्यजः । ब्रह्मस्वरूपधृग्विष्णुर्यथा ते कथितं पुरा ॥१०॥ इत्येष कल्पसंहारोऽवान्तरप्रलयो द्विज। नैमित्तिकस्ते कथितः प्राकृतं शृष्वतः परम्।।११॥ अनावृष्ट्यादिसम्पर्कात्कृते संक्षालने मुने। समस्तेष्वेव लोकेषु पातालेष्वसिलेषु च ॥१२॥ महदादेविकारस विशेषान्तस संक्षये।

श्रीपराशरजी बोले-हे महामुने ! जब जल सप्तर्षियोंके स्थानको भी पार कर जाता है तो यह सम्पूर्ण त्रिलोकी एक महासमुद्रके समान हो जाती है || १ || हे मैंत्रेय ! तदनन्तर, भगवान् विष्णके मुख-निःश्वाससे प्रकट हुआ वायु उन मेघोंको नष्ट करके पुनः सौ वर्षतक चलता रहता है ॥२॥ फिर जनलोकनिवासी सनकादि सिद्धगणसे स्तुत और ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए मुमुक्षओंसे ध्यान किये जाते हुए सर्वभूतमय, अचिन्त्य, अनादि, जगत्के आदिकारण, आदिकर्ता, भूतभावन, मधुसूदन भगवान् हरि विस्वके सम्पूर्ण वायुको पीकर अपनी दिव्यमायारूपिणी योगनिद्राका आश्रय छे अपने वासुदेवात्मक खरूपका चिन्तन करते हुए उस महासमुद्रमें शेषशय्यापर शयन करते हैं ॥३-६॥ हे मैत्रेय ! इस प्रख्यके होनेमें ब्रह्मारूपधारी मगवान् हरिका शयन करना ही निमित्त है; इसिंखेये यह नैमित्तिक प्रख्य कहलाता है ॥ ७ ॥ जिस समय सर्वात्मा भगवान् विष्णु जागते रहते हैं उस समय सम्पूर्ण संसारकी चेष्टाएँ होती रहती हैं और जिस समय वे अच्युत मायारूपी शय्यापर सो जाते हैं उस समय संसार भी लीन हो जाता है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार ब्रह्माजीका दिन एक हजार चतुर्युगका होता है उसी प्रकार संसारके एकार्णवरूप हो जानेपर उनकी रात्रि भी उतनी ही वड़ी होती है॥ ९॥ उस रात्रिका अन्त होनेपर अजन्मा भगवान् विष्णु जागते हैं और ब्रह्मारूप धारणकर, जैसा तुमसे पहले कहा था उसी क्रमसे फिर सृष्टि रचते हैं ॥१०॥

हें द्विज ! इस प्रकार तुमसे कल्पान्तमें होनेवाले नैमित्तिक एवं अवान्तर-प्रलयका वर्णन किया । अव दूसरे प्राकृत प्रलयका वर्णन सुनो ॥११॥ हे मुने ! अनावृष्टि आदिके संयोगसे सम्पूर्ण लोक और निखिल पातालोंके नष्ट हो जानेपर तथा भगवदिच्छासे उस प्रलयकालके उपस्थित होनेपर जब महत्त्त्वसे लेकर

कृष्णेच्छाकारिते तसिन्प्रवृत्ते प्रतिसश्चरे ॥१२॥ आपो प्रसन्ति नै पूर्व भूमेर्गन्धात्मकं गुणम्। आत्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ॥१४॥ प्रणष्टे गन्धतन्मात्रे भवत्युर्वी जलात्मिका । आपस्तदा प्रद्युद्धास्तु वेगवत्यो महाखनाः।।१५।। सर्वमापूरयन्तीदं तिष्ठन्ति विचरन्ति च। सिळलेनोर्मिमालेन लोका च्याप्ताः समन्ततः ॥१६॥ अपामि गुणो यस्त ज्योतिषा पीयते तु सः। नश्यन्त्यापत्ततस्ताश्च रसतन्मात्रसंक्ष्यात् ।।१७॥ ततश्चापो हतरसा ज्योतिषं प्राप्तुवन्ति वै। अग्न्यवस्थे त सलिले तेजसा सर्वतो वृते ॥१८॥ स चाप्रिः सर्वतो व्याप्य चादत्ते तञ्जलं तथा। सर्वमापूर्यतेऽचिभिंसादा जगदिदं शनैः ॥१९॥ अर्चिभिस्संवृते तिसिस्तिर्यगूर्ध्वमधस्तदा। ज्योतिपोऽपि परं रूपं वायुरत्ति प्रभाकरम्।।२०॥ प्रलीने च ततस्तिस्मन्वायुभृतेऽखिलात्मनि । प्रणष्टे रूपतन्मात्रे हतरूपो विभावसुः ॥२१॥ प्रशाम्यति तदा ज्योतिर्वायुद्धियते महान् । निरालोके तथा लोके वाय्ववस्थे च तेजसि ॥२२॥ ततस्तु मूलमासाद्य वायुस्सम्भवमात्मनः। ऊर्घ्यं चाधश्र तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश्र ।।२३।। वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशो प्रसते ततः। प्रशाम्यति ततो वायुः खंतु तिष्ठत्यनावृतम्।।२४।। अरूपरसमस्पर्शमगन्धं न च मृत्तिंमत्।

[पृथिवी आदि पञ्च] विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण विकार क्षीण हो जाते हैं तो प्रथम जल पृथिवीके गुण गन्धको अपनेमें छीन कर छेता है। इस प्रकार गन्ध छिन-क्रिके जानेसे पृथिवीका प्रलय हो जाता है ॥१२-१४॥ गन्ध-तन्मात्राके नष्ट हो जानेपर पृथिवी जलमय हो जाती है, उस समय बड़े वेगसे घोर शब्द करता हुआ जल बढ़कर इस सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर हेता है। यह जल कभी स्थिर होता और कभी वहने लगता है । इस प्रकार तरङ्गमालाओंसे पूर्ण इस जलसे सम्पूर्ण लोक सब ओरसे ज्याप्त हो जाते हैं ॥१५-१६॥ तदनन्तर जलके गुण रसको तेज अपनेमें लीन कर छेता है । इस प्रकार रस-तन्मात्राका क्षय हो जानेसे जल भी नष्ट हो जाता है ॥१७॥ तब रसहीन हो जानेसे जल अग्निरूप हो जाता है तथा अग्निके सब ओर व्याप्त हो जानेसे जलके अग्निमें स्थित हो जानेपर वह अग्नि सब ओर फैलकर सम्पूर्ण जलको सोख हेता है और धीरे-धीरे यह सम्पूर्ण ज्वालासे पूर्ण हो जाता है ॥१८-१९॥ जिस समय सम्पूर्ण छोक ऊपर-नीचे तथा सब ओर अग्नि-शिखाओंसे व्याप्त हो जाता है उस समय अग्निके प्रकाशक स्वरूपको वायु अपनेमें छीन कर छेता है ॥२०॥ सबके प्राणखरूप उस वायुमें जब अग्निका प्रकाशक रूप छीन हो जाता है तो रूप-तन्मात्राके नष्ट हो जानेसे अग्नि रूपहीन हो जाता है ॥२१॥ उस समय संसारके प्रकाशहीन और तेजके वायुमें लीन हो जानेसे अग्नि शान्त हो जाता है और अति प्रचण्ड वायु चलने लगता है ॥२२॥ तब अपने उद्भवस्थान आकाशका आश्रयकर वह प्रचण्ड वायु ऊपर-नीचे तथा सब ओर दशों दिशाओंमें बड़े वेगसे चलने लगता है ॥२३॥ तदनन्तर वायुके गुण स्पर्श-को आकाश छीन कर छेता है; तब वायु शान्त हो जाता है और आकाश आवरणहीन हो जाता है ॥२४॥ उस समय रूप, रस, स्पर्श, गन्ध तथा आकारसे रहित अत्यन्त महान् एक आकाश ही सर्वमापूरयचेव cc-0. । समहज्ञत्प्रकाञ्चते । । । । सबको । ह्या हु। । सबको । ह्या हु। । सबको । ह्या हु। । । । । ।

परिमण्डलं च सुपिरमाकाशं शब्दलक्षणम् । शब्दमात्रं तदाकाशं सर्वमायृत्य तिष्ठति ॥२६॥ ततंश्श्रव्दगुणं तस्य भूतादिर्प्रसते पुनः। भूतेन्द्रियेषु युगपद्भतादौ संस्थितेषु वै। अभिमानात्मको ह्येप भूतादिस्तामसस्स्मृतः॥२७॥ भूतादि ग्रसते चापि महान्ये बुद्धिलक्षणः ॥२८॥ उर्वी महांश्र जगतः प्रान्तेऽन्तर्वाद्यतस्तथा ॥२९॥ एवं सप्त महाबुद्धे क्रमात्प्रकृतयस्स्मृताः। प्रत्याहारे त तास्सर्वाः प्रविशन्ति परस्परम् ॥३०॥ प्रलीयते । येनेदमावृतं सर्वमण्डमप्सु सपर्वतम् ॥३१॥ सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तलोकं उदकावरणं यत्तु ज्योतिषा पीयते तु तत् । ज्योतिर्वायौ लयं याति यात्याकाशे समीरणः॥३२॥ आकाशं चैव भूतादिर्प्रसते तं तथा महान् । महान्तमेभिस्सहितं प्रकृतिर्प्रसते द्विज ॥३३॥ गुणसाम्यमनुद्रिक्तमन्युनं च महाग्रुने । प्रोच्यते प्रकृतिहेंतुः प्रधानं कारणं परम् ॥३४॥ इत्येषा प्रकृतिस्सर्वा व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी। व्यक्तसहरमव्यक्ते तसान्मेत्रेय लीयते ॥३५॥ एकश्युद्धोऽक्षरो नित्यस्सर्वव्यापी तथा पुमान् । सोऽप्यंशस्सर्वभृतस्य मैत्रेय परमात्मनः ॥३६॥ न सन्ति यत्र सर्वेशे नामजात्यादिकलपनाः । सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे ।।३७॥ तद्वस परमं धाम परमात्मा स चेश्वरः।

उस समय चारों ओरसे गोल, छिद्रखरूप, शब्दलक्षण आकाश ही शेष रहता हैं; और वह शब्दमात्र आकाश सबको आच्छादित किये रहता है ॥२६॥ तदनन्तर, आकाशके गुण शब्दको भूतादि प्रस लेता है । इस भूतादिमें ही एक साथ पक्षभूत और इन्द्रियोंका भी लय हो जानेपर केवल अहंकारात्मक रह जानेसे यह तामस (तमःप्रधान) कहलाता है फिर इस भूतादिको भी [सच्वप्रधान होनेसे] वुद्धिरूप महत्तत्व प्रस लेता है ॥२७-२८॥

जिस प्रकार पृथ्वी और महत्तत्त्व ब्रह्माण्डके अन्तर्जगत्की आदि-अन्त सीमाएँ हैं उसी प्रकार उसके वाह्य जगत्की भी हैं ॥ २९ ॥ हे महाबुद्धे ! इसी तरह जो सात आवरण बताये गये हैं वे सत्र भी प्रलय-कालमें [पूर्ववत् पृथिवी आदि क्रमसे] परस्पर (अपने-अपने कारणोंमें) लीन हो जाते हैं ॥ ३०॥ जिससे यह समस्त लोक न्याप्त है वह सम्पूर्ण भूमण्डल सातों द्वीप, सातों समुद्र, सातों छोक और सक्छ पर्वतश्रेणियोंके सहित जलमें लीन हो जाता है ॥३१॥ फिर जो जलका आवरण है उसे अग्नि पी जाता है तथा अग्नि वायमें और वाय आकाशमें छीन हो जाता है ॥३२॥ हे द्विज ! आकाराको भूतादि (तामस अहंकार), भूतादिको महत्तत्त्व और इन सबके सहित महत्तत्त्वको मूळ प्रकृति अपनेमें छोन कर छेती है ॥३३॥ हे महामुने ! न्यूनाधिकसे रहित जो सत्त्वादि तीनों गुणोंकी साम्यावस्था है उसीको प्रकृति कहते हैं; इसीका नाम प्रधान भी है। यह प्रधान ही सम्पूर्ण जगत्का परम कारण है ॥ ३४ ॥ यह प्रकृति व्यक्त और अन्यक्तरूपसे सर्वमयी है। हे मैत्रेय ! इसीछिये अन्यक्तमें न्यक्तरूप लीन हो जाता है ।।३५॥

इससे पृथक् जो एक ग्रुद्ध, अक्षर, नित्य और सर्वव्यापक पुरुष है वह भी सर्वभूत परमात्माका अंश ही है ॥ ३६॥ जिस सत्तामात्रखरूप आत्मा (देहादि संघात) से पृथक् रहनेवाले ज्ञानात्मा एवं ज्ञातव्य सर्वेश्वरमें नाम और जाति आदिकी कल्पना नहीं है वही सबका परम आश्रय परब्रह्म परमात्मा है और वही ईश्वर है। वह विष्णु ही इस अखिल विश्व-

स विष्णुस्सर्वमेवेदं यतो नावर्तते यतिः।।३८।। प्रकृतिया मयाऽऽख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी । पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि ॥३९॥ परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः। विष्णुनामा स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते ॥४०॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्। ताभ्यामुभाभ्यां पुरुषेस्सर्वमूर्तिस्स इज्यते ॥४१॥ ऋग्यज्ञस्सामभिर्मार्गेः प्रवृत्तैरिज्यते ह्यसौ । यज्ञपुमान्पुरुषैः पुरुषोत्तमः ॥४२॥ यज्ञेश्वरो ज्ञानात्मा ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्तिः स चेज्यते । निवृत्ते योगिभिर्मार्गे विष्णुर्मुक्तिफलप्रदः ॥४३॥ द्रखदीर्घप्छतैर्यत्तु किश्चिद्रस्त्वभिधीयते । यच वाचामविषयं तत्सर्वं विष्णुरव्ययः ॥४४॥ व्यक्तस्स एव चाव्यक्तस्स एव पुरुषोऽव्ययः। परमात्मा च विश्वात्मा विश्वरूपधरो हरिः ॥४५॥ व्यक्ताव्यक्तात्मिका तसिन्प्रकृतिस्सम्प्रलीयते। पुरुषश्चापि मैत्रेय च्यापिन्यच्याहतात्मिन ॥४६॥ द्विपरार्द्धात्मकः कालः कथितो यो मया तव। तद्हस्तस्य मैत्रेय विष्णोरीशस्य कथ्यते ॥४७॥ व्यक्ते च प्रकृतौ लीने प्रकृत्यां पुरुषे तथा। तत्र स्थिते निशा चास्य तत्त्रमाणा महामुने ॥४८॥ नैवाहस्तस्य न निशा नित्यस परमात्मनः। उपचारस्तथाप्येष तस्येशस्य द्विजोच्यते ॥४९॥ इत्येष तव मैत्रेय कथितः प्राकृतो लयः। आत्यन्तिकमथो ब्रह्मित्रवोध प्रतिसञ्चरम् ॥५०॥

रूपसे अवस्थित है उसको प्राप्त हो जानेपर योगिजन फिर इस संसारमें नहीं छौटते ॥ ३७-३८॥ जिस व्यक्त और अन्यक्तखरूपिणी प्रकृतिका मैंने वर्णन किया है वह तथा पुरुष—ये दोनों भी उस परमात्मा-में ही छीन हो जाते हैं ॥ ३९॥ वह परमात्मा सबका आधार और एकमात्र अधीश्वर है; उसीका वेद और वेदान्तोंमें विष्णुनामसे वर्णन किया है ॥ ४०॥ वैदिक कर्म दो प्रकारका है-प्रवृत्तिरूप (कर्मयोग) और निवृत्तिरूप (सांख्ययोग)। इन दोनों प्रकारके कर्मोंसे उस सर्वभूत पुरुषोत्तमका ही यजन किया जाता है ॥ ४१ ॥ ऋक्, यजुः और सामनेदोक्त प्रवृत्ति-मार्गसे लोग उन यज्ञपति पुरुषोत्तम यज्ञ-पुरुषका ही पूजन करते हैं ॥ ४२ ॥ तथा निवृत्ति-मार्गमें स्थित योगिजन भी उन्हीं ज्ञानात्मा ज्ञानखरूप मुक्ति-फल्ल-दायक भगवान् विष्णुका ही ज्ञानयोगद्वारा यजन करते हैं ॥ ४३ ॥ हस्त, दीर्घ और प्छत—इन त्रिविध खरोंसे जो कुछ कहा जाता है तथा जो वाणीका विषय नहीं है वह सब भी अन्ययात्मा विष्णु ही है ॥ ४४ ॥ वह विश्वरूपधारी विश्वरूप परमात्मा श्रीहरि ही न्यक्त, अन्यक्त एवं अविनाशी पुरुष हैं ॥ ४५॥ हे मैत्रेय ! उन सर्वन्यापक और अविकृतरूप परमात्मामें ही व्यक्ताव्यक्तरूपिणी प्रकृति और पुरुष छीन हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

हे मैत्रेय । मैंने तुमसे जो द्विपरार्द्धकाल कहा है वह उन विष्णुमगवान्का केवल एक दिन है || १७ || हे महामुने ! व्यक्त जगत्के अव्यक्त-प्रकृतिमें और प्रकृतिके पुरुषमें छीन हो जानेपर इतने ही कालकी विष्णुभगवान्की रात्रि होती है ॥ ४८॥ हे द्विज ! वास्तवमें तो उन नित्य परमात्माका न कोई दिन है और न रात्रि, तथापि केवल उपचार (अध्यारोप) से ऐसा कहा जाता है ॥ ४९॥ हे मैत्रेय ! इस प्रकार मैंने तुमसे यह प्राकृत प्रलयका वर्णन किया, अब तुम आत्यन्तिक प्रलयका वर्णन और सुनो ॥ ५०॥

इति श्रीविष्णुपुराणे षष्ठेंऽशे चतुर्थोऽच्यायः ॥ ४॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shasai Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पाँचवाँ अध्याय

आध्यात्मिकादि त्रिविध तार्पोका वर्णन, भगवान् तथा वासुदेव शब्दोंकी व्याख्या और भगवान्के पारमार्थिक खरूपका वर्णन।

श्रीपराशर उवाच

आध्यात्मिकादि मैत्रेय ज्ञात्वा तापत्रयं बुधः। उत्पन्नज्ञानवैराग्यः प्रामोत्यात्यन्तिकं लयम् ॥ १ ॥ आध्यात्मिकोऽपि द्विविधक्वारीरो मानसस्तथा। शारीरो बहु भिर्भेदै भिंद्यते श्रूयतां च सः ॥ २॥ शिरोरोगप्रतिक्यायज्वरक्ष्रलभगन्दरैः गुल्मार्शःथयथुश्वासच्छद्यदिभिरनेकघा 11311 तथाक्षिरोगातीसारकुष्ठाङ्गामयसंज्ञितैः भिद्यते देहजस्तापो मानसं श्रोतुमहिसि ॥ ४॥ कामकोधभयद्वेषलोभमोहविपादजः शोकास्यावमानेर्ष्यामात्सर्यादिमयस्तथा ॥ ५॥ मानसोऽपि द्विजश्रेष्ठ तापो भवति नैकधा। इत्येवमादिभिर्भेदैस्तापो ह्याध्यात्मिकः स्मृतः॥६॥ मृगपक्षिमनुष्याद्यैः पिशाचोरगराक्षसैः। सरीसृपाद्येश्र नृणां जायते चाधिभौतिकः ॥ ७॥ शीतवातोष्णवर्षाम्<u>चुवैद्य</u>तादिसमुद्भवः तापो द्विजवर श्रेष्टैः कथ्यते चाधिदैविकः ॥ ८॥

गर्भजन्मजराज्ञानमृत्युनारकर्ज तथा ।
दुःखं सहस्रशो भेदैभिंद्यते ग्रुनिसत्तम ॥ ९ ॥
ग्रुकुमारतनुर्गभें जन्तुर्वहुमलावृते ।
जल्वसंविष्टितो ग्रुप्रपृष्ठग्रीवास्थिसंहतिः ॥१०॥
अत्यम्लकदुतीक्ष्णोष्णलवणैर्मातृभोजनैः ।
अत्यन्ततापैरत्यर्थं वर्द्धमानातिवेदनः ॥११॥
प्रसारणाकुश्चनादौ नाङ्गानां प्रभुरात्मनः ।

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिमौतिक तीनों तापोंको जानकर ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होनेपर पण्डितजन आत्यन्तिक प्रलय प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥ आध्यात्मिक ताप शारीरिक और मानसिक दो प्रकारके होते हैं; उनमें शारीरिक तापके भी कितने ही भेद हैं, वह सुनो ॥ २ ॥ शिरोरोग, प्रतिस्याय (पीनस), ज्बर, शूळ, भगन्दर, गुल्म, अर्श (ववासीर), शोथ (सूजन), श्वास (दमा), छर्दि तथा नेत्ररोग, अतिसार और कुष्ठ आदि शारीरिक कष्ट-भेदसे दैहिक तापके कितने ही मेद हैं। अब मानसिक तापोंको सुनो॥ ३-४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! काम, क्रोध, भय, द्वेप, छोभ, मोह, विषाद, शोक, असूया (गुर्णोमें दोषारोपण), अपमान, ईर्ष्या और मात्सर्य आदि मेदोंसे मानसिक तापके अनेक भेद हैं। ऐसे ही नाना प्रकारके भेदोंसे युक्त तापको आध्यात्मिक कहते हैं ॥ ५-६ ॥ मनुष्योंको जो दुःख मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच, सर्प, राक्षस और सरीसृप (विच्छ) आदिसे प्राप्त होता है उसे आधिमौतिक कहते हैं ॥ ७॥ तथा हे द्विजवर ! शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, जल और विद्युत् आदिसे प्राप्त हुए द:खको श्रेष्ठ पुरुष आधिदैविक कहते हैं ॥ ८॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! इनके अतिरिक्त गर्भ, जन्म, जरा, अज्ञान, मृत्यु और नरकसे उत्पन्न हुए दुःखके भी सहस्रों प्रकारके भेद हैं ॥ ९॥ अत्यन्त मछपूर्ण गर्माशयमें उत्व (गर्मकी झिड़ी) से छिपटा हुआ यह सुकुमारशरीर जीव, जिसकी पीठ और प्रीवाकी अध्ययाँ कुण्डछाकार मुझी रहती हैं, माताके खाये हुए अत्यन्त तापप्रद खट्टे, कड़वे, चरपरे, गर्म और खारे पदार्थोंसे जिसकी वेदना बहुत बढ़ जाती है, जो मछ-मृत्ररूप महापङ्कमें पड़ा-पड़ा सम्पूर्ण अङ्गोंमें अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी अपने अङ्गोंको

शकुन्मूत्रमहापङ्कशायी सर्वत्र पीडितः ।।१२।। निरुच्छ्वासः सचैतन्यस्सरञ्जन्मशतान्यथ । आस्ते गर्भेऽतिदुःखेन निजकर्मनिबन्धनः ॥१३॥ जायमानः पुरीषासृङ्सूत्रशुक्राविलाननः। प्राजापत्येन वातेन पीड्यमानास्थिबन्धनः ॥१४॥ अघोग्रुखो वै कियते प्रवलैस्स्रुतिमारुतैः। क्केशानिष्क्रान्तिमामोति जठरान्मातुरातुरः ।।१५।।

मुच्छीमवाप्य महतीं संस्पृष्टो बाह्यवायुना । विज्ञानअंशमामोति जातश्र ग्रुनिसत्तम ॥१६॥ कण्टकौरिव तुन्नाङ्गः ककचैरिव दारितः। पूर्तिव्रणानिपतितो धरण्यां क्रिमिको यथा ॥१७॥ कण्ड्यनेऽपि चाशक्तः परिवर्तेऽप्यनीश्वरः। स्नानपानादिकाहारमप्यामोति परेच्छया ॥१८॥ अञ्चित्रस्तरे सुप्तः कीटदंशादिभिस्तथा। मक्ष्यमाणोऽपि नैवैषां समर्थो विनिवारणे ॥१९॥

जन्मदुःखान्यनेकानि जन्मनोऽनन्तराणि च। बालमावे यदामोति ह्याधिमौतादिकानि च ॥२०॥ अज्ञानतमसाऽऽच्छन्नो मूढान्तःकरणो नरः। न जानाति कुतः को इहं काहं गन्ता किमात्मनः २१ केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम्। किं कार्य किमकार्य वा किं वाच्यं किं च नोच्यते।२२।

फैलाने या सिकोड़नेमें समर्थ नहीं होता और चेतना-युक्त होनेपर भी श्वास नहीं छे सकता, अपने सैकड़ों पूर्वजन्मोंका स्मरणकर कर्मों से वँधा हुआ अत्यन्त दु:ख-पूर्वक गर्भमें पड़ा रहता है ॥ १०--१३॥ उत्पन्न होनेके समय उसका मुख मल, मूत्र, रक्त और वीर्य आदिमें लिपटा रहता है और उसके सम्पूर्ण अस्थिबन्धन प्राजापत्य (गर्भको सङ्कृचित करनेवाछी) वायुसे अत्यन्त पीड़ित होते हैं ॥ १४॥ प्रवल प्रसूति-वायु उसका मुख नीचेको कर देती है और वह आतुर होकर वड़े हेशके साथ माताके गर्भाशयसे बाहर निकल पाता है ॥ १५॥

हे मुनिसत्तम! उत्पन्न होनेके अनन्तर बाह्य वायुका स्पर्श होनेसे अत्यन्त मृर्च्छित होकर वह बेसुध हो जाता है ॥ १६॥ उस समय जीव दुर्ग-धयुक्त फोड़ेमेंसे गिरे हुए किसी कण्टक-विद्व अथवा आरेसे चीरे हुए कीड़ेके समान पृथिवीपर गिरता है ॥ १७ ॥ उसे खर्य खुजळाने अथवा करवट छेनेकी भी शक्ति नहीं रहती। वह स्नान तथा दुग्ध-पानादि आहार भी दूसरेहीकी इच्छासे प्राप्त करता है ॥ १८॥ अपवित्र (मल-मूत्रादिमें सने हुए) बिस्तरपर पड़ा रहता है, उस समय कीड़े और डाँस आदि उसे काटते हैं तथापि वह उन्हें दूर करनेमें भी समर्थ नहीं होता ॥ १९॥

इस प्रकार जन्मके समय और उसके अनन्तर बाल्यावस्थामें जीव आधिमौतिकादि अनेकों दुःख है ॥ २० ॥ अज्ञानरूप अन्धकारसे आवृत होकर मूढ़द्दय पुरुष यह नहीं जानता कि 'मैं कहाँसे आया हूँ ? कौन हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? तथा मेरा खरूप क्या है ? ॥ २१॥ मैं किस वन्धनसे वैंधा हुआ हूँ ? इस बन्धनका क्या कारण है ! अथवा यह अकारण ही प्राप्त हुआ है ! मुझे क्यां करना चाहिये और क्या न करना चाहिये ? तथा क्या कहना चाहिये और क्या न कहना चाहिये ?॥ २२॥ धर्म क्या है ? अधर्म क्या को धर्मः कश्च वाधर्मः किसान्वर्तेऽथ वा कथम् । हैं हिता अवस्थाने सक्ते किस प्रकार रहना चाहिये ?

किं कर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोपवत् ।।२३।। पशुसमैर्मृढैरज्ञानप्रभवं महत्। अवाप्यते नरेर्दुःखं शिश्लोदरपरायणैः ॥२४॥ अज्ञानं तामसो भावः कार्यारम्भप्रवृत्तयः। अज्ञानिनां प्रवर्तन्ते कर्मलोपास्ततो द्विज ॥२५॥ नरकं कर्मणां लोपात्फलमाहुर्मनीपिणः। तसादज्ञानिनां दुःखमिह चाम्रुत्र चोत्तमम् ।।२६।। जराजर्जरदेहश्च शिथिलावयवः प्रमान् । विगलच्छीर्णद्यानो वलिसाय्यशिरावृतः ॥२७॥ व्योमान्तर्गततारकः। द्रप्रणष्टनयनो नासाविवरनिर्यातलोमपुञ्जश्रलद्वपुः 112511 प्रकटीभूतसर्वास्थिनीतपृष्ठास्थिसंहतिः उत्सन्नजठराग्नित्वाद् ल्पाहारोऽल्पचेष्टितः 112911 कुच्छाचङ्क्रमणोत्थानशयनासनचेष्टितः मन्दीभवच्छ्रोत्रनेत्रस्सवह्यालाविलाननः ॥३०॥ अनायत्तेस्समस्तैथ करणैर्मरणोन्म्रखः। तत्क्षणेऽप्यनुभृतानामसर्तात्विलवस्तुनाम् ॥३१॥ सकृदुचारिते वाक्ये समुद्भूतमहाश्रमः। ॥३२॥ श्वासकाश्वसमुद्धृतमहोयासप्रजागरः अन्येनोत्थाप्यतेऽन्येन तथा संवेक्यते जरी। भृत्यात्मपुत्रदाराणामवमानास्पदीकृतः 113311

क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है ? अथवा क्या गुणमय और क्या दोषमय है ?' || २३ || इस प्रकार पश्चके समान विवेकशून्य शिश्लोदरपरायण पुरुष अज्ञान-जनित महान् दुःख भोगते हैं || २४ ||

हे द्विज! अज्ञान तामसिक भाव (विकार) है अतः अज्ञानी पुरुषोंकी (तामसिक) कर्मोंके आरम्भमें प्रवृत्ति होती है: इससे वैदिक कर्मोंका छोप हो जाता है ॥ २५ ॥ मनीषिजनोंने कर्म-छोपका फल नरक बतलाया है: इस्छिये अज्ञानी पुरुषोंको इह्छोक और परछोक दोनों जगह अत्यन्त ही दु:ख भोगना पड़ता है।।२६॥ शरीरके जरा-जर्जरित हो जानेपर पुरुषके अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो जाते हैं, उसके दाँत पुराने होकर उखड़ जाते हैं और शरीर झुरियों तथा नस-नाड़ियोंसे आवृत हो जाता है ॥२७॥ उसकी दृष्टि दुरस्य विषयके प्रहुण करनेमें असमर्थ हो जाती है, नेत्रोंके तारे गोलकोंमें घुस जाते हैं, नासिकाके रन्ध्रोंमेंसे वहुत-से रोम बाहर निकल आते हैं और शरीर काँपने लगता है ॥२८॥ उसकी समस्त हडियाँ दिखलायी देने लगती हैं, मेरुदण्ड झक जाता है तथा जठराग्निके मन्द पड़ जानेसे उसके आहार और पुरुषार्थ कम हो जाते हैं ॥२९॥ उस समय उसकी चलना-फिरना, उठना-वैठना और सोना आदि सभी चेष्टाएँ बड़ी कठिनतासे होती हैं. उसके श्रोत्र और नेत्रोंकी शक्ति मन्द पड़ जाती है तथा छार बहते रहनेसे उसका मुख मिछन हो जाता है ॥३०॥ अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ खाधीन न रहनेके कारण वह सब प्रकार मरणासन्न हो जाता है तथा [स्मरणशक्तिके क्षीण हो जानेसे] वह उसी समय अनुमव किये हुए समस्त पदार्थोंको भी भूछ जाता है || ३१ || उसे एक वाक्य उचारण करनेमें भी महान् परिश्रम होता है तथा खास और खाँसी आदिके महान् कष्टके कारण वह [दिन-रात] जागता रहता है ॥३२॥ वृद्ध पुरुष औरोंकी सहायता-से ही उठता तथा औरोंके विठानेसे ही बैठ सकता है, अतः वह अपने सेवक और स्त्री-पुत्रादिके छिये सदा अनादरका पात्र बना रहता है॥ ३३॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रक्षीणाखिलशौचश्च विहाराहारसस्पृहः ।
हास्यः परिजनस्यापि निर्विण्णाशेषवान्धवः ॥३४॥
अनुभूतिमवान्यसिञ्जन्मन्यात्मविचेष्टितम् ।
संसरन्यौवने दीर्घं निःश्वसत्यभितापितः ॥३५॥

एवमादीनि दुःखानि जरायामनुभूय वै। मरणे यानि दुःखानि प्रामोति शृणु तान्यपि ॥३६॥ श्लथद्भीवाङ्घिहस्तोऽथ न्याप्तो वेपथुना भृशम् । मुहुग्र्लानिपरवशो मुहुर्ज्ञानलवान्वितः ॥३७॥ हिरण्यधान्यतनयभार्याभृत्यगृहादिषु एते कथं भविष्यन्तीत्यतीव ममताकुलः ॥३८॥ मर्मिमिद्धिर्महारोगैः क्रकचैरिव दारुणैः। शरैरिवान्तकस्योग्रैश्छिद्यमानासुवन्धनः परिवर्तितताराक्षो इस्तपादं मुहुः क्षिपन्। संशुष्यमाणताल्वोष्टपुटो घुरघुरायते ॥४०॥ निरुद्धकण्ठो दोपौषैरुदानश्वासपीडितः। तापेन महता व्याप्तस्तृपा चार्त्तस्था क्षुचा ॥४१॥ क्केशादुत्क्रान्तिम।मोति यमिकक्करपीडितः। तत्रश्र यातनादेहं क्रेशेन प्रतिपद्यते ॥४२॥ एंतान्यन्यानि चोत्राणि दुःखानि मरणे नृणाम् । शृणुष्य नरके यानि प्राप्यन्ते पुरुषैर्मृतैः ॥४३॥ याम्यकिङ्करपाञादिग्रहणं दण्डताडनम्।

चोत्रसुत्रमार्गविलोकनस् ॥४४॥

दशनं

उसका समस्त शौचाचार नष्ट हो जाता है तथा भोग और भोजनकी छाछसा वढ़ जाती है; उसके परिजन भी उसकी हँसी उड़ाते हैं और वन्धुजन उससे उदासीन हो जाते हैं ॥३४॥ अपनी युवावस्थाकी चेष्टाओंको अन्य जन्ममें अनुभव की हुई-सी स्मरण करके वह अत्यन्त सन्तापवश दीर्घ निःश्वास छोड़ता रहता है ॥३५॥

इस प्रकार चृद्धावस्थामें ऐसे ही अनेकों दुःख अतुभव कर उसे मरणकाल्में जो कष्ट भोगने पड़ते हैं वे मी सुनो ॥३६॥ कण्ठ और हाथ-पैर शिथिल पड़ जाते तथा शारीरमें अत्यन्त कम्प छा जाता है। बार-बार उसे ग्छानि होती और कभी कुछ चेतना भी आ जाती है ॥३०॥ उस समय वह अपने हिरण्य (सोना), धन-धान्य, पुत्र-स्त्री, भृत्य और गृह आदिके प्रति 'इन सत्रका क्या होगा ?' इस प्रकार अत्यन्त ममतासे न्याकुल हो जाता है॥३८॥ उस समय मर्मभेदी क्रकच (आरे) तथा यमराजके विकराल बाणके समान महाभयङ्कर रोगोंसे उसके प्राण-बन्धन कटने लगते हैं ॥३९॥ उसकी आँखोंके तारे चढ़ जाते हैं, वह अत्यन्त पीड़ासे वारम्वार हाथ-पैर पटकता है तथा उसके तालु और ओंठ सूखने लगतें हैं ॥४०॥ फिर क्रमशः दोष-समृहसे उसका कण्ठ रुक जाता है अतः वह 'घरघर' शब्द करने लगता है; तथा ऊर्घ्यश्वाससे पीड़ित और महान् तापसे व्याप्त होकर क्षुधा-तृष्णासे न्याकुल हो ' उठता है ॥४१॥ ऐसी अवस्थामें भी यमदृतोंसे पीड़ित होता हुआ वह बड़े क्रेशसे शरीर छोड़ता है और अत्यन्त कष्टसे कर्मफल भोगनेके लिये यातना-देह प्राप्त करता है ॥४२॥ मरणकालमें मनुष्योंको ये और ऐसे ही अन्य मयानक कष्ट भोगने पड़ते हैं; अब, मरणोपरान्त उन्हें नरकमें जो यातनाएँ मोगनी पड़ती हैं वह सुनो-॥४३॥

प्रथम यम-किङ्कर अपने पाशोंमें बाँधते हैं, फिर उनके दण्ड-प्रहार सहने पड़ते हैं, तदनन्तर यमराजका दर्शन होता है और वहाँतक पहुँचने-में अब्दान होता है ॥ ११॥

करम्भवालुकावह्नियन्त्रशस्त्रादिभीषणे प्रत्येकं नरके याश्र यातना द्विज दुःसहाः ॥४५॥ क्रकचैः पाट्यमानानां मुषायां चापि द् ह्यताम् । क्कठारैः कृत्यमानानां भूमो चापि निखन्यताम् ।४६। श्रुलेष्वारोप्यमाणानां व्याघ्रवक्त्रे प्रवेश्यताम् । गुन्नैस्सम्भक्ष्यमाणानां द्वीपिभिश्चोपभ्रज्यताम् ।४७। काथ्यतां तैलमध्ये च क्षिचतां क्षारकर्दमे । उचानिपात्यमानानां क्षिप्यतां क्षेपयन्त्रकैः ॥४८॥ नरके यानि दुःखानि पापहेतुद्भवानि वै। प्राप्यन्ते नारकैविंप्र तेषां संख्या न विद्यते ॥४९॥ न केवलं द्विजश्रेष्ठ नरके दुःखपद्वतिः। खर्गेऽपि पातभीतस्य क्षयिष्णोर्नास्ति निर्वृतिः॥५०॥ पुनश्र गर्भे भवति जायते च पुनः पुनः । गर्भे विलीयते भूयो जायमानोऽस्तमेति वै।।५१।। जातमात्रश्च मियते वालभावेऽथ यौवने। मध्यमं वा वयः प्राप्य वार्द्धके वाथ वा मृतिः।।५२॥ यावजीवति तावच दुःखैर्नानाविधेः प्छतः । तन्तुकारणपक्ष्मौषैरास्ते कार्पासवीजवत् ॥५३॥ द्रव्यनाशे तथोत्पत्तौ पालने च सदा नृणाम् । तथैवेष्टविपत्तिषु ॥५४॥ भवन्त्यनेकदुःखानि

यद्यत्त्रीतिकरं पुंसां वस्तु मैत्रेय जायते । तदेव दुःखद्यक्षस वीजत्वम्रपगच्छति ॥५५॥ कलत्रपुत्रमित्रार्थगृहक्षेत्रधनादिकैः । क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथाऽसुखम् ॥५६॥ इति संसारदुःसार्कतापतापितचेतसाम् । विम्रक्तिपादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम् ॥५७॥ तदस त्रिविधसापि दुःसजातस वै मम । हे द्विज! फिर तप्त वालुका, अग्नि-यन्त्र और शस्त्रादिसे महाभयंकर नरकोंमें जो यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं वे अत्यन्त असहा होती हैं ॥४५॥ आरेसे चीरं जाने, मूसमें तपाये जाने, कुल्हाड़ीसे काटे जाने, भूमिमें गाड़े जाने, शूलीपर चढ़ाये जाने, सिहके मुखमें डाले जाने, गिद्धोंके नोचने, हाथियोंसे दल्ति होने, तेलमें पकाये जाने, खारे दल्दलमें फँसने, ऊपर ले जावर नीचे गिराये जाने और क्षेपण-यन्त्रद्वारा दूर फेंके जानेसे नरकनिवासियोंको अपने पाप-कर्मोंके कारण जो-जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनकी गणना नहीं हो सकती ॥४६—४९॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! केवल नरकमें ही दुःख हों, सो वात नहीं है; खर्गमें भी पतनका भय लगे रहनेसे कभी शान्ति नहीं मिलती ॥५०॥ [नरक अथवा खर्ग-भोगके अनन्तर] वार-वार वह गर्भमें आता है और जन्म प्रहण करता है तथा फिर कभी गर्भमें ही नष्ट हो जाता है और कभी जन्म लेते ही मर जाता है ॥५१॥ जो उत्पन्न हुआ है वह जन्मते ही, वाल्यावस्थामें, युवावस्थामें, मध्यमवयमें अथवा जराप्रस्त होनेपर अवश्य मर जाता है ॥५२॥ जबतक जीता है तवतक नाना प्रकारके कष्टोंसे घरा रहता है, जिस तरह कि कपासका वीज तन्तुओंके कारण सूत्रोंसे घरा रहता है ॥५३॥ द्रव्यके उपार्जन, रक्षण और नाशमें तथा इष्ट-मित्रोंके विपत्तिप्रस्त होनेपर भी मनुष्योंको अनेकों दुःख उठाने पड़ते हैं ॥५३॥

हे मैत्रेय! मनुष्योंको जो-जो वस्तुएँ प्रिय हैं, वे सभी दुःखरूपी वृक्षका बीज हो जाती हैं ॥५५॥ स्त्री, पुत्र, मित्र, अर्थ, गृह, क्षेत्र और धन आदिसे पुरुषोंको जैसा दुःख होता है वैसा सुख नहीं होता ॥५६॥ इस प्रकार सांसारिक दुःखरूप सूर्यके तापसे जिनका अन्तःकरण तप्त हो रहा है उन पुरुपोंको मोक्षरूपी वृक्षकी [धनी] छायाको छोड़कर और कहाँ सुख मिछ सकता है !॥५७॥ अतः मेरे मतमें गर्भ, जन्म और जरा आदि स्थानोंमें प्रकट होनेवाले आध्यास्मिकादि

गर्भजन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यतः ॥५८॥ **निरस्तातिश्चयाह्वादसुखभावैकलक्षणा** मेषजं भगवत्प्राप्तिरेकान्तात्यन्तिकी मता ॥५९॥ तसात्तत्राप्तये यहाः कर्तव्यः पण्डितैर्नरैः। तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं महामुने ॥६०॥ आगमोत्थं विवेकाच द्विधा ज्ञानं तदुच्यते । शब्दब्रह्मागममयं परं ब्रह्म विवेकजम् ।।६१।। अन्धं तम इवाज्ञानं दीपवचेन्द्रियोद्भवम् । यथा सूर्यस्तथा ज्ञानं यद्विप्रर्षे विवेकजम् ।।६२।। मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वा यन्मुनिसत्तम्। तदेतच्छ्यतामत्र सम्बन्धे गदतो मम।।६३॥ 🔑 द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्। शब्दत्रक्षणि निष्णातः परं त्रक्षाधिगच्छति ।।६४।। द्वे वै विद्ये वेदितच्ये इति चाथर्वणी श्रुतिः। त्वक्षरप्राप्तिर्ऋग्वेदादिमयापरा ॥६५॥ यत्तद्व्यक्तमजरमचिन्त्यमजम्ब्ययम् अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंग्रुतम् ॥६६॥ विश्व सर्वगतं नित्यं भूतयोनिरकारणम्। व्याप्यव्याप्तं यतः सर्वं यद्वै पश्यन्ति सूर्यः ॥६७॥ तद्ब्रह्म तत्परं घाम तद्वचेयं मोक्षकाङ्किभिः। श्रुतिवाक्योदितं सक्षमं तद्विष्णोः परमं पदम्।।६८।। तदेव भगवद्वाच्यं खरूपं परमात्मनः। वाचको भगवच्छव्दत्तस्याद्यसाक्षयात्मनः ॥६९॥ एवं निगदितार्थस तत्तत्त्वं तस्य तत्त्वतः। ज्ञायते येन तज्ज्ञानं परमन्यत्त्रयीमयम् ॥७०॥

त्रिविध दुःख-समूहकी एकमात्र सनातन ओष्धि भगवत्प्राप्ति ही है जिसका निरितशय आनन्दरूप सुखकी प्राप्ति कराना ही प्रधान छक्षण है ॥५८-५९॥ इसिछिये पण्डितजनोंको भगवत्प्राप्तिका प्रयत्न करना चाहिये। हे महामुने ! कर्म और ज्ञान—ये दो ही उसकी प्राप्तिके कारण कहे गये हैं ॥ ६०॥

ज्ञान दो प्रकारका है—शाखाजन्य तथा विवेकज । शब्दब्रह्मका ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्मका बोध विवेकज ॥ ६१ ॥ हे विप्रवें ! अज्ञान धोर अन्धकारको समान है । उसको नष्ट करनेके लिये शास्त्रजन्य* ज्ञान दीपकवत् और विवेकज ज्ञान सूर्यके समान है ॥६२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस विषयमें वेदार्थका स्मरणकर मनुजीने जो कुछ कहा है वह बतलाता हूँ, श्रवण करो ॥ ६३ ॥

ब्रह्म दो प्रकारका है- शब्दब्रह्म और परब्रह्म। शब्दब्रह्म (शास्त्रजन्य ज्ञान) में निपुण हो जानेपर जिज्ञासु [विवेकज ज्ञानके द्वारा] परब्रह्मको प्राप्त कर 'छेता है ।। ६४ ।। अथर्ववेदकी श्रुति है कि वि**द्या** दो प्रकारकी है-परा और अपरा । परासे अक्षर ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और अपरा ऋगादि वेदत्रयी-रूपा है ॥ ६५ ॥ जो अन्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अनिर्देश्य, अरूप, पाणि-पादादिशून्य, व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतोंका आदिकारण, खयं कारणहीन तथा जिससे सम्पूर्ण व्याप्य और व्यापक प्रकट हुआ है और जिसे पण्डितजन [ज्ञाननेत्रोंसे] देखते हैं वह परमधाम ही ब्रह्म है, मुमुक्षुओंको उसीका ध्यान करना चाहिये और वहीं भगवान् विष्णुका वेदवचनोंसे प्रतिपादित अति सूक्ष्म परम-पद है ॥ ६६-६८ ॥ परमात्माका वह खरूप ही 'भगवत्' शब्दका वाच्य है और भगवत् शब्द ही उस आद्य एवं अक्षय स्वरूपका वाचक है ॥ ६९॥

जिसका ऐसा खरूप बतलाया गया है उस परमात्माके तत्त्वका जिसके द्वारा वास्तविक ज्ञान होता है वही परमज्ञान (परा विद्या) है। त्रयीमय ज्ञान (कर्मकाण्ड) इससे प्रथक् (अपरा विद्या) है॥७०॥

& अवण-इन्द्रियद्वारा शास्त्रका प्रहण होता है; इसिक्य शास्त्रजन्य ज्ञान ही 'इन्द्रियोद्वन' शब्दसे कहा गया है।

अशुब्दगोचरस्यापि तस्य वै ब्रह्मणो द्विज । पूजायां भगवच्छब्दः क्रियते ह्यूपचारतः ॥७१॥ शुद्धे महाविभृत्याख्ये परे त्रक्षणि शब्धते । भगवच्छव्दस्सर्वकारणकारणे ॥७२॥ सम्भर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः। नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मने ॥७३॥ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसिश्रयः। ज्ञानवैराग्ययोश्चेव पण्णां भग इतीरणा ॥७४॥ यसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि । स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः ॥७५॥ एवमेष महाञ्छब्दो मैत्रेय भगवानिति। परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यगः ॥७६॥ पूज्यपदार्थोक्तिपरिभाषासमन्वितः । शब्दोऽयं नोपचारेण त्वन्यत्र ह्युपचारतः ॥७७॥ उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागति गतिम् । वेचि विद्यामविद्यां च स वाच्या भगवानिति।।७८।। ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥७९॥ सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि । भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः ॥८०॥ खाण्डिक्यजनकायाह पृष्टः केशिध्वजः पुरा। नामन्याख्यामनन्तस्य वासुदेवस्य तत्त्वतः ॥८१॥ भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत् । भाता विभाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रश्वः ॥८२॥ सर्वभूतप्रकृति विकारा-न्गुणादिदोषांश्र मुने व्यतीतः।

हे द्विज! वह ब्रह्म यद्यपि शब्दका विषय नहीं है तथापि आदरप्रदर्शनके छिये उसका 'भगवत्' शब्दसे उपचारतः कथन किया जाता है ॥ ७१ ॥ हे मैत्रेय ! समस्त कारणोंके कारण, महाविभृति-संज्ञक परब्रह्मके लिये ही 'भगवत्' शब्दका प्रयोग हुआ है ॥ ७२ ॥ इस ('भगवत्' शब्द) में भकारके दो अर्थ हैं - पोषण करनेवाला और सबका आधार तथा गकारके अर्थ कर्म-फल प्राप्त करानेवाला, लय करनेवाला और रचयिता हैं॥ ७३ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य--इन छःका नाम 'भग' है ॥ ७४ ॥ उस अखिलभूतात्मामें समस्त भूतगण निवास करते हैं और 🕠 वह खयं भी समस्त भूतोंमें विराजमान है इसिलये वह अन्यय (परमात्मा) ही वकारका अर्थ है ॥ ७५॥ हे मैत्रेय ! इस प्रकार यह महान् 'भगवान्' शब्द परव्रह्मस्हरप श्रीवासुदेवका ही वाचक है, किसी औरका नहीं ॥ ७६ ॥ पूज्य पदार्थोंको सूचित करने-के लक्षणसे युक्त इस 'भगवान्' शब्दका परमात्मामें मुख्य प्रयोग है तथा औरोंके छिये गौण ॥ ७७ ॥ क्योंकि जो समस्त प्राणियोंके उत्पत्ति और नाश. आना और जाना तथा विद्या और अविद्याको जानता है वहीं भगवान् कहलानेयोंग्य है ॥ ७८ ॥ त्याग करनेयोग्य [त्रिविध] गुण [और उनके होश] आदिको छोड़कर ज्ञान, शक्ति, वल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सद्गुण ही 'भगवत' शब्दके वाच्य हैं ॥७९॥

उन परमात्मामें ही समस्त भूत वसते हैं और वे खयं भी सबके आत्मारूपसे सकल भूतों में विराजमान हैं, इसिल्ये उन्हें वासुदेव भी कहते हैं ॥ ८० ॥ पूर्वकाल-में खाण्डिक्य जनकके पूछनेपर केशिष्वजने उनसे भगवान् अनन्तके 'वासुदेव' नामकी यथार्थ व्याख्या इस प्रकार की थी ॥ ८१ ॥ 'प्रमु समस्त भूतों में व्यास हैं और सम्पूर्ण भूत भी उन्हों में रहते हैं तथा वे ही संसारके रचयिता और रक्षक हैं; इसिल्ये वे 'वासुदेव' कहलाते हैं'॥ ८२ ॥ हे मुने ! वे सर्वात्मा समस्त आवरणोंसे परे हैं । वे समस्त भूतोंकी प्रकृति,

अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा यद्भवनान्तराले ॥८३॥ तेनास्तृतं समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशावृतभूतवर्गः इच्छागृहीताभिमतोरुदेह-स्संसाधिताशेषजगद्धितो यः ॥८४॥ तेजोबलैश्वर्यमहाववोध-सुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः पराणां सकला न यत्र **क्टेशादयस्सन्ति** परावरेशे ॥८५॥ व्यष्टिसमष्टिरूपो व्यक्तस्रपोऽप्रकटस्रह्यः सर्वेश्वरस्सर्वदक सर्वविच समत्तशक्तिः परमेश्वराख्यः।।८६।। संज्ञायते येन तदस्तदोषं निर्मलमेकरूपम्। परं संदृश्यते वाप्यवगम्यते

प्रकृतिके विकार तथा गुण और उनके कार्य आहि दोषोंसे विलक्षण हैं ! पृथिवी और आकाशके वीचमें जो कुछ स्थित है उन्होंने वह सब व्याप्त किया हुआ है ॥ ८३ ॥ वे सम्पूर्ण कल्याण-गुणोंके खरूप हैं, उन्होंने अपनी मायाशक्तिके छेशमात्रसे ही सम्पूर्ण प्राणियोंको व्याप्त किया है और वे अपनी इच्छासे ख-मनोनुकूल महान् शरीर धारणकर समस्त संसारका कल्याण-साधन करते हैं ॥ ८४ ॥ वे तेज, बल, ऐश्वर्य, महाविज्ञान, वीर्य और शक्ति आदि गुणोंकी एकमात्र राशि हैं, प्रकृति आदिसे भी परे हैं और परावरेश्वरमें अविद्यादि सम्पूर्ण क्लेशोंका अत्यन्तामाव है॥ ८५॥ वे ईश्वर ही समष्टि और व्यष्टिरूप हैं, वे ही व्यक्त और अव्यक्तखरूप हैं, वे ही सबके खामी, सबके साक्षी और सब कुछ जाननेवाले हैं तथा उन्हीं सर्वशक्तिमान्की परमेश्वर-संज्ञा है ॥ ८६॥ जिसके द्वारा वे निर्दोष, विशुद्ध, निर्मल और एकरूप परमात्मा देखे या जाने जाते हैं उसीका नामं ज्ञान (परा विद्या) है और जो इसके तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम् ॥८७॥ विपरीत है वही अज्ञान (अपरा विद्या) है ॥ ८७॥

इति श्रीविष्णुपुराणे षष्टेंऽशे पञ्चमोऽघ्यायः॥ ५॥

बठा अध्याय

केशिध्वज और खाण्डिक्यकी कथा।

श्रीपराशर उवाच

खाध्यायसंयमाभ्यां स इत्रयते पुरुषोत्तमः । तत्प्राप्तिकारणं ब्रह्म तदेतदिति पट्यते ॥ १ ॥ स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमावसेत्। खाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥ २ ॥ तदीक्षणाय खाच्यायश्रक्षयोंगस्तथा परम । न मांसचक्षुपा द्रव्हं असभ्तस्स श्रवसते ।। ३०।।

श्रीपराशरजी बोले-वे पुरुषोत्तम स्वाध्याय और संयमद्वारा देखें जाते हैं, ब्रह्मकी प्राप्तिका कारण होनेसे ये भी ब्रह्म ही कहळाते हैं ॥ १ ॥ स्वाध्यायसे योगका और योगसे स्वाध्यायका आश्रय करे। इस प्रकार स्वाध्याय और योगरूप सम्पत्तिसे परमात्मा प्रकाशित (ज्ञानके विषय) होते हैं ॥२॥ ब्रह्म-स्वरूप परमात्माको मांसमय चक्षुओंसे नहीं देखा जा सकता, उन्हें देखनेके लिये स्वाध्याय और योग ही ह्ये अने जाति Digitz शि by eGangotri

श्रीमैत्रेय उवाच

भगवंस्तमहं योगं ज्ञातुमिच्छामि तं वद । ज्ञाते यत्राखिलाधारं पत्रयेयं परमेश्वरम्।। ४।।

श्रीपराशर उवाच

यथा केशिध्वजः प्राह खाण्डिक्याय महात्मने । जनकाय पुरा योगं तमहं कथयामि ते ॥ ५॥

श्रीमैत्रेय उवाच

खाण्डिक्यः कोऽभवद्रह्मन्को वा केशिध्वजः कृती। कथं तयोश्र संवादो योगसम्बन्धवानभूत्।। ६।।

श्रीपराशर उवाच

धर्मध्वजो वै जनकस्तस्य पुत्रोऽमितध्वजः । कृतध्वजश्र नाम्नासीत्सदाध्यात्मरतिर्नृपः ॥ ७ ॥ कृतध्वजस्य पुत्रोऽभृत् ख्यातः केशिध्वजो नृपः। पुत्रोडमितध्वजस्यापि खाण्डिक्यजनकोडभवत्।।८।। कर्ममार्गेण खाण्डिक्यः पृथिव्यामभवत्कृती। केशिध्वजोऽप्यतीवासीदात्मविद्याविशारदः ॥९॥ ताबुभावपि चैवास्तां विजिगीषु परस्परम्। केशिध्वजेनं खाण्डिक्यस्खराज्यादवरोपितः।।१०।। पुरोधसा मन्त्रिभिश्च समवेतोऽल्पसाधनः । राज्यानिराकृतस्सोऽथ दुर्गारण्यचरोऽभवत्।।११।। इयाज सोऽपि सुवहून्यज्ञाञ्ज्ञानच्यपाश्रयः। ब्रह्मविद्यामिष्ठाय तर्त्तुं मृत्युमविद्यया ।।१२।। एकदा वर्तमानस्य यागे योगविदां वर । धर्मधेनुं जघानोग्रक्शार्दलो विजने वने ॥१३॥ ततो राजा हतां श्रुत्वा धेतुं व्याघ्रेण चर्त्विजः। प्रायश्चित्तं स पप्रच्छ किमत्रेति विधीयताम् ।।१४।। तेऽप्युचुर्न वयं विद्यः कशेरुः पृच्छचतामिति ।

श्रीमैत्रेयजी बोले— मगवन् ! जिसे जान लेनेपर मैं अखिलाधार परमेश्वरको देख सक्रूँगा उस योगको मैं जानना चाहता हूँ; उसका वर्णन कीजिये ॥ ४॥

श्रीपराशरजी बोले— पूर्वकालमें जिस प्रकार इस यंगका केशिष्वजने महात्मा खाण्डिक्य जनकसे वर्णन किया था मैं तुम्हें वही वतलाता हूँ ॥ ५॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्मन् ! यह खाण्डिक्य और विद्वान् केशिष्यज कौन थे ! और उनका योग-सम्बन्धी संवाद किस कारणसे हुआ था ! ॥ ६॥

श्रीपराशरजी बोले-पूर्वकालमें धर्मध्वज जनक नामक एक राजा थे । उनके अमितध्वज और कृत-ध्वज नामक दो पुत्र हुए । इनमें कृतध्वज सर्वदा अध्यात्मशास्त्रमें रत रहता था ॥ ७॥ कृतध्वजका पुत्र केशिष्वज नामसे विख्यात हुआ और अमित-ध्वजका पुत्र खाण्डिक्य जनक हुआ ॥८॥ पृथिवी-मण्डलमें खाण्डिक्य कर्म-मार्गमें अत्यन्त निपुण था और केशिष्वज अध्यात्म-विद्याका विशेषज्ञ या ॥ ९॥ वे दोनों परस्पर एक-दूसरेको पराजित करनेकी चेष्टामें छगे रहते थे। अन्तमें, कालक्रमसे केशिव्यजने खाण्डिक्यको राज्यच्युत कर दिया ॥ १०॥ राज्य-भ्रष्ट होनेपर खाण्डिक्य पुरोहित और मन्त्रियोंके सहित योड़ी-सी सामग्री लेकर दुर्गम वनोंमें चला गया ॥ ११ ॥ केशिष्यज ज्ञाननिष्ठ या तो भी अविद्या (कर्म) द्वारा मृत्युको पार करनेके छिये ज्ञान-दृष्टि रखते हुए उसने अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया॥१२॥

हे योगिश्रेष्ठ ! एक दिन जब राजा केशिष्वज यज्ञानुष्ठानमें स्थित थे उनकी धर्मधेनु (हिनके छिये दूध देनेवाछी गौ) को निर्जन वनमें एक मयंकर ततो राजा हतां श्रुत्वा धेनुं व्याघ्रेण चित्वजः। सिंहने मार डाछा ॥ १३॥ व्याघ्रद्वारा गौको मारी गयी सुन राजाने ऋत्विजोंसे पूछा कि 'इसमें न्या प्रायश्चित्त करना चाहिये ?' ॥१४॥ ऋत्विजोंने कहा—'हम [इस विषयमें] नहीं जानते; आप कशेरुसे पूछिये।' जब राजाने कशेरुसे यह बात पूछी तो उन्होंने भी उसी प्रकार कहा कि 'हे राजेन्द्र ! मैं इस

श्चनकं पृच्छ राजेन्द्र नाहं वेबि स वेत्स्यति । स गत्वा तमपृच्छच सोऽप्याह शृणु यन्सुने ॥१६॥

न कशेरुर्न चैवाहं न चान्यः साम्प्रतं भ्रुवि। वेत्त्येक एव त्वच्छत्रुः खाण्डिक्यो यो जितस्त्वया१७ स चाह तं त्रजाम्येष प्रष्डुमात्मरिपुं मुने । प्राप्त एव महायज्ञो यदि मां स हनिष्यति ॥१८॥ प्रायश्चित्तमशेषेण स चेत्पृष्टो वदिष्यति। ततत्र्याविकलो यागो सुनिश्रेष्ठ भविष्यति ॥१९॥

श्रीपराशर उवाच इत्युक्त्वा रथमारुह्य कृष्णाजिनधरो नृपः। वनं जगाम यत्रास्ते स खाण्डिक्यो महामतिः॥२०॥ तमापतन्तमालोक्य खाण्डिक्यो रिपुमात्मनः । य्रोवाच क्रोधताम्राक्षस्समारोपितकार्धकः ॥२१॥

लाण्डिक्य उवाच

कृष्णाजिनं त्वं कवचमावध्यासान्हनिष्यसि । कृष्णाजिनधरे वेत्सि न मयि प्रहरिष्यति ॥२२॥ मृगाणां वद पृष्ठेषु मृढ कृष्णाजिनं न किम्। येषां मया त्वया चोग्राः प्रहिताश्चित्रतसायकाः ।२३। स त्वामहं हनिष्यामि न मे जीवन्विमोक्ष्यसे । आतताय्यसि दुर्बुद्धे मम राज्यहरो रिपुः ॥२४॥ केशिध्वज उवाच

खाण्डिक्य संशयं प्रष्टुं भवन्तमहमागतः। न त्वां हन्तुं विचार्येतत्कोपं वाणं विमुश्च वा ॥२५॥ क्रोध अथवा बाण छोड़ दीजिये ॥ २५॥ CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

विषयमें नहीं जानता । आप भृगुपुत्र शुनकसे पृछिये, वे अवस्य जानते होंगे।' हे मुने! जब राजाने शुनकसे जाकर पूछा तो उन्होंने भी जो कुछ कहा, वह सुनिये—॥ १५-१६॥

"इस समय भूमण्डलमें इस वातको न करोह जानता है, न मैं जानता हूँ और न कोई और ही जानता है, केवल जिसे तुमने परास्त किया है वह तुम्हारा रात्रु खाण्डिक्य ही इस वातको जानता है"।१७। यह सुनकर केशिय्वजने कहा-'हे मुनिश्रेष्ट ! मैं अपने शत्रु खाण्डिक्यसे ही यह वात पूछने जाता हूँ। यदि उसने मुझे मार दिया तो भी मुझे महायज्ञका फल तो मिल ही जायगा और यदि मेरे पूछनेपर उसने मुझे सारा प्रायिश्वत्त यथावत् वतला दिया तो मेरा यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हो जायगा' ॥ १८-१९॥

श्रीपराशरजी बोले-ऐसा कहकर राजा केशि-ध्वज कृष्ण, मृगचर्म धारणकर रथपर आरूढ़ हो वनमें, जहाँ महामित खाण्डिक्य रहते थे, आये ॥२०॥ खाण्डिक्यने अपने शत्रुको आते देखकर धनुष चढ़ा लिया और क्रोधसे नेत्र लाल करके कहा—॥ २१॥

खाण्डिक्य बोले-अरे ! क्या तू कृष्णाजिन-रूप कवच बाँधकर हमछोगोंको मारेगा ? क्या त् यह समझता है कि कृष्ण-मृगचर्म धारण किये हुए मुझपर यह प्रहार नहीं करेगा ? ॥ २२ ॥ हे मूढ़ ! मृगोंकी पीठपर क्या कृष्ण-मृगचर्म नहीं होता, जिनपर कि मैंने और तूने दोनोंहीने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा की है ॥ २३ ॥ अतः अत्र मैं तुझे अवस्य मारूँगा, त् मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकता। हे दुर्बुद्धे ! तू मेरा राज्य छीननेवाला रात्रु है, इसलिये आततायी है ॥ २४॥

केशिध्वज बोले-हे खाण्डिक्य ! मैं आपसे एक सन्देह पूछनेके छिये आया हूँ, आपको मार्नेके लिये नहीं आया, इस बातको सोचकर आप मुझपर

श्रीपराशर उवाच

ततस्स मन्त्रिभस्सार्द्धमेकान्ते सपुरोहितः ।

मन्त्रयामास लाण्डिक्यस्सर्वेरेव महामितः ॥२६॥

तमूचुर्मन्त्रिणो वध्यो रिपुरेष वशं गतः ।

हतेऽस्मिन्पृथिवी सर्वा तव वश्या भविष्यति ॥२७॥

खाण्डिक्यश्राह तान्सर्वानेवमेतक् संशयः ।

हतेऽस्मिन्पृथिवी सर्वा मम वश्या भविष्यति ॥२८॥

परलोकजयस्तस्य पृथिवी सकला मम ।

न हन्मि चेछोकजयो मम तस्य वसुन्धरा ॥२९॥

नाहं मन्ये लोकजयादिषका स्याद्वसुन्धरा ।

परलोकजयोऽनन्तस्खल्पकालो महीजयः ॥३०॥

तस्माक्षेनं हनिष्यामि यत्पुच्छिति वदामि तत् ॥३१॥

श्रीपराशर उवाच

ततस्तमभ्युपेत्याह खाण्डिक्यजनको रिप्रम् ।

प्रष्टच्यं यक्त्रया सर्वे तत्पृच्छस्य वदाम्यहम् ॥३२॥
ततस्सर्वे यथावृत्तं धर्मधेतुवधं द्विज ।
कथित्वा स पप्रच्छ प्रायिश्वत्तं हि तद्गतम् ॥३३॥
स चाचष्ट यथान्यायं द्विज केशिष्त्रजाय तत्।
प्रायिश्वत्तमशेषेण यद्वे तत्र विधीयते ॥३४॥
विदितार्थस्स तेनैव इतुज्ञातो महात्मना ।
यागभूमिग्रुपागम्य चक्रे सर्वाः क्रियाः क्रमात् ।३५॥
कर्मण विधिवद्यागं नीत्वा सोऽवभृथाप्छतः ।
कृतकृत्यस्ततो भृत्वा चिन्तयामास पार्थिवः ॥३६॥
पूजिताश्च द्विजास्सर्वे सदस्या मानिता मया ।
तथैवार्थिजनोऽप्यर्थेयोजितोऽभिमतैर्मया ॥३७॥

यथाईमस्य लोकस्य मया सर्व विचेष्टितम् ।

अनिष्पन्निक्रयं चेतस्तथापि मम किं यथा।।३८॥

श्रीपराशरजी बोले-यह सुनकर खाण्डिक्यने अपने सम्पूर्ण पुरोहित और मन्त्रियोंसे एकान्तमें सलाह की ॥ २६॥ मन्त्रियोंने कहा कि 'इस समय रात्र आपके वरामें है, इसे मार डालना चाहिये। इसको मार देनेपर यह सम्पूर्ण पृथिवी आपके अधीन हो जायगीं' ॥२७॥ खाण्डिक्यने कहा-"यह निस्सन्देह ठीक है, इसके मारे जानेपर अवस्य सम्पूर्ण पृथिवी मेरे अधीन हो जायगी; किन्तु इसे पारलौकिक जय प्राप्त होगी और मुझे सम्पूर्ण पृथिवी। परन्त यदि इसे नहीं मारूँगा तो मुझे पारलौकिक जय प्राप्त होगी और इसे सारी प्रथिवी ॥ २८-२९॥ मैं पारलौकिक जयसे पृथिवीको अधिक नहीं मानता; क्योंकि परछोक-जय अनन्तकाछके छिये होती है और पृथिवी तो थोड़े ही दिन रहती है। इसलिये मैं इसे मारूँगा नहीं, यह जो कुछ पूछेगा, वतला दुंगा" ॥ ३०-३१॥

श्रीपराशरजी बोले-तव खाण्डिक्य जनकने अपने शत्रु केशिध्वजके पास आकर कहा-'तुम्हें जो कुछ पूछना हो पूछ छो, मैं उसका उत्तर दूँगा'॥३२॥

हे द्विज ! तब केशिष्वजने जिस प्रकार धर्मधेनु
मारी गयी थी वह सब वृत्तान्त खाण्डिक्यसे कहा
और उसके छिये प्रायिश्वत्त पूछा ॥३३॥ खाण्डिक्यने
भी वह सम्पूर्ण प्रायिश्वत्त, जिसका कि उसके छिये
विधान था, केशिष्वजको विधिपूर्वक बतला दिया ॥३४॥
तदनन्तर पूछे हुए अर्थको जान छेनेपर महात्मा
खाण्डिक्यकी आज्ञा लेकर वे यज्ञमूमिमें आये और
कमशः सम्पूर्ण कर्म समाप्त किया ॥३५॥

फिर कालक्रमसे यज्ञ समाप्त होनेपर अवभृथ (यज्ञान्त) स्नानके अनन्तर कृतकृत्य होकर राजा केशिष्वजने सोचा ॥३६॥ 'मैंने सम्पूर्ण ऋत्विज् ब्राह्मणोंका पूजन किया, समस्त सदस्योंका मान किया, याचकोंको उनकी इच्छित वस्तुएँ दीं, लोकाचार-के अनुसार जो कुछ कर्त्तन्य था वह समी मैंने किया, तथापि न जाने, क्यों मेरे चित्तमें किसी कियाका अमाव खटक रहा है ?"॥ ३७-३८॥

इत्थं सिञ्चन्तयन्नेन ससार स महीपतिः।
साण्डिक्याय न दत्तेति मया नै गुरुदक्षिणा ॥३९॥
स जगाम तदा भूयो रथमारुद्ध पार्थिनः।
मैत्रेय दुर्गगहनं खाण्डिक्यो यत्र संस्थितः ॥४०॥
खाण्डिक्योऽपि पुनर्दष्ट्वा तमायान्तं धृतायुधम्।
तस्थौ हन्तुं कृतमितस्तमाह स पुनर्नृपः॥४१॥
भो नाहं तेऽपराधाय प्राप्तः खाण्डिक्य मा क्रुधाः।
गुरोर्निष्क्रयदानाय मामनेहि त्वमागतम्॥४२॥
निष्पादितो मया यागः सम्यक्त्वदुपदेशतः।
सोऽहं ते दातुमिच्छामि वृणीष्व गुरुदक्षिणाम्।४३।

श्रीपराशर उवाच

भ्यस्स मन्त्रिमिस्साई मन्त्रयामास पार्थिवः ।
गुरुनिष्क्रयकामोऽयं कि मया प्रार्थ्यतामिति ॥४४॥
तम्चुर्मन्त्रिणा राज्यमशेषं प्रार्थ्यतामयम् ।
श्रद्धासः प्रार्थ्यते राज्यमनायासितसैनिकः ॥४५॥
प्रहस्य तानाह नृपस्स खाण्डिक्यो महामतिः ।
खल्पकालं महीपाल्यं माद्दशैः प्रार्थ्यते कथम् ॥४६॥
एवमेतद्भवन्तोऽत्र ह्यर्थसाधनमन्त्रिणः ।
परमार्थः कथं कोऽत्र यूयं नात्र विचक्षणाः ॥४७॥

श्रीपराशर जवाच

इत्युक्त्वा सम्रुपेत्यैनं स तु केशिध्वजं नृपः ।

उवाच किमवश्यं त्वं ददासि गुरुदक्षिणाम् ॥४८॥

वाढमित्येव तेनोक्तः खाण्डिक्यस्तमथाश्रवीत् ।

भवानध्यात्मविज्ञानपरमार्थविचक्षणः ॥४९॥

यदि चेदीयते मद्यं भवता गुरुनिष्क्रयः ।

तत्क्केशप्रश्रमायालं यत्कर्म तदुदीरय ॥५०॥

इस प्रकार सोचते-सोचते राजाको स्मरण हुआ कि मैंने अमीतक खाण्डिक्यको गुरु दक्षिणा नहीं दी ॥३९॥ हे मैत्रेय ! तब वे रथपर चढ़कर फिर उसी दुर्गम वनमें गये, जहाँ खाण्डिक्य रहते थे ॥४०॥ खाण्डिक्य भी उन्हें फिर राख धारण किये आते देख मारनेके ल्यि उचत हुए। तब राजा केशिय्वजने कहा—॥४१॥ 'खाण्डिक्य ! तुम क्रोध न करो, मैं तुम्हारा कोई अनिष्ट करनेके ल्यि नहीं आया, विल्क तुम्हें गुरु-दक्षिणा देनेके लिये आया हूँ—ऐसा समझो ॥४२॥ मैंने तुम्हारे उपदेशानुसार अपना यज्ञ भलीप्रकार समाप्त कर दिया है, अब मैं तुम्हें गुरु-दक्षिणा देना चाहता हूँ, तुम्हें जो इच्छा हो माँग लो''॥४३॥

श्रीपराशरजी बोळे—तव खाण्डिक्यने फिर अपने मिन्त्रयोंसे परामर्श किया कि 'यह मुझे गुरु-दक्षिणा देना चाहता है, मैं इससे क्या माँगूँ ?' ॥४४॥ मिन्त्रयोंने कहा— "आप इससे सम्पूर्ण राज्य माँग छीजिये, बुद्धिमान् छोग शत्रुओंसे अपने सैनिकोंको कष्ट दिये विना राज्य ही माँगा करते हैं" ॥४५॥ तव महामित राजा खाण्डिक्यने उनसे हँसते हुए कहा— "मेरे-जैसे छोग कुछ ही दिन रहनेवाछा राज्यपद कैसे माँग सकते हैं ?॥ ४६॥ यह ठीक है आपछोग खार्थ-साधनके छिये ही परामर्श देनेवाछे हैं; किन्तु 'परमार्थ क्या और कैसा है ?' इस विषयमें आपको विशेष ज्ञान नहीं है"॥४७॥

श्रीपराशरजी बोले—यह कहकर राजा खाण्डिक्य केशिध्वजके पास आये और उनसे कहा, 'क्या तुम मुझे अवस्य गुरु-दक्षिणा दोगे ?' ॥४८॥ जब केशिध्वजने कहा कि 'मैं अवस्य दूँगा' तो खाण्डिक्य बोले—"आप अध्यात्मज्ञानरूप परमार्थ-विद्यामें बड़े कुशल हैं ॥४९॥ सो यदि आप मुझे गुरु-दक्षिणा देना ही चाहते हैं तो जो कर्म समस्त क्लेशोंकी शान्ति करनेमें समर्थ हो वह वतलाइये" ॥५०॥

-1>+30\$+<1-

ं इति श्रीविष्णुपुराणे षष्टेंऽशे षष्टोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

ब्रह्मयोगका निर्णय।

केशिध्वज उवाच

न प्रार्थितं त्वया कसादसद्राज्यमकण्टकम् । राज्यलाभाद्विना नान्यत्क्षत्रियाणामतिप्रियम् ।१।

साण्डिक्य उवाच

केशिध्वज निवोध त्वं सया न प्रार्थितं यतः। राज्यमेतदशेषं ते यत्र गृधनत्यपण्डिताः ॥ २ ॥ क्षत्रियाणामयं धर्मी यत्प्रजापरिपालनम् । वधश्च धर्मयुद्धेन स्वराज्यपरिपन्थिनाम् ॥ ३॥ तत्राशक्तस्य मे दोषो नैवास्त्यपहृते त्वया । बन्धायैव भवत्येषा ह्यविद्याप्यऋमोज्झिता।। ४।। जन्मोपभोगलिप्सार्थमियं राज्यस्पृहा मम । अन्येषां दोषजा सैव धर्मं वै नानुरुध्यते ॥ ५ ॥ न याच्ञा क्षत्रबन्धूनां धर्मायैतत्सतां मतम्। अतो न याचितं राज्यमविद्यान्तर्गतं तव ॥ ६ ॥ राज्ये गृधन्त्यविद्वांसो ममत्वाहृतचेतसः। अहंमानमहापानमद्मत्ता न माद्याः॥७॥

श्रीपराशर उवाच

प्रहृष्टस्साध्विति प्राह् ततः केशिध्वजो नृपः । स्वाण्डिक्यजनकं प्रीत्या श्र्यतां वचनं मम ॥ ८ ॥ अहं द्यविद्यया मृत्युं तर्तुकामः करोमि वै । राज्यं यागांश्व विविधान्भोगैः पुण्यक्षयं तथा ॥ ९ ॥

केशिध्वज बोले-क्षित्रयोंको तो राज्य-प्राप्तिसे अधिक प्रिय और कुछ भी नहीं होता, फिर तुमने मेरा निष्कण्टक राज्य क्यों नहीं माँगा ? ॥१॥

खाण्डिक्य बोले—हे केशिष्वज ! मैंने कारणसे तुम्हारा राज्य नहीं माँगा वह सुनो । इन राज्यादिकी आकांक्षा तो मूर्खोंको हुआ करती है ॥२॥ क्षत्रियोंका धर्म तो यही है कि प्रजाका पालन करें और अपने राज्यके विरोधियोंका धर्म-युद्धसे वध करें ॥ ३ ॥ शक्तिहीन होनेके कारण यदि तुमने मेरा राज्य हरण कर लिया है, तो असमर्थतावश प्रजा-पालन न करनेपर भी । मुझे कोई दोष न होगा । िकिन्त राज्याधिकार होनेपर यथावत् प्रजापालन न करनेसे दोषका भागी होना पड़ता है] क्योंकि यद्यपि यह (स्वकर्म) अविद्या ही है तथापि नियमविरुद्ध त्याग करनेपर यह बन्धनका कारण होती है ॥॥ यह राज्यकी चाह मुझे तो जन्मान्तरके किमौंद्वारा प्राप्त] सुखभोगके लिये होती है; और वहीं मन्त्री आदि अन्य जनोंको राग एवं छोभ आदि दोषोंसे उत्पन्न होती है, केवल धर्मानुरोधसे नहीं ॥ ५॥ 'उत्तम क्षत्रियोंका [राज्यादिकी] याचना करना धर्म नहीं है' यह महात्माओंका मत है । इसीलिये मैंने अविद्या (पालनादि कर्म) के अन्तर्गत तुम्हारा राज्य नहीं माँगा ॥ ६ ॥ जो छोग अहंकाररूपी मदिराका पान करके उन्मत्त हो रहे हैं तथा जिनका चित्त ममताप्रस्त हो रहा है वे मृद्जन ही राज्यकी अभिलापा करते हैं; मेरे-जैसे लोग राज्यकी इच्ला नहीं करते ॥ ७॥

श्रीपराशरजी बोले—तब राजा केशिष्वजने प्रसन्न होकर खाण्डिक्य जनकको साधुवाद दियां और प्रोतिपूर्वक कहा, मेरा वचन सुनो—॥ ८॥ मैं अविद्याद्यारा मृत्युको पार करनेकी इच्छासे ही राज्य तथा विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करता हूँ और नाना मोगोंद्यारा अपने पुण्योंका क्षय कर रहा हूँ ॥ ९॥

तदिदं ते मनो दिष्टचा विवेकैश्वर्यतां गतम्। तच्छ्रयतामविद्यायास्स्वरूपं कुलनन्दन ॥१०॥ ्र अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या चास्वे स्वमिति या मृतिः। संसारतरुसम्भूतिबीजमेतद्द्धिधा स्थितम् ॥११॥ पश्चभूतात्मके देहे देही मोहतमोवृतः। अहं ममैतदित्युचैः कुरुते कुमतिर्मतिम् ॥१२॥ आकाशवाय्वप्रिजलपृथिवीम्यः पृथक् स्थिते। आत्मन्यात्ममयं भावं कः करोति कलेवरे ॥१३॥ कलेवरोपभोग्यं हि गृहक्षेत्रादिकं च कः। अदेहे बात्मिन प्राज्ञो ममेदिमिति मन्यते ॥१४॥ इत्थं च पुत्रपौत्रेषु तदेहोत्पादितेषु कः। करोति पण्डितस्खाम्यमनात्मनि कलेवरे ॥१५॥ सर्व देहोपभोगाय कुरुते कर्म मानवः। देहश्चान्यो यदा पुंसस्तदा वन्धाय तत्परम् ॥१६॥ मृण्मयं हि यथा गेहं लिप्यते वै मृद्म्भसा । पार्थिवोऽयं तथा देहो मृदम्ब्वालेपनस्थितः ॥१७॥ पश्चभूतात्मकैभींगैः पश्चभूतात्मकं वपुः। आप्यायते यदि ततः पुंसो भोगोऽत्र किं कृतः॥१८॥ अनेकजन्मसाहस्रीं संसारपद्वीं व्रजन्। मोहश्रमं प्रयातोऽसौ वासनारेणुकुण्ठितः ॥१९॥ प्रक्षाल्यते यदा सोऽस्य रेणुर्ज्ञानोष्णवारिणा । तदा संसारपान्थस्य याति मोहश्रमश्शमम् ॥२०॥ मोहश्रमे शमं याते खस्थान्तः करणः पुमान् । अनन्यातिशयाबाधं परं निर्वाणमृच्छति ॥२१॥ निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः। दुःखाज्ञानमया धर्माः प्रकृतेस्ते तु नात्मनः ॥२२॥ जलस् नामिसंसर्गः स्थालीसंगात्तथापि हि । CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection

हे कुळनन्दन ! बड़े सौमाग्यकी बात है कि तुम्हारा मन विवेकसम्पन्न हुआ है अतः तुम अविद्याका खरूप सुनो ॥१०॥ संसार-वृक्षकी बीजभूता यह अविद्या दो प्रकारकी है-अनात्मामें आत्मवुद्धि और जो अपना नहीं है उसे अपना मानना ॥११॥ यह कुमति जीव मोहरूपी अन्धकारसे आवृत होकर इस पञ्चभूतात्मक देहमें 'मैं' और 'मेरापन' का भाव करता है ॥१२॥ जब कि आत्मा आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदिसे सर्वथा पृथक् है तो कौन बुद्धिमान् व्यक्ति शरीरमें आत्मबुद्धि करेगा ? ॥ १३ ॥ और आत्माके देहसे परे होनेपर भी देहके उपमोग्य गृह-क्षेत्रादिको कौन प्राज्ञ पुरुष 'अपना' मान सकता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार इस शरीरके अनात्मा होनेसे इससे उत्पन्न हुए पुत्र-गौत्रादिमें भी कौन विद्वान् अपनापन करेगा ॥ १५ ॥ मनुष्य सारे कर्म देहके ही उपभोगके छिये करता है; किन्तु जब कि यह देह अपनेसे पृथक् है, तो वे कर्म केवल बन्धन (देहोत्पत्ति) के ही कारण होते हैं॥ १६॥ जिस प्रकार मिट्टीके घरको जल और मिट्टीसे लीपते-पोतते हैं उसी प्रकार यह पार्थिव शरीर भी मृत्तिका (मृण्मय अन्न) और जलकी सहायतासे ही स्थिर रहता है ॥ १७॥ यदि यह पञ्चमूतात्मक शरीर पाञ्चमौतिक पदार्थीसे पुष्ट होता है तो इसमें पुरुषने क्या मोग किया ॥१८॥ यह जीव अनेक सहस्र जन्मीतक सांसारिक भोगींमें पड़े रहनेसें उन्हींकी वासनारूपी धूलिसे आच्छादित हो जानेके कारण वेवल मोहरूपी श्रमको ही प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ जिस समय ज्ञानरूपी गर्म जलसे उसकी वह घूछि घो दी जाती है तब इस संसार-पथके पथिकका मोहरूपी श्रम शान्त हो जाता है ॥ २०॥ मोह-श्रमके शान्त हो जानेपर पुरुष खस्थ-चित्त हो जाता है और निरतिशय एवं निर्बोध परम निर्वाण पद प्राप्त कर छेता है ॥ २१॥ यह ज्ञानमय निर्मल आत्मा निर्वाण-खरूप ही है, दुःख आदि जो अज्ञानमय धर्म हैं वे प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं ॥२२॥ हे राजन् ! जिस प्रकार स्थाली (बटलोई) के जलका अनिसे संयोग नहीं होता तथापि स्थालीके

शब्दोद्रेकादिकान्धर्मांस्तत्करोति यथा नृप ॥२३॥ तथात्मा प्रकृतेस्सङ्गादहम्मानादिद्पितः । भजतेप्राकृतान्धर्मानन्यस्तेम्यो हि सोऽच्ययः॥२४॥ तदेतत्कथितं वीजमविद्याया मया तव । क्रेशानां च क्षयकरं योगादन्यन्न विद्यते ॥२५॥

साण्डिक्य उवाच तं तु ब्रूहि महाभाग योगं योगविदुत्तम । विज्ञातयोगशास्त्रार्थस्त्वमस्यां निमिसन्ततौ॥२६॥

योगखरूपं खाण्डिक्य श्र्यतां गदतो मम ।
यत्र स्थितो न च्यवते प्राप्य ब्रह्मलयं मुनिः ॥२०॥
मन एव मनुष्याणां कारणं वन्धमोक्षयोः ।
वन्धाय विषयासङ्गि मुक्त्ये निर्विषयं मनः ॥२८॥
विषयेभ्यस्समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुनिः ।
चिन्तयेनमुक्तये तेन ब्रह्मभूतं परेश्वरम् ॥२९॥
आत्मभावं नयत्येनं तद्वह्म ध्यायिनं मुनिम् ।
विकार्यमात्मनक्शक्त्या लोहमाकर्षको यथा ॥३०॥
आत्मप्रयह्मसापेक्षा विशिष्टा या मनोगितः ।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते ॥३१॥
एवमत्यन्तवैशिष्ट्ययुक्तधर्मीपलक्षणः ।
यस योगस्स वै योगी मुमुक्षुरिभधीयते ॥३२॥
योगयुक् प्रथमं योगी मुन्नानो ह्यभिधीयते ॥

विनिष्पन्नसमाधिस्तु परं ब्रह्मोपलब्धिमान् ॥३३॥

जन्मान्तरेरम्यसतो मुक्तिः पूर्वस्य जायते ॥३४॥

यद्यन्तरायदोषेण दृष्यते चास्य मानसम्।

संसर्गसे ही उसमें खौछनेके शब्द आदि धर्म प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रकृतिके संसर्गसे ही आत्मा अहंकारादिसे दृषित होकर प्राकृत धर्मोंको स्वीकार करता है; वास्तवमें तो वह अव्ययात्मा उनसे सर्वथा पृथक् है ॥ २३-२४ ॥ इस प्रकार मैंने तुम्हें यह अविद्याका वीज वतलाया; इस अविद्यासे प्राप्त हुए क्छेशोंको नष्ट करनेवाला योगसे अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ॥ २५ ॥

खाण्डिक्य बोले-हे योगवेत्ताओं में श्रेष्ट महामाग केशिष्वज ! तुम निमिवंशमें योगशास्त्रके मर्मज्ञ हो, अतः उस योगका वर्णन करो ॥ २६ ॥

केशिध्वज बोले-हे खाण्डिक्य ! जिसमें स्थित होकर ब्रह्ममें लीन हुए मुनिजन फिर स्वरूपसे च्युत नहीं होते, मैं उस योगका वर्णन करता हूँ; श्रवण करो ॥ २७॥

मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण केवल मन हो है; विषयका संग करनेसे वह वन्धनकारी और विषयशून्य होनेसे मोक्षकारक होता है ॥ २८॥ अतः विवेकज्ञानसम्पन्न मुनि अपने चित्तको विषयों-से हटाकर मोक्षप्राप्तिके लिये ब्रह्मस्वरूप परमात्माका चिन्तन करे ॥ २९ ॥ जिस प्रकार अयस्कान्तमणि अपनी शक्तिसे छोहेको खींचकर अपनेमें संयुक्त कर छेता है उसी प्रकार ब्रह्मचिन्तन करनेवाछे मुनिको परमात्मा स्वभावसे ही स्वरूपमें छीन कर देता है || ३० || आत्मज्ञानके प्रयत्नभूत यम, नियम आदि-की अपेक्षा रखनेवाली जो मनकी विशिष्ट गिन है. उसका ब्रह्मके साथ संयोग होना ही 'योग' कहलाता है ॥ ३१ ॥ जिसका योग इस प्रकारके विशिष्ट धर्म-से युक्त होता है वह मुमुक्ष योगी कहा जाता है ॥३२॥ जब मुमुक्ष पहले-पहले योगाभ्यास आरम्भ करता है तो उसे 'योगयुक्त योगी' कहते हैं और जब उसे परब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है तो वह 'विनिष्पन्रसमाधि' कहळाता है ॥३३॥ यदि किसी विघ्रवश उस योगयक्त योगीका चित्त दूषित हो जाता है तो जन्मान्तर्में भी उसी अम्यासको करते रहनेसे वह मुक्त हो जाता है ॥३ ॥

विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्ति तत्रैव जन्मनि । प्रामोति योगी योगाग्निद्ग्धकर्मचयोऽचिरात्।३५। ब्रह्मचर्यमहिंसां च सत्यास्तेयापरिग्रहान्। सेवेत योगी निष्कामो योग्यतां खमनो नयन्।।३६।। खाध्यायशौचसन्तोपतपांसि नियतात्मवान् । कुर्वीत ब्रह्मणि तथा परस्मिन्प्रवणं मनः ॥३७॥ एते यमास्सनियमाः पश्च पश्च च कीर्तिताः । विशिष्टफलदाः काम्या निष्कामाणां विम्रक्तिदाः ३८ एकं भद्रासनादीनां समास्थाय गुणैर्युतः। यमाख्यैर्नियमाख्यैश्र युद्धीत नियतो यतिः।।३९।। प्राणाख्यमनिलं वश्यमभ्यासात्कुरुते तु यत्। प्राणायामस्स विज्ञेयस्सवीजोऽबीज एव च ॥४०॥ परस्परेणाभिभवं प्राणापानौ यथानिलौ। क्रुरुतस्सद्धिधानेन तृतीयस्संयमात्त्रयोः ॥४१॥ तस्य चालम्बनवतः स्थूलरूपं द्विजोत्तम । आलम्बनमनन्तस्य योगिनोऽभ्यसतः स्मृतम्।४२। शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित्। क्रयाचित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः ॥४३॥ वक्यता परमा तेन जायतेऽतिचलात्मनाम्। इन्द्रियाणामवक्यैस्तैर्न योगी योगसाधकः ॥४४॥ प्राणायामेन पवने प्रत्याहारेण चेन्द्रिये। वशीकृते ततः कुर्यात्स्थतं चेतक्शुभाश्रये ॥४५॥ खाण्डिक्य उवाच

कथ्यतां मे महाभाग चेतसो यश्यभाश्रयः।

विनिष्पन्नसमाधि योगी तो योगाग्निसे कर्मसमूहके भस्म हो जानेके कारण उसी जन्ममें थोड़े ही समयमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥३५॥ योगीको चाहिये कि अपने चित्त-को ब्रह्म-चिन्तनके योग्य बनाता हुआ ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रहका निष्कामभावसे सेवन करे ॥ ३६ ॥ तथा संयत चित्तसे स्वाध्याय, शौच, सन्तोष और तपका आचरण करे तथा मनको निरन्तर परब्रह्ममें लगाता रहे ॥ ३०॥ ये पाँच-पाँच यम और नियम बतलाये गये हैं। इनका सकाम आचरण करनेसे पृथक्-पृथक् फल मिलते हैं और निष्काम-भावसे सेवन करनेसे मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ३८॥

यतिको चाहिये कि भद्रासनादि आसनोंमेंसे किसी एकका अवलम्बनकर यम-नियमादि गुणोंसे युक्त हो योगाभ्यास करे ॥ ३९॥ अभ्यासके द्वारा जो प्राण-वायुको वशमें किया जाता है उसे 'प्राणायाम' समझना चाहिये। वह सबीज (ध्यान तथा मन्त्रपाठ आदि आलम्बनयुक्त) और निर्वीज (निरालम्ब) भेदसे दो प्रकारका है ॥४०॥ सदुरुके उपदेशसे जत्र योगी प्राण और अपान वायुद्वारा एक दूसरेका निरोध करता है तो [क्रमशः रेचक और पूरक नामक] दो प्राणायाम होते हैं और इन दोनोंका एक ही समय संयम करने-से [कुम्भक नामक] तीसरा प्राणायाम होता है ॥४१॥ हे द्विजोत्तम ! जब योगी सबीज प्राणायामका अभ्यास आरम्भ करता है तो उसका आलम्बन भगवान् अनन्तका हिरण्यगर्भ आदि स्थूलरूप होता है ॥४२॥ तदनन्तर वह प्रत्याहारका अभ्यास करते हुए शब्दादि विषयोंमें अनुरक्त हुई अपनी इन्द्रियोंको रोककर अपने चित्तकी अनुगामिनी बनाता है ॥ ४३॥ ऐसा करनेसे अत्यन्त चन्नल इन्द्रियाँ उसके वशीभूत हो जाती हैं। इन्द्रियोंको वशमें किये बिना कोई योगी योग-साधन नहीं कर सकता ॥ ४४॥ इस प्रकार प्राणायामसे वायु और प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको वशीभूत करके चित्तको उसके शुभ आश्रयमें स्थित करे ॥४५॥

खाण्डिक्य बोले-हे महाभाग ! यह वतलाइये कि जिसका आश्रय करनेसे चित्तके सम्पूर्ण दोष नष्ट हो यदाधारमशेषं तद्धन्ति व विभागति क्रुवम् । । ४६ ।। जाते । हैं वह विश्वका ख्रमश्चव वया है ? ।। ४६ ।।

केशिध्वज उवाच

आश्रयश्रेतसो ब्रह्म द्विधा तच खभावतः। श्रुप सूर्त्तससूर्तं च परं चापरमेव च ॥४७॥ त्रिविधा भावना भूप विश्वमेतिनवोधताम्। ब्रह्माख्या कर्मसंज्ञा च तथा चैवोभयात्मिका।।४८।। कर्मभावात्मिका होका ब्रह्मभावात्मिका परा। उभयात्मिका तथैवान्या त्रिविधा भावभावना।४९। सनन्दनादयो ये त ब्रह्मभावनया युताः। कर्मभावनया चान्ये देवाद्याः स्थावराश्चराः ॥५०॥ हिरण्यगर्भादिषु च ब्रह्मकर्मात्मका द्विधा। बोधाधिकारयुक्तेषु विद्यते भावभावना ॥५१॥ समस्तेषु विशेषज्ञानकर्मसु । अक्षीणेषु विश्वमेतत्परं चान्यक्रेद्भिन्नद्दशां नृणाम् ॥५२॥ यत्सत्तामात्रमगोचरम् । **प्रत्यस्तमित भेदं** वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं त्रक्षसंज्ञितम्।।५३।। तच विष्णोः परं रूपमरूपाख्यमनुत्तमम्। विश्वसर्पवैरूप्यलक्षणं परमात्मनः ॥५४॥

न तद्योगयुजा शक्यं नृप चिन्तयितुं यतः ।
ततः स्थूलं हरे रूपं चिन्तयेद्विश्वगोचरम् ॥५५॥
हिरण्यगर्मी भगवान्वासुदेवः प्रजापितः ।
मरुतो वसवो रुद्रा मास्करास्तारका ग्रहाः ॥५६॥
गन्धर्वयक्षदैत्याद्यास्सकला देवयोनयः ।
मनुष्याः पश्वक्शैलास्ससुद्रास्सिरतो द्वमाः ॥५७॥
भूप भूतान्यशेषाणि भूतानां ये च हेतवः ।
प्रधानादिविशेषान्तं चेतनाचेतनात्मकम् ॥५८॥
एकपादं द्विपादं च बहुपादमपादकम् ।
मूर्तमेतद्वरे रूपं भावनात्रितयात्मकम् ॥५९॥
एतत्सर्वमिदं विश्वं जगदेतचराचरम् ।
परम्रक्षस्वरूपस्य विष्णोक्शक्तिसमन्वितम् ॥६०॥

किशिध्यज बोले—हे राजन् ! चित्तका आश्रय श्रह्म है जो कि मूर्त और अमूर्त अथवा अपर और पर-रूपसे खमावसे ही दो प्रकारका है ॥४०॥ हे भूप ! इस जगत्में ब्रह्म, कर्म और उभयात्मक नामसे तीन प्रकारकी मावनाएँ हैं ॥४८॥ इनमें पहली कर्म-मावना, दूसरी ब्रह्ममावना और तीसरी उभयात्मका-मावना कहलाती है । इस प्रकार ये त्रिविध मावनाएँ हैं ॥४९॥ सनन्दनादि मुनिजन ब्रह्मभावनासे युक्त हैं और देवताओंसे लेकर स्थावर-जंगमपर्यन्त समस्त प्राणी कर्म-मावनायुक्त हैं ॥५०॥ तथा [खरूप-विषयक] बोध और [खर्गादिविधयक] अधिकारसे युक्त हिरण्यगर्भादिमें ब्रह्मकर्ममयी उभयात्मिका-मावना है ॥५१॥

हे राजन् ! जबतक विशेष ज्ञानके हेतु कर्म क्षीण नहीं होते तमीतक अहंकारादि भेदके कारण मिन्न दृष्टि रखनेवाले मनुष्योंको ब्रह्म और जगत्की मिन्नता प्रतीत होती है ॥५२॥ जिसमें सम्पूर्ण भेद शान्त हो जाते हैं, जो सत्तामात्र और वाणीका अविषय है तथा खयं ही अनुभव करनेयोग्य है, वही ब्रह्मज्ञान कहलाता है ॥५३॥ वही परमात्मा विष्णुका अरूप नामक परम रूप है, जो उनके विश्वरूपसे विलक्षण है ॥५॥

हे राजन् ! योगाभ्यासी जन पहले-पहल उस रूप-का चिन्तन नहीं कर सकते, इसिलेये उन्हें श्रीहरिके विश्वमय स्थूल रूपका ही चिन्तन करना चाहिये ॥५५॥ हिरण्यगर्म, भगवान् वासुदेव, प्रजापित, मरुत्, वसु, रुद्र, सूर्य, तारे, प्रहगण, गन्धर्व, यक्ष और दैत्य आदि समस्त देवयोनियाँ तथा मनुष्य, पश्च, पर्वत, समुद्र, नदी, वृक्ष, सम्पूर्ण भूत एवं प्रधानसे लेकर विशेष (पञ्चतन्मात्रा) पर्यन्त उनके कारण तथा चेतन, अचेतन, एक, दो अथवा अनेक चरणोंवाले प्राणी और विना चरणोंवाले जीव—ये सब भगवान् हरिके भावनात्रयात्मक मूर्तरूप हैं ॥५६—५९॥ यह सम्पूर्ण चराचर जगत्, परब्रह्मखरूप भगवान् विष्णु-का, उनकी शक्तिसे सम्पन्न 'विश्व' नामक रूप है ॥६०॥ विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा ।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥६१॥
यया क्षेत्रज्ञशक्तिस्सा वृष्टिता नृप सर्वगा ।
संसारतापानखिलानवामोत्यितसन्ततान् ॥६२॥
तया तिरोहितत्वाच शक्तिः क्षेत्रज्ञसंज्ञिता ।
सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन लक्ष्यते ॥६३॥
अप्राणवत्सु खल्पा सा स्थावरेषु ततोऽधिका ।
सरीसृपेषु तेभ्योऽपि द्यतिशक्त्या पत्तित्रषु ॥६४॥
पतित्रभ्यो मृगास्तेभ्यस्तच्छक्त्या पश्चोऽधिकाः ।
पश्चभ्यो मृजाश्चातिशक्त्या पुंसः प्रभाविताः ॥
तेभ्योऽपि नागगन्धर्वयक्षाद्या देवता नृप ॥६६॥
शक्रस्समस्तदेवभ्यस्ततश्चाति प्रजापतिः ।
हिरण्यगर्भोऽपि ततः पुंसः शक्त्युपलक्षितः ॥६७॥
एतान्यशेषरूपाणि तस्य रूपाणि पार्थिव ।
यतस्तच्छक्तियोगेन युक्तानि नमसा यथा ॥६८॥

द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते।
अमूर्तं त्रक्षणो रूपं यत्सदित्युच्यते बुधैः ॥६९॥
समस्ताः शक्तयश्रेता नृप यत्र प्रतिष्ठिताः।
तद्विश्वरूपवैरूप्यं रूपमन्यद्धरेर्महत् ॥७०॥
समस्तशक्तरूपणि तत्करोति जनेश्वर।
देवतिर्यञ्चानुष्यादिचेष्टावन्ति स्वलीलया॥७१॥
जगताम्रपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा।
चेष्टा तस्याप्रमेयस्य व्यापिन्यव्याहतात्मिका॥७२॥
तद्व्यं विश्वरूपस्य तस्य योगयुजा नृप।
चिन्त्यमात्मविश्वद्धचर्थं सर्विकिल्विपनाशनम्॥७३॥
यथाप्रिरुद्धतिशक्तः कश्चं दहित सानिलः।
तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिनां सर्विकिल्विपम्॥७४॥

विष्णुराक्ति परा है, क्षेत्रज्ञ नामक राक्ति अपरा है और कर्म नामकी तीसरी शक्ति अविद्या कहळाती है ॥६१॥ हे राजन् ! इस अविद्या-शक्तिसे आवृत होकर वह सर्वगामिनी क्षेत्रज्ञ-शक्ति सत्र प्रकारके अति विस्तृत सांसारिक कष्ट मोगा करती है ॥६२॥ हे भूपाछ ! अविद्या-शक्तिसे तिरोहित रहनेके कारण ही क्षेत्रज्ञ-शक्ति सम्पूर्ण प्राणियोंमें तारतम्यसे दिखळायी देती है ॥६३॥ वह सबसे कम जड पदार्थीं में है, उनसे अधिक वृक्ष-पर्वतादि स्थावरोंमें, स्थावरोंसे अधिक सरीसृपादिमें और उनसे अधिक पक्षियोंमें है। १६४॥ पक्षियोंसे मृगोंमें और मृगोंसे पशुओंमें वह शक्ति अधिक है तथा पशुओंकी अपेक्षा मनुष्य भगवान्की उस (क्षेत्रज्ञ) शक्तिसे अधिक प्रभावित हैं ॥६५॥ मनुष्यों-से नाग, गन्धर्व और यक्ष आदि समस्त देवगणोंमें, देवताओंसे इन्द्रमें, इन्द्रसे प्रजापतिमें और प्रजा-पतिसे हिर्ण्यगर्भमें उस शक्तिका विशेष प्रकाश है ॥ ६६-६७॥ हे राजन् ! ये सम्पूर्ण रूप उस परमेक्वरके ही शरीर हैं, क्योंकि ये सब आकाशके समान उनकी शक्तिसे व्याप्त हैं ॥६८॥

हे महामते ! विष्णु नामक ब्रह्मका दूसरा अमूर्त (आकारहीन) रूप है, जिसका योगिजन ध्यान करते हैं और जिसे बुधजन 'सत्' कहकर पुकारते हैं ॥६९॥ हे नृप ! जिसमें कि ये सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं वहीं मगवान्का विस्वरूपसे विलक्षण द्वितीय रूप है ॥ ७० ॥ हे नरेश ! भगवान्का वही रूप अपनी लीलासे देव, तिर्यक् और मनुष्यादिकी चेष्टाओंसे युक्त सर्वशक्तिमय रूप धारण करता है ॥७१॥ इन रूपोंमें अप्रमेय भगवान्की जो न्यापक एवम् अन्याहत चेष्टा होती है वह संसारके उपकारके लिये ही होती है, कर्मजन्य नहीं होती ॥७२॥ हे राजन् ! योगाभ्यासी-को आत्म-ग्रुद्धिके लिये भगवान् विश्वरूपके उस सर्व-पापनाशक रूपका हो चिन्तन करना चाहिये॥७३॥ जिस प्रकार वायुसहित अग्नि ऊँची ज्वालाओंसे युक्त होकर शुष्क तृणसम्हको जला डालता है उसी प्रकार चित्तमें स्थित हुए मगवान् विष्णु योगियोंके समस्त पाप लिए हैं। ७४ ॥

तसात्समस्तशक्तीनामाधारे तत्र चेतसः। कुर्वीत संस्थिति सा तु विज्ञेया ग्रुद्धधारणा ॥७५॥ ञ्चभाश्रयः स चित्तस्य सर्वगस्याचलात्मनः । त्रिभावभावनातीतो मुक्तये योगिनो नृप ॥७६॥ अन्ये तु पुरुषव्यात्र चेतसो ये व्यपाश्रयाः । अञ्चद्धास्ते समस्तास्तु देवाद्याः कर्मयोनयः ॥७७॥ मूर्चं भगवतो रूपं सर्वापाश्रयनिःस्पृहम्। एषा वै धारणा प्रोक्ता यचित्तं तत्र धार्यते ॥७८॥ यच मूर्त हरे रूपं याद्दिनन्त्यं नराधिप । तच्छ्यतामनाधारा धारणा नोपपद्यते ॥७९॥ चारुपद्मपत्रोपमेक्षणम् । प्रसन्नवदनं सुकपोलं सुविस्तीर्णललाटफलकोज्ज्वलम् ॥८०॥ समकर्णान्तविन्यस्तचारुकुण्डलभूषणम् कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णश्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।।८१॥ विलित्रेभिक्षना मयनाभिना ह्यदरेण च। प्रलम्बाष्टभुजं विष्णुमथवापि चतुर्भुजम् ॥८२॥ समस्थितोरुजङ्गं च सुस्थिताङ् घ्रिवराम्बुजम् । चिन्तयेद्रसभूतं तं पीतनिर्मलवाससम्।।८३॥ किरीटहारकेयूरकटकादिविभूषितम् शार्जशङ्घादाखद्गचक्राक्षवलयान्वितम् वरदाभयहस्तं च मुद्रिकारत्रभूषितम्।।८५॥ चिन्तयेत्तनमयो योगी समाधायात्ममानसम्। तावद्यावद्दढीभृता तत्रैव नृप घारणा।।८६॥ व्रजतास्तष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।

इसिंख्ये सम्पूर्ण शक्तियोंके आधार भगवान् विष्णुमें चित्तको स्थिर करे, यही द्युद्ध धारणा है ॥ ७५॥

हेराजन्! तीनों भावनाओं से अतीत भगवान् विष्णु ही योगिजनों की मुक्तिके छिये उनके [स्वतः] चन्न्चछ तथा [किसी अनूठे विषयमें] स्थिर रहनेवाछे चित्तके शुभ आश्रय हैं ॥७६॥ हे पुरुषसिंह! इसके अतिरिक्त मनके आश्रयभूत जो अन्य देवता आदि कर्मयोनियाँ हैं, वे सव अशुद्ध हैं ॥७०॥ भगवान्का यह मूर्त रूप चित्तको अन्य आलम्बनोंसे निःस्पृह कर देता है। इस प्रकार चित्तका भगवान्में स्थिर करना ही धारणा कहळाती है ॥७८॥

हे नरेन्द्र ! धारणा विना किसी आधारके नहीं हो सकती; इसलिये भगवान्के जिस मूर्त रूपका जिस प्रकार ध्यान करना चाहिये, वह सुनो ॥७९॥ जो प्रसन्नवदन और कमल्दलके समान सुन्दर नेत्रोंवाले हैं, सुन्दर कपोल और विशाल मालसे अत्यन्त सुशोमित हैं तथा अपने सुन्दर कानोंमें मनोहर कुण्डल पहने हुए हैं, जिनकी ग्रीवा शंखके समान और विशाल वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो तरङ्गाकार त्रिवली तथा नीची नामिवाले उदरसे सुशोभित हैं, जिनके लम्बी-लम्बी आठ अथवा चार मुजाएँ हैं तथा जिनके जङ्का एवं ऊरु समानभावसे स्थित हैं और मनोहर चरणारविन्द सुघरतासे विराजमान हैं उन निर्मल पीताम्बर्धारी ब्रह्मखरूप भगवान् विष्णुका चिन्तन करे ॥८०-८३॥ हे राजन् ! किरीट, हार, केयूर और कटक आदि आभूषणोंसे विभूषित, शार्क्न-धनुष, शंख, गदा, खड़ा, चक्र तथा अक्षमालासे युक्त वरद और अभययुक्त हायों वाले * [तया अँगुलियों में धारण की हुई] रत्नमयी मुद्रिकासे शोभायमान भगवान्-के दिव्य रूपका योगीको अपना चित्त एकाग्र करके तन्मयभावसे तबतक चिन्तन करना चाहिये जबतक यह भारणा दृढ़ न हो जाय ॥८४-८६॥ जब चळते-फिरते, उठते-बैठते अथवा स्वेच्छानुकूछ

अ चतुर्भुज-मूर्तिके ध्यानमें चारों हार्योंमें क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्मकी भावना करे तथा अष्ट्रमुजरूपका ध्यान करते समय छः हार्योमें तो शार्क आदि छः आयुर्धोकी भावना करे तथा शेष दोमें पद्म और वाण अथवा वरद और अभय-मुद्राका चिन्तन करें।

नाप्रयाति यदा चित्तात्सिद्धां मन्येत तां तदा।।८७।।

ततः शङ्खगदाचक्रशार्ङ्झादिरहितं बुधः।
चिन्तयेद्भगवद्भुपं प्रशान्तं साक्षस्त्रकम्।।८८।।
सा यदा घारणा तद्भदयस्थानवती ततः।
किरीटकेयूरमुक्भूषणे रहितं सारेत्।।८९।।
तदेकावयवं देवं चेतसा हि पुनर्बुधः।
कुर्याचतोऽवयविनि प्रणिधानपरो भवेत्।।९०।।

तद्र्पप्रत्यया चैका सन्ततिश्रान्यनिः स्पृहा ।

तद्र्यानं प्रथमैरङ्गेः षड्भिनिंष्पाद्यते नृष ॥९१॥

तस्यैन कल्पनाहीनं स्वरूपप्रहणं हि यत् ।

मनसा ध्याननिष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते॥९२॥

विज्ञानं प्रापकं प्राप्ये परे ब्रह्मणि पार्थिव ।
प्रापणीयस्तथैवात्मा प्रश्लीणाशेषभावनः ॥९३॥
श्लेत्रज्ञः करणी ज्ञानं करणं तस्य तेन तत् ।
निष्पाद्य मुक्तिकार्यं वै कृतकृत्यो निवर्तते ॥९४॥
तद्भावभावमापन्नस्ततोऽसौ परमात्मना ।
भवत्यभेदी भेदश्च तस्याज्ञानकृतो भवेत् ॥९५॥

विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते। आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं कः करिष्यति।।९६॥

इत्युक्तस्ते मया योगः खाण्डिक्य परिपृच्छतः । संक्षेपविस्तराभ्यां तु किमन्यत्क्रियतां तव ॥९७॥

साण्डिक्य उवाच

कथिते योगसद्भावे सर्वमेव कुर्त मम् । CC-0. Prof. Salya Vrat Shastri Colle कोई और कर्म करते हुए भी ध्येय मूर्ति अपने चित्तसे दूर न हो तो इसे सिद्ध हुई माननी चाहिये॥८॥

इसके दृढ़ होनेपर बुद्धिमान् व्यक्ति शंख, चक्र, गदा और शार्क्ष आदिसे रहित भगवान्के स्फिटिकाक्ष-माळा और यज्ञोपवीतधारी शान्त खरूपका चिन्तन करे॥८८॥ जब यह धारणा भी पूर्ववत् स्थिर हो जाय तो भगवान्के किरीट, केयूरादि आभूषणोंसे रहित रूपका स्मरण करे॥८९॥ तदनन्तर विज्ञ पुरुष अपने चित्तमें एक (प्रधान) अवयवविशिष्ट भगवान्का हृदयसे चिन्तन करे और फिर सम्पूर्ण अवयवोंको छोड़कर केवळ अवयवींका ध्यान करे॥९०॥

हे राजन् ! जिसमें परमेश्वरके रूपकी ही प्रतीति होती है, ऐसी जो विषयान्तरकी स्पृहासे रहित एक अनवरत धारा है उसे ही ध्यान कहते हैं; यह अपने-से पूर्व यम-नियमादि छः अङ्गोंसे निष्पन्न होता है ॥९१॥ उस ध्येय पदार्थका ही जो मनके द्वारा ध्यान-से सिद्ध होनेयोग्य कल्पनाहीन (ध्याता, ध्येय और ध्यानके भेदसे रहित) खरूप प्रहण किया जाता है उसे ही समाधि कहते हैं ॥९२॥ हे राजन् ! [समाधि-से होनेवाळा भगवत्साक्षात्काररूप] विज्ञान ही प्राप्तब्य परब्रह्मतक पहुँचानेवाला है तथा सम्पूर्ण भावनाओंसे रहित एकमात्र आत्मा ही प्रापणीय (वहाँतक पहुँचनेवाळा) है ॥ ९३॥ मुक्ति-लाममें क्षेत्रज्ञ कर्ता है और ज्ञान करण है; [ज्ञानरूपी करण-के द्वारा क्षेत्रज्ञके] मुक्तिरूपी कार्यको सिद्ध करके वह विज्ञान कृतकृत्य होकर निवृत्त हो जाता है ॥९४॥ उस समय यह भगवद्भावसे भरकर परमात्मासे अमिन हो जाता है। इसका भेद-ज्ञान तो अज्ञान-जन्य ही है ॥९५॥ भेद उत्पन्न करनेवाले अज्ञानके सर्वथा नष्ट हो जानेपर ब्रह्म और आत्मामें असत् (अविद्यमान) भेद कौन कर सकता है ? ॥९६॥ हे खाण्डिक्य ! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैंने संक्षेप और विस्तारसे योगका वर्णन किया; अब मैं तुम्हारा और क्या कार्य करूँ ? ॥९७॥

काण्डक्य बोळे-आपने इस महायोगका वर्णन करके मेरामासमी सार्थ कार्य कार्य दिसा, क्योंकि आपके तवीपदेशेनाशेषी नष्टश्चित्तमली यतः ॥९८॥

ममेति यन्मया चोक्तमसदेतन्न चान्यथा।

नरेन्द्र गदितुं शक्यमपि विज्ञेयवेदिभिः ॥९९॥

अहं ममेत्यविद्ययं व्यवहारस्तथानयोः।

प्रमार्थस्त्वसंलापो गोचरे वचसां न यः ॥१००॥

तद्गच्छ श्रेयसे सर्व ममैतद्भवता कृतम्।

यद्विश्चक्तिप्रदो योगः प्रोक्तः केशिध्वजाव्ययः १०१

श्रीपराशर उवाच

यथाई पूजया तेन लाण्डिक्येन स पूजितः।
आजगाम पुरं ब्रह्मंस्ततः केशिष्वजो नृपः ॥१०२॥
खाण्डिक्योऽपि सुतं कृत्वा राजानं योगसिद्धये।
वनं जगाम गोविन्दे विनिवेशितमानसः ॥१०३॥
तत्रैकान्तमितर्भूत्वा यमादिगुणसंयुतः।
विष्णवाख्ये निर्मले ब्रह्मण्यवाप नृपतिर्लयम्॥१०४॥
केशिष्वजो विम्रत्त्रयर्थं स्वकर्मक्षपणोन्मुखः।
खुभुजे विषयान्कर्म चक्रे चानभिसंहितम् ॥१०५॥
सकल्याणोपभोगैश्र श्लीणपापोऽमलस्तथा।
अवाप सिद्धिमत्यन्तां तापक्षयफलां द्विज ॥१०६॥

उपदेशसे मेरे चित्तका सम्पूर्ण मल नष्ट हो गया है ॥९८॥ हे राजन् ! मैंने जो 'मेरा' कहा यह मी असत्य ही है, अन्यथा ज्ञेय वस्तुको जाननेवाले तो यह भी नहीं कह सकते ॥९९॥ 'मैं' और 'मेरा' ऐसी बुद्धि और इनका व्यवहार भी अविद्या ही है, परमार्थ तो कहने-सुननेकी वात नहीं है क्योंकि वह वाणीका अविषय है ॥१००॥ हे केशिष्वज ! आपने इस मुक्ति-प्रद योगका वर्णन करके मेरे कल्याणके लिये सब कुछ कर दिया, अब आप सुखपूर्वक, पधारिये ॥१०१॥

श्रीपराशरजी बोले-हे ब्रह्मन् ! तदनन्तर खाण्डिक्यसे यथोचित पूजित हो राजा केशिष्यज अपने नगरमें चले आये ॥१०२॥ तथा खाण्डिक्य भी अपने पुत्र-को राज्य दे * श्रीगोविन्दमें चित्त लगाकर योग सिद्ध करने-के लिये [निर्जन] वनको चले गये॥१०३॥ वहाँ यमादि गुणोंसे युक्त होकर एकाग्रचित्तसे ध्यान करते हुए राजा खाण्डिक्य विष्णु नामक निर्मल ब्रह्ममें लीन हो गये॥१०४॥ किन्तु केशिष्यज, विदेहमुक्तिके लिये अपने कर्मोंको क्षय करते हुए समस्त विषय भोगते रहे। उन्होंने फलकी इच्छा न करके अनेकों शुम कर्म किये॥१०५॥ हे द्विज! इस प्रकार अनेकों कल्याण-प्रद भोगोंको भोगते हुए उन्होंने पाप और मल (प्रारच्यं-कर्म) का क्षय हो जानेपर तापत्रयको दूर करनेवाली आत्यन्तिक सिद्धि प्राप्त कर ली॥१०६॥

इति श्रीविष्णुपुराणे षष्टेंऽशे सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

शिष्यपरम्परा, माहात्म्य और उपसंहार।

श्रीपराशर उवाच

इत्येष कथितः सम्यक् तृतीयः प्रतिसञ्चरः । आत्यन्तिको विम्रुक्तिर्या लयो ब्रह्मणि शाश्वते ॥१॥ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च । वंशाजुचरितं चैव भवतो गदितं मया॥२॥ पुराणं वैष्णवं चैतत्सर्विकिल्बिषनाशनम् । विशिष्टं सर्वशास्त्रेम्यः पुरुषार्थोपपादकम् ॥ ३॥

श्रीपराशरजी बोले-हे मैत्रेय ! इस प्रकार मैंने तुमसे तीसरे आत्यन्तिक प्रलयका वर्णन किया, जो सनातन ब्रह्ममें लयरूप मोक्ष ही है ॥ १ ॥ मैंने तुमसे संसारकी उत्पत्ति, प्रलय, वंश, मन्वन्तर तथा वंशोंके चरित्रोंका वर्णन किया ॥ २ ॥ हे मैत्रेय ! मैंने तुम्हें सुननेके लिये उत्सुक देखकर यह सम्पूर्ण शास्त्रोंमें श्रेष्ठ सर्वपापविनाशक और पुरुषार्थका प्रतिपादक

अयापि खाण्डिक्य उस समय राजा नहीं था; सथापि वनमें जो उसके दुर्ग, मन्त्री और मृत्य आदि थे उन्हींका
 स्वामी अपने पुत्रको बनाया ।

तुम्यं यथावन्मैत्रेय प्रोक्तं शुश्रूषवेऽव्ययम् । यदन्यद्पि वक्तव्यं तत्प्रच्छाद्य वदामि ते ॥ ४॥ श्रीमैत्रेय जवाच

भगवन्कथितं सर्वं यत्षृष्टोऽसि मया ग्रुने ।
श्रुतं चैतन्मया भक्त्या नान्यत्प्रष्टव्यमस्ति मे ॥ ५ ॥
विच्छिनाः सर्वसन्देहा वैमल्यं मनसः कृतम् ।
त्वत्प्रसादान्मया ज्ञाता उत्पत्तिस्थितिसंक्षयाः ॥६॥
ज्ञातश्रुतिंघो राशिः शक्तिश्र त्रिविधा गुरो ।
विज्ञाता सा च कात्स्न्येन त्रिविधा भावभावना॥७॥
त्वत्प्रसादान्मया ज्ञातं ज्ञेयमन्यैरलं द्विज ।
यदेतद्विलं विष्णोर्जगन्न व्यतिरिच्यते ॥ ८ ॥
कृतार्थोऽहमसन्देहस्त्वत्प्रसादान्महाग्रुने ।
वर्णधर्माद्यो धर्मा विदिता यदशेषतः ॥ ९ ॥
प्रमुत्तं च निष्टतं च ज्ञातं कर्म मयाखिलम् ।
प्रमीद् विप्रप्रवर नान्यत्प्रष्टव्यमस्ति मे ॥१०॥
यदस्य कथनायासैर्योजितोऽसि मया गुरो ।
तत्क्षम्यतां विशेषोऽस्ति न सतां पुत्रशिष्ययोः ।११।

श्रीपराशर उवाच

एतत्ते यन्मयाख्यातं पुराणं वेदसम्मतम् ।
श्रुतेऽस्मिन्सर्वदोषोत्थः पापराशिः प्रणश्यति॥१२॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च ।
वंशाजुचिरतं कृत्स्नं मयात्र तव कीर्तितम् ॥१३॥
अत्र देवास्तथा दैत्या गन्धर्वोरगराश्वसाः ।
यश्चविद्याधरास्सिद्धाः कथ्यन्तेऽप्सरसस्तथा॥१४॥
स्नुनयो मावितात्मानः कथ्यन्ते तपसान्विताः।

वैष्णवपुराण सुना दिया। अत्र तुम्हें जो और कुछ पूछना हो पूछो। मैं उसका तुमसे वर्णन करूँगा।।३-४॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-भगवन् ! मैंने आपसे जो कुछ पूछा था वह सभी आप कह चुके और मैंने भी उसे श्रद्धाभक्तिपूर्वेक सुना, अब मुझे और कुछ भी पूछना नहीं है ॥ ५ ॥ हे मुने ! आपकी कृपासे मेरे समस्त सन्देह निवृत्त हो गये और मेरा चित्त निर्मछ हो गया तथा मुझे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रख्यका ज्ञान हो गया ॥ ६ ॥ हे गुरो ! मैं चार प्रकारकी राशि और तीन प्रकारकी शक्तियाँ जान गया तथा मुझे त्रिविध भाव-भावनाओंका³ भी सम्यक् बोध हो गया ॥ ७ ॥ हे द्विज ! आपकी कृपासे मैं, जो जानना चाहिये वह भली प्रकार जान गया कि यह सम्पूर्ण जगत् श्रीविष्णुमगवान्से भिन्न नहीं है, इसिछिये अब मुझे अन्य वार्तोके जाननेसे कोई छाम नहीं ॥ ८॥ हे महामुने ! आपके प्रसादसे मैं निस्सन्देह कृतार्थ हो गया क्योंकि मैंने वर्ण-धर्म आदि सम्पूर्ण धर्म और प्रवृत्ति तथा निवृत्तिरूप समस्त कर्म जान छिये । हे विप्रवर ! आप प्रसन्न रहें; अब मुझे और कुछ भी पूछना नहीं है ॥ ९-१० ॥ हे गुरो ! मैंने आपको जो इस सम्पूर्ण पुराणके कथन करनेका कष्ट दिया है, उसके लिये आप मुझे क्षमा करें; साधुजनोंकी दृष्टिमें पुत्र और शिष्यमें कोई मेद नहीं होता ॥११॥

श्रीपराशरजी बोळे-हे मुने ! मैंने तुमको जो यह वेदसम्मत पुराण सुनाया है इसके श्रवणमात्रसे सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न हुआ पापपुञ्ज नष्ट हो जाता है॥१२॥ इसमें मैंने तुमसे सृष्टिकी उत्पत्ति, प्रख्य, वंश, मन्वन्तर और वंशोंके चिरत—इन सभीका वर्णन किया है॥१३॥ इस प्रन्थमें देवता, दैत्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध और अप्सरागणका भी वर्णन किया गया है॥१४॥ आत्माराम और तपोनिष्ठ मुनि-जन चांतुर्वर्ण्य-विभाग, महापुरुषोंके विशिष्ट चरित,

१-देखिये -- प्रथम अंश अध्याय २२ श्लोक २३-३३ ।

२- ,, पष्ट अंश अध्याय ७ स्त्रीक ११-१३।

The state of the control of the cont

चातुर्वर्ण्यं तथा पुंसां विशिष्टचरितानि च ॥१५॥ पुण्याः प्रदेशा मेदिन्याः पुण्या नद्योऽथ सागराः । पर्वताश्च महापुण्याश्चरितानि च घीमताम् ॥१६॥ वर्णभर्मादयो धर्मा वेदशास्त्राणि कुत्स्रशः। येषां संसरणात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१७॥ उत्पत्तिस्थितिनाशानां हेतुर्यो जगतोऽन्ययः । स सर्वभूतस्सर्वात्मा कथ्यते भगवान्हरिः ॥१८॥ अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः। पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव ॥१९॥ यनामकीर्तनं भक्त्या विलायनमनुत्तमम्। मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः ॥२०॥ कलिकलमपमत्युग्रं नरकार्तिप्रदं नृणाम्। प्रयाति विलयं सद्यः सकुद्यत्र च संस्मृते ॥२१॥ हिरण्यगर्भदेवेन्द्ररुद्रादित्याश्विवायुभिः पावकैर्वसुभिः साध्यैर्विश्वेदेवादिभिः सुरैः ॥२२॥ यक्षरक्षोरगैः सिद्धैर्देत्यगन्धर्वदानवैः अप्सरोभिस्तथा तारानक्षत्रैः सकलैर्प्रहैः॥२३॥ सप्तर्षिभित्तथा घिष्ण्यैधिष्ण्याधिपतिभित्तथा। ब्राह्मणाद्यैभेतुष्येश्व तथैव पशुभिर्मृगैः ॥२४॥ पलाशाद्यमिहीरुहै:। सरीसृपैर्विहङ्गेश्र वनाग्निसागरसरित्पातालैः सघरादिभिः ॥२५॥ शब्दादिभिश्र सहितं त्रह्माण्डमितलं द्विज । मेरोरिवाणुर्यस्यतद्यन्मयं च द्विजोत्तम ॥२६॥ स सर्वः सर्ववित्सर्वस्वरूपो रूपवर्जितः। भगवान्कीर्तितो विष्णुरत्र पापप्रणाञ्चनः ॥२७॥ यदश्वमेघावसृथे स्नातः प्रामोति वै फलम् । श्रुत्वैतन्धुनिसत्तम ॥२८॥ मानवस्तद्वामोति प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथार्णवे।

पृथिवींके पवित्र क्षेत्र, पवित्र नदी और समुद्र, अत्यन्त पावन पर्वत, बुद्धिमान् पुरुषोंके चरित, वर्ण-धर्म आदि धर्म तथा वेद और शास्त्रोंका भी इसमें सम्यक्ष्पसे निरूपण हुआ है, जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥१५-१७॥

जो अन्ययात्मा भगवान् हरि संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके एकमात्र कारण हैं उनका भी इसमें कीर्तन किया गया है ॥१.८॥ जिनके नामका विवश होकर कीर्तन करनेसे भी मनुष्य सिंहसे डरे हुए गीदड़ोंके समान समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥ हे मैत्रेय ! जिनका भक्तिपूर्वक किया हुआ नाम-संकीर्तन सम्पूर्ण धातुओंको पिघछाने-वाछे अग्निके समान समस्त पार्पोका सर्वोत्तम विछायन (लीन कर देनेवाला) है ॥२०॥ जिनका एक वार भी स्मरण करनेसे मनुष्योंको नरक-यातनाएँ उप्र कल्डि-कल्मप तुरन्त नष्ट अति देनेवाला हो जाता है॥२१॥ हे द्विजोत्तम ! हिर्ण्यगर्भ, देवेन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, वसु, साच्य और विश्वेदेव आदि देवगण, यक्ष, राक्षस, उरग, सिद्ध, दैत्य, गन्धर्व, दानव, अप्सरा, तारा, नक्षत्र, समस्त ग्रह, सप्तर्षि, लोक, लोकपालगण, ब्राह्मणादि मनुष्य, पञ्जु, मृग, सरीसृप, विहंग, पलाश आदि वृक्ष, वन, अग्नि, समुद्र, नदी, पाताल तथा पृथिवी आदि और शब्दादि विषयोंके सहित यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनके आगे सुमेरुके सामने एक रेणुके समान है तथा जो इसके उपादान-कारण हैं उन सर्व सर्वज्ञ सर्वस्रूप रूपरहित और पापनाशक भगवान् विष्णुका इसमें कीर्तन किया गया है ॥२२-२७॥

हे मुनिसत्तम ! अश्वमेघ-यज्ञमें अवस्थ (यज्ञान्त) ज्ञानवस्तद्वामोति श्रुत्वेतन्मुनिसत्तम ।।२८।। प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथार्णवे । प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र तथा समुद्रतटपर रहकर उपवास करनेसे जो फल मिलता है वही इस कृतोपवासः प्रामोति तदस्य श्रवणान्नरः ।।२९॥ पुराणको सुननेसे प्राप्त हो जाता है ॥ २९॥

यद्प्रिहोत्रे सुहुते वर्षेणामोति मानवः। महापुण्यफलं विद्र तदस्य श्रवणात्सकृत्।।३०।। यज्ज्येष्ठग्रुक्कद्वाद्द्रयां स्नात्वा वै यग्रुनाजले । मधुरायां हरिं दृष्टा प्रामोति पुरुषः फलम् ।।३१।। तदामोत्यखिलं सम्यगध्यायं यः शृणोति वै । पुराणस्यास्य विप्रर्षे केशवार्पितमानसः ॥३२॥ यम्रनासिललस्वातः पुरुषो मुनिसत्तम । ज्येष्ठामूले सिते पक्षे द्वादश्यां सम्रुपोषितः ॥३३॥ समम्यर्च्याच्युतं सम्यङ् मथुरायां समाहितः । अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्रामोत्यविकलं फलम् ॥३४॥ आलोक्यद्भिमथान्येषामुक्रीतानां खवंश्रजैः। एतत्किलोचुरन्येषां पितरः सपितामहाः ॥३५॥ कचिद्सत्कुले जातः कालिन्दीसलिलाप्छतः। अर्चियिष्यति गोविन्दं मथुरायामुपोषितः ॥३६॥ ज्येष्ठामूले सिते पक्षे येनैवं वयमप्युत । पराष्ट्रद्भिमनाप्स्थामस्तारिताः स्वकुलोद्भवैः ॥३७॥ ज्येष्ठामूले सिते पक्षे समम्यर्च्य जनार्दनम् । धन्यानां कुलजः पिण्डान्यमुनायां प्रदास्यति।।३८।। तसिन्काले समभ्यर्ज्य तत्र कृष्णं समाहितः। द्त्त्वा पिण्डं पितृम्यश्च यम्रुनासिललाप्छुतः ॥३९॥ यदामोति नरः पुण्यं तारयन्खपितामहान् । श्चत्वाच्यायं तदामोति पुराणस्यास्य भक्तितः॥४०॥ **एतत्संसारभीरूणां** परित्राणमजुत्तमम्। श्राच्याणां परमं श्राच्यं पवित्राणामजुत्तमम् ॥४१॥ दुःस्वमनाशनं नृणां सर्वदुष्टनिवर्हणम्। मङ्गलं मङ्गलानां च पुत्रसम्पत्प्रदायकम् ॥४२॥ इदमार्ष पुरा प्राह ऋभवे कमलोद्भवः।

एक वर्षतक नियमानुसार अग्निहोत्र करनेसे मनुष्यको जो महान पुण्यफल मिलता है वहीं इसे एक बार सुननेसे हो जाता है ॥३०॥ ज्येष्ठ शुक्रा द्वादशीके दिन मथुरा-पुरीमें यमुना-स्नान करके कृष्णचन्द्रका दर्शन करनेसे जो फल मिलता है हे विप्रवें ! वहीं भगवान् कृष्णमें चित्त लगाकर इस पुराणके एक अध्यायको सावधानता पूर्वक सुननेसे मिल जाता है ॥३१-३२॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! ज्येष्ठ मासके ग्रुक्रपक्षकी द्वादशीको मथुरापुरीमें उपवास करते हुए यमुनास्नान करके समाहितचित्तसे श्रीअच्युतका मलीप्रकार पूजन करने-से मनुष्यको अश्वमेध-यज्ञका सम्पूर्ण फल मिलता है ॥३३-३४॥ कहते हैं अपने वंशजोंद्वारा [यमुनातटपर पिण्डदान करनेसे] उन्नति लाभ किये हुए अन्य पितरोंकी समृद्धि देखकर दूसरे छोगोंके पितृ-पितामहोंने [अपने वंशजोंको छक्ष्य करके] इस प्रकार कहा था—॥३५॥ क्या हमारे कुळमें उत्पन्न हुआ कोई पुरुष ज्येष्ठ मासके शुक्र पक्षमें [द्वादशी तिथिको] मथुरामें उपवास करते हुए यसुनाजलमें स्नान करके श्रीगोविन्दका पूजन करेगा; जिससे हम भी अपने वंशजोंद्वारा उद्धार पाकर ऐसा परम ऐश्वर्य प्राप्त कर सकेंगे ? जो बड़े भाग्य-वान् होते हैं उन्हींके वंशधर ज्येष्ठमासीय शुक्रपक्षमें भगवान्का अर्चन करके यमुनामें पितृगणको पिण्ड-दान करते हैं ॥३६-३८॥ उस समय यमुनाजलमें स्नान करके सावधानतापूर्वक भलीप्रकार भगवान्का पूजन करनेसे और पितृगणको पिण्ड देनेसे अपने पितामहोंको तारता हुआ पुरुष जिस पुण्यका भागी होता है वही पुण्य मक्तिपूर्वक इस पुराणका एक अध्याय सुननेसे प्राप्त हो जाता है ॥३९-४०॥ यह पुराण संसार-से मंयभीत हुए पुरुषोंका अति उत्तम रक्षक, अत्यन्त श्रवणयोग्य तथा पवित्रोंमें परम उत्तम है ॥४१॥ यह मनुष्योंके दुःखप्रोंको नष्ट करनेवाला, सम्पूर्ण दोषोंको दूर करनेवाला, मांगलिक वस्तुओंमें परम मांगलिक और सन्तान तथा सम्पत्तिका देनेवाला है ॥४२॥

इदमार्ष पुरा प्राह ऋभवे कमलोक्कवः। ऋधः प्रियवतायाह स च भागुरयेऽव्यक्ति ॥१३॥ ऋधको छन्।सा आस्ति ऋधको छन्।सा आस्ति ऋधको छन्।सा और भागुरिः स्तम्भिमत्राय द्घीचाय स चोक्तवान्।
सारस्रताय तेनोक्तं भृगुस्सारस्वतेन च ॥४४॥
भृगुणा पुरुकुत्साय नर्भदाय स चोक्तवान्।
नर्भदा धतराष्ट्राय नागायापूरणाय च ॥४५॥
ताम्यां च नागराजाय प्रोक्तं वासुक्रये द्विज ।
वासुक्तिः प्राह वत्साय वत्सश्राश्वतराय वे ॥४६॥
कम्बलाय च तेनोक्तमेलापुत्राय तेन वे ॥४७॥
पातालं समनुप्राप्तस्ततो वेद्शिरा स्नुनिः।
प्राप्तवानेतद्खिलं स च प्रमतये द्दौ ॥४८॥
दत्तं प्रमतिना चैतज्ञातुकर्णाय धीमते।
जातुकर्णेन चैवोक्तमन्येषां पुण्यकर्मणाम् ॥४९॥
पुलस्त्यवरदानेन ममाप्येतत्समृतिं गतम्।
मयापि तुम्यं मैत्रेय यथावत्कथितं त्विदम् ॥५०॥
त्वमप्येतच्छिनीकाय कलेरन्ते वदिष्यसि ॥५१॥

यः शृणोति नरो भक्त्या सर्वपांपैः प्रमुच्यते ॥५२॥ समस्ततीर्थस्नानानि समस्तामरसंस्त्रतिः। कृता तेन भवेदेतद्यः शृणोति दिने दिने ॥५३॥ कपिलादानजनितं प्रण्यमत्यन्तदुर्लभम् । श्रुत्वैतस्य दशाध्यायानवामोति न संशयः ॥५४॥ यस्त्वेतत्सकलं शृणोति प्ररुषः मनस्यच्युतं सर्वे सर्वमयं समस्तजगता-माधारमात्माश्रयम् । ज्ञानज्ञेयमनादिमन्तरहितं सर्वामराणां हितं स प्रामोति न संशयोऽस्त्यविकलं यद्वाजिमेधे फलम् ॥५५॥ यत्रादौ भगवांश्वराचरगुरु-र्मध्ये तथान्ते च सः त्रसज्ञानमयोऽच्युतोऽखिलजग-

न्मध्यान्तसर्गप्रभः।

इत्येतत्परमं गुद्धं कलिकल्मपनाशनम् ।

प्रियव्रतने भागुरिसे कहा ॥४३॥ फिर इसे भागुरिने स्तम्भित्रको, स्तम्भित्रने दघीचिको, दघीचिने सारखतको और सारखतने भृगुको सुनाया॥४४॥ तथा भृगुने पुरुकुत्ससे, पुरुकुत्सने नर्मदासे और नर्मदाने भृतराष्ट्र एवं पूरणनागसे कहा ॥४५॥ हे द्विज ! इन दोनोंने यह पुराण नागराज वासुिकको सुनाया । वासुिकने वत्सको, वत्सने अश्वतरको, अश्वतरने कम्बल्क को और कम्बल्ने एलापुत्रको सुनाया ॥४६-४०॥ इसी समय मुनिवर वेदिशरा पाताल्लोकमें पहुँचे, उन्होंने यह समस्त पुराण प्राप्त किया और फिर प्रमितको सुनाया ॥४८॥ प्रमितने उसे परम बुद्धिमान् जातुकर्णको दिया तथा जातुकर्णने अन्यान्य पुण्यशील महात्माओंको सुनाया ॥४९॥

[पूर्व-जन्ममें सारस्वतके मुखसे सुना हुआ यह पुराण] पुलस्त्यजीके वरदानसे मुझे भी स्मरण रह गया । सो मैंने ज्यों-का-त्यों तुम्हें सुना दिया। अव तुम भी कलियुगके अन्तमें इसे शिनीकको सुनाओंगे॥ ५०-५१॥

जो पुरुष इस अति गुद्ध और कलि-कल्मष-नाशक पुराणको भक्तिपूर्वक सुनता है वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥५२॥ जो मनुष्य इसका प्रतिदिन श्रवण करता है उसने तो मानो सभी तीथोंमें स्नान कर लिया और सभी देवताओंकी स्तुति कर छो ॥ ५३ ॥ इसके दश अध्यायोंका श्रवण करनेसे निःसन्देह कपिछा गौके दानका अति दुर्छम पुण्य-फल प्राप्त होता है ॥५४॥ जो पुरुष सम्पूर्ण जगत्के आधार, आत्माके अवलम्ब, सर्वस्वरूप, सर्वमय, ज्ञान और ज्ञेयरूप आदि-अन्तरहित तथा समस्त देवताओंके हितकारक श्रीविष्णुभगवान्का चित्तमें ध्यानकर इस सम्पूर्ण पुराणको सुनता है उसे निःसन्देह अस्वमेध-यज्ञका प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ जिसके आदि, मध्य और अन्तमें अखिल जगत्की सृष्टि, स्थिति तथा संहारमें समर्थ ब्रह्मज्ञानमय चराचर-भगवान् अच्युतका ही कोर्तन हुआ है

पवित्रममलं तत्सर्व पुरुष: शृज्वन्पठन्वाचय-न्प्रामोत्यस्ति न तत्फलं त्रिशुवने-ष्वेकान्तसिद्धिहिरिः ॥५६॥ यसिन्न्यस्तमतिन याति नरकं यचिन्तने खर्गोऽपि विद्यो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः । मुक्तिं चेतिस यः श्थितोऽमलिधयां पुंसां ददात्यव्ययः किं चित्रं यद्घं प्रयाति विलयं कीर्तिते ॥५७॥ तत्राच्युते यज्ञैर्यज्ञविदो यजन्ति सततं यज्ञेश्वरं कर्मिणो यं वै ब्रह्ममयं परावरमयं ध्यायन्ति च ज्ञानिनः। यं सिश्चन्त्य न जायते न भ्रियते वर्द्धते हीयते नो नैवासन च सद्भवत्यति ततः किं वा हरेः श्रूयताम् ॥५८॥ कव्यं यः पितृरूपधृग्विधिहुतं हव्यं च अङ्क्ते विश्व-भगवाननादिनिधनः र्देवत्वे स्वाहाखधासंज्ञिते। यसिन्ब्रह्मणि सर्वशक्तिनिलये मानानि नो मानिनां निष्ठाये प्रभवन्ति हन्ति कलुपं श्रोत्रं स यातो हरिः ॥५९॥

नान्तोऽस्ति यस न च यस समुद्भवोऽस्ति वृद्धिर्न यस परिणामविवार्जितसा । नापक्षयं च समुपैत्यविकारि वस्तु

उस परम श्रेष्ठ और अमल पुराणको सुनने, पढ़ने और धारण करनेसे जो फल प्राप्त होता है वह सम्पूर्ण त्रिलोकीमें और कहीं प्राप्त नहीं हो सकता, एकान्त मुक्तिरूप सिद्धिको देनेवाछे क्योंकि भगवान् विष्णु ही इसके प्राप्तव्य फल हैं॥ ५६॥ जिनमें चित्त लगानेवाला कभी नरकमें नहीं जा सकता, जिनके स्मरणमें स्वर्ग भी विष्नरूप है, जिनमें चित्त लग जानेपर ब्रह्मलोक भी अति तुच्छ प्रतीत होता है तथा जो अन्यय प्रमु निर्मलचित्त पुरुषोंके इदयमें स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते हैं उन्हीं अच्युत-का कीर्तन करनेसे यदि पाप विळीन हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥ ५७ ॥ यज्ञवेत्ता कर्मनिष्ठ लोग यज्ञोंद्वारा जिनका यज्ञेस्वर-रूपसे यजन करते हैं, ज्ञानीजन जिनका परावरमय ब्रह्मस्वरूपसे ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण करनेसे पुरुष न जन्मता है, न मरता है, न बढ़ता है और न क्षीण ही होता है तथा जो न सत् (कारण) हैं और न असत् (कार्य) ही हैं उन श्रीहरिके अतिरिक्त और क्या सुना जाय ? ॥ ५८ ॥ जो अनादिनिधन भगवान् विमु पितृरूप धारण-कर स्वधासंज्ञक कन्यको और देवता होकर अग्निमें विधिपूर्वक हवन किये हुए स्वाहा नामक हन्यको प्रहण करते हैं तथा जिन समस्त राक्तियोंके आश्रय-भूत भगवान्के विषयमें बड़े-बड़े प्रमाणकुशल पुरुषोंके प्रमाण भी इयत्ता करनेमें समर्थ नहीं होते वे श्रीहरि श्रवण-पथमें जाते ही समस्त पापोंको नष्ट कर देते हैं॥ ५९॥

जिन परिणामहीन प्रमुका आदि, अन्त, वृद्धि और क्षय कुछ भी नहीं होता, जो नित्य निर्विकार पदार्थ हैं उन यस्तं नतोऽस्मि पुरुषोत्तममीशमीत्वम्।।६०॥ स्तवनीय प्रस् पुरुषोत्तमको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६०॥

तस्यैव योञ्नु गुणभुग्बहुधैक एव शुद्धोऽप्यशुद्ध इव भाति हि मूर्तिभेदैः। ज्ञानान्वितः सकलसत्त्वविभृतिकर्ता तस्मै नमोऽस्तु पुरुषाय सदाव्ययाय ॥६१॥ ज्ञानप्रवृत्तिनियमैक्यमयाय पुंसो भोगप्रदानपटवे त्रिगुणात्मकाय । अन्याकृताय भवभावनकारणाय वन्दे खरूपभवनाय सदाजराय ॥६२॥ व्योमानिलाग्निजलभूरचनामयाय शब्दादिभोग्यविषयोपनयक्षमाय । पुंसः समस्तकरणैरुपकारकाय व्यक्ताय सक्ष्मबृहदात्मवते नतोऽसि ॥६३॥ इति विविधमजस्य यस्य रूपं **प्रकृतिपरात्ममयं** सनातनस्य । प्रदिशतु भगवानशेषप्रंसां

जो उन्हीं समान गुणोंको भोगनेवाला है, एक होकर भी अनेक रूप है तथा शुद्ध होकर भी विभिन्न रूपोंके कारण अशुद्ध (विकारवान्) सा प्रतीत होता है और जो ज्ञानस्वरूप एवं समस्त भूत तथा विभूतियों-का कर्ता है उस नित्य अव्यय पुरुपको नमस्कार है ॥ ६१ ॥ जो ज्ञान (सत्त्व), प्रवृत्ति (रज) और नियमन (तम) की एकतारूप है, पुरुपको भोग प्रदान करनेमें कुशल है, त्रिगुणात्मक तथा अव्याकृत है, संसारकी उत्पत्तिका कारण है, उस खतःसिद्ध तथा जराशून्य प्रमुको सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥ ६२ ॥ जो आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवीरूप है, शब्दादि भोग्य विषयोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ है और पुरुषका उसकी समस्त इन्द्रियोंद्वारा उपकार करता है उस सूक्ष्म और विराट्रूप व्यक्त परमात्मा-को नमस्कार करता हूँ ॥ ६३ ॥

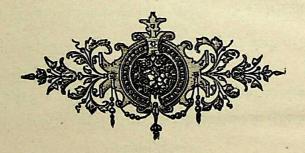
इस प्रकार जिन नित्य सनातन परमात्माके प्रकृतिपरात्ममयं सनातनस्य। प्रकृति-पुरुषमय ऐसे अनेक रूप हैं वे भगवान् हरि समस्त पुरुषोंको जन्म और जरा आदिसे रहित (मुक्ति-हरिरपजन्मजरादिकां स सिद्धिम् ॥६४॥ रूप) सिद्धि प्रदान करें ॥६४॥

इति श्रीविष्णुपुराणे पर्छेऽशे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इति श्रीपराश्चरम्रुनिविरचिते श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायके श्रीमति विष्णु-महापुराणे पष्ठोंऽश्वः समाप्तः ।

इति श्रीविष्णुमहापुराणं सम्पूर्णम् ॥ श्रीविष्ण्वर्पणमस्तु ॥





विविध गीताएँ

गीता—[श्रीशांकरभाष्यका सरल हिन्दी-अनुवाद] इसमें
मूल भाष्य तथा भाष्यके सामने ही ग्रथं लिखकर पढ़ने
श्रीर समक्तनेमें सुगमता कर दी गयी है। श्रुति,
स्मृति-इतिहासोंके उद्धत प्रमाणोंका सरल अर्थ दिया
गया है, भाष्यके पदोंको श्रुलग-अलग करके लिखा
गया है श्रीर गीतामें आये हुए इरेक शब्दकी पूरी सूची
है, भगवान् श्रीकृष्णके तिरंगे दो बड़े और श्रीआधशंकराचार्य भगवान्का एक सादा चित्र है। बहुत
मोटे चिकने कागजपर बम्बैया टाइपमें छपा है, सस्तेपनमें अपनी जोड़ी नहीं रखता। साइज २२ × २६,
८ पेजी, पृष्ठ ५०४, मूष्ट साधारण जिल्द २॥)
बिदया कपदेकी जिल्द " २॥)

गीता-मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण माषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं त्यागसे भगवत्प्रासिसहित, मोटा टाइप, आकार डिमाई म पेजी, मोटा कागज, साफ ग्रुद्ध छपाई, अक्षर बड़े, कपढ़ेकी मजबूत जिल्द, ५७० पृष्ठ, ४ बहुरंगे चित्र, सू० " १।)

गीता-गुजराती टीका, हमारी प्रसिद्ध बड़ी गीता १।)
वालीका गुजराती-अनुवाद । इसमें हिन्दी गीताकी
सभी बातें उसी तरह रक्खी गयी हैं, भगवान्
और अर्जुनका चित्र नया लगाया गया है । इसमें
पदच्लेद, अन्वय, सरल अर्थ, अध्यायोंके प्रधान विषय,
प्रस्थेक श्लोकका विषय, गीता-माहास्य आदि छापे
गये हैं, चार सुन्दर रंगीन चित्र तथा त्यागसे
भगवस्माप्ति नामक निबन्ध भी जोड़ा गया है, १७०
पृष्ठकी सजिल्द पुस्तकका मृ० केवल १।) है

गीता-मराठी-टीका, इसमें मूल क्लोक, पदच्छेद, अन्वय, सरल अर्थ और यन्न-तन्न टिप्पणियाँ, संक्षिप्त माहास्त्रय, गीताकी महिमा, अध्यायोंके प्रधान विषयोंकी सूची तथा त्यागसे भगवत्यासि नामक निवन्ध भी जोड़ दिया गया है, प्रत्येक मूल वाक्यके सामने ही उसका मराठी अर्थ छपा है। आकार दिमाई आठपेजी, ५७० पृष्ठ, मोटा चिकना कागज, भगवान्के ४ सुन्दर बहुरंगे चिन्न, हाथसे चुने हुए देशी कपड़ेकी सुन्दर जिल्द, मू० केवल 11) मान्न

गीता-प्रायः सभी विषय १।) वालीके समान, इसकी विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, म्०॥३) स० गीता-हिन्दीकी प्रसिद्ध सझली गीता ॥।=) वालीका बंगला-अनुवाद, इसमें हिन्दी गीताकी सब वातें वंगलामें लिख दी गयी हैं। इसमें भी भगवान् और अर्जुनका चित्र दूसरा नया बनाकर लगाया गया है। पदच्छेद, अन्वय, सरल अर्थ, अध्यायींके प्रधान विषय, प्रत्येक श्लोकका विषय, गीता-माहारम्य आदि वैसे ही छापे गये हैं, त्यागसे भगवस्त्राप्ति नामक निवन्ध भी जोड़ दिया गया है। संस्कृत-शब्दके सामने ही उसका ठीक अर्थ दिया गया है, थोड़ी बंगला जाननेवाले भी इसे सरलतासे पढ़ सकते हैं, पृष्ठ ५४०, मू० १) स० ... गीता-साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान विषय और त्यागसे भगवत्याप्ति नामक निवन्धसहित । मोटा टाइप, पृष्ठ ३१६, मू० ॥) स० गीता-मूब, मोटे अक्षरवाची, सचित्र, पृष्ट आहे खुलनेवाले १०६, मृह्य ।-) स० गीता-मूल इलोक और मापाटीका, सचित्र, त्यागसे मगव-खाप्तिसहित, पृष्ठ ३४२, मृख्य =)॥ सजिल्द ≤)॥ गीता-केवल भाषा, इलोक न पढ़ सकनेवालोंके लिये बड़ी उपयोगी है, आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ २००. मू०।) स० गीता-मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सजिल्द पृष्ठ १३२, =) गीता-मूछ, ताबीजी, इसमें गीता-माहात्म्य, करन्यास, ध्यान आदि भी खुपे हैं, साइज २×२॥ इख, पृष्ठ २१६, सजिल्द मृ० गीता-दो पन्नोमं सम्पूर्ण १८ अध्याय, मू० गीता-केवल दूसरा अध्याय मूल श्रीर अर्थसहित, मू०)। गीता-सूची (Gita-List)-भिन्न-भिन्न भाषाओंकी गीताओंकी सूची, मू० गीताका सुक्ष्म विषय-गीताके प्रत्येक श्लोकका हिन्दीमें सारांश है, मू० गीता-डायरी-पाकेट-साइज, पृष्ठ ऊपर

मू०।) स०

श्रीकृष्ण-विज्ञान-गीताका श्लोकॉसहित हिन्दी

अनुवाद, सचित्र, पृष्ठ २५०, मू॰ ॥) *** स० १)

पता-गीताप्रेस, गोरखपुर

पद्यसं

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी पुस्तकें—

तत्त्व-चिन्तामणि [भाग १]—(सचित्र) यह प्रन्थ परम उपयोगी है । इसके मननसे धर्ममें श्रद्धा, भगवानुमें प्रेम और विश्वास एवं नित्यके बर्तावमें सत्य व्यवहार और सबसे प्रेम, अत्यन्त आनन्द एवं शान्तिकी प्राप्ति होती है। पृष्ठ ३१८, मू॰ ॥=) स॰ *** तत्त्व-चिन्तामणि [भाग २] —सचित्र, इसमें ध्रम निबन्धोंका संप्रह है जो समय-समयपर 'कल्याण' में प्रकाशित हुए हैं। यह भाग भी पहले भागकी तरह बहुत उपयोगी हुआ है, पृष्ठ ६३२, मोटा एण्टिक कागज, मू॰ ॥=) स० धरमार्थ-पत्राचली-(सचित्र) कल्याणकारी ५१ पत्रींका छोटा-सा संप्रह, पृष्ठ १४४, पृण्टिक कागज, मृ०।) गीता-निबन्धावली-यह गीताकी अनेक वार्ते समझनेके लिये उपयोगी है। पृ० ८८, मू० गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग-विषय नामसे ही प्रकट है। पृष्ठ ३२, मू०

सचा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय-साकार और निराकारके ध्यानादिका रहस्यपूर्ण वर्णन । मू० /)॥ गीताके कुछ जानने योग्य विषय—गीताके कुछ विषय समभानेकी चेष्टा की गयी है, पृष्ठ ४३, मूल्य श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश—(सचित्र) इसमें भगवान्की प्रार्थना तथा मानसिक पूजा आदिका वर्णन है। मूल्य -) भगवान क्या हैं ?- भगवान्के सम्बन्धमें मनुष्योंको अधिकतर जो शंकाएँ होती हैं, उनका समाधान गीतादि शास्त्रों और अपने अनुभवके आधारपर किया गया है। मू॰ " त्यागसे भगवत्प्राप्ति—स्यागोंके द्वारा मोक्षमन्दिरकी प्राप्तिके लिये पथप्रदर्शक है। मू० धर्म क्या है ?-प्रश्लोत्तरके ढंगपर होनेसे यह पुस्तक बड़ी रोचक बन गयी है। मूल्य गजल-गीता-सरल-हिन्दीमें गजलके ढङ्गपर गीताके वारहवें अध्यायके कुछ उपदेशोंका अनुवाद, मूल्य आधा पैसा

श्रीहतुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा लिखित और सम्पादित पुस्तकें--

विनय-पत्रिका-सरल हिन्दी-टीका-सहित, पृष्ठ ४५०, चित्र ३ सुनहरी, २ रंगीन, १ सादा, मू० १) स० १।) नैवेद्य-धर्म-सम्बन्धी चुने हुए लेखोंका सचित्र संग्रह । पृष्ठ ३४०, मू०॥=) स० " तुल्ली-दल - इसमें इतने विषय हैं कि सबके लिये कुछ-न-कुछ अपने मनकी वात मिल सकती है। पृ० २६४. मूच्य ॥) स॰ भक्त-बालक--इसमें गोविन्द, मोहन, धन्ना जाट,चन्द्रहास और सुधन्वाकी कथाएँ हैं। १ चित्र, पृ० ८०, मृ०।-) भक्त-नारी-इसमें शबरी, मीरा, जना, करमैती और रवियाकी प्रेमपूर्ण कथाएँ हैं । ६ चित्र, पृ० ८०, मृ० 1-) भक्त-पञ्चरत्न-इसमें रघुनाथ, दामोदर और उसकी पत्नी, गोपाल, शान्तीवा और उसकी पत्नी श्रीर नीलाम्बरदासके चरित्र हैं। पृष्ठ ६८, मू० आदर्श भक्त-इसमें राजा शिवि, राजा रन्तिदेव, राजा अम्बरीप, भीष्मिपिसामह, पाण्डव अर्जुन, विप्र सुदामा और चक्रिक मीछके परम पावन चरित्र हैं, पृष्ठ ११२, ७ चित्र, मृ०

भक्त-चिन्द्रका-इसमें सल्बाई, श्रीज्योतिपन्त, श्रीविद्वल-दास, दीनबन्धुदास, नारायणदास और बन्धु महान्तिके परम पावन चरित्र हैं, पृष्ठ 1-) ७ चित्र, मू० पत्र-पुष्प-(सचित्र कविता-संग्रह)पृष्ठ ९६, मू० मानव-धर्म-इसमें धर्मके दस लक्ष्णोंपर अच्छा विवेचन =) है। मृख्य साधन-पथ-सचित्र, पृष्ठ ७२, मू० **=)11** स्त्रीधर्मप्रश्लोत्तरी--नये संस्करणमें १ तिरंगा चित्र मी =) है। पृष्ठ ५६, मू ० आनन्दकी लहरें - इसमें इम दूसरोंको सुख पहुँचाते हुए खुद कैसे सुखी हों, यह बताया गया है। मू० -)॥ मनको वशमें करनेके उपाय-एक चित्र, मृ॰ ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्यकी रक्षाके सरल उपाय वताये गये हैं -) समाज-सुधार—समानके जटिल प्रश्नोंपर प्रकाश डाला गया है। मू० दिव्य सन्देश-वर्तमान दारिभक युगमें किस उपायसे शीघ्र भगवत्-प्राप्ति हो सकती है, इसमें उसके सरक उपाय बताये हैं। मू०

श्रीवियोगी हरिजीकी पुस्तकें-

प्रेम-योग-आपकी भावकतापूर्ण लेखनीसे लिखा हुआ यह अन्य अपने ढंगका एक ही है। सजीव भाषा और दिव्य भावासे सना हुआ यह प्रेम-योग प्रेम-साहित्य-का एक पूर्ण प्रन्थ कहा जा सकता है। दो खरह, पृ० ४२०, मूल्य १।) सजिल्द गीतामें भक्ति-योग--आपके अन्य प्रन्थोंकी तरह यह पुस्तक भी सुन्दर हुई है। पृष्ठ ११८, दो चित्र, मू०।-) भजन-संग्रह पहला भाग—इस मागर्मे तुल्सीदासजी, सुरदासजी और कवीरजीके भजन हैं। मू० =)

भजन-संग्रह दूसरा भाग—इसमें हितहरिवंश, स्वामी

इरिदास, गदाघर भट्ट, न्यासजी, श्रीभट्ट, सूरदास मदनमोहन, नागरीदास, नारायण स्वामी, छल्ति-किशोरी, दाद्दयाल, रेदास, मल्कदास, चरनदास, गुरु नानक सादिके भजन हैं। मु॰ भजन-संग्रह तीसरा भाग—इसमें मीराबाई, सहबोबाई, वनीठनी, प्रतापवाला, श्रीयुग्लिपया, रानी रूपकुँवरि आदिके भजन हैं। मू० भजन-संग्रह चौथा भाग—इसमें ३०-३२ मुसलमान ें सन्त और कवियोंके पद संगृहीत हैं। पाकेट-साइज, सफेर चिकना कागज, सुन्दर छपाई, मु॰

खामीजी श्रीभोलेवावाजीद्वारा लिखित पुस्तकें-

थ्रुति-रत्नायलोः—(सचित्र) वेद-उपनिपद् आदिके चुने हुए मन्त्र अर्थसहित, पृष्ठ २८४, मूब्य श्रुतिकी टेर-(सचित्र) पुस्तक सीधी-सादी बोल-चालकी कवितामें लिखी गयी है, केदान्तके विषयकी है। पृष्ठ-संख्या १५०, मूह्य केवल 1) वेदान्त-छन्दावली-इसमें वेशन्तके विचारणीय प्रश्न और उपदेश हैं, पुस्तक सुन्दरं कवितामें लिखी गयी है।

सचित्र पुस्तकका मू०

चतुर्वेदी पं० श्रीद्वारकाप्रसादजी शर्मा तथा पं० श्रीइन्द्रनारायणजी द्विवेदीकी पुस्तकें--भागवतरत्न प्रहाद-(सचित्र) यह पावेत्र चरित्र हम माँ, बहिन, बेटी, भाई, भौजाई आदि सबके हाथोंमें पढ़ने-के लिये दे सकते हैं। पृष्ठ ३४६, ३ रंगीन और ४ सादे चित्र, मू० १) सजिल्द

देखर्पि नारद—(सचित्र) जैसे मगवान्के चरित्रींसे इमारे धर्मशास्त्र भरे पड़े हैं वैसे ही नारद्जीकी पुण्यमयी गाथाएँ भी इसारे शाखोंमें ओतप्रोत हैं। पृष्ठ २४०, २ रंगीन, ३ सादे चित्र, मू० ॥) स०

कुछ अन्य लेखकोंकी पुस्तकें—

श्रीअरविन्द घोप पं॰ श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल माता-मूल्य . I) दिनचर्या-मृ॰ n) श्रीगान्धीजी ' रायबहादुर छाछा श्रीसीतारामजी सप्त-महावत-मूख्य चित्रकृटकी भाँकी-मू॰ श्रीमाखवीयजी **ईश्वर**—मृख्य श्रीश्ररएडेळ ' श्रीशङ्कराचार्यं श्रीभारती कृष्णतीर्थं सेवाके मन्त्र-मू॰)u आचार्यके सद्पदेश -म्लय श्रीज्वाळासिंहजी श्रीनारायण स्वामी मनन-माला-मू॰ **=**)11 पक सन्तका अनुभव-मू॰ गोस्वामी श्रीलक्ष्मणाचार्यजी पं० श्रीभवानीशङ्करजी महाराज ज्ञानयोग—मृल्य वजकी भाँकी-मू॰ 1)

जीवन-चरित्र तथा कुछ अन्य पुस्तकें-

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)—सचित्र, श्रीचैतन्यकी इतनी बड़ी सविस्तर जीवनी श्रभीतक हिन्दीमें कहीं नहीं छर्गा। यह पाँच खरडोंमें सम्पूर्ण होगी। बहुत ही सुन्दर यन्थ है । मूल्य ॥।=) सजिहद 9=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड २)-कीर्तनके रंगमें रॅंगे महाप्रभुकी लीलाएँ, अधमोंके उद्धारकी घटनाएँ, भक्तोंको विचित्र दर्शनकी वातें आदि भक्तोंको युख देनेवाले विविध प्रसंगोंका क्रमशः इसमें सुन्दर वर्णन

पता-गीताप्रेस, गोरखपुर

है। प्रष्ठ ४१०, ३ चित्र, सू० १=), स० १।=), तीसरा खण्ड छप रहा है।

श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र और प्रन्थ-चिवेचन-इस प्रन्थ-में श्रापके चरित्रके साथ-साथ आपके उपदेशोंका भी असूर्य संप्रह है, एण्टिक कागज, पृष्ठ ३५६, १ चित्र, मू० ॥/)

श्रीएकनाथ-चरित्र-दक्षिणके महान् भगवद्गक्तकी यह जीवनी अलौकिक है। भगवान् स्वयं आपके नौकर रहे थे। पढ़नेयोग्य है। मू० " ॥)

श्रीरामकृष्ण परमहंस (सचित्र)-आप कुछ ही दिन हुए, अत्यन्त प्रसिद्ध भगवद्गक हो गये हैं। आपका नाम विळायत और अमेरिकातक प्रसिद्ध है। इस पुस्तकमें ३०९ उपदेश भी संगृहीत हैं। मूक्य " ⊯) भक्त-भारती (७ चित्र)-सरल कवितामें ७ भक्तों-की सुन्दर, रोचक कथाओंका वर्णन है। मूल्य · ।≋)

हतुमान-बाहुक-सानुवाद, सचित्र, अनु०-पं० श्रीमहावीरप्रसादजी मालवीय, यह हनुमान्जीकी उन प्रार्थनाओंका प्रसिद्ध संग्रह है जो श्रीगोस्वामीर्जाने अपने हाथ-में पीड़ा होनेपर उसके निवारणके लिये लिखी थी। मू०-)॥ हरेरामभजन-मूल्य ")॥ श्रीकीतारामभजन-मूल्य ")॥

श्रीसीतारामभजन-मूक्य ''')। श्रीहरिसंकीर्तन-धुन-मूक्य ''')।

लोभमें पाप-मूल्य आधा पैसा

भाषा-टीका-सहित एवं मूल संस्कृत-शास्त्र-ग्रन्थ

अध्यातमरामायण (सातों काण्ड) — मूळ और हिन्दी-अनुवाद-सहित, छपाई बहुत सुन्दर और साफ, ढंग इसी पुस्तकको तरह एक तरफ मूळ इलोक और उनके सामने उनका हिन्दी-अनुवाद है, पृष्ठ ४०२, चित्र म, साइज २२×२६ आठपेजी, मूल्य साधारण जिल्द १॥।), कपहेकी जिल्द

श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्य—सचित्र-सटीक, श्रनु०-श्रीमुनिकालजी। भागवतमें दशमं और एकादशस्कन्ध सर्वो-परि हैं। इसको प्रेमसे पढ़कर लाभ उठावें। लगभग ४२० पेजकी पुस्तकका दाम केवल ॥), स० १)

विणुसहस्रनाम-शांकरमाष्य हिन्दी-अनुवाद-सहित सचित्र, अनु० — श्रीभोलेवाबाजी । इस प्रन्थमें भगवान्के विविध नार्मोके रहस्य वताये गये हैं। पृष्ठ ३६०, मू० ॥=)

विवेक-चूडामणि (सचित्र) मूल श्लोक और हिन्दी-अनुवादसहित, पृष्ठ २२४, मू० ।≅) स० ।।≥) प्रवोध-सुधाकर (सचित्र) विषय-मोगोंकी तुच्छता और आत्मसिद्धिके उपाय बताये गये हैं, मू० ଛ)॥ अपरोक्षानुमृति—(सचित्र) मूळ श्लोक और हिन्दी-अनु-

वाद-सहित, मू० ः =)॥

मनुस्मृति-दूसरा अध्याय और हिन्दी-अनुवाद,मू०-)।। विणुसहसुनाम (मृक)-गुटका-साइज, मोटे अक्षर,

मूच्य)॥। सजिब्द ''' /)॥ रामगीता-मूळ और हिन्दी-श्रनुवाद-सहित। मूख्य)॥।

बिलेविश्वदेविवि-गृहस्थोंके लिये नित्य अवइय करने-योग्य बिलविश्वदेवके मन्त्रऔर करनेकी विधि मोटे कागल-पर बहुत सुन्दर और दो रंगोंमें छपी है। मू॰)॥

पातक्षकयोगदर्शन (मूक)-इसमें चारों पादोंके सभी सूत्र शुद्धतापूर्वक छापे गये हैं। मूल्य

प्रश्नोत्तरी-इसमें भी मूल श्लोकोंसहित हिन्दी-

अनुवाद है, मू॰ ...)॥ सन्ध्या-विधिसहित, मू॰ ...)॥

दर्शनीय चित्र

हमारे यहाँ अनेक प्रकारके छोटे-बढ़े, सुन्दर-सुन्दर चित्र मिलते हैं । विशेष जानकारीके लिये चित्रों तथा पुस्तकोंका बढ़ा सूचीपत्र मँगवाकर देखिये । पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

कल्याण

(हर महीनेमें २४३०० छपता है)

मिक्त, ज्ञान, वैराग्य और धर्मसम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र, पृष्ठ-संख्या ८०, मू० ४≶), वर्षके आदिमें एक विशेषांक भी निकळता है, जो प्राहकोंको इसी मूख्यमें मिळ जाता है। अबतक ७ विशेषांक निकळ चुके हैं।

विशेषांक

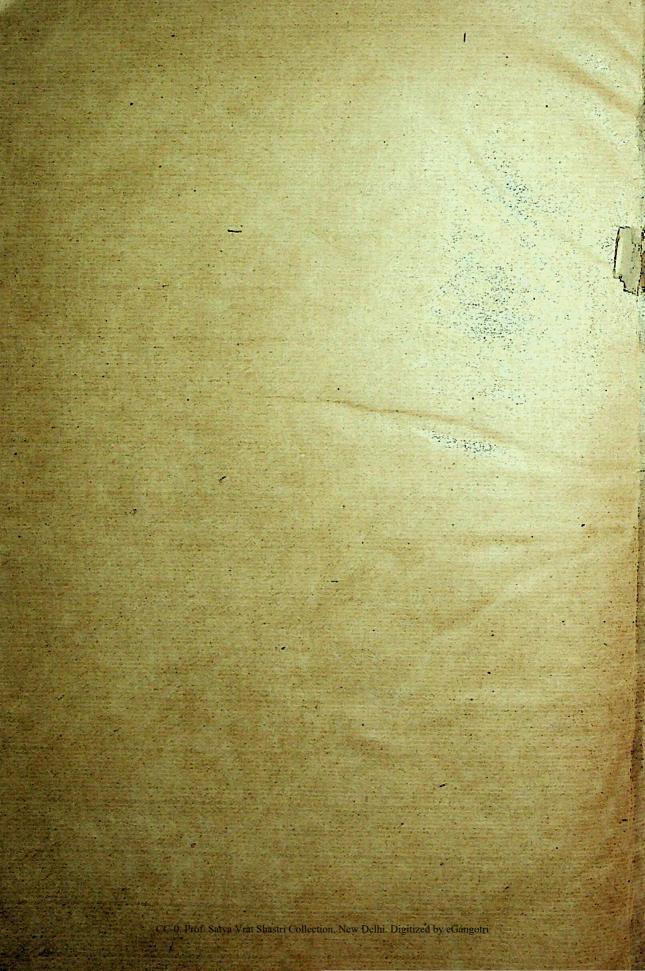
भगवन्नामांक-पृष्ठ ११०, चित्र ४१, सूक्य ॥।॥) भक्तांक-तीसरे वर्षकी पूरी फाइलसहित सू० ४॥) गीतांक-चौथे वर्षकी पूरी फाइलसहित सू० ४॥) रामायणांक-पृष्ठ ४००, चित्र १६०, सू० २॥॥)

श्रीकृष्णांक-पृष्ठ ५२२, चित्र १०८, मुख्य २॥≶) ईश्वरांक-सपरिशिष्टांक पृष्ठ ६१८, मू० ३) श्रीशिवांक-सपरिशिष्टांक पृष्ठ६६६,चित्र २८७,मू०३)

पष्ट ४००, चित्र १६०, मू० २॥⊜) (इनमें कमीशन नहीं है । डाक्खर्च हमारा) CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri पता कुल्याण-कार्यालय, गोरखपुर

0









मिलनेका पता— गीतापेस, गोरखपुर